Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.5 v.

41/5

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

All rights reserved.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

त्रयोदशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादि सहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन
श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना
निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.
Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकार यन्त्रालये मुद्रितः ।

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि } संवत् १९७५ वि० } सन् १९१८ ई० { मूल्यम् १।=)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

आनन्दसमाचार

अथर्ववेदभाष्यम्—जिन वेदों की महिमा सब बड़े २ ऋषि, मुनि और योगी गात आये हैं और विदेशी विद्वान् जिनका अर्थ खोजने में लग रहे हैं। वे अब तक संस्कृत में होने के कारण बड़े कठिन थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अर्थ तो भाषा में हो चुका है। परन्तु अथर्ववेद का अर्थ अभी तक नागरी भाषा में नहीं था. इस महात्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयाग निवासी पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने उत्साह किया है। वे भाष्य को नागरी (हिन्दी) और संस्कृत में वेद, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरणादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण से ब परिश्रम के साथ बनाकर प्रकाशित कर रहे हैं।

भाष्य का क्रम इस प्रकार है। १—सूक्त के देवता, छन्द उपदेश, २-सस्वर मूल मन्त्र ३-सस्वर पदपाठ, ४—मन्त्रों के शब्दों को कोष्ठ में देकर सान्वय भाषार्थ, ५—भावार्थ, ६—अ श्यक टिप्पणी, पाठान्तर, अनुरूप पाठादि, ७—प्रत्येक पृष्ठ में लाइन देकर सन्देह निवृत्ति लिये शब्दों और क्रियाओं की व्याकरण निरुक्तादि प्रमाणों से सिद्धि।

इस वेद में २० छोटे बड़े काण्ड हैं, एक एक काण्ड का भावपूर्ण संक्षिप्त स्त्री पुरुषों समझने योग्य अति सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य अल्प मूल्य में छपकर ग्राहकों के प पहुंचता है। वेदप्रेमी श्रीमान् राजे, महाराजे सेठ, साहूकार, विद्वान् और सर्व साधारण पुरुष स्वाध्याय पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मंगावें और जगत्पिता परमात के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यक विद्या, शिल्पविद्या, राजविद्या, अनेक क्रियाओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें और धर्मात्मा पुरुषार्थी होकर कीर्ति पावें छपाई उत्तम और कागज़ बढ़िया रायल अठपेजी है।

स्थायी ग्राहकों में नाम लिखाने वाले सज्जन २०) सैकड़ा छोड़कर पुस्तक वी० पी० वा नगद दाम पर पाते हैं। डाकव्यय ग्राहक देते हैं।

काण्ड	१ भूमिका सहित	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
मूल्य	१।)	१।-)	१॥-)	२)	१॥=)	३)	२।)	२)	२।)	२॥)

काण्ड	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	पृष्ठ ३,२०० लगभग
मूल्य	२।)	२=)	१।=)								२५॥-)

काण्ड—१४ छप रहा है। कांड १५ शीघ्र प्रकाशित होगा।

हवनमन्त्राः—धर्म शिक्षा की उपकारी पुस्तक—चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र ईश्व स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवनमन्त्र, वामदेव्यगान सरल भाषा में शब्दार्थ सहि संशोधित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ६०, मूल्य ।)॥

रुद्राध्यायः—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नम ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अंग्रेज़ी में बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४८ मूल्य ।)

रुद्राध्यायः—मूलमात्र बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४ मूल्य)॥

वेदविद्यायें—वेदों में विमान, नौका अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन मूल्य -)॥

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी

१० अगस्त १९१८।

मु०, लूकरगंज, प्रयाग। (Allahabad)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Onkar Press, Allahabad.

१—सूक्त विवरण अथर्ववेद, कांड १३ ॥ ५।८

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
	उदेहि वाजिन् यो-	रोहित	परमात्मा और जीवात्मा	त्रिष्टुप् आदि
	उदस्य केतवो दिवि	सविता रोहित	तथा	अनुष्टुप् आदि
	य इमे द्यावापृथिवी	रोहितादित्य	तथा	आकृति आदि
(१)	स एति सविता स्वर्दि	तथा	तथा	प्राजापत्याऽनुष्टुप् आदि
(२)	कीर्तिश्च यशश्चा	तथा	तथा	भुरिक् साम्नीत्रिष्टुप्
(३)	ब्रह्म च तपश्च कीर्ति	तथा	तथा	भुरिक् प्राजापत्यात्रिष्टुप्
(४)	सवा अह्नोऽजायत	तथा	तथा	आसुरी गायत्री आदि
(५)	भूयानिन्द्रो नमुराद्	तथा	तथा	तथा
(६)	उरुः पृथुः सुभूर्भुव	तथा	तथा	प्राजापत्याऽनुष्टुप् आदि

२—अथर्ववेद कांड १३ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से ॥

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड १३) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र	सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि
१	यं त्वा पृषती रथे	१।२१	८।७।२८		
२	अवः परेण पर	१।४१	१।१६४।१७		
३	एकपदी द्विपदी सा	१।४२	१।१६४।४१,४२		
४	मा प्र गाम पथो	१।५६	१०।५७।१		
५	यो यज्ञस्य प्रसाधन	१।६०	१०।५७।२		
६	पूर्वापरं चरतो मायये	२।११	१०।८५।१८		
७	उदुत्यं जातवेदसं	२।१६	१।५०।१	७।४१;८।४१;३३।३१	पू० १।३।
८	अपत्ये तायवो यथा	२।१७	१।५०।२		पू० ६।१४।
९	अदश्रन्नस्य केतवो	२।१८	१।५०।३	८।४०	पू० ६।१४।
१०	तरणिर्विश्वदर्शतो	२।१९	१।५०।४	३३।३६	पू० ६।१४।९
११	प्रत्यङ् देवानां विशः	२।२०	१।५०।५		पू० ६।१४।१
१२	येन पावक चक्षसा	२।२१	१।५०।६	३३।३२	पू० ६।१४।
१३	विद्यामेषि रज	२।२२	१।५०।७		पू० ६।१४।
१४	सप्त त्वा हरितो	२।२३	१।५०।८		पू० ६।१४।
१५	अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः	२।२४	१।५०।९		
१६	यो विश्वचर्षणि	२।२६	१०।८१।३	१७।१९	
१७	एकपाद् द्विपदो	२।२७	१०।११७।८		
१८	बृहन्महाँ असि सूर्य	२।२९	८।९१।११	३३।३९	पू० ३।९। उ०९।१।
१९	चित्रं देवानामुद	२।३५	१।११५।१	७।४२; १३।४३	पू० ६।१४।
२०	अबोध्यग्निः समिधा	२।४६	५।१।१	१५।२४	पू० १।८। उ० ८।३।
२१	कृष्णं नियानं हरयः	३।९	१।१६४।४७		
२२	सप्त युञ्जन्ति रथमे	३।१८	१।१६४।२		
२३	य आत्मदा बलदा	३।२४	१०।१२१।२,३	२५।१३,११	
२४	एकपाद् द्विपदो	३।२५	१०।११७।८		

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान तिथी..... पु०सं०..... भारती पुस्तकालय

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

त्रयोदशं काण्डम् ॥

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान तिथी..... पु०सं०..... भारती पुस्तकालय

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

१—६० ॥ रोहितो देवता ॥ १, ६, ७, ८, १०, २०, २२, २३, २४, २५, २७, ३५, त्रिष्टुप् ; २, ३४, ३८, निचृत् त्रिष्टुप् ; ३, ४, १२, ४२, निचृज् जगती ; ५, ११, ४१, भुरिक् त्रिष्टुप् ; ९ जगती ; १३ अतिशक्करी ; १४ आर्षी पङ्क्तिः ; १५ आर्षी जगती ; १६ निचृद् बृहती ; १७, ३१ आर्षी जगती ; १८ भुरिगतिजगती ; १९ निचृदतिजगती ; २१ गायत्री ; २६ विराट् परोष्णिक् ; २८ भुरिगनुष्टुप् ; २९, ३०, ३२, ३९, ४०, ४५—५१, ५३, ५४, ५६, ५८ अनुष्टुप् ; ३५ निचृद् ब्राह्मी गायत्री ; ३६, ४३ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ; ३७ विराडतिजगती ; ४४ निचृत् परोष्णिक् ; ५२ पथ्या पङ्क्तिः ; ५५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ; ५७ विराडनुष्टुप् ; ५९, ६० गायत्री ॥

अध्यात्मोपदेशः—जीवात्मा और परमात्मा का उपदेश ॥

उदेहि वाजिन् येा अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सुनृतावत् ।
येा रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु १

उत्-एहि । वाजिन् । यः । अप्-सु । अन्तः । इदम् । राष्ट्रम् । प्र । विश । सूनृता-वत् ॥ यः । रोहितः । विश्वम् । इदम् । जजानं । सः । त्वा । राष्ट्राय । सुऽभृतम् । बिभर्तु ॥ १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(वाजिन्) हे बलवान् ! [सेनापति] (उदेहि) ऊंचा हो, (सूनृतावत्) सुनीत से युक्त (इदम्) इस (राष्ट्रम्) राज्य में (प्र विश) प्रवेश कर। (यः) जो (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर है, और (यः) जिस [परमेश्वर] ने (इदम्) यह (विश्वम्) विश्व [जगत्] (जजान) उत्पन्न किया है, (सः) वह [परमेश्वर] (सुभृतम्) बड़े पोषण करने वाले (त्वा) तुझको (राष्ट्राय) राज्य करने के लिये (बिभर्त्तु) धारण करे ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस पराक्रमी धर्मात्मा राजा को प्रजागण स्वीकार करें, वह राज्य कार्य्य ग्रहण करके सर्वव्यापक, सर्वजनक, सर्वपोषक परमात्मा के आश्रय से अपना बल बढ़ावे और प्रजा का पालन करे ॥ १ ॥

उद्वाज॒ आ ग॒न् यो अ॒प्स्व१॒॑न्तर्विश॒ आ रो॑ह॒ त्वद्यो॑नयो॒ याः।
सोमं॒ दधा॑नो॒प ओष॑धी॒र्गाश्चतु॑ष्पदो द्वि॒पद॒ आ वे॑शये॒ह ॥२॥

उत् । वाजः॑ । आ । ग॒न् । यः । अ॒प्-सु । अ॒न्तः । विशः॑ । आ । रो॒ह॒ । त्वत्-यो॑नयः । याः ॥ सोम॑म् । दधा॑नः । अ॒पः । ओष॑धीः । गाः । चतुः॑-पदः । द्वि॒-पदः॑ । आ । वे॒श॒य॒ । इ॒ह २

भाषार्थ—(वाजः) वह बलवान् [परमेश्वर] (उत्) उत्तमता से (आ गन्) प्राप्त हुआ है, (यः) जो (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर है, [हे

१—(उदेहि) उद्गच्छ (वाजिन्) अ० ४ । ४ । २ । हे बलवन् सेनापते (यः) परमेश्वरः (अप्सु) प्रजासु । आपः=आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये यजु० ६ । २७ (अन्तः) मध्ये (इदम्) दृश्यमानम् (राष्ट्रम्) राज्यम् (सूनृतावत्) अ० ७ । ६० । ६ । सुनीतियुक्तम् (यः) (रोहितः) रुहेरश्च लो वा । उ० । ३ । ९४ । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—इतन् । उद्भावकः । सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (विश्वम्) जगत् (इदम्) दृश्यमानम् (जजान) उत्पादयामास (सः) परमेश्वरः (त्वा) राजानम् (राष्ट्राय) राज्यकरणाय (सुभृतम्) बिभर्तेः क्विप् । यथारीति भर्त्तारं पोषकं (बिभर्तु) धारयतु ॥

२—(उत्) उत्तमतया (वाजः) वाज—अर्श आद्यच् । बलवान् परमेश्वरः (आगन्) अ० ३ । ४ । १ । आगमत् (यः) (अप्सु) म० १ । प्रजासु—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन् !] (विशः) उन प्रजाओं पर (आ रोह) ऊँचा हो, (याः) जो [प्रजायें] (त्वद्योनयः) तुझ से मेल रखने वाली हैं। (सोमम्) ऐश्वर्य, (अपः) कर्म्म, (ओषधीः) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] और (गाः) गौ आदि को (दधानः) धारण करता हुआ तू (चतुष्पदः) चौपायों और (द्विपदः) दोपायों को (इह) यहां [प्रजाओं में] (आ वेशय) प्रवेश करा ॥ २ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि सर्वनियामक परमेश्वर को ध्यान में रख कर अपनी प्रजा का पालन करे और योग्यता और कार्य्यदक्षता से अपनी और प्रजा की आवश्यक सम्पत्ति, जैसे अन्न, गौ, घोड़ा, हाथी मनुष्य आदि को बढ़ावे ॥ २ ॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिसप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ३

यूयम् । उग्राः । मरुतः । पृश्नि-मातरः । इन्द्रेण । युजा । प्र । मृणीत । शत्रून् ॥ आ । वः । रोहितः । शृणवत् । सु-दानवः । त्रि-सप्तासः । मरुतः । स्वादु-संमुदः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(पृश्निमातरः) हे पूंछने योग्य वेदवाणी को माता समान मान करने वाले, (उग्राः) प्रचंड (मरुतः) शूर लोगो ! (यूयम्) तुम (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति (युजा) मित्र के साथ (शत्रून्) शत्रुओं को

(अन्तः) मध्ये (विशः) प्रजाः (आरोह) अधितिष्ठ (त्वद्योनयः) वहिश्रिश्रुयु० । उ० ४ । ५१ । यु मिश्रणामिश्रणयोः—नि । योनिर्गृहनाम-निघ० ३ । ४ । त्वया सह मिश्रिताः (याः) प्रजाः (सोमम्) ऐश्वर्यम् (दधानः) धारयन् (अपः) आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । उ० ४ । २०८ । आप्लृ व्याप्तौ-असुन् ह्रस्वश्च । कर्म—निघ० २ । १ (ओषधीः) अन्नसोमलतादिपदार्थान् (गाः) गवादिपशून् (चतुष्पदः) पादचतुष्टयोपेतान् (द्विपदः) पादद्वयोपेतान् (आवेशयः) आनीय प्रवेशय (इह) अत्र । प्रजासु ॥

३—(यूयम्) (उग्राः) प्रचण्डाः (मरुतः) अ० । १ । २० । १ । हे शूरवीराः (पृश्निमातरः) अ० ५ । २१ । ११ । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्-नि । प्रष्टव्या वेदवाणी मातृवत् सत्करणीया येषां ते (इन्द्रेण) परमैश्वर्यवता सेनापतिना (युजा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्र मृणीत) मार डालो। (सुदानवः) हे बड़े दानियो ! (त्रिषप्तासः) हे तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] के साथ सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि] को रखने वाले (स्वादुसंमुदः) हे भोजन योग्य अन्न में मिल कर आनन्द पाने वाले ! (मरुतः) हे शूर पुरुषो ! (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (वः) तुम्हारी [प्रार्थना] (आ) सब प्रकार (शृणवत्) सुने ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो सेना गण शिल्प विद्या द्वारा आकाश आदि में जाते हैं, और जितेन्द्रिय होकर प्रीति के साथ मिल कर रहते हैं, वे परमेश्वर से बल पाकर शूर सेनापति की सहायता से शत्रुओं को मारते हैं ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का पहिला भाग आचुका है—अ० । ५ । २१ । १ ॥

रुहो रुरोहु रोहितो आ रुरोहु गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ४

रुहः । रुरोहु । रोहितः । आ । रुरोहु । गर्भः । जनीनाम् । जनुषाम् । उप-स्थम् ॥ ताभिः । सम्-रब्धम् । अनु । अवि-न्दन् । षट् । उर्वीः । गातुम् । प्र-पश्यन् । इह । राष्ट्रम् । आ । अहाः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (रुहः) सृष्टि की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया, और (जनीनाम्) उत्पन्न करने

मित्रेण (प्र) प्रकर्षेण (मृणीत) मृ हिंसायाम् । मारयत (शत्रून्) अरीन् (आ) समन्तात् (वः) युष्मान् (रोहितः) म० १ । सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (शृणवत्) शृणुयात् (सुदानवः) हे महादातारः (त्रिषप्तासः) बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् । पा० ५ । ४ । ७७ । इति डच्, असुगागमः । त्रिभिः कर्म्मोपासनाज्ञानैः सह सप्त त्वक्चक्षुःश्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धयो येषां ते तथाभूताः (मरुतः) (स्वादुसम्मुदः) कृवापाजिमिस्वदि० । उ० १ । ष्वद् आस्वादने—उण+सम्+मुद हर्षे-क्विप् । भोज्यान्ने परस्परहर्षितारः ॥

४—(रुहः) रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—क्विप् । सृष्टिसामग्रीः (रुरोह) उत्पादितवान् (रोहितः) म० १ सर्वस्रष्टा (आ रुरोह) आरूढ-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्तियों का (गर्भः) गर्भ [आधार वह परमेश्वर] (जनुषाम्) उत्पन्न होने वाले पदार्थों की (उपस्थम्) गोद में (आ रुरोह) चढ़ गया। (ताभिः) उन [उत्पन्न करने वाली शक्तियों] से (संरब्धम्) मिले हुये [उस परमेश्वर] को (षट्) छह [ऊपर, नीचे, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर] (उर्वीः) चौड़ी [दिशाओं] ने (अनु) निरन्तर (अविन्दन्) पाया है, (गातुम्) मार्ग (प्रपश्यन्) आगे देखते हुये उस [परमेश्वर ने] (इह) यहां पर (राष्ट्रम्) अपना राज्य (आ) सब ओर से (अहाः) अङ्गीकार किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर सब सृष्टि के पदार्थों का उत्पादक और नियन्ता होकर और दूर और समीप सब स्थान में वर्तमान रहकर राज्य करता है ॥ ४ ॥

इस मन्त्र में (रुह) धातु से बने शब्दों में अनुप्रास अलङ्कार है ॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् । तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः॥ ५ ॥

आ । ते । राष्ट्रम् । इह । रोहितः । अहार्षीत् । वि । अस्थत् । मृधः । अभयम् । ते । अभूत् ॥ तस्मै । ते । द्यावापृथिवी इति । रेवतीभिः । कामम् । दुहाथाम् । इह । शक्वरीभिः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (रोहितः) सबका उत्पन्न करने वाला [पर-

वान् (गर्भः) आधारः (जनीनाम्) उत्पत्तिशक्तीनाम् (जनुषाम्) जनेरुसिः । उ० २ । ११५ । जन जनने—उसि । जन्मवन्तां पदार्थानाम् (उपस्थम्) क्रोडम् (ताभिः) शक्तिभिः (संरब्धम्) संबद्धम् (अनु) निरन्तरम् (अविन्दन्) प्राप्तवत्यः (षट्) ऊर्ध्वाधोभ्यां सह पूर्वादयः (उर्वीः) विस्तृता दिशाः (गातुम्) मार्गम् (प्रपश्यन्) अवलोकयन् (इह) अत्र । संसारे (राष्ट्रम्) राज्यम् (आ अहाः) अ० ६ । १०३ । २ । हरतेर्लुङ् आहृतवान् । समन्तात् स्वीकृतवान् ॥

५—(ते) तब (राष्ट्रम्) राज्यम् (इह) संसारे (रोहितः) मं० १ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेश्वर] (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (इह) यहां [संसार में] (आ अहार्षीत) लाया है और उसने (मृधः) हिंसक [शत्रुओं] को (वि आस्थत) गिरा दिया है, (ते) तेरे लिये (अभयम्) अभय (अभूत्) हो गया है। (तस्मै ते) उस तेरे लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी दोनों (रेवतीभिः) धन वाली (शक्वरीभिः) शक्तियों के साथ (कामम्) कामना को (इह) यहां [इस राज्य में] (दुहाथाम्=०—ताम्) पूरी करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा में तत्पर होकर राज्य चलाता है, उसको आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधदैविक क्लेश नहीं होते ॥ ५ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान। तत्र शिश्रिये ऽज एकपादोऽदूंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥

रोहितः। द्यावापृथिवी इति। जजान। तत्र। तन्तुम्। परमे-स्थी। ततान ॥ तत्र। शिश्रिये। अजः। एक-पादः। अदूंहत्। द्यावापृथिवी इति। बलेन ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी को (जजान) उत्पन्न किया, (तत्र) उस में (परमेष्ठी) सब से ऊंचे पद वाले [उस परमेश्वर] ने (तन्तुम्) तन्तु [सूत्रात्मा वायु] को (ततान) फैलाया। (तत्र) उसमें (अजः) वह अजन्मा (एकपादः)

सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (आ अहार्षीत्) आनीतवान् (वि) पृथग्भावे (आस्थत) असु क्षेपणे-लुङ्। क्षिप्तवान् (मृधः) मृधु उन्दने हिंसायां च—क्विप्। हिंसकान्। शत्रून् (अभयम्) भयराहित्यम् (ते) तुभ्यम् (अभूत्) (तस्मै) तथाभूताय (ते) तुभ्यम् (द्यावापृथिवी) सूर्य्यभूमी (रेवतीभिः) अ० ३।४।७। धनवतीभिः (कामम्) कामनाम् (दुहाथाम्) तकारस्य थः। दुहाताम्। पूरयताम् (इह) राज्ये (शक्वरीभिः) अ० ३। १३। ७। शक्लृ शक्तौ—वनिप्। शक्तिभिः ॥

६—(रोहितः) म० १। सर्वोत्पादकः (द्यावापृथिवी) सूर्य्यभूमी (जजान) जनयामास (तत्र) तस्मिन् (तन्तुम) सूत्रम्। सूत्रात्मानं वायुम्। आकर्षणम् (परमेष्ठी) सर्वोत्कृष्टे पदे स्थितः परमेश्वरः (ततान) विस्तारया-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक डग वाला [सब जगत् में एक रस व्यापक] (शिश्रिये) ठैरा; उसने (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी को (बलेन) अपने बल से (अदंहत्) दृढ़ किया ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा ने सब सूर्य्य पृथ्वी आदि लोकों को उत्पन्न करके, और उनके भीतर सूत्रात्मा वायु वा आकर्षण रख कर सब को नियम में बांधा है, वैसे ही बलवान् पुरुष अपने इन्द्रियों और सब लोगों को विविध प्रकार अपने वश में रक्खे ॥ ६ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः। तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ७

रोहितः। द्यावापृथिवी इति। अदृंहत्। तेन। स्वः। स्तभितम्। तेन। नाकः॥ तेन। अन्तरिक्षम्। वि-मिता। रजांसि। तेन। देवाः। अमृतम्। अनु। अविन्दन्॥ ७ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और भूमि को (अदंहत्) दृढ़ किया, (तेन) उसी करके (स्वः) सामान्य सुख [अभ्युदय] (स्तभितम्) थांभा गया है, (तेन) उसी करके (नाकः) विशेष सुख [निः श्रेयस मोक्ष सुख, थांभा गया है] । (तेन) उसी करके (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और (रजांसि) सब लोक (विमिता) नाप डाले गये हैं, (तेन) उस से ही (देवाः) विद्वानों ने (अमृतम्) अमरपन [उत्साह वर्धक मोक्ष सुख] (अनु) निरन्तर (अविन्दन्) पाया है ॥ ७ ॥

मास (तत्र) (शिश्रिये) तस्थौ (अजः) अजन्मा (एकपादः) सर्वजगति निरन्तरव्यापकः (अदंहत्) दृढ़ीकृतवान् (द्यावापृथिवी) (बलेन) सामर्थ्येन ॥

७—(रोहितः) म० १ (द्यावापृथिवी) (अदंहत्) दृढीकृतवान् (तेन) रोहितेन (स्वः) सामान्यसुखम्। अभ्युदयः (स्तभितम्) दृढ़ीकृतम् (तेन) (नाकः) विशेषसुखम्। निः श्रेयसम्। मोक्षसुखम् (तेन) (अन्तरिक्षम्) (विमिता) विविधं परिमितानि (रजांसि) लोकाः (तेन) रोहितेन (देवाः) विद्वांसः (अमृतम्) अमरणम्। पुरुषार्थम् (अनु) निरन्तरम् (अविन्दन्) अलभन्त ॥

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने सब सृष्टि रची है और जो सब का नियन्ता है, उसी जगदीश्वर के ज्ञान से मनुष्य उन्नति करके आनन्द पाते हैं॥७॥

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ८

वि । रोहितः । अमृशत् । विश्व-रूपम् । सम्-आकुर्वाणः । प्र-रुहः । रुहः । च ॥ दिवम् । रूढ्वा । महता । महिम्ना । सम् । ते । राष्ट्रम् । अनक्तु । पयसा । घृतेन ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(रुहः) सृष्टि की सामग्रियों (च) और (प्ररुहः) सृष्टि की वस्तुओं को (समाकुर्वाणः) एकत्र करते हुये (रोहितः) सब उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (विश्वरूपम्) जगत् के रूप को (वि अमृशत्) विचारा, वह (परमेश्वर] (महता) अपनी विशाल (महिम्ना) महिमा से (दिवम्) विजय की इच्छा में (रूढ्वा) ऊंचा होकर (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (पयसा) अन्न से और (घृतेन) जल से (सम् अनक्तु) संयुक्त करे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब के कार्य्य और कारण को जानता है, उसी की महिमा के विचार से मनुष्य उन्नति करके अन्न जल आदि पदार्थ प्राप्त करें ॥ ८ ॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् । तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९ ॥

८—(वि) विविधम् (रोहितः) म० १ । सर्वोत्पादकः (अमृशत्) विचारितवान् (विश्वरूपम्) जगतः स्वरूपम् (समाकुर्वाणः) राशीकुर्वन् (प्ररुहः) रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—क्विप् सृष्टिवस्तूनि (रुहः) सृष्टिसामग्रीः (च) (दिवम्) विजिगीषाम् (रूढ्वा) आरुह्य (महता) विशालेन (महिम्ना) महत्त्वेन (ते) तव (राष्ट्रम्) राज्यम् (समनक्तु) संयोजयतु (पयसा) अन्नेन—निघ० २ । ७ (घृतेन) जलेन—निघ० १ । १२ ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याः । ते । रुहः । प्र-रुहः । याः । ते । आ-रुहः । याभिः । आ-पृणासि । दिवम् । अन्तरिक्षम् ॥ तासाम् । ब्रह्मणा । पयसा । ववृधानः । विशि । राष्ट्रे । जागृहि । रोहितस्य ९

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (याः) जो (रुहः) सृष्टि की सामग्री और (प्ररुहः) सृष्टि-की वस्तुयें हैं और (याः) जो (ते) तेरे लिये (आरुहः) सृष्टि की स्थितियां हैं, (याभिः) जिनसे (दिवम्) आकाश और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपृणासि=०—ति) सब ओर से वह [ईश्वर] भरता है। (तासाम्) उनके (ब्रह्मणा) अन्न और (पयसा) जल से (ववृधानः) बढ़ता हुआ तू (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] के (राष्ट्रे) राज्य में (विशि) प्रजा पर (जागृहि) जागता रह ॥ ९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने अपने राज्य में मनुष्य को सब सृष्टि से उत्तम बनाया है। मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के कारण, कार्य्य और स्थिति को विचारकर उसे उपयोगी बनावे ॥ ९ ॥

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता दुहागुः । तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १० ॥ (१)

याः । ते । विशः । तपसः । सम्-बभूवुः । वत्सम् । गायत्रीम् । अनु । ताः । दुह । आ । अगुः ॥ ताः । त्वा । आ । विशन्तु । मनसा । शिवेन । सम्-माता । वत्सः । अभि । एतु । रोहितः ॥ १० ॥ (१)

९—(याः) (ते) तुभ्यम् (रुहः) म० ८। सृष्टिसामग्रीः (प्ररुहः) म० ८। सृष्टिवस्तूनि (याः) (ते) तुभ्यम् (आरुहः) सृष्टिस्थितीः (याभिः) (आपृणासि) तस्य सः। आपृणाति। समन्तात् पूरयति रोहितः (दिवम्) आकाशम् (अन्तरिक्षम्) (तासाम्) (ब्रह्मणा) अन्नेन—निघ० २। ७ (पयसा) उदकेन—निघ० १। १२ (ववृधानः) छान्दसो दीर्घः। वृद्धिं कुर्वाणः (विशि) प्रजायाम् (राष्ट्रे) राज्ये (जागृहि) जागृतो भव (रोहितस्य) म० १। सर्वोत्पादकस्य ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊ॒र्ध्वो रो॑हि॒तो अधि॒ नाके॑ अस्थाद् विश्वा॑ रू॒पाणि॑ जनयन् युवा॑ कविः। तिग्मे॑नाग्निर्ज्योति॑षा॒ वि भा॑ति तृ॒तीये॑ चक्रे॒ रज॑सि प्रि॒याणि॑ ॥ ११ ॥

ऊ॒र्ध्वः। रो॒हि॒तः। अधि॑। नाके॑। अ॒स्था॒त्। विश्वा॑। रू॒पाणि॑। ज॒न॒य॒न्। युवा॑। क॒विः॥ तिग्मे॑न। अ॒ग्निः। ज्योति॑षा। वि। भा॒ति॒। तृ॒तीये॑। च॒क्रे॒। रज॑सि। प्रि॒याणि॑ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (याः) जो (विशः) प्रजायें (ते) तेरे लिये (तपसः) ऐश्वर्यरूप [परमेश्वर] से (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं, (ताः) वे सब (वत्सम्) बड़े उपदेशक [परमेश्वर] और (गायत्रीम् अनु) पूजा योग्य वेदवाणी के पीछे पीछे (इह) यहां (आ अगुः) आई हैं। (ताः) वे सब (शिवेन) तेरे आनन्दकारी (मनसा) मनन से (त्वा) तुझ में (आ विशन्तु) प्रवेश करें, (संमाता) समान माता [जननी], (वत्सः) बड़ा उपदेशक (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अभि) सब ओर से (एतु) प्राप्त हो ॥ १० ॥

भावार्थ—सब के माता पिता परमात्मा ने जो जो पदार्थ मनुष्य के लिये उत्पन्न किये हैं, उनसे धर्मात्मा विज्ञानी लोग आनन्द प्राप्त करके परमेश्वर की महिमा जानते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—(युवा) बली, (कविः) ज्ञानी (रोहितः) सब का उत्पन्न

१०—(याः) (ते) तुभ्यम् (विशः) प्रजाः (तपसः) ऐश्वर्य्यरूपात् परमेश्वरात् (संबभूवुः) उत्पन्ना बभूवुः (वत्सम्) वृतॄवदिवचिवसि० । उ० ३ । ६२ । वद कथने—सप्रत्ययः । महोपदेशकम् (गायत्रीम्) अ० १० । ८ । ४१ । गै गाने—अत्रन्, णित्, युक् ङीप् च । गायत्री गायतेःस्तुतिकर्मणः—निरु० ७ । १२ । स्तुत्यां वेदवाचम् (अनु) अनुसृत्य (ताः) प्रजाः (इह) (आगुः) आगमन् (ताः) (त्वा) (आविशन्तु) प्रविशन्तु (मनसा) मननेन (शिवेन) मङ्गलकारकेण (संमाता) सामान्यजननी (वत्सः) महोपदेशकः (अभि) सर्वतः (एतु) प्राप्नोतु (रोहितः) सर्वोत्पादकः ॥

११—(ऊर्ध्वः) उन्नतः (रोहितः) सर्वोत्पादकः (अधि) अधिकृत्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाला [परमेश्वर] (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [सृष्टि के पदार्थों] को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (नाके) मोक्ष सुख में (अधि) अधिकार पूर्वक (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (अस्थात्) ठैरा है । (अग्निः) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] (तिग्मेन) तीक्ष्ण (ज्योतिषा) ज्योति के साथ (वि) विविध प्रकार (भाति) चमकता है, उसने (तृतीये) तीसरे [रजोगुण और तमोगुण से भिन्न, सत्त्व] (रजसि) लोक में [वर्त्तमान हो कर (प्रियाणि) प्रिय वस्तुओं को (चक्रे) बनाया है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिस सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ परमेश्वर ने सब संसार को रचा है, विद्वान् लोग उसकी महिमा को प्रत्येक पदार्थ में देखकर अपनी उन्नति करते हैं ११

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः । मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥

सहस्र-शृङ्गः । वृषभः । जात-वेदाः । घृत-आहुतः । सोम-पृष्ठः । सु-वीरः ॥ मा । मा । हासीत् । नाथितः । न । इत् । त्वा । जहानि । गो-पोषम् । च । मे । वीर-पोषम् । च । धेहि ।१२

भाषार्थ—(सहस्रशृङ्गः) बड़े तेज वाला, (वृषभः) महाशक्तिमान्, (जातवेदाः) वेदों का उत्पन्न करने वाला, (घृताहुतः) प्रकाश का देने वाला, (सोमपृष्ठः) ऐश्वर्य का सींचने वाला, (सुवीरः) बड़ा वीर (नाथितः) प्रार्थना

(नाके) मोक्षानन्दे (अस्थात्) स्थितवान् (विश्वा) सर्वाणि (रूपाणि) सृष्टिवस्तूनि (जनयन्) उत्पादयन् (युवा) बली (कविः) मेधावी (तिग्मेन) तीव्रेण (अग्निः) ज्योतिःस्वरूपः परमेश्वरः (ज्योतिषा) तेजसा (वि) विविधम् (भाति) दीप्यते (तृतीये) रजस्तमोभ्यां भिन्ने सत्त्वगुणे (चक्रे) रचयामास (रजसि) लोके (प्रियाणि) हितकराणि वस्तूनि ॥

१२—(सहस्रशृङ्गः) अ० ४ । ५ । १ । बहुतेजाः (वृषभः) महाशक्तिमान् (जातवेदाः) जातानि उत्पन्नानि वेदांसि वेदा यस्मात् सः (घृताहुतः] प्रकाशप्रदः (सोमपृष्ठः) ऐश्वर्यसेचकः (सुवीरः) महाशूरः (मा) माम् (मा हासीत्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया [परमेश्वर] (मा) मुझको (मा हासीत्) न छोड़ै। (त्वा) तुझको (न इत्) कभी नहीं (जहानि) मैं छोड़ूं, (मे) मुझको (गोपोषम्) विद्याओं की वृद्धि (च च) और (वीरपोषम्) वीरों की पुष्टि (धेहि) दान कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य उस महातेजस्वी, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की उपासना से अपने ज्ञानों और वीरों की वृद्धि करें ॥ १२ ॥

रोहि॑तो य॒ज्ञस्य॑ जनि॒ता मुख॑ं च॒ रोहि॑ताय॒ वाचा॒ श्रोत्रे॑ण॒ मन॑सा जुहोमि। रोहि॑तं दे॒वा य॑न्ति सुमन॒स्यमा॑ना॒ स मा॒ रोहैः॒ सामि॒त्यै रो॑हयतु ॥ १३ ॥

रोहि॑तः। य॒ज्ञस्य॑। ज॒नि॒ता। मुख॑म्। च॒। रोहि॑ताय। वाचा॑। श्रोत्रे॑ण। मन॑सा। जु॒हो॒मि॒॥ रोहि॑तम्। दे॒वाः। य॒न्ति॒। सु-म॒न॒स्यमा॑नाः। सः। मा॒। रोहैः॑। साम्-इ॒त्यै। रो॒ह॒य॒तु॒॥ १३ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, संगति करण और दान व्यवहार] का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (च) और (मुखम्) मुख [मुखिया] है, (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) श्रवण से और (मनसा) मन से (रोहिताय) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर की सेवा] के लिये (जुहोमि) मैं भोजन करता हूं। (सुमनस्यमानाः) शुभचिन्तक (देवाः) विजय चाहने वाले लोग (रोहितम्)

न त्यजतु (नाथितः) प्रार्थितः (नेत्) नैव (त्वा) (जहानि) त्यजानि (गोपोषम्) गवानां विद्यानां वृद्धिम् (च) (मे) मह्यम् (वीरपोषम्) शूराणां पोषणम् (च) (धेहि) देहि ॥

१३—(रोहितः) (यज्ञस्य) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारस्य (जनिता) उत्पादकः (मुखम्) प्रधानः (च) (रोहिताय) परमेश्वरोपासनाय (वाचा) वाण्या (श्रोत्रेण) श्रवणेन (मनसा) चित्तेन (जुहोमि) हु अदने। अन्नं करोमि (रोहितम्) (देवाः) विजिगीषवः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (सुमनस्यमानाः) अ० १। ३५। १। शुभचिन्तकाः (सः) परमेश्वरः (मा) माम् (रोहैः)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (यन्ति) प्राप्त होते हैं, (सः) वह [परमेश्वर] (मा) मुझको (रोहैः) ऊंचाइयों के साथ (सामित्यै) समिति [संगति] के लिये (रोहयतु) ऊंचा करे ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब श्रेष्ठ व्यवहारों के उपदेशक परमेश्वर की पूरी भक्ति करते हैं, वे शूर वीरों के समान अनेक प्रकार उन्नति करके श्रेष्ठ सभापति होते हैं ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मे मान्यागुः । वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

रोहितः । यज्ञम् । वि । अदधात् । विश्व-कर्मणे । तस्मात् । तेजांसि । उप । मा । इमानि । आ । अगुः ॥ वोचेयम् । ते । नाभिम् । भुवनस्य । अधि । मज्मनि ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (यज्ञम्) यज्ञ [संगति योग्य व्यवहार] को [विश्वकर्मणे] सब कामों में चतुर [मनुष्य] के लिये (वि अदधात्) उत्पन्न किया है, (तस्मात्) उस [परमेश्वर] से (इमानि) यह सब (तेजांसि) तेज (मा) मुझको (उप) समीप से (आ अगुः) प्राप्त हुये हैं । [हे परमेश्वर ! (ते) तेरे (नाभिम्) सम्बन्ध को (भुवनस्य) संसार के (मज्मनि) बल के भीतर (अधि) अधिकार पूर्वक (वोचेयम्) मैं बतलाऊं ॥ १४ ॥

उन्नतिभिः (सामित्यै) छान्दसो दीर्घः । समित्यै । संगतये (रोहयतु) उन्नयतु ॥

१४—(रोहितः) परमेश्वरः (यज्ञम्) संगितकरणव्यवहारम् (व्यदधात्) उत्पादितवान् (विश्वकर्मणे) सर्वकर्म्मप्रवीणाय मनुष्याय (तस्मात) परमेश्वरात् (तेजांसि) (उप) समीपे (मा) माम् (इमानि) दृश्यमानानि (आ अगुः) प्राप्तानि अभवन् (वोचेयम्) वदेयम् (ते) तव (नाभिम्) सम्बन्धम् (भुवनस्य) संसारस्य (अधि) अधिकृत्य (मज्मनि) टु मस्जो शुद्धौ—मनिन् । मज्मना बलनाम—निघ० २ । ९ । बले ॥

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—परमेश्वर ने मनुष्य के हित के लिये सब श्रेष्ठ कर्म उत्पन्न किये हैं, जो विद्वान् उसकी महिमा के प्रकाश को प्रत्येक पदार्थ में देखते हैं, वे बलवान् होते हैं ॥ १४ ॥

आ त्वा रुरोह बृहती उत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोहु रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥

आ । त्वा । रुरोहु । बृहती । उत । पङ्क्तिः । आ । ककुप् । वर्चसा । जातऽवेदः ॥ आ । त्वा । रुरोहु । उष्णिहा-अक्षरः । वषट्-कारः । आ । त्वा । रुरोहु । रोहितः । रेतसा । सह ॥१५

भाषार्थ—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले पुरुष ! (त्वा) तुझको (बृहती) विशाल विद्या ने (उत) और (पङ्क्तिः) कीर्त्ति ने (आ) सब ओर से और (ककुप्) सुख फैलाने वाली शोभा ने (वर्चसा) प्रताप के साथ (आ) सब ओर से (रुरोह) ऊंचा किया है। (त्वा) तुझको (उष्णिहाक्षरः) बड़ी प्रीति से फैलने वाले, (वषट्कारः) दान व्यवहार ने (आ) सब ओर से (रुरोह) ऊंचा किया है। और (त्वा) तुझको (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (रेतसा सह) पराक्रम के साथ (आ) सब प्रकार से (रुरोह) ऊंचा किया है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों को धारण करते हैं, परमेश्वर उनको संसार में पराक्रमी करता है ॥ १५ ॥

१५—(आ) समन्तात् (त्वा) (रुरोह) अन्तर्गतण्यर्थः । उन्निनाय (बृहती) विशाला विद्या (उत) अपि (पङ्क्तिः) पचि विस्तारे—क्तिन् । कीर्त्तिः । पृथिवी (ककुप्) कं सुखं स्कुभ्नाति विस्तारयतीति सा । क+स्कुभ विस्तारे—क्विप् । शोभा (जातवेदः) हे प्रसिद्धज्ञान (आ) (त्वा) (रुरोह) (उष्णिहाक्षरः) उत्+ष्णिह प्रीतौ—क्विन्, टाप् । अशेः सरन् । उ० ३ । ७ ० । अशू व्याप्तौ—सरन् । उत्कृष्टप्रीत्या व्यापकः (वषट्कारः) अ० १ । १० । १ । वह प्रापणे—डषटि । दानव्यवहारः (त्वा) (रुरोह) (रोहितः)(रेतसा) सामर्थ्येन (सह) साकम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्ते ऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६ ॥

अयम् । वस्ते । गर्भम् । पृथिव्याः । दिवम् । वस्ते । अयम् । अन्तरिक्षम् ॥ अयम् । ब्रध्नस्य । विष्टपि । स्वः । लोकान् । वि । आनशे ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(अयम्) यह [परमेश्वर] (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ [उदर] को (वस्ते) ढकता है, (अयम्) यह (दिवम्) आकाश और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (वस्ते) ढकता है। (अयम्) यह (ब्रध्नस्य) नियम के (विष्टपि) आश्रय पर (स्वः) सुख से (लोकान्) लोकों में (वि आनशे) व्यापा है ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर पृथिवी आदि की सीमा के परिमाणसे अधिक बड़ा है, मनुष्य उसकी उपासना से अपनी वृद्धि करके आनन्द पावें ॥ १६ ॥

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
दुहैव प्राणः सुख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

वाचः । पते । पृथिवी । नः । स्योना । स्योना । योनिः । तल्पा । नः । सु-शेवा ॥ दुह । एव । प्राणः । सुख्ये । नः । अस्तु । तम् । त्वा । परमे-स्थिन् । परि । अग्निः । आयुषा । वर्चसा । दधातु ॥ १७ ॥

१६—(अयम्) व्यापकः परमेश्वरः (वस्ते) आच्छादयति (गर्भम्) उदरम् (पृथिव्याः) भूमेः (दिवम्) आकाशम् (वस्ते) (अयम्) (अन्तरिक्षम्) (अयम्) (ब्रध्नस्य) अ० १०।१०।३१। बन्ध बन्धने-नक्, ब्रधादेशः। नियमस्य (विष्टपि) वि + ष्टभिः प्रतिबन्धे-क्विप्, भस्य पः । आश्रये- (स्वः) सुखेन (लोकान्) (वि आनशे) अशू व्याप्तौ-लिट्। व्याप्तवान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (नः) हमारे लिये (पृथिवी) पृथिवी (स्योना) सुखदायक, (योनिः) घर (स्योना) सुखदायक और (तल्पा) खाट (नः) हमारे लिये (सुशेवा) बड़ी सुखदायक [होवे]। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्यजन्ममें] (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (अग्निः) ज्ञानवान् [यह पुरुष] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥ १७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का ध्यान करते हुए हम लोग विद्या और पुरुषार्थ द्वारा संसार के पदार्थों को उपयोगी बनावें ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये सम्बभूवुः। इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहितमायुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

०पते । ऋतवः । पञ्च । ये । नौ । वैश्व-कर्मणाः । परि । ये । सम्-बभूवुः॥०परि । रोहितः। आयुषा । वर्चसा । दधातु१८

भाषार्थ—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (ये ये) जो ही (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वों से संबन्ध वाले बसंत आदि छह] (ऋतवः) ऋतुयें (नौ) हमदोनों [स्त्री पुरुष] के

१७—(वाचस्पते) हे वेदवाण्याः स्वामिन् परमेश्वर (पृथिवी) (नः) अस्मभ्यम् (स्योना) सुखप्रदा (स्योना) (योनिः) गृहम्-निघ० ३।४ (तल्पा) खट्वा (नः) (सुशेवा) शेवम्=सुखम्—निघ० ३ । ६ । बहुसुखप्रदा (इह) अस्मिञ्जन्मनि (एव) (प्राणः) जीवनवायुः (सख्ये) मित्रभावे (नः) अस्माकम् (अस्तु) (तम्) तादृशम् (त्वा) (परमेष्ठिन्) हे उत्कृष्टपदस्थ परमेश्वर (परि) सर्वतः (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुषः (आयुषा) जीवनेन (वर्चसा) प्रतापेन (दधातु) धरतु ॥

१८—(ऋतवः) वसंतादयः षट् कालविशेषाः (पञ्च) विभक्तिलोपः। पञ्चभिः पृथिव्यादितत्त्वैः सम्बद्धाः (ये ये) वीप्सायांद्विर्वचनम् (नौ) आवाम्।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (वैश्वकर्मणाः) सब कर्मों के हितकारी (परि) सब ओर से (संबभूवुः) प्राप्त हुये हैं। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य जन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पद वाले [परमेश्वर!] (तम् त्वा) उस तुझको (रोहितः) उत्पन्न हुआ [यह मनुष्य] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वसंत आदि छह ऋतुओं को पृथिवी आदि पांच तत्त्वों के साथ उपयोगी बनाते हैं, वे परमात्मा के गुणों को जान कर अपने जीवन भर स्वस्थ और प्रतापी रह कर उन्नति करते हैं ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यूहमायुषा
वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥

वाचः । पते । सौमनसम् । मनः । च । गो-स्थे । नः । गाः।
जनय । योनिषु । प्र-जाः ॥ इह । एव । प्राणः । सख्ये । नः।
अस्तु । तम् । त्वा । परमे-स्थिन् । परि । अहम् । आयुषा।
वर्चसा । दधामि ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (सौमनसम्) शुभचिन्तकता, (मनः) मनन, (गाः) वाणियों [नीतों] (च) और (प्रजाः) प्रजाओं [पुत्र, पौत्र, राज्य जनों] को (नः) हमारी (गोष्ठे) गोष्ठ [बातों के स्थान] में और (योनिषु) घरों में (जनय) उत्पन्न कर। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य जन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन, वायु] (नः)

स्त्रीपुरुषाभ्याम् (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्मन्—अण । सर्वकर्मभ्यो हिताः । (परि) सर्वतः (सम्बभूवुः) प्राप्ता बभूवुः (रोहितः) म० १। रुह प्रादुर्भावे—इतन्। उत्पन्नो मनुष्यः। अन्यत् पूर्ववत् म० १७ ॥

१९—(सौमनसम्) शुभचिन्तकत्वम् (मनः) मननम् (च) (गोष्ठे) वाचालये (नः) अस्माकम् (गाः) वाणीः। नीतीः। (जनय) उत्पादय (योनिषु)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (अहम्) मैं [मनुष्य] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधामि) धारण करता हूं ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की वेदोक्त आज्ञा पर चल कर अपनी सभा और घर को सुनीतिज्ञ बना कर परस्पर हित करते हैं, वेही संसार में यशस्वी होते हैं ॥ १९ ॥

परि॑ त्वा धात् सवि॒ता दे॒वो अ॒ग्निर्वर्च॑सा मि॒त्रावरु॑णा॒वभि॑ त्वा । सर्वा॒ अरा॑तीरवक्रा॒मन्नेहीदं रा॒ष्ट्रमक॑रः सू॒नृता॑वत् २०॥(२)

परि॑ । त्वा । धात् । स॒वि॒ता । दे॒वः । अ॒ग्निः । वर्च॑सा । मि॒त्रावरु॑णौ । अ॒भि । त्वा ॥ सर्वाः । अरा॑तीः । अव-क्रा॒मन् । आ । इ॒हि॒ । इ॒दम् । रा॒ष्ट्रम् । अक॑रुः । सू॒नृता॑-वत् ॥२०॥(२)

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (सविता) प्रेरक, (देवः) प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि [सूर्य्य आदि] ने (वर्चसा) तेज के साथ [वर्त्तमान] (त्वा) तुझको (परि) सब ओर से (धात्) धारण किया है और (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु ने (त्वा) तुझको (अभि) सब ओर से [धारण किया है] ।

[हे सेनापते राजन् !] (सर्वाः) सब (अरातीः) बैरी दलों को (अवक्रामन्) लतियाता हुआ तू (आ इहि) आ, (इदम् राष्ट्रम्) इस राज्य को तू ने (सूनृतावत्) सुन्दर नीति युक्त (अकरः) बनाया है ॥ २० ॥

गृहेषु (प्रजाः) पुत्रपौत्रराज्यजनान् (अहम्) मनुष्यः (दधामि) स्थापयामि । अन्यत् पूर्ववत् म० १७ ॥

२०—(परि) (त्वा) परमेश्वरम् (धात्) अदधात् । धारितवान् (सविता) प्रेरकः (देवः) प्रकाशमानः (अग्निः) सूर्य्यादिः (वर्चसा) तेजसा (मित्रावरुणौ) प्राणापानौ (अभि) प्रति (त्वा) (सर्वाः) (अरातीः) अदानशीलाः शत्रवः (अवक्रामन्) पादेन अधोगमयन् (इह) (इदम्) (राष्ट्रम्) राज्यम् (अकरः) कृतवानसि (सूनृतावत्) सुनीतियुक्तम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस प्रकार परमेश्वर सब अग्नि, सूर्य्य, वायु आदि पदार्थों को वश में करके सृष्टि का राज्य करता है, इसी प्रकार मनुष्य जितेन्द्रिय हो कर विघ्नों को हटा कर आनन्द करे ॥ २० ॥

यं त्वा पृषंती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित। शुभा यासि रिणन्नपः२१

यम् । त्वा । पृषंती । रथे । प्रष्टिः । वहति । रोहित ॥ शुभा । यासि । रिणन् । अपः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(रोहित) हे सबके उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर !] (यम् त्वा) जिस तुझको (प्रष्टिः) प्रश्न योग्य (पृषती) सींचने वाली [प्रकृति] (रथे) रमण योग्य [संसार] में (वहति) प्राप्त होती है । वह तू (अपः) प्रजाओं को (शुभा) शोभा के साथ (रिणन्) चलाता हुआ (यासि) चलता है ॥ २१ ॥

भावार्थ—खोजने से विवेकी लोग निश्चय करते हैं कि सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता परमेश्वर के सामर्थ्य से असीम प्रकृति में संयोग वियोग होने से संसार का प्रादुर्भाव होता है ॥ २१ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ८ । ७ । २८ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः । तया वाजान् विश्वरूपा जयेम तया विश्वाः पृतना अभिष्याम ॥ २२ ॥

अनु-व्रता । रोहिणी । रोहितस्य । सूरिः । सु-वर्णा । बृहती । सु-वर्चाः ॥ तया । वाजान् । विश्व-रूपान् । जयेम । तया ।

२१—(यम्) (त्वा) परमेश्वरम् (पृषती) वर्त्तमाने पृषद्बृहत्महः० । उ० २ । ८४ । पृषु सेचने-अति, ङीष् । सेचनशीला प्रकृतिः (रथे) अ० ४ । १२ । ६ । रमणीये संसारे (प्रष्टिः) वसेस्तिः । उ० ४ । १८० । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्-ति प्रष्टव्या (वहति) प्राप्नोति (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर (शुभा) शोभया (यासि) गच्छसि । प्राप्नोषि (रिणन्) रि हिंसायां गतौ च—शतृ । गमयन् (अपः) प्रजाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वाः । पृतनाः । अभि । स्याम ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] की (अनुव्रता) आज्ञा में चलने वाली (रोहिणी) उत्पत्ति शक्ति [प्रकृति] (सूरिः) प्रेरणा करने वाली, (सुवर्णा) अच्छे प्रकार स्वीकार योग्य, (बृहती) विशाल और (सुवर्चाः) बहुत अन्न वाली [वा बहुत चमकीली] है। (तया) उस [प्रकृति] के द्वारा (विश्वरूपान्) सब प्रकार के (वाजान्) बलों को (जयेम) हम जीतें, (तया) उस [प्रकृति] के द्वारा (विश्वाः) सब (पृतनाः) संग्रामों को (अभि ष्याम) हम परास्त करें॥ २२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्रकृति में अनेक श्रेष्ठ रत्न पदार्थों के उत्पन्न करने की शक्ति दी है। जो मनुष्य पुरुषार्थ करके उससे ज्ञान पूर्वक उपयोग लेते हैं, वे विघ्नों को हटा कर सब कार्य्य सिद्ध करते हैं॥ २२ ॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कशयोत उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् २३

इदम् । सदः । रोहिणी । रोहितस्य । असौ । पन्थाः । पृषती । येन । याति ॥ ताम् । गन्धर्वाः । कशयपाः । उत् । नयन्ति । ताम् । रक्षन्ति । कवयः । अप्र-मादम् ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(रोहिणी) उत्पत्ति शक्ति [प्रकृति] (इदम्) यहां (रोहि-

२२—(अनुव्रता) व्रतेन कर्मणा अनुसरणशीला (रोहिणी) अ० १ । २२ । ३ । रुहेश्च । उ० २ । ५५ । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—इनन्, ङीष् । उत्पत्तिशक्तिः प्रकृतिः (रोहितस्य) म० १ । सर्वोत्पादकस्य परमेश्वरस्य (सूरिः) सूङः क्रिः । उ० ४ । ६४ । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, यद्वा षू प्रेरणे-क्रि । प्रेरयित्री (सुवर्णा) कृवृजॄ० । उ० ३ । १० । वृङ् वरणे-न, टाप् । सुष्ठु स्वीकरणीया (बृहती) विशाला (सुवर्चाः) वर्चः—अन्नम्-निघ० २ । ७ । बह्वन्नवती । सुतेजाः (तया) प्रकृत्या (वाजान्) बलानि (विश्वरूपान्) विविधप्रकारान् (जयेम) (तया) (विश्वाः) सर्वाः (पृतनाः) संग्रामान् (अभिष्याम) अभिभवेम ॥

२३—(इदम्) अत्र (सदः) प्राप्तव्यं पदम् (रोहिणी) म० २२ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य) उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] का (सदः) प्राप्ति योग्य पद है, (असौ) वही (पन्थाः) मार्ग है, (येन) जिस से (पृषती) सींचने वाली [प्रकृति] (याति) चलती है। (ताम्) उस [प्रकृति] को (गन्धर्वाः) पृथिवी वा जल धारण करने वाले [मेघ] और (कश्यपाः) रस पीने वाले [किरण] (उत् नयन्ति) ऊंचा करते हैं, (ताम्) उस [प्रकृति] को (कवयः) बुद्धिमान् लोग (अप्रमादम्) बिना चूके (रक्षन्ति) पालते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—प्रकृति की चाल के ज्ञान से मनुष्य परमात्मा की महिमा जानकर अनेक लाभ उठाते हैं, जैसे मेघ जल बरसाकर और किरणें जल खींचकर और प्रकाश करके प्रकृति के उत्तम गुणों को दिखाते हैं। बुद्धिमान् लोग इसी प्रकृति को निरन्तर खोजते हुये नवीन नवीन अविष्कार करते हैं ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४

सूर्यस्य । अश्वाः । हरयः । केतु-मन्तः । सदा । वहन्ति । अमृताः । सु-खम् । रथम् ॥ घृत-पावा । रोहितः । भ्राजमानः । दिवम् । देवः । पृषतीम् । आ । विवेश ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(सूर्यस्य) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] के (अश्वाः) व्यापक (केतुमन्तः) विज्ञानमय (अमृताः) अमर [अविनाशी वा पुरुषार्थी]

उत्पत्तिशक्तिः (रोहितस्य) म० १। सर्वोत्पादकस्य परमेश्वरस्य (असौ) (पन्थाः) मार्गः (पृषती) म० २१। सेचनशीला प्रकृतिः (येन) पथा (याति) गच्छति (ताम्) प्रकृतिम् (गन्धर्वाः) कृगृशृदभ्यो वः। उ० १। १५५। गो+धृञ् धारणे-वप्रत्ययः, गोर्गमादेशः। गोः पृथिव्या जलस्य वा धारकाः। मेघाः (कश्यपाः) अ० १। १४। ४। कश शब्दे—करणे यत्। कशति अनेनेतिकश्यं रसः। कश्य+पा पाने-क। रसस्य पानशीलाः किरणाः (उन्नयन्ति) उन्नतां व्याख्यातां कुर्वन्ति (ताम्) (रक्षन्ति) (कवयः) मेधाविनः (अप्रमादम्) सावधानं यथा तथा ॥

२४—(सूर्यस्य) सर्वप्रेरकस्य परमेश्वरस्य (अश्वाः) अशू व्याप्तौ-कनू। व्यापकाः (हरयः) स्वीकरणीया गुणाः (केतुमन्त,) चायः किः। उ० १। ७४। चायृ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हरयः) स्वीकार योग्य गुण (रथम्) रमण योग्य संसार को (सुखम्) सुख से (सदा) सदा (वहन्ति) ले चलते हैं। (घृतपावा) सेचन सामर्थ्य [वृद्धि] की रक्षा करने वाले (भ्राजमानः) प्रकाशमान (देवः) ज्ञानवान् (रोहितः) सब को उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (दिवम्) व्यवहार कुशल (पृषतीम्) सींचने वाली [प्रकृति] में (आ विवेश) प्रवेश किया है॥२४॥

भावार्थ—जिस परमात्मा के नियमों से यह संसार चल रहा है, वही परमात्मा प्रकृति में प्रवेश करके उसे चेष्टा देता है॥ २४॥

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव। यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते॥ २५॥

यः। रोहितः। वृषभः। तिग्म-शृङ्गः। परि। अग्निम्। परि। सूर्यम्। बभूव॥ यः। वि-स्तभ्नाति। पृथिवीम्। दिवम्। च। तस्मात्। देवाः। अधि। सृष्टीः। सृजन्ते॥ २५॥

भाषार्थ—(यः) जो (वृषभः) महाशक्तिमान् (तिग्मशृङ्गः) तीव्र तेजवाले (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (अग्निम्) अग्नि को (परि) सब ओर से और (सूर्यम्) सूर्य को (परि) सब ओर से (बभूव) प्राप्त किया है। (यः) जो [परमेश्वर] (पृथिवीम्) पृथिवी (च)

पूजानिशामनयोः—तु। केतुः प्रज्ञानाम—निघ० ३। ९। विज्ञानमयाः (सदा) (वहन्ति) गमयन्ति (अमृताः) अमरणाः। पुरुषार्थयुक्ताः (सुखम्) सुखेन (रथम्) म० २१। रमणयोग्यं संसारम् (घृतपावा) आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च। पा०३। २। ७४। घृत+पा रक्षणे-वनिप्। सेचनबलस्य रक्षकः (रोहितः) सर्वोत्पादकः (भ्राजमानः) प्रकाशमानः (दिवम्) व्यवहारकुशलाम् (देवः) ज्ञानवान् (पृषतीम्) सेचनकुशलां प्रकृतिम् (आ विवेश) प्रविष्टवान्॥

२५—(यः) (रोहितः) (वृषभः) महाशक्तिमान् (तिग्मशृङ्गः) तीव्रतेजाः (परि) सर्वतः (अग्निम्) प्रत्यक्षम् (परि) (सूर्यम्) आदित्यमण्डलम् (यः) (विष्टभ्नाति) विशेषेणावलम्बते (पृथिवीम्) (दिवम्) आकाशम् (च

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (दिवम्) आकाश को (विष्टभ्नाति) विविध प्रकार थांमता है, (तस्मात्) उसी [परमेश्वर] से (देवाः) दिव्य नियम (सृष्टीः) सृष्टियों को (अधि) अधिकार पूर्वक (सृजन्ते) उत्पन्न करते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्रत्यक्ष अग्नि, सूर्य आदि और सब लोकों को अपने नियम से उत्पन्न किया है, उसी की उपासना सब मनुष्य करें ॥ २५ ॥

रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्णवात् । सर्वा रुरोहु रोहितो रुहः ॥ २६ ॥

रोहितः । दिवम् । आ । अरुहत् । महतः । परि । अर्णवात् ॥ सर्वाः । रुरोहु । रोहितः । रुहः ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (महतः) विशाल (अर्णवात्) समुद्र [अगम्य सामर्थ्य] में से (दिवम्) व्यवहार को (परि) सब ओर से (आ अरुहत्) प्रकट किया है। (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (सर्वाः) सब (रुहः) उत्पन्न करने की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया है ॥ २६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्रत्येक कार्य का आदि कारण होकर सब को उत्पन्न किया है ॥ २६ ॥

वि सिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा । इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्रस्तौतु वि मृधो नुदस्व२७

वि । सिमीष्व । पयस्वतीम् । घृताचीम् । देवानाम् । धेनुः ।

(तस्मात्) परमेश्वरात् (देवाः) दिव्यनियमाः (अधि) अधिकृत्य (सृष्टीः) रचनाः । सृज्यमानान् पदार्थान् (सृजन्ते) रचयन्ति ॥

२६—(रोहितः) सर्वोत्पादकः (दिवम्) प्रत्येकव्यवहारम् (आ अरुहत्) प्रादुष्कृतवान् (महतः) विशालात् (परि) सर्वतः (अर्णवात्) समुद्रात् । अगम्यसामर्थ्यात् (सर्वाः) (रुरोह) जनयामास (रोहितः) (रुहः) सृष्टि-सामग्रीः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनपऽस्पृक् । एषा ॥ इन्द्रः । सोमम् । पिबतु । क्षेमः । अस्तु । अग्निः । प्र । स्तौतु । वि । मृधः । नुदस्व ॥ २७ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (पयस्वतीम्) उत्तम अन्नवाली और (घृताचीम्) जल पहुंचाने वाली [प्रकृति] को (वि) विविध प्रकार (मिमीष्व) नाप, (एषा) यह (देवानाम्) विद्वानों की (अनपस्पृक्) न रोकने वाली (धेनुः) तृप्ति करनेवाली [गौ के समान] है । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् [यह मनुष्य] (सोमम्) अमृत (पिबतु) पान करे, (क्षेमः) सकुशल (अस्तु) होवे, और (अग्निः) ज्ञानवान् [यह पुरुष] (प्र स्तौतु) स्तुति करे, तू (मृधः) बैरियों को (वि नुदस्व) निकाल दे ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सृष्टि के बीच खोज लगाते चले चलते हैं, वे निर्विघ्न होकर ऐश्वर्य प्राप्त करके सकुशल रहके और परमात्मा के गुण गाते हुये शत्रुओं का नाश करते हैं ॥ २७ ॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८ ॥

सम्-इद्धः । अग्निः । सम्-इधानः । घृत-वृद्धः । घृत-आहुतः ॥ अभीषाट् । विश्वाषाट् । अग्निः । स-पत्नान् । हन्तु । ये । मम ॥ २८ ॥

२७—(वि) विविधम् (मिमीष्व) माङ् माने शब्दे च । मानेन प्राप्नुहि (पयस्वतीम्) अन्नवतीम् (घृताचीम्) घृतं जलमञ्चयति प्रापयति या तां प्रकृतिम् (देवानाम्) विदुषाम् (धेनुः) अ० ३ । १० । १ । धि धारणे तर्पणे च—नु । धेनुर्धयतेर्वा धिनोतेर्वा—निरु० ११ । ४२ । तर्पयित्री (अनपस्पृक्) स्पृश स्पर्शने—क्विप् । अप्रतिबाधिका (एषा) प्रकृतिः (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मनुष्यः (सोमम्) अमृतम् । मोक्षसुखम् (पिबतु) अनुभवतु (क्षेमः) सकुशलः (अस्तु) (अग्निः) विद्वान् पुरुषः (प्र) प्रकर्षेण (स्तौतु) प्रशंसतु (वि) पृथग्भावे (मृधः) हिंसकान् (नुदस्व) प्रेरय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[जैसे] (समिद्धः) प्रकाशमान किया गया और (समिधानः) प्रकाशमान होता हुआ (घृताहुतः) घी चढ़ाया गया और (घृतवृद्धः) घी से बढ़ा हुआ (अग्निः) अग्नि हो। [वैसे ही] (अभीषाट्) सब ओर से जीतने वाला, (विश्वाषाट्) सब को हराने वाला (अग्निः) तेजस्वी [शूर पुरुष] (सपत्नान्) बैरियों को (हन्तु) मारे, (ये) जो (मम) मेरे हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि घृत आदि हव्य पदार्थ से प्रज्वलित होकर रोग कारक दोष को नाश करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और वीरता से प्रतापी होकर शत्रुओं को नाश करे, यह ईश्वर का नियम है ॥ २८ ॥

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥

हन्तु । एनान् । प्र । दहतु । अरिः । यः । नः । पृतन्यति ॥
क्रव्य-अदा । अग्निना । वयम् । स-पत्नान् । प्र । दहामसि २९

भाषार्थ—वह [शूर पुरुष] (एनान्=एनम्) उसको (हन्तु) मारे, (प्र दहतु) जला देवे, (यः अरिः) जो बैरी (नः) हम पर (पृतन्यति) सेना चढ़ाता है। (क्रव्यादा) मांस भक्षक [मृतक दाहक] (अग्निना) अग्नि से [जैसे, वैसे] (वयम्) हम (सपत्नान्) बैरियों को (प्र दहामसि) जलाये देते हैं ॥ २९ ॥

२८—(समिद्धः) प्रदीप्तः (अग्निः) होमाग्निः (समिधानः) प्रदीप्यमानः (घृतवृद्धः) घृतादिहव्येन प्रवृद्धः (घृताहुतः) घृतं हव्यद्रव्यमाहुतं दत्तं यस्मै सः (अभीषाट्) अ० १२। १। ५४। सर्वतोजेता (विश्वाषाट्) अ० १२। १। ५४। सर्वजेता (अग्निः) तेजस्वी शूरः (सपत्नान्) शत्रून् (हन्तु) मारयतु (ये) (मम)॥

२९—(हन्तु) (एनान्) एकवचनस्य बहुवचनम्। एनम्। अरिम् (प्र) प्रकर्षेण (दहतु) भस्मीकरोतु (अरिः) शत्रुः (यः) (नः) अस्मान् (पृतन्यति) पृतनया सेनया युध्यते (क्रव्यादा) मांसभक्षकेन। शवदाहकेन (अग्निना) भौतिकेन (वयम्) धार्मिकाः (सपत्नान्) अरीन् (प्र) (दहामसि) दहामः॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—ज्ञानवान् शूर पुरुष अपने शत्रु दोषों को इसप्रकार भस्म कर दे, जैसे अग्नि से मृतक शरीर भस्म किया जाता है। यह ईश्वर नियम सब मनुष्यों को मानना चाहिये ॥ २९ ॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३० ॥ (३)

अवाचीनान् । अव । जहि । इन्द्र । वज्रेण । बाहु-मान् ॥ अध । स-पत्नान् । मामकान् । अग्नेः । तेजः-भिः । आ । अदिषि ॥ ३० ॥ (३)

भाषार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ! (बाहुमान्) बलवान् भुजाओं वाला तू (वज्रेण) वज्र से (अवाचीनान्) नीचों [अधार्मिकों] को (अव जहि) मार गिरा। (अध) फिर (मामकान्) अपने (सपत्नान्) वैरियों को (अग्निः) अग्नि के (तेजोभिः) तेजों से (आ अदिषि) मैंने पकड़ लिया है ॥ ३० ॥

भावार्थ—प्रजागण बली, पराक्रमी, प्रतापी राजा को स्वीकार करके शत्रुओं के मारने में सहायक होवें। सब मनुष्य इस ईश्वर नियम का पालन करें ॥ ३० ॥

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते । इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

अग्ने । स-पत्नान् । अधरान् । पादय । अस्मत् । व्यथय । स-जातम् । उत्-पिपानम् । बृहस्पते ॥ इन्द्राग्नी इति । मित्रावरुणौ । अधरे । पद्यन्ताम् । अप्रति-मन्ययमानाः ॥ ३१ ॥

३०—(अवाचीनान्) अधोगतीन् । अधार्मिकान् (अव जहि) विनाशय (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् सेनापते (वज्रेण) शस्त्रेण (बाहुमान्) प्रबलभुजः (अध) अथ (सपत्नान्) (मामकान्) अ० १ । २९ । ५ । मम सम्बन्धिनः (अग्नेः) पावकस्य (तेजोभिः) ज्वालाभिः (आ अदिषि) ददातेर्लुङ् । गृहीतवानस्मि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अग्ने) हे प्रतापी राजन् ! (सपत्नान्) बैरियों को (अस्मत्) हमसे (अधरान्) नीचे (पादय) गिरा दे, (बृहस्पते) हे बड़ी विद्याओं के स्वामी ! [राजन्] (उत्पिपानम्) टेढ़े चढते हुये (सजातम्) समान जन्म वाले [भाई बन्धु] को (व्यथय) पीड़ा दे । (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और बिजुली [के समान प्रताप और स्फूर्ति वाले !] (मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान ! [के समान सुखदायक और दुःखनाशक पुरुष] (अप्रतिमन्यूयमानाः) [हमारे] प्रतिकूल क्रोध न कर सकने योग्य [शत्रु लोग] (अधरे) नीचे होकर (पद्यन्ताम्) गिर जावें ॥ ३१ ॥

भावार्थ—विद्वान् प्रतापी राजा पक्षपात छोड़कर धर्म विरोधी दुराचारी बन्धु आदि को भी अवश्य दण्ड देकर वश में रक्खे ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सुपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

उत्-यन् । त्वम् । देव । सूर्य । सु-पत्नान् । अव । मे । जहि ॥ अव । एनान् । अश्मना । जहि । ते । यन्तु । अधमम् । तमः ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—(देव) हे विजय चाहने वाले ! (सूर्य) हे सर्वप्रेरक राजन् ! (उद्यन् त्वम्) ऊंचा चढ़ता हुआ तू (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (अव

३१—(अग्ने) हे प्रतापिन् राजन् (सपत्नान्) (अधरान्) नीचान् । पामरान् (पादय) पातय (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (व्यथय) पीडय (सजातम्) समानजन्मानं बन्ध्वादिकम् (उत्पिपानम्) अ० ५ । २० ७ । पि गतौ यङि शानचि छान्दसं रूपम् । उत्पेपीयमानम् । कुटिलमुद्गच्छन्तम् (बृहस्पते) बृहतीनां विद्यानां स्वामिन् (इन्द्राग्नी) सूर्यविद्युतौ यथा प्रतापिन् स्फूर्तिमन् (मित्रावरुणौ) प्राणापानवत् सुखप्रद दुःखनाशक (अधरे) पामराः सन्तः (पद्यन्ताम्) अधोगच्छन्तु (अप्रतिमन्यूयमानाः) कण्ड्वादिभ्यो यक् । पा० ३ । १ । २७ । मन्यु-यक् । अस्माकं प्रतिकूलं क्रोधं कर्तुमशक्याः ॥

३२—(उद्यन्) उद्गच्छन् (त्वम्) (देव) विजिगीषो (सूर्य) सर्वप्रेरक राजन् (सपत्नान्) (मे) मम (अव जहि) विनाशय (एनान्) सपत्नान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहि) मार गिरा । (एनान्) इन [शत्रुओं] को (अश्मना) पत्थर [आदि-गिराने] से (अव जहि) मार गिरा, (ते) वे लोग (अधमम्) बड़े नीचे (तमः) अन्धकार में (यन्तु) जावें ॥ ३२ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि न्याय व्यवहार में प्रकाशमान होकर शत्रुओं को यथापराध दण्ड देकर कारागार में पीड़ा देवें ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३॥

वत्सः । वि-राजः । वृषभः । मतीनाम् । आ । रुरोह । शुक्र-पृष्ठः । अन्तरिक्षम् ॥ घृतेन । अर्कम् । अभि । अर्चन्ति । वत्सम् । ब्रह्म । सन्तम् । ब्रह्मणा । वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(वत्सः) उपदेश करने वाला, (विराजः) बड़े ऐश्वर्य वाला, (शुक्रपृष्ठः) वीरता बढ़ाने वाला (वृषभः) बड़ी शक्ति वाला [पुरुष] (मतीनाम्) बुद्धिमानों के (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती दृश्य पर (आ रुरोह) ऊंचा हुआ है । वे [बुद्धिमान् लोग] (घृतेन) प्रकाश के साथ [वर्तमान] (अर्कम्) पूजनीय, (वत्सम्) उपदेश करने वाले [परमेश्वर] को (अभि) सब ओर से (अर्चन्ति) पूजते हैं और (सन्तम्) सेवनीय (ब्रह्म) ब्रह्म [सब से बड़े परमेश्वर] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं [सराहते हैं] ॥ ३३ ॥

(अश्मना) प्रस्तरादिना (अवजहि) (ते) शत्रवः (यन्तु) गच्छन्तु (अधमम्) अतिनिकृष्टम् (तमः) अन्धकारम् ॥

३३—(वत्सः) वद कथने सप्रत्ययः । उपदेशकः (विराजः) राजृहः सखिभ्यष्टच् । पा० ५ । ४ । ६ १ । विराजन्—टच्, तत्पुरुषे । विविधैश्वर्यवान् (वृषभः) शक्तिमान् (मतीनाम्) मतयो मेधाविनः—निघ० ३ । १५ । मेधाविनां मध्ये (आरुरोह) आरूढवान् (शुक्रपृष्ठः) शुक्रस्य वीर्यस्य पराक्रमस्य पृष्ठं सेचनं यस्मात् सः (अन्तरिक्षम्) अन्तर् मध्ये ईक्ष्यमाणं दृश्यमानं पदम् (घृतेन) प्रकाशेन सह (अर्कम्) अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्ति—निरु० ५ । ४ । अर्चनीयम् (अभि) अभितः (अर्चन्ति) पूजयन्ति (वत्सम्) उपदेशकम् (ब्रह्म) प्रवृद्धं परमात्मानम् (सन्तम्) हसिमृग्रिण्वामि० । उ० ३ । ८६ । षण् संभक्तौ—तन् । सेवनीयम् (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (वर्धयन्ति) स्तुवन्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने बड़े बड़े पराक्रमी शूर वीर पुरुष बनाये हैं, उसकी महिमा को ज्ञानी लोग जानकर संसार में प्रकट करते हैं ॥ ३३ ॥

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥३४॥

दिवम् । च । रोह । पृथिवीम् । च । रोह । राष्ट्रम् । च । रोह । द्रविणम् । च । रोह ॥ प्र-जाम् । च । रोह । अमृतम् । च । रोह । रोहितेन । तन्वम् । सम् । स्पृशस्व ॥ ३४

भाषार्थ—[हे राजन् !] (दिवम्) व्यवहार को (च) निश्चय करके (रोह) प्रकट कर, (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी [की विद्या] को (रोह) प्रकट कर, (च) और (राष्ट्रम्) राज्य को (रोह) प्रकट कर, (च) और (द्रविणम्] धन को (रोह) प्रकट कर । (च) और (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र पौत्र राज्य जन] को (रोह) प्रकट कर, (च) और (अमृतम्) अमरपन [पुरुषार्थ] के (रोह) प्रकट कर, (रोहितेन) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] के साथ (तन्वम्) अपने विस्तार को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रत्येक व्यवहार और विद्या में कुशल होता है, वह राज्य की सब प्रकार वृद्धि करता हुआ परमेश्वर की महिमा में अपने आत्मा को ऊंचा बनाता है ॥ ३४ ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥

ये । देवाः । राष्ट्र-भृतः । अभितः । यन्ति । सूर्यम् ॥ तैः ।

३४—(दिवम्) व्यवहारम् (च) अवधारणे (रोह) रोहय । प्रादुर्भावय (पृथिवीम्) भूमिविद्याम् (च) (रोह) (राष्ट्रम्) राज्यम् (च) (रोह) (द्रविणम्) धनम् (च) (रोह) (प्रजाम्) पुत्रपौत्रराज्यजनरूपाम् (च) (रोह) (अमृतम्) अमरणम् । पौरुषम् (च) (रोह) (रोहितेन) सर्वोत्पादकेन परमेश्वरेण (तन्वम्) विस्तृतिम् (सं स्पृशस्व) संयोजय ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते। रोहितः। सम्-विदानः। राष्ट्रम्। दधातु। सु-मनस्यमानः ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—[हे राजन् !] (ये) जो (राष्ट्रभृतः) राज्य पोषक (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (सूर्यम्) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] को (अभितः) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (तैः) उनसे (संविदानः) मिलता हुआ, (सुमनस्यमानः) प्रसन्न चित्त (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (दधातु) पुष्ट करे ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जिस राज्य में विद्वान् लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं, वह राज्य सदा बढ़ता रहता है ॥ ३५ ॥

उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥ ३६ ॥

उत्। त्वा। यज्ञाः। ब्रह्म-पूताः। वहन्ति। अध्व-गतः। हरयः। त्वा। वहन्ति ॥ तिरः। समुद्रम्। अति। रोचसे। अर्णवम् ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (ब्रह्मपूताः) ब्रह्माओं [वेद वेत्ताओं] द्वारा शुद्ध किये गये (यज्ञाः) यज्ञ [संगतियोग्य व्यवहार] (उत्) उत्तमता से (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, (अध्वगतः) [वेद विहित] मार्ग पर चलने वाले (हरयः) मनुष्य (त्वा) तुझ को (वहन्ति) पाते हैं।

३५—(ये) (देवाः) विजिगीषवः (राष्ट्रभृतः) राज्यपोषकाः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (सूर्यम्) सर्वप्रेरकं परमेश्वरम् (तैः) देवैः (ते) तव (रोहितः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (संविदानः) संगच्छमानः (राष्ट्रम्) राज्यम् (दधातु) पुष्णातु (सुमनस्यमानः) शोभनमनाः ॥

३६—(उत्) उत्तमतया (त्वा) परमात्मानम् (यज्ञाः) संगतियोग्यव्यवहाराः (ब्रह्मपूताः) वेदवेत्तृभिः शोधिताः (वहन्ति) प्राप्नुवन्ति (अध्वगतः) वेदविहितमार्गगन्तारः (हरयः) मनुष्याः—निघ० २। ३ (त्वा) (वहन्ति)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अर्णवम्) जल से भरे (समुद्रम्) समुद्र को (तिरः) तिरस्कार करके तू (अति) अत्यन्त करके (रोचसे) प्रकाशमान होता है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर में सब पदार्थ व्याप्त हैं, वेदानुयायी पुरुष उसको बहुत खोज कर अगम्य स्थानों में भी पाकर आनन्दित होते हैं ॥ ३६ ॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनजिति । सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥

रोहिते । द्यावापृथिवी इति । अधि । श्रिते इति । वसु-जिति । गो-जिति । संधन-जिति ॥ सहस्रम् । यस्य । जनि-मानि । सप्त । च । वोचेयम् । ते । नाभिम् । भुवनस्य । अधि । मज्मनि ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(वसुजिति) निवास स्थानों के जीतने वाले, (गोजिति) विद्याओं के जीतने वाले,(संधनजिति)संपूर्ण धन के जीतने वाले (रोहिते) सबके उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] में (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिते) ठहरे हुये हैं। (यस्य) जिस [परमेश्वर] के (सहस्रम्) सहस्र [असंख्य] (जनिमानि) उत्पन्न करने के कर्म (च) निश्चय करके (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा नाक, मन और बुद्धि] के साथ हैं, [हे परमेश्वर !] (ते) तेरे (नाभिम्) सम्बन्ध को (भुवनस्य) संसार के (मज्मनि) बल के भीतर (अधि) अधिकार पूर्वक (वोचेयम्) मैं बतलाऊं ॥ ३७ ॥

(तिरः) तिरस्कृत्य (समुद्रम्) समुद्रवद्गम्यम् (अति) अत्यन्तम् (रोचसे) दीप्यसे (अर्णवम्) जलपूर्णम् ॥

३७—(रोहिते) म० १ (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमी (अधि) अधिकृत्य (श्रिते) आश्रिते (वसुजिति) निवासानां जेतरि (गोजिति) विद्यानां जेतरि (संधनजिति) सांहितिको दीर्घः । समस्तधनानां प्रापके (सहस्रम्) बहूनि । असंख्यानि (जनिमानि) प्रजननकर्माणि (सप्त) सप्तभिस्त्वक्चक्षुःश्रोत्र-रसनाघ्राणमनोबुद्धिभिः सह (च) निश्चयेन । अन्यत् पूर्ववत्—म० १४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—वह सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब लोकों का स्वामी है, उसने शरीरों को इन्द्रियों सहित बनाया है, उसी को जितेन्द्रिय योगी जन प्राप्त होकर सुखी होते हैं ॥ ३७ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद ऊपर मन्त्र १४ में आया है ॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः॥३८

यशाः । यासि । प्र-दिशः । दिशः । च । यशाः । पशूनाम् । उत । चर्षणीनाम् ॥ यशाः । पृथिव्याः । अदित्याः । उप-स्थे । अहम् । भूयासम् । सविता-इव । चारुः ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (यशाः) यशस्वी तू (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं (च) और (दिशः) मध्य दिशाओं में (यासि) चलता है, और तू (पशूनाम्) पशुओं [गौ सिंह आदिकों] (उत) और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (यशाः) यशस्वी है । (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी की और (अदित्याः) अखण्ड वेदवाणी की (उपस्थे) गोद में (यशाः) यशस्वी होकर (सविता इव) सब के चलाने वाले शूर [अथवा सूर्य] के समान (चारुः) शोभायमान (भूयासम्) होऊं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर अपनी महिमा से समस्त लोकों का राजा है, वैसे ही मनुष्य ईश्वर की उपासना से पृथिवी पर प्रिय होकर अपनी उन्नति करते रहें ॥ ३८ ॥

३८—(यशाः) अ० ६ । ३९ । ३ । सुप आत्मनःक्यच् । पा० ३ । १ । ८ । यशस्—क्यच्, ततः क्विप्, अलोपयलोपौ । यशस्कामः । यशस्वी (यासि) गच्छसि (प्रदिशः) प्रकृष्टा दिशाः (दिशः) अन्तर्दिशाः (च) समुच्चये (यशाः) (पशूनाम्) गवादीनाम् (उत) अपि (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (यशाः) (पृथिव्याः) (अदित्याः) अदितिर्वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । अखण्डिताया वेदवाण्याः (उपस्थे) क्रोडे (अहम्) उपासकः (भूयासम्) (सविता इव) सर्वप्रेरकः शूरः सूर्यो वा यथा (चारुः) शोभायमानः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥

अमुत्र । सन् । इह । वेत्थ । इतः । सन् । तानि । पश्यसि ॥ इतः । पश्यन्ति । रोचनम् । दिवि । सूर्यम् । विपः-चितम् ३९

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (अमुत्र) वहांपर (सन्) रहता हुआ तू (इह) यहां (वेत्थ) जानता है, (इतः) इधर (सन्) रहता हुआ (तानि) उन [वस्तुओं] को (पश्यसि) देखता है । (इतः) यहां से (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (रोचनम्) चमकने वाले (विपश्चितम्) बुद्धिमान् (सूर्यम्) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] को (पश्यन्ति) वे [विद्वान्] देखते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर समीप और दूर से सर्वव्यापी होकर सर्वनियन्ता है, ऐसा विचार कर बुद्धिमान् लोग अपने व्यवहारों में उन्नति करते हैं ॥ ३९ ॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥ (४)

देवः । देवान् । मर्चयसि । अन्तः । चरसि । अर्णवे ॥ समानम् । अग्निम् । इन्धते । तम् । विदुः । कवयः । परे ४०(४)

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (देवः) विद्वान् तू (देवान्) उत्तम गुणों को (मर्चयसि) बतलाता है, (अर्णवे अन्तः) समुद्र [संसार] के बीच

३९—(अमुत्र) तत्र । दूरदेशे (सन्) वर्तमानः सन् (इह) अत्र (वेत्थ) जानासि (इतः) अत्र (सन्) (तानि) दूरस्थानि वस्तूनि (पश्यसि) निरीक्षसे (इतः) (पश्यन्ति) अवलोकयन्ति (रोचनम्) प्रकाशमानम् (दिवि) प्रत्येकव्यवहारे (सूर्यम्) सर्वप्रेरकं परमेश्वरम् (विपश्चितम्) मेधाविनम्-निघ० ३ । १५ ॥

४०—(देवः) बुद्धिमान् (देवान्) दिव्यगुणान् (मर्चयसि) मर्च शब्दे । शब्दयसि । उपदिशसि (अन्तः) मध्ये (चरसि) विचरसि (अर्णवे) समुद्रे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चरसि) तू विचरता है। (समानम्) समान [एकरस] (तम्) उस (अग्निम्) ज्ञानवान् [परमेश्वर] को (परे) बड़े (कवयः) बुद्धिमान् लोग (विदुः) जानते हैं और (इन्धते) प्रकाशित होते हैं ॥ ४० ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर संसार में व्यापक रहकर सदा शुभ गुणों का उपदेश करता है, बुद्धिमान् लोग उसी का उपदेश करके संसार में यश पावें ॥४०॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् । सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥

अवः । परेण । परः । एना । अवरेण । पदा । वत्सम् । बिभ्रती । गौः । उत् । अस्थात् ॥ सा । कद्रीची । कम् । स्वित् । अर्धम् । परा । अगात् । क्व । स्वित् । सूते । नहि । यूथे । अस्मिन् ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—(परेण) दूर स्थान से (अवः) इधर और (एना) इस (अवरेण) अवर [समीप स्थान] से (परः) परे [दूर वर्तमान] (वत्सम्) सब के निवास देने वाले वा उपदेश करने वाले [परमेश्वर] को (पदा) पद [अधिकार] के साथ (बिभ्रती) धारण करती हुयी (गौः) वेदवाणी (उत् अस्थात्) ऊंची उठी है। (सा) वह [वेदवाणी] (कद्रीची) किस ओर

(समानम्) सामान्यम् (अग्निम्) ज्ञानवन्तं परमेश्वरम् (इन्धते) दीप्यन्ते (तम्) प्रसिद्धम् (विदुः) जानन्ति (कवयः) मेधाविनः—निघ० ३ । १५ (परे) श्रेष्ठाः ॥

४१—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ९ । ९ । १७ (अवः) अवस्तात् । समीपदेशे (परेण) दूरदेशेन (परः) परस्तात् । दूरदेशे (एना) एनेन । अनेन (अवरेण) समीपस्थेन (पदा) पदेन । अधिकारेण (वत्सम्) वस निवासे, वद व्यक्तायां वाचि—सप्रत्ययः । सर्वनिवासकम् । सर्वोपदेशकम् (बिभ्रती) धरन्ती (गौः) वेदवाणी (उत्) उत्कर्षेण (अस्थात्) स्थितवती (सा) वेद-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती हुयी, (कं स्वित्) कौन से (अर्धम्) ऋद्धिवाले परमेश्वर को (परा) पराक्रम से (अगात्) पहुंची है, (क स्वित्) कहां पर (सूते) उत्पन्न होती है, (अस्मिन्) इस [देहधारी] (यूथे) समूह में (नहि) नहीं [उत्पन्न होती है] ४१

भावार्थ—विद्वान् लोग परमेश्वर के सर्वव्यापकता आदि गुणों को, विचारते हुये अपौरुषेय वेदवाणी को उसके ज्ञान का आधार समझ कर उसके विषय में जो प्रश्न करें, उसका उत्तर आगे के मन्त्र में है ॥ ४१ ॥

यह मन्त्र ऊपर आचुका है—अ० ९ । ९ । १७ और ऋग्वेद में भी कुछ भेद से है—म० १ । १६४ । १७ ॥

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याःसमुद्रा अधि वि क्षरन्ति ४२

एक-पदी । द्वि-पदी । सा । चतुः-पदी । अष्टा-पदी । नव-पदी । बभूवुषी ॥ सहस्र-अक्षरा । भुवनस्य । पङ्क्तिः । तस्याः । समुद्राः । अधि । वि । क्षरन्ति ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(सा) वह [वेदवाणी] (एकपदी) एक [ब्रह्म] के साथ व्याप्ति वाली, (द्विपदी) दो [भूत भविष्यत्] में गतिवाली, (चतुष्पदी) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] में अधिकार वाली, (अष्टापदी)] आठ पद [छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य-सङ्कल्प, आठ ऐश्वर्य] प्राप्त कराने वाली, (नवपदी) नौ [मन बुद्धि सहित दो

वाणी (कद्रीची) क गच्छन्ती (कंस्वित्) (अर्धम्) ऋधु वृद्धौ—घञ् । वृद्धि-शीलं परमेश्वरम् (परा) पराक्रमेण (अगात्) अगमत् (क) कुत्र (स्वित्) (सूते) सूयते । उत्पद्यते (नहि) निषेधे (यूथे) समूहे (अस्मिन्) ॥

४२—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ९ । १० । २१ (एकपदी) एकेन ब्रह्मणा पदं व्याप्तिर्यस्याः सा (द्विपदी) भूतभविष्यतोर्गतिर्यस्याः सा (सा) गौः । वेद-वाणी (चतुष्पदी) चतुर्वर्गे धर्मार्थकाममोक्षेषु पदमधिकारो यस्याः सा (अष्टा-पदी) अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥ १ ॥ इत्यष्टैश्वर्याणि पदानि प्राप्तव्यानि यया सा (नव-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] से प्राप्ति योग्य, (सहस्राक्षरा) सहस्रों [असंख्यात] पदार्थों में व्याप्ति वाली (बभूवुषी) होकर के (भुवनस्य) संसार की (पङ्क्तिः) फैलाव शक्ति है, (तस्याः) उस [वेदवाणी] से (समुद्राः) समुद्र [समुद्र रूप सब लोक] (अधि) अधिक अधिक (वि) विविध प्रकार से (क्षरन्ति) बहते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—यह मन्त्र गत मन्त्र का उत्तर है। वेदवाणी परमेश्वर से उत्पन्न होकर संसार में सब उत्तम ज्ञानों का भण्डार है, उसी को विचार कर विद्वान् लोग आनन्द भोगते हैं ॥ ४२ ॥

यह मन्त्र पहिले आ चुका है—अ० ९ । १० । २१ । और कुछ भेद से ऋग्वेद में भी है —म० १ । १६४ । ४१, ४२ ॥

आरोहन् द्याममृतः प्रावं मे वचः । उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥

आ-रोहन् । द्याम् । अमृतः । प्र । अव । मे । वचः ॥ उत् । त्वा । यज्ञाः । ब्रह्म-पूताः । वहन्ति । अध्व-गतः । हरयः । त्वा । वहन्ति ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—(द्याम्) प्रकाश के ऊपर (आरोहन्) चढ़ता हुआ (अमृतः) अमर तू (मे वचः) मेरे वचन को (प्र) भले प्रकार (अव) सुन । [हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (ब्रह्मपूताः) ब्रह्माओं [वेदवेत्ताओं] द्वारा शुद्ध

पदी) मनोबुद्धिसहितैः सप्तशीर्षण्यच्छिद्रैः प्राप्या (बभूवुषी) भवतेः क्वसु, ङीप् । भूतवती (सहस्राक्षरा) अशू व्याप्तौ—सर । असंख्यातेषु पदार्थेषु व्यापनशीला (भुवनस्य) संसारस्य (पङ्क्तिः) पचि व्यक्तीकरणे—क्तिन् । विस्तृतिः (तस्याः) वेदवाण्याः सकाशात् (समुद्राः) समुद्ररूपा लोकाः (अधि) अधिकम् (वि) विविधम् (क्षरन्ति) संचलन्ति ॥

४३—(आरोहन्) अधितिष्ठन् (द्याम्) गमेर्डोः । उ० २ । ६७ । द्युत दीप्तौ, यद्वा द्यु अभिगमने-डोस् । दीप्तिम् (अमृतः) अमरः । अविनाशी परमे-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये गये (यज्ञाः) यज्ञ [संगति योग्य व्यवहार] (उत्) उत्तमता से (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, (अध्वगतः) [वेद विहित] मार्ग पर चलने वाले (हर्यः) मनुष्य (त्वा) तुझ को (वहन्ति) पाते हैं ॥ ४३ ॥

भावार्थ—योगी जन प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर का ध्यान करके तपश्चरण के साथ उसे प्राप्त करके आनन्द पाते हैं ॥ ४३ ॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग ऊपर मन्त्र ३६ में आचुका है ॥

वेद॒ तत् ते॑ अमर्त्य॒ यत् ते॑ आक्रम॑णं दि॒वि ।
यत् ते॑ सु॒धस्थं॑ पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ४४ ॥

वेद॑ । तत् । ते॒ । अ॒मर्त्य॑ । यत् । ते॒ । आ-क्रम॑णम् । दि॒वि ॥
यत् । ते॒ । सु॒ध-स्थ॑म् । पर॒मे । वि-ओ॑मन् ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—(अमर्त्य) हे अमर ! [अविनाशी परमेश्वर] (ते) तेरे (तत्) उस को (वेद) मैं जानता हूं, (यत्) जो (ते) तेरा (आक्रमणम्) चढ़ाव [व्याप्ति] (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में है और (यत्) जो (ते) तेरा (सधस्थम्) सह स्थान (परमे) सब से बड़े (व्योमन्) विविध रक्षा साधन [मोक्ष पद] में है ॥ ४४ ॥

भावार्थ—योगी को योग्य है कि उस नित्य शुद्ध परमात्मा को प्रत्येक पदार्थ में साक्षात् करके मोक्ष सुख प्राप्त करे ॥ ४४ ॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथि॒वीं सूर्य आपोऽति॑ पश्यति ।
सूर्यो॑ भू॒तस्यैक॑ं॒ चक्षु॒रा रु॑रोह॒ दिवं॑ म॒हीम् ॥ ४५ ॥

श्वरः (प्र) प्रकर्षेण (अव) अव रक्षणश्रवणादिषु । शृणु (मे) मम (वचः) वचनम् । अन्यत् पूर्ववत् म० ३६ ॥

४४—(वेद) जानामि (तत्) प्रसिद्धम् (ते) तव (अमर्त्य) हे अमर । अविनाशिन् (यत्) (ते) (आक्रमणम्) उपरिगमनम् (दिवि) प्रत्येकव्यवहारे (यत्) (ते) (सधस्थम्) सहस्थानम् (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) विविधरक्षासाधने मोक्षपदे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यः । द्याम् । सूर्यः । पृथिवीम् । सूर्यः । आपः । अति । पश्यति ॥ सूर्यः । भूतस्य । एकम् । चक्षुः । आ । रुरोह । दिवम् । महीम् ॥ ४५ ॥

भाषार्थ--(सूर्यः) सब का चलाने वाला [परमेश्वर] (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को, (सूर्यः) वह सर्वप्रेरक (पृथिवीम्) पृथिवी को, (सूर्यः) वह सर्वनियामक (आपः) प्रत्येक काम को (अति पश्यति) निहारता है। (सूर्यः) वह सर्वनियन्ता (भूतस्य) संसार का (एकम्) एक (चक्षुः) नेत्र [नेत्र रूप जगदीश्वर] (दिवम्) आकाश पर और (महीम्) पृथिवी पर (आ रुरोह) ऊंचा हुआ है ॥ ४५ ॥

भावार्थ—वह समदर्शी जगदीश्वर सब संसार और सब कामों को देखता हुआ सब को अपने नियम में रखता है ॥ ४५ ॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥ ४६ ॥

उर्वीः । आसन् । परि-धयः । वेदिः । भूमिः । अकल्पत ॥ तत्र । एतौ । अग्नी इति । आ । अधत्त । हिमम् । घ्रंसम् । च । रोहितः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—[संसार में] (उर्वीः) चौड़ी [दिशायें] (परिधयः) परकोटा रूप (आसन्) हुयीं, (भूमिः) भूमि (वेदिः) वेदि [यज्ञ कुण्ड]

४५—(सूर्यः) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (द्याम्) प्रकाशमानं सूर्यम् (सूर्यः) सर्वनियामकः (पृथिवीम्) (सूर्यः) (आपः) आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । उ० ४ । २० ८ । आप्लृ व्याप्तौ-असुन् । कर्म (अति पश्यति) अत्यर्थं विलोकयति (सूर्यः) (भूतस्य) संसारस्य (एकम्) अद्वितीयम् (चक्षुः) नेत्रं यथा (आ रुरोह) अधिष्ठितवान् (दिवम्) आकाशम् (महीम्) भूमिम् ॥

४६—(उर्वीः) उर्व्यः । विस्तृता दिशाः (आसन्) (परिधयः) प्राकाररूपाः (वेदिः) यज्ञकुण्डरूपा (भूमिः) (अकल्पत) रचिताऽऽसीत् (तत्र) (एतौ)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप (अकल्पत) बनायी गयी। (तत्र) उस में (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ने (एतौ) इन (अग्नी) दो अग्नियों [सूर्य और चन्द्रमा] को (घ्रंसम्) ताप (च) और (हिमम्) शीत रूप (आ अधत्त) स्थापित किया ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर के बनाये दिशाओं, भूमि, सूर्य, चन्द्र, ताप, शीत आदि से विज्ञान पूर्वक उपकार लेवें ॥ ४६ ॥

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥

हिमम् । घ्रंसम् । च । आ-धाय । यूपान् । कृत्वा । पर्वतान् ॥ वर्ष-आज्यौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वः-विदः ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(हिमम्) शीत (च) और (घ्रंसम्) ताप को (आधाय) स्थापित करके, (पर्वतान्) पर्वतों को (यूपान्) जयस्तम्भ रूप (कृत्वा) बनाकर, (वर्षाज्यौ) वृष्टि को घी रूप रखने वाले (अग्नी) दोनों अग्नियों [सूर्य और चन्द्रमा] ने (स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] को किया है ॥ ४७ ॥

प्रसिद्धौ (अग्नी) सूर्याचन्द्रमसौ (आ अधत्त) स्थापितवान् (हिमम्) शीतम् (घ्रंसम्) दिवः कित्। उ० ३। १२१। घृ दीप्तौ–असच्, कित्, पृषोदरादित्वाद् नकारः। घ्रंसोऽहर्नाम–निघ० १। ९। तापम् (च) (रोहितः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः ॥

४७ (हिमम्) शीतम् (घ्रंसम्) म० ४६। तापम् (च) (आधाय) स्थापयित्वा (यूपान्) जयस्तम्भान् यथा (कृत्वा) विधाय (पर्वतान्) शैलान् (वर्षाज्यौ) वर्षं वृष्टिर्घृतवद्ययोस्तौ (अग्नी) सूर्याचन्द्रमसौ (ईजाते) यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु—लिट्। यज्ञं संयोगवियोगव्यवहारं कृतवन्तौ (रोहितस्य) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि। पा० २। ३। ६२। इति षष्ठी। रोहिताय। सर्वोत्पादकाय परमेश्वराय (स्वर्विदः) विदॢ लाभे—क्विप्। सुखप्रापकाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—परमेश्वर के सामर्थ्य से सूर्य चन्द्र आदि लोक नियमित होकर ताप, शीत, वृष्टि, पर्वत आदि की उत्पत्ति और स्थिति के कारण होते हैं ॥४७॥

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥

स्वः-विदः । रोहितस्य । ब्रह्मणा । अग्निः । सम् । इध्यते ॥ तस्मात् । घ्रंसः । तस्मात् । हिमः । तस्मात् । यज्ञः । अजायत ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान द्वारा (अग्नि) अग्नि [सूर्य आदि] (सम् इध्यते) यथावत् प्रकाशित होता है। (तस्मात्) उसी [परमेश्वर] से (घ्रंसः) ताप (तस्मात्) उसी से (हिमः) शीत और (तस्मात्) उसी से (यज्ञः) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के सामर्थ्य से ही सूर्य चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न होकर ताप शीत, संयोग वियोग द्वारा संसार का उपकार करते हैं ॥ ४८ ॥

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मणा । अग्नी इति । ववृधानौ । ब्रह्म-वृद्धौ । ब्रह्म-आहुतौ ॥ ब्रह्म-इद्धौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वः-विदः ॥ ४९ ॥

४८—(स्वर्विदः) सुखप्रापकस्य (रोहितस्य) सर्वोत्पादकस्य परमेश्वरस्य (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (अग्निः) सूर्यादिः (समिध्यते) यथाविधि दीप्यते (तस्मात्) परमेश्वरात् (घ्रंसः) तापः (तस्मात्) (हिमः) शीतधर्मः (तस्मात्) (यज्ञः) संयोगवियोगव्यवहारः (अजायत) उत्पद्यते ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अग्नी) दोनों अग्नि [सूर्य और चन्द्रमा] (ब्रह्मणा) वेद-ज्ञानद्वारा (वावृधानौ) बढ़ते हुये, (ब्रह्मवृद्धौ) अन्न से बढ़े हुये, (ब्रह्माहुतौ) जलकी आहुति [ग्रहण और दान] वाले हैं। (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाश किये गये (अग्नी) उन दोनों अग्नियों ने (स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] को किया है ॥ ४९ ॥

भावार्थ—ईश्वर की शक्ति से यह सूर्य और चन्द्रमा प्राणियों के लिये अन्न, वृष्टि और धन के कारण होते हैं ॥ ४९ ॥

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥ (५)

सत्ये । अन्यः । सम्-आहितः । अप्-सु । अन्यः । सम् । इध्यते । ० ॥ ५० ॥ (५)

भाषार्थ—(अन्यः) एक [परमाणुरूप पदार्थ] (सत्ये) सत्य [नित्यपन] में (समाहितः) सर्वथा ठहरा हुआ है, (अन्यः) दूसरा [कार्यरूप पदार्थ] (अप्सु) प्रजाओं [जीवधारियों] के बीच (सम् इध्यते) यथावत् प्रकाशित होता है। (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये मन्त्र ४९।५०।

भावार्थ—संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक नित्य परमाणु रूप और दूसरे अनित्य कार्य रूप। यह सब ईश्वर की आज्ञा से संसार का उपकार करते हैं ॥ ५० ॥

४९—(ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (अग्नी) सूर्याचन्द्रमसौ (वावृधानौ) वर्धमानौ (ब्रह्मवृद्धौ) ब्रह्मान्न नाम—निघ० २। ७। अन्नेन प्रवृद्धौ (ब्रह्माहुतौ) ब्रह्मोदकनाम—निघ० १। १२। जलस्याहुतंग्रहणदानव्यवहारो ययोस्तौ (ब्रह्मेद्धौ) ब्रह्म धननाम—निघ० २। १०। धनेन प्रकाशितौ। अन्यत् पूर्ववत्—म० ४७ ॥

५०—(सत्ये) नित्यत्वे (अन्यः) एकः परमाणुरूपः पदार्थः (समाहितः) यथावत् स्थापितः (अप्सु) प्रजासु (अन्यः) कार्यरूपः पदार्थः (समिध्यते) यथाविधि दीप्यते। अन्यत् पूर्ववत्—म० ४९ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥

यम् । वातः । परि-शुम्भति । यम् । वा । इन्द्रः । ब्रह्मणः । पतिः ॥ ब्रह्म-इद्धौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वः-विदः ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—(यम्) जिस [परमेश्वर] को (वातः) पवन, और (यम्) जिसको (वा) निश्चय करके (ब्रह्मणः) अन्न का (पतिः) रक्षक (इन्द्रः) मेघ (परि शुम्भति) सब ओर से प्रकाशित करता है। (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये.....मन्त्र ४९ ॥ ५१ ॥

भावार्थ—आदि कारण परमात्मा के उपकारों को कार्यरूप पवन, मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि उपकारी पदार्थों द्वारा साक्षात् करके विद्वान् लोग उन्नति करते हैं ॥ ५१ ॥

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् । घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चुकार विश्वमात्मन्वद् वर्षणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥

वेदिम् । भूमिम् । कल्पयित्वा । दिवम् । कृत्वा । दक्षिणाम् ॥ घ्रंसम् । तत् । अग्निम् । कृत्वा । चुकार । विश्वम् । आत्मन्-वत् । वर्षण । आज्येन । रोहितः ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—(भूमिम्) भूमि को (वेदिम्) वेदि [यज्ञकुण्ड] रूप (कल्पयित्वा) रचकर, (दिवम्) आकाश को (दक्षिणाम्) दक्षिणा [प्रतिष्ठा

५१—(यम्) परमात्मानम् (वातः) पवनः (परिशुम्भति) सर्वतो दीपयति (यम्) (वा) अवधारणे (इन्द्रः) मेघः (ब्रह्मणः) अन्नस्य (पतिः) रक्षकः । अन्यत् पूर्ववत् —म० ४९ ॥

५२—(वेदिम्) यज्ञकुण्डं यथा (भूमिम्) (कल्पयित्वा) रचयित्वा (दिवम्) आकाशम् (कृत्वा) विधाय (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठादानं यथा (घ्रंसम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दान] रूप (कृत्वा) बनाकर, (तत्) फिर (अग्निम्) अग्नि को (घंसम्) तापरूप (कृत्वा) सिरजकर, (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (वर्षेण) वृष्टि रूप (आज्येन) घी से (आत्मन्वत्) आत्मा वाला (विश्वम्) सब जगत् (चकार) बनाया ॥ ५२ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने भूमि, आकाश आदि आधार और अग्नि आदि पदार्थ बनाकर सब जगत् को आत्म बल देकर पुरुषार्थी बनाया है। उसी सर्वशक्तिमान् की भक्ति से पुरुषार्थी मनुष्य उच्च पद पावें ॥ ५२ ॥

वर्षमाज्यं घंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥ ५३ ॥

वर्षम् । आज्यम् । घंसः । अग्निः । वेदिः । भूमिः । अकल्पत ॥ तत्र । एतान् । पर्वतान् । अग्निः । गीः-भिः । ऊर्ध्वान् । अकल्पयत् ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—(वर्षम्) वृष्टि (आज्यम्) घीरूप, (घंसः) ताप (अग्निः) अग्निरूप, (भूमिः) भूमि (वेदिः) वेदिरूप (अकल्पत) बनाई गयी। (तत्र) उस [भूमि] पर (एतान् पर्वतान्) इन पर्वतों का (अग्निः) तेजः स्वरूप [परमेश्वर वा पार्थिव ताप] ने (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ऊर्ध्वान्) ऊंचा (अकल्पयत्) बनाया ॥ ५३ ॥

म० ४६। तापं यथा (तत्) तदा (अग्निम्) सूर्यादिकम् (कृत्वा) (चकार) रचयामास (विश्वम्) सर्वं जगत् (आत्मन्वत्) अ० ४। १०। ७। सात्मकं स्थावरजङ्गमात्मकम् (वर्षेण) वृष्टिरूपेण (आज्येन) घृतेन (रोहितः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः ॥

५३—(वर्षम्) वृष्टिः (आज्यम्) घृतं यथा (घंसः) म० ४६। तापः (अग्निः) तेजोविशेषः (वेदिः) (भूमिः) (अकल्पत) अरच्यत (तत्र) भूमौ (एतान्) दृश्यमानान् (पर्वतान्) (अग्निः) तेजःस्वरूपः परमेश्वरः पार्थिवतापो वा (गीर्भिः) वेदवाणीभिः (ऊर्ध्वान्) उन्नतान् (अकल्पयत्) अकरोत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जैसे यज्ञ के लिये घृत आदि हव्य पदार्थ होते हैं, वैसे ही वृष्टि आदि बनाकर प्राणियों के सुख के लिये पार्थिव ताप द्वारा ईश्वर नियम से पहाड़ बने हैं ॥ ५३ ॥

गीर्भिरूध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यत् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥

गीः-भिः । ऊर्ध्वान् । कल्पयित्वा । रोहितः । भूमिम् । अब्रवीत् ॥ त्वयि । इदम् । सर्वम् । जायताम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भाव्यम् ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—(गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ऊर्ध्वान्) ऊंचे ऊंचे पहाड़ों को (कल्पयित्वा) रचकर (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (भूमिम्) भूमि से (अब्रवीत्) बोला—"(त्वयि) तुझ पर (इदम् सर्वम्) यह सब (जायताम्) उत्पन्न होवे, (यत्) जो कुछ (भूतम्) उत्पन्न है, (च) और (यत्) जो कुछ (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है" ॥ ५४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने अपने नित्य वेद ज्ञानद्वारा सब पर्वत आदि बनाकर सृष्टि के निवास के लिये भूमि को बनाया ॥ ५४ ॥

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत । तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥

सः । यज्ञः । प्रथमः । भूतः । भव्यः । अजायत ॥ तस्मात् । ह । जज्ञे । इदम् । सर्वम् । यत् । किम् । च । इदम् । वि-रोचते । रोहितेन । ऋषिणा । आ-भृतम् ॥ ५५ ॥

५४—(गीर्भिः) वेदवाग्भिः (ऊर्ध्वान्) उन्नतान् पर्वतान् (कल्पयित्वा) सृष्ट्वा (रोहितः) परमेश्वरः (भूमिम्) (अब्रवीत्) अवदत् (त्वयि) भूम्याम् (इदम्) प्रत्यक्षम् (सर्वम्) (जायताम्) उत्पद्यताम् (यत्) (भूतम्) उत्पन्नं वर्तते (यत्) (च) (भाव्यम्) भवतेर्ण्यर्थे । उत्पत्स्यमानम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह (प्रथमः) सब से पहिला (भूतः) वर्तमान हुआ और (भव्यः) आगे वर्तमान रहने वाला (यज्ञः) पूजनीय [परमेश्वर] (अजायत) प्रकट हुआ। (तस्मात् ह) उस से ही (इदं सर्वम्) यह सब (जज्ञे) उत्पन्न हुआ (यत् किं च) जो कुछ भी (इदम्) यह [जगत्] (ऋषिणा) ऋषि [बड़े ज्ञानी] (रोहितेन) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] करके (आभृतम्) सब ओर से पाला गया (विरोचते) झलकता है ।५५

भावार्थ—जो अविनाशी परमात्मा भूत और भविष्यत् में वर्तमान रहता है, उसी ने अपने सामर्थ्य से यह सब जगत् रचा है। बुद्धिमान् लोग ऐसा निश्चय करके अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥ ५५ ॥

यश्च॒ गां प॒दा स्फु॒रति॒ प्रत्यङ् सूर्यं॑ च॒ मेह॑ति ।
तस्य॑ वृश्चामि ते॒ मूल॒ न च्छा॒यां क॑र॒वोऽप॑रम् ॥ ५६ ॥

यः । च॒ । गाम् । प॒दा । स्फु॒रति॑ । प्रत्यङ् । सूर्य॑म् । च॒ । मेह॑ति ॥ तस्य॑ । वृ॒श्चा॒मि॒ । ते॒ । मूल॑म् । न । छा॒याम् । क॒र॒वः । अप॑रम् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—(यः) जो कोई (प्रत्यङ्) प्रतिकूलगामी पुरुष (गाम्) वेदवाणी को (पदा) पग से [तिरस्कार के साथ] (स्फुरति) ठोकर मारता है, (च च) और (सूर्यम्) सूर्य [समान प्रतापी विद्वान् मनुष्य] को (मेहति =

५५—(सः) प्रसिद्धः (यज्ञः) यजनीयः परमेश्वरः (प्रथमः) आदिमः (भूतः) भूतकाले भवः (भव्यः) भविष्यति भवः (अजायत) प्रादुरभवत् (तस्मात्) परमेश्वरात् (ह) एव (जज्ञे) प्रादुर्बभूव (इदम्) (सर्वम्) जगत् (यत्) (किं च) किमपि (इदम्) (विरोचते) विविधं दीप्यते दृश्यते (रोहितेन) सर्वोत्पादकेन (ऋषिणा) सर्वदर्शिना महाज्ञानिना (आभृतम्) समन्तात् पोषितम् ॥

५६—(यः) दुराचारी (च) (गाम्) वेदवाचम् (पदा) पादेन। तिरस्कारेण (स्फुरति) संचालयति (प्रत्यङ्) प्रतिकूलगामी (सूर्यम्) सूर्यवत्तेजस्विनं विद्वांसम् (च] (मेहति) मिधृ मेधृ मेधाहिंसनयोः, धस्य हः।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेधति) सताता है। (तस्य ते) उस तेरी (मूलम्) जड़ को (वृश्चामि) मैं काटता हूं, तू (छायाम्) छाया [अन्धकार वा अविद्या] को (अपरम्) फिर (न) न (करवः) फैलावे ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य वेदवाणी का तिरस्कार करके विद्वानों को कष्ट देवे, उस को लोग दण्ड देकर नाश करें ॥ ५६ ॥

येा मांभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्यं वृश्चामि ते मूलं न च्छायां कंरवोऽपरम् ॥ ५७ ॥

यः । मा । अभि-छायम् । अति-एषि । माम् । च । अग्निम् । च । अन्तरा ॥ तस्य । वृश्चामि । ते । मूलम् । न । छायाम् । करवः । अपरम् ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—(यः) जो तू (माम्) मेरे (च च) और (अग्निम् अन्तरा) अग्नि [अग्नि समान ज्ञान प्रकाश] के बीच [होकर] (अभिच्छायम् मा) मुझ तेज पाये हुये को (अत्येषि) उलांघता है। (तस्य ते) उस तेरी (मूलम) जड़ को (वृश्चामि) मैं काटता हूं, तू (छायाम्) छाया [अन्धकार वा अविद्या] को (अपरम्) फिर (न) न (करवः) फैलावे ॥ ५७ ॥

मेधति । हिनस्ति (तस्य) दुष्टस्य (वृश्चामि) छिनद्मि (ते) तव (मूलम्) (न) निषेधे (छायाम्) माछाससिभ्यो यः । उ० ४ । १०९ । छो छेदने—य, टाप् । छ्यति प्रकाशमप्रकाशं वा । छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः—अमर० २३ । २५७ । अनातपम् । अन्धकारम् । अज्ञानम् (करवः) कृ विक्षेपे-लेट्, छन्दसि तनादित्वादुप्रत्ययः, गुणे च कृते, करु सिप् । लेटोऽडाटौ । पा० ३ । ४ । ९४ । इत्यटि गुणे च कृते सकारस्य विसर्गे च जाते रूपसिद्धिः । विक्षिप । विस्तारय (अपरम्) पुनः ॥

५७—(यः) दुराचारी (मा) मां ब्रह्मचारिणम् (अभिच्छायम्) छाया कान्तिः-म० ५६ । अभिगता छाया कान्तिस्तेजो येन तं विद्वांसम् (अत्येषि) उल्लङ्घयसि (माम्) (च) (अग्निम्) अग्निवद् ज्ञानप्रकाशम्, (च) (अन्तरा) मध्ये । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जैसे जलते हुये अग्नि का प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है और कोई दोनों के बीच में पड़ कर प्रकाश को रोक दे, ऐसे ही जो दुराचारी वेदविद्या और ब्रह्मचारी के बीच विघ्न डालकर उत्तम व्यवहार के प्रचारों को रोके, उसे लोग दण्ड देकर नाश करें ॥ ५७ ॥

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥

यः । अद्य । देव । सूर्य । त्वाम् । च । माम् । च । अन्तरा । अयति ॥ दुः-स्वप्न्यम् । तस्मिन् । शमलम् । दुः-इतानि । च । मृज्महे ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—(देव) हे प्रकाशमान ! (सूर्य) सूर्य [सूर्य समान तेजस्वी विद्वान् !] (यः) जो कोई [शत्रु] (अद्य) आज (त्वाम्) तेरे (च च) और (माम् अन्तरा) मेरे बीच (अयति) चले । (तस्मिन्) उस विषय में [आये हुये] (दुष्वप्न्यम्) बुरे स्वप्न, (शमलम्) मलिन व्यवहार (च) और (दुरितानि) दुर्गतियों को (मृज्महे) हम शुद्ध करते हैं ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्टता के कारण शुभ गुणों के प्रकाशों को रोके, विद्वान् लोग उन सब विघ्नों को हटाने के लिये प्रयत्न करें ॥ ५८ ॥

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥

मा । प्र । गाम । पथः । वयम् । मा । यज्ञात् । इन्द्र । सोमिनः । मा । अन्तः । स्थुः । नः । अरातयः ॥ ५९ ॥

५८—(यः) शत्रुः (अद्य) अस्मिन् दिने (देव) हे प्रकाशमान (सूर्य) आदित्यवत्तेजस्विन् विद्वन् (त्वाम्) (च) (माम्) (च) (अन्तरा) मध्ये (अयति) गच्छति (दुष्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्नम् (तस्मिन्) पूर्वोक्ते विषये (शमलम्) भ्रष्टव्यवहारम् (दुरितानि) कष्टानि (च) (मृज्महे) शोधयामः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (पथः) वैदिक मार्ग से (वयम्) हम (मा प्र गाम) कभी दूर न जावें, और (मा) न (सोमिनः) ऐश्वर्य युक्त (यज्ञात्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान व्यवहार] से [दूर जावें]। (अरातयः) अदानी लोग (नः अन्तः) हमारे बीच (मा स्थुः) न ठहरें ॥ ५९ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग परमात्मा की उपासना करते हुये सदा वैदिक मार्ग पर चल कर श्रेष्ठ कर्म करें और सुपात्रों को योग्य दान देते रहें ॥ ५९ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० । ५७ । १ ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥ (६)

यः । यज्ञस्य । प्र-साधनः । तन्तुः । देवेषु । आ-ततः ॥
तम् । आ-हुतम् । अशीमहि ॥ ६० ॥ (६)

भाषार्थ—(यः) जो [परमात्मा] (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण, दानव्यवहार] का (प्रसाधनः) बड़ा साधक (तन्तुः) तन्तु [सूत्रात्मा रूप] होकर (देवेषु) देवों [इन्द्रियों, लोकों, और विद्वानों] में (आततः) निरन्तर फैला है । (तम् आहुतम्) उस सब ओर से ग्रहण किये गये [परमेश्वर] को (अशीमहि) हम प्राप्त होवें ॥ ६० ॥

भावार्थ—मनुष्य उस जगत् पिता, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापक परमात्मा को ध्यान में रख कर अपनी उन्नति करें ॥ ६० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । ५७ । २ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

५९—(मा प्र गाम) नैव दूरे गच्छेम (पथः) वैदिकमार्गात् (वयम्) धार्मिकाः (मा) निषेधे (यज्ञात्) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारात् (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन्, जगदीश्वर (सोमिनः) ऐश्वर्ययुक्तात् (अन्तः) मध्ये (मा स्थुः) न तिष्ठेयुः (नः) अस्माकम् (अरातयः) अदानशीलाः ॥

६०—(यः) परमात्मा (यज्ञस्य) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारस्य (प्रसाधनः) प्रकर्षेण साधकः (तन्तुः) सूत्रात्मा यथा (देवेषु) इन्द्रियेषु लोकेषु विद्वत्सु च (आततः) समन्ताद्विस्तृतः (तम्) परमात्मानम् (आहुतम्) समन्ताद् गृहीतम् (अशीमहि) प्राप्नुयाम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २ ॥

१—४६ ॥ सविता रोहितो देवता ॥ १, १२-१५, २६, ३६-४१ अनुष्टुप् ; २, ८, २७, ४३ निचृज् जगती ; ३ जगती ; ४-७, ९, ३१—३३, ३५, ३६ ३८, ४६ त्रिष्टुप् ; १० निचृदास्तारपङ्क्तिः, ११ विराट् त्रिष्टुप् ; १६—२४ गायत्री; २५ भुरिग् ब्राह्मी गायत्री; २६ भुरिग् जगती ; २८ आर्षी त्रिष्टुप् ; ३० स्वराडार्षी जगती ; ३५ पङ्क्तिः ; ३७ आर्षी जगती ; ४२ भुरिक् त्रिष्टुप् ; ४४ भुरिगार्षी जगती ; ४५ आर्षी जगती ॥

आध्यात्मोपदेशः—परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश ॥

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥

उत् । अस्य । केतवः । दिवि । शुक्राः । भ्राजन्तः । ईरते ॥
आदित्यस्य । नृ-चक्षसः । महि-व्रतस्य । मीढुषः ॥ १ ॥

भाषार्थ - (अस्य) इस (नृचक्षसः) मनुष्यों के देखने वाले (महिव्रतस्य) बड़े नियम वाले, (मीढुषः) सुख बरसाने वाले (आदित्यस्य) अविनाशी परमात्मा के (शुक्राः) पवित्र (भ्राजन्तः) चमकते हुये (केतवः) विज्ञान (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (उत् ईरते) उदय होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वह सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अपनी महिमा से प्रत्येक व्यवहार में वर्तमान है, तुम उस को खोजकर अपना विज्ञान बढ़ाओ ॥ १ ॥

१—(उदीरते) उद्यन्ति (अस्य) प्रत्यक्षस्य (केतवः) विज्ञानानि । केतुः प्रज्ञानाम—निघ० ३ । ९ (दिवि) प्रत्येकव्यवहारे (शुक्राः) शुचयः । पवित्राः (भ्राजन्तः) प्रकाशमानाः (आदित्यस्य) अविनाशिनः परमेश्वरस्य (महिव्रतस्य) महानियमयुक्तस्य (मीढुषः) दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च । पा० ६ । १ । १२ । मिह सेचने-कसु, निपात्यते । सुखवर्षकस्य ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः२

दिशाम् । प्र-ज्ञानाम् । स्वरयन्तम् । अर्चिषा । सु-पक्षम् ।
आशुम् । पतयन्तम् । अर्णवे ॥ स्तवाम । सूर्यम् । भुवनस्य ।
गोपाम् । यः । रश्मि-भिः । दिशः । आ-भाति । सर्वाः ॥२॥

भाषार्थ—(प्रज्ञानाम्) बड़े ज्ञान कराने वाली (दिशाम्) दिशाओं का (अर्चिषा) अपने पूजनीय कर्म से (स्वरयन्तम्) उपदेश करने वाले (सुपक्षम्) सुन्दर रीति से ग्रहण करने वाले, (आशुम्) सर्वव्यापक, (अर्णवे) समुद्ररूप संसार में (पतयन्तम्) ऐश्वर्य करने वाले (भुवनस्य) संसार के (गोपाम्) रक्षक (सूर्यम्) सब के नायक परमेश्वर की (स्तवाम) हम स्तुति करें। (यः) जो [परमेश्वर] (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (रश्मिभिः) अपनी व्याप्तियों से (आभाति) निरन्तर चमकता है ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वव्यापक, सर्वरक्षक परमेश्वर की उपासना कर के अपनी उन्नति करें ॥ २ ॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं ननारूपे अहनी कर्षि मायया । तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३ ॥

यत् । प्राङ् । प्रत्यङ् । स्वधया । यासि । शीभम् । नानारूपे

२—(दिशाम्) दिशानाम् (प्रज्ञानाम्) प्रज्ञापिनीनाम् (स्वरयन्तम्) उपदिशन्तम् (अर्चिषा) स्वपूजाकर्मणा (सुपक्षम्) पक्ष परिग्रहे—अच्। यथावत् परिग्रहीतारम् (आशुम्) अशू व्याप्तौ-उण्। सर्वव्यापकम् (पतयन्तम्) ऐश्वर्यं कुर्वन्तम् (अर्णवे) समुद्ररूपे संसारे (स्तवाम) प्रशंसाम (सूर्यम्) चराचरात्मानं सर्वनायकं परमेश्वरम् (भुवनस्य) संसारस्य (गोपाम्) रक्षकम् (रश्मिभिः) अश्नोतेरश्च । उ० ४ । ४६ । अशू व्याप्तौ-मि, रशादेशः । स्वव्याप्तिभिः (दिशः) दिशाः (आभाति) समन्ताद् दीप्यते (सर्वाः) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति नाना-रूपे । अहनी इति । कर्षि । मायया ॥ तत् । आदित्य । महि । तत् । ते । महि । श्रवः । यत् । एकः । विश्वम् । परि । भूम । जायसे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यत्) जिस कारण से कि तू (प्राङ्) सन्मुख [वा पूर्व में] जाता हुआ और (प्रत्यङ्) पीछे [वा पश्चिम में] जाता हुआ (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (शीभम्) शीघ्र (यासि) चलता है, और (मायया) अपनी बुद्धिमत्ता से (नानारूपे) विरुद्ध रूप वाले (अहनी) दोनों दिन राति को (कर्षि) तू बनाता है। (तत्) उसी कारण से, (आदित्य) हे प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर ! (तत्) वह (ते) तेरी (महि महि) बड़ी बड़ी (श्रवः) कीर्ति है, (यत्) कि (एकः) एक ही तू (विश्वम्) सब (भूम परि) बहुतायत [संसार] में सब ओर से (जायसे) प्रकट होता है॥ ३ ॥

भावार्थ—अद्वितीय परमात्मा सृष्टि के आदि अन्त और स्थिति में वर्तमान रहकर विरुद्ध स्वभाव वाले प्रकाश और अन्धकार युक्त दिन राति को बनाता है, वैसे ही वह जड़ और चैतन्य जगत् को रचकर सब का पोषण करता है, उसी प्रकार मनुष्य विघ्नों को हटा कर आत्म बल बढ़ा कर पुरुषार्थ करें ॥३॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः । स्वताद् यमत्ति दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥

विपः-चितम् । तरणिम् । भ्राजमानम् । वहन्ति । यम् । हरितः । सप्त । बह्वीः ॥ स्वतात् । यम् । अत्तिः । दिवम् ।

३—(यत्) यस्मात् कारणात् (प्राङ्) आभिमुख्येन पूर्वदिशि वा गच्छन् (प्रत्यङ्) पश्चात् पश्चिमदिशि वा गच्छन् (स्वधया) स्वधारणशक्त्या (यासि) गच्छसि (शीभम्) क्षिप्रम्—निघ० २। १५ (नानारूपे) विरुद्धरूपे (अहनी) अहोरात्रे (कर्षि) करोषि (मायया) प्रज्ञया (तत्) तस्मात् कारणात् (आदित्य) हे आदीप्यमान परमेश्वर (महि) महत् (तत्) (महि) (श्रवः) कीर्तिः (यत्) (एकः) अद्वितीयः । असहायः (विश्वम्) (सर्वम्) (परि) अभितः (भूम) बहुत्वं संसारम् (जायसे) प्रादुर्भवसि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्-निनाय। तम्। त्वा। पश्यन्ति। परि-यान्तम्। आजिम्॥

भाषार्थ—(यम्) जिस (विपश्चितम्) विविध प्रकार [पार्थिव रस] एकत्र करने वाले, (भ्राजमानम्) प्रकाशमान, (तरणिम्) [अन्धकार से] पार करने वाले सूर्य को (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण वाली] (बह्वीः) बहुत [भिन्न भिन्न प्रकार वाली] (हरितः) आकर्षक किरणें (वहन्ति) ले चलती हैं। (यम्) जिस [सूर्य] को (अत्रिः) नित्य ज्ञानी [परमात्मा] ने (स्रुतात्) बहते हुये [प्रकृति-रूप समुद्र] से (दिवम्) आकाश में (उन्निनाय) ऊंचा किया है, (तम् त्वा) उस तुझ [सूर्य] को (आजिम्) मर्यादा पर (परियान्तम्) सर्वथा चलता हुआ (पश्यन्ति) वे [विद्वान्] देखते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा ने प्रलय के पीछे अनेक लोकों के धारक आकर्षक सूर्य को रचकर दृढ़ता से आकाश में चलाया है, विद्वान् लोग परमेश्वर की उस बड़ी महिमा को विचार कर वैदिक मार्ग पर दृढ़ होकर चलते हैं ॥ ४॥

इस मन्त्र से मन्त्र २४ तक सूर्य का वर्णन करके परमेश्वर की महिमा का वर्णन किया है मन्त्र २४ की टिप्पणी देखो ॥

मा त्वा द्रभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम्। दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥

४—(विपश्चितम्) वि + प्र + चिञ् चयने—क्विप्, तुक्। पार्थिवरसानां विविधं चयनशीलम् (तरणिम्) अन्धकारात् तारकं सूर्यम् (भ्राजमानम्) प्रकाशमानम् (वहन्ति) गमयन्ति (यम्) (हरितः) हृसृरुहियुषिभ्य इतिः। उ० १। ९७। हृञ् प्रापणस्वीकारस्तेयनाशनेषु—इतिप्रत्ययः। हरित आदित्यस्याऽऽदिष्टोपयोजनानि—निघ० १। १५। रसाकर्षकाः किरणाः (सप्त) शुक्लनील-पीतरक्तहरितकपिशचित्ररूपयुक्ताः (बह्वीः) बहवः। अनेकविधाः (स्रुतात्) स्रवणशीलात् प्रकृतिरूपसमुद्रात् (यम्) (अत्रिः) अदेस्त्रिनिश्च। उ० ४। ६८। अत सातत्यगमने—त्रिप्। सदाज्ञानवान् परमात्मा (दिवम्) आकाशम् (उन्निनाय) उन्नतवान् (तम्) (त्वा) (पश्यन्ति) अवलोकयन्ति विद्वांसः (परियान्तम्) परितो गच्छन्तम् (आजिम्) अज्यतिभ्यां च। उ० ४। १३१। अज गतिक्षेपणयोः—इण्। मर्यादाम्। संग्रामम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा । त्वा । दभन् । परि-यान्तम् । आजिम् । स्वस्ति । दुः-गान् । अति । याहि । शीभम् ॥ दिवम् । च । सूर्य । पृथि-वीम् । च । देवीम् । अहोरात्रे इति । विमिमानः । येत् । एषि ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे सूर्य !] (आजिम्) मर्यादा पर (परियान्तम्) सब ओर से चलते हुये (त्वा) तुझ को वे [विघ्न] (मा दभन्) न दबावें, (दुर्गान्) विघ्नों को (अति) उलांघ कर (स्वस्ति) आनन्द के साथ (शीभम्) शीघ्र (याहि) चल । (यत्) क्योंकि (सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलाने वाले पिण्ड-विशेष] (दिवम्) आकाश (च च) और (देवीम्) चलने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (अहोरात्रे) दिन रात (विमिमानः) विविध प्रकार नापता हुआ (एषि) तू चलता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार ईश्वर नियम से सूर्य अन्धकार आदि विघ्नों को मिटाकर जगत् का उपकार करता है, वैसे ही मनुष्य दोषों को त्याग कर सबको सुख पहुंचाने में प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बर्हीः ६

स्वस्ति । ते । सूर्य । चरसे । रथाय । येन । उभौ । अन्तौ । परि-यासि । सद्यः ॥ यम् । ते । वहन्ति । हरितः । वहिष्ठाः । शतम् । अश्वाः । यदि । वा । सप्त । बर्हीः ॥ ६ ॥

५—(मा दभन्) मा हिंसन्तु ते विघ्नाः (त्वा) सूर्यम् (परियान्तम्) परितो गच्छन्तम् (आजिम्) म० ४ । मर्यादाम् (स्वस्ति) मङ्गलेन सह (दुर्गान्) विघ्नान् (अति) उल्लङ्घ्य (याहि) प्राप्नुहि (शीभम्) शीघ्रम् (दिवम्) आकाशम् (च) (सूर्य) हे प्रेरक रवे (पृथिवीम्) (च) (देवीम्) दिवु गतौ—अच् । गतिशीलाम् (अहोरात्रे) (विमिमानः) विविधं मानं कुर्वन् (यत्) यस्मात् कारणात् (एषि) गच्छसि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलाने वाले पिण्डविशेष] (ते) तेरे (रथाय) रथ [गति विधान] के लिये (चरसे) चलने को (स्वस्ति) कल्याण है, (येन) जिसके कारण से तू (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्तों [आगे पीछे दोनों ओर, अथवा उत्तरायण और दक्षिणायन मार्ग] को (सद्यः) तुरन्त (परियासि) घूमता चलता है। (यम्) जिस [रथ] को (ते) तेरी (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली—मन्त्र ४] (बह्वीः) बहुतसी [भिन्न भिन्न वर्ण वाली] (वहिष्ठाः) अत्यन्त बहने वाली [शीघ्रगामी] (हरितः) आकर्षक किरणें (यदि वा) अथवा (शतम्) सौ [असंख्य] (अश्वाः) व्यापक गुण [घोड़े समान] (वहन्ति) ले चलते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सूर्य गोल पिण्ड है, उसका प्रकाश आगे पीछे सब ओर होता है और वह उत्तरायण और दक्षिणायन मार्ग पर चलता और किरणों द्वारा आकर्षण और वृष्टि आदि करके लोकों का धारण पोषण करता है, उसी प्रकार मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान होकर आगा पीछा सोचकर संसार में अपना कर्तव्य पूरा करे ॥ ६ ॥

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवन्हिमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ७

सु-खम् । सूर्य । रथम् । अंशु-मन्तम् । स्योनम् । सु-वह्निम् । अधि । तिष्ठ । वाजिनम् ॥ यम् । ते । वहन्ति । हरितः । वहिष्ठाः । शतम् । अश्वाः । यदि । वा । सप्त । बह्वीः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलाने वाले पिण्डविशेष] (सुखम्)

६—(स्वस्ति) कल्याणम् (ते) तव (सूर्य) हे रवे (चरसे) गमनाय (रथाय) रथो रंहतेर्गतिकर्मणः—निरु० ९ । ११ । रंहणसामर्थ्याय । गतिविधानाय (येन) (उभौ) (अन्तौ) परं चापरं च देशौ । उत्तरायणदक्षिणायनमार्गौ (परियासि) परीत्य गच्छसि (सद्यः) तत्क्षणम् (यम्) रथम् (ते) तव (वहन्ति) गमयन्ति (हरितः) म० ४ । आकर्षकाः किरणाः (वहिष्ठाः) वहितृतमाः । अतिशयेन वहनशीलाः । गन्तृतमाः (शतम्) असंख्याताः (अश्वाः) व्याप्तिगुणाः । तुरङ्गा यथा (सप्त) म० ४ (बह्वीः) बह्वयः ॥

७—(सुखम्) सुखेन गच्छन्तम् (सूर्य) रविमण्डल (रथम्) म० ६ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख से चलने-वाले, (अंशुमन्तम) तेजो मय, (स्योनम्) आनन्द दायक (सुवहिम्) भले प्रकार ले चलने वाले, (वाजिनम्) बल वाले (रथम्) रथ [गति विधान] पर (अधि तिष्ठ) अधिष्ठाता हो। (यम्) जिस [रथ] को (ते) तेरी (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली—मन्त्र ४] (बह्वीः) बहुत सी [भिन्न भिन्न वर्णों वाली], (बहिष्ठाः) अत्यन्त वहने वाली [शीघ्र गामी] (हरितः) आकर्षक किरणें, (यदि वा) अथवा (शतम्) सौ [असंख्य] (अश्वाः) व्यापक गुण [घोड़े समान] (वहन्ति) ले चलते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने जैसे प्रत्येक सूर्य मण्डल को अनेक लोकों की स्थिति के लिये रचा है, वैसे ही उसने मनुष्य को अनेक प्राणियों के पालन के लिये बनाया है ॥ ७ ॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ८

सप्त । सूर्यः । हरितः । यातवे । रथे । हिरण्य-त्वचसः । बृहतीः । अयुक्त ॥ अमोचि । शुक्रः । रजसः । परस्तात् । वि-धूय । देवः । तमः । दिवम् । आ । अरुहत् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(सूर्यः) सूर्य [लोकों के चलाने वाले पिण्ड विशेष] ने (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली—म० ४], (हिरण्यत्वचसः) तेज की त्वचा [ढक्कन] रखने वाली, (बृहतीः) बड़ी [दूर दूर जाने वाली] (हरितः) आकर्षक किरणों को (रथे) अपने रथ [गति विधान] में (यातवे) चलने के लिये (अयुक्त) जोड़ा है। (शुक्रः) तेजस्वी वह (रजसः)

गतिविधानम् (अंशुमन्तम्) तेजोमयम् (स्योनम्) सुखप्रदम् (सुवहिम्) सुवोढारम् (अधि तिष्ठ) आरोह (वाजिनम्) बलवन्तम्। अन्यत् पूर्ववत्—म० ६ ॥

८—(सप्त) शुक्लनीलपीतादिवर्णयुक्ताः—म० ४ (सूर्यः) लोकानां प्रेरकः पिण्डविशेषः (हरितः) आकर्षकान् किरणान् (यातवे) गन्तुम् (रथे) म० ६। गतिविधाने (हिरण्यत्वचसः) त्वच संवरणे—असुन्। तेजोमयत्वगयुक्ताः (बृहतीः) महतीः। दूरगमनाः (अयुक्त) योजितवान् (अमोचि) अत्या-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुन्धलेपन से (परस्तात्) दूर (अमोचि) छोड़ा गया है और (देवः) प्रकाशमान [सूर्य] (तमः) अन्धकार को (विधूय) हिला डालकर (दिवम्) आकाश में (आ अरुहत्) ऊंचा हुआ है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य दूर पहुंचने वाली किरणों द्वारा अन्धकार को नाश करके अनेक लोकों को आकर्षण में रखकर ऊंचा ठहरा है, वैसे ही मनुष्य अविद्या मिटाकर विद्या का प्रकाश करके प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥ ८ ॥

उत् के॒तुना॑ बृह॒ता दे॒व आग॒न्नप॑ावृक् तम॒सोऽभि ज्योति॑रश्रैत् ।
दि॒व्यः सु॑प॒र्णः स वी॒रो व्य॑ख्यददि॒तेः पु॒त्रो भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ९

उत् । के॒तुना॑ । बृ॒ह॒ता । दे॒वः । आ । अ॒ग॒न् । अप॑ । अ॒वृ॒क् । तम॑सः । अ॒भि । ज्योतिः॑ । अ॒श्रै॒त् ॥ दि॒व्यः । सु॒-प॒र्णः । सः । वी॒रः । वि । अ॒ख्य॒त् । अ॒दि॒तेः । पु॒त्रः । भुव॑नानि । विश्वा॑ ९

भाषार्थ—(देवः) प्रकाशमान सूर्य (बृहता केतुना) बड़ी सजधज से (उत् आ अगन्) ऊंचा होकर आया है, उसने (तमः) अन्धकार को (अप अवृक्) हटा दिया है। और (ज्योतिः अभि) ज्योति को प्राप्त करके (अश्रैत्) ठहरा है। (दिव्यः) आकाशनिवासी, (सुपर्णः) सुन्दर नीति से पालन करने वाला, (अदितेः) अखण्ड प्रकृति के (पुत्रः) पुत्र [समान], (सः) उस (वीरः) वीर [विविध गति वाले सूर्य] ने (विश्वा) सब (भुवनानि)

जि (शुक्रः) प्रकाशमानः (रजसः) अन्धकारात् । धूम्रवर्णात् (परस्तात्) दूरे (विधूय) पृथक् कम्पयित्वा (देवः) प्रकाशमानः सूर्यः (तमः) अन्धकारम् (दिवम्) आकाशम् (आ अरुहत्) आरूढवान् ॥

८—(उत्) ऊर्ध्वः सन् (केतुना) प्रज्ञानेन (बृहता) महता (देवः) प्रकाशमानः सूर्यः (आ अगन्) आगतवान् (अप अवृक्) अपवर्जितवान् (तमः) अन्धकारम् (अभि) अभिगत्य (ज्योतिः) प्रकाशम् (अश्रैत्) श्रिञ् सेवायाम्—लुङि छान्दसं रूपम्। आश्रितवान् (दिव्यः) दिवि आकाशे भवः (सुपर्णः) शोभनपालनः (सः) प्रसिद्धः (वीरः) वि+ईर गतौ—अच्। विविधगतिः (व्यख्यत्) व्याख्यातानि प्रसिद्धानि कृतवान् (अदितेः) अखण्डि-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकों को (वि अख्यत्) प्रसिद्ध किया है ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य ने प्रकृति से उत्पन्न होकर अन्धकार मिटाकर संसार में उजाला फैलाया है, वैसेही तुम ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुणों से तेजस्वी होकर कीर्ति बढ़ाओ ॥ ९ ॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि । उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥ (७)

उत्-यन् । रश्मीन् । आ । तनुषे । विश्वा । रूपाणि । पुष्यसि ॥ उभा । समुद्रौ । क्रतुना । वि । भासि । सर्वान् । लोकान् । परि-भूः । भ्राजमानः ॥ १० ॥ (७)

भाषार्थ—[हे सूर्य !] (उद्यन्) ऊंचा होता हुआ तू (रश्मीन्) किरणों को (आ) सब ओर से (तनुषे) फैलाता है, और (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [वस्तुओं] को (पुष्यसि) पुष्ट करता है। (उभौ) दोनों (समुद्रौ) समुद्रों [जड़ चेतन रूप संसार] को, (सर्वान् लोकान्) सब लोकों के (परिभूः) चारों ओर घूमता हुआ और (भ्राजमानः) चमकता हुआ तू (क्रतुना) अपने कर्म से (वि भासि) प्रकाशित कर देता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य ऊंचा होकर सृष्टि को प्रकाशित करके पुष्ट करता है, वैसे ही सब मनुष्य विद्या से सुभूषित होकर परोपकार करें ॥ १० ॥

पूर्वापरं चरतो मायया तौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् । विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥

तायाः प्रकृतेः (पुत्रः) पुत्रो यथा (भुवनानि) लोकान् (विश्वा) सर्वाणि ॥

१०—(उद्यन्) उद्गच्छन् (रश्मीन्) किरणान् (आ) समन्तात् (तनुषे) विस्तारयसि (विश्वा) सर्वाणि (रूपाणि) वस्तूनि (पुष्यसि) वर्धयसि (उभा) द्वौ (समुद्रौ) जड़चेतनरूपौ संसारौ (क्रतुना) कर्मणा (वि) विविधम् (भासि) दीपयसि (सर्वान्) (लोकान्) (परिभूः) परिग्राहकः । परिभ्राम्यन् (भ्राजमानः) प्रकाशमानः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-अपरम् । चरतः । मायया । एतौ । शिशू इति । क्रीडन्तौ । परि । यातः । अर्णवम् ॥ विश्वा । अन्यः । भुवना । वि-चष्टे । हैरण्यैः । अन्यम् । हरितः । वहन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(एतौ) यह दोनों [सूर्य चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर नियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुये (शिशू) दो, बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) सब ओर (यातः) चलते हैं। (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यम्) दूसरे [चन्द्रमा] को (हरितः) [सूर्य की] आकर्षक किरणें (हैरण्यैः) तेजोमय [वा सुनैले] कामों के द्वारा (वहन्ति) ले चलती हैं ॥११॥

भावार्थ—सूर्य और चन्द्रमा ईश्वर नियम से उत्पन्न हुये हैं, तेजस्वी सूर्य प्रकाश रहित चन्द्रमा को अपने आकर्षण में रख कर प्रकाशित और उपकारी करता है, वैसे ही मनुष्य शुभ गुणों से प्रतापी होकर दूसरों को गुणवान करें ॥ ११ ॥

इस मन्त्र के प्रथम तीन पाद कुछ भेद से—ऋ० १० । ८५ । १८ में हैं, और पीछे—अथर्व० ७ । ८१ । १ में आचुके हैं, और आगे—अ० १४ । १ । २३ में हैं ॥

दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥

दिवि । त्वा । अत्रिः । अधारयत् । सूर्य । मासाय । कर्तवे ॥

११—(पूर्वापरम्) यथा तथा पूर्वापरपर्यायेण (चरतः) विचरतः (मायया) ईश्वरप्रज्ञया (एतौ) दृश्यमानौ सूर्याचन्द्रमसौ (शिशू) अ० ७ । ८१ । १ । बालकौ यथा (क्रीडन्तौ) विहरन्तौ (परि) (सर्वतः) (यातः) गच्छतः (अर्णवम्) समुद्रम् । अन्तरिक्षम् (विश्वा) सर्वाणि (अन्यः) एकः सूर्यः (भुवना) चन्द्रादिलोकान् (विचष्टे) विविधं पश्यति (हैरण्यैः) विकारे अण् । तेजोमयैः सुवर्णमयैर्वा कर्मभिः (अन्यम्) द्वितीयं चन्द्रमसम् (हरितः) आकर्षकाः किरणाः (वहन्ति) गमयन्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सः । एषि । सु-धृतः । तपन् । विश्वा । भूता । अव-चाकशत् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलाने वाले रवि मण्डल] (अत्तिः) सदा ज्ञानवान् [परमात्मा] ने (मासाय) महीना [काल विभाग] (कर्तवे) करने के लिये (त्वा) तुझ को (दिवि) आकाश में (अधारयत्) धारण किया है । (सः) वह तू (सुधृतः) अच्छी प्रकार धारण किया गया, (तपन्) तपता हुआ, और (विश्वा भूता) सब प्राणियों को (अवचाकशत्) निहारता हुआ (एषि) चलता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने सूर्य को बहुत से लोकों पर आकर्षण, ताप, वृष्टि आदि पहुंचाने के लिये बनाया है, मनुष्य उसी प्रकार तेजस्वी होकर परस्पर पुरुषार्थ करें ॥ १२ ॥

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥

उभौ । अन्तौ । सम् । अर्षसि । वत्सः । सं-मातरौ-इव ॥ ननु । एतत् । इतः । पुरा । ब्रह्म । देवाः । अमी इति । विदुः ॥१३॥

भाषार्थ—[हे सूर्य !] तू (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्तों [पूर्व पश्चिम अथवा आगे पीछे दोनों ओर] को (सम्) ठीक ठीक (अर्षसि) पहुंचता है, (इव) जैसे (वत्सः) बालक (संमातरौ) दो सामान्य [मिली हुयी] माताओं को । (ननु) निश्चय करके (एतत्) इस (ब्रह्म) ईश्वर ज्ञान

१२—(दिवि) आकाशे (त्वा) सूर्यम् (अत्तिः) म० ४ । सदा ज्ञानवान् परमात्मा (अधारयत्) स्थापितवान् (सूर्य) सांहितिको दीर्घः । हे रविमण्डल (मासाय) कालविभागायेत्यर्थः (कर्तवे) कर्तुम् (सः) स त्वम् (एषि) गच्छसि (सुधृतः) सुपुष्टः (तपन्) तापं कुर्वन् (विश्वा) सर्वाणि (भूता) लोकान् (अवचाकशत्) अ० ६ । ८० । १ । भृशं पश्यन् ॥

१३—(उभौ) द्वौ (अन्तौ) पूर्वापरौ पूर्वपश्चिमदेशौ वा (सम्) सम्यक् (अर्षसि) प्राप्नोषि (वत्सः) बालकः (संमातरौ) समानजनन्यौ (इव) यथा (ननु) निश्चयेन (एतत्) प्रत्यक्षम् (इतः) अस्मात् कालात्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (इतः पुरा) इस [समय] के पहिले से (अमी) यह (देवाः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सूर्य को ऐसी उचित रीति से बनाया है कि वह निरन्तर घूमकर सृष्टि का उपकार करे, पूर्वज विद्वान् लोग ईश्वर के ऐसे नियमों को जानकर सुधार करते रहे हैं ॥ १३ ॥

यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥

यत् । समुद्रम् । अनु । श्रितम् । तत् । सिषासति । सूर्यः ॥
अध्वा । अस्य । वि-ततः । महान् । पूर्वः । च । अपरः । च ।
यः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो कुछ (समुद्रम् अनु) समुद्र [संसार] में (श्रितम्) ठहरा हुआ है, (तत्) उस को (सूर्यः) सूर्य [लोकों का चलाने वाला रवि] (सिषासति) सेवा करना चाहता है। (अस्य) उस [सूर्य] का (अध्वा) मार्ग (विततः) फैला हुआ और (महान्) बड़ा है, (यः) जो [मार्ग] (पूर्वः) आगे (च च) और (अपरः) पीछे [अथवा पूर्व और पश्चिम] है ॥ १४ ॥

भावार्थ—यह सूर्य अपने घेरे के भीतर सब लोकों को आकर्षण, वृष्टि आदि से सेवता है, उस नियम को निरखकर विद्वान् लोग मर्यादा पर चलें ।१४

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नार्पं चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥ १५ ॥

(पुरा) पूर्वम् (ब्रह्म) ईश्वरज्ञानम् (देवाः) विद्वांसः (अमी) वर्त्तमानाः (विदुः) जानन्ति ॥

१४—(यत्) वस्तुजातम् (समुद्रम्) संसाररूपम् (अनु) प्रति (श्रितम्) स्थितम् (तत्) (सिषासति) षण संभक्तौ—सन्। सेवितुमिच्छति (सूर्यः) आदित्यलोकः (अध्वा) मार्गः (अस्य) सूर्यस्य (विततः) विस्तृतः (पूर्वः) (च) (अपरः) पश्चाद् भवः। पश्चिमः (च) (यः) मार्गः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम् । सम् । आप्नोति । जूतिः-भिः । ततः । न । अप । चिकित्सति ॥ तेन । अमृतस्य । भक्षम् । देवानाम् । न । अव । रुन्धते ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(तम्) उस [मार्ग] को (जूतिभिः) अपने वेगों से (सम् आप्नोति) वह [सूर्य] समाप्त करता रहता है, (ततः) उस मार्ग से (न अप चिकित्सति) वह भूल नहीं करता। (तेन) उसी कारण से (देवानाम्) विजय चाहने वालों के (अमृतस्य) अमरपन [जीवन साधन] के (भक्षम्) सेवन को (न अव रुन्धते) वे [विघ्न] नहीं रोकते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—सूर्य निरन्तर घूम कर संसार में प्रकाश करता रहता है, उसी से सब पुरुषार्थी जन जीवन सामग्री पाते हैं ॥ १५ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥

उत् । ऊं इति । त्यम् । जात-वेदसम् । देवम् । वहन्ति । केतवः ॥ दृशे । विश्वाय । सूर्यम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(केतवः) किरणें (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों को प्राप्त करने वाले, (देवम्) चलते हुये (सूर्यम्) रविमण्डल को (विश्वाय दृशे) सब के देखने के लिये (उ) अवश्य (उत् वहन्ति) ऊपर ले चलती हैं ॥ १६ ॥

१५—(तम्) अध्वानम् (समाप्नोति) सम्यक् प्राप्नोति (जूतिभिः) जवनैः । वेगैः (ततः) तस्मात् मार्गात् (न) निषेधे (अप) (चिकित्सति) कित व्याधिप्रतीकारनिग्रहापनयननाशनसंशयेषु-स्वार्थे सन् । संदेहं प्रमादं करोति (तेन) कारणेन (अमृतस्य) अमरणस्य । जीवनसाधनस्य । (भक्षम्) वृतॄवदिवचि० । उ० ३ । ६२ । भज सेवायाम्—स । सेवनम् (देवानाम्) विजिगीषूणाम् (न) निषेधे (अव) (रुन्धते) वर्जयन्ति विघ्नाः ॥

१६—(उत्) ऊर्ध्वम् (उ) निश्चये (त्यम्) तम् (जातवेदसम्) यो जातान् पदार्थान् विन्दति तम् (देवम्) गच्छन्तम् (वहन्ति) गमयन्ति (केतवः) किरणाः (दृशे) द्रष्टुम् (विश्वाय) सर्वस्मै जगते (सूर्यम्) रविमण्डलम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य किरणों के आकर्षण से ऊंचा होकर सब पदार्थों को प्रकट करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और धर्म से उन्नति करके सब का उपकार करें १६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ५० । १ ; यजु० ७ । ४१; ८ । ४१; ३३ । ३१ तथा सामवेद पू० १ । ३ । ५ । तथा निरु० १२ । १५ में व्याख्यात है ॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥

अप । त्ये । तायवः । यथा । नक्षत्रा । यन्ति । अक्तु-भिः ॥
सूराय । विश्व-चक्षसे ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(विश्वचक्षसे) सब के दिखाने वाले (सूराय) सूर्य के लिये (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (नक्षत्रा) चलने वाले तारागण (अप यन्ति) भाग जाते हैं, (यथा) जैसे (त्ये) वे (तायवः) चोर [भाग जाते हैं] ॥१७॥

भावार्थ—सूर्य के प्रकाश से रात्रि का अन्धकार मिट जाता है, मन्द चमकने वाले नक्षत्र छिप जाते हैं और चोर लोग भाग जाते हैं, वैसे ही वेद-विज्ञान फैलने से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि होती है ॥ १७ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ५० । २, और सामवेद में पू० ६ । १४ । ७ ॥

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८ ॥

अदृश्रन् । अस्य केतवः । वि । रश्मयः । जनान् । अनु ॥

१७—(अप) दूरीभावे (त्ये) ते (तायवः) तायृ सन्तानपालनयोः यद्वा तसु उपक्षये-उण् सस्य यः । चोराः । स्तेनाः—निघ० ३ । २४ (यथा) (नक्षत्रा) अमिनक्षियजि० । उ० ३ । १० ५ । णक्ष गतौ—अत्रन् । नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः—निरु० ३ । २० । गतिशीलास्तारकाः (यन्ति) गच्छन्ति (अक्तुभिः) पः किच्च । उ० १ । ७१ । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—तुन्, कित्, नलोपः । रात्रिभिः सह—निरु० १२ । २३ (सूराय) सूर्याय (विश्वचक्षसे) विश्वस्य चक्षो दर्शनं यस्मात् तस्मै । सर्वदर्शकाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्राजन्तः । अग्नयः । यथा ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(अस्य) इस [सूर्य] की (केतवः) जताने वाली (रश्मयः) किरणें (जनान् अनु) प्राणियों में (वि) विविध प्रकार से (अदृश्रन्) देखी गयी हैं। (यथा) जैसे (भ्राजन्तः) दहकते हुये (अग्नयः) अंगारे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य की किरणें धूप, बिजुली और अग्नि के रूप से संसार में फैलती हैं, वैसे ही सब मनुष्य शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होकर आत्मा और समाज की उन्नति करें ॥ १८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है–१ । ५० । ३ । यजु० ८ । ४० । और साम० पू० ६ । १४ । ८ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥

तरणिः । विश्व-दर्शतः । ज्योतिः-कृत् । असि । सूर्य ॥
विश्वम् । आ । भासि । रोचन ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! तू (तरणिः) अन्धकार से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) सब का दिखाने वाला और (ज्योतिष्कृत्) [चन्द्र आदि में] प्रकाश करने वाला (असि) है। (रोचन) हे चमकने वाले तू (विश्वम्) सब को (आ) भले प्रकार (भासि) चमकाता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—जैसे यह सूर्य अग्नि, बिजुली, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि पर अपना प्रकाश डालकर उन्हें चमकीला बनाता है, वैसे ही परमात्मा अपने

१८—(अदृश्रन्) दृष्टा अभूवन् (अस्य) सूर्यस्य (केतवः) ज्ञापकाः (वि) विविधम् (रश्मयः) किरणाः (जनान् अनु) जातान् प्राणिनः प्रति (भ्राजन्तः) प्रकाशमानाः (अग्नयः) पावकाः (यथा) ॥

१९—(तरणिः) अन्धकारात् तारकः (विश्वदर्शतः) सर्वस्य दर्शयिता (ज्योतिष्कृत्) चन्द्रादिलोकेषु प्रकाशस्य कर्ता (असि) (सूर्य) (विश्वम्) सर्वं दृश्यमानम् (आ) समन्तात् (भासि) प्रकाशयसि (रोचन) हे प्रकाशमान ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य से सब सूर्य आदि को रचता है और वैसे ही विद्वान् लोग विद्या के प्रकाश से संसार को आनन्द देते हैं ॥ १६ ॥

इस मन्त्र पर ऋग्वेद में सायणाचार्य का लेख इस प्रकार है—"रात्रि में जलमय चन्द्र आदि बिंबों पर सूर्य की किरणें लौटकर अन्धकार को हटाती हैं, जैसे द्वार पर रक्खे दर्पण पर गिरायी गयीं सूर्य की किरणें घर के भीतर के अन्धकार को हटाती हैं" ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ४, यजुर्वेद ३३ । ३६, और सामवेद पू० ६ । १४ । ६ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥ (८)

प्रत्यङ् । देवानाम् । विशः । प्रत्यङ् । उत् । एषि । मानुषीः ॥ प्रत्यङ् । विश्वम् । स्वः । दृशे ॥ २० ॥ (८)

भाषार्थ [हे सूर्य !] (देवानाम्) गतिशील [चन्द्र आदि लोकों] की (विशः) प्रजाओं को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर, (मानुषीः) मानुषी मनुष्य संबन्धी [पार्थिव प्रजाओं] को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर, और (विश्वम्) सब जगत् को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर (स्वः) सुख से (दृशे) देखने के लिये (उत्) ऊंचा होकर (एषि) तू प्राप्त होता है ॥ २० ॥

भावार्थ—सूर्य गोल आकार बहुत बड़ा पिण्ड है, इसलिये वह सब लोकों को सन्मुख दीखता है, और सब लोक उसके आकर्षण प्रकाशन आदि से सुख पाते हैं, ऐसे ही परमात्मा के सर्व व्यापी और सर्वशक्तिमान् होने से उसके नियम पर चलकर सब सुखी रहते हैं ॥ २० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ५, और सामवेद—पू० ६ । १४ । १० ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।

२०—(प्रत्यङ्) अभिमुखः सन् (देवानाम्) गतिशीलानां चन्द्रादिलोकानाम् (विशः) प्रजाः (प्रत्यङ्) (उत्) ऊर्ध्वः सन् (एषि) प्राप्नोषि (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धिनीः पार्थिवप्रजाः (प्रत्यङ्) (विश्वम्) सर्वम् (स्वः) सुखेन (दृशे) द्रष्टुम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥

येन । पावक । चक्षसा । भुरण्यन्तम् । जनान् । अनु ॥

त्वम् । वरुण । पश्यसि ॥ २१ ॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः ।

पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥

वि । द्याम् । एषि । रजः । पृथु । अहः । मिमानः । अक्तु-भिः ॥

पश्यन् । जन्मानि । सूर्य ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(पावक) हे पवित्र करने वाले ! (वरुण) हे उत्तम गुण वाले ! [सूर्य, रविमण्डल] (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (भुरण्यन्तम्) धारण और पोषण करते हुये [पराक्रम] को (जनान् अनु) उत्पन्न प्राणियों में (त्वम्) तू (पश्यसि) दिखाता है ॥ २१ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ५० । ६, यजु० ३३ । ३२, और साम पू० ६ । १४ । ११ ॥

भाषार्थ—[उस प्रकाश से] (सूर्य) हे सूर्य ! [रविमण्डल] (अहः) दिन को (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (मिमानः) बनाता हुआ और (जन्मानि) उत्पन्न वस्तुओं को (पश्यन्) दिखाता हुआ तू (द्याम्) आकाश में (पृथु) फैले हुये (रजः) लोक को (वि) विविध प्रकार (एषि) प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से वृष्टि आदि द्वारा अपने घेरे के

२१—(येन) (पावक) शोधक (चक्षसा) प्रकाशेन (भुरण्यन्तम्) भुरण धारणपोषणयोः—शतृ । धरन्तं पोषयन्तं च (जनान् अनु) उत्पन्नान् प्राणिनः प्रति (त्वम्) (वरुण) उत्तमगुणविशिष्ट (पश्यसि) दर्शयसि ॥

२२—(वि) विविधम् (द्याम्) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे । पा० २ । ३ । ५ । इति द्वितीया । आकाशे (एषि) प्राप्नोषि (रजः) लोकम् (पृथु) विस्तृतम् (अहः) दिनम् (मिमानः) रचयन् सन् (अक्तुभिः) रात्रिभिः (पश्यन्) दर्शयन् (जन्मानि) उत्पन्नानि वस्तूनि (सूर्य) लोकप्रेरक रविमण्डल ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब प्राणियों और लोकों को धारण पोषण करता है, वैसेही मनुष्य सर्वोपरि विराजमान परमात्मा के ज्ञान से परस्पर सहायक होकर सुखी होवें ॥ २१,२२॥ मन्त्र २२ कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ७ और साम० पू० ६ । १४ । १२॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥

सप्त । त्वा । हरितः । रथे । वहन्ति । देव । सूर्य ॥
शोचिः-केशम् । वि-चक्षणम् ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(देव) हे चलनेवाले (सूर्य) सूर्य ! [रविमण्डल] (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि—म० ४] (हरितः) आकर्षक किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र प्रकाश वाले (विचक्षणम्) विविध प्रकार दिखाने वाले (त्वाम्) तुझ को (रथे) रथ [गमन विधान] में (वहन्ति) ले चलती हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—यह प्रकाशमान सूर्यलोक शुक्ल, नील, पीत आदि सात किरणों द्वारा अपनी धुरी पर अपने घेरे में घूमता है। इस नियम का बनाने वाला वह परमेश्वर है ॥ २३ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है-१ । ५० । ८, और साम० पू० ६ । १४ । १४ ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥

अयुक्त । सप्त । शुन्ध्युवः । सूरः । रथस्य । नप्त्यः ॥
ताभिः । याति । स्वयुक्ति-भिः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(सूरः) सूर्य [लोकप्रेरक रविमण्डल] ने (रथस्य) रथ

२३—(सप्त) नीलपीतादिसप्तवर्णाः-म० ४ (त्वा) (हरितः) आकर्षकाः किरणाः (रथे) म० ६। गमनविधाने (वहन्ति) गमयन्ति (देव) हे गमनशील (सूर्य) रविमण्डल (शोचिष्केशम्) शोचिषः शुचयः केशाः प्रकाशा यस्य तम् (विचक्षणम्) विविधं दर्शकम् ॥

२४—(अयुक्त) योजितवान् (सप्त) सप्तसंख्याकाः—म० ४ (शुन्ध्युवः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अपने चलने के विधान] की (नप्त्यः) न गिराने वाली (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि म० ४] (शुन्ध्युवः) शुद्ध करने वाली किरणों को (अयुक्त) जोड़ा है। (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) धन से संयोग वाली [किरणों के साथ] (याति) वह चलता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो सूर्य अपनी परिधि के लोकों को अपने आकर्षण में रखकर चलाता है और जिसकी किरणें रोगों को हटाकर प्रकाश और वृष्टि आदि से संसार को धनी बनाती हैं, उस सूर्य को जगदीश्वर परमात्मा ने बनाया है॥२४

मन्त्र ४ से इस मन्त्र तक सूर्य के गुणों का वर्णन करके परमेश्वर की महिमा का वर्णन किया है। अब फिर वही प्रकरण परमेश्वर विषयक चलता है॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१ । ५० । ६, और सामवेद-पू० ६ । १४ । १३ ॥

रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी । स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥

रोहितः । दिवम् । आ । अरुहत् । तपसा । तपस्वी ॥ सः । योनिम् । आ । एति । सः । ऊं इति । जायते । पुनः । सः । देवानाम् । अधि-पतिः । बभूव ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(तपस्वी) ऐश्वर्यवान् (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (तपसा) अपने सामर्थ्य से (दिवम्) प्रत्येक व्यवहार में

यजिमनिशुन्धि० । उ० ३ । २० । शुन्ध विशुद्धौ—युच् । शोधिकाः (सूरः) षू प्रेरणे—क्रन् । लोकप्रेरकः सूर्यः (रथस्य) गमनविधानस्य (नप्त्यः) इकू कृष्यादिभ्यः । वा० पा० ३ । ३ । १०८ । नञ्+पत्लृ पतने—इक् । तनिपत्योश्छन्दसि । पा० ६ । ४ । ९९ । इत्युपधालोपः, शसो जस् । नप्तीः । अपातनशीलाः । न पातयित्रीः (ताभिः) (याति) गच्छति (स्वयुक्तिभिः) स्वस्य धनस्य योजनशक्तिभिः ॥

२५—(रोहितः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (दिवम्) प्रत्येकव्यवहारम् (आ) समन्तात् (अरुहत्) प्रादुरभवत् (तपसा) स्वसामर्थ्येन (तपस्वी)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ) सब ओर से (अरुहत्) प्रकट हुआ है। (सः) वह (योनिम्) प्रत्येक कारण [कारण के कारण] को (आ एति) प्राप्त होता है, (सः उ) वह ही (पुनः) फिर (जायते) बाहिर दीखता है, (सः) वही (देवानाम्) चलने वाले लोकों का (अधिपतिः) बड़ा स्वामी (बभूव) हुआ है ॥ २५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर अपने सामर्थ्य से कारणों का आदि कारण होकर और बाहिर से भी सब कार्यरूप जगत् का नियन्ता बनकर सब लोकों का स्वामी है ॥ २५ ॥

यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः। सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥ २६ ॥

यः। विश्व-चर्षणिः। उत। विश्वतः-मुखः। यः। विश्वतः-पाणिः। उत। विश्वतः-पृथः ॥ सम्। बाहु-भ्याम्। भरति। सम्। पतत्रैः। द्यावापृथिवी इति। जनयन्। देवः। एकः २६

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (विश्वचर्षणिः) सब का देखने वाला, (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से मुख [मुख्यव्यवहार वा उपाय] वाला, (यः) जो (विश्वतस्पाणिः) सब ओर से हाथ के व्यवहार वाला, (उत) और (विश्वतस्पृथः) सब ओर से पूर्तिवाला है। (एकः) वह अकेला (देवः) प्रकाशस्वरूप [परमात्मा] (बाहुभ्याम्) दोनों [धारण आकर्षण

ऐश्वर्यवान् (योनिम्) कारणम् (आ) समन्तात् (एति) प्राप्नोति (सः) (उ) एव (जायते) प्रादुर्भवति (पुनः) पश्चात् (सः) (देवानाम्) गन्तॄणां लोकानाम् (अधिपतिः) सर्वस्वामी (बभूव) ॥

२६—(यः) परमेश्वरः (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा—निघ० ३। ११ (उत) अपि (विश्वतोमुखः) सर्वतोमुखं प्रधानं व्यवहार उपायो वा यस्य सः (यः) (विश्वतस्पाणिः) पण व्यवहारे—इण्। सर्वतो हस्तसामर्थ्यं यस्य सः (उत) (विश्वतस्पृथः) पातृतुदिवचि० । उ० २। ७। पॄ पालनपूरणयोः—थक्, टाप्। सर्वतः पृथा पूर्तिर्यस्य सः (सम्) सम्यक् (बाहुभ्याम्) धारणाक-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप] भुजाओं से (पतत्रैः सम्) गमनशील परमाणुओं के साथ (द्यावा-पृथिवी) सूर्य पृथिवी को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (सम्) यथावत् (भरति) पुष्ट करता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—निराकार सर्वशक्तिमान् अकेले जगदीश्वर ने सब आगा पीछा देख, सब प्रकार के संयोग वियोग आदि उपायों से परमाणुओं में धारण आकर्षण सामर्थ्य देकर कुम्भकार के समान सब जगत् को रचा है, उसकी उपासना सब मनुष्य करें ॥ २६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १० । ८१ । ३, और यजुर्वेद १७ । १९ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादभ्येति पश्चात् । द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते ॥ २७ ॥

एक-पात् । द्वि-पदः । भूयः । वि । चक्रमे । द्वि-पात् । त्रि-पादम् । अभि । एति । पश्चात् ॥ द्वि-पात् । ह । षट्-पदः । भूयः । वि । चक्रमे । ते । एक-पदः । तन्वम् । सम् । आसते २७

भाषार्थ—(एकपात्) एक रस व्यापक परमेश्वर (द्विपदः) दो प्रकार की स्थितिवाले [जङ्गम स्थावर जगत्] से (भूयः) अधिक आगे (वि) फैलकर (चक्रमे) चला गया, (द्विपाद्) दो [भूत भविष्यत्] में गति वाला परमात्मा (पश्चात्) फिर (त्रिपादम्) तीन [प्रकाशमान और अप्रकाशमान और मध्य लोकों] में व्याप्ति वाले संसार में (अभि) सब ओर से (एति)

र्षणरूपभुजाभ्याम् (भरति) पुष्णाति (सम्) सह (पतत्रैः) गमनशीलैः परमाणुभिः (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमिलोकौ (जनयन्) उत्पादयन् (देवः) प्रकाशस्वरूपः (एकः) अद्वितीयः ॥

२७—(एकपात्) निरन्तरव्यापकः परमेश्वरः (द्विपदः) द्विप्रकारस्थितियुक्ताज् जङ्गमस्थावररूपसंसारात् (भूयः) अधिकतरम् (वि) विस्तीर्य (चक्रमे) जगाम (द्विपात्) द्वयोर्भूतभविष्यतोः पादो गतिर्यस्य सः परमेश्वरः (त्रिपादम्) प्रकाशमानाप्रकाशमानान्तरिक्षलोकेषु व्याप्तिमन्तं संसारम् (अभि) सर्वतः (एति) प्राप्नोति (पश्चात्) पुनः (द्विपाद्) जङ्गमस्थावर-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होता है, (द्विपात्) दो [जङ्गम और स्थावर जगत्] में व्यापक ईश्वर (इ) निश्चय करके (षट्पदः) छह [पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊंची और नीची दिशाओं] में स्थिति वाले ब्रह्माण्ड से (भूयः) अधिक आगे (विचक्रमे) निकल गया, (ते) वे [योगी जन] (एकपदः) एक रस व्यापक परमेश्वर की (तन्वम्) उपकार क्रिया को (सम्) निरन्तर (आसते) सेवते हैं ॥ २७ ॥

भावार्थ—वह अकेला सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमात्मा जङ्गम स्थावर, भूत भविष्यत्, प्रकाशमान और अप्रकाशमान और दोनों के मध्यस्थ लोक और पूर्व आदि दिशाओं की सीमा से बहुत बड़ा है। ऐसे परमात्मा की उपासना से महात्मा लोग अपने आत्मा की उन्नति करते हैं ॥ २७ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद-१०। ११७। ८ का पूर्वार्द्ध है, और पूरा मन्त्र ऋग्वेद का आगे अ० १३। ३। २५ में है ॥

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः। केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥ २८ ॥

अतन्द्रः। यास्यन्। हरितः। यत्। आ-अस्थात्। द्वे इति। रूपे इति। कृणुते। रोचमानः ॥ केतु-मान्। उत्-यन्। सहमानः। रजांसि। विश्वाः। आदित्य। प्र-वतः। वि। भासि २८

भाषार्थ—(यत्) जब (अतन्द्रः) निरालसी वह [परमेश्वर] (यास्यन्) चलने की इच्छा करने वाला [होता है], वह (हरितः) आकर्षक दिशाओं में (आ-अस्थात्) आकर ठहरता है, (रोचमानः) प्रकाशमान वह

जगति व्यापकः परमेश्वरः (इ) निश्चयेन (षट्पदः) ऊर्ध्वाधः पूर्वादि षड्दिक्षु गतिवतो ब्रह्माण्डात् (भूयः) अधिकतरम् (विचक्रमे) (ते) योगिनः पुरुषाः (एकपदः) निरन्तरव्यापकस्य परमेश्वरस्य (तन्वम्) उपकारक्रियाम् (सम्) सम्यक् (आसते) सेवन्ते ॥

२८—(अतन्द्रः) निरलसः परमेश्वरः (यास्यन्) यातुं गन्तुमिच्छन् (हरितः) आकर्षिकाः दिशाः (यत्) यदा (आस्थात्) लडर्थे लुङ्। आगत्य तिष्ठति (द्वे रूपे) जडचेतनरूपे जगती (कृणुते) सृजति (रोचमानः) प्रका-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जगदीश्वर] (द्वे) दो (रूपे) रूप [जड़ और चेतन जगत्] को (कृणुते) बनाता है। (आदित्य) हे अखण्ड ! [परमेश्वर] (केतुमान्) ज्ञानवान् (उद्यन्) चढ़ता हुआ, और (रजांसि) लोकों को (सहमानः) जीतता हुआ तू (विश्वाः) सब (प्रवतः) आगे बढ़ने की क्रियाओं को (वि भासि) चमका देता है ॥ २८ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् लोग खोज करके परमात्मा को प्रत्येक दिशा में व्यापक और सब सृष्टि का कर्ता साक्षात् करते हैं। मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना करके अपनी उन्नति का प्रयत्न करें ॥ २८ ॥

बट्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥

बट् । महान् । असि । सूर्य । बट् । आदित्य । महान् । असि ॥ महान् । ते । महतः । महिमा । त्वम् । आदित्य । महान् । असि ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे चराचर प्रेरक [परमेश्वर !] तू (बट्) सत्य सत्य (महान्) महान् [बड़ा] (असि) है, (आदित्य) हे अविनाशी ! तू (बट्) ठीक ठीक (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है। (महतः ते) तुझ बड़े की (महिमा) महिमा (महान्) बड़ी है, (आदित्य) हे प्रकाश स्वरूप ! (त्वम्) तू (महान्) बड़ा (असि) है ॥ २९ ॥

शमानः (केतुमान्) प्रज्ञावन् (उद्यन्) ऊर्ध्वो गच्छन् (सहमानः) पराजयन् (रजांसि) लोकान् (विश्वाः) सर्वाः (आदित्य) हे अविनाशिन् परमेश्वर (प्रवतः) प्रकृष्टगतिक्रियाः (वि) विविधम् (भासि) भापयसि । दीपयसि ॥

२९—(बट्) बट बट वेष्टनसामर्थ्यादिषु—क्विप् । सत्यम्—निघ० ३ । १० (महान्) विशालः । पूजनीयः (असि) (सूर्य) सर्वप्रेरक परमेश्वर (बट्) (आदित्य) हे अविनाशिन् (महान्) (असि) (महान्) (ते) तव (महतः) पूजनीयस्य (महिमा) महत्त्वम् (त्वम्) (आदित्य) हे आदीप्यमान परमेश्वर (महान्) (असि) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस परमात्मा के बड़े होने को संसार में बड़े से बड़े भी मानते हैं, हे मनुष्यो! उसकी उपासना करके प्रयत्न से अपने को बढ़ाओ॥ २९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—८।९१।११, यजु० ३३।३९, और साम० पू० ३।९।४ तथा उ० ९।१।९॥

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः। उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३०॥ (८)

रोचसे। दिवि। रोचसे। अन्तरिक्षे। पतङ्ग। पृथिव्याम्। रोचसे। रोचसे। अप्-सु। अन्तः॥ उभा। समुद्रौ। रुच्या। वि। आपिथ। देवः। देव। असि। महिषः। स्वः-जित् ३० (८)

भाषार्थ—(पतङ्ग) हे ऐश्वर्यवान् [जगदीश्वर !] तू (दिवि) प्रकाशमान [सूर्य आदि] लोक में (रोचसे) चमकता है, तू (अन्तरिक्षे) मध्य लोक में (रोचसे) चमकता है, तू (पृथिव्याम्) पृथिवी [अप्रकाशमान] लोक में (रोचसे) चमकता है, तू (अप्सु अन्तः) प्रजाओं [प्राणियों] के भीतर (रोचसे) चमकता है। (उभा) दोनों (समुद्रौ) समुद्रों [जड़ चेतन समूहों] में (रुच्या) अपनी रुचि [प्रीति] से (वि आपिथ) तू व्यापा है, (देव) हे प्रकाश स्वरूप ! (देवः) तू व्यवहार जानने वाला, (महिषः) महान् और (स्वर्जित्) सुख का जिताने वाला (असि) है॥ ३०॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा अपने ऐश्वर्य से प्रत्येक लोक और पदार्थ में प्रकाशमान होकर सब का धारण पोषण करता है, वैसे ही हे मनुष्यो! तुम अपने विद्याबल से व्यवहार कुशल होकर सब को सुख पहुंचाओ॥ ३०॥

३०—(रोचसे) दीप्यसे (दिवि) प्रकाशमाने सूर्यादिलोके (रोचसे) (अन्तरिक्षे) मध्यलोके (पतङ्ग) अ० ६।३१।३। पत गतौ ऐश्वर्ये च—अङ्गच्। हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् (पृथिव्याम्) अप्रकाशमाने पृथिव्यादिलोके (रोचसे) (रोचसे) (अप्सु) प्रजासु। प्राणिषु (अन्तः) मध्ये (उभा) द्वौ (समुद्रौ) जड़चेतनरूपसमूहौ (रुच्या) प्रीत्या (व्यापिथ) व्याप्तवानसि (देवः) व्यवहारकुशलः (देव) हे प्रकाशमान (असि) (महिषः) महान् (स्वर्जित्) स्वः सुखं जयति जापयति यः स परमेश्वरः॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥ ३१ ॥

अर्वाङ् । परस्तात् । प्र-यतः । वि-अध्वे । आशुः । विपः-चित् । पतयन् । पतङ्गः ॥ विष्णुः । वि-चित्तः । शवसा । अधि-तिष्ठन् । प्र । केतुना । सहते । विश्वम् । एजत् ॥३१॥

भाषार्थ—(परस्तात्) दूर से लेकर (अर्वाङ्) समीप में वर्तमान, (व्यध्वे) विविध मार्ग में (प्रयतः) फैला हुआ, (आशुः) शीघ्रगामी, (विपश्चित्) बुद्धिमान्, (पतयन्) पराक्रम करता हुआ, (पतङ्गः) ऐश्वर्यवान्, (विष्णुः) सर्वव्यापक (विचित्तः) विविध प्रकार अनुभव किया गया; (शवसा) बल से (अधितिष्ठन्) अधिष्ठाता होता हुआ [परमेश्वर] (केतुना) अपनी बुद्धिमत्ता से (एजत्) चेष्टा करते हुये (विश्वम्) सब [जगत्] को (प्र सहते) जीत लेता है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! उस सर्वत्र वर्तमान महाबलवान् परमात्मा की उपासना से व्यवहारकुशल होकर अपने आत्मा को बली और महान् बनाओ ॥ ३१ ॥

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् । अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥ ३२ ॥

चित्रः । चिकित्वान् । महिषः । सु-पर्णः । आ-रोचयन् ।

३१—(अर्वाङ्) अवरे समीपे वर्तमानः (परस्तात्) दूरात् (प्रयतः) यमु—क्त । विस्तृतः (व्यध्वे) उपसर्गादध्वनः । पा० ५ । ४ । ८५ । इत्यच् । विविधे मार्गे (आशुः) शीघ्रगामी (विपश्चित्) मेधावी (पतयन्) पराक्रमं कुर्वन् (पतङ्गः) ऐश्वर्यवान् (विष्णुः) सर्वव्यापकः (विचित्तः) विविधं ज्ञातः (शवसा) बलेन (अधितिष्ठन्) अधिष्ठाता सन् (केतुना) प्रज्ञया (प्र सहते) पराजयते (विश्वम्) सर्वं जगत् (एजत्) चेष्टमानम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोदसी इति । अन्तरिक्षम् ॥ अहोरात्रे इति । परि । सूर्यम् । वसाने इति । प्र । अस्य । विश्वा । तिरतः । वीर्याणि ।३२।

भाषार्थ—(चित्रः) अद्भुत, (चिकित्वान्) समझ वाला, (महिषः) महान् (सुपर्णः) बड़ा पालन करने वाला [परमेश्वर] (रोदसी) दोनों सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान अप्रकाशमान लोकों] और (अन्तरिक्षम्) [उनके] मध्य लोक को (आरोचयन्) चमका देता हुआ [वर्तमान है]। (सूर्यम्) सूर्य लोक को (परि) सब ओर से (वसाने) ओढ़े हुये (अहोरात्रे) दोनों दिन और रात्रि (अस्य) इस [परमात्मा] के (विश्वा) व्यापक (वीर्याणि) वीर कर्मों को (प्र तिरतः) बढ़ाते हैं [प्रसिद्ध करते हैं] ॥ ३२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर बड़ा आश्चर्य स्वरूप सब सृष्टि का कर्ता है। उसी के नियम अनुसार सूर्य और पृथिवी के घुमाव से दिन रात्रि उत्पन्न होकर हमें पुरुषार्थ के योग्य बनाते हैं, हे विद्वानों! उसी परमेश्वर को पहिचान कर अपने को बढ़ाओ ॥ ३२ ॥

तिग्मो विभ्राजन् तन्वं १ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो ररीणः। ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥

तिग्मः । वि-भ्राजन् । तन्वम् । शिशानः । अरम्-गमासः । प्रवतः । ररीणः ॥ ज्योतिष्मान् । पक्षी । महिषः । वयः-धाः । विश्वाः । आ । अस्थात् । प्र-दिशः । कल्पमानः ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(तिग्मः) तीव्र स्वभाव, (विभ्राजन्) बड़ा चमकता हुआ,

३२—(चित्रः) अद्भुतः (चिकित्वान्) कित ज्ञाने कि ज्ञाने वा—क्वसु। ज्ञानवान् (महिषः) महान् (सुपर्णः) बहुपालनोपेतः (आरोचयन्) प्रदीपयन् (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (अन्तरिक्षम्) (अहोरात्रे) (परि) सर्वतः (सूर्यम्) लोकप्रेरकं रविमण्डलम् (वसाने) आच्छादयन्ती (प्र तिरतः) वर्धयतः। प्रसिद्धानि कुरुतः (अस्य) परमेश्वरस्य (विश्वानि) व्यापकानि (वीर्याणि) वीरकर्माणि ॥

३३—(तिग्मः) तीव्रः (वि भ्राजन्) विशेषप्रकाशमानः (तन्वम्) उप-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तन्वम्) उपकार शक्ति को (शिशानः) सूक्ष्म करता हुआ, (अरंगमासः) पूरी प्राप्तियोग्य (प्रवतः) आगे बढ़ने की क्रियाओं को (रराणः) देता हुआ (ज्योतिष्मान्) प्रकाशमय, (पत्वी) पक्ष [सहारे] वाला (महिषः) महान् (वयोधाः) जीवन धारण करने वाला (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ [जगदीश्वर] (विश्वाः) सब (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं में (आ) आकर (अस्थात्) ठहरा है ॥ ३३ ॥

भावार्थ—वह परमेश्वर तेजोमय सर्वकामनासाधक, भक्तपालक है, हे मनुष्यो ! उसी के पक्ष में रहकर अपना पक्ष बढ़ाओ ॥ ३३ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४

चित्रम् । देवानाम् । केतुः । अनीकम् । ज्योतिष्मान् । प्र-दिशः । सूर्यः । उत्-यन् ॥ दिवा-करः । अति । द्युम्नैः । तमांसि । विश्वा । अतारीत् । दुः-इतानि । शुक्रः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—(चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) जीवनदाता [ब्रह्म], (देवानाम्) गतिमान् लोकों के (केतुः) जताने वाले, (ज्योतिष्मान्) तेजोमय (सूर्यः) सर्वप्रेरक [परमात्मा] (प्रदिशः) सब दिशाओं में (उद्यन्) ऊंचे होते हुये, (दिवाकरः) दिन को रचने वाले [सूर्य रूप], (शुक्रः) वीर्यवान्

कृतिम् (शिशानः) सूक्ष्मीकुर्वाणः (अरंगमासः) अलम्+गम्लृ गतौ-असुन्, छान्दसो दीर्घः । पर्याप्तप्राप्तियोग्याः (प्रवतः) प्रकृष्टगतीः (रराणः) प्रयच्छन् (ज्योतिष्मान्) तेजोमयः (पत्वी) पक्षवान् । आश्रयवान् (महिषः) महान् (वयोधाः) जीवनधारकः (विश्वाः) सर्वाः (आ) आगत्य (अस्थात्) स्थितवान् (प्रदिशः) (कल्पयन्) समर्थः सन् ॥

३४—(चित्रम्) अद्भुतम् (देवानाम्) गतिमतां लोकानाम् (केतुः) ज्ञापकः (अनीकम्) अनिहृषिभ्यां कित्च । उ० ४ । १७ । अन प्राणने—ईकन् । अनयति जीवयति यत् तद् ब्रह्म (ज्योतिष्मान्) तेजोमयः (प्रदिशः) (सूर्यः) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (उद्यन्) उत्कर्षेण प्राप्नुवन् (दिवाकरः) दिवाविभा-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परमेश्वर] ने (द्युम्नैः) अपने प्रकाशों से (तमांसि) अन्धकारों को (अति) लांघकर (विश्वा) सब (दुरितानि) कठिनाइयों को (अतारीत्) पार किया है ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जैसे यह सूर्य अन्धकार नाश करके दिन बनाकर प्रकाशमान है, वैसेही वह परमेश्वर सूर्य आदि लोकों को रचकर धारण आकर्षण द्वारा सब की रक्षा करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या से प्रकाशमान होकर विघ्नों को हटावें ॥ ३४ ॥

यह और अगला मन्त्र आगे हैं—अ० २० । १०७ । १३, १४ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३५ ॥

चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः ॥ आ । अप्रात् । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ३५

भाषार्थ—(देवानाम्) गतिमान् लोकों का (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) जीवनदाता, (मित्रस्य) सूर्य [वा प्राण] का, (वरुणस्य) चन्द्रमा [अथवा जल वा अपान] का और (अग्नेः) बिजुली का (चक्षुः) दिखाने वाला [ब्रह्म] (उत्) सर्वोपरि (अगात्) व्यापा है । (सूर्यः) सर्वप्रेरक, (जगतः) जङ्गम

निशा० । पा० ३ । २ । २१ । दिवा+करोतेः—टप्रत्ययः । दिनकरः । सूर्यो यथा (अति) अतीत्य (द्युम्नैः) द्युतिभिः । दीप्तिभिः (तमांसि) अन्धकारान् (विश्वा) सर्वाणि (अतारीत्) अपारयत् (दुरितानि) कष्टानि (शुक्रः) शुक्र-अर्श आद्यच् । वीर्यवान् ॥

३५—(चित्रम्) अद्भुतस्वरूपम् (देवानाम्) गतिमतां लोकानाम् (उत्) सर्वोपरि (अगात्) व्यापत् (अनीकम्) म० ३४ । जीवनप्रदम् (चक्षुः) दर्शकं ब्रह्म (मित्रस्य) सूर्यस्य प्राणस्य (वरुणस्य) चन्द्रस्य । जलस्य । अपानस्य (अग्नेः) विद्युतः (आ) समन्तात् (अप्रात्) प्रा पूरणे—लङ् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) और (तस्थुषः) स्थावर संसार के (आत्मा) आत्मा [निरन्तर व्यापक परमात्मा] ने (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि [प्रकाशमान अप्रकाशमान लोकों] और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्रात्) पूर्ण किया है ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जो अद्भुत स्वरूप परमात्मा सूर्य, चन्द्र, वायु आदि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है, मनुष्य उसको उपासना द्वारा जानकर आत्मोन्नति करें ॥ ३५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ११५ । १' यजुः० ७ । ४२ तथा १३ । ४३ , और साम पू० ६ । १४ । ३ ॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्यामि त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्दद्दत्त्रिः ३६

उच्चा । पतन्तम् । अरुणम् । सु-पर्णम् । मध्ये । दिवः । तरणिम् । भ्राजमानम् ॥ पश्यामि । त्वा । सवितारम् । यम् । आहुः । अजस्रम् । ज्योतिः । यत् । अविन्दत् । अत्त्रिः ॥३६॥

भाषार्थ—(उच्चा) ऊंचे (पतन्तम्) ऐश्वर्यवान् होते हुये, (अरुणम्) सर्वव्यापक, (सुपर्णम्) बड़े पालने वाले, (दिवः) व्यवहार के (मध्ये) मध्य (तरणिम्) पार करने वाले (भ्राजमानम्) प्रकाशमान, (सवितारम्) सर्वप्रेरक (त्वा) तुझ [परमेश्वर] को (पश्यामि) हम देखें, (यम्) जिसको (अज-

पूरितवान् (द्यावापृथिवी) प्रकाशमानाप्रकाशमानलोकौ (अन्तरिक्षम्) (सूर्यः) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (आत्मा) अतति सततं गच्छति व्याप्नोतीति । अन्तर्यामी परमात्मा (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) ष्ठा गतिनिवृत्तौ-कसु । स्थावरस्य (च) ॥

३६—(उच्चा) उच्चैः (पतन्तम्) ऐश्वर्यं प्राप्नुवन्तम् (अरुणम्) अर्तेश्च । उ० ३ । ६० । ऋ गतौ-उनन् , चित् । सर्वव्यापकम् (सुपर्णम्) शोभनं पर्णं पालनं यस्मात् तम् (मध्ये) (दिवः) प्रत्येकव्यवहारस्य (तरणिम्) तारकम् (भ्राजमानम्) दीप्यमानम् (पश्यामि) अवलोकयाम (त्वा) (सवितारम्) सर्वप्रेरकम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रम्) निरन्तर (ज्योतिः) ज्योति (आहुः) वे [विद्वान् लोग] बताते हैं, (यत्) जिस [ज्योति] को (अत्तूः) निरन्तर ज्ञानी [योगी पुरुष] ने (अविन्दत्) पाया है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जिस सर्वोपरि विराजमान, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर का ध्यान करके योगी जन आनन्द पाते हैं, उसी की आराधना करके हम पुरुषार्थ के साथ उन्नति करें ॥ ३६ ॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः । स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥

दिवः । पृष्ठे । धावमानम् । सु-पर्णम् । अदित्याः । पुत्रम् । नाथ-कामः । उप । यामि । भीतः ॥ सः । नः । सूर्य । प्र । तिर । दीर्घम् । आयुः । मा । रिषाम् । सु-मतौ । ते । स्याम ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(नाथकामः) नाथ [ईश्वर] को चाहने वाला, (भीतः) डरा हुआ मैं (दिवः) आकाश की (पृष्ठे) पीठ पर (धावमानम्) दौड़ते हुये, (सुपर्णम्) बड़े पालने वाले, (अदित्याः) अखण्ड वेदवाणी के (पुत्रम्) शोधने वाले [परमेश्वर] को (उप) आदर से (यामि) पहुंचता हूं । (सः) सो तू, (सूर्य) हे सर्वप्रेरक ! [जगदीश्वर] (नः) हमारे लिये (दीर्घम्)

(यम्) (आहुः) कथयन्ति विद्वांसः (अजस्रम्) निरन्तरम् (ज्योतिः) तेजः (यत्) (अविन्दत्) अलभत (अत्तूः) म० ४ । निरन्तरज्ञानी योगिजनः ॥

३७—(दिवः) आकाशस्य (पृष्ठे) उपरिभागे (धावमानम्) शीघ्रं गच्छन्तम् (सुपर्णम्) सुपालकम् (अदित्याः) अदितिर्वाङ् नाम—निघ० १ । ११ । अखण्डिताया वेदवाण्याः (पुत्रम्) पुवो ह्रस्वश्च । उ० ४ । १६५ । पूञ् शोधने-क्र । शोधकम् (नाथकामः) ईश्वरं कामयमानः (उप) आदरे (यामि) प्राप्नोमि (भीतः) भयं प्राप्तः (सः) स त्वम् (नः) (अस्मभ्यम्) (सूर्य) हे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घं (आयुः) जीवन समय को (प्र तिर) बढ़ादे, (मा रिषाम) हम दुखी न होवें, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति में (स्याम) हम रहें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि आकाश को भी वश में रखने वाले, सर्वपालक, शुद्धवेदवाणी के देने वाले परमेश्वर की आज्ञा में रहकर अपने जीवन को यशस्वी बनावें और विघ्नों को हटा कर सदा आनन्द से रहें ॥ ३७ ॥

सहस्राह्नयं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् । स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ३८

सहस्र-अह्नयम् । वि-यतौ । अस्य । पक्षौ । हरेः । हंसस्य । पततः । स्वः-गम् ॥ सः । देवान् । सर्वान् । उरसि । उप-दद्य । सम्-पश्यन् । याति । भुवनानि । विश्वा ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—(स्वर्गम्) मोक्ष सुख को (पततः) प्राप्त हुये (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरने वाले] (हंसस्य) हंस [ज्ञानी वा व्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनों पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य और कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्नयम्) सहस्रों दिनों वाले [अनन्त देश काल] में (वियतौ) फैले हुये हैं । (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) (दिव्य गुणों को [अपने] (उरसि) हृदय में (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (संपश्यन्) निहारता हुआ (याति) चलता रहता है ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर अन्तर्यामी रूप से अनन्त कार्य और कारण रूप जगत् की निरन्तर सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर का विचार करता

सर्वप्रेरक परमेश्वर (प्र तिर) प्रवर्धय (दीर्घम्) (आयुः) जीवनकालम् (मा रिषाम) मा रिष्यामहै । मा हिंस्यामहै (सुमतौ) कल्याणयां बुद्धौ (ते) तव (स्याम) ॥

३८—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अथर्व० १० । ८ । १८ । तत्रैव द्रष्टव्यः । (हंसस्य) वृतॄवदिवचिवसिहनि० । उ० ३ । ६२ । हन हिंसागत्योः-स । ज्ञानतो व्यापकस्य परमेश्वरस्य ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ सब कामों में सदा सावधान रहे ॥ ३८ ॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० १० । ८ । १८, और आगे फिर है-अ० १३ । ३ । १४ ॥

रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वरा भरत् ॥ ३९ ॥

रोहितः । कालः । अभवत् । रोहितः । अग्रे । प्रजा-पतिः ॥ रोहितः । यज्ञानाम् । मुखम् । रोहितः । स्वः । आ । अभरत् ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—(रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अग्र) पहिले से [वर्तमान होकर] (कालः) काल वाला [तीनों कालों का स्वामी], और (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमात्मा] (प्रजापतिः) प्रजाओं [उत्पन्न पदार्थों] का पालने वाला (अभवत्) हुआ । (रोहितः) सर्वोत्पादक [ईश्वर] (यज्ञानाम्) संयोग वियोग व्यवहारों का (मुखम्) मुखिया [प्रधान] है, (रोहितः) सर्वजनक [परमात्मा] ने (स्वः) आनन्द को (आ) सब प्रकार (अभरत्) धारण किया है ॥ ३८ ॥

भावार्थ—सर्वोत्पादक अनादि अनन्त परमेश्वर परमाणुओं के संयोग वियोग से सृष्टि बना कर सब का कारण हुआ है, सब लोग उसी की भक्ति कर के पुरुषार्थ पूर्वक सुखी रहें ॥ ३९ ॥

रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥ (१०)

रोहितः । लोकः । अभवत् । रोहितः । अति । अतपत् ।

३९—(रोहितः) अ० १३ । १ । १ । सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (कालः) काल—अर्शआद्यच् । कालवान् । त्रिकालस्वामी (अभवत्) (रोहितः) (अग्रे) सृष्ट्यादौ (प्रजापतिः) प्रजानां सृष्टपदार्थानां पालकः (रोहितः) (यज्ञानाम्) संयोगवियोगव्यवहाराणाम् (मुखम्) मुख्यः । प्रधानः (रोहितः) (स्वः) सुखम् (आ) समन्तात् (अभरत्) धारितवान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवꣳ॑ ॥ रोहि॑तः । रश्मि-भिः॑ । भूमि॑म् । स॒मु॒द्रम् । अनु॑ । सम् । च॒र॒त् ॥ ४० ॥(१०)

भाषार्थ—(रोहितः) सर्वजनक [परमेश्वर] (लोकः) लोकों वाला [सब लोकों का स्वामी] (अभवत्) हुआ, (रोहितः) सर्वोत्पादक [ईश्वर] ने (दिवम्) सूर्य को (अति) अत्यन्त करके (अतपत्) ताप वाला किया। (रोहितः) सर्वस्रष्टा [ईश्वर] ने (रश्मिभिः) [सूर्य की] किरणों से (भूमिम्) भूमि और (समुद्रम्) अन्तरिक्ष [आकाशस्थ चन्द्र तारागण आदि लोक समूह] को (अनु) अनुकूलता से (सं चरत्) संचार वाला किया ॥ ४० ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सब लोकों का स्वामी होकर सूर्य द्वारा उन में ताप पहुंचाकर उनमें घूमने और चलने की शक्ति दी है ॥ ४० ॥

सर्वा॒ दिशः॒ सम॑चरद् रोहि॒तोऽधि॑पतिर्दि॒वः ।
दिवं॑ स॒मु॒द्रमा॒ भूमिं॒ सर्वं॒ भूतं॒ वि र॑क्षति ॥ ४१ ॥

सर्वाः॑ । दिशः॑ । सम् । अ॒च॒र॒त् । रोहि॑तः । अधि॑-पतिः । दि॒वः॒ ॥ दिव॑म् । स॒मु॒द्रम् । आ॒त् । भूमि॑म् । सर्व॑म् । भूत॑म् । वि । र॒क्ष॒ति॒ ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—(दिवः) प्रकाश के (अधिपतिः) अधिपति [बड़े स्वामी], (रोहितः) सर्वजनक [परमेश्वर] ने (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (सम् अचरत्) संचार किया है। (दिवम्) सूर्य, (समुद्रम्) अन्तरिक्ष (आत्)

४०—(रोहितः) सर्वोत्पादकः (लोकः) लोक—अर्श आद्यच्। लोकवान्। सर्वलोकस्वामी (अभवत्) (रोहितः) (अति) अत्यन्तम् (अतपत्) तापवन्तं कृतवान् (दिवम्) सूर्यम् (रोहितः) (रश्मिभिः) सूर्यकिरणैः (भूमिम्) (समुद्रम्) अन्तरिक्षम्-निघ० १। ३ (अनु) आनुकूल्येन (सम्) सम्यक् (चरत्) अडभावः, अन्तर्गतण्यर्थः। अचरत्। अचारयत्। चालितवान् ॥

४१—(सर्वाः) (दिशः) पूर्वादिदिशाः (समचरत्) विचरितवान् (रोहितः) सर्वजनकः परमेश्वरः (अधिपतिः) अध्यक्षः (दिवः) प्रकाशस्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (भूमिम्) भूमि और (सर्वम्) सब (भूतम्) सत्ता वाले [जगत्] की (वि) विविध प्रकार (रक्षति) रक्षा करता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब में व्यापक होकर सब की रक्षा करता है, सब मनुष्य उस की उपासना करें ॥ ४१ ॥

आरोहन्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः । चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥ ४२ ॥

आ-रोहन् । शुक्रः । बृहतीः । अतन्द्रः । द्वे इति । रूपे इति । कृणुते । रोचमानः ॥ चित्रः । चिकित्वान् । महिषः । वातम्-आयाः । यावतः । लोकान् । अभि । यत् । वि-भाति ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(शुक्रः) वीर्यवान्, (अतन्द्रः) निरालसी, (रोचमानः) प्रकाशमान [परमेश्वर] (बृहतीः) बड़ी [दिशाओं] में (आरोहन्) ऊंचा होता हुआ (द्वे) दो (रूपे) रूपों [जंगम और स्थावर जगत्] को (कृणुते) बनाता है, (यत्) जब (चित्रः) अद्भुत (चिकित्वान्) समझने वाला, (महिषः) महान् (वातमायाः) वायु में व्याप्ति वाला [परमेश्वर] [उन] (लोकान् अभि) लोकों पर [व्यापक है] (यावत्) जिनको (विभाति) वह चमकाता है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—वह जगदीश्वर सब दिशाओं में सर्वश्रेष्ठ होकर, पवन आदि में चेष्टा देता हुआ सब का अधिष्ठाता है, सब मनुष्य उसी की आज्ञा पर चलें ॥ ४२ ॥

(दिवम्) सूर्यम् (सद्रम्) अन्तरिक्षम् (आत्) अपि (भूमिम्) (सर्वम्) (भूतम्) सत्तान्वितं जगत् (वि) विविधम् (रक्षति) पाति ॥

४२—(आरोहन्) अधितिष्ठन् (शुक्रः) वीर्यवान् (बृहतीः) महतीर्दिशाः (अतन्द्रः) निरलसः (द्वे रूपे) जङ्गमस्थावररूपे जगती (कृणुते) सृजति (रोचमानः) प्रकाशमानः (चित्रः) अद्भुतः (चिकित्वान्) कित ज्ञाने—क्वसु । ज्ञानवान् (महिषः) महान् (वातमायाः) वात+आ+अय गतौ—असुन्, सुगागमः । वायुव्यापकः (यावतः) यत्संख्याकान् (लोकान्) (अभि) प्रति (यत्) यदा (विभाति) विभापयति । प्रकाशयति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषःकल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३॥

अभि । अन्यत् । एति । परि । अन्यत् । अस्यते । अहोरात्राभ्याम् । महिषः । कल्पमानः ॥ सूर्यम् । वयम् । रजसि । क्षियन्तम् । गातु-विदम् । हवामहे । नाधमानाः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—(अन्यत्) एक कोई [उजाला] (अभि) सन्मुख (एति) चलता है, (अन्यत्) दूसरा [अन्धेरा] (परि) सब ओर (अस्यते) फेंका जाता है, [इस प्रकार] (महिषः) महान् [सूर्य लोक] (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रात्रि [बनाने] के लिये (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ [वर्तमान है]। (रजसि) सब लोक में (क्षियन्तम्) रहते हुये, (गातुविदम्) मार्ग जानने वाले (सूर्यम्) सर्व प्रेरक [परमेश्वर] को (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुये (वयम्) हम लोग (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ४३ ॥

भावार्थ—सूर्य के सर्वथा प्रकाशमान गोले के साथ घूमते हुये पृथिवी आदि लोक एक ही समय दो काम करते हैं—प्रकाश को आगे बढ़ाना और अन्धकार को पीछे की ओर बढ़ाना और आगे को हटाना, अर्थात् सूर्य न कभी अस्त और न कभी उदय होता है, पृथिवी के आधे गोले पर प्रत्येक समय प्रकाश और दूसरे आधे पर अन्धकार रहता है, ध्रुव के समीप भी सूर्य और पृथिवी के घूमाव से दिन और राति अधिक बड़े होते हैं। मनुष्य ऐसी अद्भुत रचना करने वाले परमेश्वर की उपासना सदा करें ॥ ४३ ॥

पृथिव्याप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं

४३—(अभि) अभिमुखम् (अन्यत्) एकम् । प्रकाशद्रव्यम् (एति) गच्छति (परि) सर्वतः (अन्यत्) द्वितीयम् । अन्धारद्रव्यम् (अस्यते) क्षिप्यते (अहोरात्राभ्याम्) अहोरात्रौकर्तुम् (महिषः) महान् । सूर्यलोकः (कल्पमानः) समर्थः सन् वर्तते (सूर्यम्) सर्वप्रेरकं परमात्मानम् (वयम्) (रजसि) सर्वस्मिन् लोके (क्षियन्तम्) निवसन्तम् (गातुविदम्) मार्गज्ञातारम् (हवामहे) आह्वयामः (नाधमानाः) प्रार्थयमानाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महर्षि-पाणिनि ... अनुसन्धान ... तिथी..... पु०सं०..... पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब॒भूव॑ । विश्वं॑ सं॒पश्य॑न्त्सुवि॒दत्रो॒ यज॑त्र इ॒दं शृ॑णोतु॒ यद॒हं ब्रवी॑मि ॥ ४४ ॥

पृ॒थि॒वी॒-प्रः । म॒हि॒षः । नाध॑मानस्य । गा॒तुः । अद॑ब्ध-चक्षुः । परि॑ । विश्व॑म् । ब॒भूव॑ ॥ विश्व॑म् । स॒म्-पश्य॑न् । सु॒-वि॒दत्रः॑ । यज॑त्रः । इ॒दम् । शृ॒णो॒तु॒ । यत् । अ॒हम् । ब्रवी॑मि ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—(पृथिवीप्रः) पृथिवी का भरपूर करने वाला, (महिषः) महान्, (नाधमानस्य) प्रार्थना करते हुये पुरुष के (गातुः) मार्ग, (अदब्ध-चक्षुः) वे चूकदृष्टि वाले [परमेश्वर] ने (विश्वम्) सब को (परिबभूव) घेर लिया है। (विश्वम्) सब को (संपश्यन्) निहारता हुआ, (सुविदत्रः) बड़ा लाभ पहुंचाने वाला (यजत्रः) सर्व पूजनीय [परमेश्वर] (इदम्) इस [वचन] को (शृणोतु) सुने, (यत्) जो (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूं ॥ ४४ ॥

भावार्थ—सर्वान्तर्यामी, भक्तवत्सल मार्गदर्शक परमात्मा की आराधना से मनुष्य तत्त्वदर्शी, परोपकारी होकर परस्पर सुख बढ़ावें ॥ ४४ ॥

पर्य॑स्य महि॒मा पृ॑थि॒वीं स॑मु॒द्रं ज्योति॑षा वि॒भ्राज॒न् परि॒ द्याम॒न्तरि॑क्षम् । सर्वं॑ सं॒पश्य॑न्त्सुवि॒दत्रो॒ यज॑त्र इ॒दं शृ॑णोतु॒ यद॒हं ब्रवी॑मि ॥ ४५ ॥

परि॑ । अ॒स्य॒ । म॒हि॒मा । पृ॒थि॒वीम् । स॒मु॒द्रम् । ज्योति॑षा । वि॒-भ्राज॑न् । परि॑ । द्याम् । अ॒न्तरि॑क्षम् ॥ सर्व॑म् । स॒म्-पश्य॑न् । सु॒-वि॒दत्रः॑ । यज॑त्रः । इ॒दम् । शृ॒णो॒तु॒ । यत् । अ॒हम् । ब्रवी॑मि ॥ ४५ ॥

४४—(पृथिवीप्रः) भूमिपूरकः (महिषः) महान् (नाधमानस्य) प्रार्थयमानस्य (गातुः) मार्गः (अदब्धचक्षुः) अहिंसितदृष्टिः । सर्वदर्शी (विश्वम्) सर्वम् (परिबभूव) आच्छादितवान् (विश्वम) (सम्पश्यन्) सर्वथावलोकयन् (सुविदत्रः) सुविदेः कत्रन् । उ० ३। १०८ । सु+विद्लृ लाभे—कत्रन् । महालाभप्रापकः (यजत्रः) अमिनक्षियजि० । उ० ३। १०५। यजतेः—अत्रन्। सर्वपूजनीयः (इदम्) (शृणोतु) आकर्णयतु (यत्) (अहम्) (ब्रवीमि) कथयामि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अस्य) इस [परमेश्वर] की (महिमा) महिमा (पृथिवीम्) पृथिवी और (समुद्रम्) [पृथिवी के] समुद्र से (परि) आगे है, (ज्योतिषा) ज्योति से (विभ्राजन्) विविध प्रकार चमकती हुयी [वह महिमा] (द्याम्) सूर्य और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष से (परि) आगे है। (सर्वम्) सब को (संपश्यन्) निहारता हुआ, (सुविदत्रः) बड़ा लाभ पहुंचाने वाला, (यजत्रः) सर्व पूजनीय [परमेश्वर] (इदम्) इस [वचन] को (शृणोतु) सुने, (यत्) जो (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूं ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा की बड़ाई पृथिवी, समुद्र, सूर्य और अन्तरिक्ष आदि की सीमा से अधिक है, मनुष्य उसी जगदीश्वर के नियमों में चलकर आनन्द पावें ॥ ४५ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्रभानवः सिस्रते नाकमच्छ ४६(११

अबोधि । अग्निः । सम्-इधा । जनानाम् । प्रति । धेनुम्-इव । आ-यतीम् । उषसम् ॥ यह्वाः-इव । प्र । वयाम् । उत्-जिहानाः । प्र । भानवः । सिस्रते । नाकम् । अच्छ ४६(११

भाषार्थ—(अग्निः) अग्नि [जैसे] (जनानाम्) प्राणियों में (समिधा) प्रज्वलित करने के साधन [काष्ठ घृत अन्न आदि] से (अबोधि) जगाया गया है, [अथवा] (इव) जैसे (उषसं प्रति) उषा समय [प्रातः सायं सन्धि-

---

४५—(परि) आधिक्ये (अस्य) परमेश्वरस्य (महिमा) महत्त्वम् (पृथिवीम्) (समुद्रम्) पार्थिवजलौघम् (ज्योतिषा) तेजसा (विभ्राजन्) प्रकाशमानः (परि) (द्याम्) सूर्यलोकम् (अन्तरिक्षम्) (सर्वम्) अखिलम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ४४ ॥

४६—(अबोधि) बुध्यतेस्म (अग्निः) शारीरिकाग्निः (समिधा) काष्ठान्नघृतादिप्रदीपनसाधनेन (जनानाम्) प्राणिनां मध्ये (प्रति) (धेनुम्) दीग्ध्रीं गाम् (इव) यथा (आयतीम्) आगच्छन्तीम् (उषसम्) सौहित्यको दीर्घः । प्रातः सायं सन्धिवेलाम् (यह्वाः) शेवायह्वजिह्वा० । उ० १ । १५४ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेला] में (आयतीम्) आती हुयी (धेनुम्) दुधैल गौ को [लोग प्राप्त होते हैं]। [अथवा] (इव) जैसे (उज्जिहानाः) ऊंचे चलते हुये (यह्वाः) बड़े पुरुष (वयाम्) उत्तम नीति को (प्र) अच्छे प्रकार [प्राप्त होते हैं], [वैसे ही] (भानवः) प्रकाशमान लोग (नाकम्) सुख स्वरूप [परमात्मा] को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र सिस्रते) प्राप्त होते रहते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जैसे प्राणियोंको भोज्य अन्न आदिसे यथाविधि उत्तेजित अग्नि प्रिय होता है, जैसे गौ दूध के लिये प्रिय होती है और जैसे विचारशीलों को उचित नीति अर्थात् वेदवाणी प्रिय होती है, वैसे ही सब मनुष्य समर्थ होकर सुखस्वरूप परमात्मा को पाकर आनन्दित होवें ॥ ५६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—५ । १ । १, यजुर्वेद में १५ । २४ और सामवेद में—पू० १ । ८ । १ । और उ० ८ । ३ । १३ ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३ ॥

१–२६ ॥ रोहितादित्यो देवता ॥ १, १४, १८ चतुरवसानाऽष्टपदाऽऽकृतिः; २ त्र्यवसानाषट्पदा भुरिगष्टिः; ३ त्र्यवसाना षट्पदाऽष्टिः, ४ त्र्यवसाना षट्पदा धृतिः; ५, ६ चतुरवसाना सप्तपदा प्रकृतिः; ७ चतुरवसाना सप्तपदाऽतिधृतिः; ८, २२ त्र्यवसानाषट्पदा विराडत्यष्टिः ; ९—१२ चतुरवसाना सप्तपदा भुरिगतिधृतिः; १३, २३ चतुरवसानाऽष्टपदा विकृतिः; १५ चतुरवसाना सप्तपदा निचृदतिधृतिः; १६, १९ चतुरवसानाऽष्टपदा भुरिगाकृतिः; १७ त्र्यवसाना सप्तपदाकृतिः; २० त्र्यवसाना षट्पदाऽत्यष्टिः; २१ चतुरवसानाऽष्टपदा निचृदाकृतिः; २४ त्र्यवसाना सप्तपदा विराट् कृतिः; २५ चतुरवसानाऽष्टपदा विराड् विकृतिः, २६ अनुष्टुप् ॥

यज देवपूजादिषु—वन्, जस्य हः । यह्वो महन्नाम—निघ० ३ । ३ । महान्तः पुरुषाः (प्र) प्रकर्षेण (वयाम्) वय गतौ—अच्, टाप् । गतिम् । नीतिम् (उज्जिहानाः) ओ हाङ् गतौ—शानच् । ऊर्ध्वं गच्छन्तः (प्र) (भानवः) प्रकाशमानाः प्रभवः पुरुषाः (सिस्रते) सृ गतौ—लट्, शपः श्लुः, आत्मनेपदं छान्दसम् । प्राप्नुवन्ति (नाकम्) सुखस्वरूपं परमात्मानम् (अच्छ) आभिमुख्येन ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्मोपदेशः—परमात्मा और जीवात्मा का उपदेश ॥

य इमे द्यावापृथिवी जजान॒ यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि॒ वस्ते॑ ।
यस्मिन् क्षियन्ति॒ प्रदिशः॒ षडुर्वीर्याः पत॑ङ्गो॒ अनु॑ विचाक॑शीति॒ तस्य॑ दे॒वस्य॑ । क्रुद्धस्यै॒तदागो॒ य एवं विद्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥ १ ॥

यः । इ॒मे इति॑ । द्यावापृथिवी इति॑ । ज॒जान॑ । यः । द्रापि॑म् । कृ॒त्वा । भुव॑नानि । वस्ते॑ ॥ यस्मिन् । क्षि॒यन्ति॑ । प्र॒-दिशः॑ । षट् । उ॒र्वीः॑ । याः । पत॑ङ्गः । अनु॑ । वि॒-चाक॑शीति ॥ तस्य॑ । दे॒वस्य॑ ॥ क्रुद्धस्य॑ । एतत् । आगः॑ । यः । एव॑म् । विद्वांस॑म् । ब्राह्म॒णम् । जि॒नाति॑ ॥ उत् । वे॒पय॑ । रो॒हि॒त॒ । प्र । क्षि॒णी॒हि॒ । ब्रह्म॒-ज्यस्य॑ । प्रति॑ । मु॒ञ्च॒ । पाशा॑न् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमे) इन दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (जजान) उत्पन्न किया है, (यः) जो (भुवनानि) सत्ता वाले [लोकों] को (द्रापिम्) वस्त्र [समान] (कृत्वा) बनाकर (वस्ते) ओढ़ता है । (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (षट्) छह [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे वाली] (उर्वीः) चौड़ी (प्रदिशः) दिशायें (क्षियन्ति) रहती हैं, (याः अनु) जिनकी ओर (पतङ्गः) ऐश्वर्यवान् [परमे-

१—(यः) परमेश्वरः (इमे) दृश्यमाने (द्यावापृथिवी) प्रकाशाप्रकाशमानलोकौ (जजान) जनयामास (यः) (द्रापिम्) द्रा कुत्सायां गतौ—क्विप् + पा रक्षणे—कि । द्रायाः कुत्सायाः गते रक्षकं वस्त्रादिकम् (कृत्वा) विधाय (भुवनानि) सत्तात्मकानि लोकजातानि (वस्ते) आच्छादयति (यस्मिन्) परमेश्वरे (क्षियन्ति) निवसन्ति (प्रदिशः) प्रकृष्टा दिशः (षट्) ऊर्ध्वार्धः सहिताः पूर्वादयः (उर्वीः) (विस्तृताः) (याः) (पतङ्गः) पत ऐश्वर्ये—अङ्गच् । ऐश्वर्यवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वर] (विचाकशीति) चमकता चला जाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर !] [उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाशकर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बांधदे ॥ १ ॥

भावार्थ—परमेश्वर सर्वोत्पादक, सर्वव्यापक, सर्वशासक है, वेद का उपदेश रोकने वाला पुरुष ईश्वर व्यवस्था से अविद्या के कारण कष्ट उठाता है। हे मनुष्यो ! तुम उस जगत् पिता को अपना उपास्य देव जानो ॥ १ ॥

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति तस्य देवस्य । ० । ० ॥ २ ॥

यस्मात् । वाताः । ऋतु-था । पवन्ते । यस्मात् । समुद्राः । अधि । वि-क्षरन्ति । तस्य । ० ॥ २ ॥

भाषार्थ—(यस्मात्) जिस [परमेश्वर] से (वाताः) पवन (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (पवन्ते) शुद्ध करते हैं, (यस्मात्) जिससे (समुद्राः) समुद्र (अधि) मर्यादा से (विक्षरन्ति) बहते रहते हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य)

(अनु) प्रति (विचाकशीति) अ० ६ । ६ । २० । काशृ दीप्तौ यङ्लुकि रूपम्। विविधं भृशं प्रकाशते (तस्य) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । पा० २ । ३। ६२ । इति षष्ठी । तस्मै (देवस्य) देवाय (क्रुद्धस्य) क्रुद्धाय (एतत्) वक्ष्यमाणम् (आगः) इण आगोऽपराधे च । उ० ४ । २१२ । इण् गतौ—असुन्, आगादेशः । अपराधः (यः) मनुष्यः (एवम्) तथाभूतम् (विद्वांसम्) जानन्तम् (ब्राह्मणम्) वेदज्ञातारम् (जिनाति) ज्या वयोहानौ । हिनस्ति (उत्) उत्कर्षेण (वेपय) कम्पय (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर (प्र) (क्षिणीहि) नाशय (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारिणो हिंसकस्य (प्रतिमुञ्च) बधान (पाशान्) बन्धान् ॥

२—(यस्मात्) परमेश्वरात् (वाताः) पवनाः (ऋतुथा) ऋतूननुसृत्य (पवन्ते) शोधयन्ति (यस्मात्) (समुद्राः) जलौघाः (अधि) अधिकृत्य ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये.....[म० १] ॥ २ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा ।
तस्य ० । ० । ० ॥ ३ ॥

यः । मारयति । प्राणयति । यस्मात् । प्राणन्ति । भुवनानि ।
विश्वा ॥ तस्य । ० ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (मारयति) मारता है, और (प्राणयति) जिलाता है, (यस्मात्) जिससे (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वाले (प्राणन्ति) जीवते हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये.....[म० १] ॥ ३॥

भावार्थ—जो परमेश्वर प्राणियों को कर्मानुसार दुख सुख देता है और सब लोकों की रक्षा करता है, हे मनुष्यो ! तुम उसकी उपासना करो ॥ ३ ॥

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः
पिपर्ति । तस्य ० । ० । ० ॥ ४ ॥

यः । प्राणेन । द्यावापृथिवी इति । तर्पयति । अपानेन ।
समुद्रस्य । जठरम् । यः । पिपर्ति ॥ तस्य ॥ ० ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(यः) जो (प्राणेन) प्राण से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि को (तर्पयति) तृप्त करता है और (यः) जो (अपानेन) अपान वायु से (समुद्रस्य) समुद्र के (जठरम्) पेट को (पिपर्ति) भरता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये..... [म० १] ॥ ४ ॥

मर्यादामनुसृत्य (विचरन्ति) विविधं वहन्ति ॥

३—(यः) परमेश्वरः (मारयति) नाशयति (प्राणयति) जीवयति (यस्मात्) (प्राणन्ति) जीवन्ति (भुवनानि) सत्तायुक्तानि सत्त्वानि (विश्वा) सर्वाणि ॥

४—(यः) परमेश्वरः (प्राणेन) श्वासेन (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमिलोकौ (तर्पयति) तोषयति (अपानेन) प्रश्वासेन (समुद्रस्य) (जठरम्) उदरम् (यः) (पिपर्ति) पूरयति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः। यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे। तस्य ०।०।०॥५॥

यस्मिन्। वि-राट्। परमे-स्थी। प्रजा-पतिः। अग्निः। वैश्वानरः। सह। पङ्क्त्या। श्रितः। यः। परस्य। प्राणम्। परमस्य। तेजः। आ-ददे॥ तस्य। ०॥ ५॥

भाषार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (विराट्) विविध प्रकाशमान (परमेष्ठी) बड़ी स्थिति वाला [आकाश], (प्रजापतिः) प्रजापालक [सूर्य] और (वैश्वानरः) सब नायकों [रस ले चलने वाली नाड़ी आदिकों] का हितकारी (अग्निः) अग्नि [जाठर अग्नि] (पङ्क्त्या सह) अपनी पङ्क्ति [श्रेणि] के सहित (श्रितः) ठहरा है, (यः) जिस [परमेश्वर] ने (परस्य) दूर पदार्थ के (प्राणम्) प्राण को और (परमस्य) सब से ऊंचे पदार्थ के (तेजः) तेज को (आददे) अपने में ग्रहण किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये……[म० १] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो युञ्जस्य त्रयोऽक्षराः। ये अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत। तस्य ०।०।०॥ ६ ॥

यस्मिन्। षट्। उर्वीः। पञ्च। दिशः। अधि। श्रिताः।

५—(यस्मिन्) परमेश्वरे (विराट्) विविधं राजमानः (परमेष्ठी) परमस्थितिमान्। आकाशः (प्रजापतिः) प्रजापालकः सूर्यः (अग्निः) जाठराग्निः (वैश्वानरः) सर्वेषां नराणां नायकानां रसवाहकनाड्यादिकानां हितः (सह) (पङ्क्त्या) श्रेण्या (श्रितः) स्थितः (यः) परमेश्वरः (परस्य) दूरस्थपदार्थस्य (प्राणम्) जीवनम् (परमस्य) उच्चतमपदार्थस्य (तेजः) प्रकाशम् (आददे) स्वस्मिन् गृहीतवान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतस्रः । आपः । यज्ञस्य । त्रयः । अक्षराः ॥ यः । अन्तरा । रोदसी इति । क्रुद्धः । चक्षुषा । ऐक्षत ॥ तस्य । ०॥ ६ ॥

भाषार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (षट्) छह [पूर्वादिचार और नीचे ऊपर वाली] (उर्वीः) चौड़ी (दिशः) दिशायें (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश पांच तत्त्वों] के सहित, (चतस्रः) चार प्रकार की [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्ररूप] (आपः) प्रजायें और (यज्ञस्य) [संयोग वियोग वाले संसार] के (त्रयः) तीनों [सत्त्व, रज, तम] (अक्षराः) व्यापक गुण (अधि) यथावत् (श्रिताः) ठहरे हैं । (यः) जिस ने (क्रुद्धः) क्रुद्ध होकर (रोदसी अन्तरा) दोनों सूर्य और भूमि [प्रकाशमान और अप्रकाशमान लोकों] के बीच (चक्षुषा) अपने नेत्र से (ऐक्षत) देखा है [वश में किया है] । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये……[म० १) ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ६ ॥

इस मन्त्र के गणिताङ्कों में छह से लेकर दो तक एक एक घटता गया है ॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः । भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः । तस्य ०। ०। ७ ॥ ७ ॥

यः । अन्न-अदः । अन्न-पतिः । बभूव । ब्रह्मणः । पतिः । उत । यः ॥ भूतः । भविष्यत् । भुवनस्य । यः । पतिः ॥ तस्य । ०॥७॥

६—(यस्मिन्) परमेश्वरे (षट्) ऊर्ध्वाधोभ्यां सह पूर्वादयः (उर्वीः) विस्तृताः (पञ्च) विभक्तिलोपः । पञ्चभिः पृथिव्यादिभूतैः (दिशः) दिशाः (अधि) यथावत् (श्रिताः) स्थिताः (चतस्रः) (आपः) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्ररूपाः प्रजाः (यज्ञस्य) संयोगवियोगवतः संसारस्य (त्रयः) (अक्षराः) अशेः सरः । उ० ३ । ७० । अशू व्याप्तौ—सर । सत्त्वरजस्तमोरूपा व्यापका गुणाः (अन्तरा) मध्ये (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (क्रुद्धः) कुपितः सन् (चक्षुषा) दृष्ट्या (ऐक्षत) अपश्यत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अन्नादः) अन्न का खिलाने वाला, (अन्नपतिः) अन्न का स्वामी, (उत) और (यः) जो (ब्रह्मणः) वेद ज्ञान का (पतिः) रक्षक (बभूव) हुआ है, (यः) जो (भुवनस्य) संसार का (भूतः) अतीत काल में रहने वाला और (भविष्यत्) आगे रहने वाला (पतिः) स्वामी है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १] ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ७ ॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य ० । ०॥ ० ॥ ८ ॥

अहोरात्रैः । वि-मितम् । त्रिंशत्-अङ्गम् । त्रयः-दशम् । मासम् । यः । निः-मिमीते ॥ तस्य । ० ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अहोरात्रैः) दिन और रातों के साथ (विमितम्) नापे गये, (त्रिंशदङ्गम्) तीस अङ्गों वाले [अर्थात् ऋग्वेद आदि चारो वेद+ब्राह्मण आदि चारों वर्ण+ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रम+अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य+पृथिवी आदि पांच भूत+उछालना, गिराना, सकोड़ना, फैलाना और चलना पांच कर्म जिसमें हैं] और (त्रयोदशम्) तेरह पदार्थ वाले [अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका—पांच ज्ञानेन्द्रिय, गुदा, उपस्थ वा मूत्रमार्ग, हाथ, पांव, वाणी—पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि और जीव

७—(यः) परमेश्वरः (अन्नादः) अन्नमादयति भक्षयतीति सः (अन्नपतिः) (बभूव) (ब्रह्मणः) वेदज्ञानस्य (पतिः) स्वामी (उत) अपि (यः) (भूतः) अतीतकाले भवः (भविष्यत्) अनागतकाले वर्तमानः (भुवनस्य) सत्तावतो लोकस्य (यः) (पतिः) ॥

८—(अहोरात्रैः) रात्रिदिवसैः (विमितम्) परिमितम् (त्रिंशदङ्गम्) त्रिंशदङ्गानि यस्य तम्। ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदा ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णा ब्रह्मचर्यादयश्चत्वार आश्रमा अणिमादयोऽष्टविभूतय उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानीति पञ्चकर्माणि—इति त्रिंशदङ्गानि (त्रयोदशम्) बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्। पा० ५। ४। ७३। इति त्रयोदशन्-डच्। त्रयोदशपदार्था यस्मिंस्तम्। श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वानासिकापञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, गुदोपस्थहस्त—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्थान] (मासम्) नापने योग्य [संसार] को (निर्मिमीते) बनाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये..... [मन्त्र १] ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने खोजने योग्य संसार में मनुष्य के सुख के लिये वेद आदि और इन्द्रिय आदि पदार्थ रचे हैं, हे मनुष्यो! उसी को इष्टदेव जानकर पुरुषार्थी बनकर उन्नति करो ॥ ८ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति।
ते आववृत्रन्त्सदनादृतस्य। तस्य० । ० । ० ॥ ९ ॥

कृष्णम् । नि-यानम् । हरयः । सु-पर्णाः । अपः । वसानाः । दिवम् । उत् । पतन्ति ॥ ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य ॥ तस्य । ० ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(हरयः) जल खींचने वाली (सुपर्णाः) अच्छे प्रकार उड़ने वाली किरणें, (अपः) जल को (वसानाः) ओढ़कर, (कृष्णम्) खींचने वाले (नियानम्) नित्य गमन स्थान अन्तरिक्ष में [होकर] (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य मण्डल को (उत् पतन्ति) चढ़ जाती हैं। (ते) वे [किरणें] (ऋतस्य) जल के (सदनात्) स्थान [सूर्य] से (आ अववृत्रन्) [ईश्वर नियम के अनुसार] लौट आती हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १] ॥ ९ ॥

पादवाणीपञ्च कर्मेन्द्रियाणि मनोबुद्धिजीवाश्चेतित्रयोदशपदार्थाः (मासम्) मसीं परिणामे परिमाणे च। घञ्। मस्यते परिमीयते यः स मासस्तं संसारम् (निर्मिमीते) रचयति ॥

९—कृष्णमित्यादि व्याख्यातम्—अ० ६। २२।१। अत्र शब्दार्थो दीयते (कृष्णम्) आकर्षकम् (नियानम्) नित्यगमनस्थानमन्तरिक्षं प्रति (हरयः) रसं हरन्तः (सुपर्णाः) आदित्यरश्मयः—निरु० ७। २४ (अपः) जलानि (वसानाः) आच्छादयन्तः (दिवम्) प्रकाशमयं सूर्यमण्डलम् (उत्) उद्गत्य (पतन्ति) प्राप्नुवन्ति (ते) किरणाः (आ अववृत्रन्) आवर्तन्ते। आगच्छन्ति (सदनात्) गृहात्। सूर्यमण्डलात् (ऋतस्य) उदकस्य ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस ईश्वर ने सूर्य की किरणों को सूर्य तक जल खींचने, मेघ द्वारा बरसाने और सृष्टि के लिये उपकारी होने का सामर्थ्य दिया है, सब मनुष्य उसकी उपासना करें ॥ ९ ॥

इस मन्त्र का (कृष्णं .....ऋतस्य) यह भाग आचुका है-अ० ६ । २२ । १ तथा ९ । १० । २२ और ऋग्० १ । १६४ । ४७ ॥

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु । यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् । तस्यं० । ० । ० ॥ १० ॥ (१२)

यत् । ते । चन्द्रम् । कश्यप । रोचन-वत् । यत् । सम्-हितम् । पुष्कलम् । चित्र-भानु ॥ यस्मिन् । सूर्याः । आर्पिताः । सप्त । साकम् ॥ तस्यं । ० ॥ १० ॥ (१२)

भाषार्थ—(कश्यप) हे सर्वदर्शक ! [परमेश्वर] (यत्) जो (ते) तेरा (चन्द्रम्) आनन्द कर्म (रोचनवत्) बड़ी रुचि वाला है, और (यत्) जो (संहितम्) एकत्र किया हुआ, (चित्रभानु) विचित्र प्रकाश वाला (पुष्कलम्) पोषण कर्म है । (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर के नियम] में (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्ररूप वाली] (सूर्याः) सूर्य की किरणें (साकम्) साथ साथ (आर्पिताः) जड़ी हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १] ॥ १० ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सर्वदर्शक आनन्ददाता और पोषणप्रद है, सब लोग उसकी उपासना करें ॥ १० ॥

१०—(यत्) (ते) तव (चन्द्रम्) स्फायितञ्चिवञ्चि० । उ० २ । १३ । चदि आह्लादने दीप्तौ च—रक् । आह्लादकं कर्म (कश्यप) पश्यक (रोचनवत्) रुचियुक्तम् (यत्) (संहितम्) एकीकृतम् (पुष्कलम्) कलँश्च । उ० ४ । ५ । पुष पुष्टौ—कलन् । पोषणकर्म, (चित्रभानु) विचित्रदीप्ति (यस्मिन्) परमेश्वरनियमे (सूर्याः) अ० ९ । ४ । १४ । षू प्रेरणे—क्यप्, टाप् । सूर्या सूर्यस्य पत्नी—निरु० १२ । ७ । सूर्यकिरणाः (अर्पिताः) स्थापिताः (सप्त) शुक्लनीलादिसप्तवर्णाः (साकम्) सह ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथंतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् । ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् । तस्य ० । ० । ० ॥ ११ ॥

बृहत् । एनम् । अनु । वस्ते । पुरस्तात् । रथम्-तरम् । प्रति । गृह्णाति । पश्चात् ॥ ज्योतिः । वसाने इति । सदम् । अप्र-मादम् ॥ तस्य । ० ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (पुरस्तात्) आगे से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (अनु) निरन्तर (वस्ते) ओढ़ता है, (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (पश्चात्) पीछे से [परमेश्वर को] (प्रति) प्रत्यक्ष (गृह्णाति) ग्रहण करता है । [दोनों, आकाश और जगत्] (अप्रमादम्) बिना चूक (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप [परमात्मा] को (सदम्) सदा (वसाने) ओढ़े हुये [रहते हैं] । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये..... [म० १] ॥ ११ ॥

भावार्थ—वह परमात्मा इतना बड़ा है कि उसके भीतर यह सब आकाश और सब जगत् समा रहा है, उसकी उपासना तुम करो ॥ ११ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ८ । १० (२) । ६ ॥

बृहदुन्यतः पक्ष आसीद् रथंतरमुन्यतः सबले सध्रीची । यद् रोहितमजनयन्त देवाः । तस्य ० । ० । ० ॥ १२ ॥

बृहत् । अन्यतः । पक्षः । आसीत् । रथम्-तरम् । अन्यतः सबले इति स-बले । सध्रीची इति ॥ यत् । रोहितम् । अजनयन्त । देवाः ॥ तस्य । ० ॥ १२ ॥

११—(बृहत्) महत् आकाशम् (एनम्) परमात्मानम् (अनु) निरन्तरम् (वस्ते) आच्छादयति (पुरस्तात्) अग्रे (रथन्तरम्) अ० ८ । १० (२) ६ । रथैरमणीयपदार्थैस्तरति येन तज् जगत् (प्रति) प्रत्यक्षम् (गृह्णाति) स्वीकरोति (पश्चात्) (ज्योतिः) तेजः स्वरूपं ब्रह्म (वसाने) आच्छादयमाने (सदम्) सदा (अप्रमादम्) प्रमादरहितम् । सावधानम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (अन्यतः) एक ओर से (पक्षः) [उस परमेश्वर का] ग्रहण सामर्थ्य (आसीत्) था, और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (अन्यतः) दूसरी ओर से—[दोनों] (सबले) तुल्य बल वाले और (सधीची) साथ साथ गति वाले [थे], (यत्) जब (रोहितम्) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (देवाः) [उसके] उत्तम गुणों ने (अजनयन्त) प्रकट किया । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये..... [म० १] ॥ १२ ॥

भावार्थ—परस्पर मिले हुये और बहुत बड़े आकाश और जगत् परमात्मा के सामर्थ्य से वर्तमान हैं, इस बात को उसके गुणों से साक्षात् करके आत्मोन्नति करो ॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् । स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् । तस्य० । ० । ० ॥ १३ ॥

सः । वरुणः । सायम् । अग्निः । भवति । सः । मित्रः । भवति । प्रातः । उत्-यन् ॥ सः । सविता । भूत्वा । अन्तरिक्षेण । याति । यः । इन्द्रः । भूत्वा । तपति । मध्यतः । दिवम् ॥ तस्य । ० ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा (सायम्) सायङ्काल में (अग्निः) अग्नि [अग्नि समान तेजस्वी] (भवति) होता है, (सः) वह [पर-

---

१२—(बृहत्) आकाशम् (अन्यतः) एकस्मात् प्रदेशात् (पक्षः) ग्रहणसामर्थ्यम् (आसीत्) (रथन्तरम्) म० ११ । रमणीयैः पदार्थैस्तारकं जगत् (अन्यतः) (सबले) समानबलयुक्ते (सधीची) संगच्छमाने (यत्) यदा (रोहितम्) सर्वोत्पादकं परमेश्वरम् (अजनयन्त) प्रादुष्कृतवन्तः (देवाः) श्रेष्ठगुणाः ॥

१३—(सः) (वरुणः) श्रेष्ठः परमेश्वरः (सायम्) सूर्यास्ते (अग्निः) अग्नितुल्यः (भवति) (सः) परमेश्वरः (मित्रः) स्नेहवान् सूर्यो यथा (भवति)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेश्वर] (प्रातः) प्रातःकाल (उद्यन्) उदय होते हुये (मित्रः) स्नेहवान् सूर्य [के समान] (भवति) होता है । (सः) वह [परमेश्वर] (सविता) प्रेरणा करने वाला सूर्य के समान (भूत्वा) होकर (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष के साथ (याति) चलता है, (सः) वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (भूत्वा) होकर (मध्यतः) बीच से (दिवम्) सूर्यलोक को (तपति) तपाता है । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये ..... [म० १] ॥१३॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सायंकाल के अग्नि, और प्रातःकाल और मध्याह्न के सूर्य समान प्रतापी है, वही इन सब में अन्तर्यामी है । उसके गुणों को जान कर आगे बढ़ो ॥ १३ ॥

सहस्राह्नयं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् । स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सं पश्यन् याति भुवनानि० विश्वा । तस्य० । ० । ० ॥ १४ ॥

सहस्र-अह्नयम् । वि-यतौ । अस्य । पक्षौ । हरेः । हंसस्य । पततः । स्वः-गम् ॥ सः । देवान् । सर्वान् । उरसि । उप-दद्य । सम्-पश्यन् । याति । भुवनानि । विश्वा ॥ तस्य ।०॥१४॥

भाषार्थ—(स्वर्गम्) मोक्ष सुख को (पततः) प्राप्त होते हुये (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरने वाले] (हंसस्य) हंस [सर्वव्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनों पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य और कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्नयम्) सहस्रों दिनों वाले [अनन्त देशकाल] में (वियतौ) फैले हुये हैं । (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) दिव्यगुणों को [अपने] (उरसि) हृदय में (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (संपश्यन्) निरन्तर देखता हुआ (याति) चलता रहता है । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये .....[म० १] ॥ १४ ॥

(प्रातः) प्रभाते (उद्यन्) उद्गच्छन् (सः) (सविता) प्राणिनां प्रेरकः सूर्यो यथा (भूत्वा) (अन्तरिक्षेण) आकाशेन सह (याति) गच्छति (सः) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् । जगदीश्वरः (भूत्वा) (तपति) तापयति (मध्यतः) मध्यात् (दिवम्) सूर्यलोकम् ॥

१४—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अथर्व० १० । ८ । १८ । तत्रैव द्रष्टव्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जैसे परमेश्वर अन्तर्यामी रूप से अनन्त कार्य कारण रूप जगत् की निरन्तर सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर का विचार करता हुआ सब कामों में सदा सावधान रहे ॥ १४ ॥

आवृत्ति छोड़कर यह मन्त्र आ चुका है—अ० १०। ८। १८ तथा १३। २। ३८ ॥

अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अक्तिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य० । ० । ० ॥ १५ ॥

अयम् । सः । देवः । अप्-सु । अन्तः । सहस्र-मूलः । पुरु-शाकः । अक्तिः ॥ यः । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । जजान ॥ तस्य । ० ॥ १५ ॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सः) वही (देवः) प्रकाशमान, (सहस्रमूलः) सहस्रों [अनगणित] कारणों में रहने वाला, (पुरुशाकः) बहुत शक्तियों वाला (अक्तिः) नित्यज्ञानी [परमेश्वर] (अप्सु) प्रजाओं में (अन्तः) भीतर है। (यः) जिस ने (इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) सत्ता को (जजान) उत्पन्न किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १] ॥ १५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वजनक परमात्मा को प्रत्येक कारण में आदि कारण खोजकर उसकी भक्ति करें ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्। यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति। तस्य० । ० । ० ॥ १६ ॥

१५—(अयम्) प्रत्यक्षः (सः) (देवः) प्रकाशमानः (अप्सु) प्रजासु (अन्तः) मध्ये (सहस्रमूलः) सहस्रेष्वसंख्यातेषु मूलेषु कारणेषु विद्यमानः (पुरुशाकः) शक्लृ शक्तौ—घञ्। बहुशक्तियुक्तः (अक्तिः) अ० १३। २। ४। नित्यज्ञानी परमेश्वरः (यः) परमेश्वरः (इदम्) दृश्यमानम् (विश्वम्) सर्वम् (भुवनम्) सत्ताम् (जजान) उत्पादयामास ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्रम् । वहन्ति । हरयः । रघु-स्यदः । देवम् । दिवि । वर्चसा । भ्राजमानम् ॥ यस्य । ऊर्ध्वाः । दिवम् । तन्वः । तपन्ति । अर्वाङ् । सु-वर्णैः । पटरैः । वि । भाति ॥ तस्य ।०१६

भाषार्थ—(रघुष्यदः) शीघ्रगामी (हरयः) अज्ञान नाशक मनुष्य (शुक्रम्) वीर्यवान् (देवम्) ज्ञानवान् (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (वर्चसा) तेज से (भ्राजमानम्) प्रकाशमान [परमेश्वर] को (वहन्ति) पाते हैं। (यस्य) जिस [परमेश्वर] के (ऊर्ध्वाः) ऊंचे (तन्वः) उपकार (दिवम्) सूर्य को (तपन्ति) तपाते हैं, (अर्वाङ्) समीपवर्ती वह (सुवर्णैः) बड़े श्रेष्ठ (पटरैः) प्रकाशों के साथ (वि भाति) चमकता जाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये……[म० १] १६

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य निरालसी होकर परमेश्वर की उपासना से पराक्रमी और प्रतापी होवें ॥ १६ ॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः । यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति । तस्य ।०।०।० ॥१७॥

येन । आदित्यान् । हरितः । सम्-वहन्ति । येन । यज्ञेन । बहवः । यन्ति । प्र-जानन्तः ॥ यत् । एकम् । ज्योतिः । बहु-धा । वि-भाति ॥ तस्य । ० ॥ १७ ॥

१६—(शुक्रम्) अर्श आद्यच्। वीर्यवन्तम् (वहन्ति) प्राप्नुवन्ति (हरयः) हरयो मनुष्यनाम—निघ० २। ३। अज्ञाननाशका मनुष्याः (रघुष्यदः) शीघ्रगामिनः (देवम्) ज्ञानिनम् (दिवि) व्यवहारे (वर्चसा) तेजसा (भ्राजमानम्) दीप्यमानम् (यस्य) परमेश्वरस्य (ऊर्ध्वाः) उन्नताः (दिवम्) सूर्यम् (तन्वः) तन उपकारे—ऊप्रत्ययः। उपकृतयः (तपन्ति) तापयन्ति (अर्वाङ्) समीपवर्ती परमेश्वरः (सुवर्णैः) सुवरणीयैः (पटरैः) अर्त्तिकमिभ्रमिचमि० । उ० ३। १३२। पट गतौ, दीप्तौ वेष्टने च—अरप्रत्ययः। प्रकाशैः (वि) विविधम् (भाति) दीप्यते ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(येन) जिस [परमेश्वर] के साथ (हरितः) दिशायें (आदित्यान्) आदित्य [अखण्ड] ब्रह्मचारियों को (संवहन्ति) मिलकर ले चलती हैं, (येन) जिस [परमेश्वर] के साथ (यज्ञेन) पूजनीय कर्म से (बहवः) बहुत से (प्रजानन्तः) भविष्यज्ञानी लोग (यन्ति) चलते हैं। (यत्) जो (एकम्) एक (ज्योतिः) ज्योतिः स्वरूप परमात्मा (बहुधा) बहु प्रकार से [प्रत्येक वस्तु में] (विभाति) चमकता रहता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये……[म० १] ॥ १७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य उस अद्वितीय प्रकाशस्वरूप परमात्मा को प्रत्येक स्थान में पाकर भविष्यवेत्ता होकर सामर्थ्य बढ़ावें ॥ १७ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।
तस्य ०।०।०॥ १८ ॥

सप्त। युञ्जन्ति। रथम्। एक-चक्रम्। एकः। अश्वः। वहति। सप्त-नामा॥ त्रि-नाभि। चक्रम्। अजरम्। अनर्वम्। यत्र। इमा। विश्वा। भुवना। अधि। तस्थुः॥ तस्य। ०॥ १८॥

भाषार्थ—(सप्त) सात [इन्द्रियां—त्वचा, नेत्र, कान, जीभ, नाक, मन और बुद्धि] (एकचक्रम्) एक चक्र वाले [अकेले पहिये के समान काम करने वाले जीवात्मा से युक्त] (रथम्) रथ [वेगशील वा रथ समान, शरीर को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, (एकः) अकेला (सप्तनामा) सात [त्वचा आदि इन्द्रियों] से झुकने वाला [प्रवृत्ति करने वाला] (अश्वः) अश्व [अश्वरूप व्यापक जीवात्मा] (त्रिनाभि) [सत्त्व रज और तमोगुण रूप] तीन बन्धन वाले

१७—(येन) परमेश्वरेण सह (आदित्यान्) अखण्डब्रह्मचारिणः पुरुषान् (हरितः) दिशः—निघ० १। ६ (संवहन्ति) संगत्य प्रापयन्ति (येन) (यज्ञेन) पूजनीयेन कर्मणा (बहवः) (यन्ति) गच्छन्ति (प्रजानन्तः) भविष्यज्ञानिनः (यत्) (एकम्) अद्वितीयम् (ज्योतिः) तेजःस्वरूपं ब्रह्म (बहुधा) अनेकप्रकारेण (विभाति) विविधं प्रकाशते ॥

१८—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ९। ९। २। तत्रैव द्रष्टव्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अजरम्) चलने वाले [वा जीर्णता रहित,] (अनर्वम्) न टूटे हुये (चक्रम्) चक्र [चक्र समान काम करनेवाले अपने जीवात्मा] को [उस परमात्मा में] (वहति) ले जाता है, (यत्र) जिस [परमात्मा] में (इमा) यह (विश्वा) सब (भुवना) सत्तायें (अधि) यथावत् (तस्थुः) ठहरी हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १] ॥ १८ ॥

भावार्थ—यह जीवात्मा इन्द्रियों द्वारा पुरुषार्थ करके संसार के सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों के यथावत् ज्ञान से जगदीश्वर को जानकर आनन्द पावे ॥ १८ ॥

आवृत्ति छोड़कर यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ९ । ९ । २ और ऋग्वेद में है—१ । १६४ । २ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् । ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा । तस्य ० । ० । ० ॥ १९ ॥

अष्टधा । युक्तः । वहति । वह्निः । उग्रः । पिता । देवानाम् । जनिता । मतीनाम् ॥ ऋतस्य । तन्तुम् । मनसा । मिमानः । सर्वाः । दिशः । पवते । मातरिश्वा ॥ तस्य । ० ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(अष्टधा) आठ प्रकार से (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—योग के आठ अङ्गों द्वारा] (युक्तः) ध्यान किया गया, (उग्रः) प्रचण्ड (वह्निः) ले चलने वाला, (देवानाम्) गतिमान् [पृथिवी आदि] लोकों का (पिता) पिता [रक्षक] और (मतीनाम्) बुद्धिमानों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर, संसार को] (वहति) ले चलता है। (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (तन्तुम्) तांते [श्रेणी] को (मनसा)

१९—(अष्टधा) अष्टप्रकारेण। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि—योगदर्शने २ । २९ (युक्तः) ध्यातः (वहति) गमयति लोकान् (वह्निः) वाहकः (उग्रः) प्रचण्डः (पिता) रक्षकः (देवानाम्) गतिमतां पृथिव्यादिलोकानाम् (जनिता) उत्पादकः (मतीनाम्) मेधाविनाम्—निघ० ३ । १५ (ऋतस्य) सत्यज्ञानस्य (तन्तुम्) श्रेणिम्। विस्तारम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विज्ञान से (मिमानः) नापता हुआ, (मातरिश्वा) आकाश में गति वाला [परमेश्वर] (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (पवते) चलता है [व्यापता है]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये ..... [म० १] ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सर्वस्वामी, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता है, सब मनुष्य योगद्वारा उसकी उपासना करके आनन्द पावें ॥ १९ ॥

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्यामृतस्य गर्भे ।
तस्य० । ० । ० ॥ २० ॥ (१३)

सम्यञ्चम् । तन्तुम् । प्र-दिशः । अनु । सर्वाः । अन्तः । गायत्र्याम् । अमृतस्य । गर्भे ॥ तस्य । ० ॥ २० ॥ (१३)

भाषार्थ—(सम्यञ्चम्) आपस में मिले हुये (तन्तुम् अनु) तांते के साथ (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशायें (अमृतस्य) अमर [परमात्मा] के (गर्भे) गर्भ में [वर्तमान] (गायत्र्याम् अन्तः) गाने योग्य वेदवाणी के भीतर [हैं]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १ ॥ २० ॥

भावार्थ—जिस सर्वव्यापक परमेश्वर के सामर्थ्य से सब लोक लोकान्तर परस्पर आकर्षण में ठहरे हैं, हे मनुष्यो ! तुम उस की उपासना से उन्नति करो ॥ २० ॥

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग

(मनसा) विज्ञानेन (मिमानः) मानं कुर्वाणः (सर्वाः) (दिशः) (पवते) गच्छति—निघ० २ । १४ । व्याप्नोति (मातरिश्वा) मातरि आकाशे श्वयति गच्छति व्याप्नोति यः परमेश्वरः ॥

२०—(सम्यञ्चम्) संगतम् (तन्तुम्) विस्तारम् (प्रदिशः) प्रकृष्टा दिशाः (सर्वाः) (अन्तः) मध्ये (गायत्र्याम्) अमिनक्षियजि० । ३ । १०५ । गै गाने—अत्रन्, स च णित् । आतो युक् चिण्कृतोः । पा० ७ । ३ । ३३ । इति युक् । गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० ७ । १२ । गानयोग्यायां स्तुत्यायां वेदवाचि (अमृतस्य) अविनाशिनः परमेश्वरस्य (गर्भे) अभिकरणे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रः । विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म । तस्य० । ० । ० ॥ २१ ॥

नि-ग्रुचः । तिस्रः । वि-उषः । ह । तिस्रः । त्रीणि । रजांसि । दिवः । अङ्ग । तिस्रः ॥ विद्म । ते । अग्ने । त्रेधा । जनित्रम् । त्रेधा । देवानाम् । जनिमानि । विद्म ॥ तस्य । ०॥२१॥

भाषार्थ—(निम्रुचः) नीच गतियां [मानसिक, वाचिक और कायिक भेद से] (तिस्रः) तीन और (व्युषः) उच्च गतियां (ह) भी [मानसिक, वाचिक और कायिक भेद से] (तिस्रः) तीन हैं, (रजांसि) लोक [भूत भविष्यत् और वर्तमान भेद से] (त्रीणि) तीन और (दिवः) व्यवहार क्रियायें (अङ्ग) भी [धर्म, अर्थ और काम-इन पुरुषार्थ भेदों से] (तिस्रः) तीन हैं। (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! [कर्म, उपासना और ज्ञान द्वारा] (त्रेधा) तीन प्रकार से (ते) तेरे (जनित्रम्) प्रत्यक्षपन को (विद्म) हम जानते हैं, [सत्त्व, रज और तमोगुण के भेद से] (त्रेधा) तीन प्रकार पर (देवानाम्) गति वाले लोकों के (जनिमानि) प्रादुर्भावों को (विद्म) हम जानते हैं। (तस्य) (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये... ..[मन्त्र १] ॥ २१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि मानसिक, वाचिक और कायिक अवनति अर्थात् नीच गति को छोड़ कर मानसिक वाचिक और कायिक उन्नति

२१—(निम्रुचः) नि + म्रु चु गतौ—क्विप्। अवनतयः। अधोगतयः (तिस्रः) मानसिकवाचिककायिकभेदेन (व्युषः) उष दाहे वधे च—क्विप्। उन्नतयः (ह) एव (तिस्रः) मानसिकादिभेदेन (त्रीणि) भूतभविष्यद्वर्तमानभेदेन (रजांसि) लोकाः (दिवः) व्यवारक्रियाः (अङ्ग) अङ्गेति क्षिप्रनाम—निरु० ५। १७। क्षिप्रम्। अवश्यम् (तिस्रः) धर्मार्थकामभेदेन (विद्म) सांहितिको दीर्घः। जानीमः (ते) तव (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (त्रेधा) त्रिप्रकारेण। कर्मोपासनाज्ञानद्वारा (जनित्रम्) प्रादुर्भावम् (त्रेधा) सत्त्वरजस्तमोगुणभेदेन (देवानाम्) गतिशीलानां लोकानाम् (जनिमानि) प्रादुर्भावान् (विद्म) जानीमः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके भूत भविष्यत् और वर्तमान का विचार करें और पुरुषार्थ पूर्वक परमात्मा के तत्त्वज्ञान से आनन्द पावें ॥ २१ ॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे ।
तस्य ० । ० । ० ॥ २२ ॥

वि । यः । और्णोत् । पृथिवीम् । जायमानः । आ । समुद्रम् ।
अदधात् । अन्तरिक्षे ॥ तस्य । ० ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(यः) जिस (जायमानः) प्रत्यक्ष होते हुये [परमेश्वर] ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि और्णोत्) फैलाया, और (समुद्रम्) समुद्र को (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (आ) सब ओर से (अदधात्) ठहराया । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] केलिये...[मन्त्र १] २२ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग परमात्मा को पृथिवी आदि लोकों का कर्ता साक्षात् करके धर्म में सदा उन्नति करें ॥ २२ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यर्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य० । ० । ० ॥ २३ ॥

त्वम् । अग्ने । क्रतु-भिः । केतु-भिः । हितः । अर्कः । सम्-इद्धः । उत् । अरोचथाः । दिवि ॥ किम् । अभि । आर्चन् ।
मरुतः । पृश्नि-मातरः । यत् । रोहितम् । अजनयन्त । देवाः ॥
तस्य । ० ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (क्रतुभिः) अपने कर्मों से और (केतुभिः) बुद्धियों से (हितः) हितकारी होकर (समिद्धः)

२२—(यः) परमेश्वरः (वि और्णोत्) विस्तारितवान् (पृथिवीम्) (जायमानः) प्रादुर्भवन् (आ) समन्तात् (समुद्रम्) जलौघम् (अदधात्) अस्थापयत् (अन्तरिक्षे) ॥

२३—(त्वम्) (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (क्रतुभिः) कर्मभिः—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित (अर्कः) सूर्य के समान (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (उत्) ऊपर (अरोचथाः) चमका है। (प्रश्निमातरः) पूंछने योग्य वेदवाणी को माता समान मान करने वाले (मरुतः) शूर पुरुषों ने (किम्) किसको [अर्थात् ब्रह्म को ही] (अभि) सब ओर से (आर्चन्) पूजा है, (यत्) जब (रोहितम्) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (देवाः) [उसके] उत्तम गुणों ने (अजनयन्त) प्रकट किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये .....[मन्त्र १] ॥ २३ ॥

भावार्थ—वेदवेत्ता पराक्रमी लोग सर्वहितकारी परमेश्वर को उसके गुण कर्म स्वभाव से जानकर सदा आनन्द पाते हैं ॥ २३ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद ऊपर मन्त्र १२ में आ चुका है। इस मन्त्र का मिलान करो—अ० १३ । १ । ३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योऽस्येश द्विपदो यश्चतुष्पदः। तस्य०। ०। ०॥ २४॥

यः। आत्म-दाः। बल-दाः। यस्य। विश्वे। उप-आसते। प्र-शिषम्। यस्य। देवाः॥ यः। अस्य। ईश। द्वि-पदः। यः। चतुः-पदः॥ तस्य। ०॥ २४॥

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (आत्मदाः) प्राण दाता और (बलदाः) बल दाता है, (यस्य यस्य) जिसके ही (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे) सब (देवाः) गतिमान् सूर्य चन्द्र आदि लोक (उपासते) मानते हैं। (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो पाये [समूह] का और (यः) जो (चतुष्पदः)

निघ० २ । १ (केतुभिः) प्रज्ञाभिः—निघ० ३ । ९ (हितः) उपकारी (अर्कः) सूर्यः (समिद्धः) प्रदीप्तः (उत्) उत्तमतया (अरोचथाः) दीप्तवानसि (दिवि) व्यवहारे (किम्) प्रश्ने। ब्रह्मवेत्यर्थः (आर्चन्) पूजितवन्तः (मरुतः) अ० १ । २० । १ । शूरपुरुषाः (पृश्निमातरः) अ० १ । १३ । १३ । प्रच्छ्यीप्सायाम्—नि। प्रष्टव्या वेदवाणी मातृवत् सत्करणीया येषां ते। अन्यत् पूर्ववत्—म० १२।

२४—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ४ । २ । १ (यः) परमेश्वरः (आत्मदाः) प्राणदाता (बलदाः) बलदाता (यस्य) (विश्वे) सर्वे (उपासते) सेवन्ते (प्रशिषम्) अनुशासनम् (यस्य) (देवाः) गतिमन्तः सूर्यादिलोकाः (यः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपाये [समूह] का (ईशे = ईष्टे) ईश्वर है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये.....[मन्त्र १ ॥ २४ ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर के शासन से सब सूर्य, चन्द्र पृथिवी आदि लोक परस्पर धारण आकर्षण द्वारा अपने अपने मार्ग पर चलते हैं, और मनुष्य गौ आदि सब प्राणी मर्यादा में रहते हैं, उस परमात्मा की भक्ति से मनुष्य आत्मबल बढावें ॥ २४ ॥

आवृत्ति छोड़ कर यह मन्त्र आ चुका है। अ० ४। २। १ और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १२१। २, ३ ॥ और यजु० २५। १३, ११ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादभ्येति पश्चात्। चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे सं पश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः। तस्यै देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥

एक-पात्। द्वि-पदः। भूयः। वि। चक्रमे। द्वि-पात्। त्रि-पादम्। अभि। एति। पश्चात् ॥ चतुः-पात्। चक्रे। द्वि-पदाम्। अभि-स्वरे। सम्-पश्यन्। पङ्क्तिम्। उप-तिष्ठमानः ॥ तस्यै। देवस्य। क्रुद्धस्य। एतत्। आगः। यः। एवम्। विद्वांसम्। ब्राह्मणम्। जिनाति ॥ उत्। वेपय। रोहित। प्र। क्षिणीहि। ब्रह्म-ज्यस्य। प्रति। मुञ्च। पाशान् ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(एकपात्) एक रस व्यापक परमेश्वर (द्विपदः) दो प्रकार की स्थिति वाले [जङ्गम स्थावर जगत्] से (भूयः) अधिक आगे (वि) फैल कर (चक्रमे) चला गया, (द्विपात्) दो [भूत भविष्यत्] में गति वाला

(अस्य) (ईशे) तलोपः। ईष्टे। ईश्वरो भवति (द्विपदः) पादद्वयोपेतस्य (यः) (चतुष्पदः) पादचतुष्टययुक्तस्य ॥

२५—(एकपात्).....(पश्चात्) इति व्याख्यातः—अ० १३। २। २७

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा (पश्चात्) फिर (त्रिपादम्) तीन लोक में [सूर्य, भूमि अर्थात् प्रकाशमान और अप्रकाशमान और मध्य लोक में] (अभि) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है। (चतुष्पाद्) चारो [पूर्व आदि चारो दिशाओं] में व्यापक परमेश्वर ने (द्विपदाम्) दो प्रकार की स्थिति वाले [जङ्गम और स्थावरों] के (अभिस्वरे) सब ओर से पुकारने पर (उपतिष्ठमानः) समीप ठहरते हुये और (पङ्क्तिम्) पांति [सृष्टि की श्रेणी] को (संपश्यन्) निहारते हुये (चक्रे) [कर्तव्य को] किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बांध दे ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो सर्वव्यापक परमात्मा सदा वर्तमान रहकर सब संसार का पालन करता है, सब मनुष्य उस की उपासना पूर्वक विघ्नों से बचकर आनन्द पावें ॥ २५ ॥

इस मन्त्र के प्रथम दो पाद आचुके हैं—अ० १३ । २ । २७ और आवृत्ति छोड़ कर शेष मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । ११७ । ८ ॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥ (१४)

कृष्णायाः । पुत्रः । अर्जुनः । रात्र्याः । वत्सः । अजायत ॥ सः । ह । द्याम् । अधि । रोहति । रुहः । रुरोह । रोहितः ॥ २६ ॥ (१४)

भाषार्थ—(कृष्णायाः) कृष्ण वर्णवाली (रात्र्याः) रात्रि से [प्रलय की

(चतुष्पात्) चतसृषु दिक्षु व्यापकः परमेश्वरः (चक्रे) कर्तव्यं कृतवान् (द्विपदाम्) जङ्गमस्थावररूपेण स्थितिवताम् (अभिस्वरे) सर्वतः शब्दकरणे (सम्पश्यन्) अवलोकयन् (पङ्क्तिम्) विस्तारम् (उपतिष्ठमानः) समीपे वर्तमानः। अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

२६—(कृष्णायाः) कृष्णवर्णायाः (पुत्रः) पुवो ह्रस्वश्च । उ० ४ । १६५ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रि के पीछे] (पुत्रः) शुद्ध करने वाला, (अर्जुनः) रस प्राप्त करने वाला (वत्सः) निवास देने वाला सूर्य [जिस परमेश्वर के नियम से] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः ह) वही (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (द्याम् अधि) उस सूर्य में (रोहति) प्रकट होता है, उस ने (रुहः) सृष्टि की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया है ॥ २६ ॥

भावार्थ—जिस सर्वव्यापक परमेश्वर के नियम से प्रलय के पीछे सूर्य आदि लोक उत्पन्न होते हैं, मनुष्य उस की आराधना कर के सदा सुखी रहें २६

इस मन्त्र का चौथा पाद आ चुका है—अ० १३ । १ । ४ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ४ ॥ [षट् पर्यायाः] ॥

१—५६ ॥ रोहितादित्यो देवता ॥

आध्यात्मोपदेशः—परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश ॥

पर्यायः १ ॥

१—१३ ॥ १, २,४-११ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ३ निचृत् प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; १२ साम्नी पङ्क्तिः ; १३ आसुर्यनुष्टुप् ॥

स ए॑ति सवि॒ता स्व॑र्दि॒वस्पृ॒ष्ठेऽध्रु॑वचाक॒शत् ॥ १ ॥

सः । ए॒ति॒ । स॒वि॒ता । स्वः॑ । दि॒वः । पृ॒ष्ठे । ध्रु॒व-चा॒क॒शत् ॥१॥

भाषार्थ—(सः) वह (सविता) सब का प्रेरक [परमेश्वर] (दिवः)

पूञ् शोधने—क्त्र । शोधकः (अर्जुनः) रसानां संग्रहीता (रात्र्याः) प्रलय—रात्रिपश्चादित्यर्थः (वत्सः) वस निवासे—सप्रत्ययः । निवासहेतुः सूर्यलोकः (अजायत) प्रकटोऽभवत् (सः) (ह) एव (द्याम् अधि) सूर्यं प्रति (रोहति) प्रादुर्भवति (रुहः) अ० १३ । १ । ४ । सृष्टिसामग्रीः (रुरोह) जनयामास (रोहितः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः ॥

१—(सः) प्रसिद्धः (एति) प्राप्नोति (सविता) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश [वा व्यवहार] की (पृष्ठे) पीठ पर [वर्तमान होकर] (अवचाकशत्) देखता हुआ (स्वः) आनन्द को (एति) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—परमेश्वर अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त विशाल आकाश से भी सूक्ष्म और विशाल होकर और प्रत्येक व्यवहार में वर्तमान रहकर सर्वनियन्ता और आनन्दस्वरूप है ॥ १ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥

रश्मि-भिः। नभः। आ-भृतम्। महा-इन्द्रः। एति। आ-वृतः।२

भाषार्थ—(महेन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् (आवृतः) सब ओर से ढका हुआ [अन्तर्यामी परमेश्वर] (रश्मिभिः) किरणों द्वारा (आभृतम्) सब प्रकार पुष्ट किये हुये (नभः) मेघमण्डल में (एति) व्यापक है ॥ २ ॥

भावार्थ—अन्तर्यामी परमात्मा के नियम से जल किरणों द्वारा खिंच कर मेघमण्डल में वृष्टि के लिये वर्तमान होता है ॥ २ ॥

मन्त्र ३, ४, ५, ६ और ७ के पीछे आवृत्ति का चिह्न गवर्नमेन्ट बुकडिपो बम्बई और वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों में दिया है, अर्थात् मन्त्र २ की आवृत्ति मानी है। परन्तु यह चिह्न प० सेवक लाल वाले पुस्तक में नहीं है और न कुछ लेख इसके विषय में ग्रिफ़्फ़िथ साहिब और ह्विटनी साहिब के अनुवाद में है ॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । ० ॥ ३ ॥

सः। धाता। सः। वि-धर्ता। सः। वायुः। नभः। उत्-श्रितम् । ० ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (धाता) पोषण करने वाला और

(स्वः) सुखम् (दिवः) आकाशस्य। व्यवहारस्य (पृष्ठे) उपरिभागे (अवचाकशत्) निघ० ३ । ११ । अवलोकयन् ॥

२—(रश्मिभिः) किरणैः (नभः) मेघमण्डलम् (आभृतम्) समन्तात् पोषितम् (महेन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (एति) व्याप्नोति (आवृतः) आच्छादितो ऽन्तर्यामिरूपेण परमात्मा ॥

३—(सः) परमेश्वरः (धाता) सर्वपोषकः (सः) (विधर्ता) विविधं-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः) वह (विधर्ता) विविध प्रकार धारण करने वाला है, (सः) वह (वायुः) व्यापक [वा महाबली परमात्मा] और (उच्छ्रितम्) ऊंचा वर्तमान (नभः) प्रबन्धकर्ता [वा नायक ब्रह्म] है ॥ ३ ॥

भावार्थ—उस सर्वपोषक सर्वधारक परमात्मा की उपासना से मनुष्य आत्मा की उन्नति करें ॥ ३ ॥

सोऽर्य॒मा स वरु॑णः स रु॒द्रः स म॑हादे॒वः । ० ॥ ४ ॥

सः । अ॒र्य॒मा । सः । वरु॑णः । सः । रु॒द्रः । सः । म॒हा॒-दे॒वः ।०॥४॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला, (सः) वह (वरुणः) श्रेष्ठ, (सः) वह (रुद्रः) ज्ञानवान् और (सः) वह (महादेवः) महादानी है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३ के समान है ॥ ४ ॥

सो अ॒ग्निः स उ॒ सूर्य॒ः स उ॑ ए॒व म॑हाय॒मः । ० ॥ ५ ॥

सः । अ॒ग्निः । सः । ऊं॒ इति॑ । सूर्यः॑ । सः । ऊं॒ इति॑ । ए॒व । म॒हा॒-य॒मः । ० ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (अग्निः) व्यापकः (सः उ) वही

धारकः (सः) (वायुः) वा गतिगन्धनयोः—उण् युक् च । व्यापकः । बलिष्ठः (नभः) नहेर्दिवि भश्च । उ० ४ । २११ । णह बन्धने—असुन्, हस्य भः, यद्वा, नयतेः-असुन्, गुणे "नयः" इति स्थिते बाहुलकाद् यकारस्य भकारः । नभ आदित्यो भवति, नेता रसानां, नेता भासां, ज्योतिषां प्रणयः, अपि वा भन एव स्याद् विपरीतः, न न भातीति वा-निरु० २ । १४ । प्रबन्धकं नायकं वा ब्रह्म (उच्छ्रितम्) ऊर्ध्वं श्रितं स्थितम् ॥

४—(सः) (अर्यमा) अर्यः स्वामिवैश्ययोः । पा० ३ । १ । १०३ । ऋ गतिप्रापणयोः—यत् । श्वनुक्षन्पूषन्० । उ० ११५९ । अर्य+माङ् माने—कनिन् । अर्यान् श्रेष्ठान् मिमीते मानयतीति । श्रेष्ठानां मानकर्ता (सः) (वरुणः) (सः) (रुद्रः) रु गतौ—क्विप् तुक् च, रो मत्वर्थीयः । ज्ञानवान् (सः) (महादेवः) देवो दानाद् वा दीपनाद् वा—निरु० ७ । १५ । महादानी ॥

५—(सः) (अग्निः) व्यापकः (सः) (उ) अवधारणे (सूर्यः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सूर्यः) प्रेरक, (सः उ) वही (एव) निश्चय करके (महायमः) बड़ा न्यायकारी है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३ के समान है ॥ ५ ॥

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । ० ॥ ६ ॥

तम् । वत्साः । उप । तिष्ठन्ति । एक-शीर्षाणः । युताः । दश । ० ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(तम्) उस [परमात्मा] को (एकशीर्षाणः) एक [परमात्मा] को शिर [प्रधान] मानने वाले (दश) दस [चार दिशाओं, चार मध्य दिशाओं और ऊपर नीचे की दिशाओं से सम्बन्ध वाले] (युताः) मिले हुये (वत्साः) निवास स्थान [सब लोक] (उप तिष्ठन्ति) सेवते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा सूर्य आदि सब लोकों को धारण आकर्षण द्वारा अपनी आज्ञा में रखता है, उसकी भक्ति सब मनुष्य करें ॥ ६ ॥

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति । ० ॥ ७ ॥

पश्चात् । प्राञ्चः । आ । तन्वन्ति । यत् । उत्-एति । वि । भासति । ० ॥ ७ ॥

भाषार्थ—वे [सब लोक] [परमात्मा के] (पश्चात्) पीछे (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुये (आ) सब ओर से (तन्वन्ति) फैलते हैं, (यत्) जब वह (उदेति) उदय होता है और (वि भासति) विविध प्रकार चमकता है ॥ ७ ॥

प्रेरकः (सः) (उ) (एव) निश्चयेन (महायमः) महान्यायाधीशः ॥

६—(तम्) परमात्मानम् (वत्साः) वस निवासे—सप्रत्ययः। निवासस्थानाः सर्वलोकाः (उपतिष्ठन्ति) सेवन्ते (एकशीर्षाणः) एकः परमेश्वरः शिरः प्रधानो येषां ते (युताः) संयुक्ताः (दश) ऊर्ध्वाधोभ्यां सह पूर्वादिचतसृभिः, ईशानादिचतसृभिर्दिग्भिः सम्बद्धाः ॥

७—(पश्चात्) परमात्मनमनुसृत्य (प्राञ्चः) आभिमुख्येन गच्छन्तः (आ) समन्तात् (तन्वन्ति) विस्तीर्यन्ते (यत्) यदा (उदेति) उद्गच्छति (वि) विविधम् (भासति) दृश्यते ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विवेकी योगी जन अनुभव करते हैं कि यह सब लोक परमात्मा के ही धारण आकर्षण नियमों में चलते हैं ॥ ७ ॥

तस्यै॒ष मारु॑तो ग॒णः स ए॑ति शि॒क्याकृ॑तः ॥ ८ ॥

तस्य॑ । ए॒षः । मारु॑तः । ग॒णः । सः । ए॒ति॒ । शि॒क्या-कृ॑तः ॥८॥

भाषार्थ—(तस्य) उस का [परमेश्वर का बनाया हुआ (एषः) यह (मारुतः) मनुष्यों का (गणः) समूह है, [क्यों कि] (सः) वह [परमेश्वर] (शिक्याकृतः) छींके में किये हुये सा (एति) व्यापक है ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्यों को उन के कर्मानुसार बनाता है, वह सब में ऐसा व्यापक है जैसे कोई पदार्थ छींके के भीतर रक्खा हो ॥

र॒श्मिभि॒र्नभ॒ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॑त्या॒वृ॑तः ॥ ९ ॥

र॒श्मि-भिः॑ । नभः॑ । आ-भृ॑तम् । म॒हा-इ॒न्द्रः॑ । ए॒ति॒ । आ-वृ॑तः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(महेन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् (आवृतः) सब ओर से ढका हुआ [अन्तर्यामी परमेश्वर] (रश्मिभिः) किरणों द्वारा (आभृतम्) सब प्रकार पुष्ट किये हुये (नभः) मेघ मण्डल में (एति) व्यापक है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मन्त्र २ के समान है ॥ ९ ॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—मन्त्र २ ॥

तस्यै॒ मे नव॑ कोशा॒ विष्टु॑म्भा॒ नव॑धा॒ हि॑ताः ॥ १० ॥

तस्य॑ । इ॒मे । नव॑ । कोशाः॑ । वि॒ष्टु॒म्भाः॑ । नव॑-धा । हि॒ताः॑ १०

८—(तस्य) परमेश्वरस्य रचितः (एषः) दृश्यमानः (मारुतः) मारुतं मरुतां मनुष्याणामिदम्—दयानन्दभाष्ये, ऋग्० २ । ११ । १४ । मनुष्यसम्बद्धः (गणः) समूहः (सः) (एति) व्याप्नोति (शिक्याकृतः) स्रंसेः शिः कुट् किच्च । उ० ५ । १६ । स्रंसु अधः पतने गतौ—यत्, कित् कुट् च, धातोः शि—इत्यादेशः, टाप् । शिक्यायां काचे कृतो धृतो यथा ॥

९—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—म० २ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तस्य) उस [परमेश्वर] के (हिताः) धरे हुये [शरीर के] (इमे) यह (नव) नौ [दो कान, दो आंख, दो नथने, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ] (कोशाः) आधार, (विष्टम्भाः) विशेष स्तम्भ [आलम्ब, सहारे] [अपनी, शक्तियों सहित] (नवधा) नव प्रकार से हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने नव द्वार वाले शरीर में श्रोत्रादि अद्भुत गोलक बनाकर उन में श्रवण आदि नव अद्भुत शक्तियां रक्खी हैं ॥ १० ॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥

सः । प्र-जाभ्यः । वि । पश्यति । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (प्रजाभ्यः) उत्पन्न जीवों के हित के लिये [उस सब को] (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है, (यत्) जो (प्राणति) श्वास लेता है (च च) और (यत्) जो (न) नहीं [श्वास लेता है] ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो परमात्मा जङ्गम और स्थावर जगत् की यथावत् सुधि लेकर सब का पालन करता है, उसकी उपासना सब मनुष्य करें ॥ ११ ॥

इसका मिलान आगे मन्त्र १६ से करो ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥

तम् । इदम् । नि-गतम् । सहः । सः । एषः । एकः । एक-वृत् । एकः । एव ॥ १२ ॥

१०—(तस्य) परमेश्वरस्य (इमे) दृश्यमानाः (नव) देहे द्वे श्रोत्रे, चक्षुषी, नासिके च मुखं च द्वे पायूपस्थे च (कोशाः) आधाराः (विष्टम्भाः) विशेषस्तम्भाः । आलम्बाः (नवधा) श्रवणादिशक्तिभिः सह नव प्रकारेण (हिताः) धृताः ॥

११—(सः) परमेश्वरः (प्रजाभ्यः) उत्पन्नजीवानां हिताय (वि) विविधम् (पश्यति) विलोकयति (यत्) सृष्टिजातम् (च) (प्राणति) प्रश्वसिति (यत्) (च) (न) निषेधे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(इदम्) यह (सहः) सामर्थ्य (तम्) उस [परमात्मा] को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है, (सः एषः) वह आप (एकः) एक, (एकवृत्) अकेला वर्तमान, (एकः एव) एक ही है ॥ १२ ॥

भावार्थ—उस अद्वितीय परमात्मा में पूर्वोक्त अद्भुत सामर्थ्य है, कोई दूसरा न तो उसके तुल्य है और न उस से अधिक है, वही सब जगत् का स्वामी है ॥ १२ ॥

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥ (१५)

एते । अस्मिन् । देवाः । एक-वृतः । भवन्ति ॥ १३ ॥ (१५)

भाषार्थ—(अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (एते) यह सब (देवाः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक] (एकवृतः) एक [परमात्मा] में वर्तमान (भवन्ति) रहते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—यह सब जगत् प्रलय में कारण रूप से और सृष्टि में कार्य रूप से उसी परमात्मा के सामर्थ्य के बीच विद्यमान रहता है ॥ १३ ॥

पर्यायः २ ॥

१४—२१ ॥ १४ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् ; १५ आसुरी पङ्क्तिः; १६, १९ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; १७, १८ आसुरी गायत्री; २० साम्नी पङ्क्तिः; २१ आसुर्यनुष्टुप् ॥

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥

कीर्तिः । च । यशः । च । अम्भः । च । नभः । च । ब्राह्मण-वर्चसम् । च । अन्नम् । च । अन्न-अद्यम् । च ॥ १४ ॥

१२—(तम्) परमात्मानम् (इदम्) पूर्वोक्तम् (निगतम्) निश्चयेन प्राप्तम् (सहः) बलम् (सः) (एषः) (एकः) अद्वितीयः (एकवृत्) एको वर्तमानः (एकः) (एव) ॥

१३—(एते) दृश्यमानाः (अस्मिन्) परमात्मनि (देवाः) गतिशीलाः पृथिव्यादिलोकाः (एकवृतः) एकस्मिन् परमात्मनि वर्तमानाः (भवन्ति) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य ए॒तं दे॒वमेक॑वृतं॒ वेद॑ ॥ १५ ॥

यः । ए॒तम् । दे॒वम् । एक॑-वृतम् । वेद॑ ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(कीर्तिः) कीर्ति [ईश्वर गुणों के कीर्तन और विद्या आदि गुणों से बड़ाई] (च) और (यशः) यश [शूरता आदि से नाम] (च) और (अम्भः) पराक्रम (च) और (नभः) प्रबन्ध सामर्थ्य (च) और (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्रह्मज्ञान का तेज (च) और (अन्नम्) अन्न (च च) और (अन्नाद्यम्) अन्न के समान खाने योग्य द्रव्य [उस पुरुषके लिये होते हैं]॥१४॥

(यः) जो (एतम्) इस (देवम्) प्रकाशमय (एकवृतम्) अकेले वर्तमान [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष सर्वशक्तिमान् अद्वितीय परमात्मा के प्रकाशमय स्वरूप को साक्षात् करता है, वह संसार में उन्नति करके सब प्रकार का आनन्द पाता है ॥ १४, १५ ॥

न द्वि॒तीयो॒ न तृ॒तीय॑श्चतु॒र्थो नाप्यु॑च्यते । ० ॥ १६ ॥

न । द्वि॒तीयः॑ । न । तृ॒तीयः॑ । च॒तु॒र्थः॑ । न । अपि॑ । उ॒च्य॒ते॒ । ० १६

न पञ्च॒मो न ष॒ष्ठः॑ स॒प्त॒मो नाप्यु॑च्यते । ० ॥ १७ ॥

न । पञ्च॒मः॑ । न । ष॒ष्ठः॑ । स॒प्त॒मः॑ । न । ० ॥ १७ ॥

नाष्ट॒मो न न॑व॒मो द॑श॒मो नाप्यु॑च्यते । ० ॥ १८ ॥

न । अ॒ष्ट॒मः॑ । न । न॒व॒मः॑ । द॒श॒मः॑ । न । अपि॑ । उ॒च्य॒ते॒ । ० १८

१४, —(कीर्त्तिः) ह्वपिषिरुहि० । उ० ४ । ११६ । कृत संशब्दने—इन् । ईश्वरगुणकीर्तनविद्यादानादिप्रभवं नाम (च) (यशः) शौरादिप्रभवं नाम (च) (अम्भः) उदके नुम्भौ च । उ० ४ । २१० । आप्लृ व्याप्तौ—असुन् ह्रस्वत्वं च नुमागमो भश्चान्तादेशः, यद्वा, अभि शब्दे—असुन् । पराक्रमः (च) (नभः) म० ३ । प्रबन्धसामर्थ्यम् (च) (ब्रह्मवर्चसम्) अ० १० । ५ । ३७ । ब्राह्मणस्य ब्रह्मज्ञानस्य तेजः (च) (अन्नम) अन जीवने—नप्रत्ययः । जीवनसाधनं भोजनम् (च) (अन्नाद्यम्) अन्नसमानभक्ष्यद्रव्यम् (च) ॥

१५—(यः) पुरुषः (एतम्) प्रसिद्धम् (देवम्) प्रकाशमयम् (एकवृतम्) अद्वितीयवर्तमानम् (वेद) वेत्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—वह [अकेला वर्तमान-म० १५] (न) न (द्वितीयः) दूसरा, (न) न (तृतीयः) तीसरा, (न) न (चतुर्थः) चौथा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥ १६ ॥

वह (न) न (पञ्चमः) पांचवां, (न) न (षष्ठः) छठा, (न) न (सप्तमः) सातवां (अपि) ही (उच्यते) है ॥ १७ ॥

वह (न) न (अष्टमः) आठवां, (न) न (नवमः) नवां, (न) न (दशमः) दसवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर एक है, उस से भिन्न कोई भी दूसरा, तीसरा आदि ईश्वर नहीं है, सब लोग उसी की उपासना करें। इन मन्त्रों में दो से लेकर दस तक दूसरे ईश्वर होने का निषेध इस लिये किया है कि सब संख्या का मूल एक [१] अङ्क है, इसी एक को दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ और नौ बार गणने से २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ अङ्क बनते हैं, और एक पर शून्य देने से १० दस का अङ्क बनता है। उस से वेद ने एक ईश्वर का निश्चय कराके दूसरे ईश्वर होने का सर्वथा निषेध किया है, अर्थात् उस के एकपने में भी भेद नहीं और वह शून्य भी नहीं, किन्तु वह सच्चिदानन्द गुण युक्त एकरस परमात्मा है ॥ १६-१८ ॥

१—यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ब्रह्म विद्या विषय पृ० ९०, ९१ में व्याख्यात हैं, और उन्हीं के म से यहां अर्थ किया गया है॥

२—मन्त्र १६ से लेकर २२ तक मन्त्रों के पीछे आवृत्ति का चिह्न गवर्नमेन्ट बुक डिपो बम्बई और वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों में दिया है, अर्थात् मन्त्र १५ की आवृत्ति मानी है। परन्तु यह चिह्न प० सेवक लाल वाले पुस्तक में नहीं है और न कुछ इस के विषय में ग्रिफ़्फ़िथ साहिब और ह्विटनी साहिब के अनुवाद में है और न महर्षि दयानन्द कृत उक्त पुस्तक में आवृत्ति का चिह्न है॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । ० ॥ १९ ॥

सः । सर्वस्मै । वि । पश्यति । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न । ० ॥ १९ ॥

१६-१८—(न) निषेधे (अपि) एव (उच्यते) कथ्यते। अन्यत् सुगमम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (सर्वस्मै) सब [जगत्] के हित के लिये [उस सब को] (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है, (यत्) जो (प्राणति) श्वास लेता है, (च च) और (यत्) जो (न) नहीं [श्वास लेता है] ॥ १९ ॥

भावार्थ—ऊपर मन्त्र ११ देखो, उसी के समान भावार्थ है ॥ १९ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । ० ॥ २० ॥

तम् । इदम् । नि-गतम् । सहः । सः । एषः । एकः । एक-वृत् । एकः । एव । ० ॥ २० ॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । ० ॥ २१ ॥ (१६)

सर्वे । अस्मिन् । देवाः । एक-वृतः । भवन्ति । ०॥२१॥ (१६)

भाषार्थ—(इदम्) यह (सहः) सामर्थ्य (तम्) उस [परमात्मा] को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है, (सः एषः) वह आप (एकः) एक, (एकवृत्) अकेला वर्तमान, (एकः एव) एक ही है ॥ २० ॥

(अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (सर्वे) सब (देवाः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक] (एकवृतः) एक [परमात्मा] में वर्त्तमान (भवन्ति) रहते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—ऊपर मन्त्र १२ और १३ देखो और वही भावार्थ समझो ॥ २०, २१ ॥

यह दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ब्रह्मविद्या विषय पृ० ९०, ९१ में व्याख्यात हैं ॥

पर्यायः ३ ॥

२२-२८ ॥ २२ भुरिक प्राजापत्या त्रिष्टुप; २३ आर्ची गायत्री; २४ आसुरी पङ्क्तिः; २५ आसुरी गायत्री; २६ आर्च्यनुष्टुप्; २७, २८ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ॥

१९—(सर्वस्मै) समस्ताय जगते । अन्यत् पूर्ववत्-म० ११ ॥

२०—व्याख्यातः-म० १२ ॥

२१—(सर्वे) समस्ताः । अन्यत् पूर्ववत्-म० १३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म॑ च॒ तप॑श्च॒ की॒र्ति॑श्च॒ यश॑श्चाम्भ॑श्च॒ नभ॑श्च ब्राह्मण॒व॒र्च॒सं चान्नं॑ चान्नाद्यं॑ च ।० ॥ २२ ॥

ब्रह्म॑ । च॒ । तपः॑ । च॒ । की॒र्तिः॑ । च॒ । यशः॑ । च॒ । अम्भः॑ । च॒ । नभः॑ । च॒ । ब्राह्मण॒-व॒र्च॒सम् । च॒ । अन्न॑म् । च॒ । अन्न॒-अ॒द्य॑म् । च॒ । ०॥ २२ ॥

भू॒तं च॒ भव्यं॑ च श्र॒द्धा च॒ रुचि॑श्च स्व॒र्ग॑श्च स्व॒धा च॑ ॥ २३ ॥

भू॒तम् । च॒ । भव्य॑म् । च॒ । श्र॒द्धा । च॒ । रुचिः॑ । च॒ । स्व॒ः-गः॑ । च॒ । स्व॒धा । च॒ ॥ २३ ॥

य ए॒तं दे॒वमे॑कवृ॒तं वेद॑ ॥ २४ ॥

यः । ए॒तम् । दे॒वम् । ए॒क॒-वृ॒तम् । वेद॑ ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्म) वेद (च) और (तपः) ऐश्वर्य (च) और (कीर्तिः) [ईश्वर गुणों के कीर्तन और विद्या आदि गुणों से बड़ाई] (च) और (यशः) यश [शूरता आदि से नाम] (च) और (अम्भः) पराक्रम (च) और (नभः) प्रबन्ध सामर्थ्य (च) और (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्रह्मज्ञान का तेज (च) और (अन्नम्) अन्न (च च) और (अन्नाद्यम्) अन्न के समान खाने योग्य द्रव्य ॥२२॥ (भूतम्) अतीत वस्तु (च) और (भव्यम्) होनहार वस्तु (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [विश्वास] (च) और (रुचिः) रुचि [प्रीति] (च) और (स्वर्गः) स्वर्ग [आनन्द] (च च) और (स्वधा) आत्मधारण शक्ति [उस पुरुष के लिये होते हैं]॥२३॥ (यः) जो (एतम्) इस (देवम्) प्रकाशमय (एकवृतम्) अकेले वर्तमान [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ २४ ॥

२२—(ब्रह्म) वेदः (च) (तपः) ऐश्वर्यम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० १४।

२३—(भूतम्) अतीतं वस्तु (च) (भव्यम्) भविष्यद् वस्तु (च) (श्रद्धा) विश्वासः (रुचिः) प्रीतिः (च) (स्वर्गः) सुखप्रापकः । आनन्दः (च) (स्वधा) आत्मधारणशक्तिः (च) ॥ २४—अयं व्याख्यातः—म० १५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के गुणों को साक्षात् करते हैं, वे ही संसार में अनेक प्रकार आत्मोन्नति करके अनेक आनन्द पाते हैं ॥ २२-२४ ॥

मन्त्र २२ के लिये ऊपर मन्त्र १४ और २४ के लिये मन्त्र १५ देखो ॥

स ए॒व मृ॒त्युः सो३॑मृ॒तं सो३॑भ॒वं१॒॑ स रक्षः॑ ॥ २५-॥

सः । ए॒व । मृ॒त्युः । सः । अ॒मृत॑म् । सः । अ॒भ्व॑म् । सः । रक्षः॑ २५

भाषार्थ—(सः एव) वही [परमेश्वर] (मृत्युः) मरण करने वाला (सः) वही (अमृतम्) अमरपन का कारण ,(सः) वही (अभ्वम्) महान् (सः) वही (रक्षः) रक्षा करने वाला[परब्रह्म] है ॥ २५ ॥

भावार्थ—परमात्मा की उपासना करके मनुष्य क्लेशों से बचकर सुख पाते हुये महान् रक्षक बनें ॥ २५ ॥

स रु॒द्रो व॑सु॒वनि॑र्वसु॒देये॑ नमोवा॒के व॑षट्का॒रोऽनु॑ संहि॒तः ॥२६॥

सः । रु॒द्रः । वसु-वनिः॑ । वसु-देये॑ । नमः-वा॒के । व॒षट्-का॒रः । अनु॑ । सम्-हि॒तः ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(सः) वह (रुद्रः) ज्ञान दाता, (वसुवनिः) श्रेष्ठों का उपकारी [परमेश्वर] (वसुदेये) श्रेष्ठों करके देने योग्य (नमोवाके) नमस्कार वचन में (वषट्कारः) दान करने वाला (अनु) निरन्तर (संहितः) स्थापित है ॥ २६ ॥

२५—(सः) परमेश्वरः (एव) (मृत्युः) मारकः । मरणस्य हेतुः (सः) (अमृतम्) अमरणस्य कारणम् (अभ्वम्) अ० ४ । १७ । ५ । अभू प्रुषि० । उ० १ । १५१ । अभि शब्दे—क्वन्, छान्दसो नलोपः । अभ्वो महन्नाम-निघ० ३ । ३ । महत् (सः) (रक्षः) सर्वधातुभ्योऽसुन् । उ० ४ । १८९ । रक्ष पालने—असुन् । रक्षकं ब्रह्म ॥

२६—(सः) परमेश्वरः (रुद्रः) रु गतौ-क्विप् तुक् च+रा दाने—क । ज्ञानदाता (वसुवनिः) 'वसु+वन उपकारे—इन् । वसूनां श्रेष्ठानामुपकारकः (वसुदेये) वसुभिः श्रेष्ठैर्दातव्ये (नमोवाके) नमस्कारवचने (वषट्कारः) वह प्रापणे—डषटि । दानस्य कर्ता (अनु) निरन्तरम् (संहितः) स्थापितः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—वह परमात्मा वेद द्वारा ज्ञान देकर श्रेष्ठों का मान करता है और उपासकों को सदा सुख देता है ॥ २ ॥

तस्ये॒मे सर्वे॑ यात॒व॒ उप॑ प्र॒शिष॑मासते ॥ २७ ॥

तस्य॑ । इ॒मे । सर्वे॑ । यात॑वः । उप॑ । प्र-शिष॑म् । आ॒स॒ते॒ ॥२७॥

भाषार्थ—(इमे सर्वे) यह सब (यातवः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक और प्राणी] (तस्य) उस [परमेश्वर] के (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (उप आसते) मानते हैं ॥ २७ ॥

भाषार्थ—परमात्मा के ही नियम में सब लोक और सब प्राणी चलते हैं ॥ २७ ॥

तस्या॒सू सर्वा॒ नक्ष॑त्रा॒ वशे॑ च॒न्द्रम॑सा स॒ह ॥ २८ ॥

तस्य॑ । अ॒सू । सर्वा॑ । नक्ष॑त्रा । वशे॑ । च॒न्द्रम॑सा । स॒ह २८(१७

भाषार्थ—(तस्य) उस [परमात्मा] के (वशे) वश में (असू) वे (सर्वा) सब (नक्षत्रा) नक्षत्र [चलनेवाले तारा गण] (चन्द्रमसा सह) चन्द्रमा के साथ [वर्तमान हैं] ॥ २८ ॥

भावार्थ—उस परमात्मा के आकर्षण धारण नियम में यह सब तारा गण आदि ठहरे रहकर घूमते हैं ॥ २८ ॥

पर्यायः ४॥

२४—४५ ॥ २६, ३३, ३६, ४०, ४५ आसुरी गायत्री; ३०, ३२, ३५, ३६, ४२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३१ साम्नी पङ्क्तिः; ३४, ३७, ३८ सामन्युष्णिक्; ४१ साम्नी बृहती; ४३ आर्षी गायत्री; ४४ साम्न्यनुष्टुप् ॥

२७—(तस्य) परमेश्वरस्य (इमे) विद्यमानाः (सर्वे) (यातवः) कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च । उ० १ । ७३ । या गतिप्रापणयोः—तु । गतिशीलाः पृथिव्यादिलोकाः प्राणिनश्च (प्रशिषम्) शासु अनुशिष्टौ—क्विप् । उत्तमं शासनम् (उपासते) सेवन्ते ॥

२८—(तस्य) परमेश्वरस्य (असू) असूनि (सर्वा) सर्वाणि (नक्षत्रा) गतिशीला तारागणाः (वशे) शासने (चन्द्रमसा) चन्द्रेण (सह) साकम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स वा अह्नो॑ऽजायत॒ तस्मा॒दह॑रजायत ॥ २९ ॥

सः । वै । अह्नः॑ । अ॒जा॒य॒त॒ । तस्मा॑त् । अहः॑ । अ॒जा॒य॒त॒ ॥२९

भाषार्थ—(सः) वह [कारण रूप परमात्मा] (वै) अवश्य (अह्नः) [कार्यरूप]दिन से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्)उस [कारण रूप] से (अहः) [कार्यरूप] दिन (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ २९ ॥

भावार्थ—कार्यरूप जगत को देखकर विद्वान् लोग निश्चय करते हैं कि सब दिन आदि सृष्टि का बनाने वाला सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी परमेश्वर है २९

स वै रात्र्या॑ अजायत॒ तस्मा॒द् रात्रि॑रजायत ॥ ३० ॥

सः । वै । रात्र्याः॑ । अ॒जा॒य॒त॒ । तस्मा॑त् । रात्रिः॑ । अ॒जा॒य॒त॒ ॥३०

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (रात्र्याः) [कार्यरूप] रात्रि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (रात्रिः) रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुयी है ॥ ३० ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान है ॥ ३० ॥

स वा अ॒न्तरि॑क्षादजायत॒ तस्मा॑द॒न्तरि॑क्षमजायत ॥ ३१ ॥

सः । अ॒न्तरि॑क्षात् । अ॒जा॒य॒त॒ । तस्मा॑त् । अ॒न्तरि॑क्षम् । अ॒जा॒य॒त॒ ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य(अन्तरिक्षात्) [कार्य रूप] अन्तरिक्ष से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान ॥ ३१ ॥

२९—(सः) कारणरूपः परमेश्वरः (वै) अवश्यम् (अह्नः) कार्यरूपाद् दिनात् (अजायत) प्रादुरभवत् (तस्मात्) कारणरूपात् (अहः) दिनम् (अजायत) उदपद्यत ॥

३२—(रात्र्याः) कार्यरूपाया निशायाः (रात्रिः) निशा । अन्यद् यथा म० ॥ २९ ॥

३१—(अन्तरिक्षात्)कार्यरूपान्मध्यलोकात् (अन्तरिक्षम्) । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥

सः । वै । वायोः । अजायत । तस्मात् । वायुः । अजायत ।३२।

भाषार्थ—(सः) वह [कारण रूप ईश्वर] (वै) अवश्य (वायोः) कार्यरूप] वपन से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (वायुः) पवन (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ३२ ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान है ॥ ३२ ॥

स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥

सः । वै । दिवः । अजायत । तस्मात् । द्यौः । अजायत ॥३३॥

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (दिवः) [कार्यरूप] सूर्य से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (द्यौः) सूर्य (अधि) यथाविधि (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान ॥ ३३ ॥

स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥

सः । वै । दिक्-भ्यः । अजायत । तस्मात् । दिशः । अजायन्त ३४

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै] अवश्य (दिग्भ्यः) [कार्यरूप] दिशाओं से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (दिशः) दिशायें (अजायन्त) उत्पन्न हुयी हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान ॥ ३४ ॥

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥

सः । भूमेः । अजायत । तस्मात् । भूमिः । अजायत ॥ ३५ ॥

३२—(वायोः) कार्यरूपात् पवनात् (वायुः) पवनः । अन्यद् गतम् ॥

३३—(दिवः) कार्यरूपात् सूर्यात् (द्यौः) सूर्यः (अधि) यथाविधि । अन्यद् गतम् ॥

३४—(दिग्भ्यः) कार्यरूपाभ्यो दिशाभ्यः (दिशः) दिशाः (अजायन्त) उदपद्यन्त । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (भूमेः) [कार्यरूप] भूमि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (भूमिः) भूमि (अजायत) उत्पन्न हुई है ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान ॥ ३५ ॥

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥

सः । वै । अग्नेः । अजायत । तस्मात् । अग्निः । अजायत ३६

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अग्नेः) [कार्यरूप] अग्नि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (अग्निः) अग्नि [सूर्य, बिजुली आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान ॥ ३६ ॥

स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥

सः । वै । अत्-भ्यः । अजायत । तस्मात् । आपः । अजायन्त ३७

भाषार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अद्भ्यः) [कार्यरूप] जल से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (आपः) जल [वृष्टि नदी कूप आदि के] (अजायन्त) उत्पन्न हुये हैं ॥३७॥

भावार्थ—मन्त्र २९ के समान ॥ ३७ ॥

स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥

सः । वै । ऋक्-भ्यः । अजायत । तस्मात् । ऋचः । अजायन्त ३८

३५—(भूमेः) कार्यरूपायाः पृथिव्याः (भूमिः) पृथिवी । अन्यद् गतम् ॥

३६—(अग्नेः) कार्यरूपात् तेजसः (अग्निः) सूर्यविद्युदादि तेजः । अन्यद् गतम् ॥ ३६ ॥

३७—(अद्भ्यः) जलेभ्यः (आपः) वृष्टि नदीकूपादीनां जलानि । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (वै) अवश्य (ऋग्भ्यः) ऋचाओं [स्तुति योग्य वेद वाणियों] से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [परमात्मा] से (ऋचः) ऋचायें (अजायन्त) उत्पन्न हुई हैं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—परमात्मा के सत्यगुण वेदों से जाने जाते हैं, जिनको उसने मनुष्यों के हित के लिये उत्पन्न किया है ॥ ३८ ॥

स वै यज्ञाद॑जायत॒ तस्माद् यज्ञो॑ऽजायत ॥ ३९ ॥

सः । वै । यज्ञात् । अजायत । तस्मात् । यज्ञः । अजायत ३९

भाषार्थ—(सः) [परमात्मा] (वै) अवश्य (यज्ञात्) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [परमात्मा] से (यज्ञः) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३९॥

भावार्थ—परमात्मा ने परमाणुओं के संयोग वियोग से सृष्टि रचकर अपनी महिमा दिखायी है ॥ ३९ ॥

स यज्ञस्तस्य॑ यज्ञः स यज्ञस्य॒ शिर॑स्कृतम् ॥ ४० ॥

सः । यज्ञः । तस्य॑ । यज्ञः । सः । यज्ञस्य॑ । शिरः॑ । कृतम् ॥४०

भाषार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (यज्ञः) संयोग वियोग करने वाला है, (तस्य) उस [परमात्मा] का (यज्ञः) संयोग वियोग व्यवहार है, (सः) वह [परमात्मा] (यज्ञस्य) संयोग वियोग व्यवहार का (शिरः) शिर [प्रधान] (कृतम्) किया गया है ॥ ४० ॥

भावार्थ—परमात्मा संसार में परमाणुओं का संयोग वियोग करने से सृष्टि और प्रलय का आदि कारण है, ऐसा विद्वान् मानते हैं ॥ ४० ॥

३८—(ऋग्भ्यः) स्तुत्याभ्यो वेदवाणीभ्यः (ऋचः) स्तुत्या वेदवाण्यः । अन्यद् गतम् ॥

३९—(यज्ञात्) यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु—नङ् । परमाणूनां संयोगवियोगव्यवहारात् (यज्ञः) संयोगवियोगव्यवहारः । अन्यद् गतम् ॥

४०—(सः) परमेश्वरः (यज्ञः) म० ३९ । संयोगवियोगकर्ता (तस्य) परमेश्वरस्य (यज्ञः) संयोगवियोगव्यवहारः (सः) परमेश्वरः (यज्ञस्य) संयोगवियोगव्यवहारस्य (शिरः) प्रधानः (कृतम्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥

सः । स्तनयति । सः । वि । द्योतते । सः । ऊं इति । अश्मानम् । अस्यति ॥ ४१ ॥

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥

पापाय । वा । भद्राय । वा । पुरुषाय । असुराय । वा ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (भद्राय) श्रेष्ठ (पुरुषाय) पुरुष के लिये (वा) अवश्य (वि) विविध प्रकार (द्योतते) प्रकाशमान होता है, (सः) वह (पापाय) पापी के लिये (वा) अवश्य (स्तनयति) मेघ समान [भयानक] गरजता है, (सः उ) वही (असुराय) असुर [विद्वानों के विरोधी] के लिये (वा) अवश्य (अश्मानम्) पत्थर (अस्यति) गिराता है ॥ ४१, ४२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से श्रेष्ठ धर्मात्माओं को आनन्द और दुष्ट छली कपटी लोगों के कष्ट देता है ॥ ४१, ४२ ॥

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥

यत् । वा । कृणोषि । ओषधीः । यत् । वा । वर्षसि । भद्रया । यत् । वा । जन्यम् । अवीवृधः ॥ ४३ ॥

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शुतम् ॥ ४४ ॥

तावान् । ते । मघ-वन् । महिमा । उपो इति । ते । तन्वः । शुतम् ॥ ४४ ॥

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥ (१८)

उपो इति । ते । बध्वे । बद्धानि । यदि । वा । असि । नि-अर्बुदम् ॥ ४५ ॥ (१८)

४१, ४२—(सः) परमेश्वरः (स्तनयति) मेघ इव गर्जयति (सः) (विविधम् (द्योतते) प्रकाशते (सः) (उ) एव (अश्मानम्) दण्डरूपं प्रस्तरम् (अस्यति) क्षिपति (पापाय) दुष्टाय (वा) अवधारणे (भद्राय) श्रेष्ठाय (वा) (पुरुषाय) मनुष्याय (असुराय) सुराणां विदुषां विरोधिने (वा) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यत्) क्योंकि [हे परमेश्वर !] तू (वा) अवश्य (ओषधीः) ओषधियों [सोमलता अन्नादिकों] को (कृणोषि) बनाता है, (यत्) क्योंकि तू (वा) अवश्य (भद्रया) उत्तमता से (वर्षसि) मेह बरसाता है, और (यत्) क्योंकि तू ने (वा) अवश्य (जन्यम्) उत्पन्न होते हुये [जगत्] को (अवीवृधः) बढ़ाया है ॥ ४३ ॥ [उसी से,] (मघवन्) हे महाधनी ! [परमेश्वर] (तावान्) उतनी [बड़ी] (ते) तेरी (महिमा) महिमा है, (उपो) और भी (ते) तेरी (तन्वः) उपकार शक्तियां (शतम्) सौ [असंख्य] हैं ॥ ४४ ॥ (उपो) और भी (ते) तेरे (बध्वे) नियम में [सब सत्ता वाले] (बद्धानि) बंधे हुये हैं, (यदि) क्योंकि तू (वा) अवश्य (न्यर्बुदम्) निरन्तर व्यापक [ब्रह्म] (असि) है ॥४५॥

भावार्थ परमेश्वर वृष्टि द्वारा सोमलता अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके सब प्राणियों का पालन कर्ता हुआ अगणित उपकार करता है, और वह सर्वव्यापक होकर सब संसार को नियम में रखता है ॥ ४३-४५ ॥

पर्यायः ५ ॥

४६—५१ ॥ ४६ आसुरी गायत्री; ४७ भुरिगार्षीगायत्री; ४८ साम्न्युष्णिक्; ४९ निचृत् साम्नी बृहती; ५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५१ साम्नी पङ्क्तिः ॥

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥

भूयान् । इन्द्रः । नमुरात् । भूयान् । इन्द्र । असि । मृत्यु-भ्यः ४६

४३—(यत्) यतः (वा) अवश्यम् (कृणोषि) जनयसि (ओषधीः) सोमलतान्नादिपदार्थान् (यत्) (वा) (वर्षसि) वृष्टिं करोषि (भद्रया) उत्तमतया (यत्) (वा) (जन्यम्) जनेर्यक् । उ० ४ । १११ । जन जनने—यक् । उत्पद्यमानं जगत् (अवीवृधः) वर्धितवानसि ॥ ४४—(तावान्) तत्परिमाणः (ते) तव (मघवन्) धनवन् (महिमा) महत्त्वम् (उपो) अपि च (ते) तव (तन्वः) तनु विस्तारे उपकारे च—ऊ । उपकृतयः (शतम्) असंख्यातम् ॥

४५—(उपो) अपि च (ते) तव (बध्वे) इण्शीभ्यां वन् । उ० १ । १५२ । बध संयमने-वन् । नियमे (बद्धानि) संयतानि सर्वाणि भूतानि (यदि) यतः (वा) अवश्यम् (असि) (न्यर्बुदम्) अ० ८ । ८ । ७ । अर्ब गतौ हिंसने च—उदच् । निरन्तरगतिशीलं व्यापकं ब्रह्म ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (इन्द्रः) परमऐश्वर्यवान् तू (नमुरात्) न मरने वाले [नित्य परमाणु रूप जगत्] से (भूयान्) अधिक बलवान् है, (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले ! तू (मृत्युभ्यः) मरण वालों से [अनित्य कार्य रूप जगत्] से (भूयान्) अधिक बलवान् (असि) है ॥ ४६ ॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर दोनों प्रकारके नित्य कारण रूप और अनित्यकार्य रूप जगत् को अपने वश में रखता है॥ ४६ ॥

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥

भूयान् । अरात्याः । शच्याः । पतिः । त्वम् । इन्द्र । असि । वि-भूः । प्र-भूः । इति । त्वा । उप । आस्महे । वयम् ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले [परमात्मन् !] (त्वम्) तू (अरात्याः) शत्रु से (भूयान्) अधिक बलवान्, (शच्याः) वाणी, कर्म वा बुद्धि का (पतिः) पति, (विभूः) व्यापक और (प्रभूः) समर्थ (असि) है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि पूर्ण बली सर्वस्वामी जगदीश्वर की

४६—(भूयान्) अधिकतरो बलवान् (इन्द्रः) परमेश्वर्यवांस्त्वम् (नमुरात्) कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् । वा० पा० ३ । २ । ५ । मृ हिंसायाम्, वेदे तु मरणे—क । उदोष्ठ्यपूर्वस्य । पा० ७ । १ । १०२ । उत्वम् । अमरणस्वभावात् (भूयान्)- (इन्द्र) (असि) (मृत्युभ्यः) मतुपो लोपः । मृत्युवद्भ्यः ॥

४७—(भूयान्) अधिकतरो बली (अरात्याः) शत्रुसकाशात् (शच्याः) शची वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । कर्मनाम-२ । १ । प्रज्ञानाम-३ । ९ । वाण्याः कर्मणो बुद्धेर्वा (पतिः) पालकः (त्वम्) (इन्द्र) परमेश्वर्यवन् (असि) (विभूः) व्यापकः (प्रभूः) समर्थः (इति) अनेन प्रकारेण (त्वा) त्वाम् (उपास्महे) सेवामहे (वयम्) उपासकाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना से आत्मबल बढ़ावें ॥ ४७ ॥

मन्त्र ४७-५१ महर्षिदयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय पृ० १६०-१६१ में व्याख्यात हैं ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥

नमः । ते । अस्तु । पश्यत । पश्य । मा । पश्यत ॥ ४८ ॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥

अन्न-अद्येन । यशसा । तेजसा । ब्राह्मण-वर्चसेन ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—(पश्यत) हे देखने वाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखने वाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजन योग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुये नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसा) वेदज्ञान के बल के साथ [पश्य) देख ॥ ४८, ४९ ॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वद्रष्टा परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ और विवेक पूर्वक सब आवश्यक पदार्थ पाकर आनन्द भोगें ॥ ४८, ४९ ॥

अभ्भो अमो महः सहु इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ० ॥ ५० ॥

अभ्भः । अमः । महः । सहः । इति । ० ॥ ५० ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (अभ्भः) व्यापक, (अमः) ज्ञानस्वरूप, (महः) पूज्य और (सहः) सहनस्वभाव [ब्रह्म] है, (इति) इस

४८, ४९—(नमः) प्रणामः (ते) तुभ्यम् (अस्तु) (पश्यत) भृमृदृशि-यजि० । उ० ३ । ११० । दृशिर् दर्शने-अतच्, छन्दसि अशिति प्रत्ययेऽपि पश्यादेशः । हे दर्शत । सर्वदर्शक (पश्य) अवलोकय (मा) माम् (पश्यत) सर्वदर्शक (अन्नाद्येन) भक्षणीयेनान्नादिना (यशसा) शौर्यादिप्राप्तेन नाम्ना (तेजसा) निर्भयत्वेन प्रतापेन (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञानबलेन ॥

५०—(अभ्भः) म० १४ । आप्लृ व्याप्तौ-असुन् । व्यापकं ब्रह्म (अमः) अम गतौ-असुन् । ज्ञानस्वरूपम् (महः) पूजनीयम् (सहः) सहनशीलम् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥ ५० ॥

भावार्थ—मनुष्य शुद्ध अन्तः करण से परमात्मा की उपासना करके उन्नति करें॥ ५० ॥

इस मन्त्र से लेकर मन्त्र ५३ तक बम्बई गवर्नमेन्ट बुकडिपो और अजमेर वैदिक यन्त्रालय के पुस्तकों में मन्त्र के पीछे आवृत्ति का चिह्न देकर मन्त्र ४८ और ४९ की आवृत्ति मानी है, परन्तु अन्य पुस्तकों में आवृत्ति का चिह्न नहीं है ॥

अम्भो अरुणं रजतं रजः सहु इति त्वोपास्महे वयम् ।०।०५१(१८

अम्भः । अरुणम् । रजतम् । रजः । सहः । इति ।०॥५१ (१८)

भाषार्थ—[हे हरमेश्वर !] तू (अम्भः) व्यापक, (अरुणम्) ज्ञानस्वरूप, (रजतम्) प्रीति का हेतु आनन्द स्वरूप, (रजः) ज्योतिः स्वरूप और (सहः) सहनशील [ब्रह्म] है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥ ५१ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सर्वव्यापक सर्वज्ञ आदि परमेश्वर की उपासना बार बार आदर पूर्वक कर के पुरुषार्थ करें ॥ ५१ ॥

पर्यायः ६ ॥

५२–५६ ॥ ५२, ५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ५४ आर्षी गायत्री ; ५५ साम्न्युष्णिक् ; ५६ निचृत्साम्नी बृहती ॥

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५२ ॥

उरुः । पृथुः । सु-भूः । भुवः । इति । ० ॥ ५२

अन्यत् पूर्ववत्—म० ४७ ॥

५१—(अम्भः) म० ५० । व्यापकम् (अरुणम्) अत्तश्च । उ० ३ । ६० । ऋ गतिप्रापणयोः—उनन् , चित् । ज्ञानस्वरूपम् (रजतम्) पृषिरञ्जिभ्यां कित् । उ० ३ । १११ । रञ्ज रागे—अतच् , कित् । रजति प्रियं भवतीति रजतम् । प्रीतिहेतु । आनन्दस्वरूपम् (रजः) रञ्ज रागे-असुन् । रजो रजतेः,ज्योती रज उच्यते—निरु० ४ । १९ । तेजः स्वरूपं ब्रह्म । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे परमेश्वर] तू (उरुः) विशाल, (पृथुः) विस्तृत, (सुभूः) अच्छे प्रकार वर्तमान [ईश्वर] और (भुवः) व्यापक वा शुद्ध ब्रह्म है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥ ५२ ॥

भावार्थ—परमात्मा सब में विशाल सर्वशक्तिमान् आदि गुण युक्त है, ऐसा जान कर मनुष्य उस की उपसना करें और संसार में कीर्ति बढ़ावें ॥५२॥

मन्त्र ५२ और ५३ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय पृष्ठ १६१, १६२ में व्याख्यात हैं ॥

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ० ॥५३॥

प्रथः । वरः । व्यचः । लोकः । इति । ० ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (प्रथः) प्रसिद्ध, (वरः) श्रेष्ठ, (व्यचः) यथावत् मिला हुआ [ब्रह्म] और (लोकः) देखने योग्य [ईश्वर] है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५३॥

भावार्थ—मनुष्य सुप्रसिद्ध आदि जगदीश्वर की उपासना से अपने को सुप्रसिद्ध, श्रेष्ठ, सर्वसम्बन्धी और दर्शनीय बनावें ॥ ५३ ॥

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥५४॥

भवत्-वसुः । इदत्-वसुः । संयत्-वसुः । आयत्-वसुः । इति । त्वा । उप । आस्महे । वयम् ॥ ५४ ।

५२—(उरुः) विशालः (पृथुः) विस्तृतः (सुभूः) सुष्ठु वर्तमानः (भुवः) भूरञ्जिभ्यां कित् । उ० ४ । २१७ । भू सत्तायां शुद्धौ च-असुन्, कित्, महाव्याहृतिरियम् । व्यापकं शुद्धं वा ब्रह्म । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५३—(प्रथः) प्रख्यातम् (वरः) वृञ् वरणे—असुन् । श्रेष्ठम् (व्यचः) अ० ४ । १६ । ६ । व्यच व्याप्ते सम्बन्धे च-असुन् । सर्वसम्बद्धम् (लोकः) दर्शनीयः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (भवद्वसुः) धन प्राप्त कराने वाला, (इदद्वसुः) श्रेष्ठ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् करने वाला, (संयद्वसुः) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला और (आयद्वसुः) निवास साधनों का फैलाने वाला है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आसमहे) तेरी उपासना करते हैं ॥ ५४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! परमेश्वर की उपासना से परस्पर सुधार करो, उसने तुम्हारे लिये सुवर्ण आदि धन, श्रेष्ठ पुरुष, पृथिवी आदि लोक और अनेक सुख के साधन उत्पन्न किये हैं ॥ ५४ ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्यं मा पश्यत ॥ ५५ ॥

नमः । ते । अस्तु । पश्यत । पश्यं । मा । पश्यत ॥ ५५ ॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥ (२०)

अन्न-अद्येन । यशसा । तेजसा । ब्राह्मण-वर्चसेन ॥५६॥ (२०)

भाषार्थ—(पश्यत) हे देखने वाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखने वाले ! (मा) मुझ को (अन्नाद्येन) भोजन योग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुये नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसा) वेद ज्ञान के साथ (पश्य) देख ॥ ५५, ५६ ॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वद्रष्टा परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ और

५४—(भवद्वसुः) भू सत्तायां प्राप्तौ च-शतृ । भवन्ति प्राप्नुवन्ति वसूनि धनानि यस्मात् सः (इदद्वसुः) इदि परमैश्वर्ये-शतृ, नकारलोपश्छान्दसः । इन्दन्ति परमैश्वर्यवन्तो भवन्ति वसवः श्रेष्ठा यस्मात् सः (संयद्वसुः) यम-नियमे—क्विप् । संयमयति वसून् पृथिव्यादिलोकान् यः सः (आयद्वसुः) आङ् +यमु उपरमे-क्विप् । आयच्छते विस्तारयति वसूनि निवाससाधनानि यः सः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५५, ५६—सर्वं पूर्ववत्—म० ४८, ४९ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक पूर्वक सब आवश्यक पदार्थ पाकर आनन्द भोगें ॥ ५५, ५६ ॥

इति त्रयोदशं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री सयाजी राव गायक-
वाड़ाधिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासपरीक्षायाम्
ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्री पण्डित
क्षेमकरणदास त्रिवेदिना
कृते अथर्ववेदभाष्ये त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे आषाढमासे कृष्णषष्ठ्यां तिथौ १९७५
[पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे
धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि
श्री राजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य
सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—, श्रावणशुक्ला ४ संवत् १९७५ वि० ता० १० अगस्त १९१८ ई० ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियाँ ॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-७३ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्यसमाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे, उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जावें॥

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १८१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५८७६ प्राप्त २० जूलाई १८१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर, नमस्ते !

आपको ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आपने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य को करने का प्रयत्न किया है। भाष्य काण्डों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्यसमाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी जी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस प्रदान करें। स्वयम् ग्राहक बनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाज के पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही जरूरी है। भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य मंगाइये।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,

B.Sc., LL. B. उपमन्त्री।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१५१४। कार्यालय श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध, बुलन्दशहर।

आपका पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा-सूत्रधारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आपको उत्तरोत्तर उस महत्त्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए० एल एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश, मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारों वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त। आर्यमित्र आगरा, २५ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैंने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम, आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एक बड़ी कमी के पूर्ण करने का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य्य पूरा हो...छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

श्रीयुत महाशय **मुन्शीराम जी**—जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७-१०-१६६६।

अथर्ववेद भाष्य आप का दिया व किया हुआ अवकाशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आप का परिश्रम सराहनीय है।

तथा—पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१६६६।

अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० **शिव शंकर शर्मा** काव्यतीर्थ—छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वादि ग्रंथकर्त्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि, सम्पादक आर्यमित्र—८ फ़रवरी १६१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।.....आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर और अब वहां से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आपने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आप का अथर्ववेदीय भाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित **भीमसेन शर्मा इटावा**—उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १६१३।

अथर्ववेदभाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त से प्रारम्भ में .....अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है···भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१६१५ ॥

श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते,

महेवा के पते से आपका भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आपने हम सभों पर अत्यंत कृपा की है आपको अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पांचवाँ कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३ ।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है, कि आप ने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है···बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूलमन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आपने अपने भाष्य को अलंकृत किया है···आपकी राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आपका भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पण्डित गणेश प्रसाद शर्मा—संपादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३ ।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र, पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वार्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू कालिकाप्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८६ ता० २७-३-१३।

आपका भेजा अथर्ववेदभाष्य का वी० पी० मिला, मैं आपका भाष्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंह जी वर्मा, मु० एकडका पोस्ट किशुनपुर, ज़िला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आप ने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आपको वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट प्रेस सेक्रेटरियट, पी० डब्लू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७-९-१३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप का अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६-लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है-कि वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है-जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी है। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों को बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई। ... .इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोचकर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है.....त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्ति होकर-इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDYADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No.* 624 *dated 6th February* 1913.

...It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them...also add on the address lable "For Encouragement Fund."

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan. Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age. I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope...the venture will not fail for want of pecuniary support.

THE MAGISTRATE OF ALLAHABAD

Letter No. 912 dated 21st May 1915

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London

---

THE ARYA PATRIKA LAHORE, APRIL 18, 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda* which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the; pre-eminent position in Sanskrit literature.....The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *Bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska. *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works.....The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit, to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings. but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karan Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves.....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
All rights reserved.

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

चतुर्दशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवादःभावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना

निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.

Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि } संवत् १९७५ वि० सन् १९१८ ई० { मूल्यम् १।)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"॥

आनन्दसमाचार ।

अथर्ववेदभाष्यम्—जिन वेदों की महिमा सब बड़े २ ऋषि, मुनि और योगी गाते आये हैं और विदेशी विद्वान् जिनका अर्थ खोजने में लग रहे हैं। वे अब तक संस्कृत में होने के कारण बड़े कठिन थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अर्थ तो भाषा में हो चुका है। परन्तु अथर्ववेद का अर्थ अभी तक नागरी भाषा में नहीं था, इस महात्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयाग निवासी पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने उत्साह किया है। वे भाष्य को नागरी (हिन्दी) और संस्कृत में वेद, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरणादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण से बड़े परिश्रम के साथ बनाकर प्रकाशित कर रहे हैं।

भाष्य का क्रम इस प्रकार है। १—सूक्त के देवता, छन्द उपदेश, २-सस्वर मूल मन्त्र, ३-सस्वर पदपाठ, ४—मन्त्रों के शब्दों को कोष्ठ में देकर सान्वय भाषार्थ, ५—भावार्थ, ६—आवश्यक टिप्पणी, पाठान्तर, अनुरूप पाठादि, ७—प्रत्येक पृष्ठ में लाइन देकर सन्देह निवृत्ति के लिये शब्दों और क्रियाओं की व्याकरण निरुक्तादि प्रमाणों से सिद्धि।

इस वेद में २० छोटे बड़े काण्ड हैं, एक एक काण्ड का भावपूर्ण संक्षिप्त स्त्री पुरुषों के समझने योग्य अति सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य अल्प मूल्य में छपकर ग्राहकों के पास पहुंचता है। वेदप्रेमी श्रीमान् राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, विद्वान् और सर्व साधारण स्त्री पुरुष स्वाध्याय, पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मंगाव और जगत्पिता परमात्मा के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यकविद्या, शिल्पविद्या, राजविद्यादि अनेक क्रियाओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें और धर्मात्मा पुरुषार्थी होकर कीर्ति पावें। छपाई उत्तम और काग़ज़ बढ़िया रायल अठपेजी है।

स्थायी ग्राहकों में नाम लिखाने वाले सज्जन २०) सैकड़ा छोड़कर पुस्तक वी० पी० वा नगद दाम पर पाते हैं। डाकव्यय ग्राहक देते हैं।

काण्ड	१ भूमिका सहित	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
मूल्य	१।)	१।-)	१॥-)	२)	१॥=)	३)	२।)	२)	२।)	२॥)

काण्ड	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	पृष्ठ ३,४०० लगभग
मूल्य	२।)	२=)	१।=)	१।)							२७-)

काण्ड—१५ छप रहा है। कांड १६ शीघ्र प्रकाशित होगा।

हवनमन्त्राः—धर्म शिक्षा का उपकारी पुस्तक—चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवनमन्त्र, वामदेव्यगान सरल भाषा में शब्दार्थ सहित संशोधित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ६०, मूल्य ।)॥

रुद्राध्यायः—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अंग्रेज़ी में बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४८ मूल्य ।=)

रुद्राध्यायः—मूलमात्र बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४ मूल्य)॥

वेदविद्यायें—वेदों में विमान, नौका अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन मूल्य -)॥

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी

२५ सितम्बर १९१८।

५४, लूकरगंज, प्रयाग। (Allahabad)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Onkar Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड १४ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	सत्येनोत्तभिता भूमिः	सोम इत्यादि	मन्त्राः १—५, प्रकाश करने योग्य और प्रकाशक विषय मन्त्राः ६–६४। विवाह संस्कार गृहाश्रम	अनुष्टुप् आदि
२	तुभ्यमग्रे पर्यवहन्	दम्पती		अनुष्टुप् आदि

२-अथर्ववेद, काण्ड १४ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड १४) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र,	सामवेद पू चिक, उत्त चिक इत्य
१–३	सत्येनोत्तभिता भूमिः	१। १—३	१०। ८५। १-३		
४	यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति	१। ४	१०। ८५। ५		
५	आच्छद्विधानैर्गुपितो	१। ५	१०। ८५। ४		
६	चित्तिरा उपबर्हणं	१। ६	१०। ८५। ७		
७	दैव्यासीदनुदेयी	१। ७	१०। ८५। ६		
८–१३	स्तोमा आसन् प्रति	१। ८—१३	१०। ८५। ८-१३		
१४	यदाश्वना पृच्छमाना	१। १४	१०। ८५। १४,१५		
१५	यदश्वातं शुभस्पती	१। १५	१०। ८५। १४,१५		
१६	द्वे ते चक्रे सूर्ये	१। १६	१०। ८५। १६		
१७	अर्यमणं यजामहे	१। १७	७। ५९। १२	३। ६	
१८, १९	प्रेतोमुञ्चामि नामुतः	१। १८, १९	१०। ८५। २५, २४		
२०, २१	भगस्त्वेतो नयतु	१। २०, २१	१०। ८५ २६, २७		
२२	इहैव स्तं मा वियोष्टं	१। २२	१०। ८५। ४२		
२३, २४	पूर्वापरं चरतो	१। २३, २४	१०। ८५। १८, १९		
२५	परा देहि शामुल्यं	१। २५	१०। ८५। २९		
२६	नीललोहितं भवति	१। २६	१०। ८५। २८		
२७	अश्लीला तनूर्भवति	१। २७	१०। ८५। ३०		
२८	आशसनं विशसन	१। २८	१०। ८५। ३५		
२९	तृष्टमेतत् कटुक	१। २९	१०। ८५। ३४		
३०	अनृक्षरा ऋजवः	१। ३४	१०। ८५। २३		
३१	यो अनिध्मो दीदय	१। ३७	१०। ३०। ४		
३२	खे रथस्य खेऽनसः	१। ४१	८। ८०वा ९१। ७		
३३	सम्राज्ञ्येधिश्वशुरेषु	१। ४४	१०। ८५। ४६		
३४	जीवं रुदन्ति वि	१। ४६	१०। ४०। १०		
३५	गृह्णामि ते सौभ-	१। ५०	१०। ८५। ३०		
३६	सुकिंशुकं वहतुं	१। ६१	१०। ८५। २९		
३७	तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सू	२। १	१०। ८५। ३८		

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्व वेद (काण्ड १४) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय, मन्त्र	सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि
३८	पुनः पत्नीमग्निरदा	२ । २	१० । ८५ । ३९		
३९	सोमस्य जाया प्रथमं	२ । ३	१० । ८५ । ४०		
४०	सोमो ददद् गन्धर्वाय	२ । ४	१० । ८५ । ४१		
४१	आ वामगन्त्सुमति	२ । ५	१० । ४० । १२		
४२	सा मन्दसाना मनसा	२ । ६	१० । ४० । १३		
४३	ये बध्वश्चन्द्रं	२ । १०	१० । ८५ । ३१		
४४	मा विदन्परिपन्थिनो	२ । ११	१० । ८५ । ३२		
४५	उद् व ऊर्मिः शम्या	२ । १६	३ । ३३ । १३		
४६, ४७	अघोरचक्षुरपतिघ्नी	२ । १७, १८	१० । ८५ । ४४		
४८	सुमङ्गलीरियं	२ । २८	१० । ८५ । ३३		
४९	या दुर्हार्दो युवतयः	२ । २९	१० । ८५ । ३३		
५०	उत्तिष्ठतो विश्वावसो	२ । ३३	१० । ८५ । २१, २२		
५१	राया वयं सुमनसः	२ । ३६	१ । ११३ । १६ } ८ । ४८ । ११ }		
५२	तां पूषं शिवतम	२ । ३८	१० । ८५ । ३७		
५३	आ वां प्रजां जनयतु	२ । ४०	१० । ८५ । ४७		
५४	सूर्यायै देवेभ्यो	२ । ४६	१० । ८५ । १७		
५५	य ऋते चिदभिश्रियः	२ । ४७	८ । १ । १२		पू० ३ । ६ । २
५६	जनयन्ति नावग्रवः	२ । ७२	७ । ९६ । ४		

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

चतुर्दशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

१—६४ ॥ १—५ सोमो देवता, ६—१६ सूर्या देवता, १७—६४ दम्पती देवते ॥ १—१३, १६, १८, २२, २५—२८, ३०, ४१, ४२, ४४, ५१, ५२, ६३ अनुष्टुप् ; १४ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ; १५ निचृदास्तारपङ्क्तिः ; १७, ३६ भुरिगनुष्टुप् ; १९, २०, २४, ३३, ३७, ३९, ४७, ५०, ५३, ५६, ५७, ६१ त्रिष्टुप् ; २१ [अन्त्यपादौ निचृत्], ४६ जगती ; २३, ३१, ५९ आर्षी त्रिष्टुप् ; २९ निचृत् पुरस्ताद् बृहती ; ३२, ४०, ४५, ५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप् ; ३४, ६० आर्षी पङ्क्तिः ; ३५, ४३, ६२ निचृदनुष्टुप् ; ३८ आर्ष्युष्णिक् ; ४८ पथ्या पङ्क्तिः ; ४९ विराट् त्रिष्टुप् ; ५५ विराट् पुरस्ताद् बृहती ; ५८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

मन्त्राः १—५, प्रकाश्यप्रकाशकविषयोपदेशः—मन्त्र १—५, प्रकाश करने योग्य और प्रकाशक के विषय का उपदेश ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

सत्येन । उत्तभिता । भूमिः । सूर्येण । उत्तभिता । द्यौः ॥
ऋतेन । आदित्याः । तिष्ठन्ति । दिवि । सोमः । अधि । श्रितः ।१

भाषार्थ—(सत्येन) सत्यस्वरूप परमेश्वर करके (भूमिः) भूमि (उत्तभिता) [आकाश में] उत्तमता से थांभी गयी है, और (सूर्येण) सूर्य

१—(सत्येन) नित्यस्वरूपेण ब्रह्मणा (उत्तभिता) उत्तमतया धारिता (भूमिः) (सूर्येण) आदित्यमण्डलेन (उत्तभिता) (द्यौः) प्रकाशः (ऋतेन)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक करके (द्यौः) प्रकाश (उत्तभिता) उत्तम रीति से थांभा गया है। (ऋतेन) सत्य नियम द्वारा (आदित्याः) प्रकाशमान किरणें [वा अखण्ड सूक्ष्म परमाणु] (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं, और (दिवि) [सूर्य के] प्रकाश में (सोमः) चन्द्रमा (अधि) यथावत् (श्रितः) ठहरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—लोक दो प्रकार के हैं एक प्रकाश करने वाले जैसे सूर्य आदि और दूसरे अप्रकाशमान जैसे पृथिवी चन्द्र आदि। परमेश्वर के नियम से प्रकाशक सूर्य आदि लोक प्रकाश्य पृथिवी चन्द्र आदि लोकों को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

१—मन्त्र १ तथा २ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रकाश्य प्रकाशक विषय पृ० १४३, १४४ में व्याख्यात हैं।

२—मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । १—३। मन्त्र ३ भेद से है ॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमेन । आदित्याः। बलिनः। सोमेन । पृथिवी । मही ॥ अथो इति । नक्षत्राणाम् । एषाम् । उप-स्थे । सोमः। आ-हितः॥२

भाषार्थ—(सोमेन) चन्द्रमा के साथ (आदित्याः) सूर्य की किरणें (बलिनः) बलवान् [होती हैं] और (सोमेन) चन्द्रमा [के प्रकाश] के साथ (पृथिवी) पृथिवी (मही) बलवती अर्थात् पुष्ट [होती है]। (अथो) और भी (एषाम्) इन (नक्षत्राणाम्) चलने वाले तारागणों के (उपस्थे) समीप में (सोमः) चन्द्रमा (आहितः) ठहराया गया है ॥ २ ॥

सत्यनियमेन (आदित्याः) आदीप्यमानाः किरणाः। अखण्डाः सूक्ष्माः परमाणवः (तिष्ठन्ति) वर्तन्ते (दिवि) सूर्यप्रकाशे (सोमः) चन्द्रमाः (अधि) यथाविधि (श्रितः) स्थितः ॥

२—(सोमेन) चन्द्रेण सह संयुज्य (आदित्याः) आदीप्यमानाः किरणाः (बलिनः) बलं कर्तुशीला भवन्ति (सोमेन) चन्द्रप्रकाशेन सह (पृथिवी) (मही) बलवती। पुष्टा (अथो) अपि च (नक्षत्राणाम्) गतिशीलानां तारागणानाम् (एषाम्) दृश्यमानानाम् (उपस्थे) समीपे (सोमः) चन्द्रमाः (आहितः) स्थापितः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—चन्द्रमा शीतल स्वभाव है, सूर्य की किरणें उसके ऊपर गिर कर शीतल हो जाती हैं, और जब वे चन्द्रमा से उलटकर वायु से मिलकर पृथिवी पर पड़ती हैं, तब शीतलता के कारण पृथिवी के अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करती हैं। इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का प्रभाव नक्षत्रों पर होता है ॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥

सोमम् । मन्यते । पपि-वान् । यत् । सम्-पिंषन्ति । ओषधिम् ॥ सोमम् । यम् । ब्रह्माणः । विदुः । न । तस्य । अश्नाति । पार्थिवः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सोमम्) चन्द्रमा [के अमृत] को (पपिवान्) मैंने पी लिया, [यह बात मनुष्य] (मन्यते) मानता है, (यत्) जब (ओषधिम्) ओषधि [अन्न, सोमलता आदि] को (संपिंषन्ति) वे [मनुष्य] पीसते हैं। (यम्) जिस (सोमम्) जगत्स्रष्टा परमात्मा को (ब्रह्माणः) ब्राह्मज्ञानी लोग (विदुः) जानते हैं, (तस्य) उसका [अनुभव] (पार्थिवः) पृथिवी [के विषय] में आसक्त पुरुष (न) नहीं (अश्नाति) भोगता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—चन्द्रमा से पुष्ट हुये अन्न सोमलता आदि के सेवन से मनुष्य शरीर पुष्टि करते हैं, परन्तु जो मनुष्य विद्वानों का सत्संग करके ईश्वर ज्ञान से आत्मा को पुष्ट करते हैं, वे शरीर पोषकों की अपेक्षा अधिक आनन्द पाते हैं ॥३॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥

३—(सोमम्) चन्द्रामृतम् (मन्यते) जानाति (पपिवान्) पा पाने-कसु। अहं पीतवानस्मि (यत्) यदा (संपिंषन्ति) सम्यक् चूर्णीकुर्वन्ति (ओषधिम्) अन्नसोमलतादिकम् (सोमम्) जगत्स्रष्टारं परमात्मानम् (यम्) (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानिनः पुरुषाः (विदुः) जानन्ति। साक्षात्कुर्वन्ति (न) निषेधे (तस्य) ब्रह्मणोऽनुभवम् (अश्नाति) भुनक्ति। अनुभवति (पार्थिवः) पृथिवीविषयाऽऽसक्तः पुरुषः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् । त्वा । सोम । प्र-पिबन्ति । ततः । आ । प्यायसे । पुनः ॥ वायुः । सोमस्य । रक्षिता । समानाम् । मासः । आ-कृतिः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सोम) हे चन्द्रमा ! (यत्) जब (त्वा) तुझको (प्रपिबन्ति) वे [किरणें] पी जाती हैं, (ततः) तब (पुनः) फिर (आ प्यायसे) तू परिपूर्ण होजाता है । (वायुः) पवन (सोमस्य) चन्द्रमा का (रक्षिता) रक्षक है और (मासः) सब का परिमाण करने वाला [परमेश्वर] (समानाम्) अनुकूल क्रियाओं का (आकृतिः) बनाने वाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब चन्द्रमा के रस को सूर्य की किरणें खींच लेती हैं, वह रस पृथिवी पर किरणों द्वारा आता और पदार्थों को पुष्ट करता है, फिर वह पार्थिव रस किरणों से वायु द्वारा खिंचकर चन्द्रमा को पहुंचता है। इस प्रकार चन्द्रमा ईश्वर नियम से प्राणियों को सदा उपकारी होता है ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ५ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥

आच्छत्-विधानैः । गुपितः । बार्हतैः । सोम । रक्षितः ॥
ग्राव्णाम् । इत् । शृण्वन् । तिष्ठसि । न । ते । अश्नाति । पार्थिवः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर (आच्छद्विधानैः)

४—(यत्) यदा (त्वा) (सोम) हे चन्द्र (प्रपिबन्ति) आकर्षन्ति रश्मयः (ततः) अनन्तरम् (आ प्यायसे) प्रवर्द्धसे (पुनः) (वायुः) (सोमस्य) चन्द्रस्य (रक्षिता) रक्षकः (समानाम्) सम—टाप् । अनुकूलानां क्रियाणाम् (मासः) मसी परिमाणे परिणामे च—घञ् । परिमाणकर्ता (आकृतिः) अकर्ता। रचयिता ॥

५—(आच्छद्विधानैः) आच्छादनं कुर्वद्भिर्निय मैः (गुपितः) अन्तर्हितः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढक लेने वाले विधानों से (गुप्तिः) गुप्त [अन्तर्धान] किया गया और (बार्हतैः) वेदवाणियों द्वारा कहे गये नियमों से (रक्षितः) रक्षा किया गया, (आवृणाम्) विद्वानों की [प्रार्थना] (इत्) अवश्य (शृण्वन्) सुनता हुआ तू (तिष्ठसि) ठहरता है, (पार्थिवः) पृथिवी [के विषयों] में आसक्त पुरुष (ते) तेरे [अनुभव को] (न) नहीं (अश्नाति) भोगता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमात्मा अपने अनन्त सर्वश्रेष्ठ नियमों से सुरक्षित रह कर बड़े उपकार करता है, उस को विद्वान् ही जानते हैं, सामान्य मनुष्य नहीं जान सकते। इस लिये सब मनुष्य विद्वान् होकर ईश्वर ज्ञान से उन्नति करें ॥ ५ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है–१० । ८५ । ४ ॥

मन्त्राः ६—६४ । विवाह संस्कारोपदेशः—विवाह संस्कार का उपदेश ॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥

चित्तिः । आः । उप-बर्हणम् । चक्षुः । आः । अभि-अञ्जनम् ॥
द्यौः । भूमिः । कोशः । आसीत् । यत् । अयात् । सूर्या ।
पतिम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(चित्तिः) चेतना [कन्या की] (उपबर्हणम्) छोटी ओढ़नी [समान] (आः) होवे, (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (अभ्यञ्जनम्) उबटन

(बार्हतैः) बृहती-अण् । बृहतीभिर्वेदवाग्भिर्विहितैर्विधानैः (सोम) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर (रक्षितः) (आवृणाम्) अ० ३ । १० । ५ । अन्येभ्योऽपिदृश्यन्ते । पा० २ । ३ । ७५ । वृ विज्ञापे स्तुतौ च–क्तिनप्, पृषोदरादित्वात् साधुः । वृणातिः स्तुतिकर्मा–निरु० ३ । ५ । विदुषां [प्रार्थनाम्] (इत्) एव (शृण्वन्) आकर्णयन् (तिष्ठसि) वर्तसे (न) निषेधे (ते) तवानुभवम् (अश्नाति) भुनक्ति (पार्थिवः) पृथिवीविषयेष्वासक्तः ॥

६—(चित्तिः) चेतना । बुद्धिः (आः) बहुलं छन्दसि । पा० ७ । ३ । ९७ । अस्तेर्लङि, ईडभावः, तलोपे सकारस्य रुत्वविसर्गौ । आसीत् । छन्दसि लुङ्लङ्लिटः । पा० ३ । ४ । ६ । इति लिङर्थे लङ् । स्यात् । एवमन्यत्रापि ज्ञातव्यम् । (उपबर्हणम्) उपवस्त्रं यथा (चक्षुः) दर्शनसामर्थ्यम् । (आः) स्यात् (अभ्य-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[शरीर मलने के द्रव्य के तुल्य] (आः) होवे । (द्यौः) आकाश और (भूमिः) भूमि (कोशः) निधिमञ्जूषा [पेटी पिटारी समान] (आसीत्) होवे, (यत्) जब (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (पतिम्) पति को (अयात्) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब कन्या बाहिरी उपकरणों की उपेक्षा करके भीतरी विद्या-बल से चेतन्य स्वभाव, और पदार्थों को दिव्य दृष्टि से देखने वाली, और आकाश और भूमि से सुवर्ण आदि प्राप्त करने कराने वाली हो, तब सुयोग्य पति से व्याह करे ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ७ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥

रैभी । आसीत् । अनु-देयी । नाराशंसी । नि-ओचनी ॥
सूर्यायाः । भद्रम् । इत् । वासः । गाथया । एति । परिष्कृता ॥ ७

भाषार्थ—(रैभी) वेदवाणी (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या की (अनुदेयी) साथिन [समान]

अनम्) शरीरमर्दनद्रव्यं यथा (द्यौः) आकाशः (भूमिः) (कोशः) निधिमञ्जूषा यथा (आसीत्) स्यात् (यत्) यदा (अयात्) या प्रापणे—लङ् । यायात् । प्राप्नुयात् (सूर्या) अ० ६ । ४ । १४ । राजसूयसूर्य० । पा० ३ । १ । ११४ । सृ गतौ यद्वा षू प्रेरणे निपातनात् क्यपि रूपसिद्धिः । सूर्याद् देवतायां चाब् वक्तव्यः । वा० पा० ४ । १ । ४८ । इति चाप् । सूर्या वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । पदनाम—निघ० ५ । ६ । सूर्या सूर्यस्य पत्नी—निरु० १२ । ७ । पत्नी=विभूतिर्दीप्तिः । प्रेरिका । सूर्यदीप्तिवत्तेजस्विनी कन्या (पतिम्) भर्तारम् ॥

७—(रैभी) रेभ—अण्, ङीप् । रेभः स्तोतृनाम—निघ० ३ । १६ । रेभस्य स्तोतुरियम् । वेदवाणी (आसीत्) स्यात् (अनुदेयी) अनुदीयमानावयस्या (नाराशंसी) नर+शंसु स्तुतौ—अण् । अन्येषामपि दृश्यते । पा० ६ । ३ । १३७ । इति दीर्घः । ततः प्रज्ञादित्वात् स्वार्थिकोऽण्, नराशंस एव नाराशंसः । येन नराः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (नाराशंसी) मनुष्यों के गुणों की स्तुति (न्योचनी) नौची [छोटी सहेली समान] (आसीत्) हो। और (भद्रम्) शुभ कर्म (इत्) ही (वासः) वस्त्र [समान] हो [क्योंकि वह] (गाथया) गाने योग्य वेद विद्या से (परिष्कृता) सजी हुयी (एति) चलती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—कन्या वेदों और इतिहासों को पढ़कर विचारकर शुभ कर्म करती हुयी उत्तम विद्या से अपनी शोभा बढ़ावे ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । ८५ । ६ ॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

स्तोमाः । आसन् । प्रति-धयः । कुरीरम् । छन्दः । ओपशः ॥
सूर्यायाः । अश्विना । वरा । अग्निः । आसीत् । पुरः-गवः । ८

भाषार्थ—(स्तोमाः) स्तुति योग्य गुण (सूर्यायाः) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या के (प्रतिधयः) वस्त्रों के अंचल [समान] (आसन्) हों, (कुरीरम्) कर्तव्य कर्म और (छन्दः) आनन्द-प्रद वेद (ओपशः) मुकुट [समान हो] और (अग्निः) अग्नि [शारीरिक और बाहिरी अग्नि द्वारा स्वास्थ्य, शिल्प, यज्ञ आदि विधान] (पुरोगवः) अग्र-

---

प्रशस्यन्ते स नराशंसो मन्त्रः—निरु० ९ । ९ । स्त्रियां ङीप् । मनुष्यगुणानां स्तुतिः (न्योचनी) नि+उच समवाये-ल्युट्, ङीप् । लघुसहचरी (सूर्यायाः) म० ६ । प्रेरिकायाः सूर्य्यदीप्तिवत्तेजस्विन्याः कन्यायाः (भद्रम्) शुभकर्म (इत्) एव (वासः) वस्त्रम् (गाथया) उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन् । उ० २ । ४ । गै गाने-थन् । गानयोग्यया वेदविद्यया (एति) गच्छति (परिष्कृता) अलङ्कृता ॥

८—(स्तोमाः) स्तुत्यगुणाः (आसन्) स्युः (प्रतिधयः) प्रतिधीयन्ते ये । वस्त्रान्ताः (कुरीरम्) कृञ उच्च । उ० ४ । ३३ । डुकृञ् करणे—ईरन् । कर्तव्यं कर्म (छन्दः) आह्लादको वेदः (ओपशः) आङ्+उप+शीङ् शयने—ड । शिरोभूषणम् । मुकुटः (सूर्यायाः) म० ६ (अश्विना) अ० २ । २९ । ६ । अश्वी च अश्विनी च अश्विनौ । पुमान् स्त्रिया । पा० ३ । २ । ६७ । इत्येकशेषः । अश्विनौ.....राजानौ पुण्यकृतौ—निरु० १२ । १ । प्राप्तविद्यौ वधूवरौ (वरा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गामी [पुरोहित समान] (आसीत्) हो, [जब कि] (अश्विना) विद्या को प्राप्त दोनों [वधू वर] (वरा) परस्पर चाहने वाले [वा श्रेष्ठ गुण वाले] हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब कन्या ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त करके स्वास्थ्य आदि विधान में निपुण हो और जब वैसा ही वर ब्रह्मचारी विद्वान् हो, तब दोनों परस्पर विवाह की कामना करें ॥ ८ ॥

मन्त्र ८—१३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । ८—१३ ॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्या यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ॥ ९ ॥

सोमः । वधू-युः । अभवत् । अश्विना । आस्ताम् । उभा । वरा ॥ सूर्याम् । यत् । पत्ये । शंसन्तीम् । मनसा । सविता । अददात् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(सोमः) शुभगुणयुक्त ब्रह्मचारी (वधूयुः) वधू की कामना करने हारा (अभवत्) हो, (उभा) दोनों (अश्विना) विद्या को प्राप्त [वधू वर] (वरा) परस्पर चाहने वाले [वा श्रेष्ठ गुण वाले] (आस्ताम्) हों, (यत्) जब (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मनसे (संशन्तीम्) गुण कीर्तन करती हुयी (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (सविता) जगत् का उत्पादक परमात्मा (अददात्) देवे ॥ ९ ॥

वृञ् वरणे—अप् । वरश्च च वरा च वरौ । परस्परेच्छुकौ । श्रेष्ठौ (अग्निः) शारीरिको बाह्यो वा अग्निः (आसीत्) स्यात् (पुरोगवः) गोरतद्धितलुकि । पा० ५ । ४ । ९२ । पुरस् + गो—टच् । अग्रगामी । पुरोहितः ॥

९—(सोमः) शुभगुणयुक्तो ब्रह्मचारी (वधूयुः) सुप आत्मनः क्यच् । पा० ३ । १ । ८ । वधू—क्यच् । क्याच्छन्दसि । पा० ३ । २ । १७० । उप्रत्ययः । वधूकामः (अभवत्) भवेत् (अश्विना) म० ८ । प्राप्तविद्यौ वधूवरौ (आस्ताम्) स्याताम् (उभा) द्वौ (वरा) म० ८ । परस्परेच्छुकौ । श्रेष्ठौ (सूर्याम्) प्रेरयित्रीम् । तेजस्विनीं कन्याम् (यत्) यदा (पत्ये) स्वाम्यर्थम् (संशन्तीम्) गुणकीर्तनं कुर्वतीम् (मनसा) हृदयेन (सविता) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (अददात्) दद्यात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी पूर्ण विद्या प्राप्त करके परस्पर गुणों की परीक्षा करके कराके गृहाश्रम में प्रवेश करें और परमेश्वर को धन्यवाद दें कि बड़े भाग्य से तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुषों का जोड़ा मिलता है ॥ ९ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

मनो अस्या अनं आसीद् द्यौरासीदुत च्छुदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥ (१)

मनः । अस्याः । अनः । आसीत् । द्यौः । आसीत् । उत । छुदिः ॥ शुक्रौ । अनड्वाहौ । आस्ताम् । यत् । अयात् । सूर्या । पतिम् ॥ १० ॥ (१)

भाषार्थ—(मनः) मन (अस्याः) इस [ब्रह्मचारिणी] का (अनः) रथ [समान] (आसीत्) होवे, (उत) और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (छुदिः) छत्तर [समान] (आसीत्) होवे । (शुक्रौ) दोनों वीर्यवान् [वधूवर] (अनड्वाहौ) रथ चलाने वाले दो बैल [के समान] (आस्ताम्) होवें, (यत्) जब (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (पतिम्) पति को (अयात्) प्राप्त होवे ॥ १०

भावार्थ—जब कन्या वेद आदि शास्त्र पढ़कर मननशील, ताप आदि सहने योग्य हो और जब वैसा ही सुयोग्य पति हो, तब गृहाश्रम के चलाने में समर्थ होकर दोनों प्रीति पूर्वक विवाह करें ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥

१०—(मनः) मननम् । अन्तःकरणम् (अस्याः) कन्यायाः (अनः) रथः (आसीत्) स्यात् (द्यौः) सूर्यप्रकाशः (आसीत्) (उत) अपि (छुदिः) छत्रम् । आतपत्रम् (शुक्रौ) शुक-अर्श आद्यच् । वीर्यवन्तौ दम्पती (अनड्वाहौ) रथवाहकौ वृषभौ यथा (आस्ताम्) स्याताम् । अन्यद् गतम्-म० ६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋक्-सामाभ्याम् । अभि-हितौ । गावौ । ते । सामनौ । ऐताम् ॥ श्रोत्रे इति । ते । चक्रे इति । आस्ताम् । दिवि । पन्थाः । चराचरः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(ऋक्सामाभ्याम्) पदार्थों की स्तुति विद्या और मोक्षज्ञान द्वारा (अभिहितौ) कहे गये [दो प्रकार के बोध] (गावौ) दो बैल [रथ के दो बैलों के समान] (ते) तेरे (सामनौ=समानौ) अनुकूल (ऐताम्) चलें । (ते) तेरे (श्रोत्रे) दोनों कान (चक्रे) दो पहिये [समान] (आस्ताम्) होवें, (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (पन्थाः) मार्ग (चराचरः) चलाचल [रहे] ॥११॥

भावार्थ—कन्या वेद विहित कर्मों में प्रवीण होकर श्रवण मनन द्वारा संसार के पदार्थों से गुण ग्रहण करके गृहाश्रम के व्यवहार चलाने में समर्थ होवे ॥ ११ ॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनुष्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥

शुची इति । ते । चक्रे इति । यात्याः । वि-आनः । अक्षः । आ-हतः ॥ अनः । मनुष्मयम् । सूर्या । आ । अरोहत् । प्र-यती । पतिम् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(यात्याः ते) तुझ चलती हुयी के (शुची) दो शुद्ध [कान-

११—(ऋक्सामाभ्याम्) पदार्थानां स्तुतिविद्यया मोक्षज्ञानेन च (अभिहितौ) विहितौ बोधौ (गावौ) रथस्य गमयितारौ वृषभौ यथा (ते) तव (सामनौ) समानौ । अनुकूलौ (ऐताम्) गच्छताम् (श्रोत्रे) गुणग्राहकौ कर्णौ (ते) तव (चक्रे) रथाङ्गे यथा (आस्ताम्) स्याताम् (दिवि) प्रत्येकव्यवहारे (पन्थाः) मार्गः (चराचरः) चरिचलिपतिवदीनां द्वित्वमभ्यासस्य । वा० पा० ६ । १ । १२ । इति रूपसिद्धिः । चलाचलः । अत्यन्तं गमनयोग्यः ॥

१२—(शुची) पवित्रे श्रोत्रे (ते) तव (चक्रे) रथाङ्गे यथा (यात्याः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ११] (चक्रे) दो पहिये [समान हों] और (व्यानः) व्यान [सर्वशरीर व्यापक वायु] (अक्षः) धुरा [समान] (आहतः) [पहियों में] लगा हो। (पतिम्) पति के पास को (प्रयती) चलती हुयी (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (मनस्मयम्) मनोमय [विचार रूप] (अनः) रथ पर (आ अरोहत्) चढ़े ॥ १२ ॥

भावार्थ—जब कन्या श्रवण मनन द्वारा व्यान वायु अर्थात् इन्द्रियों को दमन कर सके, तब पति के समीप रहकर गृहाश्रम की गाड़ी को चलावे ॥ १२ ॥

सूर्यायां वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥

सूर्यायाः । वहतुः । प्र । अगात् । सविता । यम् । अव-असृजत् ॥ अघासु । हन्यन्ते । गावः । फल्गुनीषु । वि । उह्यते १३

भाषार्थ—(सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या का (वहतुः) दाय [यौतुक, कन्या को दिया पदार्थ] (प्र अगात्) सन्मुख चले, (यम्) जिस [पदार्थ] को (सविता) जन्मदाता पिता (अव असृजत्) दान करे। (अघासु) सत्कार क्रियाओं में (गावः) वाचायें (हन्यन्ते) चलें, और वह [वधू] (फल्गुनीषु) सफल क्रियाओं के बीच

यान्त्याः । गच्छन्त्याः (व्यानः) सर्वशरीरव्यापको वायुर्यथा । इन्द्रियसमूह इत्यर्थः (अक्षः) चक्रधारणकाष्ठभेदः । धुरा (आहतः) संयोजितः (अनः) रथम् (मनस्मयम्) मनोमयम् । मननेन सिद्धम् (सूर्या) प्रेरयित्री । सूर्यवत् तेजस्विनी कन्या (आ अरोहत्) आरोहेत् (प्रयती) प्रयाणं कुर्वती (पतिम्) भर्तारम् ॥

१३—(सूर्यायाः) प्रेरिकायाः । सूर्यदीप्तिवत्तेजोवत्याः कन्यायाः (वहतुः) एधिवह्योश्चतुः । उ० १ । ७७ । वह प्रापणे—चतुः । विवाहकाले कन्यायै देयपदार्थः । विवाहः । वहनकारणम् (प्र अगात्) प्रकर्षेण गच्छतु (सविता) जनकः । पिता (यम्) पदार्थम् (अघासृजत्) दत्तवान् (अघासु) मह पूजायाम्—अच् अर्श आद्यच् । अघं धननाम—निघ० २ । १० । सत्कारवतीषु क्रियासु । धनवतीषु क्रियासु (हन्यन्ते) हन हिंसागत्योः । गम्यन्ते । प्राप्यन्ते (गावः) वाचः (फल्गुनीषु) फलेगुक् च । उ० ३ । ५६ । फल निष्पत्तौ—उनन्, । गुक् च, ङीप्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वि उह्यते) ले जाई जावे ॥ १३ ॥

भावार्थ—पिता को योग्य है कि विवाह के समय कन्या को स्त्रीधन अर्थात् योग्य वस्त्र, अलंकार, धन दान करे और सब लोग आशीर्वाद बोल कर उस क्रिया को सफल करें ॥ १३ ॥

यद॑श्विना पृ॒च्छमा॑ना॒वया॑तं त्रिच॒क्रेण॑ वह॒तुं सू॒र्यायाः॑ ।
क्वैकं॑ च॒क्रं वा॑मासी॒त् क्व॑ दे॒ष्ट्राय॑ तस्थथुः ॥ १४ ॥

यत् । अ॒श्वि॒ना॒ । पृ॒च्छमा॑नौ । अया॑तम् । त्रि॒-च॒क्रेण॑ । व॒ह॒-तुम् । सू॒र्यायाः॑ ॥ क्व॑ । एक॑म् । च॒क्रम् । वा॒म् । आ॒सी॒त् । क्व॑ । दे॒ष्ट्राय॑ । त॒स्थ॒थुः॒ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(अश्विना) हे विद्या को प्राप्त [दोनों स्त्री पुरुष समूह !] (यत्) जब (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (वहतुम्) विवाह को (पृच्छमानौ) पूंछते हुये [तुम दोनों] (त्रिचक्रेण) अपने तीन पहिये वाले [कर्म, उपासना, और ज्ञान वाले रथ] से (अयातम्) पहुंचो। (क्व) कहां पर (वाम्) तुम दोनों का (एकम्) एक [आत्मबोधरूप] (चक्रम्) पहिया (आसीत्) रहे, (क्व), कहां पर (देष्ट्राय) उपदेश के लिये (तस्थथुः) आप दोनों ठहरें ॥ १४ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष विवाह उत्सव पर एकत्र होकर परस्पर आत्मोन्नति और परस्पर उपकार में स्थिति का विचार करें। आगे मन्त्र १६ देखो॥१४

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । १४, १५ ॥

सफलक्रियासु (व्युह्यिते) विविधं नीयते ॥

१४—(यत्) यदा (अश्विना) प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषसमाजौ (पृच्छमानौ) प्रश्नान् कुर्वन्तौ (अयातम्)) या गतौ—लङ् । अगच्छतम् (त्रिचक्रेण) कर्मोपासनाज्ञानरूपेण चक्रत्रययुक्तेन रथेन (वहतुम्) म० १३ । विवाहोत्सवम् (सूर्यायाः) प्रेरिकायाः । सूर्यदीप्तिवत्तेजस्विन्याः कन्यायाः (क्व) कुत्र (एकम्) (चक्रम्) आत्मबोधरूपम् (वाम्) युवयोः (आसीत्) अस्तु । भवतु (क्व) (देष्ट्राय) उपदेशाय (तस्थथुः) तिष्ठतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा १५
यत् । अयातम् । शुभः। पती इति । वरे-यम् । सूर्याम् । उप ॥
विश्वे । देवाः । अनु । तत् । वाम् । अजानन् । पुत्रः ।
पितरम् । अवृणीत । पूषा ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(शुभः पती) हे शुभ क्रिया के पालन करनेवाले [स्त्री पुरुष समूह !] तुम दोनों (यत्) जब (सूर्याम् = सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (वरेयम्) श्रेष्ठ कर्म में (उप) आदर से (अयातम्) पहुंचो । (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों के (तत्) उस [कर्म] में (अनु अजानन्) सम्मति दें [कि] (पूषा) पोषण करने वाला (पुत्रः) पुत्र (पितरम) पिता को (अवृणीत) स्वीकार करे ॥१५॥

भावार्थ—शुभचिंतक स्त्रीपुरुष विवाह में आकर प्रयत्न करें कि विद्वान् लोग प्रसन्न होकर आशीर्वाद दें कि उन वधू वर का पुत्र पोषण करनेवाला विद्वान् पराक्रमी होवे ॥ १४ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । १४, १५ ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥
द्वे इति । ते । चक्रे इति । सूर्ये । ब्रह्माणः । ऋतु-था । विदुः॥
अथ । एकम् । चक्रम् । यत् । गुहा । तत् । अद्धातयः । इत् ।
विदुः ॥ १६ ॥

१५—(यत्) यदा (अयातम्) अगच्छतम् (शुभस्पती) शुभक्रियायाः पालकौ (वरेयम्) णालोपः । वरेण्यम् । श्रेष्ठं कर्म (सूर्याम्) षष्ठ्यर्थे द्वितीया । सूर्यायाः । प्रेरिकायाः कन्यायाः (उप) आदरेण (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसः (अनु अजानन्) अनुकूलं जानन्तु । स्वीकुर्वन्तु (तत्) वक्ष्यमाणं कर्म (वाम्) युवयोः (पुत्रः) सुतः (पितरम्) जनकम् (अवृणीत) स्वीकरोतु (पूषा) पोषकः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सूर्ये) हे प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या ! (ते) तेरे (द्वे) दो [कर्म और उपासना रूप] (चक्रे) पहियों को (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी लोग (ऋतुथा) सब ऋतुओं में (विदुः) जानते हैं। (अथ) और (एकम्) एक [ज्ञानरूप] (चक्रम्) पहिया (यत्) जो (गुहा) हृदय में है, (तत्) उस को (अद्धातयः) सत्य ज्ञान वाले पुरुष (इत्) हि (विदुः) जानते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—वेदवेत्री कन्या और वेदवेत्ता वर के कर्म, उपासना, ज्ञान की योग्यता को विद्वान् लोग विचारें। पीछे मन्त्र १४ देखो ॥ १६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । १६ ॥

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥

अर्यमणम् । यजामहे । सु-बन्धुम् । पति-वेदनम् ॥ उर्वा-रुकम्-इव । बन्धनात् । प्र । इतः । मुञ्चामि । न । अमुतः १७

भाषार्थ—(सुबन्धुम्) सुन्दर बन्धु, (पतिवेदनम्) रक्षक पति के ज्ञान करानेहारे वा देने हारे (अर्यमणम्) श्रेष्ठों के मान करने हारे परमात्मा को (यजामहे) हम पूजते हैं। (उर्वारुकम् इव) ककड़ी को जैसे (बन्धनात्) लता बन्धन से, [वैसे दोनों वधू वर को] (इतः) इस [वियोग पाश] से (प्र मुञ्चामि) मैं [विद्वान्] छुड़ाता हूं, (अमुतः) उस [प्रेम पाश] से (न)

१६—(द्वे) (ते) तव (चक्रे) कर्मोपासनारूपे रथांगे (सूर्ये) हे प्रेरिके कन्ये (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानिनः (ऋतुथा) ऋतुषु (विदुः) जानन्ति (अथ) अनन्तरम् (एकम्) ज्ञानरूपम् (चक्रम्) (यत्) (गुहा) गुहायाम् । हृदये (तत्) (अद्धातयः) अद्धा सत्यनाम निघ० ३ । ११ + अत सातत्यगमने—इन् । सत्यज्ञानिनः । मेधाविनः—निघ० ३ । १६ । (इत्) एव (विदुः) ॥

१७—(अर्यमणम्) श्रेष्ठमानकर्तारम् (यजामहे) पूजयामः (सुबन्धुम्) (पतिवेदनम्) पत्युः प्रज्ञापकं प्रापकं वा (उर्वारुकम् इव) उरु + आरु + कम् । कृ वापाजिमि । उ० १ । १ । आरु गतौ-उण् । कर्कटीफलम् (इव) यथा (बन्धनात्) लताबृन्तात् (प्र) (इतः) अस्मात् । वियोगपाशात् (मुञ्चामि) मोचयामि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं [छुड़ाता] ॥ १७ ॥

भावार्थ—परमात्मा की महती कृपा का ध्यान करके विद्वान् लोग वधू वर को वियोग के कष्ट से छुड़ाकर परस्पर प्रेमास्पद बनावें ॥ १७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेदसे ऋग्वेद में है-७ । ५९ । १२ और यजुर्वेद में-३ । ६ ॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

प्र । इतः । मुञ्चामि । न । अमुतः । सु-बद्धाम् । अमुतः । करम् ॥ यथा । इयम् । इन्द्र । मीढ्वः । सु-पुत्रा । सु-भगा । असति ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(इतः) इस [वियोग पाश] से [इस वधू को] (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं, (अमुतः) उस [प्रेम पाश] से (न) नहीं [छुड़ाता], (अमुतः) उस [प्रेम पाश] में [इस वधू] को (सुबद्धाम्) अच्छे बन्धनयुक्त (करम्) मैं करता हूं । (यथा) जिस से, (मीढ्वः) हे सुख की वर्षा करने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन् ! (इयम्) यह [वधू] (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्रों वाली और (सुभगा) बड़े ऐश्वर्य वाली (असति) होवे ॥ १८ ॥

भावार्थ—वधू वर को चाहिये कि आपस में बड़े प्रेम का बरताव करें, और परमात्मा की उपासना करके प्रयत्न पूर्वक घर में श्रेष्ठ सन्तान् और ऐश्वर्य प्राप्त करके दोनों आनन्दित रहें ॥ १८ ॥

मन्त्र १८, १९ ऋग्वेद में कुछ भेद से हैं—१० । ८५ । २५, २४, और दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाहप्रकरण में उद्धृत हैं और

(न) निषेधे (अमुतः) तस्मात् । प्रेमपाशात् ।

१८—(प्र) प्रकर्षेण (इतः) अस्मात् । वियोगपाशात् (मुञ्चामि) मोचयामि (नः) निषेधे (अमुतः) तस्मात् । प्रेमपाशात् (सुबद्धाम्) सुष्ठु बन्धनयुक्ताम् (अमुतः) तस्मिन् । प्रेमपाशे (करम्) करोमि (यथा) येन प्रकारेण (इयम्) वधूः (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् ! (मीढ्वः) मिह सेचने—कसु । हे सुखवर्षक (सुपुत्रा) शोभनपुत्रयुक्ता (सुभगा) सौभाग्यवती (असति) भवेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनियोग इस प्रकार है कि वर इन दोनों मन्त्रों को बोलकर वधू के बंधे हुये केशों को छोड़े ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९ ॥

प्र । त्वा । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । येन । त्वा । अबध्नात् । सविता । सु-शेवाः॥ ऋतस्य । योनौ । सु-कृतस्य । लोके । स्योनम् । ते । अस्तु । सह-संभलायै ॥ १९ ॥

भाषार्थ—[हे वधू !] (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रुकावट के (पाशात्) बन्धन से (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं, (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवा योग्य (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबध्नात्) बांधा है। (ऋतस्य) सत्य नियम के (योनौ) घर में और (सुकृतस्य) सुकृत [पुण्य कर्म] के (लोके) समाज में (सहसम्भलायै) सहेलियों सहित वर्तमान (ते) तेरे लिये (स्योनम्) आनन्द (अस्तु) होवे ॥१९॥

भावार्थ—जिस कन्या को पिता ने योग्य प्रति मिलने तक रोका था, उस को पिता के घर से प्रसन्नता के साथ लेकर वर बड़े प्रेम से रक्खे और घर के सब धर्मात्मा विद्वान् स्त्री पुरुष श्रेष्ठ व्यवहार करके उसे सुख देते रहें ॥ १९ ॥

मन्त्र १८ की टिप्पणी देखो ॥

१९—(प्र) प्रकर्षेण (त्वा) वधूम् (मुञ्चामि) मोचयामि (वरुणस्य) वृञ् संवरणे—उनन्। आवरणस्य विघ्नस्य (पाशात्) बन्धात् (येन) (त्वा) (अबध्नात्) बन्धे कृतवान् (सविता) जन्मदाता पिता (सुशेवाः) अ० २। २। २। सु+शेवृ सेवने—असुन्। सुष्ठु सेवनीयः (ऋतस्य) सत्यनियमस्य (योनौ) गृहे (सुकृतस्य) पुण्यकर्मणः (लोके) समाजे (स्योनम्) सुखम् (ते) तुभ्यम् (अस्तु) (सहसम्भलायै) सह+सम्+भल परिभाषणहिंसादानेषु-अच्, टाप्। सम्भलीभिः सम्भाषिकाभिः सखिभिः सह वर्तमानायै ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि२०।२

भगः। त्वा। इतः। नयतु। हस्त-गृह्य। अश्विना। त्वा। प्र। वहताम्। रथेन॥ गृहान्। गच्छ। गृह-पत्नी। यथा। असः। वशिनी। त्वम्। विदथम्। आ। वदासि॥ २०॥ (२)

भाषार्थ—[हे वधू !] (भगः) ऐश्वर्यवान् वर (त्वा) तुझे (इतः) यहां से (हस्तगृह्य) हाथ पकड़ कर (नयतु) ले चले, (अश्विना) विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष समूह] (त्वा) तुझे (रथेन) रथ द्वारा (प्र वहताम्) अच्छे प्रकार ले चलें। (गृहान्) घरों में (गच्छ) पहुंच, (यथा) जिससे (गृहपत्नी) गृहपत्नी [घर की स्वामिनी] (असः) तू होवे और (वशिनी) वश में करने वाली (त्वम्) तू (विदथम्) सभागृह में (आ वदासि) बातचीत करे॥ २० ॥

भावार्थ—प्रतापी वर गुणवती वधू को आदर से ले चले, विद्वान् स्त्री पुरुष उसे रथ पर चढ़ावें। सभ्या वधू पतिगृह में पहुंच कर अपनी विद्वत्ता और शुभ गुणों के कारण प्रिय बचन और बरताव से सब को प्रसन्न करे॥ २० ॥

मन्त्र २०, २१ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । २६, २७ ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं १ सं स्पृशस्वाथ जिर्वि र्विदथमा वदासि २१

इह प्रियम्। प्र-जायै। ते। सम्। ऋध्यताम्। अस्मिन्। गृहे। गार्हपत्याय। जागृहि॥ एना। पत्या। तन्वम्।

२०—(भगः) ऐश्वर्यवान् वरः (त्वा) वधूम् (इतः) अस्मात् स्थानात्। पितृगृहात् (नयतु) (हस्तगृह्य) अ० ५। १४। ४। हस्तेन गृहीत्वा (अश्विना) प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषसमूहौ (त्वा) (प्र) प्रकर्षेण (वहताम्) नयताम् (रथेन) (गृहान्) पतिगृहान् (गच्छ) प्राप्नुहि (गृहपत्नी) गृहस्वामिनी (यथा) येन प्रकारेण (असः) भवेः (वशिनी) गृहगतानां वशं प्रापयित्री (त्वम्) (विदथम्) सभागृहम् (आ) आभिमुख्येन (वदासि) ब्रूयाः॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम् । स्पृशस्व । अथ । जिर्विः । विदथम् । आ । वदासि २१

भाषार्थ—[हे वधू !] (इह) इस [पति कुल] में (ते) तेरा (प्रियम्) हित (प्रजायै) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के लिये (सम्) अच्छे प्रकार (ऋध्यताम्) बढ़े, (अस्मिन् गृहे) इस घर में (गार्हपत्याय) गृहपत्नी के कार्य के लिये (जागृहि) तू जागती रह [सावधान रह] । (एना पत्या) इस पति के साथ (तन्वम्) श्रद्धा को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर, (अथ) और (जिर्विः) स्तुति योग्य तू (विदथम्) सभागृह में (आ वदासि) बातचीत कर ॥ २१ ॥

भावार्थ—वधू को योग्य है कि पतिकुल में पहुंचकर प्रसन्न चित्त होकर सन्तान, सेवक आदि का यथावत् पालन करके घर के कामों में सावधान रहे, और पति से भक्ति करके संसार में कीर्ति बढ़ावे ॥ २१ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि विवाह प्रकरण में उद्धृत है—घर पहुंचकर वधू के रथ से उतारना आदि कर्म करके वर इस मन्त्र को बोलकर वधू को सभामण्डप में ले जावे ॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥

इह । एव । स्तम् । मा । वि । यौष्टम् । विश्वम् । आयुः । वि । अश्नुतम् ॥ क्रीडन्तौ । पुत्रैः । नप्तृ-भिः । मोदमानौ । सु-अस्तकौ ॥ २२ ॥

भाषार्थ—[हे वधू वर !] (इह एव) यहां [गृहाश्रम के नियम में] ही

२१—(इह) अत्र पतिकुले (प्रियम्) हितम् (प्रजायै) सन्तानसेवकादिपालनाय (ते) तव (सम्) सम्यक् (ऋध्यताम्) वर्धताम् (अस्मिन्) (गृहे) (गार्हपत्याय) गृहपत्नीकर्तव्यसिद्धये (जागृहि) बुध्यस्व । सावधाना भव (एना) अनेन (पत्या) स्वामिना सह (तन्वम्) तन उपकारे श्रद्धायां च—ऊ । श्रद्धां भक्तिम् (सं स्पृशस्व) संयोजय (अथ) अनन्तरम् (जिर्विः) अ० ८ । १ । ६ । जॄ स्तुतौ—किन् ह्रस्वः, जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० १० । ८ । जीर्विः । स्तुत्या । अन्यद् गतम्—म० ॥ २० ॥

२२—(इह) अस्मिन् गृहाश्रमनियमे (एव) अवश्यम् (स्तम्) भवतम्

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्तम्) तुम दोनों रहो, (मा वि यौष्टम्) कभी अलग मत होओ, और (पुत्रैः) पुत्रों के साथ तथा (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीड़ा करते हुये, (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुये और (स्वस्तकौ) उत्तम घरवाले तुम दोनों (विश्वम् आयुः) सम्पूर्ण आयु को (वि अश्नुतम्) प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष दोनों दृढ़ प्रतिज्ञा करके प्रसन्नता पूर्वक पुत्र पौत्र आदि के साथ धर्म से रहकर पूर्ण आयु भोगकर यशस्वी होवें ॥ २२ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४२, और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका विवाह विषय पृष्ठ २०८ में व्याख्यात है ॥

पूर्वापरं चरतो मायया तौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥२३॥

पूर्व-अपरम् । चरतः । मायया । एतौ । शिशू इति । क्रीडन्तौ । परि । यातः । अर्णवम् ॥ विश्वा । अन्यः । भुवना । वि-चष्टे । ऋतून् । अन्यः । वि-दधत् । जायसे । नवः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(एतौ) यह दोनों [सूर्य, चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर नियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुये (शिशू) दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) सब ओर (यातः) चलते हैं। (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यः) दूसरा तू [चन्द्रमा] (ऋतून्) ऋतुओं को [अपनी गति से] (विदधत्) बनाता हुआ [शुक्ल पक्ष में] (नवः) नवीन (जायसे) प्रकट होता है ॥ २३ ॥

(मा वि यौष्टम्) वियुक्तौ मा भवेताम् (विश्वम्) सम्पूर्णम् (आयुः) जीवनम् (वि) विविधम् (अश्नुतम्) प्राप्नुतम् (क्रीडन्तौ) धर्मेण खेलन्तौ (पुत्रैः) (नप्तृभिः) पौत्रैः (मोदमानौ) आनन्दं कुर्वन्तौ (स्वस्तकौ) शोभनगृहयुक्तौ ॥

२३—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ७ । ८१ । १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—सूर्य और चन्द्रमा आकाश में घूमते हैं। चन्द्र आदि लोकों को सूर्य प्रकाश पहुंचाता है। चन्द्रमा शुक्लपक्ष में एक एक कला बढ़ता और वसन्त आदि ऋतुओं को बनाता है। हे स्त्री पुरुषो! जैसे यह सूर्य चन्द्रमा ईश्वर नियम पर चलकर संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही तुम दोनों उपकार करो ॥ २३ ॥

मन्त्र २३, २४ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । १८, १९ और ऊपर आ चुके हैं—अ० ७ । ८१ । १, २, तथा मन्त्र २३ के तीन पाद फिर आये हैं—अ० १३ । २ । ११ ॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् । भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२४॥

नवः-नवः । भवसि । जायमानः । अह्नाम् । केतुः । उषसाम् । एषि । अग्रम् ॥ भागम् । देवेभ्यः । वि । दधासि । आ-यन् । प्र । चन्द्रमः । तिरसे । दीर्घम् । आयुः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(चन्द्रमः) हे चन्द्रमा ! तू [शुक्ल पक्ष में) (नवोनवः) नया नया (जायमानः) प्रकट होता हुआ (भवसि) रहता है, और (अह्नाम्) दिनों का (केतुः) जताने वाला तू (उषसाम्) उषाओं [प्रभात वेलाओं] के (अग्रम्) आगे (एषि) चलता है और (आयन्) आता हुआ तू (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों को (भागम्) सेवनीय उत्तम गुण (वि दधासि) विविध प्रकार देता है और (दीर्घम्) लम्बे (आयुः) जीवन काल को (प्र) अच्छे प्रकार (तिरसे) पार लगाता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में एक एक कला बढ़कर नया नया होता है, और दिनों अर्थात् प्रतिपदा आदि चान्द्र तिथियों को बनाता, और पृथिवी के पदार्थों में पुष्टि देकर प्राणियों का जीवन बढ़ाता है, इसी प्रकार स्त्री पुरुष संसार में उपकार करके अपना जीवन सुफल करें ॥ २४ ॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

२४—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ७ । ८१ । २ ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

परा । दे हि । शामुल्यम् । ब्रह्म-भ्यः । वि । भज । वसु ॥

कृत्या । एषा । पत्-वती । भूत्वा । आ । जाया । विशते । पतिम् ॥ २५ ॥

भाषार्थ—[हे वर !] (शामुल्यम्) [हृदय की] मलीनता (परा देहि) दूर कर दे, (ब्रह्मभ्यः) विद्वानों को (वसु) सुन्दर वस्तु (विभज) बांट । (एषा) यह (कृत्या) कर्तव्य कुशल (जाया) पत्नी (पद्वती) ऐश्वर्यवती (भूत्वा) होकर (पतिम्) पति में (आ विशते) आकर प्रवेश करती है ॥ २५ ॥

भावार्थ—गृहपति शुद्ध अन्तःकरण से विदुषी स्त्रियों और विद्वानों का यथावत् आदर सत्कार करे जिन के शिक्षा आदि प्रयत्न से स्त्री रत्न उसको मिली है ॥ २५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २९ ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥

नील-लोहितम् । भवति । कृत्या । आसक्तिः । वि । अज्यते ॥ एधन्ते । अस्याः । ज्ञातयः । पतिः । बन्धेषु । बध्यते ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(नीललोहितम्) निधियों का प्रकाश (भवति) होता है,

२५—(परा देहि) दूरं कुरु (शामुल्यम्) सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुला० । उ० ४ । १०७ । शमु उपशमे—उलच्, शमुलं शमलम् अशुद्धम्, तस्य भावः—ष्यञ् । चित्तमालिन्यम् (ब्रह्मभ्यः) वेदज्ञेभ्यः (वि भज) सांहितको दीर्घः । प्रयच्छ (वसु) श्रेष्ठं वस्तु (कृत्या) विभाषा कृवृषोः । पा० ३ । १ । १२० । करोतेः—क्यप् ॥ मत्वर्थे अर्शआद्यच् । टाप् । कृत्यायां क्रियायां कुशला (एषा) (पद्वती) पत ऐश्वर्ये—क्विप्, मतुप् । ऐश्वर्यवती (भूत्वा) (जाया) पत्नी (आ विशेत्) प्रविशेत् (पतिम्) पतिहृदयम् ॥

२६ (नीललोहितम्) नि + इल गतौ—क + रुहेश्च लो वा । उ० ३ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जब कि] (कृत्या=कृत्यायाः) कर्तव्य कुशल [पत्नी] की (आसक्तिः) प्रीति (वि अज्यते) प्रसिद्ध होती है। (अस्याः) इस [वधू] के (ज्ञातयः) कुटुम्बी लोग (एधन्ते) बढ़ते हैं, और (पतिः) पति (बन्धेषु) [वधू के साथ प्रेम के] बन्धनों में (बध्यते) बंध जाता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—जिस कुल में कर्मकुशल बुद्धिमती स्त्री धन का लाभ व्यय आदि विचारकर कर्तव्य करती है, वहां धन सम्पत्ति बढ़ती है। उस की समृद्धि से माता पिता आदि और सब कुटुम्बी वृद्धि करते हैं और पति उस से हार्दिक प्रीति करता है ॥ २६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २८ ॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद् वध्वोः वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥

अश्लीला । तनूः । भवति । रुशती । पापया । अमुया ॥ पतिः । यत् । वध्वः । वाससः । स्वम् । अङ्गम् । अभि-ऊर्णुते ॥२७॥

भाषार्थ—(रुशती) चमकता हुआ (तनूः) रूप (अमुया) उस (पापया) पाप क्रिया से (अश्लीला) अश्लील [हतश्री] (भवति) हो जाता है, (यत्) जब कि (पतिः) पति (वध्वः) वधू के (वाससः) वस्त्र से (स्वम् अङ्गम्) अपने अङ्ग को (अभ्यूर्णुते) ढक लेता है ॥ २७ ॥

भावार्थ—जब पति पुरुषार्थ छोड़कर कुकामी होकर बुरी स्त्रियों के समान कुचेष्टा करता है, तब उस दुर्बलेन्द्रिय का रूप बिगड़ जाता है और वह

९४। रुह प्रादुर्भावे—इतन्, रस्य लः। नीलानां निधीनां प्रादुर्भावः (भवति) (कृत्या) म० २५। सुपां सुलुक्०। पा० ७। १। ३९। षष्ठीस्थाने प्रथमा। कृत्यायाः कर्तव्यकुशलायाः पत्न्याः (आसक्तिः) प्रीतिः (व्यज्यते) अञ्जू व्यक्तीकरणे। व्यक्तीक्रियते। प्रसिद्धिं गच्छति (एधन्ते) वर्धन्ते (अस्याः) वध्वाः (ज्ञातयः) सगोत्राः (पतिः) (बन्धेषु) प्रेमपाशेषु (बध्यते) बद्धो भवति ॥

२७—(अश्लीला) श्रीरहिता। कुरूपा (तनूः) रूपम् (भवति) (रुशती) रोचमाना (पापया) पापबुद्धया (अमुया) प्रसिद्धया (पतिः) (यत्) यदा (वध्वः) पत्न्याः (वाससः) वस्त्रात् (स्वम्) स्वकीयम् (अङ्गम्) (अभ्यूर्णुते) आच्छादयति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लज्जा को प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३० ॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥

आ-शसनम् । वि-शसनम् । अथो इति । अधि-विकर्तनम् ॥
सूर्यायाः । पश्य । रूपाणि । तानि । ब्रह्म । उत । शुम्भति२८

भाषार्थ—(सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या की (आशसनम्) आशंसा [अप्राप्त के पाने की इच्छा], (विशसनम्) विशंसा [प्राप्त का शुभ कर्मों में व्यय] (अथो) और भी (अधिविकर्तनम्) अधिकार पूर्वक विघ्नों का छेदन, (रूपाणि) इन रूपों [सुन्दर लक्षणों] को (पश्य) तू देख, (तानि) उन [सुन्दर लक्षणों] को (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (उत) ही (शुम्भति) शोभायमान करता है ॥ २८ ॥

भावार्थ—जब वधू वर परस्पर शुभ गुणों और मर्यादाओं का मान करते हैं, तब उत्तम प्रबन्ध से उस गृहाश्रम की शोभा बढ़ती है ॥ २८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३५ ॥

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

तृष्टम् । एतत् । कटुकम् । अपाष्ठ-वत् । विष-वत् । न ।
एतत् । अत्तवे ॥ सूर्याम् । यः । ब्रह्मा । वेद । सः । इत् । वाधूयम् । अर्हति ॥ २९ ॥

२८—(आशसनम्) आङः शसि इच्छायाम्—ल्युट्, नकारलोपः । आशंसा । अप्राप्तस्य प्राप्तीच्छा (विशसनम्) वि+शसि इच्छायाम्—ल्युट्, नलोपः । प्राप्तस्य शुभकर्मसु व्ययः (अथो) अपि च (अधिविकर्तनम्) कृती छेदने वेष्टने च—ल्युट् । अधिकृत्य विघ्नानां छेदनम् (सूर्यायाः) प्रेरिकायाः कन्यायाः (पश्य) अवलोकय (रूपाणि) लक्षणानि (तानि) लक्षणानि (ब्रह्मा) वेदवेत्ता पतिः (उत) एव (शुम्भति) दीपयति । शोभयति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(एतत्) यह [पूर्वोक्त शुभ लक्षण वधू वर के विरोध में] (तृष्टम्) दाह जनक, (कटुकम्) कड़वा [अप्रिय], (अपाष्ठवत्) अपस्थान [अपमान] युक्त और (विषवत्) विष समान [होता है], (एतत्) यह [विरुद्धपन] (अत्तवे) प्रबन्ध करने के लिये (न) नहीं [होता]। (यः) जो (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (वेद) जानता है, (सः इत्) वही (वाधूयम्) विवाह कर्म के (अर्हति) योग्य होता है ॥ २९ ॥

भावार्थ—जहां पर वधू वर परस्पर विरोधी निर्गुणी होते हैं, वहां गृहाश्रम में विपत्ति रहती है, और जब दोनों पूर्ण विद्वान् और युवा होकर परस्पर गुण जानकर विवाह करते हैं, तब वे गृहाश्रम में आनन्द भोगते हैं ॥ २९ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३४ ॥

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येनं जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥ (३)

सः । इत् । तत् । स्योनम् । हरति । ब्रह्मा । वासः । सुमङ्गलम् ॥ प्रायश्चित्तिम् । यः । अधि-एति । येन । जाया । न । रिष्यति ॥ ३० ॥ (३)

भाषार्थ—(सः इत्) वही (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (तत्) तब (स्योनम्) सुखदायक और (सुमङ्गलम्) बड़े मङ्गलमय (वासः) वस्त्र

२९—(तृष्टम्) दाहजनकम् (एतत्) पूर्वोक्तम् (कटुकम्) अप्रियम् (अपाष्ठवत्) अपस्थानेनापमानेन युक्तम् (विषवत्) विषसमानम् (न) निषेधे (एतत्) विरुद्धं कर्म (अत्तवे) तुमर्थे सेसेनसे० । पा० ३ । ४ । ९ । अत बन्धने—तवेन् । प्रबन्धं कर्तुम् (सूर्याम्) (यः (ब्रह्मा) वेदज्ञः पतिः (वेद) जानाति (सः) (इत्) एव (वाधूयम्) वैवाहिकं विधानम् (अर्हति) कर्तुं योग्यो भवति । पूजयति ॥

३०—(सः) (इत्) एव (तत्) तदा (स्योनम्) सुखदम् (हरति) प्रापयति । प्राप्नोति (ब्रह्मा) वेदज्ञः पतिः (वासः) वस्त्रादिकम् (सुमङ्गलम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि [घर में] (हरति) लाता है, (यः) जो [पति] (प्रायश्चित्तिम्) प्रायश्चित क्रिया को (अध्येति) जानता है, (येन) जिस के कारण (जाया) पत्नी (न रिष्यति) कष्ट नहीं पाती ॥ ३० ॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वान् दूरदर्शी होकर गृहाश्रम में प्रवेश करता है, वही परिश्रम करके वस्त्र आदि आवश्यक पदार्थ लाकर घर में पत्नी सहित आनन्द पाता है ॥ ३० ॥

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु । ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥ ३१ ॥

युवम् । भगम् । सम् । भरतम् । सम्-ऋद्धम् । ऋतम् । वदन्तौ । ऋत-उद्येषु ॥ ब्रह्मणः । पते । पतिम् । अस्यै । रोचय । चारु । सम्-भलः । वदतु । वाचम् । एताम् ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—[हे वधू वर !] (ऋतोद्येषु) सत्य वचनों के बीच (ऋतम्) सत्य (वदन्तौ) बोलते हुये (युवम्) तुम दोनों (समृद्धम्) अधिक सम्पत्ति वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (सम्) मिलकर (भरतम्) धारण करो । (ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक [परमेश्वर !] (अस्यै) इस [वधू] के लिये (पतिम्) पति को (रोचय) आनन्दित कर—(एताम् वाचम्) इस वचन को (संभलः) यथार्थवक्ता पुरुष (चारु) मनोहर रीति से (वदतु) बोले ॥ ३१ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग परमेश्वर से प्रार्थना करके आशीर्वाद देवें कि यह दोनों स्त्री पुरुष अपनी प्रतिज्ञाओं में दृढ़ रहकर सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करके सदा प्रसन्न रहें ॥ ३१ ॥

महाहितकरम् (प्रायश्चित्तिम्) प्रायश्चित्तक्रियाम् । पापक्षयविधानम् (यः) (अध्येति) जानाति (येन) कारणेन (जाया) पत्नी (न) निषेधे (रिष्यति) दुःखं प्राप्नोति ॥ ३० ॥

३१—(युवम्) युवां वधूवरौ (भगम्) ऐश्वर्यम् (सम्) मिलित्वा (भरतम्) धारयतम् (समृद्धम्) बहुवृद्धियुक्तम् (ऋतम्) सत्यम् (वदन्तौ) कथयन्तौ (ऋतोद्येषु) वद-क्यप् । सत्यकथनेषु (ब्रह्मणः) वेदस्य (पते) रक्षक परमेश्वर (पतिम्) भर्त्तारम् (अस्यै) वधूहिताय (रोचय) प्रसादय (चारु) यथा तथा, मनोहररीत्या (संभलः) सम्यग्वक्ता (वाचम्) वाणीम् (एताम्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ । शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ।३३

इह । इत् । असाथ । न । परः । गमाथ । इमम् । गावः । प्र-जया । वर्धयाथ ॥ शुभम् । यतीः । उस्रियाः । सोम-वर्चसः । विश्वे । देवाः । क्रन् । इह । वः । मनांसि ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—(गावः) हे गतिशील [पुरुषार्थी कुटुम्बी लोगो !] (इह इत्) यहां पर ही [हम में] (असाथ) तुम रहो, (परः) दूर (न गमाथ) मत जाओ, और (इमम्) इस [पुरुष] को (प्रजया) प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] से (वर्धयाथ) बढ़ाओ । (शुभम्) शुभ रीति से (यतीः) चलती हुई (उस्रियाः) निवास करने वाली स्त्रियां और (सोमवर्चसः) ऐश्वर्य के साथ प्रताप वाले (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग [अर्थात् घर के विद्वान् स्त्री पुरुष] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनों को (इह) यहां [गृह कार्य में] (क्रन्) करें ॥ ३२ ॥

भावार्थ—सब कुटुम्बी लोग पुरुषार्थ करके मिलकर धैर्य से घर में रहें और सन्तान आदि को शिक्षा दान से बढ़ावें और सम्पत्ति और ऐश्वर्य बढ़ाकर गृहाश्रम को शोभायमान करें ॥ ३२ ॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आ चुका है—अ० ३ । ८ । ४ ॥

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् । अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ३३

३२—(इह) अत्र । अस्मासु (इत्) एव (असाथ) भवत (न) निषेधे (परः) परस्तात् । दूरम् (गमाथ) गच्छत (इमम्) पुरुषम् (गावः) गमेर्डोः । उ० २ । ६७ । गच्छतेर्डोप्रत्ययः । गौः स्तोतृनाम—निघ० ३ । १६ । हे गतिशीलाः पुरुषार्थिनः कुटुम्बिनः (प्रजया) सन्तानसेवकादिरूपया (वर्धयाथ) वर्धयत (शुभम्) शुभरीत्या (यतीः) गच्छन्त्यः (उस्रियाः) स्फायितञ्चिवञ्चि० । उ० २ । १३ । वस निवासे-रक्, स्वार्थे घप्रत्ययः । निवासशीलाः स्त्रियः (सोमवर्चसः) ऐश्वर्येण प्रतापिनः (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसः (क्रन्) कुर्वन्तु (इह) गृहाश्रमे (वः) युष्माकम् (मनांसि) चित्तानि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमम् । गावः । प्र-जया । सम् । विशाथ । अयम् । देवानाम् । न । मिनाति । भागम् ॥ अस्मै । वः । पूषा । मरुतः । च । सर्वे । अस्मै । वः । धाता । सविता । सुवाति ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(गावः) हे गतिशील [पुरुषार्थी कुटुम्बियो !] (इमम्) इस [पुरुष] में (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के साथ (सम्) मिलकर (विशाथ) तुम प्रवेश करो, (अयम्) यह [पुरुष] (देवानाम्) विद्वानों के (भागम्) भाग को (न) नहीं (मिनाति) नाश करता है। (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (वः) तुम को (पूषा) पोषक वैद्य (च) और (सर्वे) सब (मरुतः) शूर पुरुष, और (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (वः) तुमको (धाता) धारण करने वाला (सविता) प्रेरक आचार्य (सुवाति) आगे बढ़ावे ॥ ३३ ॥

भावार्थ—कुटुम्बियों को योग्य है कि सब सन्तानों और उपयोगी पुरुषों सहित मिलकर विद्वान् प्रधान पुरुष का आदर मान करें ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् । सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४॥

अनृक्षराः । ऋजवः । सन्तु । पन्थानः । येभिः । सखायः । यन्ति । नः । वरे-यम् ॥ सम् । भगेन । सम् । अर्यम्णा । सम् । धाता । सृजतु । वर्चसा ॥ ३४ ॥

३३—(इमम्) पुरुषम् (गावः) म० ३२ । हे गतिशीलाः पुरुषार्थिनः कुटुम्बिनः (प्रजया) सन्तानसेवकादिना सह (सम्) मिलित्वा (विशाथ) प्रविशत (अयम्) जनः (देवानाम्) विदुषाम् (न) निषेधे (मिनाति) मीञ् वधे, ह्रस्वः । मीनाति नाशयति (भागम्) अंशम् (अस्मै) पुरुषाय (वः) युष्मान् (पूषा) पोषको वैद्यः (मरुतः) शत्रुमारकाः शूराः (च) (सर्वे) (अस्मै) (वः) युष्मान् (धाता) धारकः (सविता) प्रेरक आचार्यः (सुवाति) प्रेरयेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अनृक्षराः) बिना कांटों वाले (ऋजवः) सीधे (पन्थानः) मार्ग (सन्तु) होवें, (येभिः) जिन से (नः) हमारे (सखायः) मित्र लोग (वरेयम्=वरेण्यम्) सुन्दर विधान से (यन्ति) चलते हैं। (धाता) धारण करने वाला [परमेश्वर] (भगेन सम्) ऐश्वर्य के साथ, (अर्यम्णा सम्) श्रेष्ठों के मान करने वाले व्यवहार के साथ और (वर्चसा सम्) प्रताप के साथ [हम को] (सृजतु) संयुक्त करे ॥ ३४ ॥

भावार्थ—सब घर के लोग परमेश्वर की उपासना के साथ विद्वानों के समान विघ्नों का नाश करके श्रेष्ठों के सन्मान से ऐश्वर्यवान् और प्रतापी होवें ३४

इस मन्त्र का पूर्वार्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २३ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्च स्तेने मां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

यत् । च । वर्चः । अक्षेषु । सुरायाम् । च । यत् । आ-हितम् ॥
यत् । गोषु । अश्विना । वर्चः । तेन । इमाम् । वर्चसा । अवतम् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो (वर्चः) तेज (अक्षेषु) व्यवहार कुशलों में (च च) और (यत्) जो [तेज] (सुरायाम्) ऐश्वर्य [वा लक्ष्मी] में (आहितम्) रक्खा गया है। (यत्) जो (वर्चः) तेज (गोषु) गतिशील [पुरुषार्थी] लोगों में है, (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष

३४—(अनृक्षराः) अकण्टकाः (ऋजवः) सरलाः (सन्तु) (पन्थानः) मार्गाः (येभिः) यैः (सखायः) सुहृदः (यन्ति) गच्छन्ति (नः) अस्माकम् (वरेयम्) णलोपः । यथा तथा, वरेण्यम् । वरणीयेन विधानेन (सम्) सह (भगेन) ऐश्वर्येण (सम्) (अर्यम्णा) श्रेष्ठानां मानकर्तृव्यवहारेण (सम्) (धाता) धारकः परमेश्वरः (सृजतु) योजयतु) वर्चसा) प्रतापेन ॥

३५—(यत्) (च) (वर्चः) तेजः (अक्षेषु) अक्ष-अर्श आद्यच् । व्यवहारकुशलेषु (सुरायाम्) षुर दीप्तौ ऐश्वर्ये च-क, टाप् । ऐश्वर्ये। लक्ष्म्याम् (च) (यत्) (आहितम्) स्थापितम् (यत्) (गोषु) म० ३२ । गतिशीलेषु पुरु-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समूहो !] (तेन वर्चसा) उस तेज से (इमाम्) इस [वधू] को (अवतम्) शोभायमान करो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करके शिक्षा देवें कि वे विद्वान् पति पत्नी अपने कर्तव्यों को सकुशल सिद्ध करके तेजस्वी होवें ॥ ३५ ॥

येन महान्घन्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेन मां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥
येन । महा-नघ्न्याः । जघनम् । अश्विना । येन । वा । सुरा ॥ येन । अक्षाः । अभि-असिच्यन्त । तेन । इमाम् । वर्चसा । अवतम् ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—(येन) जिस [तेज] के कारण (महानघ्न्याः) अत्यन्त निर्दोष स्त्री के (जघनम्) पौरुष, (येन) जिस के कारण (सुरा) ऐश्वर्य [लक्ष्मी], (वा) और (येन) जिस करके (अक्षाः) सब व्यवहार (अभ्यषिच्यन्त) सींचे जाते हैं [बढ़ाये जाते हैं], (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष समूहो !] (तेन वर्चसा) उस तेज से (इमाम्) इस [वधू] के (अवतम्) शोभायमान करो ॥ ३६ ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष मिलकर उपाय करें कि वधू बड़ी बड़ी स्त्रियों के समान पौरुष, ऐश्वर्य और व्यवहार बढ़ाकर तेजस्विनी होवे ॥ ३६ ॥

षार्थिषु (अश्विना) हे प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषसमूहौ (वर्चः) (तेन) (इमाम्) वधूम् (वर्चसा) तेजसा (अवतम्) अव रक्षणशोभादिषु । शोभयतम् ॥

३६—(येन) वर्चसा (महानघ्न्याः) कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसङ्ख्यानम् । वा० पा० ३ । २ । ५ । महा+न+हन हिंसागत्योः—क, ङीप् । न हन्तव्या न दण्डनीया सा नघ्नी तस्याः । अतिशयेन निर्दोषायाः स्त्रियाः (जघनम्) हन्तेः शरीरावयवे च । उ० ५ । ३२ । हन हिंसागत्योः—अच्, द्वित्वं च धातोः । गमनम् । पौरुषम् (अश्विनौ) हे प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषसमूहौ (येन) (वा) समुच्चये (सुरा) म० ३५ । ऐश्वर्यम् । लक्ष्मीः (येन) (अक्षाः) व्यवहाराः (अभ्यषिच्यन्त) अभिषिक्ता भवन्ति । वृद्धिं गम्यन्ते ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो अ॑नि॒ध्मो दी॒दय॑द॒प्स्व॑१न्तर्यं विप्रा॑स ईळ॒ते अ॑ध्व॒रेषु॑ ।
अपां॑ नपा॒न्मधु॑मतीर॒पो दा॒ याभि॒रिन्द्रो॑ वावृ॒धे वी॒र्या॑वान्॥३७
यः । अ॒नि॒ध्मः । दी॒दय॑त् । अ॒प्-सु । अ॒न्तः॑ । यम् । विप्रा॑सः ।
ईळ॒ते । अ॒ध्व॒रेषु॑ ॥ अपा॑म् । नपा॑त् । मधु॑-मतीः । अ॒पः ।
दाः । याभिः॑ । इन्द्रः॑ । व॒वृ॒धे । वी॒र्य॑-वान् ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अनिध्मः) बिना चमकता हुआ [अन्तर्यामी] रहकर (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर (दीदयत्) चमकता है, (यम्) जिस [परमेश्वर] की, (विप्रासः) बुद्धिमान् लोग (अध्वरेषु) सन्मार्ग बताने वाले व्यवहारों में, (ईडते) बड़ाई करते हैं, [सो तू] (अपाम्) प्रजाओं के मध्य (नपात्) नाशरहित [परमेश्वर !] (मधुमतीः) मधु विद्या से युक्त [पूर्ण विज्ञानवती] (अपः) प्रजायें (दाः) दे, (याभिः) जिन [प्रजाओं] से (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् मनुष्य (वीर्यवान्) वीर्यवान् [धीर, वीर, शरीर, इन्द्रिय, और मन की अतिशय शक्तिवाला] होकर (ववृधे) बढ़ता है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—वधू वर को उचित है कि विद्वानों के समान सर्वान्तर्यामी सर्वनियन्ता परमात्मा की उपासना करके ब्रह्मचर्यादि से विद्वान् सन्तान, सेवक आदि प्राप्त करें और वेदविद्या द्वारा बढ़ाकर सदा उन्नति करते रहें ॥३७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ३० । ४, और निरुक्त १० । १६ में भी व्याख्यात है ॥

३७—(यः) परमेश्वरः (अनिध्मः) अप्रकाशः । अन्तर्यामी सन् (दीदयत्) दीप्यते (अप्सु) आपः=आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ६ । २७ । प्रजासु (अन्तः) मध्ये (यम्) परमेश्वरम् (विप्रासः) मेधाविनः (ईडते) स्तुवन्ति (अध्वरेषु) अध्वन्+रा दाने-क । सन्मार्गदातृषु व्यवहारेषु (अपाम्) प्रजानां मध्ये (नपात्) अपतनशील । अविनाशिन् (मधुमतीः) मधुविद्यया पूर्ण-विज्ञानेन युक्ताः (अपः) प्रजाः (दाः) देहि (याभिः) प्रजाभिः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् मनुष्यः (ववृधे) वर्धते (वीर्यवान्) वीरकर्मयुक्तः सन् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
येा भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥

इदम् । अहम् । रुशन्तम् । ग्राभम् । तनू-दूषिम् । अप । ऊहामि ॥ यः । भद्रः । रोचनः । तम् । उत् । अचामि ॥३८॥

भाषार्थ—(इदम्) अब [गृहस्थ होने पर] (अहम्) मैं [स्त्री वा पुरुष] (रुशन्तम्)सताने वाले, (तनूदूषिम्) शरीर को दोष लगाने वाले (ग्राभम्) ग्राही [मलबन्धक रोग वा दुष्ट व्यवहार] को (अप ऊहामि) हटा देता हूं । (यः) जो (भद्रः) मङ्गलमय, (रोचनः) रोचक व्यवहार है, (तम्) उसको (उत्) उत्तमता से (अचामि) प्राप्त होता हूं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—वधूवर पीडाप्रद, रोगकारक कर्म और स्वभाव छोड़कर स्वास्थ्य वर्धक व्यवहार करके गृहाश्रम में आनन्द बढ़ावें ॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः । अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥

आ । अस्यै । ब्राह्मणाः । स्नपनीः । हरन्तु । अवीर-घ्नीः । उत् । अजन्तु । आपः ॥ अर्यम्णः । अग्निम् । परि । एतु । पूषन् । प्रति । ईक्षन्ते । श्वशुरः । देवरः । च ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—(अस्यै) इस [वधू] के लिये (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [विद्वान् लोग] (स्नपनीः) शुद्धिकारक सामग्रियों को (आ हरन्तु) लावें, (अवीरघ्नीः)

३८—(इदम्) इदानीम् । गृहाश्रमग्रहणसमये (रुशन्तम्) रुश हिंसायाम्-शतृ । हिंसन्तम् (ग्राभम्) मलबन्धकग्राहिरोगं दुष्टव्यवहारं वा (तनूदूषिम्) शरीरदूषकम् (अपोहामि) अपगमयामि (यः) (भद्रः) मङ्गलमयः (रोचनः) रुचिरो व्यवहारः (तम्) व्यवहारम् (उत्) उत्तमतया (अचामि) अचु गतौ याचने च । प्राप्नोमि । याचे ॥

३९—(अस्यै) वध्वै (ब्राह्मणाः) विद्वांसः (स्नपनीः) शोधयित्रीः सामग्रीः (आ हरन्तु) प्रापयन्तु (अवीरघ्नीः) वीराणां हितकरीः (उत्) उत्त-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरों की हितकारी (आपः) प्रजायें (उत्) उत्तमता से (अजन्तु) प्राप्त होवें। (पूषन्) हे पुष्टिकारक [विद्वान् !] (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले [पति] की (अग्निम्) अग्नि की [प्रत्येक पति पत्नी] (परि एतु) परिक्रमा करे, (श्वशुरः) ससुर [पति का पिता] (च) और (देवरः) देवर लोग [पति के छोटे बड़े भ्राता] (प्रति ईक्षन्ते) बाट देखते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—वर के घर पहुंचकर वधूवर विद्वानों की आज्ञानुसार शुद्ध जल आदि से स्नान करके अग्नि होत्रादि करके यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करें और सब कुटुम्बी लोग सन्मान से स्वागत करें ॥ ३९ ॥

शं ते॒ हिर॑ण्यं शमु॑ स॒न्त्वापः॒ शं मे॒थिर्भ॑वतु॒ शं यु॒गस्य॒ तर्द्म॑ । शं त॒ आपः॑ श॒तप॑वित्रा भवन्तु॒ शमु॒ पत्या॑ त॒न्वं॑१॒ सं स्पृ॑शस्व ॥ ४० ॥ (४)

शम् । ते॒ । हिर॑ण्यम् । शम् । ऊं॒ इति॑ । स॒न्तु॒ । आपः॑ । शम् । मे॒थिः । भ॒व॒तु॒ । शम् । यु॒गस्य॑ । तर्द्म॑ ॥ शम् । ते॒ । आपः॑ । श॒त-प॑वित्राः । भ॒व॒न्तु॒ । शम् । ऊं॒ इति॑ । पत्या॑ । त॒न्व॑म् । सम् । स्पृ॒श॒स्व॒ ॥ ४० ॥ (४)

भाषार्थ—[हे वधू !] (ते) तेरे लिये (हिरण्यम्) सोना [द्रव्य, आभूषण आदि] (शम्) सुखदायक [हो], (उ) और (आपः) प्रजायें [सन्तान, सेवक आदि] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें, (मेथिः) पशु बांधने का

मतया (अजन्तु) गच्छन्तु प्राप्नुवन्तु (आपः) म० ३७ । प्रजाः (अर्यम्णः) श्रेष्ठमानकरस्य पत्युः (अग्निम्) होमाग्निम् (पर्येतु) प्रत्येकं वधूश्च वरश्च गच्छतु (पूषन्) हे पोषक विद्वन् (प्रतीक्षन्ते) प्रतीक्षया पश्यन्ति (श्वशुरः) शावशेराप्तौ । उ० १ । ४४ । शु + अशू आप्तौ, व्याप्तौ—उरन् । शु आशु अश्यते प्राप्यते यः । दम्पत्योः पिता (देवरः) दिवेर्ऋ । उ० २। ९९ । दिवु क्रीडादिषु—ऋप्रत्ययः । पत्युः कनिष्ठज्येष्ठभ्रातरः (च) ॥

४०—(शम्) शान्तिदायम् । सुखकरम् । शान्तये (ते) तुभ्यम् (हिरण्यम्) सुवर्णम् । सुवर्णभूषणम् (शम्) (उ) समुच्चये । अवधारणे (सन्तु) (आपः) म०३७ । प्रजाः (शम्) (मेथिः) मेथ सङ्गे—इन् । पशुबन्धनकाष्ठदण्डः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काष्ठदण्ड (शम्) आनन्दप्रद और (युगस्य) जूये का (तर्द्म) छिद्र (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे । (ते) तेरे लिये (शतपवित्राः) सैकड़ों प्रकार शुद्ध करने वाले (आपः) जल (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें, (शम्) शान्ति के लिये (उ) ही (पत्या) पति के साथ (तन्वम्) अपनी श्रद्धा को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर ॥ ४० ॥

भावार्थ—सासु ससुर आदि स्वागत करके सुवर्ण आभूषण आदि जो कुछ पदार्थ देवें, वधू उन्हें प्रसन्न होकर स्वीकार करे और घरके सन्तान, सेवक पशुओं, अन्न, जल आदि के प्रबन्ध में प्रवृत्त होकर आनन्द पावे और पति में सदा पूर्ण प्रीति रक्खे ॥ ४० ॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥

खे । रथस्य । खे । अनसः । खे । युगस्य । शतक्रतो इति शत-क्रतो ॥ अपालाम् । इन्द्र । त्रिः । पूत्वा । अकृणोः । सूर्य-त्वचम् ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों प्रकार की बुद्धियों वा कर्मों वाले ! (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले [पति !] (रथस्य) रथ [रथ रूप शरीर] के (खे) गमन [चेष्टा] में, (अनसः) जीवन के (खे) गमन [उपाय] में और (युगस्य) योग [ध्यान] के (खे) गमन [चलने] में (अपालाम् = अपाराम्) अपार गुणवाली [ब्रह्मवादिनी पत्नी] को (त्रिः) तीन बार [कर्म,

(भवतु) (शम्) (युगस्य) रथहलादेरङ्गभेदस्य (तर्द्म) तर्द हिंसायाम्—मनिन् । छिद्रम् (शम्) (ते) तुभ्यम् (आपः) जलानि (शतपवित्राः) बहुप्रकारेण शोधनशीलाः (शम्) (उ) (पत्या) स्वामिना सह (तन्वम्) तनु विस्तारे, तन श्रद्धायामुपकारे च—ऊप्रत्ययः । श्रद्धाम् (सं स्पृशस्व) संयोजय ॥

४१—(खे) खर्व गतौ-ड । गमने । चेष्टने । उपाये (रथस्य) रथरूपस्य शरीरस्य (खे) उपाये (अनसः) अन जीवने-असुन् । जीवनस्य (खे) गतौ (युगस्य) योगस्य । ध्यानस्य (शतक्रतो) हे बहुप्रज्ञ । बहुकर्मन् (अपालाम्) रस्य लः । अपाराम् । अपारगुणवतीं ब्रह्मवादिनीं पत्नीम् (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना और ज्ञान से] (पूत्वा) शोधकर (सूर्यत्वचम्) सूर्य के समान तेजवाली (अकृणोः) तू कर ॥ ४१ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् विद्वान् पति प्रयत्न करे कि विदुषी पत्नी वेदज्ञान से शुद्ध होकर शरीर को उचित चेष्टा में, जीवन को सुन्दर उपाय में, और मन को ईश्वर भक्ति में लगाकर संसार में कीर्ति पावे ॥ ४१ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—सायण भाष्य ८ । ८० । ७ और अजमेर वैदिकयन्त्रालय पुस्तक ८ । ६१ । ७ ॥

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥
आ-शासाना । सौमनसम् । प्र-जाम् । सौभाग्यम् । रयिम् ॥
पत्युः । अनु-व्रता । भूत्वा । सम् । नह्यस्व । अमृताय । कम् ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—[हे वधू !] (सौमनसम्) मन की प्रसन्नता, (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि], (सौभाग्यम्) बड़ी भाग्यवाली और (रयिम्) धन को (आशासाना) चाहती हुई तू (पत्युः) पति के (अनुव्रता) अनुकूल कर्म वाली (भूत्वा) होकर (अमृताय) अमर पन [पुरुषार्थ और कीर्ति] के लिये (कम्) सुख से (सं नह्यस्व) सन्नद्ध होजा [युद्ध के लिये कवच धारण कर] ॥ ४२ ॥

भावार्थ—सब कुटुम्बी लोग वधू को शिक्षा दें कि वह विदुषी वधू योग्यता के साथ पति से प्रीति करके प्रसन्नतापूर्वक गृहकार्यों को सिद्ध करे ॥ ४२ ॥

पते (त्रिः) त्रिवारं कर्मोपसनाज्ञानैः (पूत्वा) शोधयित्वा (अकृणोः) त्वं कुर्याः (सूर्यत्वचम्) त्वच संवरणे—असुन् । सूर्यवत्तेजस्विनीम् ॥

४२—(आशासमाना) कामयमाना (सौमनसम्) मनःप्रसादम् (प्रजाम्) सन्तानसेवकादिरूपाम् (सौभाग्यम्) सुभगत्वम् (रयिम्) धनम् (पत्युः) स्वामिनः (अनुव्रता) व्रतं कर्मनाम-निघ० २ । १ । अनुकूलकर्मा (भूत्वा) (संनह्यस्व) सन्नद्धा भव । सन्नाहं युद्धाय कवचं धारय (अमृताय) अमरणाय । पुरुषार्थाय कीर्त्तये च (कम्) सुखेन ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा सिन्धु'र्नदीना साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राड्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥

यथा । सिन्धु'ः । नदीनाम् । साम्-राज्यम् । सुषुवे । वृषा ॥
एव । त्वम् । सम्-राज्ञी । एधि । पत्यु'ः । अस्तम् । परा-इत्य ४३

भाषार्थ—(यथा) जैसे (वृषा) बलवान् (सिन्धुः) समुद्र ने (नदीनाम्) नदियों का (साम्राज्यम्) साम्राज्य [चक्रवर्ती राज्य, अपने लिये] (सुषुवे) उत्पन्न किया है। [हे वधू !] (एव) वैसे ही (त्वम्) तू (पत्युः) पति के (अस्तम्) घर (परेत्य) पहुंचकर (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी [चक्रवर्ती रानी] (एधि) हो ॥ ४३ ॥

भावार्थ—बड़े लोगों की शिक्षा और आशीर्वाद से वधू सावधानी के साथ घर के सब कामों को अपने हाथ में लेकर महारानी बनकर रहे ॥ ४३ ॥

सम्राड्येधि श्वशु'रेषु सम्राड्युत दे'वृषु' ।
ननान्दुः सम्राड्येधि सम्राड्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥

सम्-राज्ञी । एधि । श्वशु'रेषु । सम्-राज्ञी । उत । दे'वृषु' ॥
ननान्दुः । सम्-राज्ञी । एधि । सम्-राज्ञी । उत । श्वश्र्वाः ४४

भाषार्थ—[हे वधू !] तू (श्वशुरेषु) अपने ससुर आदि [मेरे पिता आदि गुरु जनों] के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी, (उत) और (देवृषु) अपने देवरों [मेरे बड़े और छोटे भाइयों] के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी

४३—(यथा) येन प्रकारेण (सिन्धुः) समुद्रः (नदीनाम्) सरिताम् (साम्राज्यम्) सार्वभौमत्वम् । चक्रवर्तिराज्यम् (सुषुवे) उत्पादयमास (वृषा) बलवान् (एव) तथा (त्वम्) (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) भव (पत्युः) (अस्तम्) गृहम् (परेत्य) प्राप्य ॥

४४—(सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमाना । राजराजेश्वरी (एधि) भव (श्वशुरेषु) श्वशुरादिषु मान्येषु (सम्राज्ञी) (उत) अपि (देवृषु) म० ३६ । पत्युः कनिष्ठज्येष्ठभ्रातृषु (ननान्दुः) नञ्चि च नान्देः । उ० २ । ६८ । नञ्+टु नदि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एधि) हो। (ननान्दुः) अपनी ननद [मेरी बहिन] की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी, (उत) और (श्वश्र्वाः) अपनी सासु [मेरी माता] की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—वधू विद्या और बुद्धि के बल से अपने कर्तव्यों में ऐसी चतुर हो कि ससुर, सासु, देवर, ननद आदि सब बड़े छोटे जन उस की बड़ी प्रतिष्ठा करें ॥ ४४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१०। ८५। ४६। और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में पति के घर पहुंचकर, वधू वर के हवन करने में व्याख्यात है ॥

या अकृ॑न्तन्नवय॒न् याश्च॑ तत्नि॒रे या दे॒वीरन्ताँ॒ अभितोऽद॑दन्त।
तास्त्वा॑ जरसे॒ सं व्ययन्त्वायु॑ष्मतीदं परि॑ धत्स्व॒ वासः॑ ॥४५॥

याः। अकृ॑न्तन्। अवयन्। याः। च॒। त॒त्नि॒रे। याः। दे॒वीः। अन्ता॑न्। अभि॑तः। अद॑दन्त ॥ ताः। त्वा॒। जर॑से। सम्। व्ययन्तु। आयु॑ष्मती। इ॒दम्। परि॑। धत्स्व। वासः॑ ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—(याः) जिन [स्त्रियों] ने (अकृन्तन्) काता है, (च) और (याः) जिन्हों ने (तत्निरे) तन्तुओं को फैलाया है, और (अवयन्) बुना है, और (याः देवीः) जिन देवियों ने (अन्तान्) [वस्त्र के] आंचल (अभितः) सब प्रकार से (अददन्त) दिये हैं। [हे वधू !] (ताः) वे सब स्त्रियां (त्वा)

सन्तोषे—श्नु वृद्धिश्च। भर्तृभगिन्याः (सम्राज्ञी) (एधि) (उत) (श्वश्र्वाः) श्वसुरस्योकाराकारलोपश्च वक्तव्यः। वा० पा० ४। १। ६८। श्वशुर-ऊङ् उकारस्य अकारस्य च लोपः। श्वशुरस्य भार्यायाः ॥

४५—(याः) स्त्रियः (अकृन्तन्) कृती वेष्टने, छेदने च। वेष्टितवत्यः (अवयन्) वेञ् तन्तुसन्ताने। ओतवत्यः (याः) (च) (तत्निरे) तन्तून् विस्तारितवत्यः (याः) (देवीः) देव्यः। दिव्यगुणाः स्त्रियः (अन्तान्) वस्त्रान्तान् (अभितः) सर्वतः (अददन्त) दद दाने। दत्तवत्यः (ताः) (त्वा) त्वां वधूम् (जरसे) स्तुतिलाभाय (सं व्ययन्तु) व्येञ् स्तुतौ, वरणे च। आच्छाद-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझे (जरसे) बड़ाई के लिये (सं व्ययन्तु) वस्त्र पहिनावें, (आयुष्मती) बड़ी आयु वाली तू (इदं वासः) इस वस्त्र को (परि धत्स्व) धारण कर ॥४५॥

भावार्थ—बड़ी बड़ी गुणवती स्त्रियां आदर करके सुन्दर सुन्दर वस्त्र वधू को देकर पहिनावें और आशीर्वाद देवें कि वह प्रसन्न रहकर बड़ा यश प्राप्त करे॥ ४५ ॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे॥४६

जीवम् । रुदन्ति । वि । नयन्ति । अध्वरम् । दीर्घाम् । अनु । प्र-सितिम् । दीध्युः । नरः ॥ वामम् । पितृ-भ्यः । ये । इदम् । सम्-ईरिरे । मयः । पति-भ्यः । जनये । परि-स्वजे॥४६

भाषार्थ—(नरः) नर [नेता लोग] (जीवम्) [संसार के] जीवन के लिये [प्रेम से] (रुदन्ति) आंसू बहाते हैं, (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार को (वि) विविध प्रकार (नयन्ति) ले चलते हैं, और (दीर्घाम्) लम्बी (प्रसितिम् अनु) प्रबन्ध क्रिया के साथ (दीध्युः) प्रकाशमान होते हैं। (ये) जिन [पुरुषार्थियों] ने (पितृभ्यः) पिता आदि मान्य लोगों के लिये (इदम्) यह (वामम्) श्रेष्ठ पदार्थ (समीरिरे) पहुंचाया है, (पतिभ्यः) उन रक्षक पुरुषों के लिये [पति से] (जनये परिष्वजे) पत्नी का मिलना (मयः) सुखदायक है ॥ ४६ ॥

यन्तु (आयुष्मती) पूर्णजीवनवती त्वम् (इदम्) (परि धत्स्व) परिधारय (वासः) वस्त्रम् ॥

४६—(जीवम्) संसारस्य जीवनार्थम् (रुदन्ति) अश्रून् विमोचयन्ति (वि) विविधम् (नयन्ति) प्रापयन्ति। गमयन्ति (अध्वरम्) हिंसारहितं व्यवहारम् (दीर्घाम्) (अनु) अनुसृत्य (प्रसितिम्) प्रबन्धक्रियाम् (दीध्युः) दीधीङ् दीप्तौ। प्रकाशन्ते (नरः) नयतेर्डिच्च। उ० २। १००। णीञ् प्रापणे-ऋ, डित्। नेतारः पुरुषाः (वामम्) श्रेष्ठं पदार्थम् (पितृभ्यः) पितृतुल्यमाननीयेभ्यः (ये) पुरुषाः (इदम्) (समीरिरे) प्रेरितवन्तः (मयः) सुखप्रदं कर्म (पतिभ्यः) तेभ्यः पालकेभ्यः (जनये) भार्यायै (परिष्वजे) क्विबन्तः प्रयोगः। संगमाय। संगन्तुम् ॥

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—करुणाशील, शूरवीर पुरुष गृहाश्रम में हिंसा त्यागकर दृढ़ प्रबन्ध करके यश पाते हैं। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ सिद्धान्त को विद्वानों में फैलाते हैं, वे विद्वान् गृहाश्रमी स्त्री पुरुषों से विद्यावृद्धि में सुख पाते हैं॥ ४६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ४०। १०, और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में वधू को पितृ गृह छोड़ते समय आंख में आंसू भर लाने पर वर के बोलने में लिखा है॥

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ४७

स्योनम्। ध्रुवम्। प्र-जायै। धारयामि। ते। अश्मानम्। देव्याः। पृथिव्याः। उप-स्थे॥ तम्। आ। तिष्ठ। अनु-माद्या। सु-वर्चाः। दीर्घम्। ते। आयुः। सविता। कृणोतु॥ ४७॥

भाषार्थ—(स्योनम्) सुखदायक, (ध्रुवम्) दृढ़ (अश्मानम्) पत्थर को (देव्याः) दिव्य गुण वाली (पृथिव्याः) पृथिवी की (उपस्थे) गोद में (प्रजायै) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के निमित्त (ते) तेरे लिये (धारयामि) मैं [पति] रखता हूं। (अनुमाद्या) निरन्तर हर्ष मनाती हुयी और (सुवर्चाः) बड़ी प्रताप वाली तू (तम्) उस [पत्थर] पर (आ तिष्ठ) खड़ी हो, (सविता) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (ते) तेरी (आयुः) आयु को (दीर्घम्) लम्बी (कृणोतु) करे॥ ४७॥

भावार्थ—जिस प्रकार पृथिवी पर पत्थर पहाड़ दृढ़ होकर रहते हैं, इसी प्रकार वधूवर दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ गृहाश्रम को सिद्ध करके आनन्द पावें॥४७॥

४७—(स्योनम्) सुखदायकम् (ध्रुवम्) दृढम् (प्रजायै) सन्तानसेवकादिनिमित्ताय (धारयामि) स्थापयामि (ते) तुभ्यम् (अश्मानम्) शिलाखण्डम् (देव्याः) दिव्यगुणवत्याः (पृथिव्याः) (उपस्थे) अङ्के (तम्) अश्मानम् (आ तिष्ठ) आरोह (अनुमाद्या) निरन्तरहर्षयुक्ता (सुवर्चाः) महातेजस्विनी (दीर्घम्) चिरम् (ते) तव (आयुः) जीवनम् (सविता) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (कृणोतु] करोतु॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र से वधू को वर शिला पर खड़ा करावे। महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि विवाह प्रकरण में वधू के लिये शिला पर चढ़ाना अन्य मन्त्र से लिखा है॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्। तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥

येन। अग्निः। अस्याः। भूम्याः। हस्तम्। जग्राह। दक्षिणम्॥ तेन। गृह्णामि। ते। हस्तम्। मा। व्यथिष्ठाः। मया। सह। प्र-जया। च। धनेन। च ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(येन) जिस [सामर्थ्य] से (अग्निः) तेजस्वी पुरुष ने (अस्याः भूम्याः) इस भूमि [प्रत्यक्ष भूमि के समान धैर्यवती अपनी पत्नी] का (दक्षिणम्) बड़े बल वाले वा गति वाले [अथवा दाहिने] (हस्तम्) हाथ को (जग्राह) पकड़ा है। (तेन) उसी [सामर्थ्य] से (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णामि) मैं [पति] पकड़ता हूं, (मया सह) मेरे साथ रहकर (प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] के साथ (च च) और (धनेन) धन के साथ (मा व्यथिष्ठाः) व्यथा को मत प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार पूर्वज लोग पाणिग्रहण करके उपकार करते आये हैं, इसी प्रकार वधूवर पाणिग्रहण करके प्रीति के साथ परस्पर हित करते हुये सन्तान आदि का पालन और धन की वृद्धि करें ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविताहस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु। अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥

४८—(येन) सामर्थ्येन (अग्निः) तेजस्वी पुरुषः (अस्याः) प्रत्यक्षायाः (भूम्याः) भूमिसमानधैर्यवत्याः स्वपत्न्याः (हस्तम्) करम् (जग्राह) गृहीतवान् (दक्षिणम्) दुदक्षिभ्यामिनन्। उ० २। ५०। दक्ष गतिवृद्धयोः—इनन्। बलवन्तम्। गतिमन्तम्। दक्षिणभागस्थम् (तेन) सामर्थ्येन (गृह्णामि) (ते) तव (हस्तम्) (मा व्यथिष्ठाः) व्यथां मा प्राप्नुहि (मया) (सह) (प्रजया) (च) (धनेन) च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवः । ते । सविता । हस्तम् । गृह्णातु । सोमः । राजा । सु-प्रजसम् । कृणोतु ॥ अग्निः । सु-भगाम् । जात-वेदाः । पत्ये । पत्नीम् । जरत्-अष्टिम् । कृणोतु ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(देवः) व्यवहार में चतुर, (सविता) सर्वप्रेरक [परमेश्वर] (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णातु) पकड़े [सहाय करे], (राजा) ऐश्वर्यवान् (सोमः) सर्वोत्पादक [परमात्मा] (सुप्रजसम्) सुन्दर सन्तान वाली (कृणोतु) करे । (जातवेदाः) धनों का प्राप्त करानेवाला (अग्निः) सर्वव्यापक [जगदीश्वर] (पत्ये) पति के लिये (पत्नीम्) पत्नी को (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली और (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाली वा भोजन वाली (कृणोतु) करे ॥ ४८ ॥

भावार्थ—वधू वर सदा परमेश्वर की उपासना करके परस्पर सहाय करने, सन्तान को सुशिक्षित बलवान् बनाने, और धनों के सङ्ग्रह करने में तत्पर रहकर संसार में कीर्तिमान् होवें ॥ ४८ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ५०॥(५)

गृह्णामि । ते । सौभग-त्वाय । हस्तम् । मया । पत्या । जरत्-अष्टिः । यथा । असः ॥ भगः । अर्यमा । सविता । पुरम्-धिः । मह्यम् । त्वा । अदुः । गार्ह-पत्याय । देवाः ॥ ५०॥(५)

४८—(देवः) व्यवहारकुशलः (ते) तव (सविता) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (हस्तम्) (गृह्णातु) (सोमः) सर्वोत्पादकः (राजा) ऐश्वर्यवान् (सुप्रजसम्) सुसन्तानयुक्ताम् (कृणोतु) करोतु (अग्निः) सर्वव्यापको जगदीश्वरः (सुभगाम्) बह्वैश्वर्यवतीम् (जातवेदाः) जातानि प्राप्तानि वेदांसि धनानि यस्मात् सः (पत्ये) स्वामिने (पत्नीम्) (जरदष्टिम्) अ० २ । २८ । ५ । जरतेः स्तुतिकर्मणः [निरु० १० । ८]—अतृन् + अशू व्याप्तौ, अश भोजने वा—क्तिन् । जरता स्तुत्या सह अष्टिः कार्यव्याप्तिर्भोजनं वा यस्यास्तथाभूताम् (कृणोतु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे वधू !] (सौभगत्वाय) सौभाग्य [अर्थात् गृहाश्रम में सुख] के लिये (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णामि) मैं [पति] पकड़ता हूं, (यथा) जिससे (मया पत्या) मुझ पति के साथ (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाली वा भोजन वाली (असः) तू रह । (भगः) सकल ऐश्वर्य वाले, (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाले, (सविता) सब का प्रेरणा करने वाले, (पुरन्धिः) सब जगत् का धारण करने वाले [परमेश्वर] और (देवाः) सब विद्वानों ने (मह्यम्) मुझको (त्वा) तुझे (गार्हपत्याय) गृहकार्य के लिये (अदुः) दिया है ॥ ५० ॥

भावार्थ—वधूवर परमेश्वर और विद्वानों को साक्षी करके परस्पर हाथ पकड़ कर दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि हम दोनों निष्कपट परस्पर सहायक होकर परमेश्वर और विद्वानों की मर्यादा पर चलकर गृहाश्रम का कर्तव्य सिद्ध करेंगे ॥ ५० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३६, और महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका विवाह विषय पृष्ठ २०८ में व्याख्यात है ॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

भगः । ते । हस्तम् । अग्रहीत् । सविता । हस्तम् । अग्रहीत् ॥
पत्नी । त्वम् । असि । धर्मणा । अहम् । गृह-पतिः । तव ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—(भगः) ऐश्वर्यवान् [परमात्मा] ने (ते) तेरा (हस्तम्)

५०—(गृहणामि) (ते) तव (सौभगत्वाय) सुभगत्वाय । गृहाश्रमे सुखप्राप्तये (हस्तम्) पाणिम् (मया) (पत्या) स्वामिना सह (जरदष्टिः) म० ४६ । स्तुत्या सह प्रवृत्तियुक्ता भोजनयुक्ता वा (यथा) येन प्रकारेण (असः) त्वं भवेः (भगः) सकलैश्वर्यसम्पन्नः (अर्यमा) श्रेष्ठानां मानकर्ता (सविता) सर्वप्रेरकः (पुरन्धिः) सर्वजगद्धारकः परमेश्वरः (मह्यम्) मदर्थम् (त्वा) त्वां वधूम् (अदुः) दत्तवन्तः (गार्हपत्याय) गृहकार्यसिद्धये (देवाः) विद्वांसः ॥

५१—(भगः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (ते) तव (हस्तम्) (अग्रहीत्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा है [सहाय किया है], (सविता) सर्वोत्पादक जगदीश्वर ने (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा है। (धर्मणा) धर्म से, (त्वम्) तू (पत्नी) [मेरी] पत्नी [पालन करने वाली] (असि) है, (अहम्) मैं (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति [घर का पालन करने वाला हूं] ॥ ५१ ॥

भावार्थ—पति पत्नी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि परमेश्वर के अनुग्रह से हम दोनों मिले हैं, हम दोनों मिलकर गृहाश्रम में धर्म मार्ग पर चलेंगे और परस्पर सहाय करेंगे ॥ ५१ ॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥

मम । इयम् । अस्तु । पोष्या । मह्यम् । त्वा । अदात् । बृहस्पतिः ॥ मया । पत्या । प्रजा-वति । सम् । जीव । शरदः । शतम् ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—(इयम्) यह [पत्नी] (मम) मेरे (पोष्या) पोषणयोग्य (अस्तु) होवे, (मह्यम्) मुझ को (त्वा) तुझे (बृहस्पतिः) बड़े लोकों के स्वामी [परमात्मा] ने (अदात्) दिया है। (प्रजावति) हे श्रेष्ठ प्रजा वाली ! तू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (सम्) मिलकर (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (जीव) जीती रहे ॥ ५२ ॥

भावार्थ—पति को योग्य है कि वस्त्र, अलंकार आदि पदार्थों से पत्नी का सन्मान करता रहे, जिससे दम्पती प्रसन्न रहकर सन्तान आदि का पोषण पालन करते हुये पूर्ण आयु भोगें ॥ ५२ ॥

गृहीतवान् (सविता) सर्वोत्पादको जगदीश्वरः (हस्तम्) (अग्रहीत्) (पत्नी) पालयित्री (त्वम्) (असि) (धर्मणा) शास्त्रविहितकर्मणा (अहम्) (गृहपतिः) गृहस्वामी (तव) ॥

५२—(मम) (इयम्) पत्नी (अस्तु) (पोष्या) पोषणीया (मह्यम्) पत्ये (त्वा) त्वां पत्नीम् (अदात्) दत्तवान् (बृहस्पतिः) बृहतां लोकानां पालकः परमात्मा (मया) (पत्या) भर्त्रा (प्रजावति) हे सन्तानसेवकादियुक्ते (सम्) मिलित्वा (जीव) प्राणान् धारय (शरदः) वर्षाणि (शतम्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥५३॥

त्वष्टा । वासः । वि । अदधात् । शुभे । कम् । बृहस्पतेः । प्र-शिषा । कवीनाम् ॥ तेन । इमाम् । नारीम् । सविता । भगः । च । सूर्याम्-इव । परि । धत्ताम् । प्र-जया ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी [आचार्य] (बृहस्पतेः) बड़ी वेद-वाणियों की रक्षिका [बृहस्पति पदवी वाली स्त्री] के (शुभे) शुभ [आनन्द] के लिये (कवीनाम्) बुद्धिमानों की (प्रशिषा) अनुमति से (कम्) आनन्द के साथ (वासः) वस्त्र [वेष] (वि) विशेष करके (अदधात्) दिया है। (तेन) इस कारण से (सूर्याम् इव) सूर्य की चमक के समान [शोभायमान] (इमाम् नारीम्) इस नारी [नर की पत्नी] को (सविता) प्रेरक विद्वानों का समूह (च) और (भगः) ऐश्वर्यवान् पति, दोनों (प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] के साथ (परि) सब ओर से (धत्ताम्) धारण करें ॥ ५३ ॥

भावार्थ—जिस विदुषी स्त्री ने विद्या प्राप्त करके विद्वानों के समाज में बृहस्पति, स्नातक आदि पदवी लेकर विद्यासूचक वस्त्र अर्थात् वेष प्राप्त किया हो, विद्वान् लोग और पति उसकी सदा प्रतिष्ठा करें जिससे वह उत्तम प्रजा वाली होवे ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

५३—(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी आचार्यः (वासः) वस्त्रम् । वेषम् (वि) विशेषेण (अदधात्) दत्तवान् (शुभे) शुभाय । सुखाय (कम्) (बृहस्पतेः) बृहतीनां वेदवाणीनां रक्षिकायाः । बृहस्पतिपदवीयुक्तायाः स्त्रियाः (प्रशिषा) अनुमत्या (कवीनाम्) मेधाविनाम् (तेन) कारणेन (इमाम्) प्रसिद्धाम् (नारीम्) नरपत्नीम् (सविता) प्रेरको विद्वत्समूहः (भगः) ऐश्वर्यवान् पतिः (च) (सूर्याम् इव) सूर्यदीप्तिमिव शोभायमानाम् (परि) सर्वतः (धत्ताम्) धारयताम् (प्रजया) सन्तानसेवकादिना सह ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्राग्नी इति । द्यावापृथिवी इति । मातरिश्वा । मित्रावरुणा । भगः । अश्विना । उभा ॥ बृहस्पतिः । मरुतः । ब्रह्म । सोमः । इमाम् । नारीम् । प्र-जया । वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—(इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि, (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि, (मित्रावरुणा) प्राण और अपान, (उभा) दोनों (अश्विना) दिन और रात्रि, (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला [सूत्रात्मा वायु,], (बृहस्पतिः) बड़े लोकों का रक्षक [आकाश], (सोमः) चन्द्रमा, (भगः) सेवनीय यश, (ब्रह्म) अन्न, और (मरुतः) विद्वान् लोग (इमाम् नारीम्) इस नारी को (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] से (वर्धयन्तु) बढ़ावें । ५४ ।

भावार्थ—विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष को योग्य है कि संसार के सब पदार्थों को उपयोगी बनाकर सन्तान आदि को वृद्धि युक्त करें ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ॥
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥

बृहस्पतिः । प्रथमः । सूर्यायाः । शीर्षे । केशान् । अकल्पयत् ॥
तेन । इमाम् । अश्विना । नारीम् । पत्ये । सम् । शोभयामसि ५५

भाषार्थ—(प्रथमः) पहिले से ही वर्तमान (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों के स्वामी [परमेश्वर] ने (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या के (शीर्षे) मस्तक पर (केशान्) केशों को (अक-

५४—(इन्द्राग्नी) विद्युत्पावकौ (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमिलोकौ (मातरिश्वा) आकाशे गमनशीलः सूत्रात्मा वायुः (मित्रावरुणा) प्राणापानौ (भगः) सेवनीयं यशः (अश्विना) अहोरात्रौ (उभा) द्वौ (बृहस्पतिः) बृहतां लोकानां पालक आकाशः (मरुतः) विद्वांसः (ब्रह्म) अन्नम् (सोमः) चन्द्रः (इमाम्) विदुषीम् (नारीम्) नरपत्नीम् (प्रजया) सन्तानसेवकादिना (वर्धयन्तु) उन्नयन्तु ॥

५५—(बृहस्पतिः) महतां लोकानां पालकः परमेश्वरः (प्रथमः) अग्रे वर्तमानः (सूर्यायाः) प्रेरिकायाः सूर्यवत्तेजस्विन्याः कन्यायाः (शीर्षे) मस्तके

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल्पयत्) बनाया है। (तेन) इस [कारण] से (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुषों के समाज !] (इमाम् नारीम्) इस नारी को (पत्ये) पति के लिये (सम्) ठीक ठीक (शोभयामसि) हम शोभायमान करते हैं ॥ ५५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने शिर के केशों और वैसे ही शरीर के अंगों को अपने अपने प्रयोजन के लिये सुडौल बनाया है। गुरुजनों को योग्य है कि वधू वर को संसार के हित के लिये विद्या सुशीलता आदि से सुशिक्षित करें कि वे अपने शरीर के अंगों को सुडौल और हृष्ट पुष्ट रक्खें ॥ ५५ ॥

इदं तद्रूपं यदवस्तु योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥

इदम् । तत् । रूपम् । यत् । अवस्त । योषा । जायाम् । जिज्ञासे । मनसा । चरन्तीम् ॥ ताम् । अनु । अर्तिष्ये । सखि-भिः । नव-ग्वैः । कः । इमान् । विद्वान् । वि । चचर्त । पाशान् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—(इदम्) यह (तत्) वह (रूपम्) रूप [सुन्दरता व स्वभाव] है, (यत्) जिसको (योषा) सेवनीय (वधू) ने (अवस्त) धारण किया है, (मनसा) विज्ञान के साथ (चरन्तीम्) चलती हुई (जायाम्) पत्नी को (जिज्ञासे) मैं जानना चाहता हूं। (नवग्वैः) स्तुति योग्य चरित्र वाले अथवा नवीन नवीन विद्या को प्राप्त करने और कराने हारे (सखिभिः) मित्रों

(केशान्) (अकल्पयत्) रचितवान् (तेन) कारणेन (इमाम्) विदुषीम् (अश्विनौ) हे प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषसमूहौ (नारीम्) नरपत्नीम् (पत्ये) स्वामिने (सम्) सम्यक् (शोभयामसि) शोभयामः। भूषयामः ॥

५६—(इदम्) इदानीं वर्तमानम् (तत्) दृश्यमानम् (रूपम्) सौन्दर्यम्। स्वभावः (यत्) (अवस्त) आच्छादितवती। अधारयत् (योषा) वृतॄवदिवचि०। उ० ३। ६२। यु मिश्रणामिश्रणयोः—सप्रत्ययः। यद्वा युष सेवने—अच्, टाप्। मिश्रणयोग्या। सेवनीया पत्नी (जायाम्) पुत्रोत्पादिकां पत्नीम् (जिज्ञासे) ज्ञातुमिच्छामि (मनसा) मननेन। विज्ञानेन सह (चरन्तीम्) चलन्तीम् (ताम्) पत्नीम् (अनु) अनुसृत्य (अर्तिष्ये) ऋत गतौ। गमिष्यामि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सहित (ताम् अनु) उस [पत्नी] के साथ साथ (अतिष्ये) मैं चलूंगा, (विद्वान्) विद्वान् (कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (इमान् पाशान्) इन [अविद्या के] फंदों को (वि चचर्त) खोल दिया है ॥ ५६ ॥

भावार्थ—विद्या सुशीलता आदि गुणों से सुभूषित पतिपत्नी सुयोग्य इष्ट मित्रों सहित शुभ गुणों का आदर करके परस्पर हित करें और परमेश्वर को धन्यवाद दें कि जिसके अनुग्रह से ऐसा शुभ अवसर मिला है ॥ ५६ ॥

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेदित् पश्यन् मनसः कुलायम् । न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥

अहम् । वि । स्यामि । मयि । रूपम् । अस्याः । वेदत् । इत् । पश्यन् । मनसः । कुलायम् ॥ न । स्तेयम् । अद्मि । मनसा । उत् । अमुच्ये । स्वयम् । श्रथानः । वरुणस्य । पाशान् ॥५७॥

भाषार्थ—(अस्याः) इस [पत्नी] के (रूपम्) रूप [स्वभाव वा सौन्दर्य] को (मनसः) अपने मन का (कुलायम्) आधार (वेदत्) जानता हुआ और (पश्यन्) देखता हुआ (इत्) ही (अहम्) मैं [वर] (मयि) अपने में (वि ष्यामि) निश्चय करके धारण करता हूं । (स्तेयम्) चोरी के पदार्थ को (न) नहीं (अद्मि) खाता हूं, (मनसा) विज्ञान के साथ (वरु-

(सखिभिः) मित्रैः (नवग्वैः) णु स्तुतौ—अप् + गम्लृ गतौ-ड्वप्रत्ययः । नवग्वाः=नवगतयो नवनीतगतयो वा—निरु० ११ । १६ । स्तोतव्यचरित्रैः । नवशिक्षाविद्याप्राप्तैः प्रापयितृभिश्च (कः) सर्वकर्ता प्रजापतिः (इमान्) विद्यमानान् (विचचर्त) चृती हिंसाग्रन्थनयोः—लिट् । विमोचितवान् (पाशान्) अविद्याबन्धान् ॥

५७—(अहम्) वरः (वि ष्यामि) व्यवसायेन निश्चयेन धारयामि (मयि) आत्मनि (रूपम्) स्वभावम् । सौन्दर्यम् (अस्याः) पत्न्याः (वेदत्) विदन् । जानन् (इत्) एव (पश्यन्) अवलोकयन् (मनसः) अन्तःकरणस्य (कुलायम्) आधारम् (न) निषेधे (स्तेयम्) स्तेन-यत्, नलोपः । चौर्यपदार्थम् (अद्मि) भक्षयामि (मनसा) विज्ञानेन (उत्) उत्कर्षेण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णस्य) रुकावट [अर्थात् विघ्न] के (पाशान्) फन्दों को (स्वयम्) अपने आप [अर्थात् पुरुषार्थ से] (अथनानः) ढीला करता हुआ (उत् अमुच्ये) मैं छुट गया हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थ—विद्वान् पति पत्नी परस्पर उत्तम गुण स्वभाव को हृदय में धारण करके विचार पूर्वक विघ्नों को हटाकर निष्कपट होकर उन्नति करें ॥५७॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥

प्र । त्वा । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । येन । त्वा । अबध्नात् । सविता । सु-शेवाः ॥ उरुम् । लोकम् । सु-गम् । अत्र । पन्थाम् । कृणोमि । तुभ्यम् । सह-पत्न्यै । वधु ॥५८॥

भाषार्थ—[हे वधू!] (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रुकावट [विघ्न] के (पाशात्) बन्धन से (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं, (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवा योग्य (सविता) जन्म दाता पिता ने (अबध्नात्) बांधा है। (वधु) हे वधू! (सहपत्न्यै) पति के साथ वर्तमान (तुभ्यम्) तेरे लिये (अत्र) यहां [गृहाश्रम में] (उरुम्) चौड़ा (लोकम्) घर और (सुगम्) सुगम (पन्थाम्) मार्ग (कृणोमि) मैं [पति] बनाता हूं ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जिस कन्या को पिता ने योग्य पति के मिलने तक रोका था, वह कन्या योग्य पति के साथ सुखपूर्वक सुप्रबन्ध करके गृहाश्रम का कर्तव्य करे और उसी प्रकार पति भी पुरुषार्थ करके पत्नी के साथ प्रीति से रहे ॥५८॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऊपर मन्त्र १६ में आ चुका है ॥ ५८ ॥

(अमुच्ये) मुक्तोऽस्मि (स्वयम्) आत्मना। पुरुषार्थेन (अथनानः) शिथिलीकुर्वन् (वरुणस्य) आवरणस्य। विघ्नस्य (पाशान्) बन्धान् ॥

५८—पूर्वार्द्धो व्याख्यातः—म० १६ (उरुम्) विस्तृतम् (लोकम्) गृहम् (सुगम्) सुखेन गन्तव्यम् (अत्र) अस्मिन् गृहाश्रमे (पन्थाम्) पन्थानम् (कृणोमि) करोमि (तुभ्यम्) (सहपत्न्यै) पत्या सह वर्तमानायै (वधु) हे पत्नि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात । धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ५९

उत् । यच्छध्वम् । अप । रक्षः । हनाथ । इमाम् । नारीम् । सु-कृते । दधात ॥ धाता । विपः-चित् । पतिम् । अस्यै । विवेद । भगः । राजा । पुरः । एतु । प्र-जानन् ॥५९॥

भाषार्थ—[हे वीरो ! शस्त्रों को] (उत् यच्छध्वम्) उठाओ, (रक्षः) राक्षस को (अप हनाथ) मार हटाओ, (इमां नारीम्) इस नारी [नर की पत्नी] को (सुकृते) सुकृत [पुण्य कर्म] में (दधात्) धारण करो । (विपश्चित्) बुद्धिमान् (धाता) धारण करने वाले [परमेश्वर] ने (अस्यै) इस [वधू] के लिये (पतिम्) पति (विवेद) प्राप्त कराया है, (प्रजानन्) पहिले से जानने वाला (राजा) प्रकाशमान (भगः) ऐश्वर्यवान् [परमात्मा] (पुरः) आगे (एतु) प्राप्त होवे ॥ ५९ ॥

भावार्थ—धर्मात्मा वीर लोग प्रयत्न के साथ विघ्नों से पृथक् करके वधू वर को धर्म में प्रवृत्त रक्खें, और परमात्मा का सदा ध्यान करें कि जिस ने कृपा करके विद्वान् पति पत्नी को मिलाया है, वही उनका सदा सहाय करे ५९

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वधूर्यन्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६०॥

५९—(उत् यच्छध्वम्) शस्त्राणि उन्नयत (रक्षः) राक्षसम् । विघ्नम् (अप हनाथ) लेटि रूपम् । दूरं हत । मारयत (इमाम्) विदुषीम् (नारीम्) नरस्य पत्नीम् (सुकृते) पुण्यकर्मणि (दधात) धारयत (धाता) धारकः परमेश्वरः (विपश्चित्) मेधावी (पतिम्) भर्तारम् (अस्यै) वध्वै (विवेद) प्रापितवान् (भगः) ऐश्वर्यवान् जगदीश्वरः (राजा) दीप्यमानः (पुरः) पुरस्तात् । अग्रे (एतु) गच्छतु (प्रजानन्) अग्रे विदन् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगः । ततक्षु । चतुरः । पादान् । भगः । ततक्षु । चत्वारि । उष्पलानि ॥ त्वष्टा । पिपेश । मध्यतः । अनु । वधूर्न् । सा । नः । अस्तु । सु-मङ्गली ॥ ६० ॥

भाषार्थ—(भगः) भगवान् [ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (चतुरः) चार [धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप] (पादान्) प्राप्ति योग्य पदार्थ (ततक्ष) रचे हैं, (भगः) भगवान् ने (चत्वारि) चार [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम रूप] (उष्पलानि) हिंसा से बचाने वाले कर्म (ततक्ष) बनाये हैं । (त्वष्टा) विश्वकर्मा [परमेश्वर] ने (मध्यतः) बीच में [स्त्री पुरुषों के भीतर] (वधूर्न्) वृद्धिव्यवहारों की (अनु) अनुकूल (पिपेश) व्यवस्था की है, (सा) वह [वधू] (नः) हमारे लिये (सुमङ्गली) सुमङ्गली [बड़ी आनन्द देने वाली] (अस्तु) होवे ॥ ६० ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने वेदों द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और उनके साधन ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का उपदेश कर के संसार के उपकार के लिये स्त्री पुरुषों को ज्ञान और बुद्धि रूप वृद्धि का सामर्थ्य दिया है ॥ ६० ॥

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणुत्वम् ६१

सु-किंशुकम् । वहतुम् । विश्व-रूपम् । हिरण्य-वर्णम् । सु-वृतम् । सु-चक्रम् ॥ आ । रोह । सूर्ये । अमृतस्य । लोकम् । स्योनम् । पति-भ्यः । वहतुम् । कृणु । त्वम् ॥ ६१ ॥

६०—(भगः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (ततक्ष) रचितवान् (चतुरः) चतुःसंख्याकान् धर्मार्थकाममोक्षान् (पादान्) प्राप्तव्यान् पदार्थान् (भगः) (ततक्ष) (चत्वारि) चतुःसंख्याकानि ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमरूपाणि (उष्पलानि) उष दाहे हिंसायां च—क्विप्+पल रक्षणे—अच् । उषो हिंसनाद् रक्षककर्माणि (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वरः (पिपेश) पिश अवयवे व्यवस्थायां च । व्यवस्थापितवान् (मध्यतः) स्त्रीपुरुषयो र्मनसि (अनु) अनुकूलम् (वधूर्न्) वृधिवपिभ्यां-रन् । उ० २ । २७ । वृधु वृद्धौ-रन् । वृद्धिव्यवहारान् (सा) वधूः (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) (सुमङ्गली) अत्यन्तसुखदायिनी ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सूर्ये) हे प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] वधू ! (सुकिंशुकम्) अच्छे चमकने वाले [अग्नि वा बिजुली वाले] वा बहुत प्रशंसनीय चाल वाले, (विश्वरूपम्) नाना रूपों वाले [शुक्ल, नील, पीत, रक्त आदि वर्ण वाले, अथवा ऊंचे नीचे मध्यम स्थान वाले], (हिरण्यवर्णम्) सुवर्ण के लिये चाहने योग्य, (सुवृतम्) अच्छे घूमने वाले [सब ओर मुड़ जाने वाले], (सुचक्रम्) सुन्दर [दृढ़, शीघ्रगामी] पहियों वाले (वहतुम्) रथ पर [गृहाश्रम रूप गाड़ी पर] (त्वम्) तू (आ रोह) चढ़, और (पतिभ्यः) पति कुल वालों के लिये (वहतुम्) [अपने] पहुंचने को (अमृतस्य) अमरपन [पुरुषार्थ] का (स्योनम्) सुखदायक (लोकम्) लोक [संसार वा स्थान] (कृणु) बना ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जैसे चतुर महारथी धन धान्य से परिपूर्ण सुदृढ़ रथ पर अपने साथियों सहित चढ़ कर इच्छानुसार विचर कर कार्य सिद्धि करता है, वैसे ही समझदार स्त्री तथा पुरुष गृहाश्रम में प्रवेश कर के सुप्रबन्ध से अपने कुटुम्बियों सहित सुख भोगें ॥ ६१ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। २०, तथा महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि विवाह प्रकरण में रथ पर वधू को वर के चढ़ा ले जाने में विनियुक्त है, और निरुक्त १२। ८ में व्याख्यात है ॥

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमस्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥

६१—(सुकिंशुकम्) सुकिंशुकम्=सुकाशनम्, किंशुकं क्रंशतेः प्रकाशतिकर्मणः—निरु० १२। ८। यद्वा, कायतेर्डिमिः। उ० ४। १५८। सु+कै शब्दे—डिमि+शुक गतौ—क। अतिशयेन प्रकाशमानमग्निविद्युत्प्रयोगेण। अतिशयेन प्रशंसनीयगतिमन्तम् (वहतुम्) वहनसाधनं रथम् (विश्वरूपम्) शुक्लनीलपीतरक्तादिवर्णयुक्तम्, अथवा, उच्चनीचमध्याकारयुक्तम् (हिरण्यवर्णम्) हिरण्याय सुवर्णाय वरणीयं स्वीकरणीयम् (सुवृतम्) सर्वतो वर्तनशीलम् (सुचक्रम्) दृढशीघ्रगामिचक्रयुक्तम् (आरोह) आतिष्ठ (सूर्ये) हे प्रेरणशीले। सूर्यदीप्तिवत्तेजोयुक्ते (अमृतस्य) अमरणस्य। पुरुषार्थस्य (लोकम्) संसारम्। स्थानम् (स्योनम्) सुखप्रदम् (पतिभ्यः) पतिपक्षेभ्यः (वहतुम्) वहनम्। स्वप्रापणम् (कृणु) कुरु (त्वम्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्रातृ-घ्नीम् । वरुण । अपशु-घ्नीम् । बृहस्पते ॥ इन्द्र । अपति-घ्नीम् । पुत्रिणीम् । आ । अस्मभ्यम् । सवितः । वहु६२

भाषार्थ—(वरुण) हे श्रेष्ठ ! (बृहस्पते) हे वेदवाणी के रक्षक ! (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले ! (सवितः) हे प्रेरणा करने वाले [वर !] (अभ्रातृघ्नीम्) भाइयों को न सताने वाली, (अपशुघ्नीम्) पशुओं को न मारने वाली, (अपति-घ्नीम्) पति को न दुःख देने वाली और (पुत्रिणीम्) श्रेष्ठ पुत्रों की उत्पन्न करने वाली [वधू] को (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (आ वह) ले चल ॥ ६२ ॥

भावार्थ- सब विद्वान् लोग आशीर्वाद देवें कि विद्वान् समर्थ वर विदुषी व्यवहारकुशल वधू को गृहाश्रम की सिद्धि के लिये आदर पूर्वक ग्रहण करे ॥६२॥

इस मन्त्र का मिलान करो—ऋग्वेद १०। ८५। ४४ ॥

मा हिंसिष्टं कुमार्यं १ स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृणोमि वधूपथम् ॥ ६३ ॥

मा । हिंसिष्टम् । कुमार्यम् । स्थूणे इति । देव-कृते । पथि ॥ शालायाः । देव्याः । द्वारम् । स्योनम् । कृणमः । वधू-पथम् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—(स्थूणे) हे दोनों स्थिर स्वभाव वाली [स्त्री पुरुषों की पङ्क्ति !] (कुमार्यम्) कुमारी [कन्या अर्थात् वधू] को (देवकृते) विद्वानों के बनाये (पथि) मार्ग में (मा हिंसिष्टम्) मत कष्ट पाने दो । (देव्याः) व्यवहार

६२—(अभ्रातृघ्नीम्) हन्तेः कः, मूलविभुजादित्वात् । भ्रातृणामहन्त्रीं सुखप्रदाम् (वरुण) हे श्रेष्ठ (अपशुघ्नीम्) पशूनां सुखयित्रीम् (बृहस्पते) बृहत्या वेदवाण्या रक्षक (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् (अपतिघ्नीम्) पत्युर्मोद-यित्रीम् (पुत्रिणीम्) श्रेष्ठपुत्राणां जनयित्रीम् (अस्मभ्यम्) अस्माकं पितृ-पक्षाणां हिताय (सवितः) हे प्रेरक वर (आ वह) आनय ॥

६३—(मा हिंसिष्टम्) दुःखं मा प्रापयतम् (कुमार्यम्) कुमारीम् । वधूम् (स्थूणे) रास्नासास्नास्थूणावीणाः । उ० ३ । १५ । ष्ठा गतिनिवृत्तौ—नप्रत्ययः, टाप, ऊकारस्य ऊत्वं नस्य णत्वं च । हे स्थिरस्वभावे स्त्रीपुरुषपङ्क्ती (देव-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य (शालायाः) शाला के (स्योनम्) सुखदायक (द्वारम्) द्वार को (वधूपथम्) वधू का मार्ग (कृणमः) हम बनाते हैं ॥ ६३ ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करें कि पितृकुल से पृथक् होकर वधू प्रसन्न रहे और जैसे सुन्दर स्वच्छ शाला के सुन्दर स्वच्छ द्वार में होकर जाने आने में सुख होता है, वैसे ही सुप्रबन्ध वाले गृहाश्रम में वधू को सुख मिले ॥ ६३ ॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥ (६)

ब्रह्म । अपरम् । युज्यताम् । ब्रह्म । पूर्वम् । ब्रह्म । अन्ततः । मध्यतः । ब्रह्म । सर्वतः ॥ अनाव्याधाम् । देव-पुराम् । प्र-पद्य । शिवा । स्योना । पति-लोके । वि । राज ॥६४॥ (६)

भाषार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्म [परब्रह्म परमात्मा] (पूर्वम्) पहिले, (ब्रह्म) ब्रह्म (अपरम्) पीछे, (ब्रह्म) ब्रह्म (अन्ततः) अन्त में और (मध्यतः) मध्य में, और (ब्रह्म) ब्रह्म (सर्वतः) सर्वत्र (युज्यताम्) ध्यान किया जावे। [हे वधू!] (अनाव्याधाम्) छेदन रहित [अटूट, दृढ़] (देवपुराम्) देवताओं [विद्वानों] के गढ़ में (प्रपद्य) पहुंचकर (शिवा) कल्याणकारिणी और (स्योना) सुखदायिनी तू (पतिलोके) पतिलोक [पति के समाज] में (वि राज) विराजमान हो ॥ ६४ ॥

भावार्थ—वधू तथा वर को योग्य है कि परमात्मा को सब स्थानों और

कृते) विदुषां रचिते (पथि) मार्गे (शालायाः) (देव्याः) व्यवहारयोग्यायाः (स्योनम्) सुखप्रदम् (कृणमः) कुर्मः (वधूपथम्) वधूगमनमार्गम् ॥

६४—(ब्रह्म) परमेश्वरः (अपरम्) पश्चात् (युज्यताम्) समाधीयताम् (ब्रह्म) (पूर्वम्) अग्रे (ब्रह्म) (अन्ततः) अन्ते (मध्यतः) मध्ये (ब्रह्म) (सर्वतः) सर्वत्र (अनाव्याधाम्) व्यध ताडने—घञ्। छेदनरहिताम्। सुदृढाम् (देवपुराम्) विदुषां दुर्गम् (प्रपद्य) प्राप्य (शिवा) कल्याणकारिणी (स्योना) सुखदायिनी (पतिलोके) पतिसमाजे (वि राज) विराजमाना भव ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कालों में प्रत्यक्ष जानकर वीरता और निर्विघ्नता से गृहाश्रम में अपने कर्तव्यों को प्रसन्न होकर पूरा करें ॥ ६४ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

—०—

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २ ॥

१—७५ ॥ दम्पती देवते ॥ १—४, ७, ८, १०, ११, १५, १६, २१—२३, २७—३०, ५३—५८, ६३—६६, ७२, ७३, अनुष्टुप् ; ५ जगती ; ६ निचृज् जगती ; ९ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिगष्टिः ; १२ निचृदार्षी जगती ; १३, ३५, ४३ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ; १४, १७—१९, ३४, ३८, ४२, ७०; ७४, ७५ त्रिष्टुप् ; २० स्वराडनुष्टुप् ; २४ विराट् त्रिष्टुप्, २५. ३६, ४१, ४९, निचृत् त्रिष्टुप् ; २६ त्रिपदा विराड् गायत्री ; ३१, ३९ स्वराट् त्रिष्टुप् ; ३२, ३७ भुरिक् त्रिष्टुप् ; ३३ भुरिगुपरिष्टाद् बृहती ; ४० स्वराड् जगती ; ४४ निचृत् प्रस्तारपङ्क्तिः ; ४५, ४६, ५१, ६७ भुरिगनुष्टुप् ; ४७ पथ्या बृहती ; ४८ आर्षी पङ्क्ति ; ५० निचृदुपरिष्टाद् बृहती ; ५२ विराट् परोष्णिक् ; ५९, ६०, ६२ पथ्या पङ्क्तिः ; ६१ भुरिक पथ्या पङ्क्तिः ; ६८ पुर उष्णिक्, ६९ त्र्यवसाना षट्पदाऽतिशक्करी ; ७१ निचृत्पथ्या पङ्क्तिश्छन्दः ॥

गृहाश्रमोपदेशः—गृह आश्रम का उपदेश

तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
सं नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

तुभ्यम् । अग्ने । परि । अवहन् । सूर्याम् । वहतुना । सह ॥
सं । नः । पति-भ्यः । जायाम् । दाः । अग्ने । प्र-जया । सह ॥१

भाषार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (अग्ने) पहिले से वर्तमान (तुभ्यम्) तेरे लिये [तेरी आज्ञा पालन के लिये] (सूर्याम्) प्रेरणा करने

१—(तुभ्यम्) तवाज्ञापालनाय (अग्ने) आदौ वर्तमानाय (परि) सर्वतः (अवहन्) प्रापितवन्तो विद्वांसः (सूर्याम्) प्रेरयित्रीम् । सूर्यदीप्ति-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या को (बहतुना सह) दाय [यौतुक, अर्थात् विवाह में दिये हुये पदार्थ] के साथ (परि) सब प्रकार से (अवहन्) वे [विद्वान् लोग] लाये हैं, (सः) सो तू [हे परमेश्वर !] (नः पतिभ्यः) हम पतिकुल वालों के हित के लिये (जायाम्) इस पत्नी को (प्रजया सह) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] के साथ (दाः) दे ॥ १ ॥

भावार्थ—अनादि परमात्मा की उपासना कर के विद्वान् लोग गुणवती कन्या को यौतुक आदि के साथ पति कुल में आनन्द से रहने के लिये आशीर्वाद देवें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३८, और महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में वधू वर के यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करने में उद्धृत है ॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥

पुनः । पत्नीम् । अग्निः । अदात् । आयुषा । सह । वर्चसा ॥
दीर्घ-आयुः । अस्याः । यः । पतिः । जीवाति । शरदः । शतम् २

भाषार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (आयुषा) आयु और (वर्चसा सह) तेज के साथ (पत्नीम्) पत्नी को (पुनः) निश्चय करके (अदात्) दिया है । (अस्याः) इस [पत्नी] का (यः) जो (पतिः) पति है, [वह] (दीर्घायुः) दीर्घ आयु वाला होकर (शतम् शरदः) सौ वर्षों तक (जीवाति) जीता रहे ॥ २ ॥

तेजस्विनीं कन्याम् (बहतुना) विवाहकाले देयपदार्थेन (सह) (सः) स त्वं परमेश्वरः (नः) अस्मभ्यम् (पतिभ्यः) पतिकुलस्थानां हिताय (जायाम्) पत्नीम् (दाः) देहि (अग्ने) अगि गतौ—नि, नलोपः । हे सर्वज्ञ परमात्मन् (प्रजया) सन्तानसेवकादिना (सह) ॥

२—(पुनः) निश्चयेन (पत्नीम्) (अग्निः) सर्वव्यापकः परमेश्वरः (अदात्) दत्तवान् (आयुषा) जीवनेन (सह) (वर्चसा) (दीर्घायुः) चिरंजीवी (अस्याः) पत्न्याः (यः) (पतिः) (जीवाति) जीवतु (शरदः) संवत्सरान् (शतम्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस परमेश्वर के अनुग्रह से आयुष्मती पुण्यवती वधू प्राप्त हुयी है, उस परमात्मा से बुद्धिमान् लोग प्रार्थना करें कि उसका पति भी यश और कीर्ति के साथ पूर्ण आयु भोगे ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३९ ॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

सोमस्य । जाया । प्रथमम् । गन्धर्वः । ते । अपरः । पतिः ।
तृतीयः । अग्निः । ते । पतिः । तुरीयः । ते । मनुष्य-जाः ।३।

१—सामान्य अर्थ ॥

भाषार्थ—[हे वधू !] (सोमस्य) सोम [शान्ति आदि शुभ गुण] की (जाया) उत्पत्ति स्थान (प्रथमम्) पहिले [पहिली अवस्था में] [तू है], (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी का धारण करने वाला गुण] (ते) तेरा (अपरः) दूसरा (पतिः) पति [रक्षक] है । (अग्निः) अग्नि [अर्थात् विद्या और शरीर का तेज] (ते) तेरा (तृतीयः) तीसरा (पतिः) पति [रक्षक] है, और (मनुष्यजाः) मनुष्य [अर्थात् मनन शीलों में उत्पन्न विद्वान् युवा पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति] है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब कन्या ब्रह्मचर्य से पहिली, दूसरी और तीसरी अवस्था में क्रम से माता, पिता और आचार्या से सुशिक्षा पाकर और शरीर से स्वस्थ युवती होकर तेजस्विनी हो, तब अपने सदृश मातृमान् पितृमान् और आचार्यवान् नीरोग ब्रह्मचारी पुरुष से विवाह करे ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का अर्थ श्रीमान् पण्डित काली प्रसाद शर्मा आचार्य की

३—(सोमस्य) शान्त्यादिगुणस्य ऐश्वर्यवतः पुरुषस्य (जाया) जायते यस्यां सा जाया । उत्पत्तिस्थानम् । पत्नी (प्रथमम्) प्रथमवारम् (गन्धर्वः) गोर्वेदवाण्या धारको गुणः पुरुषो वा (ते) तव (अपरः) द्वितीयः (पतिः) रक्षको भर्त्ता (तृतीयः) (अग्निः) विद्याप्राप्तिशरीरपुष्टिजन्यं तेजः । ज्ञानवान् पुरुषः (ते) तव (पतिः) (तुरीयः) चतुर्थः (ते) (मनुष्यजाः) अ० १२ । ४ । ४३ । मनुष्य + जनी प्रादुर्भावे—विट् । मनुष्येषु मननशीलेषूत्पन्नः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति से किया गया है जिन को बहुत धन्यवाद देता हूं ॥ ३ ॥

२– नियोग विषयक अर्थ ॥

भाषार्थ—[हे स्त्री ! तू] (सोमस्य) सोम [अर्थात् ऐश्वर्यवान् विवाहित पुरुष] की (जाया) पत्नी (प्रथमम्) पहिली बार [होती है], (गन्धर्वः) गन्धर्व [अर्थात् वेद वाणी का धारण करने वाला नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (अपरः) दूसरा (पतिः) पति अर्थात् रक्षक [होता है], (अग्निः) अग्नि [अर्थात् ज्ञानी नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (तृतीयः) तीसरा (पतिः) पति [होता है] और (मनुष्यजाः) मनुष्य [मननशीलों में उत्पन्न नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति होता है] ॥ ३ ॥

भावार्थ—स्त्री को योग्य है कि विपत्तिकाल में अर्थात् विवाहित पति के रोगी होने वा मर जाने पर अन्य तीन पतियों तक एक दूसरे के पीछे नियोग करके सन्तान उत्पन्न करे, पहिले विवाहित पति का नाम सोम होता है और अन्य तीन जो नियोग के पति हैं, क्रम से गन्धर्व, अग्नि और मनुष्य कहाते हैं। इसी प्रकार विवाहित स्त्री सोम्या, और नियोग की तीनों स्त्रियां क्रम से गन्धर्वी, आग्नेयी और मानुषी कहाती हैं ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४० । और महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास नियोगविषय और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नियोगविषय में व्याख्यात है। इस मन्त्र का पाठ और शब्दार्थ इस प्रकार है—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

[हे स्त्री !] (सोमः) सोम [अर्थात् शान्ति आदि शुभ गुण, वा ऐश्वर्यवान् पुरुष] (प्रथमः) पहिला (ते) तेरा (पतिः) पति [रक्षक] (विविदे) [विद सत्तायाम्—लडर्थे लिट्] होता है, (उत्तरः) दूसरा (गन्धर्वः) गन्धर्व [अर्थात् वेदवाणी का धारण करने वाला गुण वा पुरुष], (तृतीयः) तीसरा (अग्निः) अग्नि [अर्थात् विद्या और शरीर का तेज वा ज्ञानी पुरुष], और (मनुष्यजाः) मनुष्य [मननशीलों में उत्पन्न हुआ पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति] (विविदे) होता है ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥
सोमः। ददत्। गन्धर्वाय। गन्धर्वः। ददत्। अग्नये ॥ रयिम्। च। पुत्रान्। च। अदात्। अग्निः। मह्यम्। अथो इति। इमाम् ॥४॥

१—सामान्य अर्थ ॥

भाषार्थ—(सोमः) सोम [शान्ति आदि शुभ गुण] (गन्धर्वाय) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले गुण] के लिये [कन्या को] (ददत्) देता है, (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाला गुण] (अग्नये) अग्नि [विद्या और शरीर के तेज] के लिये (ददत्) देता है। (अथो) फिर (अग्निः) अग्नि [विद्या और शरीर का तेज] (इमाम्) इस [स्त्री] को (च) और (रयिम्) धन को, (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (मह्यम्) मुझ [युवा ब्रह्मचारी] को (अदात्) देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब कन्या माता पिता और आचार्या से यथाक्रम सुशिक्षित होकर युवती हो जावे, तब यथाक्रम माता पिता और आचार्य से शिक्षा पाया हुआ युवा ब्रह्मचारी वैसी गुणवती कन्या से विवाह करके धनवान् और पुत्रवान् होवे ॥ ४ ॥

२—नियोगविषयक अर्थ ॥

भाषार्थ—(सोमः) सोम [ऐश्वर्यवान् विवाहित पति] (गन्धर्वाय) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले दूसरे नियुक्त पुरुष] के लिये [स्त्री को] (ददत्) छोड़ता है। (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी का धारण करने वाला दूसरा नियुक्त पुरुष] (अग्नये) अग्नि [ज्ञानी तीसरे नियुक्त पुरुष] के

४—(सोमः) शान्त्यादिगुणः। ऐश्वर्यवान् विवाहितपुरुषः (ददत्) दद दाने त्यागे च। ददाति। त्यजति कन्यां स्त्रियं वेति शेषः (गन्धर्वाय) वेदवाणीधारकाय गुणाय नियुक्तपुरुषाय वा (गन्धर्वः)(ददत्) (अग्नये) विद्याप्राप्तिशरीरपुष्टिजन्यतेजसे। ज्ञानवते तृतीयनियुक्तपुरुषाय (रयिम्) धनम् (च) (पुत्रान्) (च) (अदात्) ददाति। त्यजति (अग्निः) ज्ञानवान् तृतीयनियुक्तपुरुषः (मह्यम्) यूने ब्रह्मचारिणे। चतुर्थनियुक्तपुरुषाय (अथो) पुनः (इमाम्) स्त्रियम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (ददत्) छोड़ता है। (अथो) फिर (अग्निः) अग्नि [ज्ञानी तीसरा नियुक्त पुरुष] (इमाम्) इस [स्त्री] को, (च) और (रयिम्) धन को (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (मह्यम्) मेरे लिये [अर्थात् चौथे नियुक्त पुरुष के लिये] (अदात्) छोड़ता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि सदा एक स्त्रीव्रत रहे चाहे वह विवाहित हो वा नियुक्त हो, और विवाहित स्त्री के मरजाने वा रोगी हो जाने पर आपत् काल में ही एक दूसरे के पीछे अन्य तीन स्त्रियों तक नियोग करके धन और सन्तान प्राप्त करे। इसी प्रकार स्त्री भी एक विवाहित पति के मरजाने वा रोगी हो जाने पर आपत् काल में ही अन्य तीन नियुक्त पतियों के साथ एक दूसरे के पीछे रह कर धन और सन्तान की रक्षा करे ॥ ४ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ८५। ४१ ॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ॥ ५ ॥

आ। वाम्। अगन्। सु-मतिः। वाजिनीवसू इति वाजिनी-वसू। नि। अश्विना। हृत्-सु। कामाः। अरंसत ॥ अभूतम्। गोपा। मिथुना। शुभः। पती इति। प्रियाः। अर्यम्णः। दुर्यान्। अशीमहि ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(वाजिनीवसू) हे बहुत वेग वाली वा अन्न वाली क्रियाओं में निवास करने वाले दोनों [स्त्री पुरुषो !] (वाम्) तुम दोनों को (सुमतिः) सुमति (आ) सब ओर से (अगन्) प्राप्त होवे, (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों (हृत्सु) [तुम्हारे] हृदयों में (कामाः) शुभ कामनायें (नि) निर-

५—(आ) समन्तात् (वाम्) युवाभ्याम् (अगन्) प्राप्नुयात् (सुमतिः) सुबुद्धिः (वाजिनीवसू) वेगवतीषु अन्नवतीषु वा क्रियासु निवसतस्तौ (नि) निरन्तरम् (अश्विना) हे प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषौ (हृत्सु) युवयोर्हृदयेषु (कामाः) शुभाभिलाषाः (अरंसत) रमन्ताम्। तिष्ठन्तु (अभूतम्) भवतम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्तर (अरंस्त) रमण करें [रहें]। (शुभः पती) हे शुभ क्रिया के रक्षको ! (मिथुना) तुम दोनों (गोपा) रक्षक (अभूतम्) होओ, (प्रियाः) हम लोग प्रिय होकर (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले पुरुष के (दुर्यान्) घरों को (अशीमहि) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि फुरती से सुमति पूर्वक अन्न आदि सामग्री प्राप्त करके शुभ कामनायें सिद्ध करते हुये सब के रक्षक बनें, जिस से विद्वान् लोग प्रीति करके उनका आश्रय लेवें ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ४० । १२॥

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥

सा । मन्दसाना । मनसा । शिवेन । रयिम् । धेहि । सर्व-वीरम् । वचस्यम् ॥ सु-गम् । तीर्थम् । सु-प्रपानम् । शुभः । पती इति । स्थाणुम् । पथि-स्थाम् । अप । दुः-मतिम् । हतम् ।६।

भाषार्थ—[हे वधू !] (सा) सो तू (मन्दसाना) आनन्द करती हुयी (शिवेन) कल्याणयुक्त (मनसा) मन के साथ (सर्ववीरम्) सब वीरों वाले (वचस्यम्) स्तुति योग्य (रयिम्) धन को (धेहि) धारण कर। (शुभः पती) हे शुभ क्रिया के रक्षक तुम दोनों ! (सुगम्) सुख से जाने योग्य, (सुप्र-

(गोपा) गोपायितारौ । रक्षकौ (मिथुना) उभौ (शभः) शुभक्रियायाः (पती) पालकौ (प्रियाः) हिता वयम् (अर्यम्णः) श्रेष्ठानां मानयितुः पुरुषस्य (दुर्यान्) अघ्न्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । दुर्वी हिंसायाम्-यक्, वकारलोपे दीर्घाभावश्च । हिंसन्ति दुःखम् । गृहान्—निघ० ३ । ४ (अशीमहि) प्राप्नुयाम ॥

६—(सा) सा त्वम् (मन्दसाना) ऋन्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित् । उ० २ । ८७ । मदि आमोदस्तुतिदीप्त्यादिषु—असानच् कित् । आमोदयित्री (मनसा) चित्तेन (शिवेन) कल्याणयुक्तेन (रयिम्) धनम् (धेहि) धारय (सर्ववीरम्) सर्ववीरोपेतम् (वचस्यम्) प्रशंसनीयम् (सुगम्) सुखेन गन्त-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणम्) सुन्दर पानी वाले (तीर्थम्) तीर्थ [उतरने के घाट] को [धारण करो], और (पथिष्ठाम्) मार्ग में खड़े हुये (स्थाणुम्) ठूठ [झाड़ झंकट आदि समान] (दुर्मतिम्) दुर्मति को (अप हतम्) नाश करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जहां पर गुणवती स्त्री प्रसन्न होकर धन का प्रबन्ध करके सन्तानों को शूर, वीर, यशस्वी बनाती है, वहां पर दोनों पति पत्नी विघ्नों को हटाकर गृहाश्रम को ऐसा सुखदायी करते हैं, जैसे विद्वान् शिल्पी मार्ग के कण्टक आदि मेंटकर नदी का सुगम तीर्थ अर्थात् घाट बनाता है जिस पर होकर सब सुख से उतरते और जल से स्नान पान करके आनन्द पाते हैं ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ४० । १३ ॥

या ओषधयो या नद्यो याानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥

याः । ओषधयः । याः । नद्यः । यानि । क्षेत्राणि । या । वना ॥
ताः । त्वा । वधु । प्रजा-वतीम् । पत्ये । रक्षन्तु । रक्षसः ॥७॥

भाषार्थ—(याः) जो (ओषधयः) ओषधियां [अन्न, सोमलता आदि], (याः) जो (नद्यः) नदियां, (यानि) जो (क्षेत्राणि) खेत और (या) जो (वना) बन [वृक्ष वाटिका आदि] हैं । (ताः) वे सब [ओषधि आदि], (वधु) हे वधू ! (त्वा प्रजावतीम्) तुझ श्रेष्ठ सन्तान वाली को (पत्ये) पति के लिये (रक्षसः) राक्षस [विघ्न] से (रक्षन्तु) बचावें ॥ ७ ॥

त्यम् (तीर्थम्) पातृतुदिवचि० । उ० २ । ७ । तॄ प्लवनतरणयोः—थक् । तरणस्थानम् (सुप्रपाणम्) स्वच्छप्रकृष्टपानयुक्तम् (शुभः पती) हे शुभक्रियायाः पालको (स्थाणुम्) शाखाशून्यवृक्षादिकम् (पथिष्ठाम्) मार्गस्थम् (दुर्मतिम्) कुबुद्धिम् (अप हतम्) दूरे नाशयतम् ॥

७—(याः) (ओषधयः) अन्नसोमलतादयः (याः) (नद्यः) (यानि) (क्षेत्राणि) अन्नोत्पत्तिस्थानानि (या) यानि (वना) वनानि । वनोपवनवाटिकादीनि (ताः) पूर्वोक्ता ओषध्यादयः (त्वा) (वधु) हे पत्नि (प्रजावतीम्) उत्तमसन्तानयुक्ताम् (पत्ये) स्वामिहिताय (रक्षन्तु) पालयन्तु (रक्षसः) रक्षणीयं यस्मात् तस्माद् राक्षसात् विघ्नात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—गृहाश्रमी स्त्री पुरुषों को योग्य है कि अन्न, ओषधि, नदियों, वन उपवन आदि आवश्यक पदार्थों का यथावत् उपयोग करके कष्टों से बचकर सुखी रहें ॥ ७ ॥

इमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

आ । इमम् । पन्थाम् । अरुक्षाम । सु-गम् । स्वस्ति-वाहनम् ॥
यस्मिन् । वीरः । न । रिष्यति । अन्येषाम् । विन्दते । वसु ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(इमम्) इस [वैदिक] (सुगम्) सुख से चलने योग्य, (स्वस्तिवाहनम्) आनन्द पहुंचाने वाले (पन्थाम्) मार्ग पर (आ अरुक्षाम) हम चढ़ें । (यस्मिन्) जिस [मार्ग] में (वीरः) वीर पुरुष (न रिष्यति) कष्ट नहीं पाता है, और (अन्येषाम्) दूसरे [अधर्मियों] का (वसु) धन [दण्ड द्वारा] (विन्दते) लेता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—गृहस्थियों को चाहिये कि धार्मिक वैदिक मार्ग पर चलकर वीरपन से अधर्मियों को दण्ड दें और धन वृद्धि करें ॥ ८ ॥

हृदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दंपती वामभ्श्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरश्च दैवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुद्यमानम् ॥ ९ ॥

हृदम् । सु । मे । नरः । शृणुत । यया । आ-शिषा । दंपती इति दम्-पती । वामम् । अश्नुतः ॥ ये । गन्धर्वाः । अप्सरसः । च । दैवीः । एषु । वानस्पत्येषु । ये । अधि । तस्थुः ॥

९—(इमम्) प्रसिद्धं वैदिकम् (पन्थाम्) मार्गम् (आ अरुक्षाम) आरोहेम (सुगम्) सुखेन गमनीयम् (स्वस्तिवाहनम्) आनन्दप्रापकम् (यस्मिन्) पथि (वीरः) पराक्रमी पुरुषः (न) निषेधे (रिष्यति) दुःखं प्राप्नोति (अन्येषाम्) अधर्मिणाम् (विन्दते) लभते (वसु) धनम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्योनाः । ते । अस्यै । वध्वै । भवन्तु । मा । हिंसिषुः । वहतुम् । उह्यमानम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(नरः) हे नरो ! (इदम्) अब (मे) मेरी [बात] (सु) अच्छे प्रकार (शृणुत) सुनो, (यया आशिषा) जिस आशीर्वाद से (दम्पती) पति पत्नी दोनों (वामम्) श्रेष्ठ पदार्थ (अश्नुतः) पाते हैं। (ये) जो (गन्धर्वाः) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले पुरुष] (च) और (अप्सरसः) कामों में व्यापक रहने वाली (देवीः) देवियां [बड़ी गुणवती स्त्रियां] हैं, और (ये) जो पुरुष (पशु) इन (वानस्पत्येषु) सेवनीय शास्त्र के रक्षक जन से संबन्ध वाले पुरुषों में (अधि) ऊंचे (तस्थुः) ठहरते हैं। वे सब [हे वधू !](ते अस्यै वध्वै) तुझ इस वधू के लिये (स्योनाः) सुखदायक (भवन्तु) होवें, वे (उह्यमानम्) चलते हुये (वहतुम्) रथ [रथ समान गृह कार्य] को (मा हिंसिषुः) न हानि पहुंचावें ॥ ९ ॥

भावार्थ—सब निपुण विद्वान् पुरुष और गृहकार्य में चतुर स्त्रियां मिल कर ऐसा प्रयत्न करें कि वे दोनों स्त्री पुरुष गृहाश्रम में यथावत् सिद्धि प्राप्त करें, और कभी उनके चलते हुये गृह कार्य में विघ्न न पड़ने पावें ॥ ९ ॥

९—(इदम्) इदानीम् (सु) सुविचारेण (मे) मम वाणीम् (नरः) हे नेतारः ((शृणुत) आकर्णयत (यया) (आशिषा) आशीर्वादेन (दम्पती) जायापती (वामम्) श्रेष्ठं पदार्थम् (अश्नुतः) प्राप्नुतः (ये) (गन्धर्वाः) गां वेदवाणीं धरन्ति ते विद्वांसः (अप्सरसः) अप. कर्मनाम—निघ० २ । १ । सर्तेः—रप्पूर्वादसिः । उ० ४ । २३७ । अपः + सृ गतौ–असि । अपांसि कर्माणि सरन्ति प्राप्नुवन्ति याभ्यस्ताः । कर्मकुशलाः स्त्रियः (देवीः) उत्तमगुणवत्यः (पशु) प्रसिद्धेषु (वानस्पत्येषु) वन्यते सेव्यते स वनः, तस्य पतिर्वनस्पतिः । [वनस्पते] वनस्य संभजनीयस्य शास्त्रस्य पालक—दयानन्दभाष्ये, यजु० २७ । २१ । ततः । दित्यदित्यादित्य० । पा० ४ । १ । ८५ । एय । संभजनीयस्य शास्त्रस्य पालकस्य जनस्य सम्बन्धिषु पुरुषेषु (ये) (अधि) उपरि (तस्थुः) तिष्ठन्ति (स्योनाः) सुखदायकाः (ते) तुभ्यम् (अस्यै) प्रसिद्धायै (वध्वै) पत्न्यै (भवन्तु) (मा हिंसिषुः) मा नाशयन्तु (वहतुम्) वहनसाधनं रथतुल्यं गृहकार्यम् (उह्यमानम्) गम्यमानम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः॥ १० ॥ (७)

ये । वध्वः । चन्द्रम् । वहतुम् । यक्ष्माः । यन्ति । जनान् । अनु ॥ पुनः । तान् । यज्ञियाः । देवाः । नयन्तु । यतः । आ-गताः ॥ १० ॥ (७)

भाषार्थ—(ये) जो (यक्ष्माः) क्षय रोग (जनान् अनु) मनुष्यों में वर्तमान (वध्वः) वधू के (चन्द्रम्) आनन्द देने वाले [वा सुनहले] (वहतुम्) रथ को (यन्ति) प्राप्त होवें । (तान्) उन [रोगों] को (यज्ञियाः) पूजा योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (पुनः) अवश्य [वहां] (नयन्तु) पहुंचावें, (यतः) जहां से [जिस कारण से] (आगताः) वे [रोग] आये हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जब कभी मार्ग आदि स्थान में स्त्री वा पुरुष को रोग का उपद्रव आ पड़े, विद्वान् वैद्य लोग कारण जानकर उसका प्रतिकार करें ॥ १० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३१ ॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेन दुर्गमतीतामपं द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥

मा । विदन् । परि-पन्थिनः । ये । आ-सीदन्ति । दंपती इति दम्-पती ॥ सु-गेन । दुः-गम् । अति । इताम् । अप । द्रान्तु । अरातयः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (परिपन्थिनः) बटमार लोग (दम्पती) पति

१०—(ये) (वध्वः) वध्वाः । पत्न्याः (चन्द्रम्) आह्लादकम् । सुवर्ण—सुकम् (वहतुम्) वाहनं रथम् (यक्ष्माः) राजरोगाः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (जनान्) मनुष्यान् (अनु) प्रति (पुनः) अवधारणे (तान्) रोगान् (यज्ञियाः) पूजार्हाः (देवाः) सुखदातारो वैद्याः (नयन्तु) प्रेरयन्तु (यतः) यस्मात् कारणात् (आगताः) प्राप्ताः ॥

११—(मा विदन्) मा प्राप्नुवन्तु (परिपन्थिनः) अ० १ । २७ । २ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी के (आसीदन्ति) घात में आकर बैठते हैं, (मा विदन्) वे न मिलें। (सुगेन) सुगम [मार्ग] से (दुर्गम्) कठिन स्थान को (अति) पार करके (इताम्) दोनों चले जावें और (अरातयः) शत्रु लोग (अप द्रान्तु) भाग जावें ॥ ११ ॥

भावार्थ—मार्ग चलने में स्त्री पुरुष सावधानी से प्रबन्ध करलें कि डाकू लुटेरे आदि के उपद्रवों से बचकर कुशल से ठिकाने पर पहुंचे ॥ ११ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ३२, और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाहप्रकरण में चोर आदि से भय वा भयङ्कर स्थान होने पर बोलने के लिये उद्धृत है। इस मन्त्र का चौथा पाद ऊपर आ चुका है—अ० ६। १२६। १—३ ॥

सं काशयामि बहुतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु१२

सम् । काशयामि । बहुतुम् । ब्रह्मणा । गृहैः । अघोरेण । चक्षुषा । मित्रियेण ॥ परि-आनद्धम् । विश्व-रूपम् । यत् । अस्ति । स्योनम् । पति-भ्यः । सविता । तत् । कृणोतु ॥१२॥

भाषार्थ—(ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (गृहैः) घरों के [पदार्थों] सहित [विराजमान] (बहुतुम्) वधू को (अघोरेण) अक्रूर [कोमल], (मित्रियेण) मित्रता युक्त (चक्षुषा) नेत्र से (सम् काशयामि) मैं यथावत् दिखाता हूं। (यत्) जो कुछ पदार्थ (विश्वरूपम्) सब प्रकार का (पर्याणद्धम्)

प्रतिकूलाचारिणः (आसीदन्ति) आगत्य घाते तिष्ठन्ति (दम्पती) पतिपत्न्यौ (सुगेन) सुगमनीयेन मार्गेण (दुर्गम्) दुर्गम्यस्थानम् (अति) अतीत्य (इताम्) गच्छताम् (अप द्रान्तु) पलायन्ताम् (अरातयः) शत्रवः ॥

१२—(सम्) सम्यक् (काशयामि) दीपयामि। दर्शयामि (बहुतुम्) वधूम्। नवोढाम् (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (गृहैः) गृहपदार्थैः सह वर्तमानाम् (अघोरेण) अक्रूरेण (चक्षुषा) नेत्रेण (मित्रियेण) मित्रत्वोपेतेन (पर्याणद्धम्) सर्वतः प्रबन्धेन धृतम् (विश्वरूपम्) सर्वप्रकारम् (यत्) पदार्थजातम् (अस्ति)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब ओर बंधा हुआ (अस्ति) है, (सविता) सब का प्रेरक [परमात्मा] (तत्) उस को (पतिभ्यः) पतिकुल वालों के लिये (स्योनम्) सुखदायक (कृणोतु) करे ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वान् वर घर में आयी विदुषी वधू के साथ श्रेष्ठ व्यवहार करता रहे, जिससे सब कुटुम्बी लोग घरके पदार्थों में आनन्द पावें ॥ १२ ॥

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥१३॥

शिवा । नारी । इयम् । अस्तम् । आ । अगन् । इमम् । धाता । लोकम् । अस्यै । दिदेश ॥ ताम् । अर्यमा । भगः । अश्विना । उभा । प्रजा-पतिः । प्र-जया । वर्धयन्तु ॥१३॥

भाषार्थ—(इयम्) यह (शिवा) मङ्गलदायिनी (नारी) नारी [नर-की पत्नी] (अस्तम्) घर में (आ अगन्) प्राप्त होवे, (धाता) सर्वपोषक [परमात्मा] ने (अस्यै) इस [वधू] को (इमम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] (दिदेश) दिया है । (ताम्) उस [वधू] को (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला [राजा], (भगः) ऐश्वर्यवान् [आचार्य], (उभा) दोनों (अश्विना) विद्या को प्राप्त [स्त्री पुरुषों के समाज], और (प्रजापतिः) प्रजा-पालक [परमेश्वर] (प्रजया) उत्तम सन्तान से (वर्धयन्तु) बढ़ावें ॥ १३ ॥

भावार्थ—जब परमात्मा की कृपा से उत्तम वधू उत्तम वर को प्राप्त हो, राजा की व्यवस्था, आचार्य की शिक्षा, विद्वान् स्त्री पुरुषों की सत्संगति और परमात्मा की भक्ति से वधू वर दोनों गुणवान् श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करें ॥ १३ ॥

(स्योनम्) सुखदम् (पतिभ्यः) पतिकुलस्थेभ्यः (सविता) सर्वप्रेरकः परमात्मा (तत्) पदार्थजातम् (कृणोतु) करोतु ॥

१३—(शिवा) मङ्गलदायिनी (नारी) नरस्य पत्नी (इयम्) गुणवती (अस्तम्) गृहम् (आ अगन्) आगच्छतु (इमम्) दृश्यमानम् (धाता) सर्वधारकः परमेश्वरः (लोकम्) समाजम् (अस्यै) वध्वै (दिदेश) दत्तवान् (ताम्) वधूम् (अर्यमा) श्रेष्ठानां मानयिता राजा (भगः) ऐश्वर्यवानाचार्यः (अश्विना) प्राप्तविद्यौ स्त्रीपुरुषसमूहौ (प्रजापतिः) प्रजापालको जगदीश्वरः (प्रजया) श्रेष्ठसन्तानेन (वर्धयन्तु) उन्नयन्तु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मन्वत्यूर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः॥१४

आत्मन्-वती । उर्वरा । नारी । इयम् । आ । अगन् । तस्याम् । नरः । वपत । बीजम् । अस्याम् ॥ सा । वः । प्र-जाम् । जनयत् । वक्षणाभ्यः । बिभ्रती । दुग्धम् । ऋषभस्य । रेतः॥१४

भाषार्थ—(आत्मन्वती) आत्मा [भीतरी बल] वाली (उर्वरा) उपजाऊ धरती [के समान], (इयम्) यह (नारी) नारी [नर की पत्नी] (आ अगन्) आयी है, (नरः) हे नर ! [वर] (तस्याम्) उस (अस्याम्) ऐसी [गुणवती वधू] में (बीजम्) बीज (वपत) बो । (सा) वह [नारी] (ऋषभस्य) वीर्यवान् पुरुष के (दुग्धम्) दूध समान (रेतः) वीर्य को (बिभ्रती) धारण करती हुयी (वक्षणाभ्यः) अपने पेट की नाड़ियों से (वः) तेरे लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनयत्) उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे बलवती उपजाऊ भूमि में विधि पूर्वक जोतकर उत्तम बीज बोने से उत्तम अन्न उत्पन्न होता है, वैसे ही पूर्ण ब्रह्मचारिणी बलवती स्त्री के साथ पूर्ण ब्रह्मचारी वीर्यवान् ऋतुगामी पुरुष का यथाविधि संयोग होने से उत्तम सन्तान उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

१४—(आत्मन्वती) आभ्यन्तरशक्तियुक्ता (उर्वरा) शस्योत्पादनयोग्या भूमिर्यथा (नारी) नरस्य पत्नी (इयम्) वधूः (आ अगन्) आगमत् (तस्याम्) नार्याम् (नरः) सुपां सुपो भवन्ति । वा० पा० ७ । १ । ३९ । एकवचनस्य बहुवचनम् । हे नरः । नायक (वपत) तिङां तिङो भवन्ति । वा० पा० ७ । १ । ३९ । एकवचनस्य बहुवचनम् । वप । प्रक्षिप (बीजम्) (अस्याम्) ईदृश्यां गुणवत्याम् (सा) (वः) पूर्ववद्बहुवचनम् । तुभ्यम् (प्रजाम्) सन्तानम् (जनयत्) जनयेत् (वक्षणाभ्यः) वक्षःस्थलेभ्यः । उदरनाडीभ्यः (बिभ्रती) धारयन्ती (दुग्धम्) क्षीरतुल्यम् (ऋषभस्य) वीर्यवतः पुरुषस्य (रेतः) वीर्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति॑ । तिष्ठ॒ । वि॒-राट् । अ॒सि॒ । विष्णोः॑-इव । इ॒ह । सर॒-स्व॒ति॒ ॥ सि॒नी॒वालि॑ । प्र । जा॒य॒ता॒म् । भग॑स्य । सु॒-म॒तौ॑ । अ॒स॒त् ॥१५

भाषार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [श्रेष्ठ विज्ञान वाली] (प्रति तिष्ठ) दृढ़ रह, (विष्णुः इव) व्यापक सूर्य के समान तू (इह) यहां पर [गृहाश्रम में] (विराट्) विविध प्रकार ऐश्वर्य वाली (असि) है। (सिनीवालि) हे अन्न वाली पत्नी ! [तुझसे] (प्र जायताम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न होवे और वह [सन्तान] (भगस्य) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (सुमतौ) सुमति में (असत्) रहे ॥ १५ ॥

भावार्थ—गर्भवती स्त्री विज्ञानपूर्वक समर्थ होकर, वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय और बड़े बड़े पुरुषों के चरित्रों के विचार से श्रेष्ठ धर्मात्मा ईश्वर भक्त सन्तान उत्पन्न करे ॥ १५ ॥

उद् वः॑ ऊ॒र्मिः शम्या॑ ह॒न्त्वापो॒ योक्त्रा॑णि मुञ्चत ।
मादु॑ष्कृतौ व्ये॑नसाव॒घन्यावशु॑नमारताम् ॥ १६ ॥

उत् । वः॒ । ऊ॒र्मिः । शम्याः॑ । ह॒न्तु॒ । आपः॑ । योक्त्रा॑णि । मु॒ञ्च॒त॒ ॥ मा । अदु॑ष्कृतौ । वि-ए॑नसौ । अ॒घन्यौ॑ । अशु॑नम् । आ । अ॒र॒ता॒म् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—[हे स्त्री पुरुषो !] (वः) तुम्हारी (ऊर्मिः) उत्साह रूपी लहर (उत् हन्तु) ऊंची चले, (आपः) हे आप्त प्रजाओ ! (शम्याः) कर्म

१५—(प्रति तिष्ठ) दृढं वर्तस्व (विराट्) विविधैश्वर्यवती (असि) (विष्णुः) व्यापकः सूर्यः (इव) यथा (इह) अस्मिन् गृहाश्रमे (सरस्वति) हे श्रेष्ठविज्ञानवति (सिनीवालि) अ० २ । २६ । २ । षिञू बन्धने—नक्, ङीप् + वल संवरणे, यद्वा वल जीवने-दाने च—अण्, ङीप् । सिनीवाली सिनमन्नं भवति सिनाति भूतानि बालं पर्व वृणोतेस्तस्मिन्नन्नवती—निरु० ११ । ३१ । हे अन्नवति पत्नि (प्र जायताम्) उत्तमसन्तान उत्पद्यताम् (भगस्य) ऐश्वर्यवतः परमेश्वरस्य (सुमतौ) धार्मिकबुद्धौ (असत्) भवेत् ॥

१६—(उत्) उपरि (वः) युष्माकम् (ऊर्मिः) ऋ गतौ—मिप्रत्ययः । ऊर्मिर्बाहूपतरङ्गः (शम्याः) शमी कर्मनाम निघ० २ । १ । शमी—यत् । शमीषु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशल होकर तुम (योक्त्राणि) निन्दित कर्मों को (मुञ्चत) छोड़ो। (अदुष्कृतौ) दुष्ट आचरण न करने वाले, (व्येनसौ) पाप रहित, (अघ्न्यौ) नहीं मारने योग्य [दोनों स्त्री पुरुष] (अशुनम्) दुःख (मा आ अरताम्) कभी न पावें ॥१६॥

भावार्थ—सब कर्मकुशल स्त्री पुरुष निन्दित कर्मों को छोड़कर शुभ कर्मों में अपना उत्साह बढ़ावें, जिन के अनुकरण से यह दम्पती पापों से मुक्त रहकर धर्मात्मा होते हुये उत्तम सन्तानों के साथ सुख भोगें ॥१६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—३। ३३। १३॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शुग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

अघोर-चक्षुः। अपति—घ्नी। स्योना। शुग्मा। सु-शेवा। सु-यमा। गृहेभ्यः ॥ वीर-सूः। देवृ-कामा। सम्। त्वया। एधिषीमहि। सु-मनस्यमाना ॥ १७ ॥

भाषार्थ—[हे वधू !] तू (गृहेभ्यः) घर वालों के लिये (अघोरचक्षुः) प्रिय दृष्टि वाली, (अपतिघ्नी) पति को न सताने वाली, (स्योना) सुखदायिनी (शग्मा) कार्यकुशला, (सुशेवा) सुन्दर सेवा योग्य, (सुयमा) अच्छे नियमों वाली, (वीरसूः) वीरों की उत्पन्न करने वाली, (देवृकामा) देवरों [पति के छोटे बड़े भाइयों] से प्रीति रखने वाली और (सुमनस्यमाना)

कर्मसु कुशलाः (हन्तु) गच्छतु (आपः) हे आप्तप्रजाः (योक्त्राणि) युज निन्दायाम्—घ्रन्प्रत्ययः, नित्स्वरः। निन्दितकर्माणि (मुञ्चत) त्यजत (मा) निषेधे (अदुष्कृतौ) अदुष्टकर्माणौ (व्येनसौ) विगतपापौ (अघ्न्यौ) हन्तुमनर्हौ स्त्रीपुरुषौ (अशुनम्) शुन गतौ—क। शुनं सुखनाम—निघ० ३। ६। सुखरहितं दुःखम् (आ) समन्तात् (अरताम्) ऋ गतौ—लुङ्। प्राप्नुताम्॥

१७—(अघोरचक्षुः) अभयङ्करनेत्री (अपतिघ्नी) पत्युरहिंसित्री (स्योना) सुखप्रदा (शग्मा) युजिरुचितिजां कुश्च। उ० १। १४६। शक्लृ शक्तौ—मक्, कस्य ग, अर्शआद्यच्, टाप्। शक्म शग्म कर्म नाम—निघ० १। २। कर्मकुशला (सुशेवा) सुसेवनीया (सुयमा) सुनियमवती (गृहेभ्यः) गृहपुरुषेभ्यः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्न चित्त वाली [रह], (त्वया) तेरे साथ (सम् एधिषीमहि) हम मिल कर बढ़ते रहें ॥ १७ ॥

भावार्थ—गृहपत्नी कर्मकुशल होकर शुद्ध अन्तःकरण से सदा सब का हित करे, जिस से सब घर वृद्धि करता जावे ॥ १७ ॥

यह और आगे का मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४४, और यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाहप्रकरण में वधू वर के यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करने में और फिर वर के घर पहुंचकर उनके आज्याहुति देने में व्याख्यात है ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः । प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥

अदेवृ-घ्नी । अपति-घ्नी । इह । एधि । शिवा । पशु-भ्यः । सु-यमा । सु-वर्चाः ॥ प्रजा-वती । वीर-सूः । देवृ-कामा । स्योना । इमम् । अग्निम् । गार्हपत्यम् । सपर्य ॥ १८ ॥

भाषार्थ—[हे वधू !] (इह) यहां [गृहाश्रम में] (अपतिघ्नी) पति को न सताने वाली, (अदेवृघ्नी) देवरों को न कष्ट देने वाली, (शिवा) मङ्गल करने वाली, (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (सुयमा) सुन्दर नियमों वाली (सुवर्चाः) बड़े तेज वाली (एधि) हो । (प्रजावती) श्रेष्ठ प्रजाओं [सेवक आदि] रखने वाली, (वीरसूः) वीरों को उत्पन्न करने वाली, (देवृकामा) देवरों से प्रीति करने वाली, (स्योना) सुख युक्त तू (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि को (सपर्य) सेवन कर ॥ १८ ॥

(वीरसूः) वीराणां प्रसवित्री (देवृकामा) देवृषु पतिभ्रातृषु प्रीतियुक्ता (सम्) सम्यक् (एधिषीमहि) वर्धिषीमहि (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्ता ॥

१८—(अदेवृघ्नी) देवृणामहिंसित्री (अपतिघ्नी) (इह) अस्मिन् गृहाश्रमे (एधि) भव (शिवा) हितकरी (पशुभ्यः) गवादिभ्यः (सुयमा) शोभननियमयुक्ता (सुवर्चाः) बहुतेजाः (प्रजावती) श्रेष्ठसेवकादिभिः युक्ता (देवृकामा) म० १७ (स्योना) (इमम्) प्रसिद्धम् (अग्निम्) भौतिकमग्निम् (गार्हपत्यम्) गृहपतिसम्बन्धिनम् (सपर्य) सपर्यतिः परिचरणकर्मा—निघ० ३ । ५ । सेवस्व ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—गृहिणी को चाहिये कि अपने पति और सब कुटुम्बियों और पशुओं को प्रसन्न रखकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करे और गृहकार्य की सिद्धि के लिये शिल्पकर्म, हवनकर्म और पाकक्रिया आदि में अग्नि का यथावत् प्रयोग करती रहे ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् । शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठारातेप पतेह रंस्थाः ॥ १९ ॥

उत् । तिष्ठ । इतः । किम् । इच्छन्ती । इदम् । आ । अगाः । अहम् । त्वा । ईडे । अभि-भूः । स्वात् । गृहात् ॥ शून्य-एषी । निः-ऋते । या । आ-जगन्ध । उत् । तिष्ठ । अराते । प्र । पत । मा । इह । रंस्थाः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(निर्ऋते) हे अलक्ष्मी ! [दरिद्रता आदि] (इतः) यहां से [सुप्रबन्धयुक्त घर से] (उत् तिष्ठ) उठ, (किम्) क्या [बुरा] (इच्छन्ती) चाहती हुयी (इदम्) इस [घर] में (आ अगः) तू आयी है, (अभिभूः) विजयी (अहम्) मैं (त्वा) तुझे (स्वात् गृहात्) अपने घर से (ईडे=ईरे) निकालता हूं । (शून्यैषी) शून्य [निर्जनपन] चाहने वाली (या) जो तू(आजगन्ध) आयी है, (अराते) हे कंजूसिन् (उत् तिष्ठ) उठ, (प्र पत) चलती हो, (इह) यहां (मा रंस्थाः) मत ठहर ॥ १९ ॥

१९—(उत्तिष्ठ) दूरे गच्छ (इतः) अस्मात् सुप्रबन्धयुक्तगृहात् (किम्) अहितम् (इच्छन्ती) (इदम्) गृहम् (आ अगाः) आगतवती (अहम्) पुरुषार्थी गृहस्थः (त्वा) त्वाम् (ईडे) रस्य डः । ईरे । प्रेरयामि (अभिभूः) अभिभवित्ता । विजयी (स्वात्) (गृहात्) (शून्यैषी) शूनाय प्राणिहिंसायै हितम्, शूना—यत् + इष इच्छायाम्—अच्, ङीप् । निर्जनत्वमिच्छन्ती (निर्ऋते) अ० १ । ३१ । २ । हे कृच्छ्रापत्ते—निरु० २ । ७ । हे अलक्ष्मि (या) या त्वम् (आजगन्ध) थस्य धः । आजगन्थ । आगतवती (उत्तिष्ठ) (अराते) हे अदानशीले (प्रपत) बहिर्गच्छ (इह) अस्मिन् गृहे (मा रंस्था) नैवोपरम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस घर में स्त्री पुरुष विद्वान् चतुर कार्यकुशल होते हैं, वहां पर दरिद्रता, कंजूसी आदि दुर्विघ्न नहीं रहते, वह घर धन धान्य से भरा पूरा सदा मङ्गलमय रहता है ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यात् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥ (८)

यदा । गार्ह-पत्यम् । असपर्यात् । पूर्वम् । अग्निम् । वधूः । इयम् ॥ अध । सरस्वत्यै । नारि । पितृ-भ्यः । च । नमः । कुरु । २० (८

भाषार्थ—(यदा) जब (इयम् वधू) इस वधू ने (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्नि को (पूर्वम्) पहिले से (असपर्यात्) सेवन किया है । (अध) इस लिये (नारि) हे नारी ! (सरस्वत्यै) सरस्वती [विज्ञान के भण्डार परमेश्वर] को (च) और (पितृभ्यः) पितरों [पिता समान मान्य पुरुषों] को (नमः) नमस्कार (कुरु) कर ॥ २० ॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर की और जिन महान् पुरुषों की कृपा से इस वधू ने हवन, शिल्प, अन्न, ओषधि आदि में अग्नि की विद्या को यथावत् जाना है, उस परमेश्वर और उन बड़े लोगों को वह कुलवधू सदा धन्यवाद देती रहे ॥ २० ॥

शर्म वर्म तदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥

शर्म । वर्म । एतत् । आ । हर । अस्यै । नार्यै । उप-स्तरे ॥ सिनीवालि । प्र । जायताम् । भगस्य । सु-मतौ । असत् । २१ ।

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (एतत्) यह [गृहकार्यरूप] (शर्म)

२०—(यदा) यस्मिन् काले (गार्हपत्यम्) गृहपतिसंबन्धिनम् (असपर्यात्) असपर्यत् । सेवितवती (पूर्वम्) अग्रे (अग्निम्) अग्निविद्याम् (वधूः) (इयम्) (अध) अथ (सरस्वत्यै) सरो विज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती, तस्यै । सर्वविज्ञानवते परमेश्वराय (नारि) हे नरस्य पत्नि (पितृभ्यः) पितृतुल्यमान्येभ्यः (च) (नमः) नमस्कारम् (कुरु) ॥

२१—(शर्म) सुखप्रदम् (वर्म) कवचम् (एतत्) (आ हर) आनय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखदायक (वर्म) कवच (अस्यै नार्यै) इस नारी को (उपस्तरे) ओढ़ने के लिये (आ हर) ला। (सिनीवालि) हे अन्न वाली पत्नी! [तुझ से] (प्र जायताम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न होवे, और वह [सन्तान] (भगस्य) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (सुमतौ) सुमति में (असत्) रहे २१

भावार्थ—पति आदि सब वधू को गृह कार्य में सदा सहाय देवें, जैसे योद्धा को कवच रणक्षेत्र में सहाय देता है, और सब पुरुष उस वधू के वीर ईश्वरभक्त सन्तान से सुख प्राप्त करें ॥ २१ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर मन्त्र १५ में आचुका है ॥

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथनं ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥ २२ ॥

यम् । बल्बजम् । नि-अस्यथ । चर्म । च । उप-स्तृणीथनं । तत् । आ । रोहतु । सु-प्रजाः । या । कन्या । विन्दते । पतिम् २२

भाषार्थ—[हे विद्वानो! (यम्) जिस (बल्बजम्) बल्वज [तृण विशेष के आसन] को (न्यस्यथ) तुम बिछाते हो (च) और (चर्म) [मृग सिंह आदि का चर्म, उस पर] (उपस्तृणीथन) तुम फैलाते हो। (सुप्रजाः) सुन्दर जन्म वाली (कन्या) वह कन्या [कमनीया वधू] (तत्) उस पर (आ रोहतु) ऊंची बैठे, (या) जो (पतिम्) पति को (विन्दते) पाती है ॥ २२ ॥

(अस्यै) (नार्यै) (उपस्तरे) अवचक्षे च । पा० ३ । ४ । १५ । स्तृञ् स्तृञ् आच्छादने—एश् प्रत्ययो बाहुलकात् तुमर्थे। उपस्त्रे। उपस्तर्तुम्। आच्छादयितुम। अन्यद् व्याख्यातम्—म० १५ ॥

२२—(यम्) (बल्बजम्) अशूप्रुषिलटि० । उ० १ । १५१ । बल संवरणे वेष्टने—कन् + जन—ड । बलते भुवं वेष्टयतीति बल्बः पर्वतस्तत्र जायते । तृण—विशेषासनम् । मुञ्जभेदम्—यथा मनु० २ । ४३ (न्यस्यथ) निक्षिपथ (चर्म) सिंहमृगादिचर्म (च) (उपस्तृणीथन) आच्छादयथ (तत्) आसनम् (आ रोहतु) आतिष्ठतु (सुप्रजाः) जनी प्रादुर्भावे—विट् । सुजन्मा (या) (कन्या) कमनीया वधू (विन्दते) लभते (पतिम्) भर्तारम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—घर के विद्वान् लोग योग्य आसन आदि से पतिव्रता कुलवधू का आदर सत्कार करते रहें ॥ २२ ॥

(बल्बज) एक तृण विशेष मूंज वा कुश का भेद है जिस से मूंज न मिलने पर मेखला बनाने को मनु० २ । ४३ में लिखा है ॥

उप॑ स्तृणीहि॒ बल्ब॑जमधि॒ चर्म॑णि॒ रोहि॑ते ।
तत्रो॑प॒विश्य॑ सु॒प्रजा इ॒ममग्निं॑ सप॑र्यतु ॥ २३ ॥

उप॑ । स्तृ॒णी॒हि॒ । बल्ब॑जम् । अधि॑ । चर्म॑णि । रोहि॑ते ॥ तत्र॑ । उ॒प॒-विश्य॑ । सु॒-प्रजाः॑ । इ॒मम् । अ॒ग्निम् । सप॑र्यतु ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(रोहिते) रोहित [हरिण विशेष] के (चर्मणि अधि) चर्म पर (बल्बजम्) बल्बज [तृण विशेष का आसन] (उप स्तृणीहि) तू फैला। (तत्र) उस पर (सुप्रजाः) सुन्दर जन्म वाली वधू (उपविश्य) बैठकर (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमेश्वर वा भौतिक अग्नि] की (सपर्यतु) सेवा करे ॥ २३ ॥

भावार्थ—विद्वानों के दिये आसन पर बैठकर कुलवधू परमेश्वर की उपासना और यज्ञ आदि में अग्नि का प्रयोग करे ॥ २३ ॥

आ रो॑हु॒ चर्मो॑प॒ सीद॒ाग्निमे॒ष दे॒वो ह॑न्ति॒ रक्षा॑सि॒ सर्वा॑ । इ॒ह
प्र॒जां ज॑नय॒ पत्ये॑ अ॒स्मै सु॑ज॒यै॒ष्ठ्यो भवत् पु॒त्रस्ते॒ एषः ॥२४॥

आ । रो॒हु॒ । चर्म॑ । उ॒प॒ । सी॒द॒ । अ॒ग्निम् । ए॒षः । दे॒वः । हन्ति॒ । रक्षा॑सि । सर्वा॑ ॥ इ॒ह । प्र॒-जाम् । ज॒न॒य॒ । पत्ये॑ । अ॒स्मै । सु॒-ज॒यै॒ष्ठ्यः । भव॑त् । पु॒त्रः । ते॒ । एषः ॥ २४ ॥

२३—(उप स्तृणीहि) आच्छादय (बल्बजम्) म० २२ । तृणविशेषासनम् (अधि) उपरि (चर्मणि) म० २२ (रोहिते) रोहित—अर्शआद्यच्। मृगविशेषसम्बन्धिनि । गोकर्णपृषतैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः । अमर० १५ । १० (तत्र) आसने (उपविश्य) (सुप्रजाः) सुजन्मा वधूः (इमम्) प्रसिद्धम् (अग्निम्) व्यापकं परमेश्वरं भौतिकाग्निं वा (सपर्यतु) परिचरतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे वधू !] (चर्म) चर्म [मृग सिंह आदि के चर्म] पर (आ रोह) ऊंची बैठ, (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमात्मा वा भौतिक अग्नि] की (उप सीद) सेवा कर, (एषः देवः) यह देवता (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (हन्ति) नाश करता है। (इह) यहां [गृहाश्रम में] (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनय) उत्पन्न कर (एषः) यह (ते पुत्रः) तेरा पुत्र (सुज्यैष्ठ्यः) बड़े ज्येष्ठपन वाला [आयु में वृद्ध और पद में श्रेष्ठ] (भवत्) होवे ॥ २४ ॥

भावार्थ—वधू सावधान और प्रसन्न चित्त होकर परमेश्वर की उपासना और हवन आदि क्रिया करे और विद्वान् लोग चिरजीवी पुरुषार्थी सन्तान उत्पन्न करने के लिये वधू को हित शिक्षा और आशीर्वाद देवें ॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥

वि। तिष्ठन्ताम्। मातुः। अस्याः। उप-स्थात्। नाना-रूपाः। पशवः। जायमानाः ॥ सु-मङ्गली। उप। सीद। इमम्। अग्निम्। सम्-पत्नी। प्रति। भूष। इह। देवान् ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(अस्याः मातुः) इस माता की (उपस्थात्) गोद से (नानारूपाः) नाना स्वभाव वाले, (जायमानाः) प्रसिद्ध होते हुये (पशवः) दृष्टिवाले विद्वान् लोग (वि) विविध प्रकार (तिष्ठन्ताम्) उपस्थित हों। (सुमङ्गली) बड़ी मङ्गल वाली तू (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [व्यापक

२४—(आ रोह) आतिष्ठ (चर्म) म० २२ (उप सीद) उपतिष्ठ (अग्निम्) व्यापकं परमात्मानं भौतिकाग्निं वा (एषः) (देवः) (हन्ति) नाशयति (रक्षांसि) विघ्नान् (सर्वा) सर्वाणि (इह) गृहाश्रमे (प्रजाम्) सन्तानम् (जनय) उत्पादय (पत्ये) स्वामिने (अस्मै) (सुज्यैष्ठ्यः) ज्येष्ठ-भावे ष्यञ्। आयुषा सुवृद्धः पदेन सुश्रेष्ठो वा (भवत्) भवेत् (पुत्रः) (ते) तव (एषः) ॥

२५—(वि) विविधम् (तिष्ठन्ताम्) वर्तन्ताम् (मातुः) जनन्याः (अस्याः) (उपस्थात्) क्रोडात् (नानारूपाः) बहुस्वभावाः (पशवः) बहुदर्शिनो देवा विद्वांसः (जायमानाः) प्रादुर्भवन्तः (सुमङ्गली) बहुमङ्गलवती

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर वा भौतिक अग्नि] की (उप सीद) सेवा कर, और (संपत्नी) पति सहित तू (इह) यहां [गृहाश्रम में] (देवान् प्रति) विद्वानों के लिये (भूष) शोभायमान हो ॥ २५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उपाय पूर्वक आशीर्वाद दें कि उस वधू की पूरी ध्यानक्रिया के कारण अनेक दूरदर्शी वीर कीर्तिमान् सन्तान उत्पन्न होवें, और वह सौभाग्यवती विद्वानों का मान करके शोभा प्राप्त करे ॥ २५ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शं भूः ।
स्योना श्वश्रूवै प्र गृहान् विश इमान् ॥ २६ ॥

सु-मङ्गली । प्र-तरणी । गृहाणाम् । सु-शेवा । पत्ये । श्वशु-राय । शम्-भूः ॥ स्योना । श्वश्रूवै । प्र । गृहान् । विश । इमान् २६

भाषार्थ—[हे वधू !] (सुमङ्गली) बड़ी मङ्गल वाली, (गृहाणाम्) घरों [घर वालों] की (प्रतरणी) बढ़ाने वाली, (पत्ये) पति के लिये (सुशेवा) बड़ी सुख देने वाली, (श्वशुराय) ससुर के लिये (शंभूः) शान्ति देने वाली और (श्वश्रूवै) सासु के लिये (स्योना) आनन्द देने वाली तू (इमान् गृहान्) इन घरों [अर्थात् गृहकार्य्यों] में (प्र विश) प्रवेश कर ॥ २६ ॥

भावार्थ—वधू को योग्य है कि सब प्रकार चतुर होकर घर वालों की उन्नति करती हुई पति, सासु, ससुर आदि को प्रसन्न रखकर घर के कामों में प्रवेश करे ॥ २६ ॥

मन्त्र २६ और २७ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

(उप सीद) परिचर (इमम्) (अग्निम्) व्यापकं परमात्मानं भौतिकाग्निं वा (संपत्नी) पतिसहिता (प्रति) (भूष) शोभस्व (इह) गृहाश्रमे (देवान्) विदुषः पुरुषान् ॥

२६—(सुमङ्गली) बहुमङ्गलवती (प्रतरणी) वर्धयित्री (गृहाणाम्) गृहपुरुषाणाम् (सुशेवा) बहुसुखदात्री (पत्ये) (श्वशुराय) पतिजनकाय (शंभूः) शान्तिप्रदा (स्योना) सुखप्रदा (श्वश्रूवै) पतिजनन्यै (गृहान्) गृहकार्याणि (प्र विश) (इमान्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥

स्योना । भव । श्वशुरेभ्यः । स्योना । पत्ये । गृहेभ्यः ॥ स्योना । अस्यै । सर्वस्यै । विशे । स्योना । पुष्टाय । एषाम् । भव ॥२७॥

भाषार्थ—[हे वधू !] तू (श्वशुरेभ्यः) ससुर आदि के लिये (स्योना) सुख देने वाली, (पत्ये) पति के लिये और (गृहेभ्यः) घर वालों के लिये (स्योना) सुख देनेवाली (भव) हो। (अस्यै) इस (सर्वस्यै विशे) सब प्रजा के लिये (स्योना) सुख देने वाली और (एषाम्) इनके (पुष्टाय) पोषण के लिये (स्योना) सुख देने वाली (भव) हो ॥ २७ ॥

भावार्थ—उत्तम वधू पालन पोषण करके सब कुटुम्बियों को प्रसन्न रक्खे ॥ २७ ॥

मन्त्र २६ देखो ॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्वि परेतन ॥ २८ ॥

सु-मङ्गलीः । इयम् । वधूः । इमाम् । सम्-एत । पश्यत ॥
सौभाग्यम् अस्यै । दत्त्वा । दौः-भाग्यैः । वि-परेतन ॥ २८ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] (इयम् वधूः) यह वधू (सुमङ्गलीः) बड़े मङ्गल वाली है, (समेत) मिलकर आओ और (इमाम्) इसे (पश्यत) देखो।

२७—(स्योना) सुखप्रदा (भव) (श्वशुरेभ्यः) श्वशुरादिभ्यः (स्योना) (पत्ये) स्वामिने (गृहेभ्यः) गृहपुरुषेभ्यः (स्योना) (अस्यै) (सर्वस्यै) (विशे) प्रजायै (पुष्टाय) पोषणाय (एषाम्) पूर्वोक्तानाम् (भव) ॥

२८—(सुमङ्गलीः) छान्दसो विसर्गः । बहुमङ्गलवती (इयम्) दर्शनीया (वधूः) (इमाम्) (समेत) समेत्य आगच्छत (पश्यत) अवलोकयत (सौभाग्यम्) सुभगत्वम् । पतिप्रियत्वम् । बह्वैश्वर्यवत्वम् (अस्यै) (वध्वै) (दत्त्वा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्यै) इस [वधू] को (सौभाग्यम्) सुभागपन [पति की प्रीति] (दत्त्वा) देकर (दौर्भाग्यैः) दुर्भागपनों से [इस को] (विपरेतन) पृथक् रक्खो ॥२८॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग मिलकर आशीर्वाद देवें कि वधू पति की प्राणप्रिया होकर सदा आनन्द से रहे और कभी कष्ट न उठावे ॥ २८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३३, और महर्षि दयानन्द-कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में आशीर्वाद देने के लिये विवाह में आये लोगों के बुलाने में विनियुक्त है ॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चे ह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्तार्थास्तं विपरेतन ॥ २८ ॥

याः । दुः-हार्दः । युवतयः । याः । च । इह । जरतीः । अपि ॥
वर्चः । नु । अस्यै । सम् । दत्त । अथ । अस्तम् । वि-परेतन २८

भाषार्थ—(याः) जो तुम (युवतयः) हे युवा स्त्रियो ! (च) और (याः) जो तुम (जरतीः) हे वृद्धे स्त्रियो ! (अपि) भी (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाली (इह) यहां पर हो । वे तुम (अस्यै) इस [वधू] को (वर्चः) अपना तेज (नु) शीघ्र (सम् दत्त) दे डालो, (अथ) फिर (अस्तम्) अपने अपने घर (विपरेतन) चली जाओ ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो दुष्ट स्त्रियां घर में आ जावें, वधू अपनी चतुरायी से उन्हें ऐसा परास्त करे कि वे अपना तेज गंवाकर चली जावें और फिर कभी न आवें ॥ २९ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद ऋग्वेद १० । ८५ । ३३ में चौथा पाद है । यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

(दौर्भाग्यैः , दुर्भगत्वैः । ऐश्वर्यराहित्यैः । पतिस्नेहशून्यकर्मभिः (विपरेतन) अन्तर्गतण्यर्थः । विपरागमयत । पृथक् कुरुत ताम् ॥

२९—(याः) स्त्रियः (दुर्हार्दः) अ० २ । ७ । ५ । हार्दम् आनुकूल्यं करोति हार्दयतीति, हार्दयतेः—क्विप् णिलोपे रूपम् । दुष्टहृदयाः । क्रूरचित्ताः (युवतयः) तरुणस्त्रियः (याः) (च) (इह) गृहे (जरतीः) हे वृद्धस्त्रियः (अपि) (वर्चः) स्वतेजः (नु) शीघ्रम् (अस्यै) वध्वै (सम्) सम्यक् (दत्त) प्रयच्छत (अथ) अपि च (अस्तम्) स्वगृहम् (विपरेतन) विपरा विविधं दूरे गच्छत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुक्मप्रस्तरणं वह्निं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥ (८)

रुक्म-प्रस्तरणम् । वह्नयम् । विश्वा । रूपाणि । बिभ्रतम् ॥
आ । अरोहत् । सूर्या । सावित्री । बृहते । सौभगाय । कम् ३०८

भाषार्थ—(रुक्मप्रस्तरणम्) सुवर्ण के बिछौने वाले, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [उत्तम मध्यम नीच आकार वा बैठकों] को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले (वह्नयम्) [गृहाश्रम रूप] गाड़ी पर (सावित्री) सविता [सर्वजनक परमात्मा] को अपना देवता मानने वाली (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] वधू (बृहते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य [पति की प्रीति, बहुत ऐश्वर्य आदि सुख]पाने के लिये (कम्) सुख से (आ अरुहत्) चढ़ी है ॥ ३० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो! यह ब्रह्मवादिनी तेजस्विनी वधू गृहाश्रम में प्रविष्ट हुई है, हम ऐसा उपाय करें कि वह पतिप्रिया और ऐश्वर्यवती होकर सदा सुख भोगे ॥ ३० ॥

आ रोहतल्पं सुमनस्यमाने ह प्रजां जनय पत्यै अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ३१

आ । रोह । तल्पम् । सु-मनस्यमाना । इह । प्र-जाम् ।
जनय । पत्यै । अस्मै ॥ इन्द्राणी-इव । सु-बुधा । बुध्यमाना ।
ज्योतिः-अग्राः । उषसः । प्रति । जागुरासि ॥ ३१ ॥

३०—(रुक्मप्रस्तरणम्) स्तृञ् आच्छादने-ल्युट् । सुवर्णच्छादनयुक्तम् (वह्नयम्) गृहाश्रमरूपं यानं रथम् (विश्वा) सर्वाणि (रूपाणि) आकारान् (बिभ्रतम्) शतृरूपम् । धारयन्तम् (आरोहत्) आतिष्ठत् (सूर्या) प्रेरयित्री सूर्यदीप्तिवत्तेजस्विनी वा वधूः (सावित्री) सविता सर्वोत्पादकः परमात्मा देवता यस्याः सा (बृहते) महते (सौभगाय) सुभगत्वाय । पतिप्रियत्वाय । बह्वैश्वर्याय (कम्) सुखेन ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे वधू!] तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित्त होकर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आ रोह) चढ़, और (इह) यहां [गृहाश्रम में] (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनय) उत्पन्न कर । (इन्द्राणी इव) इन्द्राणी [बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य की पत्नी वा सूर्य की कान्ति] के समान, (सुबुधा) सुन्दर ज्ञान वाली (बुध्यमाना) सावधान तू (ज्योतिरग्राः) ज्योति को आगे रखने वाली (उषसः प्रति) प्रभात बेलाओं में (जागरासि जागती रहे ॥ ३१ ॥

भावार्थ—वधू को योग्य है कि प्रसन्न चित्त होकर पति के साथ उच्च पद पर विराजकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करे और सावधान रहकर सूर्योदय से पहिले उठकर शारीरिक और आत्मिक उन्नति करे ॥ ३१ ॥

मन्त्र ३१ और ३२ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ३२

देवाः । अग्रे । नि । अपद्यन्त । पत्नीः । सम् । अस्पृशन्त । तन्वः। तनूभिः। सूर्या-इव । नारि । विश्व-रूपा । महि-त्वा । प्रजा-वती । पत्या । सम् । भव । इह ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग (अग्रे) पहिले (पत्नीः) अपनी पत्नियों को (नि) निश्चय करके (अपद्यन्त) प्राप्त हुये हैं, और उन्होंने (तन्वः) शरीरों को (तनूभिः) शरीरों से (सम्) यथाविधि (अस्पृशन्त) स्पर्श किया है।

३१—(आ रोह) आतिष्ठ (तल्पम्) पर्यङ्कम् । उच्चपदम् (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्ता सती (इह) गृहाश्रमे (प्रजाम्) सन्तानम् (जनय) उत्पादय (पत्ये) (अस्मै) (इन्द्राणी) इन्द्रस्य पत्नी । ऐश्वर्यवतः पुरुषस्य भार्या । सूर्यकान्तिः (इव) यथा (सुबुधा) बहुज्ञानवती (बुध्यमाना) सावधाना (ज्योतिरग्राः) ज्योतिः प्रकाशोऽग्रे यासां ताः (उषसः) प्रभातवेलाः (प्रति) अनुलक्ष्य (जागरासि) जागृता भवेः ॥

३२—(देवाः) विद्वांसः (अग्रे) पूर्वकाले (नि) निश्चयेन (अपद्यन्त) प्राप्तवन्तः (पत्नीः) (सम्) सम्यक् । यथाविधि (अस्पृशन्त) स्पृष्टवन्तः (तन्वः) शरीराणि (तनूभिः) शरीरैः (सूर्या) सूर्यकान्तिः (इव) यथा (नारि)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वैसे ही] (नारि) हे नारी ! तू (सूर्या इव) सूर्य की कान्ति के समान (महित्वा) अपने महत्त्व से (विश्वरूपा) समस्त सुन्दरता वाली, (प्रजावती) उत्तम सन्तान को प्राप्त होने हारी तू (पत्या) अपने पति से (इह) यहां [गृहाश्रम में] (सं भव) मिल ॥ ३२ ॥

भावार्थ—पूर्वज महात्माओं के समान पति पत्नी आपस में प्रीति से प्रयत्न करके उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और गृहाश्रम के बीच सुख बढ़ावें ॥३२॥

मन्त्र ३१ की टिप्पणी देखो ॥

उत्ति॑ष्ठे॒तो वि॑श्वावसो॒ नम॑सेडामहे त्वा । जा॒मिमि॑च्छ पितृ॒षदं॒ न्य॑क्तां॒ स ते॑ भा॒गो ज॒नुषा॒ तस्य॑ विद्धि ॥ ३३ ॥

उत् । ति॒ष्ठ॒ । इ॒तः । वि॒श्व॒व॒सो॒ इति॑ विश्व-वसो । नम॑सा । ई॒डा॒म॒हे॒ । त्वा॒ ॥ जा॒मिम् । इ॒च्छ॒ । पि॒तृ॒-सद॑म् । नि-अ॑क्ताम् । सः । ते॒ । भा॒गः । ज॒नुषा॑ । तस्य॑ । वि॒द्धि॒ ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(विश्वावसो) हे समस्त धन वाले वर ! (इतः) [अपने] इस स्थान से (उत् तिष्ठ) उठ, (नमसा) आदर के साथ (त्वा) तुझ से (ईडामहे) हम यह चाहते हैं । (पितृषदम्) पितृकुल में रहती हुयी, (न्यक्ताम्) नियम से तैल आदि लगाये हुये [विवाह संस्कार किये हुये] (जामिम्) कुलवधू से (इच्छ) प्रीति कर, (जनुषा) जन्म [मनुष्य जन्म] के कारण (सः) यह (ते) तेरा (भागः) सेवनीय पदार्थ है, (तस्य) इसका (विद्धि) तू ज्ञान कर ॥ ३३ ॥

हे नरस्य पत्नि (विश्वरूपा) सर्वसौन्दर्योपेता (महित्वा) महत्त्वेन (प्रजावती) प्रशस्तसन्तानयुक्ता (पत्या) (सं भव) संगच्छस्व (इह) गृहाश्रमे ॥

३३—(उत्तिष्ठ) उद्गच्छ (इतः) स्थानात् (विश्वावसो) हे सर्वधनोपेत, वर (नमसा) सत्कारेण (ईडामहे) याचामहे (जामिम्) कुलस्त्रियम् । अत्र मनुः ३ । ५७ । शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् (इच्छ) प्रीणीहि (पितृषदम्) पितृकुलस्थिताम् (न्यक्ताम्) अञ्जिघृसिभ्यः क्तः । उ० ३ । ८९ । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणादिषु—क्त । नियमेन कृताभ्यञ्जनाम् । कृतविवाह संस्काराम् (सः) पूर्वोक्तः (ते) तव (भागः) सेवनीयः पदार्थः (जनुषा) मनुष्यजन्मना (तस्य) पूर्वोक्तस्य (विद्धि) ज्ञानं कुरु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—पूर्व मन्त्र में वर के साथ मिलने के लिये वधू से कहा गया था, अब वर से कहा है कि अपनी विवाहित स्त्री से यथाशास्त्र मिलकर सन्तान उत्पन्न करके मनुष्य जन्म सुफल करे ॥ ३३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २१, २२ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च । तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥

अप्सरसः । सध-मादम् । मदन्ति । हविः-धानम् । अन्तरा । सूर्यम् । च ॥ ताः । ते । जनित्रम् । अभि । ताः । परा । इहि । नमः । ते । गन्धर्व-ऋतुना । कृणोमि ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—(अप्सरसः) अप्सरायें [कामों में व्यापक स्त्रियां] (हविर्धानम्) ग्राह्य पदार्थों के आधार [वधू] (च) और (सूर्यम् अन्तरा) प्रेरणा करने वाले [वर] के पास (सधमादम्) परस्पर आनन्द (मदन्ति) मनाती हैं । [हे वधू वा वर !] (ताः) वे [स्त्रियां] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म का कारण हैं, (ताः अभि) उनके सामने होकर (परा) निकट (इहि) जा, (गन्धर्वर्तुना) विद्या धारण करने वाले मनुष्य के ऋतु से [यथार्थ समय के विचार से] (ते) तेरे लिये (नमः) आदर (कृणोमि) मैं करता हूं ॥ ३४ ॥

भावार्थ—कुलस्त्रियां शान्तिकरण, स्वस्तिवाचन आदि गान से आनन्द मनावें, सादर प्रेरणा किये हुये वधू वर उन को सविनय नमस्कार करें ॥ ३४ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आचुका है—अथर्व० ७ । १०६ । ३ ॥

३४—(अप्सरसः) म० ६ । अपःसु कर्मसु व्यापनशीलाः स्त्रियः (सधमादम्) परस्परानन्दोत्सवम् (मदन्ति) हर्षयन्ति (हविर्धानम्) ग्राह्यपदार्थाधारभूतां वधूम् (अन्तरा) निकटे (सूर्यम्) प्रेरकं वरम् (च) (ताः) स्त्रियः (ते) तव (जनित्रम्) जन्मकारणम् (अभि) अभीत्य (ताः) (परा) निकटे (इहि) प्राप्नुहि (नमः) सत्कारम् (ते) तुभ्यम् (गन्धर्वर्तुना) गन्धर्वस्य विद्याधारकस्य ऋतुना यथार्थकालविचारेण (कृणोमि) करोमि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोभि जाया अप्सरसः परेहि ॥३५॥

नमः । गन्धर्वस्य । नमसे । नमः । भामाय । चक्षुषे । च । कृण्मः ॥ विश्वावसो इति विश्व-वसो । ब्रह्मणा । ते । नमः । अभि । जायाः । अप्सरसः । परा । इहि ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—(गन्धर्वस्य) विद्या धारण करने वाले पुरुष के (नमसे) अन्न [भोजन] के लिये (नमः) [यह] अन्न है, (च) और (भामाय) प्रकाश युक्त (चक्षुषे) नेत्र [अर्थात् इन्द्रियों के हित] के लिये (नमः) अन्न (कृण्मः) हम बनाते हैं। (विश्वावसो) हे समस्त धन वाले वर ! (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) जल सहित (नमः) अन्न है, (जायाः) जन्म के कारणों, (अप्सरसः अभि) अप्सराओं [कामों में व्यापक स्त्रियों] के सामने (परा इहि) निकट जा ॥ ३५ ॥

भावार्थ—सुन्दर स्वच्छ रोचक खान पान से वधू वर को सन्तुष्ट करें और वे दोनों सब बड़े कार्य कुशल स्त्री पुरुषों का उपकार मान कर उनका सत्कार करें ॥ ३५ ॥

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्मु यज्ञं प्रतिरन्तु आयुः ॥३६॥

राया । वयम् । सु-मनसः । स्याम । उत् । इतः । गन्धर्वम् ।

३५—(नमः) अन्नम्—निघ० २ । ७ (गन्धर्वस्य) विद्याधारकपुरुषस्य (नमसे) अन्नाय । भोजनाय (नमः) (अन्नम्) (भामाय) अर्तिस्तुसुहु-सृधृक्षिक्षुभाया० । उ० १ । १४० । भा दीप्तौ—मन् । दीप्यमानाय (चक्षुषे) नेत्राय । सर्वेन्द्रियायेत्यर्थः (च) (कृण्मः) कुर्मः (विश्वावसो) हे सर्वधनिन् वर (ब्रह्मणा) उदकेन सह—निघ० १ । १२ (ते) तुभ्यम् (नमः) अन्नम् (अभि) अभीत्य (जायाः) उत्पत्तिकारणानि (अप्सरसः) म० ४ । कर्मसु व्यापनशीलाः स्त्रियः (परा) निकटे (इहि) गच्छ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ । अवीवृतामम् ॥ अगन् । सः । देवः । परमम् । सध-स्थम् । अगन्म । यत्र । प्र-तिरन्ते । आयुः ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—(राया) धन के साथ (वयम्) हम (सुमनसः) प्रसन्न चित्त (स्याम) होवें, (इतः) यहां से [अपने बीच से] (गन्धर्वम्) विद्या-धारण करने वाले पुरुष को (उत् आ अवीवृताम) हम सब प्रकार ऊंचा वर्त-मान करें। (सः देवः) वह विद्वान् (परमम्) सब से ऊंचे (सधस्थम्) सभा स्थान को (अगन्) प्राप्त हो, (अगन्म) हम [उस पद पर] पहुंचें (यत्र) जहां [लोग] (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्ते) अच्छे प्रकार पार करते हैं॥३६॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग मिलकर आशीर्वाद देवें कि वह विद्वान् पर अपने उत्तम गुणों से बड़ा धनी और ऊंचे पद वाला होकर महात्माओं के समान अपना उच्च जीवन बनावे ॥ ३६ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद ऋग्वेद में है—१ । ११३ । १६ तथा ८ । ४८ । ११ ॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः। मयो इव येषामधिरोहयैनां प्रजां कृणवाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥

सम् । पितरौ । ऋत्विये । इति । सृजेथाम् । माता । पिता । च । रेतसः । भवाथः ॥ मयोः-इव । येषाम् । अधि । रोहय । एनाम् । प्र-जाम् । कृणवाथाम् । इह । पुष्यतम् । रयिम् ३७

भाषार्थ—(पितरौ) हे [होने वाले] माता पिता ! (ऋत्विये)

३६—(राया) धनेन (वयम्) (सुमनसः) प्रसन्नचेतसः (स्याम) (उत्) उत्कर्षेण (इतः) अस्मात् स्थानात् (गन्धर्वम्) विद्याधारकं पुरुषम् (आ) समन्तात् (अवीवृताम्) णिचि लुङि रूपम्। वर्तमानं कुर्याम (अगन्) प्राप्नोतु (सः) (देवः) विद्वान् (परमम्) उत्कृष्टम् (सधस्थम्) सभास्थानम् (अगन्म) वयं गच्छेम (यत्र) यस्मिन् पदे (प्रतिरन्ते) प्रकर्षेण तरन्ति पार-यन्ति (आयुः) जीवनम् ॥

३७—(पितरौ) भाविनौ मातापितरौ (ऋत्विये) अ० १२ । ३ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुकाल [गर्भाधान योग्य समय] को प्राप्त दो वस्तु [के समान] (संसृजेथाम्) तुम दोनों मिलो, (च) और (रेतसः) वीर्य से [वीर्य और रज के मेल से] तुम दोनों (माता पिता) माता पिता (भवाथः) होओ। (मर्यः इव) नर के समान [हे पति !] (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी पत्नी के (अधि रोहय) ऊपर हो, और (प्रजाम्) सन्तान को (कृणवाथाम्) तुम दोनों उत्पन्न करो, और (इह) यहां [गृहाश्रम में] (रयिम्) धन को (पुष्यतम्) बढ़ाओ ॥३७॥

भावार्थ—जैसे वृक्ष आदि के बीज के मिले हुये दो टुकड़े वर्षा ऋतु में पृथिवी के संयोग से अङ्कर उत्पन्न करते हैं, वैसे ही युवा पति पत्नी गर्भाधान विधि के अनुसार रतिक्रिया करके वीर्य और रज के संयोग से सन्तान उत्पन्न करें और धनी होकर सुखी होवें ॥ ३७ ॥

मन्त्र ३७ और ३८ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ।३८।

ताम् । पूषन् । शिव-तमाम् । आ । ईरयस्व । यस्याम् । बीजम् । मनुष्याः । वपन्ति ॥ या । नूः । ऊरू इति । उशती । वि-श्रयाति । यस्याम् । उशन्तः । प्र-हरेम । शेपः ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—(पूषन्) हे पोषक पति ! (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करने हारी पत्नी को (आ ईरयस्व) प्रेरणा कर (यस्याम्)

२६। छन्दसि घस्। पा० ५। १। ७६। ऋतु-घस्। द्विवचनान्तः प्रयोगोऽयं नपुंसके। ऋतुं गर्भाधानयोग्यकालं प्राप्ते द्वे द्रव्ये यथा (संसृजेथाम्) युवां संयुक्तौ भवतम् (माता) (पिता) (च) (रेतसः) वीर्यात्। वीर्यरजः संयोगात् (भवाथः) युवां भवतम् (मर्यः इव) नरो यथा (योषाम्) सेवनीयां पत्नीम् (अधि रोहय) उपरि गच्छ (एनाम्) गुणवतीम् (प्रजाम्) सन्तानम् (कृणवाथाम्) जनयतम् (इह) गृहाश्रमे (पुष्यतम्) वर्धयतम् (रयिम्) धनम् ॥

३८—(ताम्) युवतीम् (पूषन्) हे पोषक पते (शिवतमाम्) अतिशयेनानन्दकरीम् (ईरयस्व) प्रेरय (यस्याम्) पत्न्याम् (बीजम्) वीर्यम् (मनुष्याः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस [पत्नी] में (मनुष्याः) मनुष्यलोग [मैं पति] (बीजम्) वीर्य (वपन्ति) बोवें। (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुयी (ऊरू) दोनों जंघाओं को (विश्रयाति) फैलावे, और (यस्याम्) जिस में (उशन्तः) [उसकी] कामना करते हुये हम लोग (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करें॥ ३८॥

भावार्थ—मन्त्र में बहुवचन विद्वत्ता, बलवत्ता और प्रीति के सूचनार्थ है। युवा पति-पत्नी दोनों परस्पर कामना करते हुये प्रसन्नवदन होकर गर्भाधान के लिये अपने अङ्गों को यथाविधि ठीक करें॥ ३८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १०। ८५। ३७। ऊपर मन्त्र ३७ भी देखो॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः। प्रजां कृणवावहा इह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु॥ ३८॥

आ। रोह। ऊरुम्। उप। धत्स्व। हस्तम्। परि। स्वजस्व। जायाम्। सु-मनस्यमानः॥ प्र-जाम्। कृणवावहै। इह। मोदमानौ। दीर्घम्। वाम्। आयुः। सविता। कृणोतु ३८

भाषार्थ—[हे पति!] तू (ऊरुम्) जंघा के (आ रोह) ऊपर आ, (हस्तम्) हाथ का (उप धत्स्व) सहारा दे, और (सुमनस्यमानः) प्रसन्न चित्त होकर तू (जायाम्) पत्नी को (परि ष्वजस्व) चिपटा ले। [हे स्त्री पुरुषो!] (इह) यहां [गर्भाधान क्रिया में] (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुये तुम दोनों (प्रजाम्) सन्तान को (कृणवावहै) उत्पन्न करो, (सविता) सब

नराः (वपन्ति) निक्षिपन्ति (यां) पत्नी (नः अस्मान् (ऊरू) जंघाप्रदेशौ (उशती) कामयमाना (विश्रयाति) विविधं श्रयेत्। विस्तारयेत् (यस्याम्) (उशन्तः) तां कामयमानाः (प्रहरेम) प्रहृतं कुर्याम (शेपः) उपस्थेन्द्रियम्॥

३८—(आ रोह) आतिष्ठ (ऊरुम्) जंघाम् (उप धत्स्व) उपेत्य व्याप्य धारय (हस्तम्) (परि ष्वजस्व) आलिङ्ग (जायाम्) पत्नीम् (सुमनस्यमानः) प्रसन्नचित्तः (प्रजाम्) सन्तानम् (कृणवावहै) जनयतम् (इह)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (वाम्) तुम दोनों का (आयुः) आयु (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥ ३९ ॥

भावार्थ—पति पत्नी दोनों प्रसन्न वदन होकर मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिका आदि अङ्गों को यथा योग्य सुधा रक्खें। पुरुष के प्रक्षिप्त वीर्य को खैंचकर स्त्री गर्भाशय में स्थिर करे जिस से गर्भाधान क्रिया सफल होवे, और परमेश्वर के अनुग्रह से उत्तम सन्तान उत्पन्न कर के वे दोनों अपने जीवन में प्रसन्न रहें ॥ ३९ ॥

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा। अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥ (१०)

आ। वाम्। प्र-जाम्। जनयतु। प्रजा-पतिः। अहोरात्राभ्याम्। सम्। अनक्तु। अर्यमा ॥ अदुः-मङ्गली। पति-लोकम्। आ। विश। इमम्। शम्। नः। भव। द्वि-पदे। शम्। चतुः-पदे ॥ ४० ॥ (१०)

भाषार्थ—[हे वधू वर !] (प्रजापतिः) प्रजापालक, (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला, [परमात्मा] (वाम्) तुम दोनों को (प्रजाम्) सन्तान (आ जनयतु) उत्पन्न करे और (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रात्रि के साथ [सब को] (सम् अनक्तु) संयुक्त करे। [हे वधू !] (अदुर्मङ्गली) दुष्ट लक्षण रहित तू (इमम्) इस (पतिलोकम्) पति लोक [पति कुल] में (आ

गर्भाधानविधौ (मोदमानौ) हर्षन्तौ (दीर्घम्) (वाम्) युवयोः (आयुः) जीवनम् (सविता) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (कृणोतु) करोतु ॥

४०—(वाम्) युवाभ्याम् (प्रजाम्) सन्तानम् (आ जनयतु) उत्पादयतु (प्रजापतिः) परमेश्वरः (अहोरात्राभ्याम्) रात्रिदिनाभ्याम्। सर्वदेत्यर्थः (समनक्तु) संयोजयतु (अर्यमा) श्रेष्ठानां मानकर्ता (अदुर्मङ्गली) दुष्टलक्षणरहिता (पतिलोकम्) पतिकुलम् (आ विश) प्रविश (इमम्) (शम्) सुख-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश) प्रवेश कर, और (नः) हमारे (द्विपदे) दोपायों के लिये (शम्) सुखदायक और (चतुष्पदे) चौपायों के लिये (शम्) सुखदायक (भव) हो ॥४०॥

भावार्थ—जगत्पालक परमेश्वर की उपासना करके युक्त आहार विहार ऋतुगमन आदि योग्य क्रिया के साथ पति पत्नी चिरजीवी सन्तान उत्पन्न करें, जिससे पति कुल में उस वधू के शुभागमन से सब मनुष्य और गौ आदि पशु बढ़कर प्रसन्न रहें ॥ ४० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४७ ॥

दे॒वैर्द॒त्तं मनु॑ना सा॒कमे॒तद् वाधू॑यं॒ वासो॑ व॒ध्व॑श्च॒ वस्त्र॑म् ।
यो ब्र॒ह्मणे॑ चिकि॒तुषे॒ ददा॑ति॒ स इद् रक्षां॑सि॒ तल्पा॑नि हन्ति ४१

दे॒वैः । द॒त्तम् । मनु॑ना । सा॒कम् । ए॒तत् । वाधू॑-यम् । वासः॑ । व॒ध्वः॑ । च॒ । वस्त्र॑म् ॥ यः । ब्र॒ह्म॒णे॑ । चि॒कि॒तुषे॑ । ददा॑ति । सः । इत् । रक्षां॑सि । तल्पा॑नि । ह॒न्ति॒ ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [विद्वान् पिता आदि] (मनुना साकम्) मननशील राजा के साथ (देवैः) विद्वानों करके (दत्तम्) दिया हुआ (एतत्) यह (वाधूयम्) विवाह का (वासः) पहिरने योग्य (वस्त्रम्) वस्त्र [योग्यता का चिह्न] (चिकितुषे) ज्ञानवान् (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [वेदवेत्ता वर] को (च) और (वध्वः=वध्वै) वधू को (ददाति) देता है, (सः इत्) वही (तल्पानि) प्रतिष्ठा [सम्मान, गौरव] में होने वाले (रक्षांसि) दोषों को (हन्ति) नष्ट करता है ॥ ४१ ॥

प्रदा (नः) अस्माकम् (भव) (द्विपदे) मनुष्यादिसमूहाय (शम्) (चतुष्पदे) गवादिपशुसमूहाय ॥

४१—(देवैः) विद्वद्भिः (दत्तम्) (मनुना) मननशीलेन राज्ञा (साकम्) सह (एतत्) दृश्यमानम् (वाधूयम्) वैवाहिकम् (वासः) परिधानीयम् (वध्वः) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । पा० २ । ३ । ६२ । इति षष्ठी । वध्वै (च) (वस्त्रम्) योग्यतासूचकं वसनम् (यः) विद्वान् (ब्रह्मणे) वेदवेत्त्रे पुरुषाय (चिकितुषे) विद्यावते (ददाति) प्रयच्छति (सः) (इत्) एव (रक्षांसि) दोषान् (तल्पानि) खष्पशिल्पशष्प० । उ० ३ । २८ । तल प्रतिष्ठायां-पप्रत्ययः, ततः अर्श आद्यच् । तल्पे प्रतिष्ठायां सम्माने भवानि (हन्ति) नाशयति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—पिता आदि गुरुजनों को योग्य है कि राजव्यवस्था के अनुसार आचार्या और आचार्य से सुशिक्षित ब्रह्मचारी, विद्यासूचक वस्त्र आदि से सुभूषित वधू वर का विवाह करें जिस से संसार में उन सब की निर्विघ्न प्रतिष्ठा बढ़े ॥ ४१ ॥

यं मे दत्ता ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानो बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥

यम् । मे । दत्तः । ब्रह्म-भागम् । वधु-योः । वाधूं-यम् । वासः । वध्वः । च । वस्त्रम् ॥ युवम् । ब्रह्मणे । अनु-मन्यमानौ । बृहस्पते । साकम् । इन्द्रः । च । दत्तम् ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(यम्) जो (ब्रह्मभागम्) ब्रह्मा [वेदवेत्ता] का भाग [अर्थात्] (वाधूयम्) विवाह का (वासः) पहिरने योग्य (वस्त्रम्) वस्त्र [योग्यता का चिह्न] (वधूयोः=वधूयवे) वधू की कामना करने वाले (मे) मुझ (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [वेदवेत्ता वर] को (च) और (वध्वः=वध्वै) वधू को (दत्तः) वे दोनों [वर और वधू के पक्ष वाले] देते हैं । (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्या के रक्षक आचार्य] (च) और (इन्द्रः) हे बड़े ऐश्वर्यवाले राजन् ! (साकम्) साथ साथ (अनुमन्यमानौ) अनुमति देते हुये (युवम्) तुम दोनों [वह वस्त्र] (दत्तम्) देओ ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जब वधू वर के पक्ष वाले युवा युवती का विवाह निश्चित करें, तब वे राजव्यवस्था और गुरुकुल आदि की शिक्षा के अनुसार दोनों की आयु, विद्या, स्वस्थता, सुशीलता आदि योग्यता को अवश्य विचार लेवें ॥ ४२ ॥

४२—(यम्) (मे) मह्यम् (दत्तः) प्रयच्छतः, तौ वधूवरपक्षौ (ब्रह्मभागम्) ब्रह्मणा वेदज्ञेन सेवनार्हं पदार्थम् (वधूयोः) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । पा० २ । ३ । ३२ । इति षष्ठी । वधूयवे । वधूकामाय वराय (वाधूः) परिधानीयम् (वध्वः) म० ४१ । वध्वै (च) (वस्त्रम्) योग्यतासूचकं वसनम् (युवम्) युवाम् (ब्रह्मणे) वेदवेत्ते पुरुषाय (अनुमन्यमानौ) अनुमतिं ददमानौ (बृहस्पते) बृहत्या विद्यायाः पालक आचार्य (साकम्) (इन्द्रः) हे परमैश्वर्यवन् राजन् (दत्तम्) प्रयच्छतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्योनाद्योने॒रधि॒ बुध्य॑मानौ हसामु॒दौ म॑हसा मोद॑मानौ ।
सु॒गू सु॑पु॒त्रौ सु॑गृ॒हौ त॑राथो जी॒वावु॒षसो॑ वि॒भाती॑: ॥ ४३ ॥

स्योनात् । योनेः । अधि । बुध्यमानौ । हसामुदौ । महसा । मोदमानौ ॥ सुगू इति सु-गू । सु-पुत्रौ । सु-गृहौ । तराथः । जीवौ । उषसः । वि-भातीः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—[हे स्त्री पुरुषो !] (स्योनात्) सुखदायक (योनेः) घर से (अधि) अच्छे प्रकार (बुध्यमानौ) जागते हुये, (हसामुदौ) हँसी और आनन्द करते हुये (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुये, (सुगू) सुन्दर चाल चलन वाले [वा उत्तम गौओं वाले] (सुपुत्रौ) श्रेष्ठ पुत्रों वाले, (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृह सामग्री वाले, (जीवौ) प्राणों को धारण करते हुये तुम दोनों (विभातीः) सुन्दर प्रकाश युक्त (उषसः) बहुत प्रभात वेलाओं को (तराथः) पार करो ॥ ४३ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को उचित है कि अपने घरों को आवश्यक गृह-सामग्रियों से भरपूर रक्खें और पुत्र पौत्र आदि के साथ प्रसन्न रहकर चिर जीवी होकर यशस्वी होवें ॥ ४३ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

नव॑ वसान: सु॒रभि: सु॒वासा॒ उदा॑गां जी॒व उ॒षसो॑ वि॒भाती॑: ।
आण्डा॑त् पतत्रीवामुक्षि॒ विश्व॑स्मादेनस॒स्परि॑ ॥ ४४ ॥

४३—(स्योनात्) सुखप्रदात् (योनेः) गृहात्—निघ० ३ । ४ (अधि) यथाविधि (बुध्यमानौ) जागरूकौ । अप्रमत्तौ (हसामुदौ) हास्येनामोदं कुर्वन्तौ (महसा) महता प्रेम्णा (मोदमानौ) हर्षन्तौ (सुगू) सु+गच्छतेर्डु, यद्वा । गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । पा० १ । २ । ४८ । इति गोर्ह्रस्वः । शोभनचरित्रौ । उत्तमगोयुक्तौ (सुपुत्रौ) श्रेष्ठसन्तानौ (सुगृहौ) श्रेष्ठगृहसामग्रीयुक्तौ (तराथः) पारयतम् (जीवौ) प्राणान् धारयन्तौ (उषसः) बहुप्रभातवेलाः (विभातीः) विविधप्रकाशमानाः ॥

CC-0.In-Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम् । वसानः । सुरभिः । सु-वासाः । उत्-आगाम् । जीवः । उषसः । वि-भातीः ॥ आण्डात् । पतत्री-इव । अमुक्षि । विश्वस्मात् । एनसः । परि ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—(नवम्) स्तुति को (वसानः) धारण करता हुआ, (सुरभिः) ऐश्वर्यवान्, (सुवासाः) सुन्दर निवास वाला, (जीवः) जीव [जीवता हुआ] मैं (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभात वेलाओं में (उदागाम्) उदय होता रहूं। (आण्डात्) अण्डे से (पतत्री इव) पक्षी के समान (विश्वस्मात्) सब (एनसः) कष्ट से (परि) सर्वथा (अमुक्षि) छूट जाऊं ॥ ४४ ॥

भावार्थ—मनुष्य गृहाश्रम में प्रवेश करके प्रयत्न करे कि वह प्रभात के सूर्य के समान उदय होता हुआ तेजस्वी, प्रशंसित, बलवान्, धनवान्, चिरजीवी होकर सुख भोगता रहे ॥ ४४ ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥

शुम्भनी इति । द्यावापृथिवी इति । अन्तिसुम्ने इत्यन्ति-सुम्ने । महिव्रते इति महि-व्रते ॥ आपः । सप्त । सुस्रुवुः । देवीः । ताः । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—(शुम्भनी) शोभायमान (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (अन्तिसुम्ने) [अपनी] गतियों से सुख देने वाले और (महिव्रते) बड़े व्रत [नियम] वाले हैं। (देवीः) उत्तम गुण वाली (सप्त) सात (आपः)

४४—(नवम्) णु स्तुतौ—अप्। स्तवम्। स्तुतिम् (वसानः) धारयन् (सुरभिः) अ० १२। १।२३। षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः—अभिच्। ऐश्वर्यवान् (सुवासाः) सुनिवाससयुक्तः (उदागाम्) उदयं प्राप्नुयाम् (जीवः) प्राणान् धारयन् (उषसः) प्रभातवेलाः (विभातीः) विविधप्रकाशयुक्ताः (आण्डात्) स्वार्थे-अण्। अण्डात् (पतत्री) पक्षी (इव) यथा (अमुक्षि) मुक्तो भवानि (विश्वस्मात्) सर्वस्मात् (एनसः) कष्टात् (परि) पृथग्भावे ॥

४५—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ७। ११२। १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापनशील इन्द्रियां [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] (सुस्रुवुः) [हमें] प्राप्त हुयी हैं, (ताः) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य और पृथिवीलोक ईश्वर नियम से अपनी अपनी गति पर चलकर वृष्टि अन्न आदि से उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य इन्द्रियों को नियम में रखकर अपराधों से बचें ॥ ४५ ॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ७ । ११२ । १ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

सूर्यायै । देवेभ्यः । मित्राय । वरुणाय । च ॥
ये । भूतस्य । प्र-चेतसः । तेभ्यः । इदम् । अकरम् । नमः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—(सूर्यायै) बुद्धिमानों का हित करने वाली विद्या के लिये, (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के पाने के लिये (च) और (वरुणाय) श्रेष्ठ (मित्राय) मित्र की प्राप्ति के लिये (ये) जो पुरुष (भूतस्य) उचित कर्म के (प्रचेतसः) जानने वाले हैं, (तेभ्यः) उनके लिये (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अकरम्) करता हूं ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या प्राप्त करके उत्तम गुणों और श्रेष्ठ मित्रों को प्राप्त करते हैं, वे संसार में प्रशंसनीय होते हैं ॥ ४६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । १७ ॥

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ ४७ ॥

यः । ऋते । चित् । अभि-श्रिषः । पुरा । जत्रु-भ्यः । आतृदः ॥

४६—(सूर्यायै) सूराः सूरयो वा मेधाविनः, तेभ्यो हिता, सूर सूरि वा—यत् । सूर्या वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । विद्याप्राप्तये (देवेभ्यः) उत्तमगुणानां लाभाय (मित्राय) मित्रलाभाय (वरुणाय) वरणीयाय श्रेष्ठाय (च) (ये) विद्वांसः (भूतस्य) उचितकर्मणः (प्रचेतसः) प्रज्ञातारः (तेभ्यः) (इदम्) (अकरम्) करोमि (नमः) नमस्कारम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्-धा॑ता । स॒म्-धिम् । म॒घ-वा॑ । पु॒रु॒-वसुः॑ । निः-क॑र्ता । वि-ह्रु॑तम् । पुनः॑ ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (पुरा) पहिले से [वर्तमान] (ऋते) सत्य नियम में (चित्) ही (अभिश्रिषः) चिपकाने के साधन [वीर्य के बिन्दु] से (जत्रुभ्यः) ग्रीवा आदि जोड़ों के [बनाने के] लिये (आतृदः) [रुधिर के] सब ओर टकराने [घूमने] से (सन्धिम्) हड्डी के जोड़ को (संधाता) जोड़ देने वाला है, (मघवा) वह पूज्य (पुरुवसुः) बहुत श्रेष्ठ गुणों वाला [परमात्मा] (विह्रुतम्) टेढ़े हुये अंग को (पुनः) फिर (निष्कर्ता) ठीक करने वाला है ॥ ४७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के अनादि सत्य नियम के अनुसार, बीज चाहे सीधा पड़े चाहे टेढ़ा, वह पृथिवी की भीतरी गति से ऐसा ठीक होजाता है कि उससे ऊपर को अङ्कुर और नीचे को जड़ उपजती है, इसी प्रकार वीर्य गर्भाशय में ठीक होकर नाभि से सम्बन्ध करता है, तब रुधिर के संचार से बालक के अङ्ग सीधे होकर पूरे और पुष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

यह मन्त्र सामवेद में है—पू० ३ । ६ । २, तथा कुछ भेद से ऋग्वेद में है ।८—१ । १२ ॥

अपा॒स्मत् तम॑ उच्छतु॒ नीलं॑ पि॒शङ्ग॑मु॒त लोहि॑तं॒ यत् । नि॒र्द॒ह॒नी या पृ॑षात॒क्य॑१॒॑स्मिन् तां स्था॒णावध्या स॑जामि ॥ ४८ ॥

अप॑ । अ॒स्मत् । तमः॑ । उ॒च्छ॒तु॒ । नील॑म् । पि॒शङ्ग॑म् । उ॒त ।

४७—(यः) परमेश्वरः (ऋते) सत्यनियमे (चित्) एव (अभिश्रिषः) अभिश्लिषः । अभिश्लेषणात् सन्धानद्रव्यात् । वीर्यबिन्दुसकाशात् (पुरा) पूर्वकाले (जत्रुभ्यः) जत्र्वादयश्च । उ० ४ । १०२ । जनी प्रादुर्भावे—रु, नस्य तः । ग्रीवादिसन्धीनां रचनाय (आतृदः) उ तृदिर् हिंसानादरयोः—क्विप् । आतर्दनात् । प्रताडनात् । रुधिरस्य संचारात् (सन्धाता) संयोजयिता भवति (सन्धिम्) अस्थिसंयोगम् (मघवा) अ० २ । ५ । ७ । श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्० । उ० । १ । १५९ । मह पूजायाम्—कनिन्, हस्य घः, अवुगागमश्च । पूजनीयः (पुरुवसुः) सांहितिको दीर्घः । बहुश्रेष्ठगुणयुक्तः परमात्मा (निष्कर्ता) संस्कर्ता । सन्धाता भवति (विह्रुतम्) हवृ कौटिल्ये—क्त । कुटिलमङ्गम् (पुनः)॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहितम् । यत् ॥ निः-दूहनी । या । पृषातकी । अस्मिन् । ताम् । स्थाणौ । अधि । आ । सजामि ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(अस्मत्) हमसे (तमः) अन्धकार (अप उच्छतु) बाहिर जावे, (उत) और [वह भी], (यत्) जो कुछ (नीलम्) नीला, (पिशङ्गम्) पीला और (लोहितम्) रक्त वर्ण [अशुद्ध वस्तु] है । (निर्दहनी) जला देने वाली (या) जो (पृषातकी) वृद्धि बांधने वाली [पीड़ा] (अस्मिन्) इस (स्थाणौ) स्थिर चित्त वाले मनुष्य में है, (ताम्) उस [पीड़ा] को (अधि) अधिकार पूर्वक (आ सजामि) मैं बांधता [रोकता] हूं ॥ ४८ ॥

भावार्थ—मनुष्य स्थिर चित्त होकर अपने शारीरिक, मानसिक और सामाजिक अशुद्धि, रोग आदि विघ्नों को हटावे ॥ ४८ ॥

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः । व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् तास्थाणावधि सादयामि ४९

यावतीः । कृत्याः । उप-वासने । यावन्तः । राज्ञः । वरुणस्य । पाशाः ॥ वि-ऋद्धयः । याः । असम्-ऋद्धयः । याः । अस्मिन् । ताः । स्थाणौ । अधि । सादयामि ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—(उपवासने) निवास स्थान [ग्राम आदि] में (राज्ञः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (वरुणस्य) रोक की (यावतीः) जितनी (कृत्याः)

४८—(अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (तमः) तम खेदे-असुन् । अन्धकारः (अप उच्छतु) उच्छी विवासे । दूरे गच्छतु (नीलम्) (पिशङ्गम्) पीतवर्णम् (उत) अपि च (लोहितम्) रक्तवर्णम् । रोगविशिष्टं वस्तु (यत्) वस्तु (निर्दहनी) नितरां दहनशीला (या) पीडा (पृषातकी) पृषु सेचने—क+बहुलमन्यत्रापि । उ० २ । ३७ । अत बन्धने-कुन्, गौरादित्वाद् ङीष् । सेचनस्य वर्धनस्य बन्धनशीला निवारणशीला (अस्मिन्) (ताम्) पीडाम् (स्थाणौ) स्थिरस्वभावे मनुष्ये (अधि) अधिकृत्य (आ सजामि) षञ्ज सङ्गे । प्रबध्नामि । रुणध्मि ॥

४९—(यावतीः) यत्परिमाणाः (कृत्याः) कृञ् हिंसायाम्—क्यप् तुक् च । हिंसाः । पीडाः (उपवासने) निवासस्थाने । उपवसथे ग्रामे (यावन्तः) (राज्ञः)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ायें और (यावन्तः) जितने (पाशाः) फन्दे हैं। और (याः) जो (व्यृद्धयः) निर्धनतायें और (याः) जो (असमृद्धयः) असिद्धियां (अस्मिन्) इस (स्थाणौ) स्थिर चित्त वाले मनुष्य में हैं, (ताः) उन [सब बाधाओं] को (अधि) अधिकार पूर्वक (सादयामि) मैं मिटाता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थ—ग्राम आदि देशों में जो विद्वानों की वृद्धि रोकने वाले विघ्न उपस्थित होवें, उनका प्रतीकार शीघ्र करना चाहिये ॥ ४९ ॥

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्ने त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ।५० (११

या । मे । प्रिय-तमा । तनूः । सा । मे बिभाय । वाससः ॥ तस्य । अग्ने । त्वम् । वनस्पते । नीविम् । कृणुष्व । मा । वयम् । रिषाम ॥ ५० ॥ (११)

भाषार्थ—[हे वीर !] (या) जो (मे) मेरा (प्रियतमा) अत्यन्त प्रिय (तनूः) शरीर है, (सा) वह (मे) मेरा शरीर (वाससः) हिंसा कर्मसे (बिभाय) डरता है। (वनस्पते) हे सेवनीय व्यवहार के रक्षक ! (त्वम्) तू (अग्ने) पहिले से (तस्य) उस [हिंसा कर्म] का (नीविम्) बन्धन (कृणुष्व) कर, (वयम्) हम लोग (मा रिषाम) कभी न कष्ट पावें ॥ ५० ॥

ऐश्वर्यवतः पुरुषस्य (वरुणस्य) आवरणस्य । रोधनस्य (पाशाः) बन्धाः (व्यृद्धयः) असम्पत्तयः (याः) (असमृद्धयः) असिद्धयः (याः) (अस्मिन्) (ताः) बाधाः (स्थाणौ) दृढस्वभावे पुरुषे (अधि) अधिकृत्य (सादयामि) षद्लृ अवसादने । नाशयामि ॥

५०—(या) (मे) मम (प्रियतमा) अतिशयेन प्रिया (तनूः) शरीरम् (सा) तनूः (मे) मम (बिभाय) बिभेति (वाससः) वसेर्णित् । उ० ४ । २१८ । वस हिंसायाम्-असुन्, णित् । हिंसाकर्मणः सकाशात् (तस्य) हिंसाकर्मणः (अग्ने) आदौ (त्वम्) (वनस्पते) वननीयस्य सेवनीयव्यवहारस्य रक्षक (नीविम्) नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः । उ० ४ । १३६ । नि+व्येञ् संवरणे—इण् डित्, यलोपः, उपसर्गस्य दीर्घः । कटिबन्धनम् । प्रबन्धम् (कृणुष्व) कुरु (वयम्) (मा रिषाम) दुःखिता न भवेम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् गृहस्थों का कर्तव्य है कि दूसरों को सताकर अपने को दूषित न करें और उस का पहिले से विचार करके राजदण्ड आदि के पश्चात्ताप से बच कर सुखी रहें ॥ ५० ॥

ये अन्ता यावंतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥

ये । अन्ताः । यावंतीः । सिचः । ये । ओतवः । ये । च । तन्तवः ॥ वासः । यत् । पत्नीभिः । उतम् । तत् । नः । स्योनम् । उप । स्पृशात् ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (अन्ताः) वस्त्र के आंचल, (यावतीः) जितनी (सिचः) कोरें, (ये) जो (ओतवः) बुनावटें, (च) और (ये) जो (तन्तवः) तन्तु [तांते] हैं । (यत्) जो (वासः) वस्त्र (पत्नीभिः) पत्नियों करके (उतम्) बुना गया है, (तत्) वह (नः) हम से (स्योनम्) सुख के साथ (उप स्पृशात्) चिपटा रहे ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जैसे विदुषी चतुर स्त्रियों के बुने और बनाये वस्त्र शरीर को सुख देते हैं, वैसे ही विद्वानों के विचार पूर्वक किये काम उपकारी होते हैं ॥५१॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥

उशतीः । कन्यलाः । इमाः । पितृ-लोकात् । पतिम् । यतीः ॥ अव । दीक्षाम् । असृक्षत । स्वाहा ॥ ५२ ॥

५१—(ये) (अन्ताः) वस्त्रान्ताः (यावतीः) यत्संख्याकाः (सिचः) षिच आर्द्रीकरणे-क्विप् । वस्त्रान्तविशेषाः (ये) (ओतवः) सितनिगमिमसि सक्यवि०उ०१ । ६९ । अव रक्षणादिषु—तुन् ,ऊठ्च्,यद्वा आङ्+वेञ् तन्तुसन्ताने-तुन्. सम्प्रसारणं च । पटे दीर्घतन्तवः (ये) (च) (तन्तवः) तनु विस्तारे-तुन् । सूत्राणि (वासः) वस्त्रम् (यत्) (पत्नीभिः) (उतम्) वेञ् तन्तु सन्ताने-क्त । स्यूतम् (तत्) (नः) अस्मान् (स्योनम्) सुखेन (उप) उपेत्य (स्पृशात्) स्पृशेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(इमाः) यह (उशतीः) कामना करती हुईं (कन्यलाः) शोभावती कन्यायें (पितृलोकात्) पितृलोक [पितृकुल] से (पतिम्) अपने अपने पति को (यतीः) जाती हुईं (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम व्रत की शिक्षा] को (अव सृजत) दान करें ॥ ५२ ॥

भावार्थ—गुणवती विदुषी स्त्रियां विवाह करके घर के सुप्रबन्ध से सन्तान आदि को वेद द्वारा उत्तम नियम और कर्म सिखावें ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥

बृहस्पतिना । अव-सृष्टाम् । विश्वे । देवाः । अधारयन् ॥
वर्चः । गोषु । प्र-विष्टम् । यत् । तेन । इमाम् । सम् । सृजामसि ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुयी [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा—मन्त्र ५२] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यत्) जो (वर्चः) प्रताप (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥ ५३ ॥

५२—(उशतीः) कामयमानाः (कन्यलाः) अ० ५ । ५ । ३ । अघ्न्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । कनी दीप्तिकान्तिगतिषु—यक् + ला आदाने—क, टाप् । शोभाग्रहीत्र्यः (इमाः) विदुष्यः (पितृलोकात्) पितृकुलात् (पतिम्) स्वस्वभर्तारम् (यतीः) गच्छन्त्यः (दीक्षाम्) दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु—अप्रत्ययः । नियमव्रतयोः शिक्षाम् (अव सृजत) अवसृजन्तु । ददतु (स्वाहा) अ० २ । १६ । १ । सुवाण्यां । वेदवाचा ॥

५३—(बृहस्पतिना) बृहत्या वेदवाण्या रक्षकेण । आचार्येण (अवसृष्टाम्) दत्ताम् , दीक्षाम्–इति पदस्य पूर्वमन्त्रादनुवृत्तिः (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसः (अधारयन्) धारितवन्तः (वर्चः) प्रतापः (गोषु) गच्छति जानातीति गौः । गौः स्तोतृनाम—निघ० ३ । १६ । विद्वत्सु (प्रविष्टम्) व्याप्तम् (यत्) (तेन) (इमाम्) दृश्यमानां प्रजाम् (सं सृजामसि) वयं संयोजयामः॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस प्रकार आचार्य से सुशिक्षा पाकर पूर्वज विद्वानों ने उत्तम पद पाये हैं, वैसे ही मनुष्य अपने लोगों को सुशिक्षा देकर उन्नत करें ॥५३

बृहस्पतिना० । तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५४ ॥

० ॥ तेजः । गोषु । प्र-विष्टम् । यत् । तेन । ० ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति..... । (यत्) जो (तेजः) तेज (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है,(तेन) उस से .....[मन्त्र ५३]॥५४॥

भावार्थ—मन्त्र ५३ के समान है ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिना० । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेन० ॥ ५५ ॥

०॥ भगः । गोषु । प्र-विष्टः । यः । तेन । ० ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति..... । (यः) जो (भगः) सेवनीय प्रभाव [ऐश्वर्य] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टः) प्रविष्ट है, (तेन) उस से..... [म० ५३] ॥ ५५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ५३ के समान ॥ ५५ ॥

बृहस्पतिना० । यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५६ ॥

० ॥ यशः । गोषु । प्र-विष्टम् । यत् । तेन । ० ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति..... । (यत्) जो (यशः) यश [दान शूरता आदि से बड़ा नाम] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे.....[म० ५३] ॥ ५६ ॥

भावार्थ—मन्त्र ५३ के समान है ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिना० । पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५७ ॥

० ॥ पयः । गोषु । प्र-विष्टम् । यत् । तेन । ० ॥ ५७ ॥

५४—(तेजः) ज्योतिः । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५३ ॥

५५—(भगः) सेवनीयः प्रभावः । ऐश्वर्यम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५६—(यशः) दानशूरतादिप्रभवं सुनाम । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति..... । (यत्) जो (पयः) विज्ञान (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे.....[म० ५३] ॥५७॥

भावार्थ—मन्त्र ५३ के समान है ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥

बृहस्पतिना । अव-सृष्टाम् । विश्वे । देवाः । अधारयन् ॥ रसः । गोषु । प्र-विष्टः । यः । तेन । इमाम् । सम् । सृजामसि ॥५८॥

भाषार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेद वाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुयी [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा-म०५२] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है । (यः) जो (रसः) रस [वीर्य वा वीर रस] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टः) प्रविष्ट है, (तेन) उस से (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्वज विद्वानों के समान अपने लोगों को सुशिक्षित करके वीर बनाते हैं, वे सुप्रतिष्ठित हो कर सुख भोगते हैं ॥ ५८ ॥

यदीमे केशिनो जना गृहे ते सुमनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥

यदि । इमे । केशिनः । जनाः । गृहे । ते । सु-मनर्तिषुः । रोदेन । कृण्वन्तः । अघम् ॥ अग्निः । त्वा । तस्मात् । एनसः । सविता । च । प्र । मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—(यदि) यदि (इमे) यह (केशिनः) क्लेश युक्त (जनाः)

५७—(पयः) पय गतौ—असुन् । विज्ञानम् । अन्यद् गतम् ॥

५८—(रसः) वीर्यम् । वीररसः । अन्यद् गतम् ॥

५९—(यदि) सम्भावनायाम् (इमे) समीपस्थाः (केशिनः) क्लेशेरन्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य (ते गृहे) तेरे घर में (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) दुःख (कृण्वन्तः) करते हुये (समनर्तिषुः) मिलकर इधर उधर फिरें। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक मनुष्य (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥ ५९ ॥

भावार्थ—यदि घर के लोग रोग वा दरिद्रता आदि के कारण से क्लेश उठावें, प्रधान पुरुष अपने मानसिक और शारीरिक उत्साह और परमेश्वर में विश्वास से तेजस्वी होकर उन का दुःख दूर करे ॥ ५९ ॥

यदी॒यं दु॑हि॒ता तव॑ वि॒के॒श्यरु॑दद् गृ॒हे रोदे॑न कृण्व॒त्य१॒॑घम् ।
अ॒ग्निष्ट्वा ० ॥ ६० ॥ (१२)

यदि॑ । इ॒यम् । दु॒हि॒ता । तव॑ । वि॒-के॒शी । अरु॑दत् । गृ॒हे ।
रोदे॑न । कृ॒ण्व॒ती । अ॒घम् ॥ ० ॥ ६० ॥ (१२)

भाषार्थ—[हे गृहस्थ !] (यदि) यदि (इयम्) यह (तव) तेरी (दुहिता) पुत्री (विकेशी) बाल बिखेरे हुये, (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) दुःख (कृण्वती) करती हुयी (गृहे) घर में (अरुदत्) रोवे। (अग्निः) तेजस्वी (च) और.....म० ५९ ॥ ६० ॥

भावार्थ—[मन्त्र ५९] के समान है ॥ ६० ॥

यज्जा॒मयो॒ यद्यु॒वत॑यो गृ॒हे ते॑ स॒मन॑र्तिषु॒ रोदे॑न कृण्व॒तीर॒घम् ।
अ॒ग्निष्ट्वा ० ॥ ६१ ॥

लो॑ लोपश्च । उ० ५ । ३३ । क्लिश उपतापे—अन्, लस्य लोपः । केश—इनि । क्लेशिनः । क्लेशयुक्ताः (जनाः) मनुष्याः (गृहे) (ते) तव (समनर्तिषुः) मिलित्वा नर्तनम् इतस्ततो गमनं कुर्युः (रोदेन) विलापेन (कृण्वन्तः) कुर्वन्तः (अघम्) दुःखम् (अग्निः) तेजस्वी (त्वा) त्वाम् (तस्मात्) (एनसः) कष्टात् (सविता) प्रेरकः पुरुषः (च) (प्र) प्रकर्षेण (मुञ्चताम्) एकवचनं लोट् । मोचयतु ॥

६०—(इयम्) उपस्थिता (दुहिता) पुत्री (तव) (विकेशी) विकीर्णकेशा (अरुदत्) रुद्यात् (कृण्वती) कुर्वती । अन्यद्गतम्—म० ५९ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् । जामयः । यत् । युवतयः । गृहे । ते । सम्-अनर्तिषुः । रोदेन । कृण्वतीः । अघम् ॥ ० ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो (जामयः) कुल स्त्रियां और (यत्) जो (युवतयः) युवा स्त्रियां (ते गृहे) तेरे घर में (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) कष्ट (कृण्वतीः) करती हुयीं (समनर्तिषुः) मिलकर इधर उधर फिरें। (अग्निः) तेजस्वी (च) और.....[म० ५६] ॥ ६१ ॥

भावार्थ—मन्त्र ५६ के समान है ॥ ६१ ॥

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्टितमघकृद्भिरघं कृतम् । अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥

यत् । ते । प्र-जायाम् । पशुषु । यत् । वा । गृहेषु । नि-स्थितम् । अघकृत्-भिः । अघम् । कृतम् ॥ अग्निः । त्वा । तस्मात् । एनसः । सविता । च । प्र । मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—[हे गृहस्थ !] (यत्) यदि (ते) तेरी (प्रजायाम्) प्रजा [जनपद के लोगों] में, (पशुषु) पशुओं में, (वा) अथवा (यत्) यदि (गृहेषु) घरों में (अघकृद्भिः) दुःख करने वाले [रोगों वा मनुष्यों] करके (कृतम्) किया गया (अघम्) दुःख (निष्टितम्) स्थित कर दिया गया है। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक पुरुष (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥ ६२ ॥

भावार्थ—यदि प्रजा के लोगों, पशुओं वा शिल्पशाला आदि घरों में

६१—(यत्) यदि (जामयः) म० ३३ । कुलस्त्रियः (यत्) (युवतयः) तरुण्यः (कृण्वतीः) कुर्वन्त्यः । अन्यद् गतम्—म० ५६ ॥

६२—(यत्) यदि (ते) तव (प्रजायाम्) जनपदपुरुषेषु (पशुषु) गवादिषु (यत्) यदि (वा) अथवा (गृहेषु) शिल्पादिस्थानेषु (निष्टितम्) स्थापितम् (अघकृद्भिः) दुःखकर्तृभिः (अघम्) दुःखम् (कृतम्) सम्पादितम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगों से वा दुष्ट मनुष्यों से कष्ट उपस्थित हो, विद्वान् लोग विद्याबल से और परमेश्वर के सहाय से उस कष्ट को हटावें ॥ ६२ ॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥

इयम् । नारी । उप । ब्रूते । पूल्यानि । आ-वपन्तिका । दीर्घ-आयुः । अस्तु । मे । पतिः । जीवाति । शरदः । शतम् ॥ ६३

भाषार्थ—(इयम्) यह (नारी) नारी [नर की पत्नी] (पूल्यानि) संगति के कर्मों को [बीज समान] (आवपन्तिका) बोदेती हुयी (उप ब्रूते) बोलती है—" (मे) मेरा (पतिः) पति (दीर्घायुः) लम्बी आयु वाला (अस्तु) होवे, और (शतं शरदः) सौ वर्षों (जीवाति) जीता रहे" ॥ ६३ ॥

भावार्थ पत्नी प्रयत्न करके परमात्मा की प्रार्थना करे कि उस का पति सुख से पूर्ण आयु भोगे और इसी प्रकार पति भी पत्नी की पूर्ण आयु के लिये पुरुषार्थ करे ॥ ६३ ॥

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥

इह । इमौ । इन्द्र । सम् । नुद । चक्रवाका-इव । दम्पती इति दम्-पती ॥ प्र-जया । एनौ । सु-अस्तकौ । विश्वम् । आयुः । वि । अश्नुताम् ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त राजन् ! (इह) यहां [संसार में]

६३—(इयम्) (नारी) नरस्य पत्नी (उपब्रूते) कथयति (पूल्यानि) पूल संहतौ-क्यप् । संहतिकर्माणि । संगतिबीजानि (आवपन्तिका) डुवप बीजतन्तुसन्ताने—शतृ, स्वार्थे कन्, टाप् बीजवद् विस्तारयन्ती (दीर्घायुः) दीर्घजीवनः (अस्तु) (पतिः) जीवाति) जीवेत् (शरदः) वर्षाणि (शतम्) बहूनि ॥

६४—(इह) संसारे (इमौ) प्रसिद्धौ (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् राजन्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमौ) इन दोनों (चक्रवाका इव) चकवा चकवी के समान (दम्पती) पति पत्नी को (सं नुद) यथावत् प्ररणा कर (प्रजया) प्रजा के साथ (एनौ) इन दोनों (स्वस्तकौ) उत्तम घर वालों को (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयः) आयु (वि अश्नुताम्) प्राप्त होवे ॥ ६४ ॥

भावार्थ—राजा व्यवस्था करे कि पति पत्नी चकवा चकवी के समान बड़े प्रेम से मिलकर रहें और ब्रह्मचर्य के पालन और धनादि के रक्षण से बलवान् और सुखी होकर पूर्ण आयु भोगें ॥ ६४ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है॥

यदा॑स॒न्द्यामु॑प॒धाने॒ यद् वो॑प॒वास॑ने कृ॒तम् ।
वि॒वा॒हे कृ॒त्यां यां च॒क्रुरा॒स्नाने॒ तां नि द॑ध्मसि ॥ ६५ ॥

यत् । आ॒-स॒न्द्याम् । उ॒प॒-धाने॑ । यत् । वा॒ । उ॒प॒-वास॑ने । कृ॒तम् ॥ वि॒-वा॒हे । कृ॒त्याम् । याम् । च॒क्रुः । आ॒-स्नाने॑ । ताम् । नि । द॒ध्म॒सि॒ ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—(यत्) जिस (कृतम्) हिंसित कर्म को (आसन्द्याम्) सिंहासन में, (उपधाने) गद्दी में,(वा) अथवा (यत्) जिस [हिंसित कर्म] को (उपवासने) छत्र में, और (याम्) जिस (कृत्याम्) दुष्टक्रिया को (आस्नाने) स्नानगृह में (विवाहे) विवाह के बीच (चक्रुः) [वे दुष्ट लोग] करें, (ताम्) उस [दुष्टक्रिया] को (नि दध्मसि) हम नीचे धरें ॥ ६५ ॥

(सं नुद) सम्यक् प्रेरय (चक्रवाका-इव) स्वनामख्यातौ खगौ यथा (दम्पती) जायापती (प्रजया) सन्तानेन (एनौ) द्वितीयाटौस्स्वेनः । पा० २ । ४ । ३४ । इति द्वितीयायाम् एनादेशः । पूर्वोक्तौ (स्वस्तकौ) अस्तं गृहनाम—निघ० ३ । ४ । उत्तमगृहयुक्तौ (विश्वम्) सम्पूर्णम् (आयुः) जीवनम् (अश्नुताम्) प्राप्नोतु ॥

६५—(यत्) (आसन्द्याम्) आसम् आसनं ददातीति आसन्दी, आस उपवेशने—क्विप्+दा-ड, ङीप् । सिंहासने (उपधाने) उपवस्त्रे (यत्) (वा) (उपवासने) छत्रे (कृतम्) हिंसितं कर्म (विवाहे) विवाहोत्सवे (कृत्याम्) हिंसाक्रियाम् (याम्) (चक्रुः) कुर्युर्दष्टपुरुषाः (आस्नाने) स्नानगृहे (ताम्) हिंसाम् (नि) नीचैः (दध्मसि) धारयामः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—यदि विवाह कर्म में कोई दुष्ट पुरुष विघ्न डालें, चतुर लोग उस का प्रतीकार करके विवाह को निर्विघ्न समाप्त करें ॥ ६५ ॥

यद् दु॑ष्कृ॒तं यच्छम॑लं विवा॒हे व॑ह॒तौ च॒ यत् ।
तत् सं॑भ॒लस्य॑ कम्ब॒ले मृ॒ज्महे॑ दुरि॒तं व॒यम् ॥ ६६ ॥

यत् । दुः॒-कृ॒तम् । यत् । शम॑लम् । वि॒-वा॒हे । व॒ह॒तौ । च॒ । यत् ॥
तत् । स॒म्-भ॒लस्य॑ । क॒म्ब॒ले । मृ॒ज्महे॑ । दुः॒-इ॒तम् । व॒यम् ६६॥

भाषार्थ—(यत्) जो (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म (च) और (यत्) जो (शमलम्) मलीनता (विवाहे) विवाह में [अथवा] (यत्) जो (वहतौ) विवाह में दिये पदार्थ में [होवे] । (तत्) उस (दुरितम्) खोट को (संभलस्य) आपस में समझा देने वाले पुरुष के (कम्बले) कामना योग्य कर्म पर (वयम्) हम (मृज्महे) शोध लेवें ॥ ६६ ॥

भावार्थ—जो कोई दोष विवाह की प्रवृत्ति वा समाप्ति में आ पड़े, बुद्धिमान् लोग समझ बूझ कर उसका निबटेरा कर लें ॥ ६६ ॥

सं॒भ॒ले मलं॑ सादयि॒त्वा क॑म्ब॒ले दु॑रि॒तं व॒यम् ।
अभू॑म य॒ज्ञियाः॑ शु॒द्धाः प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥ ६७ ॥

स॒म्-भ॒ले । मल॑म् । सा॒द॒यि॒त्वा । क॒म्ब॒ले । दुः॒-इ॒तम् । व॒यम् ।
अभू॑म । य॒ज्ञियाः॑ । शु॒द्धाः । प्र । नः॒ । आयूं॑षि । ता॒रि॒ष॒त् ॥६७॥

भाषार्थ—(संभले=संभलस्य) आपस में समझा देने वाले पुरुष के (कम्बले) कामना योग्य कर्म पर (मलम्) मलिनता और (दुरितम्) खोट को (सादयित्वा) मिटा कर (वयम्) हम (यज्ञियाः) पूजा योग्य और (शुद्धाः)

६६—(यत्) (दुष्कृतम्) दुष्टकर्म (यत्) (शमलम्) मालिन्यम् (विवाहे) (वहतौ) विवाहे दातव्यपदार्थे (च) (तत्) दुष्टकर्म (संभलस्य) भल निरूपणे—अच् । सम्यग् निरूपकस्य (कम्बले) कमेर्बुक् । उ० १ । १०७ । कमु कान्तौ—कलप्रत्यये बुक् । कमनीये कर्मणि (मृज्महे) शोधयामः (दुरितम्) दुष्कर्म (वयम्) पुरुषार्थिनः ॥

६७—(संभले) म० ६६ । षष्ठ्यर्थे सप्तमी । सम्यग् निरूपकस्य (मलम्) मालिन्यम् (सादयित्वा) नाशयित्वा (कम्बले) म० ६६ । कमनीये कर्मणि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध (अभूम) होवें, [और यह कर्म] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बढ़ावे ॥ ६७ ॥

भावार्थ—चतुर विद्वान् पुरुष के निर्णय पर परस्पर ग्लानि मिटाकर वधू वर के पक्ष वाले प्रसन्न होवें ॥ ६७ ॥

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्ष्ण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥

कृत्रिमः । कण्टकः । शत-दन् । यः । एषः ॥ अप । अस्याः । केश्यम् । मलम् । अप । शीर्ष्ण्यम् । लिखात् ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—(कृत्रिमः) शिल्पी का बनाया हुआ, (शतदन्) सौ [बहुत] दांतों वाला (यः एषः) जो यह (कण्टकः) कांटों वाला [कंघा आदि] है । वह (अस्याः) इस [प्रजा अर्थात् स्त्री पुरुषों] के (केश्यम्) केश के और (शीर्ष्ण्यम्) शिर के (मलम्) मल को (अप अप लिखात्) सर्वथा खरोंच डाले ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जैसे शिल्पी के बनाये कंघा ककई से काढ़ने पर केश शुद्ध होते और शिर का क्लेश दूर होता है, वैसे ही अनेक प्रयत्नों से अज्ञान के मिटने पर आत्मा की शुद्धि होती है ॥ ६८ ॥

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।

(दुरितम्) दोषम् (वयम्) पुरुषाः (अभूम) भवेम (यज्ञियाः) पूजार्हाः (शुद्धाः) प्रसन्नाः (प्र तारिषत्) वर्धयेत् (नः) अस्माकम् (आयूंषि) जीवनानि ॥

६८—(कृत्रिमः) शिल्पिना कृतः (कण्टकः) कटि गतौ-एवुल् अर्श आद्यच् । कण्टकः कन्तपो वा कृन्ततेर्वा कण्टतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः-निरु० ९ । ३२ । कण्टकयुक्तः कन्तकः (शतदन्) छन्दसि च । पा० ५ । ४ । १४२ । दत् इत्यस्यादेशः । बहुदन्तोपेतः (यः) (एषः) (अस्याः) प्रजायाः (केश्यम्) केशे भवम् (मलम्) मालिन्यम् (शीर्ष्ण्यम्) शिरसि भवम् (अप अप लिखात्) भृशं विलिख्य दूरीकुर्यात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत दे॒वान् दिवं॒ मा प्रापदु॒र्वं१॒न्तरि॑क्षम् । अ॒पो मा प्रापु॒न्मल॑मे॒तदग्ने॒ यम॑ं मा प्रापत् पि॒तॄंश्च॒ सर्वा॑न् ॥ ६८ ॥

अ॒ङ्गा॑त्-अङ्गात् । व॒यम् । अ॒स्याः । अप॑ । यक्ष्म॑म् । नि । द॒ध्म॒सि॒ ॥ तत् । मा । प्र । आ॒प॒त् । पृ॒थि॒वीम् । मा । उ॒त । दे॒वान् । दिव॑म् । मा । प्र । आ॒प॒त् । उ॒रु । अ॒न्तरि॑क्षम् ॥ अ॒पः । मा । प्र । आ॒प॒त् । मल॑म् । ए॒तत् । अग्ने॑ । यम॑म् । मा । प्र । आ॒प॒त् । पि॒तॄन् । च॒ । सर्वा॑न् ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—(अस्याः) इस [प्रजा अर्थात् स्त्री पुरुषों) के (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग से (वयम्) हम (यक्ष्मम्) क्षय रोग को (नि) निश्चय करके (अप दध्मसि) बाहिर डालते हैं। (तत्) वह (देवान्) नेत्र आदि इन्द्रियों में (मा प्र आपत्) न पहुंचे, (उत) और (मा) न (पृथिवीम्) भूमि में, (मा) न (दिवम्) धूप में और (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (प्र आपत्) पहुंचे। (अग्ने) हे विद्वान् ! (एतत्) यह (मलम्) मैल (अपः) जलों में (मा प्र आपत्) न पहुंचे, और (यमम्) वायु में (च) और (सर्वान्) सब (पितॄन्) ऋतुओं में (मा प्र आपत्) न पहुंचे ॥ ६६ ॥

६६—(अङ्गादङ्गात्) सर्वस्मादङ्गात् (वयम्) (अस्याः) प्रजायाः (अप) दूरीकरणे (यक्ष्मम्) राजरोगम् (नि) निश्चयेन (दध्मसि) धारयामः (तत्) मलम् (मा प्रापत्) मा प्राप्नुयात् (पृथिवीम्) (मा) निषेधे (उत) अपि च (देवान्) चक्षुरादीनीन्द्रियाणि, यथा महीधरस्य दयानन्दस्य च भाष्ये—यजुः० ४०। ४ (दिवम्) प्रकाशम् (मा प्रापत्) (उरु) विस्तृतम् (अन्तरिक्षम्) (अपः) जलानि (मा प्रापत्) (मलम्) मालिन्यम् (एतत्) (अग्ने) हे विद्वन् (यमम्) वायुलोकम्। यमो यच्छतीति सतः—इति मध्यस्थानदेवताासु पाठः—निरु० १०। १६। यमः। मध्यस्थानो वायुः—इति देवराजयज्वा निघण्टुटीकायाम् (मा प्रापत्) (पितॄन्) ऋतून्, यथा दयानन्द भाष्ये—यजुः० ६। १० (सर्वान्) समस्तान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् राजा और सब लोग हवन और अन्न शोधन क्रियाओं से नगर ग्राम आदि में से रोग जनक दुर्गन्ध आदि दोषों को हटाकर अपने प्रजा जनों को नीरोग स्वस्थ रक्खें ॥ ६९ ॥

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् । सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥ (१३)

सम् । त्वा । नह्यामि । पयसा । पृथिव्याः । सम् । त्वा । नह्यामि । पयसा । ओषधीनाम् ॥ सम् । त्वा । नह्यामि । प्र-जया । धनेन । सा । सम्-नद्धा । सनुहि । वाजम् । आ । इमम् ॥ ७० ॥ (१३)

भाषार्थ—[हे प्रजा !] (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) ज्ञान से (सं नह्यामि) मैं कवचधारी करता हूं, (त्वा) तुझे (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] के (पयसा) ज्ञान से (सं नह्यामि) कवचधारी करता हूं। (त्वा) तुझे (प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] से और (धनेन) धन से (सं नह्यामि) मैं कटिबद्ध करता हूं, (सा) सो तू [हे प्रजा !] (सन्नद्धा) सन्नद्ध [कटिबद्ध] होकर (इमम्) यह (वाजम्) बल (आ) सब ओर से (सनुहि) दे ॥ ७० ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है ऐसे ऐसे विद्यालयों को बनावे, जिन में प्रजागण भूगर्भ विद्या, भूतल विद्या, अन्नविद्या, ओषधिविद्या आदि प्राप्त करके सन्तान और धन से बढ़ती करें और राजा को भी यथा योग्य सहायता देकर समर्थ बनावें ॥ ७० ॥

७०—(त्वा) त्वां प्रजाम् (सं नह्यामि) सन्नद्धां भूतकवचां कटिबद्धां करोमि (पयसा) पय गतौ-असुन् । ज्ञानेन (पृथिव्याः) (त्वा) (सं नह्यामि) (पयसा) (ओषधीनाम्) अन्नसोमलतादीनाम् (त्वा) (सं नह्यामि) (प्रजया) सन्तानसेवकादिना (धनेन) सम्पत्त्या (सा) सा त्वं प्रजे (सन्नद्धा) कटिबद्धा सती (सनुहि) षणु दाने । देहि (वाजम्) बलम्—निघ०२ । ९ (आ) समन्तात् (इमम्) प्रसिद्धम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमोहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥

अमः । अहम् । अस्मि । सा । त्वम् । साम । अहम् । अस्मि । ऋक् । त्वम् । द्यौः । अहम् । पृथिवी । त्वम् ॥ तौ । इह । सम् । भवाव । प्र-जाम् । आ । जनयावहै ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—[हे वधू!] (अहम्) मैं [वर] (अमः) ज्ञानवान् (अस्मि) हूं (सा) सो (त्वम्) तू [ज्ञानवती है], (अहम्) मैं (साम) सामवेद [मोक्ष ज्ञान के समान सुखदायक] (अस्मि) हूं, (त्वम्) तू (ऋक्) ऋग्वेद की ऋचा [पदार्थों के गुणों की बड़ाई बताने वाली विद्या के तुल्य आनन्द देने वाली] है, (अहम्) मैं (द्यौः) सूर्य [वृष्टि आदि करने वाले रवि के समान उपकारी] हूं, और (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी [अन्नआदि उत्पन्न करने वाली भूमि के समान उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली] है। (तौ) वे हम दोनों (इह) यहां [गृहाश्रम में] (सं भवाव) पराक्रमी होवें, और (प्रजाम्) प्रजा [उत्तम सन्तान] को (आ जनयावहै) उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

भावार्थ—वधूवर राज्य प्रबन्ध से सन्तुष्ट होकर और अनेक प्रकार की विद्या और सम्पत्ति की प्राप्ति और सुसन्तान की उत्पत्ति से सुखी होवें ७१

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में वधूवर के परस्पर प्रतिज्ञा करने में व्याख्यात है ॥

जल्गियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।

७१—(अमः) अम गतौ भोजने च—असुन्; मतुपो लोपः । ज्ञानवान् (अहम्) (अस्मि) (सा) तादृशी ज्ञानवती (त्वम्) (साम) सामवेदेन मोक्षज्ञानेन तुल्यः सुखदायकः (अहम्) (अस्मि) (ऋक्) ऋग्वेदस्य वाणी । पदार्थगुणप्रकाशिकाविद्यावत् सुखप्रदा (त्वम्) (द्यौः) सूर्यतुल्यवृष्ट्यादिनोपकारकः (अहम्) (पृथिवी) अन्नोत्पादयित्री भूमिरिव सुसन्तानोत्पादयित्री (त्वम्) (तौ) आवां वधूवरौ (इह) गृहाश्रमे (सं भवाव) पराक्रमिणौ भवाव (प्रजाम्) सन्तानम् (आ जनयावहै) उत्पादयावहै ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥

जनि-यन्तः । नौ । अग्रवः । पुत्रि-यन्तः । सु-दानवः ॥ अरिष्टासु इत्यरिष्ट-असू । सचे वहि । बृहते । वाज-सातये ।७२।

भाषार्थ—(अग्रवः) उद्योगी, (सुदानवः) बड़े दानी लोग (नौ) हम दोनों के लिये (जनियन्ति) जनों [भक्तजनों] को चाहते हैं और (पुत्रियन्ति) पुत्रों को चाहते हैं । (अरिष्टासू) बिना नाश किये हुये प्राणों वाले [सदा पुरुषार्थी] हम दोनों (बृहते) बड़े (वाजसातये) विज्ञान, बल और अन्न के दान के लिये (सचेवहि) सदा मिले रहें ॥ ७२ ॥

भावार्थ—सब इष्ट मित्र यथावत् पुरुषार्थ से धन का व्यय करके चाहते हैं कि उनके पुत्रों के उत्तम सन्तान उत्पन्न हों, इस लिये पुत्र और पतोहू प्रीति पूर्वक उपाय करें कि उत्तम सन्तान होने से उनको विज्ञान, बल और अन्न आदि धन बढ़ें ॥ ७२ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है । इसका पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—७ । ६६ । ४ ॥

ये पितरो वधूदुर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥

ये । पितरः । वधू-दुर्शाः । इमम् । वहतुम् । आ । अगमन् ॥
ते । अस्यै । वध्वै । सम्-पत्न्यै । प्रजा-वत् । शर्म । यच्छन्तु ७३

७२—(जनियन्ति) सुप आत्मनः क्यच् । पा० ३ । १ । ८ । जन—क्यच् । अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम् । वा० पा० ७ । ४ । ३५ । इति प्राप्तस्य ईत्वस्य छान्दसो ह्रस्वः । जनीयन्ति जनान् भक्तजनान् इच्छन्ति (नौ) आवाभ्याम् (अग्रवः) रुशातिभ्यां कुन् । उ० ४ । १०३ । अग गतौ—कुन् । गन्तारः । उद्योगिनः (पुत्रियन्ति) पुत्र—क्यचि, ईत्वस्य छान्दसो ह्रस्वः । पुत्रीयन्ति । पुत्रान् इच्छन्ति (सुदानवः) सुदानिनः (अरिष्टासू) रिष हिंसायाम्—क्त । अहिंसितप्राणौ । महापुरुषार्थिनौ (सचेवहि) षच समवाये विधिलिङ् । नित्यसम्बन्धिनौ भवेव (बृहते) महते (वाजसातये) वाजानां विज्ञानबलान्नानां दानाय ॥ ७३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(ये) जो (वधूदर्शाः) वधू के देखने वाले (पितरः) पिता आदि लोग (इमम्) इस (वहतुम्) विवाह उत्सव में (आ अगमन्) आये हैं। (ते) वे सब (सम्पत्न्यै) पति सहित वर्तमान (अस्यै वध्वै) इस वधू को (प्रजावत्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि जनता] वाला (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—हितैषी बड़े लोगों का कर्तव्य है कि विद्वान् बलवान् वधूवर से विद्वान्, शूर, वीर सन्तान उत्पन्न होवें ॥ ७३ ॥

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेहदत्त्वा । तां वहन्त्वग्रंतस्यानु पन्थां विराड्यं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥७४॥

या । इदम् । पूर्वा । अगन् । रशना-यमाना । प्र-जाम् । अस्यै । द्रविणम् । च । इह । दत्त्वा ॥ ताम् । वहन्तु । अगतस्य । अनु । पन्थाम् । वि-राट् । इयम् । सु-प्रजाः । अति । अजैषीत् ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—(या) जो [वधू] (पूर्वा) पहिली [सब से ऊपर] होकर (रशनायमाना) कटि बांधे हुये (इदम्) इस [स्थान] में (अगन्) आवे, (अस्यै) इस [वधू] के हित के लिये (इह) यहां (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि जनता] (च) और (द्रविणम्) धन (दत्त्वा) देकर (ताम्) उस को (अगतस्य) बिना प्राप्त हुये [आगे आने वाले काल] के (पन्थाम्)

७३—(ये) (पितरः) पित्रादयः (वधूदर्शाः) दृशिर् दर्शने-अण्। वधू-दर्शकाः (इमम्) दृश्यमानम् (वहतुम्) विवाहोत्सवम् (आ अगमन्) आगताः (ते) पूर्वोक्ताः (अस्यै) विदुष्यै (वध्वै) (सम्पत्न्यै) पत्या सह वर्तमानायै (प्रजावत्) सन्तानसेवकादियुक्तम् (यच्छन्तु) ददतु ॥

७४—(या) वधूः (इदम्) स्थानम् (पूर्वा) प्रथमा। मुख्या (अगन्) आगच्छतु (रशनायमाना) रशनां कटिबन्धनं करोतीति रशनायते। तत्करोति तदाचष्टे। वा० पा० ३। १। २६। रशना-णिच्, शानच्। कटिबन्धनं कुर्वाणा। सदा पुरुषार्थयुक्ता (प्रजाम्) सन्तानसेवकादिजनताम् (अस्यै) वधूहिताय (द्रविणम्) धनम् (इह) गृहाश्रमे (दत्त्वा) (ताम्) वधूम् (वहन्तु) नयन्तु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु) मार्ग के पीछे पीछे (वहन्तु) वे [पिता आदि] ले चलें, (विराट्) बड़े ऐश्वर्य वाली (इयम्) यह (सुप्रजाः) उत्तम जन्म वाली [वधू] (अति) अत्यन्त (अजैषीत्) जय पावे ॥ ७४ ॥

भावार्थ—सब बड़े लोग सेवक धन आदि से प्रयत्न करें कि महाविदुषी, पुरुषार्थिनी, स्त्रीरत्न कुलवधू उत्तम सन्तान उत्पन्न करके आगे को यश बढ़ावे ॥ ७४ ॥

प्र बु॑ध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । गृहान् ग॑च्छ गृहप॑त्नी यथासो॑ दीर्घं तु आयुः॑ सविता कृ॑णोतु ॥ ७५ ॥ (१४)

प्र । बुध्यस्व । सु-बुधा । बुध्यमाना । दीर्घायु-त्वाय । शतशारदाय । गृहान् । गच्छ । गृह-पत्नी । यथा । असः॑ । दीर्घम् । ते । आयुः॑ । सविता । कृणोतु ॥ ७५ ॥ (१४)

भाषार्थ—[हे पत्नी !] तू (शतशारदाय) सौ वर्ष तक (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन पाने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धि वाली और (बुध्यमाना) सावधान रहकर (प्र बुध्यस्व) जागती रहे । (गृहान्) घरों [घर के पदार्थों] को (गच्छ) प्राप्त हो, (यथा) जिस से तू (गृहपत्नी) गृहपत्नी (असः) होवे, (सविता) सब ऐश्वर्य वाला परमात्मा (ते) तेरे (आयुः) जीवन को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥ ७५ ॥

(अगतस्य) अप्राप्तस्य । अनागतस्य कालस्य (अनु) अनुसृत्य (पन्थाम्) पन्थानम् (विराट्) विविधैश्वर्यवती (इयम्) गुणवती (सुप्रजाः) जनी-विट् । सुजन्मा सती (अति) अत्यन्तम् (अजैषीत्) जयेत् ॥

७५—(प्र बुध्यस्व) प्रकर्षेण जागृता वर्तस्व (सुबुधा) उत्तमबुद्धिमती (बुध्यमाना) सावधाना (दीर्घायुत्वाय) दीर्घजीवनप्राप्तये (शतशारदाय) शतवर्षयुक्ताय (गृहान्) गृहपदार्थान् (गच्छ) प्राप्नुहि (गृहपत्नी) गृहस्वामिनी (यथा) येन प्रकारेण (असः) त्वं भवेः (दीर्घम्) (ते) तव (आयुः) जीवनम् (सविता) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (कृणोतु) करोतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—पत्नी को योग्य है कि परमात्मा का सदा ध्यान करके गृह-कार्यों में सावधान रहकर और चिरंजीविनी होकर कुल की वृद्धि करे ॥ ७५ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

इति चतुर्दशं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री सयाजी राव गायकवाड़ाधिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासपरीयात्राम्

ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रो पण्डित

क्षेमकरण दास त्रिवेदिना

कृते अथर्ववेदभाष्ये चतुर्दशं कारांड समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे भाद्रमासे शुक्लपञ्चम्यां तिथौ १९७५

[पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे

धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि

श्रीराजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य

सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात्

मुद्रितम्—आश्विनकृष्णा ५ संवत् १९७५ वि० ता०२५ सितम्बर १९१८ ई० ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियां ॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-३३ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे, उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जावें ॥

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५९७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर, नमस्ते !

आपको ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आप ने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य का करने का प्रयत्न किया है। भाष्य काण्डों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्यसमाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्णकार्य होरहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटिके साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी जी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस प्रदान करें। स्वयम् ग्राहक बनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिए। समाजके पुस्तकालयों में तो इनका रखना बहुत ही ज़रूरी है। भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य मंगाइये।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,

B. Sc, LL. B. उपमन्त्री।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१९१४। कार्यालय श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध, बुलन्दशहर।

आपका पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धि शाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्रधारी को अभारी होना चाहिये। ईश्वर आप को उत्तरोत्तर उस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए० एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश, मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारो वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दाबन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त। आर्यमित्र आगरा, २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैंने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम, आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खे।

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एक बड़ी कमी के पूर्ण करने का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो...छपाई और काग़ज भी अच्छा है।

श्रीयुत महाशय मुन्शीराम जी-जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता कुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७—१०—१९६९।

अथर्ववेद भाष्य आप का दिया व किया हुआ अवकाशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आप का परिश्रम सराहनीय है।

तथा—पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१९५९।

अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ—छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वादि ग्रंथकर्त्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि सम्पादक आर्यमित्र—८ फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।.....आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर और अब वहां से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आपने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आप का अथर्ववेदीय भाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित भीमसेन शर्मा इटावा—उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदाव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेदभाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में.....अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है...भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता शिवप्यारी देवी जी, १२७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१९१५॥

श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते,

महेवा के पते से आपका भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैं ने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आपने हम सभों पर अत्यंत कृपा की है आपको अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पांचवां कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है, कि आप ने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है...बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूलमन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आपने अपने भाष्य को अलंकृत किया है:..आपकी राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आपका भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पण्डित गणेश प्रसाद शर्मा—संपादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये शब्दार्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू कालिकाप्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१३।

आप का भेजा अथर्ववेदभाष्य का वी० पी० मिला, मैं आपका भाष्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंह जी वर्मा मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर; ज़िला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आप ने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आपको वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७—९—१३।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६—लेखक श्रीयुत पं श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है—कि वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है—जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।.....इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोचकर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है.....त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर—इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDYADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No.* 624 *dated 6th February* 1913.

...It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them...also add on the address lable "For Encouragement Fund."

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan. Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age. I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope...the venture will not fail for want of pecuniary support.

THE MAGISTRATE OF ALLAHABAD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London

---

THE ARYA PATRIKA LAHORE, APRIL 18, 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda* which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature.....The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *Bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works.....The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karan Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves.....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

All rights reserved.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

पञ्चदशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना

निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.
Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि } संवत् १९७५ वि० सन् १९१८ ई० { मूल्यम् १-)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad) ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

पञ्चदशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

१—८ ॥ व्रात्यो मन्त्रोक्तो वा देवता ॥ १ निचृत् साम्नी पङ्क्तिः ; २ साम्नी बृहती ; ३ ब्राह्म्यनुष्टुप् ; ४ आर्ची गायत्री ; ५ साम्न्यनुष्टुप् ; ६ प्राजापत्या बृहती ; ७ आसुरी पङ्क्तिः ; ८ आर्ष्यनुष्टुप् ॥

अध्यात्मोपदेशः —परमात्मा और जीवात्मा का उपदेश ॥

अथवा सृष्टिविद्योपदेशः—अथवा सृष्टिविद्या का उपदेश ॥

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ १ ॥

व्रात्यः । आसीत् । ईयमानः । एव । सः । प्रजा-पतिम् । सम् । ऐरयत् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(व्रात्यः) व्रात्य [अर्थात् सब समूहों का हितकारी परमात्मा] (ईयमानः) चलता हुआ (एव) ही (आसीत्) वर्तमान था, (सः) उसने

१—(व्रात्यः) पृषिरञ्जिभ्यां कित् । उ० ३ । १११ । वृञ् वरणे स्वीकरणे—अतच्, कित्, आडागमः पृषोदरादित्वात् । व्रातः समूहः । व्राताः, मनुष्याः—निघ० २ । ३ । तस्मै हितम् । पा० ५ । १ । ५ । व्रात—यत् । यद्वा । पृषिरञ्जिभ्यां कित् । उ० ३ । १११ । वृञ् वरणे—अतच् कित् । व्रतं कर्म—निरु० २ । १३ । व्रत—एयप्रत्ययः । व्रातेभ्यः सर्वसमूहेभ्यो हितः । गणपतिः परमेश्वरः । सर्वहितैषी ब्रह्मचर्यादिव्रतधारको विद्वान् । अतिथिः (आसीत्) अभवत् (ईयमानः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रजापतिम्) [अपने] प्रजापालक गुण को (सम्) यथावत् (ऐरयत्) उकसाया ॥ १ ॥

भावार्थ—सृष्टि से पहिले प्रलय की अगम्य अवस्था में एक गणपति परमेश्वर सर्वव्यापक हो रहा था, उसने सृष्टि उत्पन्न करने के लिये अपने गुणों में चेष्टा प्रकट की ॥ १ ॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥ २ ॥

सः । प्रजा-पतिः । सु-वर्णम् । आत्मन् । अपश्यत् । तत् । प्र । अजनयत् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सः) उस (प्रजापतिः) प्रजापालक [परमात्मा] ने (सुवर्णम्) सुन्दर वरणीय [स्वीकरणीय] सामर्थ्य [वा सुवर्ण समान प्रकाश-स्वरूप] को (आत्मन्) अपने में (अपश्यत्) देखा और (तत्) उसको (प्र अजनयत्) प्रकट किया ॥ २ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने अपने सृष्टिसाधक सामर्थ्य को वा अपने प्रकाशस्वरूप को विचार कर प्रकट किया ॥ २ ॥

तदेकमभवत् तल्लोहितमभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ३

तत् । एकम् । अभवत् । तत् । लोहितम् । अभवत् । तत् । महत् । अभवत् । तत् । ज्येष्ठम् । अभवत् । तत् । ब्रह्म । अभवत् । तत् । तपः । अभवत् । तत् । सत्यम् । अभवत् । तेन । प्र । अजायत ॥ ३ ॥

ईङ् गतौ-शानच् । गच्छन् । व्यापकः (एव) निश्चयेन (सः) परमेश्वरः (प्रजापतिम्) स्वकीयं प्रजापालकं गुणम् (सम्) सम्यक् पूर्णतया (ऐरयत्) प्रेरितवान् ॥

२—(सः) (प्रजापतिः) प्रजापालकः परमात्मा (सुवर्णम्) कृवृजू-सिद्रु० । उ० ३ । १० । वृञ् वरणे—नप्रत्ययो नित् । सुष्ठु वरणीयं स्वीकरणीयं सामर्थ्यम् । सुवर्णवत्प्रकाशस्वरूपम् (आत्मन्) आत्मनि (अपश्यत्) (तत्) सामर्थ्यं स्वरूपं वा (प्र अजनयत्) प्रकटीकृतवान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—(तत्) वह [वरणीय सामर्थ्य] (एकम्) एक [अद्वितीय] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ललामम्) प्रधानस्वरूप (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (महत्) गुणों में वृद्ध (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ज्येष्ठम्) अत्यन्त वयोवृद्ध (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म [बड़ा फैला हुआ व्यापक] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (तपः) तप [प्रताप वा ऐश्वर्य-स्वरूप] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (सत्यम्) सत्य [विद्यमान जगत् का हितकारी अविनाशी कारणरूप] (अभवत्) हुआ, (तेन) उस [स्वरूप] के साथ (प्र अजायत) वह परमात्मा प्रकट हुआ ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह जगदीश्वर अपने अनेक सामर्थ्यों और गुणों को प्रकट करने से सब जगत् में प्रतीत हुआ ॥ ३ ॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥

सः । अवर्धत । सः । महान् । अभवत् । सः । महा-देवः । अभवत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (अवर्धत) बढ़ा [उसने अपना सामर्थ्य प्रकट किया], (सः) वह (महान्) महान् [बड़ा, पूजनीय] (अभवत्) हुआ, (सः) वह (महादेवः) महादेव [बड़ा तेजस्वी वा व्यवहार कुशल] (अभवत्) हुआ ॥ ४ ॥

३—(तत्) प्रसिद्धम् (एकम्) अद्वितीयं स्वरूपम् (अभवत्) (तत्) (ललामम्) लल ईप्सायाम्—क्विप् + अम गतौ—अण् । प्रधानस्वरूपम् (अभवत्) (तत्) (महत्) गुणैः पूजनीयम् (अभवत्) (तत्) (ज्येष्ठम्) अतिशयेन वयोवृद्धम् (अभवत्) (तत्) (ब्रह्म) प्रवृद्धं व्यापकस्वरूपम् (अभवत्) (तत्) (तपः) प्रतापस्वरूपम् । ऐश्वर्यस्वरूपम् (अभवत्) (तत्) (सत्यम्) सत्-यत् । सते विद्यमानाय जगते हितम् । अविनाशि कारणरूपम् (अभवत्) (तेन) सामर्थ्येन (प्र अजायत) प्रादुरभवत् ॥

४—(सः) परमात्मा (अवर्धत) प्रवृद्धोऽभवत् (सः) (महान्) पूजनीयः (अभवत्) (सः) (महादेवः) दिवु द्युतौ व्यवहारे च—अच् । महातेजस्वी । महाव्यवहारकुशलः (अभवत्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जब संसार में परमात्मा के बड़े बड़े गुण प्रकट हुये, तब वही सब कार्यों में महाचतुर ऋषियों को जान पड़ा ॥ ४ ॥

स दे॒वानामी॒शां पर्ये॑त् स ईशा॑नोऽभवत् ॥ ५ ॥

सः । दे॒वाना॑म् । ई॒शाम् । परि॑ । ऐ॒त् । सः । ईशा॑नः । अ॒भ॒व॒त् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(सः) उस ने (देवानाम्) सब व्यवहारकुशलों की (ईशाम्) ईश्वरता [प्रभुता] को (परि ऐत्) सब ओर से पाया और (सः) वह (ईशानः) परमेश्वर (अभवत्) हुआ ॥ ५ ॥

भावार्थ—वह परमेश्वर ही सब व्यवहारकुशलों से अद्वितीय बड़ा चतुर है, इसी से वह परमेश्वर है ॥ ५ ॥

स ए॑कव्रा॒त्यो॑ऽभवत् स धनु॒रा द॑त्त॒ तदे॒वेन्द्र॑धनुः ॥ ६ ॥

सः । ए॒क-व्रा॒त्यः । अ॒भ॒व॒त् । सः । धनुः॑ । आ । अ॒द॒त्त॒ । तत् । ए॒व । इ॒न्द्र-धनुः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (एकव्रात्यः) अकेला व्रात्य [सब समूहों का हितकारी] (अभवत्) हुआ, (सः) उस ने (धनुः) उत्पन्न करने के सामर्थ्य को (आ अदत्त) ग्रहण किया, (तत् एव) वही (इन्द्रधनुः) जीवों के उत्पन्न करने का सामर्थ्य है ॥ ६ ॥

५—(सः) परमात्मा (देवानाम्) व्यवहारकुशलानाम् (ईशाम्) ईश ऐश्वर्ये-अ, टाप् । ईशा ईशस्य पत्नी विभूतिः । ईश्वरताम् । प्रभुताम् (परि) सर्वतः (ऐत्) प्राप्नोत् (सः) (ईशानः) ईश—चानश् । परमेश्वरः (अभवत्) ॥

६—(सः) परमात्मा (एकव्रात्यः) म० १ । अद्वितीयः सर्वसमूहहितकरः (अभवत्) (सः) (धनुः) अर्त्तिपॄवपियजितनिधानतपिभ्यो नित् । उ० २ । ११७ । धन धान्ये उत्पादने च—उसि । उत्पादनसामर्थ्यम् (आदत्त) गृहीतवान् (तत्) सामर्थ्यम् (एव) निश्चयेन (इन्द्रधनुः) इन्द्राणां जीवानामुत्पादनसामर्थ्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—अद्वितीय परमात्मा ने पूर्वोक्त सामर्थ्यों को अपने से प्रकट करके दृश्यमान जीवों की सृष्टि को उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

नीलम् । अस्य । उदरम् । लोहितम् । पृष्ठम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(नीलम्) निश्चित ज्ञान (अस्य) उस [परमात्मा] का (उदरम्) उदर [समान है] और (लोहितम्) उत्पन्न करने का सामर्थ्य (पृष्ठम्) पीठ [समान है] ॥ ७ ॥

भावार्थ—परमात्मा में निश्चित ज्ञान और सृष्टि रचना स्वाभाविक गुण हैं ॥ ७ ॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

नीलेन । एव । अप्रियम् । भ्रातृव्यम् । प्र । ऊर्णोति । लोहितेन । द्विषन्तम् । विध्यति । इति । ब्रह्मवादिनः । वदन्ति ८

भाषार्थ—वह [परमात्मा अपने] (नीलेन) निश्चित ज्ञान से (एव) ही (अप्रियम्) अप्रिय (भ्रातृव्यम्) वैरी [विघ्न] को (प्र ऊर्णोति) ढक देता है और (लोहितेन) उत्पादन सामर्थ्य से (द्विषन्तम्) द्रोह करते हुये [विघ्न] को (विध्यति) बीधता [छेद डालता] है—(इति) ऐसा (ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी लोग (वदन्ति) कहते हैं ॥ ८ ॥

७—(नीलम्) नि+इल गतौ-क, । इला वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । नि निश्चितं ज्ञानम् (अस्य) परमात्मनः (उदरम्) उदरस्थानीयम् (लोहितम्) रुहेरश्च लो वा । उ० ३ । ९४ । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—इतन्, रस्य लः । उत्पादनसामर्थ्यम् (पृष्ठम्) पृष्ठतुल्यम् ॥

८—(नीलेन) म० ७ । निश्चितज्ञानेन (एव) (अप्रियम्) अनिष्टम् (भ्रातृव्यम्) शत्रुम् । विघ्नम् (प्रोर्णोति) आच्छादयति (लोहितेन) म० ७ । उत्पादनसामर्थ्येन (द्विषन्तम्) द्वेष्टारं विघ्नम् (विध्यति) छिनत्ति (इति) अनेन प्रकारेण (ब्रह्मवादिनः) परमात्मज्ञानिनः (वदन्ति) कथयन्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—परमात्मा अपने अटल ज्ञान से सब विघ्नों को हटाकर अपने भक्तों को आनन्द देता है, यह सब बुद्धिमानों का मत है ॥ ८ ॥

सूक्तम् २ ॥

१—२८ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, ६, ९, १५, २१, २६ साम्न्यनुष्टुप् ; २, १६ आर्च्यनुष्टुप् ; ३ आर्ची पङ्क्तिः ; ४, १८, २४ ब्राह्मी गायत्री ; ५, १३, १९ निचृदार्ची जगती ; ७, २७ पदपङ्क्तिः ; ८ । २८ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; १० आर्ष्युष्णिक् ; ११ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ; १२ आर्षी त्रिष्टुप् ; १४ साम्नी पङ्क्तिः, १७ विराडार्षी पङ्क्तिः ; २० आसुरी गायत्री; २२ साम्नी त्रिष्टुप् ; २३ निचृदार्ची पङ्क्तिः ; २५ आर्ची जगती ॥

परमेश्वरस्य सर्वत्र व्यापकत्वोपदेशः—परमेश्वर की सर्वत्र व्यापकता का उपदेश ॥

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥

सः । उत् । अतिष्ठत् । सः । प्राचीम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ। (सः) वह (प्राचीम्) सामने वाली [अथवा पूर्व] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा को अपने सामने वा पूर्व दिशा में व्यापक जानकर आगे को प्रवृत्ति करे ॥ १ ॥

इस सूक्त में परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन है ॥

तं बृहच्च रथंतरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् २

तम् । बृहत् । च । रथम्-तरम् । च । आदित्याः । च । विश्वे । च । देवाः । अनु-व्यचलन् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्)

१—(सः) व्रात्यः परमात्मा (उदतिष्ठत्) प्रादुरभवत् (सः) (प्राचीम्) अ० ३ । २६ । १ । अभिमुखीभूताम् पूर्वाम् (दिशम्) दिशाम् (अनु) अनुलक्ष्य (वि) विविधम् (अचलत्) अचरत् ॥

२—(तम्) व्रात्यं परमात्मानम् (बृहत्) प्रवृद्धमाकाशम् (च) (रथ-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] (च) और (आदित्याः) सब चमकने वाले सूर्य आदि (च) और (विश्वे) सब (देवाः) गति वाले लोक (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे विचरे ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिये कि आकाश, भूमि, सूर्य, और सब चलते हुये लोकों को परमात्मा की आज्ञा में चलता हुआ साक्षात् करे ॥ २ ॥

बृहते च वै स रथंतराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ३ ॥

बृहते । च । वै । सः । रथम्-तराय । च । आदित्येभ्यः । च । विश्वेभ्यः । च । देवेभ्यः । आ । वृश्चते । यः । एवम् । विद्वांसम् । व्रात्यम् । उप-वदति ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (बृहते) बृहत् [बड़े आकाश] के लिये (च च) और (रथन्तराय) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] के लिये (च) और (आदित्येभ्यः) चमकने वाले सूर्य आदि के लिये (च) और (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) गति वाले लोकों के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख]

न्तरम्) अ० ८ । १० (२) । ६ । रमु क्रीडायाम्-क्थन्+तॄ प्लवनतरणयोः-खच् मुम् च । रमणीयैर्गुणैस्तरणीयं जगत् (च) (आदित्याः) आदीप्यमानाः सूर्यादिलोकाः (च) विश्वे) सर्वे (च) (देवाः) दिवु गतौ-पचाद्यच् । गतिमन्तो लोकाः (अनुव्यचलन्) अनुसृत्य व्यचरन् ॥

३—(बृहते) प्रवृद्धायाकाशाय (च) (वै) निश्चयेन (रथन्तराय) रमणीयैर्गुणैस्तरणीयाय जगते (च) (आदित्येभ्यः) आदीप्यमानेभ्यः सूर्यादिभ्यः (च) (विश्वेभ्यः) (च) (देवेभ्यः) गतिमद्भ्यो लोकेभ्यः (आ) समन्तात् (वृश्चते) वृश्च्यते । छिद्यते । दूषितो भवति (यः) मूर्खः (एवम्) इण्शीभ्यां वन् । उ० १ । १५२ । इण् गतौ-वन् । एवैरयनैरवनैर्वा—निरु० २ । २५ । एति प्राप्नोतीत्येवस्तम् । ईदृशम् । व्यापकम् (विद्वांसम्) विज्ञातारम् (व्रात्यम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एवम्) ऐसे वा व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के गुणों को साक्षात् न करके तत्त्वज्ञान नहीं पाता, वह संसार के पदार्थों से यथावत् उपकार नहीं ले सकता ॥ ३ ॥

बृहतश्च वै स रथंतरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥

बृहतः । च । वै । सः । रथम्-तरस्य । च । आदित्यानाम् । च । विश्वेषाम् । च । देवानाम् । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । प्राच्याम् । दिशि ॥ ४ ॥

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥

श्रद्धा । पुंश्चली । मित्रः । मागधः । वि-ज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्र-वर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥ ५ ॥

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥

भूतम् । च । भविष्यत् । च । परि-स्कन्दौ । मनः । वि-पथम् ॥ ६ ॥

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥

मातरिश्वा । च । पवमानः । च । विपथ-वाहौ । वातः । सारथिः । रेष्मा । प्र-तोदः ॥ ७ ॥

म० १ । व्रातेभ्यः सर्वसमूहेभ्यो हितकरं परमात्मानम् (उपवदति) हीनं कथयति । निन्दति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्तिश्च॒ यशं॑श्च पुरःसु॒रावैनं॑ कीर्ति॑र्गच्छ॒त्या यशो॑ गच्छति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ८ ॥

कीर्तिः । च॒ । यशः॑ । च॒ । पुरः-सु॒रौ । आ । ए॒न॒म् । कीर्तिः॑ । गच्छ॒ति॒ । आ । यशः॑ । गच्छ॒ति॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (बृहतः) बृहत् [बड़े आकाश] का (च च) और भी (रथन्तरस्य) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] का (च) और (आदित्यानाम्) चमकने वाले सूर्यों का (च) और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) गति वाले लोकों [अर्थात् उनके ज्ञान] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्यां दिशि) सामने वाली [वा पूर्व] दिशा में ॥ ४ ॥ (श्रद्धा) इच्छा (पुंश्चली) पुंश्चली [पर-पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री, तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित] (मित्रः) स्नेह (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [समान],

४—(बृहतः) प्रवृद्धस्याकाशस्य (च) (वै) (सः) विद्वान् (रथन्तरस्य) रमणीयैर्गुणैस्तरणीयस्य जगतः (च) (आदित्यानाम्) आदीप्यमानानां सूर्याणाम् (च) (विश्वेषाम्) (च) (देवानाम्) गतिमतां लोकानाम् (प्रियम्) (धाम) गृहम् (भवति) (तस्य) चतुर्थ्यां षष्ठी । विदुषे जनाय (प्राच्याम्) अभिमुखीभूतायाम् । पूर्वस्याम् (दिशि) दिशायाम् ॥

५—(श्रद्धा) श्रिञ् सेवायाम्, श्रिय दाहे, श्री पाके वा—डति+डु धाञ् धारणपोषणयोः—अङ्, टाप् । इच्छा । श्रद्धा संप्रत्ययः स्पृहा—अमर० २३ । १०२ (पुंश्चली) पुंस्सु अन्यपुरुषेषु चलतीति । पुंस्+चल गतौ—अच्, ङीष् । व्यभिचारिणी कुलटेव घृणिता (मित्रः) स्नेहः (मागधः) मगि गतौ-घञ्+धा—क, पृषोदरादिरूपम् । स्तुतिपाठको यथा (विज्ञानम्) विवेकः (वासः) वस्त्रं यथा (अहः) दिनम् (उष्णीषम्) उष्ण+ईष हिंसायाम्—क, शकन्ध्वादिरूपम् तापनिवारकं शिरोवेष्टनवस्त्रं यथा (रात्री) (केशाः) (हरितौ) धारणाकर्षणगुणौ (प्रवतौ) वृतु वर्तने—अच् । द्वे वर्तुले कुण्डले ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारा गणों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥ ५ ॥ (भूतम्) भूत [बीता हुआ (च च) और भी (भविष्यत्) भविष्यत् [आने वाला] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान], (मनः) मन (विपथम्) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि समान] ॥ ६ ॥ (मातरिश्वा) आकाश में घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु विशेष] (च च) और भी (पवमानः) संशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ लेचलने वाले [बैल घोड़े आदि समान], (वातः) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हांकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोदः) अङ्कुश [कोड़ा , पैना समान] ॥ ७ ॥ (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रधावक [पायक समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है , (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर , (गच्छति) मिलता है , (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ८ ॥

कर्णभूषणे (कल्मलिः) अर्तिस्तुसुहु० । उ० १ । १४० । कल गतौ–मन् + ला दाने–कि । गतिदात्री तारादीप्तिः (मणिः) मणिभूषणं यथा ॥

६—(भूतम्) अतीतम् (च) (भविष्यत्) अनागतम् (च) (परिष्कन्दौ) स्कन्दिर् गतिशोषणयोः—घञ् । परितो गन्तारौ परपुष्टौ । सेवकौ यथा (मनः) चित्तम् (विपथम्) विविधगमनं यानम् ॥

७—(मातरिश्वा) आकाशे गमनशीलः सूत्रात्मा वायुः (च) (पवमानः) संशोधको वायुः (च) (विपथवाहौ) रथवाहकौ वृषभौ यथा (वातः) सामान्यपवनः (सारथिः) सर्तेर्णिच्च । उ० ४ । ८६ । सृ गतौ—अथिन् , णित् । रथचालकः (रेष्मा) रिष हिंसायाम्—मनिन् । प्रचण्डवायुः (प्रतोदः) तुद–घञ् । अश्वादिताडनदण्डः ॥

८—(कीर्तिः) दानादिप्रभवा ख्यातिः (च) (यशः) दानादिप्रभवं नाम (च) (पुरःसरौ) अग्रधावकौ (आ) आगत्य (एनम्) विद्वांसम् (कीर्तिः) (गच्छति) प्राप्नोति (आ) (यशः) (गच्छति) (यः) विद्वान् पुरुषः (एवम्) म० ३ । ईदृशं व्यापकं वा परमात्मानम् (वेद) जानाति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जब मनुष्य योगाभ्यास करके शुद्ध ज्ञान द्वारा परमाणु से लेकर परमेश्वर तक साक्षात् करलेता है, वह पूर्णकाम और पूर्णविज्ञानी होकर संसार में अपने आप कीर्ति और यश पाता है ॥ ४—८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥

० सः । दक्षिणाम् । दिशम् । ० ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत) खड़ हुआ, (सः) वह (दक्षिणाम्) दाहिनी [वा दक्षिण] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा को अपनी दाहिनी वा दक्षिण दिशा में व्यापक जानकर आगे बढ़े ॥ ९ ॥

तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥

तम् । यज्ञायज्ञियम् । च । वामदेव्यम् । च । यज्ञः । च । यजमानः । च । पशवः । च । अनु-व्यचलन् ॥ १० ॥

भाषार्थ—(यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेदज्ञान] (च च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताया गया [भूतपञ्चक] (च) और (यज्ञः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (च) और (यजमानः) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाला पुरुष] (च) और (पशवः) सब जीव जन्तु (तम्) उस [परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे विचरे ॥ १० ॥

९—(दक्षिणाम्) अवामभागस्थाम् । दक्षिणस्थाम् । अन्यत्पूर्ववत्—म० १ ॥

१०—(तम्) व्रात्यं परमात्मानम् (यज्ञायज्ञियम्) अ० ८ । १० (२) । ६ । यज्ञायज्ञ—घप्रत्ययः । सर्वेभ्यो यज्ञेभ्यो हितं वेदज्ञानम् (च) (वामदेव्यम्) अ० ४ । ३४ । १ । वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ । पा० ४ । २ । ९ । वामदेव—ड्य । वामदेवेन श्रेष्ठपरमेश्वरेण विज्ञापितं पृथिव्यादिभूतपञ्चकम् (च) (यज्ञः) पूजनीयव्यवहारः (च) (यजमानः) पूजनीयव्यवहारकर्ता (च) (पशवः) जन्तवः—निरु० ११ । २९ (अनुव्यचलन्) अनुसृत्य विचरितवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—सब ऋग्वेद आदि वेद पृथिवी आदि पञ्चभूत, सद्व्यवहार और सत्कर्मी पुरुष और सब प्राणी परमात्मा के अनुशासनगामी हैं ॥ १० ॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ११

यज्ञायज्ञियाय । च । वै । सः । वाम-देव्याय । च । यज्ञाय । च । यजमानाय । च । पशु-भ्यः । च । आ । वृश्चते ।०११

भाषार्थ—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (यज्ञायज्ञियाय) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] के लिये (च च) और भी (वामदेव्याय) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] के लिये (च) और (यज्ञाय) पूजनीय व्यवहार के लिये (च) और (यजमानाय) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाले] के लिये (च) और (पशुभ्यः) सब जीव जन्तुओं के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख] (एवम्) ऐसे वा व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३ देखो—अर्थात् अज्ञानी अनीश्वरवादी पापात्मा मनुष्य अपने शुभ कर्तव्यों में सर्वथा असमर्थ होता है ॥ ११ ॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२॥

यज्ञायज्ञियस्य । च । वै । सः । वाम-देव्यस्य । च । यज्ञस्य । च । यजमानस्य । च । पशूनाम् । च । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । दक्षिणायाम् । । दिशि ॥ १२ ॥

११—(यज्ञायज्ञियाय) म० १० । सर्वयज्ञहितकराय वेदज्ञानाय (वामदेव्याय) श्रेष्ठपरमात्मना विज्ञापिताय भूतपञ्चकाय (यज्ञाय) श्रेष्ठव्यवहाराय (यजमानाय) श्रेष्ठव्यवहारकारकाय पुरुषाय (पशुभ्यः) सर्वप्राणिभ्यः । अन्यत् पूर्ववत्-म० ३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥

उषाः । पुंश्चली । मन्त्रः । मागधः । वि-ज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्र-वर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥ १३ ॥

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनौ ० । ० ॥ १४ ॥

अमा-वास्या । च । पौर्ण-मासी । च । ० । ० ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (यज्ञायज्ञियस्य) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] का (च च) और भी (वामदेव्यस्य) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] का (च) और (यज्ञस्य) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] का (च) और (यजमानस्य) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाले पुरुष] का (च) और (पशूनाम्) सब जीव जन्तुओं का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाम्) दाहिनी [वा दक्षिण] (दिशि) दिशा में ॥ १२ ॥ (उषाः) हिंसा (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री, तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (मन्त्रः) मननगुणः (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [समान], (हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोल—

१२—(यज्ञायज्ञियस्य) सर्वव्यवहारहितस्य वेदज्ञानस्य (वामदेव्यस्य) श्रेष्ठपरमात्मना ज्ञापितस्य भूतपञ्चकस्य (यज्ञस्य) पूजनीयव्यवहारस्य (यजमानस्य) पूजनीयकर्मकारस्य पुरुषस्य (पशूनाम्) सर्वजन्तूनाम् (तस्य) तस्मै (दक्षिणायाम्) अवामदेशस्थायाम् । दक्षिणस्याम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ४॥

१३—(उषाः) उषः किच्च । उ० ४ । २३४ । उष दाहे वधे च—असि। हिंसा (मन्त्रः) सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् । उ० ४ । १५९ । मत ज्ञाने—ष्ट्रन् । मननगुणः । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥ १३ ॥ (अमावास्या) अमावस [कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि, अर्थात् अन्धकार वा अविद्या (च च) और भी (पूर्णमासी) पूर्णमासी [शुक्लपक्ष की अन्तिम तिथि, अर्थात् प्रकाश वा विद्या] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान] (मनः) मन.....[म० ६, ७, ८] ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के ज्ञान के साथ अविद्या के त्याग और विद्या की प्राप्ति से योग्य पदार्थों के उपकार और अयोग्यों के अपकार को जानकर अपना कर्तव्य करता है, वह संसार में कीर्तिमान् और यशस्वी होता है ॥ १२—१४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥

० सः । प्रतीचीम् । दिशम् । ० ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ (सः) वह (प्रतीचीम्) पीछे वाली [वा पश्चिम] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्य पीछे वाली वा पश्चिम दिशा में परमात्मा की व्यापकता विचार कर पुरुषार्थ करे ॥ १५ ॥

तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥१६॥

तम् । वैरूपम् । च । वैराजम् । च । आपः । च । वरुणः । च । राजा । अनु-व्यचलन् ॥ १६ ॥

१४—(अमावास्या) अमा सह चन्द्रार्कौ वसतोयत्र तिथौ सा, अमा + वस निवासे—आधारे ण्यत्, टाप्। कृष्णपक्षशेषतिथिः अन्धकारः। अविद्या (पौर्णमासी) पूर्णो मासश्चन्द्रो वर्तते यस्यां तिथौ सा। पूर्णमासादण्। वा० पा० ४। २। ३५। पूर्णमास—अण्। शुक्लपक्षान्तिमतिथिः प्रकाशः। विद्या। अन्यत् पूर्ववत्—म० ६ ॥

१५—(प्रतीचीम्) पश्चाद्भागस्थाम्। पश्चिमाम्। अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों का जताने वाला वेद ज्ञान] (च च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप, अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप का प्राप्त कराने वाला मोक्षज्ञान] (च) और (आपः) प्रजायें [सृष्टि की वस्तुयें] (च) और (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (वरुणः) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे विचरे ॥ १६ ॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष साक्षात् करता है कि सब वेदज्ञान, मोक्षज्ञान और सृष्टि के पदार्थ, और सब सृष्टि में उत्तम यह मनुष्य उसी परमात्मा के आश्रित हैं ॥ १६ ॥

वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥

वैरूपाय । च । वै । सः । वैराजाय । च । अत्-भ्यः । च । वरुणाय । च । राज्ञे । आ । वृश्चते । ० ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (वैरूपाय) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (वैराजाय) वैराज [विराट् रूप, बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्षज्ञान] के लिये (च) और (अद्भ्यः) प्रजाओं के लिये (च) और (राज्ञे) राजा [ऐश्वर्यवान्] (वरुणाय) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो मूर्ख (एवम्) व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य

१६—(तम्) व्रात्यम् (वैरूपम्) विरूप—अण् । विविधपदार्थानां रूपं निरूपणं यस्मात् तद् वेदज्ञानम् (च) (वैराजम्) विराज्-अण् । विराड्रूपस्य ऐश्वर्यवतः प्रकाशमानस्य वा परमात्मस्वरूपस्य प्रतिपादकं मोक्षज्ञानम् (च) (आपः) प्रजाः । सृष्टिपदार्थाः (च) (वरुणः) श्रेष्ठजीवो मनुष्यः (च) (राजा) ऐश्वर्यवान् (अनुव्यचलन्) अनुसृत्य विचरितवन्तः ॥

१७ (वैरूपाय) म० १६ । विविधपदार्थानां निरूपकाय वेदज्ञानाय (वैराजाय) विराड् रूपस्य परमात्मनः स्वरूपस्य प्रापकाय मोक्षज्ञानाय (अद्भ्यः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—परमात्मा के ज्ञान से विमुख पुरुष सब संसार की हानि करके पापी होता है ॥ १७ ॥

वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥

वैरूपस्य । च । वै । सः । वैराजस्य । च । अपाम् । च । वरुणस्य । च । राज्ञः । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । प्रतीच्याम् । दिशि ॥ १८ ॥

दूरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥

दूरा । पुंश्चली । हसः । मागधः । वि-ज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्र-वर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥ १९ ॥

अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो ० । ० ॥ २० ॥

अहः । च । रात्री । च । ० ॥ २० ॥

भाषार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (वैरूपस्य) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेदज्ञान] का (च च) और भी (वैराजस्य) वैराज [विराट्रूप ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त करने वाले मोक्षज्ञान] का (च) और (अपाम्) प्रजाओं का (च) और

प्रजाभ्यः (वरुणाय) श्रेष्ठजीवाय मनुष्याय (राज्ञे) ऐश्वर्यवते । अन्यत् पूर्ववत्-म० ३ ॥

१८—(वैरूपस्य) म० १६ । विविधपदार्थानां निरूपकस्य वेदज्ञानस्य (वैराजस्य) म० १६ विराड्रूपस्य परमात्मस्वरूपस्य प्रापकस्य मोक्षज्ञानस्य (अपाम्) प्रजानाम् (वरुणस्य) श्रेष्ठजीवस्य मनुष्यस्य (राज्ञः) ऐश्वर्यवतः (प्रतीच्याम्) पश्चाद्भवायाम् । पश्चिमायाम् । अन्यत् पूर्ववत्-म०-४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(राज्ञः) ऐश्वर्यवान् (वरुणस्य) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याम्) पीछे वाली [वा पश्चिम] (दिशि) दिशा में ॥ १८ ॥ (इरा) मदिरा [मद्यवस्तु] (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (हसः) हास्यरस (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकनेवाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [समान], (हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कलमलिः) [गति देने वाली] तारों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥ १९ ॥ (अहः) दिन (च च) और भी (रात्री) रात्री (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान], (मनः) मन.....[मन्त्र ६, ७, ८] ॥

भावार्थ--मनुष्य वेदज्ञान और मोक्षज्ञान द्वारा परमात्मा को प्राप्त करके दुष्कर्मों के सर्वथा त्याग और सत्कर्मों के निरन्तर निष्काम अनुष्ठान से संसार में आनन्द पाता है ॥ १८, १९, २० ॥

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥

सः । उत् । अतिष्ठत् । सः । उदीचीम् । दिशं । अनु । वि । अचलत् ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ, (सः) वह (उदीचीम्) बायीं [अथवा उत्तर] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ २१ ॥

भावार्थ--मनुष्य जगदीश्वर को बायीं ओर वा उत्तर दिशा में वर्तमान जानकर आत्मोन्नति करे ॥ २१ ॥

१९—(इरा) ऋज्रेन्द्राग्रवज्र० । उ० २ । २८ । इण् गतौ-रन्, टाप्, गुणाभावः । मद्यं वस्तु । मदिरा । इरा भूवाक्सुराप्सु स्यात् । अमर० २३ । १७६ । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५ ॥

२०—(अहः) दिनम् (रात्री) रात्रिः । अन्यत् पूर्ववत्-म० ६ ॥

२१—(उदीचीम्) वामभागवर्तमानाम् । उत्तरभागस्थाम् । अन्यत् पूर्ववत्-म० १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् २२

तम् । श्यैतम् । च । नौधसम् । च । सप्त-ऋषयः । च । सोमः । च । राजा । अनु-व्यचलन् ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(श्यैतम्) श्यैत [सद्गति बताने वाला वेदज्ञान] (च च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों का हितकारी मोक्षज्ञान] (च) और (सप्तर्षयः) सात ऋषि [छह इन्द्रियां और सातवीं बुद्धि अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (च) और (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (सोमः) प्रेरक मनुष्य (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे चले ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्य वेदज्ञान से परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके इन्द्रियों और आत्मा की शक्तियों को बढ़ाता हुआ परमेश्वर के आश्रय से बढ़ती करता जावे ॥ २२ ॥

श्यैतायं च वै स नौधसायं च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ २३ ॥

श्यैतायं । च । वै । सः । नौधसायं । च । सप्तर्षि-भ्यः । च । सोमाय । च । राज्ञे । आ । वृश्चते । यः । एवम् । विद्वांसम् । व्रात्यम् । उप-वदति ॥ २३ ॥

२२—(तम्) व्रात्यम् (श्यैतम्) ह्वश्याभ्यामितन् । उ० ३ । ९३ । श्यैङ् गतौ-इतन्, श्येत—अण् । श्येतस्य सद्गतेः प्रतिपादकं वेदज्ञानम् (च) (नौधसम्) नुवो धुट् च । उ० ४ । २२६ । णु स्तुतौ—असि, धुट् च, यद्वा गमेर्डोः । उ० २ । ६७ । नौते र्डौ प्रत्ययः + डु धाञ्—असि, नोधस्—अण् । नोधा ऋषिर्भवति नवनं दधाति—निरु० ४ । १६ । ऋषीणां हितकरं मोक्षज्ञानम् (च) (सप्तर्षयः) अ० ४ । ११ । ६ । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे । यजु० ३४ । ५५ । सप्त ऋषयः षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी—निरु० १२ । ३७ । त्वक् चक्षुः श्रवण-रसनाघ्राणमनोबुद्धयः (च) (सोमः) प्रेरको मनुष्यः (च) (राजा) ऐश्वर्यवान् (अनुव्यचलन्) अनुसृत्य विचरितवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (श्यैताय) श्यैत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (नौधसाय) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्षज्ञान] के लिये (च) और (सप्तर्षिभ्यः) सात ऋषियों [छह इन्द्रियों और सातवीं बुद्धि—म० २२] के लिये (च) और (राज्ञे) ऐश्वर्यवान् (सोमाय) प्रेरक जीव [मनुष्य] के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख] (पवम्) व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—कृतघ्न अज्ञानी पुरुष वेदज्ञान और मोक्षज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता और न वह जितेन्द्रिय और हितैषी हो सकता, इसी से वह सदा दुःख में पड़ा रहता है ॥ २३ ॥

श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥ २४ ॥

श्यैतस्य । च । वै । सः । नौधसस्य । च । सप्त-ऋषीणाम् । च । सोमस्य । च । राज्ञः । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । उदीच्याम् । दिशि ॥ २४ ॥

विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥

वि-द्युत् । पुंश्चली । स्तनयित्नुः । मागधः । वि-ज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्र-वर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥ २५ ॥

२३—(श्यैताय) म० २२ । सद्गतिप्रापकाय वेदज्ञानाय (नौधसाय) म० २२ । ऋषीणां हितकराय मोक्षज्ञानाय (सप्तर्षिभ्यः) सबुद्धिषडिन्द्रियेभ्यः (सोमाय) प्रेरकाय मनुष्याय (राज्ञे) ऐश्वर्यवते । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ २६ ॥

श्रुतम् । च । वि-श्रुतम् । च । परि-स्कन्दौ । मनः । वि-पथम् २६

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥

मातरिश्वा । च । पवमानः । च । विपथ-वाहौ । वातः । सारथिः । रेष्मा । प्र-तोदः ॥ २७ ॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

कीर्तिः । च । यशः । च । पुरः-सरौ । आ । एनम् । कीर्तिः । गच्छति । आ । यशः । गच्छति । यः । ० ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (श्यैतस्य) श्यत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] का (च च) और भी (नौधसस्य) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्ष ज्ञान] का (च) और (सप्तर्षीणाम्) सात ऋषियों [छह इन्द्रियों और सातवीं बुद्धि—मन्त्र २२] का (च) और (राज्ञः) ऐश्वर्यवान् (सोमस्य) प्रेरक पुरुष का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याम्) वायीं [वा उत्तर] (दिशि) दिशा में ॥२४॥ (विद्युत्) बिजुली [बिजुली समान चंचलता] (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (स्तनयित्नुः) मेघ की गर्जन (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने

२४—(श्यैतस्य) म० २२ । सद्गतिप्रतिपादकस्य वेदज्ञानस्य (नौधसस्य) ऋषीणां हितकरस्य मोक्षज्ञानस्य (सप्तर्षीणाम्) म० २२ । सबुद्धिषडिन्द्रियाणाम् (सोमस्य) प्रेरकस्य मनुष्यस्य (राज्ञः) ऐश्वर्यवतः । अन्यद् गतम्—म० ४ ॥

२५—(विद्युत्) तडिद्वच् चंचलता (स्तनयित्नुः) मेघगर्जनम् । शेषं गतम्—म० ५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [समान], (हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारा गणों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥ २५ ॥ (श्रुतम्) ख्याति [प्रशंसा] (च च) और (विश्रुतम्) विख्याति [प्रसिद्धि] (परिष्कन्दौ [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान] (मनः) मन (विपथम्) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि समान] ॥ २६ ॥ (मातरिश्वा) आकाश में घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु विशेष] (च च) और भी (पवमानः) संशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ ले चलाने वाले [बैल घोड़े आदि समान], (वातः) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हांकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोदः) अंकुश [कोड़ा, पैना समान] ॥२७॥ (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और भी (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रधावक [पायक समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा में लवलीन होता है, वही वेदज्ञान और मोक्षज्ञान से जितेन्द्रिय और सर्वहितैषी होकर संसार में सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द पाता है ॥ २४—२८ ॥

सूक्तम् ३ ॥

१—११ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ आर्षी गायत्री ; २ साम्न्युष्णिक् ; ३ याजुषी जगती ; ४, ११ आच्युष्णिक् ; ५ आर्ची बृहती ; ६ आसुर्यनुष्टुप् ; ७ साम्नी गायत्री ; ८ आसुरी पङ्क्तिः ; ९ आसुरी जगती १० प्राजापत्या त्रिष्टुप् ॥

परमात्मविराड्रूपोपदेशः—परमात्मा के विराट् रूप का उपदेश ॥

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु

२६—(श्रुतम्) ख्यातिः । प्रशंसा (विश्रुतम्) विख्यातिः । प्रसिद्धिः । अन्यद् गतम्—म० ६ ॥

२७—यथा मन्त्रः ७ ॥

२८—यथा मन्त्रः ८ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिष्ठसीति ॥ १ ॥

सः । सम्-वत्सरम् । ऊर्ध्वः । अतिष्ठत् । तम् । देवाः । अब्रुवन् । व्रात्य । किम् । नु । तिष्ठसि । इति ॥ १ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (संवत्सरम्) वर्ष भर तक [कुछ काल तक] (ऊर्ध्वः) ऊंचा (अतिष्ठत्) खड़ा रहा, (तम्) उस से (देवाः) देवता [विद्वान् लोग] (अब्रुवन्) बोले—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सब समूहों के हितकारी परमात्मन्] (किम्) क्यों (नु) अब (तिष्ठसि इति) तू खड़ा है ॥ १ ॥

भावार्थ—ऋषि लोग परमात्मा की सत्ता को विविध प्रकार विचारें कि वह जगदीश्वर प्रलय और सृष्टि के बीच क्या क्या करता है ॥ १ ॥

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥

सः । अब्रवीत् । आ-सन्दीम् । मे । सम् । भरन्तु । इति ॥२॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अब्रवीत्) बोला—(आसन्दीम्) सिंहासन (मे) मेरे लिये (सम्) मिलकर (भरन्तु इति) आप धरें॥२॥

भावार्थ—ऋषि लोग अनुभव करते हैं कि वह परमात्मा सर्वोपरि विराजकर अपनी महिमा दिखा रहा है ॥ २ ॥

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥

तस्मै । व्रात्याय । आ-सन्दीम् । सम् । अभरन् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस (व्रात्याय) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी

१—(सः) व्रात्यः परमात्मा (संवत्सरम्) किञ्चित्कालपर्यन्तम् (ऊर्ध्वः) उन्नतः (अतिष्ठत्) स्थितवान् (तम्) व्रात्यम् (देवाः) विद्वांसः (अब्रुवन्) अकथयन् । विचारितवन्तः (व्रात्य) हे सर्वसमूहहितकारिन् (किम्) किमर्थम् (नु) इदानीम् (तिष्ठसि) स्थितोभवसि (इति) पादपूर्तौ ॥

२—(सः) व्रात्यः (अब्रवीत्) (आसन्दीम्) सिंहासनम् (मे) मह्यम् (सम्) संगत्य (भरन्तु) धरन्तु भवन्तः (इति) ॥

३—(तस्मै) तादृशाय (व्रात्याय) सर्वसमूहहितकारिणे परमात्मने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा] के लिये (आसन्दीम्) सिंहासन (सम् अभरन्) उन्होंने मिलकर रक्खा ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग परस्पर विचार करके आगे के मन्त्रों की युक्ति से उस परमेश्वर को सर्वोपरि विराजमान समझें ॥ ३ ॥

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥

तस्याः । ग्रीष्मः । च । वसन्तः । च । द्वौ । पादौ । आस्ताम् । शरत् । च । वर्षाः । च । द्वौ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(वसन्तः) वसन्त ऋतु (च च) और (ग्रीष्मः) घाम ऋतु (तस्याः) उस [सिंहासन] के (द्वौ) दो (च) और (वर्षाः) बरसा ऋतु (च) और (शरत्) शरद् ऋतु (द्वौ) दो (पादौ) पाये (आस्ताम्) थे ॥ ४ ॥

भावार्थ—घाम आदि ऋतुयें अर्थात् समस्त काल परमात्मा के वशीभूत हैं ॥ ४ ॥

बृहच्च रथंतरं चानूच्ये ३ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥

बृहत् । च । रथम्-तरम् । च । अनूच्ये ३ इति । आस्ताम् । यज्ञायज्ञियम् । च । वामऽदेव्यम् । च । तिरश्च्ये ३ इति ॥ ५

भाषार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथंतरम्) रथंतर [रमणीय गुणों से पार होने योग्य जगत्] (अनूच्ये) दो पाटियां

(आसन्दीम्) सिंहासनम् (सम्) संगत्य (अभरन्) धारितवन्तो विद्वांसः ॥

४—(तस्याः) आसन्द्याः (ग्रीष्मः) निदाघकालः (च) (वसन्तः) (द्वौ) (पादौ) चरणे (आस्ताम्) अभवताम् (शरत्) शरद्ऋतुः (च) (वर्षाः) वृष्टिकालः (च) (द्वौ) ॥

५—(बृहत्) सू० २ । २ । प्रवृद्धमाकाशम् (रथंतरम्) सू० २ । २ । रमणीयैर्गुणैस्तरणीयं जगत् (च) (अनूच्ये) अनु + उच समवाये—क्यप् । सिंहासनादौ संगमनीये लम्बमाने द्वे काष्ठादिवस्तुनी (आस्ताम्) अभवताम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पट्टियां, लंबे काष्ठ आदि जोड़] (च) और (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेद ज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताया गया [भूतपंचक] (तिरश्च्ये) दो सेरुवे [तिरछे काष्ठ आदि जोड़] (आस्ताम्) थे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्यकृत सिंहासन में दो पाटी और दो सेरुवे होते हैं, वैसे ही परमेश्वर के सिंहासन के आकाश, जगत् आदि हैं ॥ ५ ॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥

ऋचः । प्राञ्चः । तन्तवः । यजूंषि । तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(ऋचः) ऋचायें [पदार्थों की गुणप्रकाशक विद्यायें] [उस सिंहासन के] (प्राञ्चः) लम्बे फैले हुये (तन्तवः) तन्तु [सूत] और (यजूंषि) यजुर्मन्त्र (तिर्यञ्चः) तिरछे फैले हुये [तन्तु] थे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे वस्त्र के ताने बाने में सूत लगते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सृष्टि रचना में ऋग्वेद और यजुर्वेद विद्यायें बनायी हैं ॥ ६ ॥

वेदः आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥

वेदः । आ-स्तरणम् । ब्रह्म । उप-बर्हणम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(वेदः) धन [उस सिंहासन का] (आस्तरणम्) बिछौना और (ब्रह्म) अन्न (उपबर्हणम्) बालिश [शिर रखने का सहारा] था ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सिंहासन पर गद्दी और बालिश लगाये जाते हैं, वैसे ही परमेश्वर ने संसार में धन और अन्न रचे हैं ॥ ७ ॥

(यज्ञायज्ञियम्) सू० २ । १० । सर्वेभ्यो यज्ञेभ्यो हितं वेदज्ञानम् (च) (वामदेव्यम्) सू० २ । १० । श्रेष्ठपरमेश्वरेण विज्ञापितं भूतपञ्चकम् (च) (तिरश्च्ये) तिरस् + च्युङ् गतौ-ड । अन्तर्गते लघुनी द्वे काष्ठादिवस्तुनी ॥

६—(ऋचः) पदार्थविज्ञानप्रकाशिकाविद्याः (प्राञ्चः) प्र + अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । प्रकर्षेण प्राप्ताः (तन्तवः) सूत्राणि (यजूंषि) सत्कर्मप्रतिपादकानि ज्ञानानि (तिर्यञ्चः) तिरस् + अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । तिर्यग्भवास्तन्तवः ॥

७—(वेदः) विदॢ लाभे-असुन् । धनम्—निघ० २ । १० (आस्तरणम्) आस्तरः । विष्टरः (ब्रह्म) अन्नम्-निघ० २ । ७ (उपबर्हणम्) बालिशम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ॥

साम । आ-सादः । उत्-गीथः । अप-श्रयः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(साम) सामवेद [मोक्षज्ञान] (आसादः) [उस सिंहासन का] बैठने का स्थान और (उद्गीथः) उद्गीथ [अच्छे प्रकार गाने योग्य ओ३म् शब्द] (अपश्रयः) सहारा था ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे सिंहासन में बैठने का स्थान और बैठने वाले के सुख के लिये सहारे होते हैं, वैसे ही परमात्मा ने विद्वानों के लिये मुक्तिज्ञान और प्रणव का जप बनाया है ॥ ८ ॥

तामासुन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥

ताम् । आ-सुन्दीम् । व्रात्यः । आ । अरोहत् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(ताम्) उस (आसन्दीम्) सिंहासन पर (व्रात्यः) व्रात्य [सब समूहों का हितकारी परमात्मा] (आ अरोहत्) चढ़ गया ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे चक्रवर्ती राजा सिंहासन पर ऊंचा बैठता है, वैसे ही परमात्मा सब संसार के ऊपर विराजमान है ॥ ९ ॥

तस्य देवजनाः परिष्कुन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाव्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥

तस्य । देव-जनाः । परि-स्कुन्दाः । आसन् । सम्-कल्पाः । प्र-हाव्याः । विश्वानि । भूतानि । उप-सदः ॥ १० ॥

भाषार्थ—(देवजनाः) विद्वान् लोग (तस्य) उस [व्रात्य परमात्मा]

८—(साम) मोक्षज्ञानम् (आसादः) आङ्+षद्लृ गतौ—घञ्। स्थितिस्थानम् (उद्गीथः) गश्चोदि। उ० २। १०। उत्+गै गाने—थक्। उच्चैर्गीयमानः सामध्वनिः प्रणवो वा (अपश्रयः) अप+श्रिञ् सेवायाम्—अच्। आश्रयः ॥

९—(ताम्) पूर्वोक्ताम् (आसन्दीम्) सिंहासनम् (व्रात्यः) सर्वसमूहहितकारी परमात्मा (आ अरोहत्) आरूढवान् ॥

१०—(तस्य) व्रात्यस्य (देवजनाः) विद्वांसः पुरुषाः (परिष्कन्दाः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के (परिष्कन्दाः) सेवक, (संकल्पाः) सङ्कल्प [दृढ़ विचार] (प्रहाय्याः) [उसके] दूत, और (विश्वानि) सब (भूतानि) सत्तायें [उसके] (उपसदः) निकटवर्ती (आसन्) थे ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे सिंहासन पर बैठे हुये राजराजेश्वर के सेवक, दूत और अन्य समीपवर्ती होते हैं, वैसे ही वह परमात्मा सब विद्वानों, दृढ़ संकल्पी लोगों और सब सत्ताओं को अपनी कृपा दृष्टि में रखता है ॥ १० ॥

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

विश्वानि । एव । अस्य । भूतानि । उप-सदः । भवन्ति । यः । ० ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(विश्वानि) सब (एव) ही (भूतानि) सत्ता वाले पदार्थ (अस्य) उस [विद्वान् पुरुष] के (उपसदः) समीपवर्ती (भवन्ति) होते हैं, (यः) जो (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा के तत्त्व को जान लेता है, वह योगीश्वर सब सत्ता वालों से यथावत् उपकार कर सकता है॥११॥

सूक्तम् ४ ॥

१—१८ ॥ व्रात्यो देवता॥ १,१३, १६ दैवी जगती; २, ८ आर्च्यनुष्टुप्; ३, १२ प्राजापत्या जगती; ४, ७, १० प्राजापत्या गायत्री; ५ भुरिक् प्राजापत्या बृहती; ६ आर्ची जगती; ९ आर्ची त्रिष्टुप्; ११ साम्नी त्रिष्टुप्; १४ प्राजापत्या बृहती; १५, १८ आर्ची पङ्क्तिः; १७ आर्च्युष्णिक् ॥

परमेश्वरस्य रक्षागुणोपदेशः—परमेश्वर के रक्षा गुण का उपदेश ॥

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥ तस्मै । प्राच्याः । दिशः ॥ १ ॥

परि+स्कन्दिर् गतिशोषणयोः-घञ्। परपुष्टाः। परिचराः (आसन्) (संकल्पाः) दृढविचाराः (प्रहाय्याः) श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः। उ० ३। ९६। ओ हाङ् गतौ—आय्य। प्रगन्तारः। दूताः (विश्वानि) सर्वाणि (भूतानि) सत्त्वानि। सत्तासमन्वितानि पदार्थजातानि (उपसदः) समीपवर्तिनः ॥

११—(विश्वानि) सर्वाणि (एव) अवधारणे (अस्य) विदुषः पुरुषस्य (भूतानि) सत्त्वानि (उपसदः) समीपवर्तिनः (भवन्ति) (यः) पुरुषः (एवम्) सू० २। ३। व्यापकं व्रात्यं परमात्मानम् (वेद) वेत्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथंतरं चानुष्ठातारौ २

वासन्तौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । बृहत् । च । रथम्-तरम् । च । अनु-ष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथंतरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

वासन्तौ । एनम् । मासौ । प्राच्याः । दिशः । गोपायतः । बृहत् । च । रथम्-तरम् । च । अनु । तिष्ठतः । यः । ० ॥३॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्याः) पूर्व (दिशः) दिशा से ॥ १ ॥ (वासन्तौ) वसन्त ऋतु वाले [चैत्र—वैशाख] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (बृहत्) बृहत् [बड़े आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाला वा विहित कार्यसाधक] [बनाया] ॥ २ ॥ (वासन्तौ) वसन्त ऋतु वाले (मासौ) दो महीने (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, [और दोनों] (बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] [उस के लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कार्य करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ३ ॥

१—(तस्मै) विदुषे जनाय (प्राच्याः) पूर्वायाः (दिशः) दिक्सकाशात् ॥

२—(वासन्तौ) वसन्तसम्बन्धिनौ चैत्रवैशाखौ (मासौ) (गोप्तारौ) रक्षकौ (अकुर्वन्) ते विद्वांसः कृतवन्तः (बृहत्) प्रवृद्धमाकाशम् (च) (रथन्तरम्) रमणीयगुणैस्तरणीयं जगत् (च) (अनुष्ठातारौ) सहवर्तमानौ । विहितकर्मसाधकौ ॥

३—(एनम्) विद्वांसम् (गोपायतः) रक्षतः (अनुतिष्ठतः) सहवर्तेते । विहितकर्म कुरुतः (यः) विद्वान् (एवम्) इण गतौ-वन् । व्यापकं व्रात्यं परमात्मानम् (वेद) जानाति । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् लोग निश्चय करके मानते हैं कि जो मनुष्य परमात्मा में विश्वास करता है, वह पुरुषार्थी जन पूर्वादि दिशाओं और वसन्त आदि ऋतुओं में सुरक्षित रहता है ॥ १—३ ॥

तस्मै॒ दक्षि॑णाया दि॒शः ॥४॥ तस्मै॑ । दक्षि॑णायाः । दि॒शः ॥४॥

ग्रैष्मौ॒ मासौ॒ गोप्ता॒रावकु॑र्वन् य॒ज्ञाय॒ज्ञिय॑ं च वामदे॒व्यं चानु॒ष्ठाता॑रौ ॥ ५ ॥

ग्रैष्मौ॑ । मासौ॑ । गोप्ता॑रौ । अकु॑र्वन् । य॒ज्ञाय॒ज्ञिय॑म् । च॒ । वाम॒-दे॒व्यम् । च॒ । ० ॥ ५ ॥

ग्रैष्मावे॑नं॒ मासौ॒ दक्षि॑णाया दि॒शो गो॑पायतो य॒ज्ञाय॒ज्ञिय॑ं च वामदे॒व्यं चानु॒ तिष्ठतो य ए॒वं वेद॑ ॥ ६ ॥

ग्रैष्मौ॑ । ए॒न॒म् । मासौ॑ । दक्षि॑णायाः । दि॒शः । गो॒पा॒य॒तः । य॒ज्ञाय॒ज्ञिय॑म् । च॒ । वाम॒-दे॒व्यम् । च॒ । ० ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से ॥ ४ ॥ (ग्रैष्मौ) घाम वाले [ज्येष्ठ-आषाढ़] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] को (च च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] [बनाया] ॥ ५ ॥ (ग्रैष्मौ) घाम वाले (मासौ) दो महीने (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों]

४—स्पष्टम् ॥

५, ६—(ग्रैष्मौ) ग्रीष्म—अण् । निदाघसम्बन्धिनौ ज्येष्ठाषाढौ मासौ) (यज्ञायज्ञियम्) व्याख्यातम्—सू० ३ म० ५ (वामदेव्यम्) गतम्—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेद ज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] करके जताया गया [भूतपञ्चक] [उस के लिये] (अनुतिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ४-६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥७॥ तस्मै । प्रतीच्याः । दिशः ॥ ७ ॥

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥

वार्षिकौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । वैरूपम् । च । वैराजम् । च ।० ॥ ८ ॥

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

वार्षिकौ । एनम् । मासौ । प्रतीच्याः । दिशः । गोपायतः । वैरूपम् । च । वैराजम् । च । ० ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिमी दिशा से ॥ ७ ॥ (वार्षिकौ) वर्षा वाले [श्रावण—भाद्र] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (च) और (वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेद ज्ञान को (च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्ष ज्ञान] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा विहित कर्म साधक] [बनाये] ॥ ८ ॥ (वार्षिकौ) वर्षा

सू० ३ म० ५ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—(तस्मै) विदुषे (प्रतीच्याः) पश्चिमायाः (दिशः) ॥

८, ९—(वार्षिकौ) वर्षा—ठञ् । वर्षासम्बन्धिनौ श्रावणभाद्रौ (वैरूपम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (मासौ) दोनों महीने (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिमी दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों का जताने वाला वेद ज्ञान] (च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा का स्वरूप प्राप्त कराने वाला मोक्ष ज्ञान] [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्यपरमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १-३ के समान है ॥ ७-९ ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥१०॥ तस्मै । उदीच्याः । दिशः ॥१०॥

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्त्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ११

शारदौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । श्यैतम् । च । नौधसम् । च । ० ॥ ११ ॥

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

शारदौ । एनम् । मासौ । उदीच्याः । दिशः । गोपायतः । श्यैतम् । च । नौधसम् । च । ० ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याः दिशः) उत्तर वाली दिशा से ॥ १० ॥ (शारदौ) शरद् ऋतु वाले [आश्विन—कार्तिक] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (च) और (श्यैतम्) श्यैत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] को (च)

सू० २ । १६ । पदार्थानां रूपं निरूपणं यस्मात् तद् वेदज्ञानम् । (वैराजम्) सू० २ । १६ । विराड्रूपस्य ऐश्वर्यवतः प्रकाशमानस्य वा परमात्मस्वरूपस्य प्रतिपादकं मोक्षज्ञानम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१०—(उदीच्याः) उत्तरायाः । अन्यद्गतम् ॥

११, १२—(शारदौ) शरत् सम्बन्धिनावाश्विनकार्त्तिकौ (श्यैतम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्ष ज्ञान] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्यसाधक] [बनाया] ॥ ११ ॥ (शारदौ) शरद् ऋतु वाले (मासौ) दो महीने (उदीच्याः दिशः) उत्तर वाली दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (श्यैतम्) श्यैत् [सद्गति बताने वाला, वेद ज्ञान] (च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों का हितकारी मोक्ष ज्ञान] [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ १०—१२ ॥

तस्मै ध्रुवायां दिशः ॥ १३ ॥ तस्मै । ध्रुवायाः । दिशः ॥ १३ ॥

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ १४

हैमनौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । भूमिम् । च । अग्निम् । च । ० ॥ १४ ॥

हैमनावेनं मासौ ध्रुवायां दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानुतिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥

हैमनौ । एनम् । मासौ । ध्रुवायाः । दिशः । गोपायतः । भूमिः । च । अग्निः । च । ० ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा से ॥ १३ ॥ (हैमनौ) शीत वाले [अग्रहायण—पौष] (मासौ) दो

सू० २ । २२ । श्येत—अण् । श्येतस्य सद्गतेः प्रतिपादकं वेदज्ञानम् (नौधसम्) सू० २ । २२ । नोधस्—अण् । नोधसाम् ऋषीणां हितकरं मोक्षज्ञानम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१३—(तस्मै) (ध्रुवायाः) अधोभवायाः (दिशः) ॥

१४, १५—(हैमनौ) सर्वत्राण् च तलोपश्च । पा० ४ । ३ । २२ । हेमन्त-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (भूमिम्) भूमि (च च) और (अग्निम्) अग्नि [भौतिक अग्नि] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] [बनाया] ॥१४॥ (हैमनौ) शीतवाले (मासौ) दो महीने (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (भूमिः) भूमि (च) और (अग्निः) अग्नि [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ १३— १५ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६॥ तस्मै । ऊर्ध्वायाः । दिशः ॥१६॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ॥१७

शैशिरौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । दिवम् । च । आदित्यम् । च । अनु-ष्ठातारौ ॥ १७ ॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

शैशिरौ । एनम् । मासौ । ऊर्ध्वायाः । दिशः । गोपायतः । द्यौः । च । आदित्यः । च । अनु । तिष्ठतः । यः । ० ॥१८॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा से ॥ १६ ॥ (शैशिरौ) शिशिर वाले [पतझड़ वाले, माघ—फाल्गुन] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (दिवम्) आकाश (च च) और (आदित्यम्) सूर्य को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] [बनाया] ॥१७॥ (शैशिरौ)

अण्, तलोपः । शीतसम्बन्धिनौ । आग्रहायणपौषौ (भूमिम्) पृथिवीम् (अग्निम्) भौतिकाग्निम् । अन्यद् गतम् ॥

१६-(तस्मै) (ऊर्ध्वायाः) उन्नतायाः ॥

१७, १८—(शिशिरौ) शिशिर अण् । शिशिरसम्बधिनौ माघ फाल्गुनौ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशिर वाले (मासौ) दोनों महीने (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (द्यौः) आकाश (च) और (आदित्यः) सूर्य [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—मन्त्र १-३ के समान है ॥ १६—१८ ॥

सूक्तम् ५ ॥

१—१६ ॥ परमात्मा देवता ॥ १, १०, १४ आर्षी गायत्री; २, १५, आर्ची त्रिष्टुप्; ३, १६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४, ६, ८, १२ स्वराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः; ५, ७, ९, १३ ब्राह्मी गायत्री; ११ निचृद् ब्राह्मी गायत्री ॥

परमात्मान्तर्यामित्वोपदेशः-परमात्मा के अन्तर्यामी होने का उपदेश ॥

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥

तस्मै । प्राच्याः । दिशः । अन्तः-देशात् । भवम् । इषु-आसम् । अनु-स्थातारम् । अकुर्वन् ॥ १ ॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥

भवः । एनम् । इषु-आसः । प्राच्याः । दिशः । अन्तः-देशात् । अनु-स्थाता । अनु । तिष्ठति । न । एनम् । शर्वः । न । भवः । न । ईशानः ॥ २ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥

न । अस्य । पशून् । न । समानान् । हिनस्ति । यः । ० ॥ ३ ॥

(दिवम्) आकाशम् (आदित्यम्) आदीप्यमानं सूर्यम् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्याः दिशः) पूर्व-दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्यदेश से (भवम्) सर्वत्र वर्तमान परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा नाशक, (अनुष्टातारम्) अनुष्ठाता [साथ रहने वाला] (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥ १ ॥ (भवः) सर्वत्र वर्तमान, (इष्वासः) हिंसा निवारक, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःख नाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्व-स्वामी परमेश्वर ॥ २ ॥ (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुण वालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वानों का मत है कि जो मनुष्य परमात्मा को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी जानकर सदा सर्वत्र पुरुषार्थ करके उसका आज्ञाकारी रहता है, वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब विघ्न हटाकर उस पर उसके अनुगामियों पर अनुग्रह करता है ॥ १-३ ॥

१—(तस्मै) विदुषे (प्राच्याः) पूर्वायाः (दिशः) (अन्तर्देशात्) मध्यदेशात् (भवम्) सर्वत्र वर्तमानं परमेश्वरम् (इष्वासम्) ईषेः किच्च । उ० १ । १३ । ईष हिंसायाम्-उप्रत्ययः, कित् ह्रस्वश्च, इषु+अस क्षेपे-अण् । हिंसायाः क्षेपकं नाशकम् (अनुष्टातारम्) सहवर्तमानम् (अकुर्वन्) ते विद्वांसः कृतवन्तः ॥

२—(भवः) सर्वत्र वर्तमानः (एनम्) विद्वांसम् (इष्वासः) हिंसा-नाशकः (प्राच्याः) (दिशः) (अन्तर्देशात्) (अनुष्ठाता) सहवर्तमानः (अनु) अनुलक्ष्य (तिष्ठति) वर्तते (न) निषेधे (शर्वः) दुःखनाशकः परमेश्वरः (न) (भवः) (न) (ईशानः) सर्वेश्वरः ॥

३—(न) निषेधे (अस्य) विदुषः (पशून्) प्राणिनः (न) (समानान्) तुल्यगुणान् पुरुषान् (हिनस्ति) दुःखयति (यः) विद्वान् (एवम्) ईदृशं व्यापकं वा व्रात्यं परमात्मानम् (वेद) जानाति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मै॒ दक्षि॑णाया दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाच्छ॒र्वमि॑ष्वा॒समनु॑ष्ठाता॒-
र॑मकुर्वन् ॥ ४ ॥

तस्मै॑ । दक्षि॑णायाः । दि॒शः । अ॒न्तः॒-दे॒शात् । श॒र्वम् । इ॒षु॒-
आ॒स॒म् । ० ॥ ४ ॥

श॒र्व एन॑मिष्वा॒सो दक्षि॑णाया दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शादनु॑ष्ठाता॒नु॑
तिष्ठति॒ नैन॑० ॥ ५ ॥

श॒र्वः । एन॑म् । इ॒षु॒-आ॒सः । दक्षि॑णायाः । दि॒शः ० । ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (शर्वम्) दुःखनाशक परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा निवारक, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥४॥ (शर्वः) दुःखनाशक, (इष्वासः) हिंसा निवारक, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला जगदीश्वर (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) इस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न..... [म० २, ३] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ४, ५ ॥

तस्मै॑ प्र॒तीच्या॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शात् प॑शु॒पति॑मिष्वा॒समनु॑ष्ठा॒-
तार॑मकुर्वन् ॥ ६ ॥

तस्मै॑ । प्र॒तीच्याः॑ । दि॒शः । अ॒न्तः॒-दे॒शात् । प॒शु॒-पति॑म् ।
इ॒षु॒-आ॒स॒म् । ० ॥ ६ ॥

प॒शु॒पति॑रेन॒मिष्वा॑सः प्र॒तीच्या॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शादनु॑० ॥ ७ ॥

प॒शु॒-पतिः॑ । एन॑म् । इ॒षु॒-आ॒सः । प्र॒तीच्याः॑ । दि॒शः । ०॥७॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम

४, ५—स्पष्टं पूर्ववच्च ॥

६, ७—(प्रतीच्याः) पश्चिमायाः (पशुपतिम्) प्राणिनां रक्षकम् (पशु-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (पशुपतिम्) प्राणियों के रक्षक परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥ ६ ॥ (पशुपतिः) प्राणियों का रक्षक, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न.....[म० २, ३] ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १–३ के समान है ॥ ६, ७ ॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥

तस्मै । उदीच्याः । दिशः । अन्तः-देशात् । उग्रम् । देवम् । इषु-आसम् । ० ॥ ८ ॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ८ ॥

उग्रः । एनम् । देवः । इषु-आसः । उदीच्याः । दिशः ।०॥ ८ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्यदेश से (उग्रम्) प्रचण्ड स्वभाव वाले (देवम्) प्रकाशमय परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥ ८ ॥ (उग्रः) प्रचण्ड स्वभाव वाला, (देवः) प्रकाशमय, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न..... [मन्त्र २, ३] ॥ ९ ॥

भावार्थ—मन्त्र १–३ के समान है ॥ ८, ९ ॥

पतिः) प्राणिनां रक्षकः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८, ९—(उदीच्याः) उत्तरायाः (उग्रम्) प्रचण्डस्वभावम् (देवम्) प्रकाशमयम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातार-मकुर्वन् ॥ १० ॥

तस्मै । ध्रुवायाः । दिशः । अन्तः-देशात् । रुद्रम् । इषु-आसम् । ० ॥ १० ॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनु ० ॥ ११ ॥

रुद्रः । एनम् । इषु-आसः । ध्रुवायाः । दिशः । ० ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (रुद्रम्) शत्रुनाशक परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥ १० ॥ (रुद्रः) शत्रुनाशक, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न..... [म० २,]३ ॥ ११ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ १०, ११ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठा-तारमकुर्वन् ॥ १२ ॥

तस्मै । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अन्तः-देशात् । महा-देवम् । इषु-आसम् । ० ॥ १२ ॥

महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनु ० ॥१३

महा-देवः । एनम् । इषु-आसः । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अन्तः-देशात् । अनु-स्थाता । ० ॥ १३ ॥

१०, ११—(ध्रुवायाः) अधोवर्तमानायाः (रुद्रम्) रुङ् गतिहिंसयोः-क्विप् तुक् च + रुङ् हिंसायाम्—ड । शत्रुनाशकम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (महादेवम्) महादेव [बड़े प्रकाशमय] परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥ १२ ॥ (महादेवः) महादेव [बड़ा प्रकाशमय] (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न ..... [म० २, ३] ॥ १३ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ १२, १३ ॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् १४

तस्मै । सर्वेभ्यः । अन्तः-देशेभ्यः । ईशानम् । इषु-आसम् । अनु-स्थातारम् । अकुर्वन् ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥

ईशानः । एनम् । इषु-आसः । सर्वेभ्यः । अन्तः-देशेभ्यः । अनु-स्थाता । अनु । तिष्ठति । न । एनम् । शर्वः । न । भवः । न । ईशानः ॥ १५ ॥

नास्य पशून् न समानन् हिनस्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

न । अस्य । पशून् । न । समानान् । हिनस्ति । यः ।० ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (सर्वेभ्यः) सब (अन्तर्देशेभ्यः) मध्यदेशों से (ईशानम्) सब के स्वामी परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन

१२, १३—(ऊर्ध्वायाः) उपरिवर्तमानायाः (महादेवम्) महाप्रकाशमयम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

१४, १५, १६—(अन्तर्देशेभ्यः) मध्यदेशेभ्यः (ईशानम्) सर्वस्वामिनम् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[विद्वानों] ने बनाया ॥ १४ ॥ (ईशानः) सब का स्वामी, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (सर्वेभ्यः अन्तर्देशेभ्यः) सब मध्य देशों से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर ॥ १५ ॥ (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न [उसके] (समानान्) तुल्य गुण वालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ १४, १५, १६ ॥

सूक्तम् ६ ॥

१—२६ ॥ व्रात्यो देवता, १, ४ आसुरी पङ्क्तिः; २, १७ आर्ची पङ्क्तिः; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ५, ११ साम्नी त्रिष्टुप्; ६, १२ निचृदार्ची बृहती; ७, १०, १३, १६, २४ आसुरी बृहती; ८ साम्नी पङ्क्तिः; ९ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; १४, २३ आर्ची त्रिष्टुप्; १५, १८ विराडार्षी जगती; १९ आर्च्यष्णिक्; २० साम्न्यनुष्टुप्; २१ आर्ची बृहती; २२ आर्ष्युष्णिक्; २५ आर्च्यनुष्टुप्, २६ विराडार्षी बृहती ॥

ईश्वरस्य सर्वस्वामित्वोपदेशः—ईश्वर के सर्वस्वामी होने का उपदेश ॥

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥ सः । ध्रुवाम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् ॥ १ ॥

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥ २ ॥

तम् । भूमिः । च । अग्निः । च । ओषधयः । च । वनस्पतयः । च । वानस्पत्याः । च । वीरुधः । च । अनु-व्यचलन् ॥ २ ॥

भूमेश्च वै सो ३ ऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्यत् पूर्ववत्—म० १—३, स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमेः । च । वै । सः । अग्नेः । च । ओषधीनाम् । च । वनस्पतीनाम् । च । वानस्पत्यानाम् । च । वीरुधाम् । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः । ० ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (ध्रुवाम्) नीची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १ ॥ (भूमिः) भूमि (च च) और (अग्निः) अग्नि [भौतिक अग्नि] (च) और (ओषधयः) ओषधें [जौ, गेहूं, चावल आदि अन्न] (च) और (वनस्पतयः) वनस्पतियां [पीपल आदि वृक्ष] (च) और (वानस्पत्याः) वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थ [काष्ठ फूल, फल, मूल, रस आदि] (च) और (वीरुधः) लतायें [सोमलता आदि] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ २ ॥ (सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (भूमेः) भूमि का (च च) और (अग्नेः) अग्नि का (च) और (ओषधीनाम्) ओषधियों का (च) और (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों का (च) और (वानस्पत्यानाम्) वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थों का (च) और (वीरुधाम्) लताओं का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् पुरुष परमात्मा को नीची आदि दिशाओं में सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता जानकर उसके उत्पन्न किये पृथिवी आदि पदार्थों का तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है, तब वह उनसे यथावत् उपकार लेकर सुख पाता है ॥ १—३ ॥

१—(सः) व्रात्यः (ध्रुवाम्) अधोवर्तमानाम् (दिशम्) (अनु) अनुलक्ष्य (व्यचलत्) विचरितवान् ॥

२—(तम्) व्रात्यम् (भूमिः) (च) (अग्निः) भौतिकाग्निः (ओषधयः) यवव्रीह्याद्यन्नानि (च) (वनस्पतयः) पिप्पलादयो वृक्षाः (वानस्पत्याः) वनस्पति–एय । वनस्पतिभ्य उत्पन्नाः काष्ठपुष्पफलमूलरसादयः (च) (वीरुधः) सोमलतादयः (च) (अनुव्यचलन्) अनुसृत्य व्यचरन् ॥

३—(धाम) गृहम् (एवम्) सू० २ म० ३ । इण् गतौ–वन् । ईदृशं व्यापकं वा व्रात्यम् । अन्यद् गतं सुगमं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥४॥ सः ऊर्ध्वाम् । दिशम् ०॥४॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥५

तम् । ऋतम् । च । सत्यम् । च । सूर्यः । च । चन्द्रः । च । नक्षत्राणि । च । ०॥ ५ ॥

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥

ऋतस्य । च । वै । सः । सत्यस्य । च । सूर्यस्य । च । चन्द्रस्य । च । नक्षत्राणाम् । च । ०॥ ६ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (ऊर्ध्वाम्) ऊंची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ ४ ॥ (ऋतम्) यथार्थ विज्ञान (च च) और (सत्यम्) [विद्यमान जगत् का हितकारी] अविनाशी कारण (च) और (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रः) चद्रमा (च) और (नक्षत्राणि) चलने वाले तारे (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ ५ ॥ (सः) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (ऋतस्य) सत्य विज्ञान का (च च) और (सत्यस्य) [विद्यमान् जगत् के हितकारी] अविनाशी कारण का (च) और (सूर्यस्य) सूर्य का (च) और (चन्द्रस्य) चन्द्रमा का (च) और (नक्षत्राणाम्) चलने वाले तारागणों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—परमात्मा के सामर्थ्य से ही अविनाशी विज्ञान और जगत् को नित्य कारण और कार्यरूप सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, ऐसा दृढ़ ज्ञानी पुरुष ईश्वरीय सत्यज्ञान को, कारणरूप और कार्यरूप जगत् को यथावत् जानकर आनन्द पाता है॥ ४, ५, ६ ॥

४—(सः) व्रात्यः (ऊर्ध्वाम्) उपरिवर्तमानाम् ॥

५, ६, (तम्) व्रात्यम् (ऋतम्) यथार्थविज्ञानम् (च) (सत्यम्) सत्—यत् । सते विद्यमानाय जगते हितम् । अविनाशि कारणम् (नक्षत्राणि) णक्ष गतौ—अत्रन् । गतिमन्तस्तारागणाः । अन्यद् गतं स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥७॥ सः । उत्-तमाम् । दिशम्।०७

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥ ८ ॥

तम् । ऋचः । च । सामानि । च । यजूंषि । च । ब्रह्म । च।०८

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

ऋचाम् । च । वै । सः । साम्नाम् । च । यजुषाम् । च । ब्रह्मणः । च । ० ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत्तमाम्) अत्यन्त ऊंची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ ७ ॥ (ऋचः) ऋग्वेद की ऋचायें [अर्थात् पदार्थों के गुण बताने वाले मन्त्र] (च च) और (सामानि) सामवेद के मन्त्र [अर्थात् मोक्ष प्रतिपादक मन्त्र] (च) और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र [अर्थात् सत्कर्म प्रकाशक ज्ञान] (च) और (ब्रह्म) अथर्ववेद [अर्थात् ब्रह्मज्ञान] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे चले ॥ ८ ॥ (सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (ऋचाम्) ऋग्वेद की ऋचाओं का (च च) और (साम्नाम्) सामवेद के मन्त्रों का (च) और (यजुषाम्) यजुर्वेद के मन्त्रों का (च) और (ब्रह्मणः) अथर्ववेद का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥९

भावार्थ—मनुष्य वेदों में प्रतिपादित ईश्वरीय ज्ञान को ऊंचे से ऊंचे स्थान में साक्षात् करके उन्नति करता हुआ मोक्षानन्द भोगता है ॥ ७, ८, ९ ॥

७—(सः) व्रात्यः (उत्तमाम्) अतिशयेनोन्नताम् । अन्यद् गतम् ॥

८, ९—(तम्) व्रात्यम् (ऋचः) पदार्थानां गुणप्रकाशका मन्त्राः (सामानि) मोक्षप्रतिपादकमन्त्राः (यजूंषि) सत्कर्मप्रकाशकज्ञानानि (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानप्रतिपादकोऽथर्ववेदः । अन्यद् गतं सुगमं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् ॥१०॥ सः । बृहतीम् । दिशम् । अनु ॥१०॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्११

तम् । इतिहास-आसः । च । पुराणम् । च । गाथाः । च । नाराशंसीः । च । अनु ॥ ११ ॥

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥

इतिहास-आसस्य । च । वै । सः । पुराणस्य । च । गाथानाम् । च । नाराशंसीनाम् । च । अनु ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (बृहतीम्) बड़ी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १० ॥ (इतिहासः) इतिहास [बड़े लोगों का वृत्तान्त] (च च) और (पुराणम्) पुराण [पुराने लोगों का वृत्तान्त] (च) और (गाथाः) गाथायें [गाने योग्य वेदमन्त्र, शिक्षाप्रद श्लोक आदि] (च) और (नाराशंसीः) नाराशंसी [वीर नरों की गुण-कथायें] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे चलीं ॥११॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (इतिहासस्य) इतिहास का (च च) और (पुराणस्य) पुराण का (च) और (गाथानाम्) गाथाओं का (च) और (नाराशंसीनाम्) नाराशंसियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम)

१०—(सः) व्रात्यः परमात्मा (बृहतीम्) प्रवृद्धाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

११, १२—(तम्) व्रात्यम् (इतिहासः) इतिह पारम्पर्योपदेश आस्तेऽस्मिन् । इतिह+आस उपवेशने विद्यमानतायां च—घञ् । महापुरुषाणां वृत्तान्तः (च) (पुराणम्) प्राचीनपुरुषाणां वृत्तान्तः (च) (गाथाः) उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन् । उ० २ । ४ । गै गाने—थन् । गानयोग्या वेदमन्त्राः । शिक्षाप्रदाः श्लोकादयः (नाराशंसीः) अ० १४ । १ । ७ । नर+शंसु स्तुतौ—अण् । दीर्घश्च, ततः स्वार्थे—अण्, ङीप् । येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रः—निरु० ८ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव के साथ उत्तम मनुष्यों के गुण कर्म स्वभाव का उपदेश करता है, वह इतिहास पुराण आदि द्वारा कीर्ति पाता है ॥ १०, ११, १२ ॥

मन्त्र १०—१२ महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका वेदसंज्ञा—विचार पृष्ठ ८२ में उद्धृत हैं ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१३॥ सः । परमाम् । दिशम् । ०॥१३॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च युज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १४ ॥

तम् । आ-हवनीयः । च । गार्ह-पत्यः । च । दक्षिण-अग्निः । च । युज्ञः । च । यजमानः । च । पशवः । च । ० ॥ १४ ॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च युज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद १५

आ-हवनीयस्य । च । वै । सः । गार्ह-पत्यस्य । च । दक्षिण-अग्नेः । च । युज्ञस्य । च । यजमानस्य । च । पशूनाम् । च । ० ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (परमाम्) सब से दूर (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १३ ॥ (आहवनीयः)

---

६ । वीरनराणां कीर्तनानि (अनुव्यचलन्) अनुसृत्य व्यचरन् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

१३—(सः) व्रात्यः परमात्मा (परमाम्) अतिदूराम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१४, १५—(तम्) व्रात्यम् (आहवनीयः) आङ्+हु दानादानादनेषु—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहवनीय [यज्ञ की अग्नि विशेष] (च च) और (गार्हपत्यः) गार्हपत्य [गृहपत की सिद्ध की हुयी यज्ञाग्नि विशेष] (च) और (दक्षिणाग्निः) दक्षिण-अग्नि [यज्ञाग्नि विशेष] (च) और (यज्ञः) यज्ञ (च) और (यजमानः) यजमान [यज्ञकर्ता] (च) और (पशवः) सब प्राणी (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ १४ ॥ (सः) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (आहवनीयस्य) आहवनीय [अग्नि] का (च च) और (गार्हपत्यस्य) गार्हपत्य [अग्नि] का (च) और (दक्षिणाग्नेः) दक्षिण अग्नि का (च) और (यज्ञस्य) यज्ञ का (च) और (यजमानस्य) यजमान का (च) और (पशूनाम्) सब प्राणियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा में ध्यान लगा कर संसार के उपकारी अग्निहोत्र आदि यज्ञ तथा विद्यादान और विद्वानों के सत्कार आदि यज्ञ करता है, वह परमात्मा का भक्त संसार में अति प्रशंसनीय होता है ॥ १३, १४, १५ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥

सः । अनादिष्टाम् । दिशम् । ० ॥ १६ ॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥

तम् । ऋतवः । च । आर्तवाः । च । लोकाः । च । लौक्याः । च । मासाः । च । अर्ध-मासाः । च । अहोरात्रे इति । च० १७

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥

अनीयर् । यज्ञाग्निविशेषः (गार्हपत्यः) गृहपतिना संयुक्तो यज्ञाग्निविशेषः (दक्षिणाग्निः) यज्ञाग्निविशेषः (यज्ञः) सद्व्यवहारः (यजमानः) यज्ञकर्ता (पशवः) सर्वे प्राणिनः । अन्यत् पूर्ववत् सुगमं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतूनाम् । च । वै । सः । आर्तवानाम् । च । लोकानाम् । च । लौक्यानाम् । च । मासानाम् । च । अर्ध-मासानाम् । च । अहोरात्रयोः । च । ० ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अनादिष्टाम्) बिना बताई हुयी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १६ ॥ (लोकाः) सब लोक (च च) और (लौक्याः) लोकों में रहने वाले (च) और (ऋतवः) ऋतुयें (च) और (आर्तवाः) ऋतुओं में उत्पन्न हुये पदार्थ (च) और (मासाः) महीने (च) और (अर्धमासाः) आधे महीने (च) और (अहोरात्रे) दिन राति (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ १७ ॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (लोकानाम्) सब लोकों का (च च) और (लौक्यानाम्) लोकों में रहने वालों का (च) और (ऋतूनाम्) ऋतुओं का (च) और (आर्तवानाम्) ऋतुओं में उत्पन्न हुये पदार्थों का (च) और (मासानाम्) महीनों का (च) और (अर्धमासानाम्) आधे महीनों का (च) और (अहोरात्रयोः) दोनों दिन राति का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि परमात्मा को सब लोकों, लोक वालों और ऋतुओं आदि का स्वामी जानकर सब पदार्थों का विवेकी होवे और उन से यथावत् उपकार लेकर आनन्द पावे ॥ १६, १७, १८ ॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नाबृत्स्यन्नमन्यत ॥ १९ ॥

सः । अनावृत्ताम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् । ततः । न । आ-बृत्स्यन् । अमन्यत ॥ १९ ॥

१६—(सः) व्रात्यः (अनादिष्टाम्) अज्ञापिताम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१७, १८—(तम्) व्रात्यम् (ऋतवः) वसन्तादयः (आर्तवाः) ऋतुभवाः पदार्थाः (लोकाः) भुवनानि (लौक्याः) लोक—एय । लोकभवाः पदार्थाः (मासाः) (अर्धमासाः) (अहोरात्रे) रात्रिदिने । अन्यत् पूर्ववत् सुगमं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥

तम् । दितिः । च । अदितिः । च । इडा । च । इन्द्राणी । च । अनु-व्यचलन् ॥ २० ॥

दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥

दितेः । च । वै । सः । अदितेः । च । इडायाः । च । इन्द्राण्याः । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अनावृत्ताम्) अनावृत [बिना अभ्यास की हुयी, मनुष्य की बिना जानी] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा, (ततः) उस [दिशा] से वह (न) नहीं (आवर्त्स्यन्) लौटेगा—(अमन्यत) उस [विद्वान्] ने माना ॥ १९ ॥ (दितिः) दिति [खण्डित विकृति अर्थात् कार्यरूप नाशवान् सृष्टि] (च च) और (अदितिः) अदिति [अखण्डित प्रकृति अर्थात् जगत् की अविनाशी परमाणु रूप सामग्री] (च) और (इडा) इड़ा [प्राप्ति योग्य वेदवाणी] (च) और (इन्द्राणी) इन्द्राणी [इन्द्र अर्थात् जीव की शक्ति] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ २० ॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (दितेः) दिति [नाशवान् सृष्टि] का (च च) और (अदितेः) [अदिति अविनाशी परमाणु रूप सामग्री] का (च) और (इडायाः) इड़ा [वेदवाणी] का (च) और (इन्द्राण्याः) इन्द्राणी [जीव की शक्ति] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः)

१९—(सः) व्रात्यः (अनावृत्ताम्) अनभ्यस्ताम् । अज्ञाताम् (ततः) तद्दिक्सकाशात् (न) (निषेधे) (आवर्त्स्यन्) आवृत्तिं पुनर्गमनं कर्तुमिच्छन् भविष्यति (अमन्यत) अबुध्यत विद्वान् पुरुषः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२०, २१—(तम्) व्रात्यम् (दितिः) दो अवखण्डने-क्तिच् । खण्डिता विकृतिः । कार्यरूपा नाशशीला सृष्टिः (अदितिः) दो अवखण्डने—क्तिन् । अखण्डिता प्रकृतिः । अविनाशिनी परमाणुरूपा सामग्री (इडा) वेदवाणी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ २१ ॥

भावार्थ—परमात्मा की अपार, अनादि और अनन्त शक्ति है, मनुष्य जितना जितना खोजता है, उतना उतना ही जगदीश्वर की सृष्टि और परमाणु रूप सामग्री को अनादि अनन्त ही पाता जाता है और वेद द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाता हुआ आनन्द मनाता चला चलता है ॥ १८, २०, २१ ॥

स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥ २२ ॥

सः । दिशः । अनु । वि । अचलत् । तम् । वि-राट् । अनु । वि । अचलत् । सर्वे । च । देवाः । सर्वाः । च । देवताः ॥२२

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥

वि-राजः । च । वै । सः । सर्वेषाम् । च । देवानाम् । सर्वासाम् । च । देवतानाम् । प्रियम् । धाम । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा (दिशः अनु) सब दिशाओं की ओर (वि अचलत्) विचरा, (विराट्) विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्डरूप संसार] (तम् अनु) उस [व्रात्य परमात्मा] के पीछे (वि अचलत्) विचरा, (च) और (सर्वे) सब (देवाः) दिव्यपदार्थ (च) और (सर्वाः) सब (देवताः) दिव्य शक्तियां [उसके पीछे विचरीं] ॥ २२ ॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (विराजः) विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान संसार] का (च च) और (सर्वेषाम्) सब (देवानाम्) उत्तम पदार्थों का (च) और (सर्वासाम्) सब (देवतानाम्)

निघ० १ । ११ (इन्द्राणी) इन्द्रस्य जीवस्य पत्नी विभूतिः शक्तिः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

२२, २३—(सः) व्रात्यः (दिशः) सर्वाः दिशाः (तम्) व्रात्यम् (विराट्) वि+राजृ दीप्तौ—क्विप् । विविधपदार्थैः प्रकाशमानो ब्रह्माण्डरूपसंसारः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम शक्तियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—यह संसार, दिव्यपदार्थ और उनकी दिव्यशक्तियां परमात्मा से सब दिशाओं में प्रसिद्ध हुई हैं, उस परमात्मा को साक्षात् करने वाला मनुष्य सब उत्तम पदार्थों और गुणों का विवेकी होकर संसार का प्रिय होता है ॥ २२, २३ ॥

ऋग्वेद १० । ९० । ५ तथा यजुर्वेद ३१ । ५ में ऐसा वर्णन है—(ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः) उस [पूर्ण पुरुष परमात्मा] से विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान संसार] उत्पन्न हुआ, विराट् [संसार] के ऊपर [अधिष्ठाता] पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] है ॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥

सः । सर्वान् । अन्तः-देशान् । अनु । वि । अचलत् ॥ २४ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥ २५ ॥

तम् । प्रजा-पतिः । च । परमे-स्थी । च । पिता । च । पितामहः । च । अनु-व्यचलन् ॥ २५ ॥

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥

प्रजा-पतेः । च । वै । सः । परमे-स्थिनः । च । पितुः । च । पितामहस्य । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः ।१०॥२६॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (सर्वान्) सब (अन्तर्देशान्

(देवाः) दिव्यपदार्थाः (देवताः) दिव्यशक्तयः । अन्यत् पूर्ववद् यथावद् योजनीयञ्च ॥

२४—२६—(सः) व्रात्यः परमात्मा (अन्तर्देशान्) मध्यदेशान् (तम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु) भीतरी देशों की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ २४ ॥ (प्रजापतिः) प्रजापालक [राजा] (च च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [बड़े पद वाला आचार्य वा सन्न्यासी] (च) और (पिता) बाप (च) और (पितामहः) दादा (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ २५ ॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (प्रजापतेः) प्रजापालक [राजा] का (च च) और (परमेष्ठिनः) परमेष्ठी [बड़ी स्थिति वाले आचार्य वा सन्न्यासी] का (च) और (पितुः) बाप का (च) और (पितामहस्य) दादा का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२६॥

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष गहरे विचार से यह देखते हैं कि संसार में सब लोग परब्रह्म परमात्मा की आज्ञा मानने से बड़े हुये हैं, वे ही ईश्वर की आज्ञा में रहकर उन्नति करते और आनन्द भोगते हैं ॥ २४—२६ ॥

सूक्तम् ७ ॥

१—५ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ निचृदार्षी गायत्री ; २ विराडार्षी बृहती ; ३ विराडार्ष्यनुष्टुप् ; ४ आर्षी गायत्री ; ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ॥

परमात्मव्यापकत्वोपदेशः—परमात्मा की व्यापकता का उपदेश ॥

स महिमा सद्वुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् १

सः । महिमा । सद्वुः । भूत्वा । अन्तम् । पृथिव्याः । अगच्छत् । सः । समुद्रः । अभवत् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (महिमा) महिमास्वरूप और (सद्वुः) वेगवान् (भूत्वा) होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (अन्तम्)

व्रात्यम् (प्रजापतिः) प्रजापालको राजा (परमेष्ठी) उच्चपदस्थ आचार्यः सन्न्यासी वा (पिता) जनकः (पितामहः) पितुः पिता । अन्यत् पूर्ववद् यथोचितं योजनीयं च ॥

१—(सः) व्रात्यः परमात्मा (महिमा) महत्-इमनिच् । महास्वरूपः (सद्वुः) हरिमितयोर्द्वुव्रः । उ० १ । ३४ । सद्+द्रु गतौ-कु, डित् । वेगवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त को (अगच्छत्) पहुंचा है, (सः) वह [परमात्मा] (समुद्रः) अन्तरिक्ष-रूप [अनादि, अनन्त] (अभवत्) हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी बड़ाई के कारण विद्वानों को पृथिवी से आगे अन्तरिक्ष के समान अनादि अनन्त जान पड़ता है ॥ १ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्ष भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥

तम् । प्रजा-पतिः । च । परमे-ष्ठी । च । पिता । च । पितामहः । च । आपः । च । श्रद्धा । च । वर्षम् । भूत्वा । अनु-व्यवर्तयन्त ॥ २ ॥

भाषार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापालक [राजा] (च च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सब से ऊंचे पद वाला आचार्य वा सन्यासी] (च) और (पिता) बाप (च) और (पितामहः) दादा (च) और (आपः) सत्कर्म (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (वर्षम्) श्रेष्ठपन को (भूत्वा) पाकर (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यवर्तयन्त) पीछे विविध प्रकार वर्तमान हुये हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—सब शूर वीर ज्ञानी और पूजनीय महात्मा संसार में उस परमात्मा ही का आश्रय लेकर श्रेष्ठ होते हैं ॥ २ ॥

ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ३

आ । ए॒न॒म् । आपः॑ । गच्छ॑ति । आ । ए॒न॒म् । श्रद्धा॑ । गच्छ॑ति । आ । ए॒न॒म् । वर्ष॑म् । गच्छ॑ति । यः । ए॒वम् । वेद॑ ॥ ३ ॥

(भूत्वा) (अन्तम्) सीमाम् (पृथिव्याः) भूमेः (अगच्छत्) प्राप्तवान् (सः) (समुद्रः) अन्तरिक्षसदृशः (अभवत्) ॥

२—(तम्) व्रात्यम् (आपः) आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च । उ० ४ । २०८ । आपॄ व्याप्तौ—असुन् । सुकर्म (श्रद्धा) धर्मविश्वासः (वर्षम्) वृतॄवदिवचि० । उ० ३ । ६२ । वृञ् वरणे—सप्रत्ययः । वरत्वं श्रेष्ठताम् (भूत्वा) भू प्राप्तौ—क्त्वा । प्राप्य (अनुव्यवर्तयन्त) अनुवृत्य वर्तमाना अभवन् । अन्यत् पूर्ववत्—सू० ६ । म० २५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(एनम्) उस [विद्वान्] पुरुष को (आपः) सत्कर्म (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (एनम्) उसको (वर्षम्) श्रेष्ठपन (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य परमात्मा को जान लेता है, तब वह सुकर्मी श्रद्धावान् और श्रेष्ठ होकर उन्नति करता है ॥ ३ ॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥

तम् । श्रद्धा । च । यज्ञः । च । लोकः । च । अन्नम् । च । अन्न-अद्यम् । च । भूत्वा । अभि-पर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (च च) और (यज्ञः) यज्ञ [सद् व्यवहार] (च) और (लोकः) समाज (च) और (अन्नम्) अन्न [जौ चावल आदि] (च) और (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि बना भोजन] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] में (भूत्वा) व्यापकर (अभिपर्यावर्तन्त) सामने सब ओर से आकर वर्तमान हुये हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—उस परमात्मा के ही सामर्थ्य से पुरुषार्थी पुरुष के लिये श्रद्धा आदि उपयोगी गुण, सब समाज और अन्न आदि भोग्य पदार्थ सर्वत्र सर्वदा वर्तमान रहते हैं ॥ ४ ॥

३—(आ) आगत्य (एनम्) विद्वांसं पुरुषम् (आपः) म० २ । सुकर्म (गच्छति) प्राप्नोति । अन्यद् गतं स्पष्टं च—म० २ ॥

४—(तम्) व्रात्यं परमात्मानम् (श्रद्धा) धर्मविश्वासः (यज्ञः) सद्व्यवहारः (लोकः) समाजः (अन्नम्) सस्यम् (अन्नाद्यम्) भक्षणीयं संस्कृतमन्नम् (भूत्वा) व्याप्य (अभिपर्यावर्तन्त) अभि + परि + आ + अवर्तन्त । अभितः परित आगत्य वर्तमाना अभवन् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं युज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ ५ ॥

आ । एनम् । श्रद्धा । गच्छति । आ । एनम् । युज्ञः । गच्छति । आ । एनम् । लोकः । गच्छति । आ । एनम् । अन्नं । गच्छति । आ । एनम् । अन्न-अद्यं । गच्छति । यः।०५

भाषार्थ—(एनम्) उस [विद्वान्] पुरुष को (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (एनम्) उस को (यज्ञः) सद्व्यवहार (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उसको (लोकः) समाज (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (अन्नम्) अन्न [जौ चावल आदि] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि बना भोजन] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही श्रद्धालु, सत्कर्मी, सर्वहितैषी और अन्नवान् होकर संसार में प्रशंसनीय होता है ॥ ५ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ८ ॥

१—३ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ साम्न्युष्णिक् ; २ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ३ आर्ची पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरस्य प्रभुत्वोपदेशः—परमेश्वर की प्रभुता का उपदेश ॥

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥

५—(आ) आगत्य (एनम्) विद्वांसं पुरुषम् (गच्छति) प्राप्नोति । अन्यत् पूर्ववत्-म० ४ सुगमं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स॒ः । अर॑ज्यत । तत॑ः । राज॒न्य॑ः । अ॒जा॒य॒त ॥ १ ॥

भाषार्थ—(सः) उस [व्रात्य परमात्मा] ने (अरज्यत) प्रेम किया, (ततः) उसी से वह (राजन्यः) सर्वस्वामी (अजायत) हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी स्वाभाविक प्रीति से सब सृष्टि का स्वामी है ॥ १ ॥

स विशः॒ सब॑न्धुनन्न॒मन्ना॒द्य॒मभ्युद॑तिष्ठत् ॥ २ ॥

सः । विशः॑ । स-ब॑न्धून् । अन्न॑म् । अन्न॒-अद्य॑म् । अ॒भि॒-उद॑तिष्ठत् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (सबन्धून्) बन्धुओं सहित [कुटुम्बियों] सहित (विशः) मनुष्यों पर, (अन्नम्) अन्न [जौ चावल आदि] पर और (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि] पर (अभ्युद-तिष्ठत्) सर्वथा अधिष्ठाता हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—परमात्मा मनुष्य आदि सब पदार्थों का अधिष्ठाता होकर सब की रक्षा करता है ॥ २ ॥

विशं॑ च॒ वै स सब॑न्धूनां चान्न॑स्य च॒ान्नाद्य॑स्य च प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥

विशा॑म् । च॒ । वै । सः । स-ब॑न्धूनाम् । च॒ । अन्न॑स्य । च॒ । अन्न॒-अद्य॑स्य । च॑ । प्रि॒यम् । धाम॑ । भ॒व॒ति॒ । यः । ० ॥ ३ ॥

१—(सः) व्रात्यः परमात्मा (अरज्यत) रञ्ज रागे, आसक्तौ प्रीतौ च-लङ्, दिवादिः । प्रीतियुक्तोऽभवत् सृष्टौ (ततः) तस्मात् कारणात् (राजन्यः) राजेरन्यः । उ० ३ । १०१ । राजृ दीप्तौ ऐश्वर्ये च—अन्य । सर्वस्वामी (अजायत) प्रादुरभवत् ॥

२—(सः) व्रात्यः परमात्मा (विशः) पु० लि० । मनुष्यान्-निघ० २ । ३ (सबन्धून्) बन्धुभिः सहितान् (अन्नम्) सस्यम् (अन्नाद्यम्) अदनीयं संस्कृतं पदार्थम् (अभ्युदतिष्ठत्) अभीत्य अधिष्ठितवान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (सबन्धूनाम्) बन्धुओं सहित (विशाम्) मनुष्यों का (च च) और (अन्नस्य) अन्न [जौ चावल आदि] का (च च) और (अन्नाद्यस्य) अनाज [रोटी पूरी आदि बने हुये पदार्थ] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर पुरुषार्थ करता है, वह सर्वहितकारी होने से सब में प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३ ॥

सूक्तम् ९ ॥

१–३ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ आसुरी जगती ; २ आर्षी गायत्री ; ३ आर्ची पङ्क्तिः ॥

राजधर्मव्यवस्थोपदेशः—राजधर्म की व्यवस्था का उपदेश ॥

स विशोऽनु व्यचलत् ॥१॥ सः । विशः । अनु । वि । अचलत् १

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (विशः अनु) मनुष्यों की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ १ ॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमात्मा ने वेदद्वारा मनुष्यों में राजधर्म का उपदेश किया है ॥ १ ॥

तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥ २ ॥

तम् । सभा । च समितिः । च । सेना । च । सुरा । च । अनु-व्यचलन् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सभा) सभा (च च) और (समितिः) संग्राम व्यवस्था

३–(विशाम्) मनुष्याणाम् (च) (वै) निश्चयेन (सः) विद्वान् (सबन्धूनाम्) सकुटुम्बिनाम् (अन्नस्य) सस्यस्य (अन्नाद्यस्य) भोग्यस्य संस्कृतपदार्थस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१–(सः) व्रात्यः परमात्मा (विशः) मनुष्यान् (अनु) अनुलक्ष्य अन्यत् पूर्ववत् ॥

२–(तम्) व्रात्यं परमात्मानम् (सभा) राजधर्मादिसभा (समितिः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) और (सेना) सेना (च) और (सुरा) राज्यलक्ष्मी (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥ २ ॥

भावार्थ—परमात्मा की विहित व्यवस्था से ही संसार में सभा आदि की संस्था स्थापित हुयी है ॥ २ ॥

इस मन्त्र का कुछ अंश महर्षि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ६ राजधर्म प्रकरण तथा संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

सभायाः । च । वै । सः । सम्-इतेः । च । सेनायाः । च । सुरायाः । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः । एवम् । वेद ॥३

भाषार्थ—(सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (सभायाः) सभा का (च च) और (समितेः) संग्राम व्यवस्था का (च) और (सेनायाः) सेना का (च) और (सुरायाः) राज्यलक्ष्मी का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा की व्यवस्था जानकर सभा आदि की यथावत् संस्था करते हैं, वे राज्यलक्ष्मी बढ़ा कर कीर्ति पाते हैं ॥ ३ ॥

सूक्तम् १० ॥

१—११—व्रात्यो देवता ॥ १, ५, साम्नी बृहती ; २ निचृदार्षी पङ्क्तिः ; ३, ४ प्राजापत्या पङ्क्तिः ; ६, ८, १० आसुरी गायत्री ; ७, ९ साम्न्युष्णिक् ; ११ आसुरी बृहती ॥

आतिथ्यमहिमोपदेशः—अतिथि सत्कार की महिमा का उपदेश ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

संग्रामः—निघ० २ । १७ । संग्रामव्यवस्था (सेना) (सुरा) षुर दीप्तौ ऐश्वर्ये च—क, टाप् । राज्यलक्ष्मीः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

३—उपरि व्याख्यातं यथोचितं योजनीयम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत् । यस्य । एवम् । विद्वान् । व्रात्यः । राज्ञः । अतिथिः । गृहान् । आ-गच्छेत् । ॥ १ ॥

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥

श्रेयांसम् । एनम् । आत्मनः । मानयेत् । तथा । क्षत्राय । न । आ । वृश्चते । तथा । राष्ट्राय । न । आ । वृश्चते ।२।

भाषार्थ—(तत्) फिर (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सद्व्रतधारी, सदाचारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (यस्य राज्ञः) जिस राजा के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आवे ॥ १ ॥ वह [राजा] (एनम्) उस [अतिथि] को (आत्मनः) अपने से (श्रेयांसम्) अधिक श्रेष्ठ (मानयेत्) सन्मान करे, (तथा) उस प्रकार [सत्कार] से वह [राजा] (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (न) नहीं (आ) कुछ (वृश्चते) दोषी होता है, और (तथा) उस प्रकार से (राष्ट्रम्) राज्य के लिये भी (न) नहीं (आ) कुछ (वृश्चते) दोषी होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जब ब्रह्मवादी आप्त विद्वान् अतिथि राजा के घर आवे, राजा उसको अपने से अधिक गुणी जानकर यथावत् सत्कार करे जिस से उसके सदुपदेश से दोषों के मिटने पर उसके कुल की और राज्य की वृद्धि होवे ॥ १, २ ॥

१—(तत्) तदा (यस्य) (एवम्) सू० २ म० ३ । इण्गतौ-वन् । व्यापकं परमात्मानम् (विद्वान्) विद ज्ञाने-शतृ, वसुरादेशः । जानन् (व्रात्यः) सू० १ । १ । व्रत-एय । व्रतधारी । सदाचारी (राज्ञः) नरपतेः (अतिथिः) अ० ७ । २१ । १ । ऋतन्यञ्जिवन्य० । उ० ४ । २ । अत सातत्यगमने—इथिन् । अतनशीलः । नित्यं प्रापणीयः । विद्वान् । अभ्यागतः (गृहान्) (आगच्छेत्) ॥

२—(श्रेयांसम्) प्रशस्यतरम् (आत्मनः) आत्मसकाशात् (मानयेत्) सत्कुर्यात् (तथा) तेन प्रकारेण (क्षत्राय) क्षत्रियकुलाय (न) निषेधे (आ) ईषत् (वृश्चते) वृश्च्यते । छिद्यते । दूषितो भवति (राष्ट्राय) राज्य-संपादनाय । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति३ अतः । वै । ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । उत् । अतिष्ठताम् । ते इति । अब्रूताम् । कम् । प्र । विशाव । इति ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी कुल (च च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल (उत् अतिष्ठताम्) दोनों ऊंचे होवें, (ते) वे दोनों (अब्रूताम्) कहें—(कम्) किस [गुण] में (प्र विशाव इति) हम दोनों प्रवेश करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी और क्षत्रिय लोग अतिथि का सत्कार करके विचार करें कि कौन से कौन से गुण स्वीकार करने से हमारी उन्नति होवे। इस का उत्तर आगे है ॥ ३ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥

ओ । बृहस्पतिम् । एव । ब्रह्म । प्र । विशतु । इन्द्रम् । क्षत्रम् । तथा । वै । इति ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी कुल (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े प्राणियों के रक्षक गुण में (एव) ही (प्र विशतु) प्रवेश करे, (तथा) उसी प्रकार [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य में [प्रवेश करे], (इति) ऐसा [अतिथि कहे] ॥ ४ ॥

भावार्थ—आप्त अतिथि मन्त्र ३ का उत्तर देवे कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष प्राणियों की रक्षा का और राजा लोग ऐश्वर्य प्राप्ति का प्रयत्न करते रहें ॥ ४ ॥

३—(अतः) एतस्मात् सत्कारात् (वै) निश्चयेन (ब्रह्म) ब्रह्मवादिकुलम् (च) (क्षत्रम्) क्षत्रियकुलम् (च) (उत्) उदेत्य (अतिष्ठताम्) तिष्ठताम् (ते) द्वे (अब्रूताम्) कथयताम् (कम्) कं गुणम् (प्र विशाव) आवां प्रविष्टौ भवाव (इति) ॥

४—(बृहस्पतिम्) बृहतां प्राणिनां पालकं गुणम् (एव) निश्चयेन (प्र विशतु) प्रविष्टं भवतु (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (तथा) तद्विधानेन सत्कारेण (इति) पादपूर्तौ । अन्यत् पूर्ववत्-म० ३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥

अतः । वै । बृहस्पतिम् । एव । ब्रह्म । प्र । अविशत् । इन्द्रम् । क्षत्रम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह ने (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े प्राणियों के रक्षक गुण [वेद ज्ञान आदि] में (एव) ही (प्र अविशत्) प्रवेश किया है, और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य में [प्रवेश किया है] ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस चक्रवर्ती संसार में यही नियम सदा से है कि ब्रह्मज्ञानियों ने वेदज्ञान आदि से और क्षत्रियों ने परम ऐश्वर्य बढ़ाने से प्रतिष्ठा पायी है ॥ ५ ॥

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥

इयम् । वै । ऊं इति । पृथिवी । बृहस्पतिः । द्यौः । एव । इन्द्रः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी [भूमि का राज्य] (वै) निश्चय करके (उ) ही (बृहस्पतिः) बड़े बड़े प्राणियों का रक्षक गुण है, (द्यौः) प्रकाशमान राजनीति (एव) ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य संसार में अतिथि सत्कार करके और उससे शिक्षा पाके राज्यपालन से प्राणियों की रक्षा करने की, और राजनीति से ऐश्वर्य बढ़ाने की योग्यता पावें ॥ ६ ॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥

अयम् । वै । ऊं इति । अग्निः । ब्रह्म । असौ । आदित्यः । क्षत्रम् ॥ ७ ॥

५—(प्र अविशत्) प्रविष्टमभवत् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ४ ॥

६—(इयम्) दृश्यमाना (वै) (उ) (पृथिवी) भूमिराज्यम् (बृहस्पतिः) महतां प्राणिनां रक्षको गुणः (द्यौः) दिवु द्युतौ गतौ च-डिवि । प्रकाशमाना राजनीतिः (एव) (इन्द्रः) परमैश्वर्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [अग्नि समान तेजस्वी] (एव) निश्चय करके (उ) ही (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह है और (असौ) वह (आदित्यः) सूर्य [सूर्य समान प्रतापी] (क्षत्रम्) क्षत्रिय समूह है ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य वेदों के मनन से अग्नि समान तेजस्वी और प्रजा-पालन से सूर्य समान प्रतापी होवें ॥ ७ ॥

ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥

आ । एनम् । ब्रह्म । गच्छति । ब्रह्म-वर्चसी । भवति ॥ ८ ॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥

यः । पृथिवीम् । बृहस्पतिम् । अग्निम् । ब्रह्म । वेद ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(एनम्) उस [पुरुष] को (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, और वह (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चसी [वेदाभ्यास से तेजस्वी] (भवति) होता है ॥ ८ ॥ (यः) जो [पुरुष] (पृथिवीम्) पृथिवी [पृथिवी के राज्य] को (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े प्राणियों का रक्षक गुण, और (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह को (अग्निम्) अग्नि [अग्नि समान तेजोमय] (वेद) जानता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रजापालक और अतिथि सत्कारक होकर वेदज्ञानियों के साथ विराजकर ब्रह्मवर्चसी होवे ॥ ८, ९ ॥

ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥

७—(अयम्) दृश्यमानः (वै) निश्चयेन (उ) एव (अग्निः) अग्निवत्तेजस्वी (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानिसमूहः (असौ) प्रसिद्धः (आदित्यः) आदीप्यमानः सूर्यः (क्षत्रम्) क्षत्रियकुलम् ॥

८—(आ) आगत्य (एनम्) ब्रह्मज्ञम् (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानिसमूहः (गच्छति) प्राप्नोति (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मणा वेदाध्ययनेन तदनुष्ठानेन च तेजस्वी (भवति) ॥

९—(यः) पुरुषः (पृथिवीम्) भूमिराज्यम् (बृहस्पतिम्) महतां प्राणिनां रक्षकगुणम् (अग्निम्) अग्निवत्तेजोमयम् (ब्रह्म) वेदज्ञानिकुलम् (वेद) जानाति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ । एनम् । इन्द्रियम् । गच्छति । इन्द्रिय-वान् । भवति१० य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

यः । आदित्यम् । क्षत्रम् । दिवम् । इन्द्रम् । वेद ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(एनम्) उस [पुरुषार्थी] को (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (इन्द्रियवान्) ऐश्वर्यवान् (भवति) होता है ॥ १० ॥ (यः) जो [पुरुष] (क्षत्रम्) क्षत्रिय समूह को (आदित्यम्) सूर्य [सूर्य समान तेजस्वी] और (दिवम्) प्रकाशमान राजनीति को (इन्द्रम्) ऐश्वर्य (वेद) जानता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रजापालन में दक्ष और सुनीतिप्रचार में चतुर होकर ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ १०, ११ ॥

सूक्तम् ११ ॥

१—११ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ आसुरी गायत्री ; २ भुरिक् शक्करी ; ३, ५, ६, ८ आर्ची बृहती ; ४, ७, ९ प्राजापत्या बृहती ; १० भुरिगार्ची बृहती ; ११ आर्ष्यनुष्टुप् ॥

आतिथ्यविधानोपदेशः—अतिथि सत्कार के विधान का उपदेश ॥

तद् यस्यै वं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

०। व्रात्यः । अतिथिः । ० [सू०१० म० १] ॥ १ ॥

स्वयमेनमभ्युदेत्यं ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥

१०—(आ) आगत्य (एनम्) पुरुषार्थिनम् (इन्द्रियम्) इन्द्रचिह्नम् । ऐश्वर्यम् (गच्छति) प्राप्नोति (इन्द्रियवान्) ऐश्वर्यवान् (भवति) ॥

११—(यः) पुरुषः (आदित्यम्) सूर्यवत्तेजोमयम् (क्षत्रम्) क्षत्रियकुलम् (दिवम्) दिवु द्यौ गतौ च—डिवि । दीप्यमानां राजनीतिम् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (वेद) जानाति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयम् । एनम् । अभि-उदेत्य । ब्रूयात् । व्रात्य । क्व । अवात्सीः । व्रात्य । उदकम् । व्रात्य । तर्पयन्तु । व्रात्य । यथा । ते । प्रियम् । तथा । अस्तु । व्रात्य । यथा । ते । वशः । तथा । अस्तु । व्रात्य । यथा । ते । नि-कामः । तथा । अस्तु । इति ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सद् व्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (यस्य) जिस [पुरुष] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आवे ॥ १ ॥ (स्वयम्) आप ही (अभ्युदेत्य) उठके जाकर (एनम्) उस [अतिथि] से (ब्रूयात्) कहे—(व्रात्य) हे व्रात्य ! (क्व) कहां (अवात्सीः) [रात्रि में] तू रहा था ? (व्रात्य) हे व्रात्य ! (उदकम्) यह जल है, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (तर्पयन्तु) वे [यह पदार्थ तुझे, अथवा, आप हमें] तृप्त करें, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (यथा) जैसे (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय [अभीष्ट] हो (तथा) वैसा ही (अस्तु) होवे, (व्रात्य) हे व्रात्य (यथा) जैसे (ते) तेरी (वशः) प्रधानता हो (तथा अस्तु) वैसा होवे, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (यथा) जैसे (ते) तेरी (निकामः) इच्छा पूर्ति हो (तथा अस्तु इति) वैसा ही होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को चाहिये कि जब कोई विद्वान् महामान्य अतिथि-घर पर आवे, प्रीति वचन, जल, अन्न आदि पदार्थों से उसकी सेवा करें ॥१,२॥

यह दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका अतिथि यज्ञविषय पृष्ठ २७१ में व्याख्यात हैं ॥

१—व्याख्यातम्—सू० १० म० १ ॥

२—(स्वयम्) आत्मना (एनम्) अतिथिम् (अभ्युदेत्य) अभिमुख-मुत्था य (ब्रूयात्) कथयेत् (व्रात्य) हे सद्व्रतधारिन् (क्व) कुत्र (अवात्सीः) निवासं कृतवानसि (व्रात्य) (उदकम्) जलम् (तर्पयन्तु) हर्षयन्तु एते पदार्था भवन्तम्, यद्वा भवन्तोऽस्मान् (यथा) येन प्रकारेण (ते) तव (प्रियम्) अभिमतम् (तथा) तेन प्रकारेण (अस्तु) भवतु (वशः) वशित्वम् । प्रधानत्वम् (निकामः) निरन्तरकामः । इच्छापूर्तिः (इति) पादपूरणे । अथ ३ पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदेनमाह व्रात्य क्वावात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥ ३ ॥

यत् । एनम् । आह । व्रात्य । क्व । अवात्सीः । इति । पथः । एव । तेन । देव-यानान् । अव । रुन्द्धे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (क्व) कहां (अवात्सीः इति) [रात्रि में] तू रहा था ? (तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (देवयानान्) विद्वानों के चलने योग्य (पथः) मार्गों को (अव रुन्द्धे) वह [अपने लिये] सुरक्षित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—अतिथि के साथ प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करने से गृहस्थ उस के उपदेश द्वारा सन्मार्ग पर चल कर आनन्द भोगे ॥ ३ ॥

यदेनमाहु व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

० । व्रात्य । उदकम् । इति । अपः । एव । तेन । अव । रुन्द्धे ४

भाषार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (उदकम् इति) यह जल है—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (अपः) सत्कर्म को (अव रुन्द्धे) वह [अपने लिये] सुरक्षित करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—अतिथि को जल आदि देने से गृहस्थ सत्कर्मी होता है ॥ ४ ॥

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमे व तेन वर्षीयांसं कुरुते ५

० । व्रात्य । तर्पयन्तु । इति । प्राणम् । एव । तेन । वर्षीयांसम् । कुरुते ॥ ५ ॥

३—(यत्) यदा (एनम्) अतिथिम् (आह) ब्रूते (पथः) मार्गान् (एव) निश्चयेन (तेन) सत्कारेण (देवयानान्) विद्वद्भिर्गन्तव्यान् (अव रुन्द्धे) आत्मने सुरक्षति । अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—(अपः) आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । उ० ४ । २०८ । आप्लृ व्याप्तौ—असुन् ह्रस्वश्च । कर्म—निघ० २ । १ । सत्कर्म । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह वह) [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (तर्पयन्तु इति) वे [यह पदार्थ तुझे, अथवा, आप हमें] तृप्त करें—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (प्राणम्) अपने प्राण [जीवन] को (वर्षीयांसम्) अधिक बड़ा (कुरुते) वह [गृहस्थ] करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग अतिथि महात्माओं का सत्कार करके उनके सदुपदेश से अपना जीवन उत्तम बनावें ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम भाग ऊपर आया है—अ० ९ । ६ (२) । २ ॥

यदेनमाहु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्वित्ति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥

यत् । एनम् । आहं । व्रात्यं । यथा । ते । प्रियम् । तथा । अस्तु । इतिं । प्रियम् । एव । तेनं । अवं । रुन्द्धे ॥ ६ ॥

ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्यं भवति य एवं वेदं ॥ ७ ॥

आ । एनम् । प्रियम् । गच्छुति । प्रियः । प्रियस्यं । भवुति। यः । एवम् । वेदं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [उत्तम व्रतधारी] (यथा) जैसे (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय हो (तथा) वैसा हो (अस्तु इति) होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (प्रियम्) अपने प्रिय वस्तु को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥ ६ ॥ (एनम्) उस [गृहस्थ] को (प्रियम्) प्रिय पदार्थ (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (प्रियस्य) अपने इष्ट मित्र का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः)

५—(प्राणम्) जीवनम् (वर्षीयांसम्) वृद्ध-ईयसुन्। प्रवृद्धतरम्। अन्यत् पूर्ववत् ॥

६—(यत्) यदा (एनम्) अतिथिम् (आह) ब्रूते (व्रात्य) (यथा) येन प्रकारेण (ते) तव (प्रियम्) अभिमतं भवतु । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—(आ) आगत्य (एनम्) गृहस्थम् (प्रियम्) अभिमतम् (गच्छति) प्राप्नोति (प्रियः) हितचिन्तकः (प्रियस्य) हितकरस्य (भवति) (यः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—आदर पूर्वक अतिथि को उसका प्रिय पदार्थ अर्पण करने से गृहस्थ अपना इष्ट पदार्थ उत्तम ज्ञानादि प्राप्त करके अपने मित्रों का प्रिय होवे ॥ ६, ७ ॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्वति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥

०। ते। वशः। तथा। अस्तु। इति। वशम्। एव। ०॥८॥

भाषार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [उत्तमव्रतधारी] (यथा) जैसे (ते) तेरा (वशः) प्रधानत्व हो, (तथा अस्तु इति) वैसा होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (वशम्) प्रधानत्व को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—गृहस्थ अतिथि की प्रधानता मानने से अपनी प्रधानता को दृढ़ करे ॥ ८ ॥

ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

आ। एनम्। वशः। गच्छति। वशी। वशिनाम्। भवति।०९

भाषार्थ—(एनम्) उस [गृहस्थ] को (वशः) प्रधानत्व (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (वशिनाम्) वश कर्ताओं का (वशी) वशकर्ता [शासक] (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—गृहस्थ विद्वान् नीतिज्ञ अतिथि का प्रभुत्व रखकर शासकों का शासक होवे ॥ ९ ॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्वति निकाममेव

गृहस्थः (एवम्) ईदृशं विद्वांसम् (वेद) जानाति ॥

८—(वशः) प्रधानत्वम् (वशम्) प्रधानताम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

९—(वशः) प्रभुता (वशी) वशयिता । शासकः (वशिनाम्) वशयितृणाम् । शासकानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेनावं रुन्द्धे ॥ १० ॥

यत् । एनम् । आह । व्रात्य । यथा । ते । नि-कामः । तथा । अस्तु । इति । नि-कामम् । एव । तेन । अव । रुन्द्धे ॥१०॥

भाषार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सत्यव्रतधारी] (यथा) जैसी (ते) तेरी (निकामः) लालसा [निश्चितकामना] हो, (तथा अस्तु इति) वैसा होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (निकामम्) अपनी लालसा को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—गृहस्थ अतिथि की विद्यावृद्धि आदि लालसा पूरी करने से अपनी लालसाओं की पूर्ति का उपाय जाने ॥ १० ॥

ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ११

आ । एनम् । नि-कामः । गच्छति । नि-कामे । नि-कामस्य । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(एनम्) उस [गृहस्थ] को (निकामः) लालसा (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, वह (निकामस्य) लालसा की (निकामे) निरन्तर पूर्ति में (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—गृहस्थ को योग्य है कि आप्त विद्वान् अतिथि का अनेक प्रकार सत्कार करके उन्नति की अभिलाषाओं को पूरा करे ॥ ११ ॥

सूक्तम् १२ ॥

१—११ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ स्वराडार्षी गायत्री ; २ प्राजापत्या बृहती ; ३ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ४ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ५, ६, ९, १० आसुरी गायत्री ; ७, ११ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; ८ आर्ची गायत्री ॥

१०—(निकामः) निश्चितकामः । लालसा (निकामम्) लालसाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

११—(निकामः) लालसा (निकामे) निरन्तरकामे । इच्छापूर्तौ (निकामस्य) लालसायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञानुष्ठाने विदुषः सम्मत्युपदेशः—यज्ञ करने में विद्वान् की सम्मति का उपदेश ॥

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्य॒ उद्धृ॑तेष्व॒ग्निष्व॑धि॒श्रिते॑ऽग्निहो॒त्रेऽति॑थिर्गृ॒हान॒ागच्छे॑त् ॥ १ ॥

त० । व्रात्यः । उद्धृतेषु । अग्निषु । अधि-श्रिते । अग्नि-होत्रे । अतिथिः । गृहान् । आ-गच्छेत् ॥ १ ॥

स्व॒यमे॑नमभ्यु॒देत्य॑ ब्रूया॒द् व्रात्या॑ति सृ॒ज हो॒ष्यामी॑ति ॥ २ ॥

स्वयम् । एनम् । अभि-उदेत्य । ब्रूयात् । व्रात्य । अति । सृज । होष्यामि । इति ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (उद् धृतेषु) ऊंची उठी हुयी (अग्निषु) अग्नियों के बीच (अग्निहोत्रे) अग्निहोत्र [हवन सामग्री] (अधिश्रिते) रक्खे जाने पर (यस्य) जिस [मनुष्य] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आजावे ॥ १ ॥ वह [मनुष्य] (स्वयम्) आप ही (अभ्युदेत्य) सामने से उठकर (एनम्) इस [अतिथि] से (ब्रूयात्) कहे—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सत्यव्रतधारी] (अति सृज) आज्ञा दे, (होष्यामि इति) मैं हवन करूंगा ॥ २ ॥

भावार्थ—यदि यज्ञ सामग्री उपस्थित और यज्ञ आरम्भ होने पर

१—(तत्) ततः (यस्य) मनुष्यस्य (एवम्) इण् गतौ—वन् । व्यापकं परमात्मानम् (विद्वान्) जानन् (व्रात्यः) सद्व्रतधारी (उद्धृतेषु) ऊर्ध्वं हृतेषु प्राप्तेषु (अग्निषु) अग्निज्वालासु (अधिश्रिते) स्थापिते सति (अग्निहोत्रे) अग्निहोमे । यज्ञे (अतिथिः) अतनशीलः । नित्यं प्राप्तव्यो विद्वान् (गृहान्) (आगच्छेत्) प्राप्नुयात् ॥

२—(स्वयम्) आत्मना (एनम्) अतिथिम् (अभ्युदेत्य) अभिमुखमुत्थाय (ब्रूयात्) कथयेत् (व्रात्य) (अति सृज) आज्ञापय (होष्यामि) होमं यज्ञं करिष्यामि (इति) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् ब्रह्मवादी अतिथि आजावे, गृहस्थ आदर पूर्वक उस महामान्य की सम्मति लेकर यज्ञ करे ॥ १, २ ॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥ ३ ॥

सः । च । अति-सृजेत् । जुहुयात् । न । च । अति-सृजेत् । न । जुहुयात् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [अतिथि] (च) यदि (अतिसृजेत्) आज्ञा देवे, (जुहुयात्) वह [गृहस्थ] हवन करे, (च) यदि वह (न अतिसृजेत्) न आज्ञा देवे, (न जुहुयात्) वह [गृहस्थ] न-हवन करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—विचारवान् अतिथि की आज्ञानुसार अधिकारी गृहस्थ यज्ञ करे और अनधिकारी न करे ॥ ३ ॥

स य एवं विदुषा ब्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ॥

सः । यः । एवम् । विदुषा । ब्रात्येन । अति-सृष्टः । जुहोति ४

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥

प्र । पितृ-यानम् । पन्थाम् । जानाति । प्र । देव-यानम् ॥५॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥

न । देवेषु । आ । वृश्चते । हुतम् । अस्य । भवति ॥ ६ ॥

पर्यस्यास्मिल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा ब्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥

परि । अस्य । अस्मिन् । लोके । आ-यतनम् । शिष्यते । यः । एवम् । विदुषा । ब्रात्येन । अति-सृष्टः । जुहोति ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक परमात्मा को

३—(सः) अतिथिः (च) यदि (अतिसृजेत्) आज्ञापयेत् (जुहुयात्) गृहस्थो होमं कुर्यात् (न) निषेधे । अन्यत् स्पष्टम् ॥

४—(सः) गृहस्थः (यः) गृहस्थः (एवम्) व्यापकं परमात्मानम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विदुषा) जानते हुये (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है, (सः) वह [गृहस्थ] ॥ ४ ॥ (पितृयाणम्) पितरों [पालनकर्ता बड़े लोगों] के चलने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) भले प्रकार (जानाति) जान लेता है, (देवयानम्) और देवताओं [विद्वानों] के चलने योग्य [मार्ग] को (प्र) भले प्रकार [जान लेता है] ॥ ५ ॥ वह (देवेषु) विद्वानों के बीच (आ) थोड़ा भी (न वृश्चते) दोषी नहीं होता है, [तब] (अस्य) उस [गृहस्थ] का (हुतम्) यज्ञ (भवति) हो जाता है ॥ ६ ॥ (अस्मिन् लोके) इस संसार में (अस्य) उस [गृहस्थ] की (आयतनम्) मर्यादा (परि) सब प्रकार (शिष्यते) शेष रह जाती है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (विदुषा) जानते हुये (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—गृहस्थ को योग्य है कि आदरपूर्वक विद्वान् मर्यादापुरुष सत्यव्रतधारी अतिथि की आज्ञा से उत्तम उत्तम कर्म करता रहे, जिससे उसकी मर्यादा और कीर्ति संसार में स्थिर होवे ॥ ४—७ ॥

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥

अथ । यः । एवम् । विदुषा । व्रात्येन । अनति-सृष्टः । जुहोति ॥ ८ ॥

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥

(विदुषा) जानता (व्रात्येन) सत्यव्रतधारिणाऽतिथिना (अतिसृष्टः) आज्ञापितः (जुहोति) यज्ञं करोति ॥

५—(प्र) प्रकर्षेण (पितृयाणम्) पालयितृभिर्गन्तव्यम् (पन्थाम्) पन्थानम् (जानाति) वेत्ति (प्र) (देवयानम्) विद्वद्भिर्गन्तव्यम् ॥

६—(न) निषेधे (देवेषु) विद्वत्सु (आ) ईषत् (वृश्चते) वृश्च्यते । दूषितो भवति (हुतम्) हवनम् । यज्ञः (भवति) सिद्ध्यति ॥

७—(परि) सर्वतः (अस्य) गृहस्थस्य (अस्मिन्) दृश्यमाने (लोके) संसारे (आयतनम्) यती-ल्युट् । मर्यादाम् । आश्रयः (शिष्यते) अवशिष्टं वर्तते । अन्यत् पूर्ववत्—म० ४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । पितृ-यानम् । पन्थाम् । जानाति । न । देव-यानम् ॥८॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥

आ । देवेषु । वृश्चते । अहुतम् । अस्य । भवति ॥ १० ॥

नास्यास्मिल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येना-नतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

न । अस्य । अस्मिन् । लोके । आ-यतनम् । शिष्यते । यः । एवम् । विदुषा । व्रात्येन । अनति-सृष्टः । जुहोति ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(अथ) और फिर (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुये (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अनतिसृष्टः) नहीं आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥ ८॥ वह (न) न तो (पितृयाणम्) पितरों [पालनकर्ता बड़े लोगों] के चलने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (जानाति) जनता है, और (न) न (देवयानम्) देवताओं [विद्वानों] के चलने योग्य [मार्ग] को [जनता है] ॥ ९ ॥ वह (देवेषु) विद्वानों के बीच (आ) सर्वथा (वृश्चते) दोषी होता है, और (अस्य) उस [गृहस्थ] का (अहुतम्) कुयज्ञ (भवति) हो जाता है ॥ १० ॥ (अस्मिन् लोके) इस संसार में (अस्य) उस (गृहस्थ) की (आयतनम्) मर्यादा (न शिष्यते) शेष नहीं रहती है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुये (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अनतिसृष्टः) नहीं आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो अयोग्य गृहस्थ नीतिज्ञ वेदवेत्ता अतिथि की आज्ञा बिना मनमाना काम करने लगता है, वह अनधिकारी होने से शुभ कार्य सिद्ध नहीं कर सकता और न लोग उसकी कुमर्यादा को मानते हैं ॥ ८—११ ॥

८—(अथ) अपिच (अनतिसृष्टः) अनाज्ञापितः । अन्यत् पूर्ववत्-म० ४ ॥

९—(न) निषेधे । अन्यत् पूर्ववत्-म० ५ ॥

१०—(आ) समन्तात् (अहुतम्) कुयज्ञः । अन्यत् पूर्ववत्-म० ६ ॥

११—(न) निषेधे (अनतिसृष्टः) अनाज्ञापितः । अन्यत् पूर्ववत्-म० ७ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १३ ॥

१—१४ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, ३, ५, ७ आर्च्युष्णिक् ; २, ४, ८ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ६ आसुरी गायत्री; ९ निचृदार्ची गायत्री; १० भुरिगार्ची गायत्री; ११ प्राजापत्या पङ्क्तिः ; १२ आसुरी जगती ; १३ विराडार्षी पङ्क्तिः ; १४ साम्नी पङ्क्तिः ॥

अतिथ्यनतिथ्योर्विषयोपदेशः—अतिथि और अनतिथि के विषय का उपदेश ॥

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्य॒ एका॑ रात्रि॒मति॑थिर्गृ॒हे व॑स॒ति ॥१॥

त॒त् । यस्य॑ । ए॒वम् । वि॒द्वान् । व्रात्यः॑ । एका॑म् । रात्रि॑म् । अति॑थिः । गृ॒हे । व॒स॒ति ॥१

ये पृ॑थि॒व्यां पु॒ण्या लो॒कास्ताने॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥ २ ॥

ये । पृ॒थि॒व्याम् । पु॒ण्याः । लो॒काः । तान् । ए॒व । तेन॑ । अव॑ । रु॒न्द्धे॒ ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (एकाम् रात्रीम्) एक रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥ १ ॥ (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उन समाजों को (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वान् गृहस्थ पुरुष आप्त सदाचारी अतिथि को एक दिन ठहरा कर उससे उपकारी भूमिविद्या ग्रहण करके लोगों में प्रतिष्ठा पावे १, २ ॥

१—(तत्) अनन्तरम् (यस्य) गृहस्थस्य (एवम्) व्यापकं परमात्मानम् (विद्वान्) जानन् (व्रात्यः) सत्यव्रतधारी (एकाम्) (रात्रिम्) कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया (अतिथिः) (गृहे) (वसति) तिष्ठति ॥

२—(ये) (पृथिव्याम्) भूम्याम् (पुण्याः) पवित्राः । उपकारिणः (लोकाः) दर्शनीयाः समाजाः (तान्) (एव) निश्चयेन (तेन) अतिथि-सत्कारेण (अव रुन्द्धे) सुरक्षति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्यो॒ द्वि॒तीयां॒ रात्रि॒मति॑थिर्गृ॒हे व॑स॒ति ३

० । व्रात्यः । द्वितीयाम् । रात्रिम् । ० ॥ ३ ॥

ये अ॒न्तरि॑क्षे पुण्या॑ लो॒कास्ताने॒व तेना॑व रुन्द्धे ॥ ४ ॥

ये । अन्तरिक्षे । पुण्याः । ० ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (द्वितीयां रात्रिम्) दूसरी रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥ ३ ॥ (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—गृहस्थ यथावत् सत्कार से अतिथि को दूसरे दिन ठहराकर उससे अन्तरिक्षविद्या प्राप्त करे ॥ ३, ४ ॥

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्य॑स्तृ॒तीयां॒ रात्रि॒मति॑थिर्गृ॒हे व॑स॒ति ५

० । व्रात्यः । तृतीयाम् । रात्रिम् । ० ॥ ५ ॥

ये दि॒वि पुण्या॑ लो॒कास्ताने॒व तेना॑व रुन्द्धे ॥ ६ ॥

ये । दिवि । पुण्याः । ० ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (तृतीयाम्) तीसरी (रात्रिम्) रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥ ५ ॥ (दिवि) सूर्य लोक में (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥ ६ ॥

३, ४—(अन्तरिक्षे) भूलोकसूर्यमध्यवर्तिनि लोके । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

५, ६—(दिवि) सूर्यमण्डले । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—गृहस्थ महामान्य अतिथि से तीसरी रात्रि ठहरा कर सूर्य-मण्डल का ज्ञान अर्थात् उपकारी ज्योतिष विद्या को प्राप्त करे ॥ ५, ६ ॥

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्य॑श्चतु॒र्थीं रात्रि॒मति॑थिर्गृ॒हे व॑स॒ति ७

० । व्रात्यः । चतुर्थीम् । रात्रिम् । अति॑थिः । ० ॥ ७ ॥

ये पु॒ण्या॒नां पु॒ण्या लो॒कास्ताने॒व तेना॒व रु॑न्द्धे ॥ ८ ॥

ये । पुण्यानाम् । पुण्याः । ० ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (चतुर्थीं) चौथी (रात्रीम्) रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥ ७ ॥ (पुण्यानाम्) पवित्र जनों के (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य सुअवसर को ग्रहण करके अतिथि विद्वान् से उत्तम मनुष्यों के सभ्यता आदि गुण ग्रहण करे ॥ ७, ८ ॥

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्योऽप॑रिमिता॒ रात्री॒रति॑थिर्गृ॒हे व॑स॒ति ।९

तत् । यस्य॑ । एवम् । विद्वान् । व्रात्यः । अप॑रि-मिताः । रात्रीः । अति॑थिः । गृहे । व॒स॒ति ॥ ९ ॥

य एवाप॑रिमिता॒ः पुण्या॒ लो॒कास्ताने॒व तेना॒व रु॑न्द्धे ॥ १० ॥

ये । ए॒व । अप॑रि-मिताः । पुण्याः । लो॒काः । तान् । एव । तेन॑ । अव॑ । रु॒न्द्धे ॥ १० ॥

भाषार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (अपरिमिताः) असंख्य (रात्रीः) रात्रियों (यस्य) जिस के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥ ९ ॥ (ये) जो (एव) निश्चय करके (अपरिमिताः) असंख्य

७, ८—(पुण्यानाम्) पवित्रजनानाम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

९, १०—(अपरिमिताः) असंख्याताः (रात्रीः) (लोकाः) दर्शनीयाः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जब मनुष्य को बड़े विद्वान् अतिथि से बहुत दिनों सत्संग करने का अवसर मिले, तो वह उससे ब्रह्मविद्या, राज्यविद्या आदि अनेक शुभविद्यायें प्राप्त करके उन्नति करे ॥ ६, १० ॥

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यव्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ११

अथ । यस्य । अव्रात्यः । व्रात्य-व्रुवः । नाम-बिभ्रती । अतिथिः । गृहान् । आ-गच्छेत् ॥ ११ ॥

कर्षैदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥ कर्षेत् । एनम् । न । च । एनम् । कर्षेत् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(अथ) और फिर (अव्रात्यः) अव्रात्य [कुव्रतधारी] (व्रात्यव्रुवः) अपने को व्रात्य [सत्यव्रत धारी] बताता हुआ, (नामबिभ्रती) केवल नाम धारण करता हुआ (अतिथिः) अतिथि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आजावे ॥ ११ ॥ वह [गृहस्थ] एनम्) उस [झूठे व्रात्य] को (कर्षेत्) तिरस्कार करे, (न) अब (च) निश्चय करके (एनम्) उस [मिथ्याचारी] को (कर्षेत्) तिरस्कार करे ॥ १२ ॥

समाजाः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

११—(अथ) अपि च (यस्य) गृहस्थस्य (अव्रात्यः) असत्यव्रतधारी (व्रात्यव्रुवः) व्रात्य + ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—क । आत्मानं व्रात्यं कथयन् (नामबिभ्रती) नाम + डुभृञ् धारणपोषणयोः—शतृ । इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् । वा० पा० ७ । १ । ३९ । ईकारादेशः सुविभक्तेः । नामधारयन् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१२—(कर्षेत्) कृष विलेखने—विधिलिङ् । अवकर्षेत् । तिरस्कुर्यात् । दण्डयेत् (एनम्) कुव्रात्यम् (न) सम्प्रति—निरु० ७ । ३१ (च) अवधारणे (एनम्) अव्रात्यम् (कर्षेत्) तिरस्कुर्यात् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—यदि कोई छली कपटी मिथ्यावादी मनुष्य अपने को सत्यव्रतधारी अतिथि बताकर आजावे, गृहस्थ उस पाखण्डी धूर्त को अवश्य निरादर करके निकाल देवे, और अगले दो मन्त्रों के अनुसार वर्ताव करे ॥ ११, १२ ॥

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥

अस्यै । देवतायै । उदकम् । याचामि । इमाम् । देवताम् । वासये । इमाम् । इमाम् । देवताम् । परि । वेवेष्मि । इति । एनम् । परि । वेविष्यात् ॥ १३ ॥

तस्यामे वास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

तस्याम् । एव । अस्य । तत् । देवतायाम् । हुतम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(अस्यै) उस (देवतायै) देवता [विद्वान्] को (उदकम्) जल (याचामि) समर्पण करता हूं, (इमाम्) उस (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (वासये) ठहराता हूं, (इमाम् इमाम्) उस ही (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (परि वेवेष्मि) भोजन परोसता हूं—(इति) इस प्रकार से (एनम्) उस [विद्वान्] की (परि वेविष्यात्) [भोजन आदि से] सेवा करे ॥ १३ ॥ (तस्याम् एव) उसी ही (देवतायाम्) देवता [विद्वान्] में (अस्य) उस [गृहस्थ] का (तत्) वह (हुतम्) दान (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (वेद) जानता है १४

१३—(अस्यै) अस्मै (देवतायै) देवाय । विदुषे (उदकम्) जलम् (इमाम् देवताम्) तं देवम् (वासये) निवासयामि (इमाम् इमाम्) तमेव (देवताम्) विद्वांसम् (परि वेवेष्मि) भोजनेन परिचरामि (इति) एवं प्रकारेण (एनम्) विद्वांसम् (परि वेविष्यात्) भोजनादिना सत्कुर्यात् ॥

१४—(तस्याम्) (एव) निश्चयेन (तत्) पूर्वोक्तम् (देवतायाम्) देवे । विदुषि पुरुषे (हुतम्) दानम् (भवति) (यः) अतिथिः (एवम्) व्यापकं परमात्मानम् (वेद) जानाति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—गृहस्थ को योग्य है कि पूर्वोक्त प्रकार से छली कपटी झूठे वेषधारी को दण्ड देवे और जो सत्यव्रतधारी ब्रह्मज्ञानी अतिथि हो, उसका यथावत् आदर मान करे और सब प्रकार जल, अन्न, स्थान आदि से उसकी सेवा करे ॥ १३, १४ ॥

सूक्तम् १४ ॥

१—२४ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, १३ आर्ष्युष्णिक् ; २, ४, २०, २२, २४ आसुर्युष्णिक् ; ३, ६, १५ आर्ची बृहती ; ५, २३ भुरिगार्ष्युष्णिक् ; ६ आसुरी गायत्री ; ७ ब्राह्मी गायत्री ; ८, १० आसुर्यनुष्टुप् ; ११, १६ भुरिगार्षी गायत्री ; १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; १४, १६, १८ प्राजापत्यानुष्टुप् ; १७ आर्ची पङ्क्तिः ; २१ निचृदार्ची बृहती ॥

अतिथेरुपकारोपदेशः—अतिथि के उपकार का उपदेश ॥

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानव्यचलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥

सः । यत् । प्राचीम् । दिशम् । अनु । वि-अचलत् । मारुतम् । शर्धः । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । मनः । अन्न-अदम् । कृत्वा ॥ १ ॥

मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

मनसा । अन्न-अदेन । अन्नम् । अत्ति । यः । ओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्राचीम्) पूर्व वा सामने वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (मारुतम्) [शत्रुओं के मारने वाले] शूरों का (शर्धः) बल (भूत्वा) होकर और (मनः) मन को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्य-

१—(सः) व्रात्योऽतिथिः (यत्) यदा (प्राचीम्) पूर्वाम् । अभिमुखीभूताम् (दिशम्) दिशाम् (अनु) अनुलक्ष्य (व्यचलत्) विचरितवान् (मारुतम्) अ० १ । २० । ११ । मृङ्रोरुतिः । उ० १ । ६४ । मृङ् प्राणत्यागे-उति । मारयन्ति शत्रून् ते मरुतः । देवाः । मरुत्—अण । शूराणामिदम् (शर्धः) बलम्-निघ० २ । ३ (भूत्वा) (अनुव्यचलत्) अनुक्रमेण विचरितवान् (मनः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलत्) लगातार चला गया ॥ १ ॥ (अन्नादेन) जीवनरक्षक (मनसा) मन के साथ वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी विद्वान् अतिथि अपने लगातार सदुपदेशों सत्कर्मों और सत्पराक्रमों से लोगों को बलवान् करके संसार की रक्षा करता है ॥ १, २ ॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥

० यत् । दक्षिणाम् । दिशम् । अनु । वि-अचलत् । इन्द्रः । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । बलम् । अन्न-अदम् । कृत्वा ॥ ३ ॥

बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥

बलेन । अन्न-अदेन । अन्नम् । ० ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (दक्षिणाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (भूत्वा) होकर और (बलम्) बल [सामर्थ्य] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ ३ ॥ (अन्नादेन) जीवन रक्षक (बलेन) बल से वह [अतिथि]

अन्तः करणम् (अन्नादम्) कृवृजॄसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित् । उ० ३ । १० । अन जीवने—नप्रत्ययः, नित् । अद भक्षणे अवने च—इति शब्दस्तोममहानिधिः । कर्मण्यण् । पा० ३ । २ । १ । अन्न+अद अवने रक्षणे—अण् । पदपाठे ह्रस्वत्वं पृषोदरादित्वात् । जीवनरक्षकम् (कृत्वा) विधाय ॥

२—(मनसा) अन्तःकरणेन (अन्नादेन) म० १ । जीवनरक्षकेण (अन्नम्) कृवृजॄसिद्रुपन्यनि० । उ० ३ । १० । अन जीवने—नप्रत्ययः, नित् । जीवनम् (अत्ति) अद भक्षणे अवने च, अदादिः—इति शब्दस्तोममहानिधिः । अवति रक्षति (यः) अतिथिः (एवम्) इण् गतौ—वन् । व्यापकं परमात्मानम् (वेद) जानाति ॥

३, ४—(दक्षिणाम्) दक्षिणदेशस्थाम् । स्वशरीरस्य दक्षिणभागस्थाम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान है ॥ ३, ४ ॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥

० यत् । प्रतीचीम् । दिशम् । अनु । वि-अचलत् । वरुणः । राजा । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । अपः । अन्नाऽन्नादीः । कृत्वा ५

अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥

अत्-भिः । अन्न-अदीभिः । अन्नम् । ० ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्रतीचीम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (भूत्वा) होकर और (अपः) [कर्मों में व्यापक रहने वाली] इन्द्रियों को (अन्नादीः) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ ५ ॥ (अन्नादीभिः) जीवन रक्षक (अद्भिः) इन्द्रियों के साथ वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान ॥ ५, ६ ॥

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्

(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (बलम्) सामर्थ्यम् (बलेन) सामर्थ्येन । अन्यत् पूर्ववत्-म० १, २ ॥

५, ६—(प्रतीचीम्) पश्चिमाम् । पश्चाद्भागस्थाम् (वरुणः) श्रेष्ठः (राजा) राजृ दीप्तौ ऐश्वर्ये च—कनिन् । ऐश्वर्यवान् । भूपालः (अपः) आपः=इन्द्रियाणि=आपनानि—निरु० १२ । ३७ । कर्मसु व्यापकानीन्द्रियाणि (अन्नादीः) म० १ । अन्नाद—ङीप् । जीवनरक्षिकाः (अद्भिः) इन्द्रियैः (अन्नादीभिः) जीवनरक्षिकाभिः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १,२ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥

० । यत् । उदीचीम् । दिशम् । अनु । वि-अचलत् । सोमः । राजा । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । सप्तर्षि-भिः । हुते । आ-हुतिम् । अन्न-आदीम् । कृत्वा ॥ ७ ॥

आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

आ-हुत्या । अन्न-अद्या । अन्नम् । ० ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (उदीचीम्) उत्तर वा बायीं (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (सोमः) पुरुषार्थी (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (भूत्वा) होकर (सप्तर्षिभिः) [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] सात गोलकों के साथ (हुते) हवन में (आहुतिम्) आहुति को [दानक्रिया अर्थात् परोपकार में इन्द्रियों को यज्ञ में आहुति सदृश] (अन्नादीम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥७॥ वह [अतिथि] (अन्नाद्या) जीवनरक्षक (आहुत्या) आहुति के साथ (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—म० १, २ के समान ॥ ७, ८ ॥

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥

० यत् । ध्रुवाम् । दिशम् । अनु । वि-अचलत् । विष्णुः । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । वि-राजम् । अन्न-अदीम् । कृत्वा । ९

७, ८—(उदीचीम्) उत्तराम् । वामभागवर्तमानाम् (सोमः) षु गतौ ऐश्वर्ये च-मन् । पुरुषार्थी (राजा) भूपतिः (सप्तर्षिभिः) शीर्षण्यसप्तगोलकैः सह (हुते) होमे (आहुतिम्) दानक्रियाम् (अन्नादीम्) म० १ । जीवनरक्षिकाम् (आहुत्या) यज्ञाग्नौ दानक्रियया (अन्नाद्या) जीवनरक्षिकया । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

वि-राजा । अन्न-अद्या । अन्नम् । ० ॥ १० ॥

भाषार्थ—(सः) यह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (ध्रुवाम्) नीचे वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (विष्णुः) विष्णु [कामों में व्यापक] (भूत्वा) होकर और (विराजम्) विराट् [विविध प्रकाशमान राज्यश्री] को (अन्नादीम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ ९ ॥ वह [अतिथि] (अन्नाद्या) जीवन रक्षक (विराजा) विराट् [विविध प्रकाशमान राज्यश्री] से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१० ॥

भावार्थ—म० १, २ के समान ॥ ९,१० ॥

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥

० । यत् । पशून् । अनु । वि-अचलत् । रुद्रः । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । ओषधीः । अन्न-अदीः । कृत्वा ॥ ११ ॥

ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥

ओषधीभिः । अन्न-अदीभिः । अन्नम् । ० ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (पशून् अनु) जीव जन्तुओं की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (रुद्रः) रुद्र [शत्रुनाशक] (भूत्वा) होकर और (ओषधीः) ओषधियों [जौ चावल आदि] को (अन्नादीः) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ ११ ॥

९, १०—(ध्रुवाम्) अधोगताम् (विष्णुः) कर्मसु व्यापकः परिडतः (विराजम्) वि+राजृ दीप्तौ ऐश्वर्ये च-क्विप् । विविधप्रकाशमानां राज्यश्रियम् (अन्नादीम्) जीवनरक्षिकाम् (विराजा) विविधप्रकाशमानया राज्यश्रिया (अन्नाद्या) जीवनरक्षिकया । अन्यत् पूर्ववत् म० १, २ ॥

११, १२—(पशून्) जीवजन्तून् (रुद्रः) रुङ् हिंसायाम्-क्विप् तुक् च+रुङ् हिंसायाम्-ड । शत्रुनाशकः (ओषधीः) यवव्रीह्यादिरूपाः (ओषधीभिः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह [अतिथि] (अन्नादीभिः) जीवनरक्षक (ओषधीभिः) ओषधियों से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान ॥ ११, १२ ॥

स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥

ओ । यत् । पितॄन् । अनु । वि-अचलत् । यमः । राजा । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । स्वधा-कारम् । अन्न-अदम् । कृत्वा ॥ १३ ॥

स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १४ ॥

स्वधा-कारेण । अन्न-अदेन । अन्नम् । ओ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (पितॄन् अनु) पितरों [पालन कर्ता बड़े लोगों की ओर] (व्यचलत्) विचरा, वह (यमः) न्यायी (राजा) राजा (भूत्वा) होकर और (स्वधाकारम्) अपने धारण सामर्थ्य को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ १३ ॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (स्वधाकारेण) अपने धारण सामर्थ्य से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान ॥ १३, १४ ॥

स मनुष्या३ ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥

यवव्रीह्यादिभिः (अन्नादीभिः) जीवनरक्षिकाभिः । अन्यत् पूर्ववत्—म० । १,२॥

१३, १४—(पितॄन्) पालकान् महापुरुषान् (यमः) न्यायी (राजा) प्रजाशासकः (स्वधाकारम्) स्वधारणसामर्थ्यम् (स्वधाकारेण) स्वधारणसामर्थ्येन । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० । यत् । मनुष्यान् । अनु । वि-अचलत् । अग्निः । भूत्वा । अनु-अचलत् । स्वहा-कारम् । अन्न-अदम् । ० ॥ १५ ॥

स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

स्वाहा-कारेण । अन्न-अदेन । ० ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (मनुष्यान् अनु) मनुष्यों [मननशील पुरुषों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी] (भूत्वा) होकर और (स्वाहाकारम्) वेदविद्या प्रचार को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ १५ ॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (स्वाहाकारेण) वेदविद्या प्रचार से (अन्नम्) जीवन को (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान ॥ १५, १६ ॥

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥ १७ ॥

० । यत् । ऊर्ध्वाम् । दिशम् । अनु । वि-अचलत् । बृहस्पतिः । भूत्वा । अनु-अचलत् । वषट्-कारम् । अन्न-अदम् । ० ॥ १७ ॥

वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १८ ॥

वषट्-कारेण । अन्न-अदेन । ० ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (ऊर्ध्वाम्) ऊंची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा वह (बृहस्पतिः)

१५, १६—(मनुष्यान्) मननशीलान् पुरुषान् (अग्निः) अग्निवत्तेजस्वी (स्वाहाकारम्) स्वाहा वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । वेदविद्याप्रचारम् (स्वाहाकारेण) वेदविद्याप्रचारेण । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

१७, १८—(ऊर्ध्वाम्) उन्नताम् (बृहस्पतिः) बृहतानां महतीनां विद्यानां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक] (भूत्वा) होकर और (वषट्कारम्) दानव्यवहार को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१७॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (वषट्कारेण) दानव्यवहार से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान ॥ १७, १८ ॥

स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥

० । यत् । देवान् । अनु । वि-अचलत् । ईशानः । भूत्वा । अनु-व्यचलत् । मन्युम् । अन्नु-अदम् । ० ॥ १९ ॥

मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥

मन्युना । अन्न-अदेन ० ॥ २० ॥

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (देवान् अनु) विद्वानों की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (ईशानः) समर्थ (भूत्वा) होकर और (मन्युम्) ज्ञान को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ १९ ॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (मन्युना) ज्ञान से (अन्नम्) जीवन को (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ २० ॥

भावार्थ—मन्त्र १, २ के समान ॥ १९,२० ॥

रक्षकः (वषट्कारम्) वह प्रापणे—डषटि । दानव्यवहारम् (वषट्कारेण) दानव्यवहारेण । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

१९, २०—(देवान्) विदुषः पुरुषान् (ईशानः) समर्थः (मन्युम्) यजिमनिशुन्धि० । उ० ३ । २० । मन ज्ञाने—युच् । मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोध-कर्मणो वधकर्मणो वा—निरु० १० । २९ । ज्ञानम् । प्रकाशम् (मन्युना) ज्ञानेन । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत् प्राण-मन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥

०। यत्। प्र-जाः। अनु। वि-अचलत्। प्रजा-पतिः। भूत्वा अनु-व्यचलत्। प्राणम्। अन्न-अदम्। ० ॥ २१ ॥

प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥

प्राणेन। अन्न-अदेन। ० ॥ २२ ॥

भावार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्रजाः अनु) प्रजाओं [प्राणियों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (प्रजापतिः) प्रजापति [प्राणियों का रक्षक] (भूत्वा) होकर और (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ २१ ॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवनरक्षक (प्राणेन) प्राण से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ २२ ॥

भावार्थ—मन्त्र १,२ के समान ॥ २१, २२ ॥

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥

सः। यत्। सर्वान्। अन्तः-देशान्। अनु। वि-अचलत्। परमे-स्थी। भूत्वा। अनु-व्यचलत्। ब्रह्म। अन्न-अदम्। कृत्वा ॥ २३ ॥

ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा। अन्न-अदेन। अन्नम्। अत्ति। यः। एवम्। वेद २४

२१, २२—(प्रजाः) जीवान् (प्रजापतिः) जीवपालः (प्राणम्) आत्मबलम् (प्राणेन) आत्मबलेन। अन्यत् पूर्ववत्-म० १, २॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (सर्वान्) सब (अन्तर्देशान् अनु) बीच वाले देशों की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सब से ऊंचे पद वाला] (भूत्वा) होकर और (ब्रह्म) परब्रह्म [जगदीश्वर] को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥ २३ ॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (ब्रह्मणा) परब्रह्म जगदीश्वर के साथ (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १,२ के समान ॥ २३, २४ ॥

सूक्तम् ॥ १५ ॥

१-६ ॥ व्रात्यो देवता ॥ तस्य व्रात्यस्य १, ३-६ दैवी पङ्क्तिः; २ आसुरी बृहती; योऽस्येति ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; योऽस्येति ४, ७, ८ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; योऽस्येति ५, ६, साम्नी बृहती; योऽस्येति ६ आर्च्यनुष्टुप् ॥ अतिथेः सामर्थ्योपदेशः—अतिथि के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥ तस्यं । व्रात्यस्य ॥ १ ॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

सप्त । प्राणाः । सप्त । अपानाः । सप्त । वि-आनाः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के ॥ १ ॥ (सप्त) सात (प्राणाः) प्राण [शरीर में भीतर जाने वाले जीवन वर्धक श्वास], (सप्त) सात (अपानाः) अपान [शरीर से बाहिर निकलने

२३, २४—(सर्वान्) समस्तान् (अन्तर्देशान्) मध्यदेशान् (परमेष्ठी) सर्वोपरिपदस्थः (ब्रह्म) परमात्मानम् (ब्रह्मणा) परमात्मना सह । अन्यत् पूर्ववत्—म० १, २ ॥

१—(तस्य) तादृशस्य (व्रात्यस्य) सत्यव्रतधारिणोऽतिथेः ॥

२—(सप्त) शीर्षण्यसप्तच्छिद्रसम्बन्धेन सप्तसंख्याकाः (प्राणाः) प्र+अन जीवने-घञ् । शरीरमध्यगामिनो जीवनवर्धका वायवः (सप्त) (अपानाः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले दोषनाशक प्रश्वास] और (सप्त) सात (व्यानाः) व्यान [सब शरीर में फैले हुये वायु] हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्राणियों के शरीर में मस्तक के भीतर दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख सात छिद्र बनाये हैं, इन को ही [सप्त ऋषयः, सप्त सिन्धवः, सप्त प्राणाः आदि] कहते हैं। विद्वान् योगी अतिथि इनकी विविध वृत्तियों को वश में करने से तत्त्वज्ञानी होकर सर्वोपकारी होता है। इन ही सात शीर्षण्य छिद्रों के सम्बन्ध से इस सूक्त तथा १६ और १७ में अतिथि के सात प्राण, सात अपान और सात व्यान का वर्णन है ॥ १, २ ॥

अथर्ववेद १०। २। ६ का वचन है—(कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णा-विमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य महानि चतुष्पादो द्विपदो-यन्ति यामम्) कर्ता प्रजापति ने [प्राणी के] मस्तक में सात गोलक खोदे, यह दोनों कान, दो नथने, दोनों आंखें और एक मुख। जिनके विजय की महिमा में चौपाये और दोपाये जीव अनेक प्रकार से सन्मार्ग चलते हैं ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ३

० । यः । अस्य । प्रथमः । प्राणः । ऊर्ध्वः । नाम । अयम् । सः । अग्निः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (प्राणः) प्राण [श्वास] (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व [ऊंचा] (नाम) नाम है, (सः) सो (अयम् अग्निः) यह अग्नि है [अर्थात् वह शारीरिक, पार्थिव, समुद्रीय, गुप्त प्रकट बिजुली आदि अग्नि विद्याओं का प्रकाशक होता है] ॥ ३ ॥

भावार्थ—मन्त्र ४ पर देखो ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥

अप+अन जीवने—घञ्। शरीरबहिर्गामिनो दोषनाशका वायवः (सप्त) (व्यानाः) वि+अन जीवने—घञ्। सर्वशरीरव्यापका वायवः ॥

३—(प्रथमः) आद्यः (ऊर्ध्वः) उन्नतः (अग्निः) अग्निविद्याप्रकाशः। अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्। अस्य। द्वितीयः। प्राणः। प्र-ऊढः। नाम। असौ। सः। आदित्यः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (प्राणः) प्राण (प्रौढः) प्रौढ [प्रवृद्ध] (नाम) नाम है, (सः) सो (असौ) यह (आदित्यः) चमकने वाला सूर्य है [अर्थात् वह सूर्यविद्या का प्रकाशक होता है—कि सूर्य का पृथिवी आदि लोकों और उनके पदार्थों से और उन सब का सूर्य लोक से क्या सम्बन्ध है यह विचारता है] ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र ६ पर देखो ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

ओ३म्। अस्य। तृतीयः। प्राणः। अभि-ऊढः। नाम। असौ। सः। चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः) तीसरा (प्राणः) प्राण [श्वास] (अभ्यूढ) अभ्यूढ [सामने से प्राप्त] (नाम) नाम है, (सः) सो (असौ चन्द्रमाः) यह चन्द्रमा है [अर्थात् वह बताता है कि उपग्रह चन्द्रमा, अपने ग्रह पृथिवी से किस सम्बन्ध से क्या प्रभाव करता है और इसी प्रकार अन्य चन्द्रमाओं का अन्य ग्रहों से क्या सम्बन्ध है] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ६ पर देखो ॥ ५ ॥

४—(प्रौढः) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। वा० पा० ६। १। ८६। प्र+ऊढः, वृद्धिः। प्रवृद्धः (आदित्यः) आदीप्यमानसूर्यविद्याप्रकाशः। अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

५—(अभ्यूढः) आभिमुख्येन प्राप्तः (चन्द्रमाः) चन्द्रविद्याप्रचारः। अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥ ६ ॥

प० । अस्य । चतुर्थः । प्राणः । वि-भूः । नाम । अयम् । सः । पवमानः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (प्राणः) प्राण [श्वास] (विभूः) विभू [व्यापक] (नाम) नाम है, (सः) सो (अयं पवमानः) यह पवमान [शोधक वायु] है [अर्थात् वह बताता है कि वायु क्या है और उस का प्रभाव सब जीवों, सब पृथिवी, सूर्य आदि लोकों पर क्या होता है] ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र ४ पर देखो ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नामेता इमा आपः ॥ ७ ॥

प० । अस्य । पञ्चमः । प्राणः । योनिः । नाम । ताः । इमाः । आपः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पांचवां (प्राणः) प्राण [श्वास] (योनिः) योनि [कारण] (नाम) नाम है, (ताः) सो (इमाः आपः) ये जल हैं [अर्थात् वह सिखाता है कि जल क्या है और वह भूमण्डल, मेघमण्डल, सूर्यमण्डल आदि लोकों से क्या सम्बन्ध रखता है] ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र ४ पर देखो ॥ ७ ॥

६—(विभूः) व्यापकः (पवमानः) शोधकवायुविद्या । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

७—(योनिः) यु मिश्रणामिश्रणयोः-नि । कारणम् (आपः) जलविद्या । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम ते इमे पशवः ॥ ८ ॥

अस्य । षष्ठः । प्राणः । प्रियः । नाम । ते । इमे । पशवः ।८।

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (प्राणः) प्राण [श्वास] (प्रियः) प्रिय [प्रीतिकारक] (नाम) नाम है, (ते) सो (इमे पशवः) ये पशु हैं [अर्थात् वह जताता है कि गौ अश्व आदि जीव पृथिवी लोक और दूसरे लोकों में कैसे उपकारी होते हैं] ॥ ८ ॥

भावार्थ—मन्त्र ६ पर देखो ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः । ९ ॥

०। अस्य । सप्तमः । प्राणः । अपरि-मितः । नाम । ताः । इमाः । प्र-जाः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) उस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवां (प्राणः) प्राण [श्वास] (अपरिमितः) अपरिमित [असीम] (नाम) नाम है, (ताः) सो (इमाः प्रजाः) यह प्रजायें हैं [अर्थात् वह समझाता है कि परमात्मा की सृष्टि में भूलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक आदि के मनुष्य, जीव जन्तुओं का सम्बन्ध आपस में और दूसरे लोक वालों से क्या रहता है] ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् मस्तक के सात छिद्रों द्वारा [मन्त्र १, २ देखो] प्रथम श्वास में विद्या, दूसरे में सूर्यविद्या, तीसरे में चन्द्रविद्या, चौथे में वायु-विद्या, पांचवें में जलविद्या, छठे में पशुविद्या, और सातवें में प्रजाओं के

८—(प्रियः) प्रीतिकरः (पशवः) गवाश्वादयः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

९—(अपरिमितः) अगणितः (प्रजाः) उत्पन्नजनानां सङ्घटनविद्याः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर संघटन की विद्या का प्रकाश करता है—अर्थात् वह बहुत शीघ्र मन की वृत्तियों को वश में करके प्रत्येक इन्द्रिय से प्रत्येक श्वास में संसार का उपकार करता है ॥ ३-६ ॥

सूक्तम् १६ ॥

१—७ ॥ व्रात्यो देवता ॥ तस्य व्रात्यस्य १—७ दैवी पङ्क्तिः ; योऽस्येति १, ३ साम्न्युष्णिक् ; योऽस्येति २, ४, ५ प्राजापत्योष्णिक् ; योऽस्येति ६ याजुषी त्रिष्टुप् ; योऽस्येति ७ आसुरी गायत्री ॥

अतिथेः सामर्थ्योपदेशः—अतिथि के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥ १ ॥

० । प्रथमः । अपानः । सा । पौर्ण-मासी ॥ १ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का- (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (अपानः) अपान [प्रश्वास अर्थात् बाहिर निकलने वाला दोषनाशक वायु] है, (सा) वह (पौर्णमासी) पौर्णमासी है [अर्थात् पूर्णमासेष्टि है जिसमें वह विचारता है कि उस दिन चन्द्रमा पूरा क्यों दीखता है, पृथिवी, समुद्र आदि पर उसका क्या प्रभाव होता है, इस प्रकार का यज्ञ वह ज्ञानी पुरुष अपने इन्द्रिय दमन से सिद्ध करता है] ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साऽष्टका ॥ २ ॥

० । द्वितीयः । अपानः । सा । अष्टका ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का- (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सः) वह (अष्टका) अष्टका है [अर्थात् वह अष्टमी आदि

१—(अपानः) प्रश्वासः । शरीरबहिर्गामी दोषनाशको वायुः (पौर्णमासी) अ० ७ । ८० । १ तथा १५ । १७ । ६ । पूर्णमास-अण्, ङीप् । पूर्णमासेष्टिः । पूर्णचन्द्रसम्बन्धिनी विद्या । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

२—(अष्टका) इष्यशिभ्यां तकन् । उ० ३ । १४८ । अशू व्याप्तौ अश भोजने वा-तकन्, टाप् । अष्टका पितृदेवत्ये । वा० पा० ७ । ३ । ४५ । इत्वाभावः ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथि का यज्ञ है जिसमें विद्वान् पितर लोग विचारते हैं कि ज्योतिष शास्त्र की मर्यादा से इन तिथियों में सूर्य और चन्द्र आदि का क्या प्रभाव पड़ता है] ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥ ३ ॥

०। तृतीयः । अपानः । सा । अमा-वास्या ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः) तीसरा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सा) वह (अमावास्या) अमावस्या है [वह दर्शेष्टि है जिसमें विचारा जाता है कि अमावस के सूर्य और चन्द्रमा एक राशि में आकर क्या प्रभाव उत्पन्न करते हैं] ॥ ३ ॥

पूर्णमासेष्टि और दर्शेष्टि के विषय में देखो—मनु० अ० ४ श्लो० २५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥

०। चतुर्थः । अपानः । सा । श्रद्धा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सा श्रद्धा) वह श्रद्धा है [वह ज्ञानी पुरुष जितेन्द्रियता से श्रद्धा प्राप्त करता है] ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥ ५ ॥

०। पञ्चमः । अपानः । सा । दीक्षा ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पाचवां (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सा दीक्षा) वह दीक्षा है [वह नियम और व्रतपालन की शिक्षा करता है] ॥ ५ ॥

अष्टम्यादितिथौ पितॄणां समागमेन ज्योतिषविद्याविचारः। अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

३—(अमावास्या) सू० १७ म० ६ । अमा सह वसतश्चन्द्रार्कौ यत्र, वस निवासे—एयत् । कृष्णपक्षशेषतिथिः, तद्दिने चन्द्रार्कावेकराशिस्थौ भवतः । दर्शेष्टिर्यज्ञविशेषः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

४—(श्रद्धा) गुरुवेदादिवाक्येषु विश्वासः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

५—(दीक्षा) नियमव्रतयोः शिक्षा । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥

०। षष्ठः । अपानः । सः । यज्ञः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का-(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (स यज्ञः) वह यज्ञ है [मानो वह परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार, परस्पर संयोग और विद्या आदि दान है] ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥ ७ ॥

०। सप्तमः । अपानः । ताः । इमाः । दक्षिणाः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का-(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवां (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (ताः) वे (इमाः) ये (दक्षिणाः) दक्षिणायें हैं [मानो वह यज्ञ समाप्ति पर विद्वानों के सत्कारद्रव्य हैं] ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सामान्य मनुष्य ज्ञान प्राप्ति के लिये पौर्णमासी आदि यज्ञ करके श्रद्धावान् होते हैं, वैसे ही विद्वान् अतिथि सन्न्यासी उस कार्मिक यज्ञ आदि के स्थान पर अपनी जितेन्द्रियता से मानसिक यज्ञ करके यज्ञ फल प्राप्त करते हैं, अर्थात् ब्रह्मविद्या ज्योतिषविद्या आदि अनेक विद्याओं का प्रचार करके संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ १-७ ॥

मनु महाराज कहते हैं—अ० ४ श्लो० २३ [वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा । वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम्] ॥

कोई कोई विद्वान् वाणी और प्राण [के संयम] में अक्षय यज्ञसिद्धि देखते हुये वाणी में प्राण का और प्राण में वाणी का हवन करते हैं [अर्थात् वाणी और प्राण का संयम करते हैं] ॥

६—(यज्ञः) यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् । पा० ३ । ३ । ९० । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु-नङ् । परमेश्वरविद्वत्सत्कार-परस्परसंयोग । विद्यादि-दानव्यवहारः । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

७—(दक्षिणाः) यज्ञसमाप्तौ विद्वद्भ्यः सत्कारद्रव्याणि । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १७ ॥

१—१० ॥ व्रात्यो देवता ॥ तस्य व्रात्यस्य १—१० दैवी पङ्क्तिः ; योऽस्येति १, ५ प्राजापत्योष्णिक् ; योऽस्येति २, ७ आसुर्यनुष्टुप् ; योऽस्येति ३ याजुषी पङ्क्तिः ; योऽस्येति ४ साम्न्युष्णिक् ; योऽस्येति ६ याजुषी त्रिष्टुप् ; समानमिति ८ आर्ची पङ्क्तिः ; यदादित्यमिति ९ साम्नी त्रिष्टुप् ; एकमिति १० साम्न्यनुष्टुप् ॥

व्रात्यसामर्थ्योपदेशः—व्रात्य के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १ ॥

ओ । अस्य । प्रथमः । वि-आनः । सा । इयम् । भूमिः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (व्यानः) व्यान [शरीर में फैला वायु] है, (सा) सो (इयम् भूमिः) यह भूमि है [अर्थात् वह भूगर्भविद्या, राज्यपालन आदि विद्या का उपदेश करता है] ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥

ओ । अस्य । द्वितीयः । वि-आनः । तत् । अन्तरिक्षम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (व्यानः) व्यान [शरीर में फैला हुआ वायु] है, (तत्) वह (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक है [अर्थात् वह वायुमण्डल, मेघमण्डल आदि का ज्ञान देता है] ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥ ३ ॥

ओ । अस्य । तृतीयः । वि-आनः । सा । द्यौः ॥ ३ ॥

१—(व्यानः) सर्वशरीरव्यापको वायुः (भूमिः) भूगर्भविद्या राज्यपालनादिविद्या च । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

२—(अन्तरिक्षम्) मध्यलोकस्थवायुमण्डलमेघमण्डलादिज्ञानम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः) तीसरा (व्यानः) व्यान [शरीर में फैला हुआ वायु] है, (सा) वह (द्यौः) सूर्य वा आकाश है [अर्थात् वह सूर्य के ताप आकर्षण आदि और आकाश के फैलाव आदि की विद्या को जताता है] ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥

ओ । अस्य । चतुर्थः । वि-आनः । तानि । नक्षत्राणि ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (तानि) वे (नक्षत्राणि) चलने वाले तारागण हैं [अर्थात् वह तारागणों के परस्पर आकर्षण रखने, अपने अपने मार्ग पर चलने और उछलने डूबने आदि का ज्ञान बताता है] ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥ ५ ॥

ओ । अस्य । पञ्चमः । वि-आनः । ते । ऋतवः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पाचवां (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (ते) वे (ऋतवः) ऋतुयें हैं [अर्थात् वह वसन्त आदि ऋतुओं के क्रम और कारण आदि का उपदेश करता है] ॥५॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥ ६ ॥

ओ । अस्य । षष्ठः । वि-आनः । ते । आर्तवाः ॥ ६ ॥

३—(द्यौः) सूर्यतापाकर्षणादिविद्या । आकाशस्य विस्तारादिविद्या । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

४—(नक्षत्राणि) अमिनक्षियजिबधिपतिभ्योऽत्रन् । उ० ३ । १०५ । णक्ष गतौ—अत्रन् । गतिशीलानां तारागणानां परस्परानाकर्षणादिज्ञानम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

५—(ऋतवः) वसन्तादीनां क्रमकारणादिबोधः अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (ते) वे (आर्तवाः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थ हैं [अर्थात् वह फूल फल आदि की उत्पत्ति और उपकार का ज्ञान देता है] ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥ ७ ॥

० । यः । अस्य । सप्तमः । वि-आनः । सः । सम्-वत्सरः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवां (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (सः) वह (संवत्सरः) संवत्सर है [अर्थात् वर्ष में ऋतु महीने आदि कैसे वसते हैं और सब मनुष्य आदि प्राणी कैसे उसका उपभोग करते हैं, इस का वह ज्ञान कराता है] ॥ ७ ॥

भावार्थ—सत्यव्रतधारी महात्मा अतिथि सन्न्यासी अपने प्रत्येक व्यान वायु की चेष्टा में संसार का उपकार करता है, जैसे वह प्रथम व्यान में भूमिविद्या, दूसरे में अन्तरिक्षविद्या, तीसरे में सूर्यविद्या वा आकाशविद्या, चौथे में नक्षत्र-विद्या, पाचवें में वसन्त आदि ऋतुविद्या, छठे में ऋतुओं में उत्पन्न पुष्प फल आदि पदार्थविद्या और सातवें में संवत्सर अर्थात् काल की उपभोगविद्या का उपदेश करता है ॥ १–७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतद्व्रतपा अनु परियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥

० । समानम् । अर्थम् । परि । यन्ति । देवाः । सम्-वत्सरम् ।

६—(आर्तवाः) ऋतुभवानां पुष्पफलादिपदार्थानां ज्ञानम् । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

७—(संवत्सरः) संपूर्वाच्चित् । उ० ३ । ७२ । सम् + वस निवासे सरन्, स च चित् । संवसन्ति वसन्तादयो यत्र । कालोपभोगविद्या । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वै । एतत् । ऋतवः । अनु-परियन्ति । व्रात्यम् । च ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के-(समानम्) एक से अर्थात् धार्मिक (अर्थम्) अर्थ [विचार] को (देवाः) विद्वान् लोग (परि) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त करते हैं, (च) और (व्रात्यम्) उस व्रात्य [सत्यव्रतधारी पुरुष] के (वै) निश्चय करके (एतत्) इस प्रकार से (अनुपरियन्ति) पीछे फिर कर चलते हैं, [जैसे] (ऋतवः) ऋतुयें (संवत्सरम्) वर्षकाल के [पीछे चलते हैं] ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो सत्यव्रतधारी परोपकारी सन्यासी हो, सब विद्वान् लोग उसी के न्याययुक्त वेदानुकूल मार्ग पर चलें और सब मिलकर उसी से प्रीति करें, जैसे सब ऋतुयें और महीने आदि वर्ष में मिले रहते हैं ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥

ष० । यत् । आदित्यम् । अभि-सं विशन्ति । अमा-वास्याम् । च । एव । तत् । पौर्ण-मासीम् । च ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के-(आदित्यम्) प्रकाशमान गुण में (यत्) जब (अभिसंविशन्ति) वे [विद्वान्—मन्त्र ८] सब ओर से यथावत् प्रवेश करते हैं, (तत् एव) तब ही

८—(समानम्) सम्+अन जीवने-घञ् । यद्वा सम्+आङ्+णीञ् प्रापणे-ड । एकम् । धार्मिकम् (अर्थम्) उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन् । उ० २ । ४ । ऋ गतिप्रापणयोः—थन् । विचारम् । प्रयोजनम् (परि) सर्वतः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (देवाः) विद्वांसः (संवत्सरम्) द्वादशमासात्मकं कालम् (वै) निश्चयेन (एतत्) अनेन प्रकारेण (ऋतवः) वसन्तादयः (अनुपरियन्ति) अनुसृत्य सर्वतः प्राप्नुवन्ति (व्रात्यम्) सत्यव्रतधारिणं पुरुषम् (च) समुच्चये ॥

९—(यत्) यदा (आदित्यम्) अद्भ्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । आङ्+दीपी दीप्तौ-यक् । पृषोदरादिरूपम् । आदीप्यमानं गुणम् (अभिसंविशन्ति) अभितः सर्वतः सम्यक् प्रविशन्ति । प्राप्नुवन्ति ते देवाः—म० ८ (अमावास्याम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अमावास्याम्) साथ साथ वसने की क्रिया में (च च) और (पौर्णमासीम्) पूरे नापने [निश्चय करने] की क्रिया में [वे प्रवेश करते हैं] ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग आप्त सन्यासी अतिथि के सत्संग से परस्पर उपकार और पदार्थों की परीक्षा आदि विद्यायें ग्रहण करें ॥ ९ ॥

तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥ १० ॥

० । एकम् । तत् । एषाम् । अमृत-त्वम् । इति । आ-हुतिः । एव ॥ १० ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] की—(आहुतिः) आहुति [दानक्रिया] (एव) ही (एषाम्) इन [विद्वानों] का (एकम्) केवल (तत्) वह [प्रसिद्ध] (अमृतत्वम्) अमरपन [जीवन अर्थात् पुरुषार्थ] है—(इति) यह निश्चित है ॥ १० ॥

भावार्थ—जब विद्वान् सन्यासी अपने आत्मा को संसार की भलाई में लगा देता है, विद्वान् लोग उसकी मर्यादा को मानकर पुरुषार्थ करते और क्लेशों को त्याग कर आनन्द भोगते हैं ॥ १० ॥

सूक्तम् १८ ॥

१—५ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ दैवी पङ्क्तिः ; २, ३, आर्ची बृहती ; ४ आर्ष्यनुष्टुप् ; ५ साम्न्युष्णिक् ॥

व्रात्यसामर्थ्योपदेशः—व्रात्य के सामर्थ्य का उपदेश ॥

अ० ७ । ७९ । १ । अमावस्यदन्यतरस्याम् । पा० ३ । १ । १२२ । अमा+वस निवासे—एयत्, टाप् । अमा सह निवसन्ति प्राणिनो यस्यां क्रियायां ताम् (च) (एव) (तत्) तदा (पौर्णमासीम्) अ० ७ । ८० । १ । पूर्ण+मसी परिणामे परिमाणे च—घञ् । पूर्णमासादण् । वा० पा० ४ । २ । ३५ । पूर्णमास—अण् । पूर्णो मासः परिमाणं परीक्षणं यस्यां क्रियायां ताम् (च) ॥

१०—(एकम्) केवलम् (तत्) प्रसिद्धम् (एषाम्) देवानाम् । विदुषाम् (अमृतत्वम्) अमरणम् । जीवनम् । पुरुषार्थम् (इति) एवं निश्चितम् (आहुतिः) समन्ताद् दानक्रिया (एव) अवधारणे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥ तस्यं । व्रात्यस्य ॥ १ ॥

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥

यत् । अस्य । दक्षिणम् । अक्षि । असौ । सः । आदित्यः । यत् । अस्य । सव्यम् । अक्षि । असौ । सः । चन्द्रमाः ॥२॥

भाषार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] की ॥ १ ॥ (यत्) जो (अस्य) इस [व्रात्य] की (दक्षिणम्) दाहिनी (अक्षि) आंख है, (सः) सो (असौ) वह (आदित्यः) चमकता हुआ सूर्य है, और (यत्) जो (अस्य) इस की (सव्यम्) बायीं (अक्षि) आंख है, (सः) सो (असौ) वह (चन्द्रमाः) आनन्दप्रद चन्द्रमा है ॥ २ ॥

भावार्थ—आप्त सन्यासी पूर्ण दृष्टि से सब मर्यादाओं को जांचकर अपनी विद्या से सूर्य चन्द्रमा के समान उपकार करता है ॥ १, २ ॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्नियोऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥

यः । अस्य । दक्षिणः । कर्णः । अयम् । सः । अग्निः । यः । अस्य । सव्यः । कर्णः । अयम् । सः । पवमानः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (दक्षिणः) दाहिना (कर्णः) कान है, (सः) सो (अयम्) यह (अग्निः) व्यापक अग्नि है, (यः) जो (अस्य) इस का (सव्यः) बायां (कर्णः) कान है, (सः) सो (अयम्) यह (पवमानः) शोधक वायु है ॥ ३ ॥

१, २—(यत्) (अस्य) (दक्षिणम्) अवामम् (अक्षि) नेत्रम् (असौ) (सः) प्रसिद्धः (आदित्यः) आदीप्यमानः सूर्यः (सव्यम्) वामम् (चन्द्रमाः) आह्लादकश्चन्द्रलोकः । अन्यत् पूर्ववत् सुगमं च ॥

३—(यः) (अस्य) व्रात्यस्य (दक्षिणः) अवामः (कर्णः) श्रोत्रम् (अयम्) (सः) (अग्निः) व्यापकोऽग्निः (सव्यः) वामः (पवमानः) दोषशोधको वायुः । अन्यद् गतं स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् अतिथि अपने स्वस्थ सचेत कानों द्वारा विद्याओं का श्रवण करके अग्नि समान व्यापक और पवन के समान दोषनाशक होकर संसार में सुख बढ़ाता है ॥ ३ ॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥

अहोरात्रे इति। नासिके इति। दितिः। च। अदितिः। च। शीर्षकपाले इति शीर्ष-कपाले। सम्-वत्सरः। शिरः ॥४॥

भाषार्थ—[इस व्रात्य के] (नासिके) दो नथने (अहोरात्रे) दिन रात्रि, (च) और (शीर्षकपाले) मस्तक के दोनों कोपड़े (दितिः) दिति [अखण्डित विकृति अर्थात् विनश्वर सृष्टि] (च) और (अदितिः) अदिति [अखण्डित प्रकृति अर्थात् नाशरहित जगत् सामग्री] हैं और [उसका] (शिरः) शिर (संवत्सरः) संवत्सर [कालज्ञान] है ॥ ४ ॥

भावार्थ—सन्यासी अपने नथने श्वास प्रश्वास के मार्गों को दिन रात्रि के समान बहुत बड़ा मान कर मस्तक के कोपड़ों में सृष्टि और प्रकृति के नियमों को और मस्तक के भीतर कालज्ञान प्राप्त करता है अर्थात् वह अपनी स्वच्छ सचेत इन्द्रियों द्वारा समस्त संसार के ज्ञान को ग्रहण करता है ॥ ४ ॥

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥

अह्ना। प्रत्यङ्। व्रात्यः। रात्र्या। प्राङ्। नमः। व्रात्याय ॥५

भाषार्थ—(व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] (अह्ना) दिन के साथ (प्रत्यङ्) सामने जाने वाला और (रात्र्या) रात्रि के साथ (प्राङ्)

४—(अहोरात्रे) रात्रिदिने (नासिके) नासाच्छिद्रे (दितिः) अखण्डिता विकृतिः। विनश्वरा सृष्टिः (च) (अदितिः) अखण्डिता विनाशरहिता प्रकृतिः। जगत्सामग्री (शीर्षकपाले) शिरोऽस्थिनी (संवत्सरः) संवत्सर-ज्ञानमित्यर्थः ॥

५—(अह्ना) दिनेन सह (प्रत्यङ्) प्रति + अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन्। प्रतिगतः। अभिमुखः (व्रात्यः) सत्यव्रतधारी पुरुषः (रात्र्या) (प्राङ्) प्र+

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे को चलने वाला है, (व्रात्याय) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के लिये (नमः) नमस्कार [अर्थात् सत्कार होवे] ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् अतिथि दिन राति पुरुषार्थ से विघ्नों को हटा कर उन्नति करता और कराता है, सब गृहस्थ लोग उसका निरन्तर आदर सत्कार करें ॥ ५ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

इति पञ्चदशं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री सयाजी राव गायक-

वाड़ाधिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासदक्षिणापरीयाक्षाम्

ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्री पण्डित

क्षेमकरणदास त्रिवेदिना

कृते अथर्ववेदभाष्ये पञ्चदशं काण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे कार्तिकमासे कृष्णसप्तम्यां तिथौ १९७५

[पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे

धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि

श्रीराजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य

सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात्

मुद्रितम्—मार्गशीर्षशुक्ला २ संवत् १९७५ ता० ५ दिसम्बर १९१८ ॥

अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । प्रकर्षेण गतः । अग्रगामी (नमः) सत्कारः (व्रात्याय) सत्यव्रतधारिणे विदुषे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियाँ ॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-७३ की प्रति ।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे, उपस्थित हुआ । निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जाव ॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि ।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें ।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें । इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे ।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५९७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर, नमस्ते !

आप को ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं । आप ने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य का करने का प्रयत्न किया है । भाष्य काण्डों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं । आर्यसमाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्णकार्य हो रहा है । त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है । परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है । जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं । भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं । लागत तक वसूल नहीं होती । वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है । अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस दान करें । स्वयम् ग्रहक बनें और दूसरों को बनावें । ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे । आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे । प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये । समाजक पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही ज़रूरी है । भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है ।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये । जल्दी से भाष्य मंगाइये ।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,

BSc. LL. B. उपमन्त्री ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१५१४। कार्यालय श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध, बुलन्दशहर।

आपका पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धि शाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्र धारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आप को उत्तरोत्तर उस महत्त्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए०, एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश, मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारो वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दाबन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त। आर्यमित्र आगरा, २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैं ने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम, आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एकबड़ी कमी के पूर्ण करने का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो...छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

श्रीयुत महाशय **मुन्शीराम जी**—जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७-१०-१९६९।

अथर्ववेद भाष्य आप का दिया व किया हुआ अवकोशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आप का परिश्रम सराहनीय है।

तथा— पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१९६९।
अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० **शिवशंकर शर्मा**—काव्यतीर्थ-छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वाद् ग्रंथकर्त्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि, सम्पादक आर्यमित्र—८ फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।... आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर और अब वहाँ से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आपने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आप का अथर्ववेदीय भाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित **भीमसेन शर्मा इटावा**—उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में.....अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है...भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है, अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१९१५॥
श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते,

महेवा के पते से आप का भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आप ने हम सभों पर अत्यन्त कृपा की है आप का अनेकों धन्यवाद है। आशा है कि पाँचवाँ कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है, कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है, कि आप ने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है...बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आप ने अपने भाष्य को अलंकृत किया है...आप की राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आप का भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पण्डित गणेश प्रसाद शर्मा—संपादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू कालिकाप्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१३।

आप का भेजा अथर्ववेद भाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंहजी वर्मा, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, जिला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आप ने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आप को वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता. सुपरिंटेन्डेन्ट गवर्नमेंट प्रेस ऐलहबाद, पी० ओ० बक्स नं० ८३ श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७-९—१३।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका अथर्ववेद भाष्य अवलोकन करके चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६ लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है-कि वेद का पढ़ना पढाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है-जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।..... ..इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोच कर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि-प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है..... ...त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर-इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDYADHIKARI (Minister of Education), Baroda State, letter No 624 dated 6th February 1913.

... It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable "For Encouragement Fund.

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope...the venture will not fail for want of pecuniary support.

THE MAGISTRATE OF ALLAHAABD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

THE ARYA PATRIKA LAHORE APRIL 18 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda*, which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature ..... The arrangement is good; the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works..... The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind.

Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves ..... Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B —The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

All rights reserved.

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

षोडशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना

निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.
Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि } संवत् १९७५ वि० सन् १९१८ ई० } मूल्यम् ॥-)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५३ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad) ।

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

॥ ओ३म् ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है॥"

आनन्दसमाचार।

अथर्ववेदभाष्यम्—जिन वेदों की महिमा सब बड़े २ ऋषि, मुनि और योगी गाते आये हैं और विदेशी विद्वान् जिनका अर्थ खोजने में लग रहे हैं। वे अब तक संस्कृत में होने के कारण बड़े कठिन थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अर्थ तो भाषा में हो चुका है। परन्तु अथर्ववेद का अर्थ अभी तक नागरी भाषा में नहीं था, इस महान्त्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयाग निवासी पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने उत्साह किया है। वे भाष्य को नागरी (हिन्दी) और संस्कृत में वेद, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरणादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण से बड़े परिश्रम के साथ बनाकर प्रकाशित कर रहे हैं।

भाष्य का क्रम इस प्रकार है। १—सूक्त के देवता, छन्द, उपदेश, २-सस्वर मूल मन्त्र, ३-सस्वर पदपाठ, ४—मन्त्रों के शब्दों को कोष्ठ में देकर सान्वय भाषार्थ, ५—भावार्थ, ६—आवश्यक टिप्पणी, पाठान्तर, अनुरूप पाठादि, ७—प्रत्येक पृष्ठ में लाइन देकर सन्देह निवृत्ति के लिये शब्दों और क्रियाओं की व्याकरण निरुक्तादि प्रमाणों से सिद्धि।

इस वेद में २० छोटे बड़े काण्ड हैं, एक एक काण्ड का भावपूर्ण संक्षिप्त स्त्री पुरुषों के समझने योग्य अति सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य अल्प मूल्य में छपकर ग्राहकों के पास पहुंचता है। वेदप्रेमी श्रीमान् राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, विद्वान् और सर्व साधारण स्त्री पुरुष स्वाध्याय, पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मंगावें और जगत्पिता परमात्मा के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यकविद्या, शिल्पविद्या, राजविद्यादि अनेक क्रियाओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें और धर्मात्मा पुरुषार्थी होकर कीर्ति पावें। छपाई उत्तम और काग़ज़ बढ़िया रायल अठपेजी है।

स्थायी ग्राहकों में नाम लिखाने वाले सज्जन २०) सैकड़ा छोड़कर पुस्तक वी० पी० वा नगद दाम पर पाते हैं। डाकव्यय ग्राहक देते हैं।

काण्ड	१ भूमिका सहित	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
मूल्य	१।)	१।-)	१॥-)	२)	१॥=)	३)	२।)	२)	२।)	२॥)	२।)

काण्ड	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	मन्त्र सूची		पृष्ठ ३,६०० लगभग
मूल्य	२=)	१।≡)	१।)	१-)	॥-)	।≡)						२९=)

काण्ड—१८ छप रहा है। कांड १९ शीघ्र प्रकाशित होगा।

हवनमन्त्राः—धर्म शिक्षा का उपकारी पुस्तक—चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवनमन्त्र, वामदेव्यगान सरल भाषा में शब्दार्थ सहित संशोधित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ६०, मूल्य ।)॥

रुद्राध्यायः—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अंग्रेज़ी में बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४८ मूल्य ।=)

रुद्राध्यायः—मूलमात्र बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४ मूल्य)॥

वेदविद्यायें—वेदों में विमान, नौका अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन मूल्य -)॥

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी
२५ दिसम्बर १९१८। ५२, लूकरगंज, प्रयाग। (Allahabad)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड १६ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	अतिसृष्टो अपां वृषभो	प्रजापति	दुःख से निवृत्ति	सप्ती बृहती आदि
२	निर्दुर्मण्यं ऊर्जा	वाक्	इन्द्रियों की दृढ़ता	आसुर्यनुष्टुप् आदि
३	मूर्धाहं रय्याणां	आत्मा	आयु की वृद्धि	आसुरी गायत्री आदि
४	नाभिरहं रय्याणां	आत्मा	आयु की वृद्धि	साम्न्यनुष्टुप् आदि
५	विद्म ते स्वप्न जनित्रं	स्वप्न	आलस्यादि त्याग	भुरिगार्ची गायत्री आदि
६	अजैष्माद्या सनाम्याद्या	प्रजापति	रोग नाश	प्राजापत्याऽनुष्टुप् आदि
७	तेनैनं विध्याम्य	प्रजापति	शत्रु का नाश	आर्षी पङ्क्ति आदि
८	जितमस्माकमुद्भिन्न	प्रजापति	तथा	आङ्ग्यनुष्टुप् आदि
९	जितमस्माकमुद्भिन्न	प्रजापति	सुख प्राप्ति का	साम्नी त्रिष्टुप् आदि.

२—अथर्ववेद, काण्ड १६ के मन्त्र अन्यवेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से ॥

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड १६) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र,	यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र,	सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि
१, २	अजैष्माद्या सनाम्याद्या	६।१,२	८।४७।१८		

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

षोडशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ३ साम्नी बृहती ; २, १० याजुषी त्रिष्टुप् ; ४ आसुरी गायत्री ; ५, ८ साम्नी पङ्क्तिः ; ६ साम्न्यनुष्टुप् ; ७ आर्ची गायत्री ; ९ आसुरी पङ्क्तिः ; ११ साम्न्युष्णिक् ; १२, १३ निचृदार्ष्यनुष्टुप् ॥

दुःखनिवृत्त्युपदेशः—दुःख से छुटने का उपदेश ॥

अति॑सृष्टो अ॒पां वृ॑ष॒भोऽति॑सृष्टा अ॒ग्नयो॑ दि॒व्याः ॥ १ ॥

अति॑-सृष्टः । अ॒पाम् । वृ॒ष॒भः । अति॑-सृष्टाः । अ॒ग्नयः॑ । दि॒व्याः ॥१॥

भाषार्थ—(अपाम्) प्रजाओं का (वृषभः) बड़ा ईश्वर [परमात्मा] (अतिसृष्टः) विमुक्त [छुटा हुआ] है, [जैसे] (दिव्याः) व्यवहारों में वर्तमान (अग्नयः) अग्नियां [सूर्य, बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि] (अतिसृष्टाः) विमुक्त हैं ॥ १ ॥

१—(अतिसृष्टः) स्वातन्त्र्येण विमुक्तः (अपाम्) आपः=आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये, यजुः० ६ । २७ । प्रजानाम् (वृषभः) वृषु सेचने परमैश्वर्ये च—अभच्, कित् । परमेश्वरः । सर्वस्वामी (अतिसृष्टाः) विमुक्ताः (अग्नयः) सूर्यविद्युत्प्रसिद्धाग्नयः (दिव्याः) व्यवहारेषु भवाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—वह परमात्मा सब सृष्टि में ऐसा स्वतन्त्र रम रहा है, जैसे सूर्य बिजुली अग्नि वायु आदि संसार में निरन्तर सर्वोपकारी हैं, सब मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना करें ॥ १ ॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥

रुजन् । परि-रुजन् । मृणन् । प्र-मृणन् ॥ २ ॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥

म्रोकः । मनः-हा । खनः । निः-दाहः । आत्म-दूषिः । तनू-दूषिः ३

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा । अभि-अवनिक्षि ॥४॥

भाषार्थ—(रुजन्) तोड़ता हुआ, (परिरुजन्) सब ओर से तोड़ता हुआ, (मृणन्) मारता हुआ, (प्रमृणन्) कुचलता हुआ ॥ २ ॥ (म्रोकः) सताने वाला, (मनोहा) मन का नाश करने वाला, (खनः) खोद डालने वाला, (निर्दाहः) जलन करने वाला, (आत्मदूषिः) आत्मा को दूषित करने वाला, और (तनूदूषिः) शरीर को दूषित करने वाला [जो रोग है] ॥ ३ ॥ (इदम्) अब (तम्) उस [रोग] को (अति सृजामि) मैं नाश करता हूं, (तम्) उस [रोग] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं कभी पुष्ट नहीं करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जिन रोगों वा दोषों से आत्मा और शरीर में विकार होवे, उनको ज्ञानपूर्वक हटावें और कभी न बढ़ने दें ॥ २—४ ॥

२—(रुजन्) विदारयन् (परिरुजन्) सर्वतो विदारयन् (मृणन्) मारयन् (प्रमृणन्) प्रकर्षेण नाशयन् ॥

३—(म्रोकः) म्रुचु गतौ वेदे तु हिंसने-घञ्, कुत्वम् । हिंसकः (मनोहा) मनोनाशकः (खनः) खनु विदारणे—अच् । विदारकः । पीडकः (निर्दाहः) निरन्तर्दाहकः (आत्मदूषिः) आत्मदूषको रोगः (तनूदूषिः) शरीरदूषकः ॥

४—(इदम्) इदानीम् (तम्) रोगम् (अतिसृजामि) अतिसर्जनं वधे दाने च । विनाशयामि (तम्) रोगम् (मा अभ्यवनिक्षि) णिजिर् शौच-पोषणयोः—लुङ्, अडभावः । नैव पुष्येयम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो३॑ऽस्मान् द्वे॒ष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥५॥

तेन॑ । तम् । अ॒भि-अति॑सृजामः । यः । अ॒स्मान् । द्वे॒ष्टि॑ । यम् । व॒यम् । द्वि॒ष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(तेन) उसी [पूर्वोक्त कारण] से (तम्) उस [अज्ञानी बैरी] को (अभ्यतिसृजामः) हम सर्वथा नाश करते हैं, (यः) जो [अज्ञानी] (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अधर्मी लोग धर्मात्माओं से अपनी दुष्टता के कारण वैर करें, अथवा धर्मात्मा लोग जिन्हें उनके दुष्ट व्यवहार के कारण बुरा जानें, विद्वान् लोग उन दुराचारियों को प्रयत्न पूर्वक नाश करें ॥ ५ ॥

अ॒पाम॒ग्रम॑सि समु॒द्रं वो॒ऽभ्यव॑सृजामि ॥ ६ ॥

अ॒पाम् । अ॒ग्रम् । अ॒सि॒ । स॒मु॒द्रम् । वः॒ । अ॒भि-अव॑सृजामि ६

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] वह [परमात्मा] (अपाम्) प्रजाओं का (अग्रम्) सहारा (असि = अस्ति) है-(वः) तुमको (समुद्रम्) प्राणियों के यथावत् उदय करने वाले परमात्मा की ओर (अभ्यवसृजामि) मैं छोड़ता हूं ॥ ६ ॥

५—(तेन) पूर्वोक्तेन कारणेन (तम्) अज्ञानिनं शत्रुम् (अभ्यतिसृजामः) म० ४ । सर्वतो विनाशयामः (यः) अज्ञानी (अस्मान्) धार्मिकान् (द्वेष्टि) बाधते (यम्) अज्ञानिनम् (वयम्) धार्मिकाः (द्विष्मः) बाधामहे ॥

६—(अपाम्) म० १ । प्रजानाम् (अग्रम्) आलम्बनम् (असि) प्रथमपुरुषस्य मध्यमपुरुषः । अस्ति । वर्तते (समुद्रम्) अ० १० । ५ । २३ । सम् + उत् + द्रु गतौ—डप्रत्ययः । समुद्रः कस्मात्समुद्द्रवन्त्यस्मादापः, समभिद्रवन्त्येनमापः, सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि समुदको भवति समुनत्तीति वा—निरु० २ । १० । समुद्र आदित्यः, समुद्र आत्मा—निरु० १४ । १६ । समुद्रः समुद्द्रवन्ति भूतानि यस्मात्सः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ५ । ३३ । सर्वे देवाः सम्यगुत्कर्षेण द्रवन्ति यत्रेति समुद्रः—महीधरभाष्ये, यजु० ५ । ३३ । भूतानां समुदयकारकं परमात्मानम् (वः) युष्मान् (अभ्यवसृजामि) अभिलक्ष्य त्यजामि अनुज्ञापयामि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् लोग उपदेश करें कि मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर अपने कर्तव्य में कुशल होवें ॥ ६ ॥

योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥ ७ ॥

यः । अप्-सु । अग्निः । अति । तम् । सृजामि । म्रोकम् । खनिम् । तनू-दूषिम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [दोष] (अप्सु) प्राणियों के भीतर (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापक] है, (तम्) उस (म्रोकम्) हिंसक, (खनिम्) दुःखदायक और (तनूदूषिम्) शरीरदूषक [रोग] को (अति सृजामि) मैं नाश करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष सन्तापकारी दोषों का विचार पूर्वक नाश करे ७

यो वः आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥

यः । वः । आपः । अग्निः । आ-विवेश । सः । एषः । यत् । वः । घोरम् । तत् । एतत् ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥

इन्द्रस्य । वः । इन्द्रियेण । अभि । सिञ्चेत् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(आपः) हे सब विद्याओं में व्यापक बुद्धिमानो ! (यः) जिस (अग्निः) व्यापक परमात्मा ने (वः) तुम में (आविवेश) प्रवेश किया है, (सः) वह (एषः) यह [परमात्मा] है, और (यत्) जो [शत्रुओं के लिये] (वः) तुम्हारा (घोरम्) भयानक रूप है, (तत्) वह (एतत् = एतस्मात्)

७—(यः) दोषः (अप्सु) म० १ । प्रजासु (अग्निः) अग्निवत्सन्तापकः (अति सृजामि) म० ४ विनाशयामि (तम्) दोषम् (म्रोकम्) म० ३ । हिंसकम् (खनिम्) विदारकम् । पीडकम् (तनूदूषिम्) शरीरदूषकम् ॥

८—(यः) (वः) युष्मान् (आपः) हे सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ६ । २७ । (अग्निः) व्यापकः परमेश्वरः (आ विवेश) प्रविष्टवान् (सः) परमात्मा (एषः) अत्र व्यापकः (यत्) (वः) युष्माकम् (घोरम्) भयानकं रूपम् (तत्) रूपम् (एतत्) अव्ययम् । एतस्मात्परमेश्वरात्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी [परमात्मा] से है ॥ ८ ॥ वह [परमात्मा] (वः) तुम को (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के [योग्य] (इन्द्रियेण) बड़े ऐश्वर्य से (अभि षिञ्चेत्) अभिषेक युक्त [राज्य का अधिकारी] करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उस जगदीश्वर को सर्वव्यापक और सर्वबलदायक समझ कर बड़े महात्माओं के समान अधिकारी बन कर संसार में बड़े बड़े काम करें ॥ ८, ९ ॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥

अरिप्राः । आपः । अप । रिप्रम् । अस्मत् ॥ १० ॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥

प्र । अस्मत् । एनः । वहन्तु । प्र । दुः-स्वप्न्यम् । वहन्तु ११

भाषार्थ—(अरिप्राः) निर्दोष (आपः) विद्वान् लोग (रिप्रम्) पाप को (अस्मत्) हम से (अप) दूर [पहुंचावें] ॥ १० ॥ (अस्मत्) हम से (एनः) पाप को (प्र वहन्तु) बाहिर पहुंचावें और (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न में उत्पन्न कुविचार को (प्र वहन्तु) बाहिर पहुंचावें ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के सत्संग और शिक्षा से जागते सोते कभी पाप कर्म का विचार न करें ॥ १०, ११ ॥

यह दोनों मन्त्र कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० १० । ५ । २४ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे १२

शिवेन । मा । चक्षुषा । पश्यत । आपः । शिवया । तन्वा ।

९—(इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः पुरुषस्य (वः) (युष्मान्) (इन्द्रियेण) परमैश्वर्येण (अभि षिञ्चेत्) अभिषेकयुक्तान् राज्याधिकारिणः कुर्यात् ॥

१०—(अरिप्राः) निर्दोषाः (आपः) म० ८। विपश्चितः (अप) दूरे (रिप्रम्) पापम् (अस्मत्) ॥

११—(अस्मत्) (एनम्) पापम् (प्र वहन्तु) बहिर्गमयन्तु (दुःस्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्ने भवं कुविचारम् (प्र वहन्तु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उप । स्पृशत । त्वचम् । मे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (शिवेन) सुखप्रद (चक्षुषा) नेत्र से (मा) मुझे (पश्यत) तुम देखो, (शिवया) अपने सुखप्रद (तन्वा) शरीर से (मे) मेरे (त्वचम्) शरीर को (उप स्पृशत) तुम सुख से छूओ ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग कृपा दृष्टि से मनुष्यों को देख कर अपने समान स्वस्थ और उपकारी बनावें ॥ १२ ॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १ । ३३ । ४ ॥

शिवान्ग्नीन्त्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः १३

शिवान् । अग्नीन् । सु-सदः । हवामहे । मयि । क्षत्रम् । वर्चः । आ । धत्त । देवीः ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(अप्सुसदः) प्रजाओं में बैठने वाले (शिवान्) आनन्दप्रद (अग्नीन्) विद्वानों को (हवामहे) हम बुलाते हैं, (देवीः) हे दिव्य गुण वाली प्रजाओ ! (मयि) मुझ में (क्षत्रम्) राज्य और (वर्चः) तेज (आ) आकर (धत्त) धारण करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—शूर पराक्रमी मनुष्य विद्वान् प्रजागणों की सम्मति से राज्य पद ग्रहण करके प्रतापी होवें ॥ १३ ॥

सूक्तम् २ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—६ ॥ वाग्देवता ॥ १ आसुर्यनुष्टुप् ; २, ३ आसुर्युष्णिक् ; ४ साम्नी बृहती ; ५ आर्च्यनुष्टुप् ; ६ आर्ची गायत्री ॥

इन्द्रियाणां दार्ढ्योपदेशः—इन्द्रियों की दृढ़ता का उपदेश ॥

१२—(शिवेन) सुखप्रदेन (मा) माम् (चक्षुषा) नेत्रेण (पश्यत) अवलोकयत (आपः) म० ८ । हे विद्वांसः (शिवया) सुखप्रदेन (तन्वा) शरीरेण (उप) सुखेन (स्पृशत) (त्वचम्) शरीरम् (मे) मम ॥

१३—(शिवान्) मङ्गलप्रदान् (अग्नीन्) अग्नयः=ज्ञानवन्तः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ५ । ३४ । ज्ञानिनः पुरुषान् (अप्सुसदः) म० १ । प्रजासु सदनशीलान् (हवामहे) आह्वयामः (मयि) पराक्रमिणि पुरुषे (क्षत्रम्) राज्यम् (वर्चः) तेजः (आ) आगत्य (धत्त) धारयत (देवीः) हे देव्यः प्रजाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्दुर्मर्ण्यं ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥

निः । दुः-मर्म्ण्यः । ऊर्जा । मधु-मती । वाक् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(ऊर्जा) शक्ति के साथ (मधुमती) ज्ञानयुक्त (वाक्) वाणी (दुर्मर्ण्यः) दुर्गति से (निः) पृथक् [होवे] ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि वे समझ बूझ कर सदा सत्य वचन बोल कर दृढ़ प्रतिज्ञा वाले होवें, जिससे उनके जीवन में शक्ति बढ़े और कभी निन्दा न होवे ॥ १ ॥

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥

मधु-मतीः । स्थ । मधु-मतीम् । वाचम् । उदेयम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे प्रजाओ !] तुम (मधुमतीः) ज्ञान वाली (स्थ) हो, (मधुमतीम्) ज्ञानयुक्त (वाचम्) वाणी (उदेयम्) मैं बोलूं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सुशिक्षित होकर सदा ज्ञानयुक्त बोलें ॥ २ ॥

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥

उप-हूतः । मे । गोपाः । उप-हूतः । गोपीथः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(गोपाः) वाणी का रक्षक [आचार्य] (मे) मेरा (उपहूतः) आदर से बुलाया हुआ है और (गोपीथः) भूमि का रक्षक [राजा] (उपहूतः) आदर से बुलाया हुआ है ॥ ३ ॥

१—(निः) बहिर्भवतु (दुर्मर्ण्यः) सर्वधातुभ्यो मनिन् । उ० ४ । १४५ । दुः + मृ गतिप्रापणयोः—मनिन् । ऋन्नेभ्यो ङीप् । पा० ४ । १ । ५ । इति ङीप्, पञ्चमीरूपम् । दुर्मर्ण्याः । दुर्गतेः (ऊर्जा) ऊर्ज बलप्राणनयोः—क्विप् । शक्त्या (मधुमती) ज्ञानवती (वाक्) वाणी ॥

२—(मधुमतीः) ज्ञानवत्यः प्रजाः (स्थ) भवथ (मधुमतीम्) ज्ञानवतीम् (वाचम्) वाणीम् (उदेयम्) अ० ३ । २० । १० । उद्यासम् ॥

३—(उपहूतः) आदरेणाऽऽवाहनीकृतः (मे) मम (गोपाः) वाणीरक्षक आचार्यः (उपहूतः) (गोपीथः) निशीथगोपीथावगथाः । उ० २ । ६ । गो + पा रक्षणे-थक्, ईत्वम् । भूपालः । राजा ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य आचार्य की शिक्षा और राजा की व्यवस्था से सुशिक्षित होकर स्वस्थ और प्रतिष्ठित रहें ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥

सु-श्रुतौ । कर्णौ । भद्र-श्रुतौ । कर्णौ । भद्रम् । श्लोकम् । श्रूयासम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[मेरे] (कर्णौ) दोनों कान (सुश्रुतौ) शीघ्र सुनने वाले, (कर्णौ) दोनों कान (भद्रश्रुतौ) मङ्गल सुनने वाले [होवें], (भद्रम्) मङ्गलमय (श्लोकम्) यश (श्रूयासम्) मैं सुना करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करके अभ्यास करें कि वे कान आदि इन्द्रियों को सचेत रख कर श्रेष्ठ कर्मों के करने में शीघ्रता करते रहें ॥ ४ ॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥

सु-श्रुतिः । च । मा । उप-श्रुतिः । च । मा । हासिष्टाम् । सौपर्णम् । चक्षुः । अजस्रम् । ज्योतिः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(सुश्रुतिः) शीघ्र सुनना (च च) और (उपश्रुतिः) अङ्गीकार करना (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (सौपर्णम्) समस्त पूर्ति वाली (चक्षुः) दृष्टि और (अजस्रम्) अचूक (ज्योतिः) ज्योति [बनी रहे] ॥ ५ ॥

४—(सुश्रुतौ) श्रु—क्विप् । शीघ्रश्रोतारौ (कर्णौ) श्रोत्रे (भद्रश्रुतौ) मङ्गलश्रोतारौ (भद्रम्) मङ्गलमयम् (श्लोकम्) यशः (श्रूयासम्) आकर्णयानम् ॥

५—(सुश्रुतिः) शीघ्रश्रवणम् (च) (मा) माम् (उपश्रुतिः) विषयाणामङ्गीकारः (च) (मा हासिष्टाम्) ओ हाक् त्यागे—लुङ् । न त्यजताम् (सौपर्णम्) आपॄवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । सु+पॄ पालनपूरणयोः—न, सुपर्णम्—अण् । बहुपूर्त्तियुक्तम् (चक्षुः) दृष्टिः (अजस्रम्) निरन्तरम् (ज्योतिः) तेजः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से अपने श्रवण आदि इन्द्रियों को विकल न होने दें और ऐसा स्वस्थ रक्खें कि वे अपने विषयों को पूर्ण रीति से शीघ्र अङ्गीकार कर लें ॥ ५ ॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

ऋषीणाम् । प्र-स्तरः । असि । नमः । अस्तु । दैवाय । प्र-स्तराय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (ऋषीणाम्) इन्द्रियों का (प्रस्तरः) फैलाने वाला (असि) है, (दैवाय) दिव्य गुण वाले (प्रस्तराय) फैलाने वाले [तुझ] को (नमः) नमस्कार [सत्कार] (अस्तु) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य उस परमात्मा को सदा धन्यवाद दें कि उसने उनको वेदादि शास्त्र सुनने, विचारने और उपकार करने के लिये अमूल्य श्रवण आदि इन्द्रियां दी हैं ॥ ६ ॥

सूक्तम् ३ [पर्यायसूक्तम् ॥]

१—६ ॥ आत्मा देवता ॥ १ आसुरी गायत्री ; २ निचृदार्च्यनुष्टुप् ; ३ आर्च्यनुष्टुप् ; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; ५ साम्न्युष्णिक् ; ६ साम्नी त्रिष्टुप् ॥ आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की वृद्धि के लिये उपदेश ॥

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

मूर्धा । अहम् । रयीणाम् । मूर्धा । समानानाम् । भूयासम् १

भाषार्थ—(अहम्) मैं (रयीणाम्) धनों का (मूर्धा) सिर और (समानानाम्) समान [तुल्य गुणी] पुरुषों का (मूर्धा) सिर (भूयासम्)

६—(ऋषीणाम्) सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी—निरु० १२ । ३७ । इन्द्रियाणाम् (प्रस्तरः) प्रस्तारकः । प्रसारकः परमेश्वरः (असि) (नमः) सत्कारः (अस्तु) (दैवाय) दिव्यगुणवते (प्रस्तराय) प्रसारकाय तुभ्यम् ॥

१—(मूर्धा) शिरः । मस्तकवत्प्रधानः (अहम्) (रयीणाम्) विद्यासुवर्णादिधनानाम् (मूर्धा) (समानानाम्) सम्+आङ्+नीञ् प्रापणे—ड ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाऊं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य उद्योग करें कि विद्याधन और सुवर्ण आदि धन से गुणी मनुष्यों को पाकर संसार में शरीर में मस्तक के समान मुखिया होवें ॥१॥

रुजश्च॑ मा वे॒नश्च॒ मा हा॑सिष्टां मू॒र्धा च॑ मा॒ विध॑र्मा च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥ २ ॥

रुजः॑ । च॒ । मा॒ । वे॒नः॑ । च॒ । मा॒ । हा॒सि॒ष्टा॒म् । मू॒र्धा । च॒ । मा॒ । वि-ध॑र्मा । च॒ । मा॒ । हा॒सि॒ष्टा॒म् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(रुजः) अन्धकारनाशक गुण (च च) और (वेनः) कमनीय गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (मूर्धा) मस्तक [मस्तक बल] (च च) और (विधर्मा) विविध प्रकार धारण करने वाला आत्मा [आत्मबल] (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों कभी न छोड़ें ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य अज्ञान के नाश से अपने मस्तक बल अर्थात् विचार सामर्थ्य और आत्मबल को बढ़ाते रहें ॥ २ ॥

उ॒र्वश्च॑ मा चमु॒सश्च॒ मा हा॑सिष्टां धु॒र्ता च॑ मा धु॒रुण॑श्च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥ ३ ॥

उ॒र्वः॑ । च॒ । मा॒ । चमु॒सः॑ । च॒ । मा॒ । हा॒सि॒ष्टा॒म् । धु॒र्ता । च॒ । मा॒ । धु॒रुण॑ः । च॒ । ० ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(उर्वः) शत्रुनाशक गुण [शूरपन] (च च) और

तुल्यगुणवताम् (भूयासम्) ॥

२—(रुजः) रुजो भङ्गे—क । अन्धकारनाशको गुणः (च) (मा) माम् (वेनः) धापृवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । अज गतिक्षेपणयोः—न, वीभावः, अथवा वी कान्त्यादिषु—न । प्रापणीयः कमनीयो वा गुणः (च) (मा हासिष्टाम्) न त्यजताम् (मूर्धा) मस्तकसामर्थ्यम् (च) (मा) माम् (विधर्मा) विविधधारक आत्मा (च) (मा हासिष्टाम्) ॥

३—(उर्वः) उर्वी हिंसायाम्—अच् । उर्वति शूरयति मारयति शत्रून् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चमसः) भोजनपात्र [शरीर] (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (धर्ता) धारण करने वाला गुण (च च) और (धरुणः) अवस्थान [दृढ़ रहने का गुण] (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य सङ्ग्रामरूप संसार में शूर रहकर शरीर रक्षा करते हुये शुभगुणों को धारण करें और स्थिर रक्खें ॥ ३ ॥

विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

वि-मोकः । च । मा । आर्द्र-पविः । च । मा । हासिष्टाम् । आर्द्र-दानुः । च । मा । मातरिश्वा । च । मा । हासिष्टाम् ४

भाषार्थ—(विमोकः) विमुक्त करने वाला गुण (च च) और (आर्द्र-पविः) गतिशोधक गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (आर्द्र-दानुः) याचकों का पालने वाला गुण (च च) और (मातरिश्वा) ऐश्वर्य में बढ़ने वाला गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें ॥ ४ ॥

शूरत्वगुणः (च) (मा) माम् (चमसः) भोजनपात्रं शरीरम् (च) (मा हासिष्टाम्) न त्यजताम् (धर्ता) धारको गुणः (धरुणः) कृवृदारिभ्य उनन् । उ० ३ । ५३ । धृङ् अवस्थाने-उनन् । अवस्थानम् । दृढस्थितिगुणः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—(विमोकः) मुचॢ मोचने—घञ् कुत्वं च । दुःखविमोचको गुणः (च) (मा) माम् (आर्द्रपविः) अर्देर्दीर्घश्च । उ० २ । १८ । अर्द गतौ याचने हिंसायां च—रक्+अच इः । उ० ४ । १३८ । पूञ् शोधने-इप्रत्ययः । गति-शोधको गुणः (च) (मा हासिष्टाम्) न त्यजताम् (आर्द्रदानुः) अर्द याचने-रक्+दाभाभ्यां नुः । उ० ३ । ३२ । दैङ् पालने-नु । याचकपालको गुणः (मातरिश्वा) माता लक्ष्मीः, वैभवम् । श्वन्नुक्षन्पूषन्० । उ० १ । १५८ । मातरि +टु ओ श्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन् डित् । मातरि वैभवे ऐश्वर्ये श्वयतीति गुणः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य दुःखों से छूटकर उद्योग करें और अधिकारी याचकों का पालन करके वैभव बढ़ावें ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिः । मे । आत्मा । नृ-मनाः । नाम । हृद्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (आत्मा) आत्मा (बृहस्पतिः) बड़े गुणों का स्वामी, (नृमणाः) नेताओं के तुल्य मन वाला और (हृद्यः) हृदय का प्रियों (नाम) प्रसिद्ध [हो] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य आत्मबल बढ़ाकर उत्तम गुण प्राप्त करें और वीर के समान पराक्रम करके सब के प्रिय हों ॥ ५ ॥

अशं तापं मे हृदयस्वीं गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६

अशम्-तापम् । मे । हृदयम् । उर्वी । गव्यूतिः । समुद्रः । अस्मि । वि-धर्मणा ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (मे) मेरा (हृदयम्) हृदय (अशन्तापम्) सन्ताप रहित और (गव्यूतिः) विद्या मिलने का मार्ग (उर्वी) चौड़ा [होवे], मैं (विधर्मणा) विविध धारण सामर्थ्य से (समुद्रः) समुद्र [समुद्र समान गहरा] (अस्मि) हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य विघ्नों में हृदय को शान्त रखकर वेद मार्ग की दृढ़ता और विस्तीर्णता फैलावे, क्योंकि परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ा सामर्थ्य दिया है ॥ ६ ॥

५—(बृहस्पतिः) महतां गुणानां पालकः (मे) मम (आत्मा) (नृमणाः) नेतृतुल्यमनस्कः (नाम) प्रसिद्धौ (हृद्यः) हृदयप्रियः ॥

६—(अशन्तापम्) सन्तापरहितम् । शान्तम् (मे) मम (हृदयम्) अन्तःकरणम् (उर्वी) विस्तीर्णा (गव्यूतिः) गो + यूतिः । विद्यामिश्रणमार्गः (समुद्रः) समुद्र इव गम्भीरः (अस्मि) (विधर्मणा) विविधधारणसामर्थ्येन ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ४ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—७ ॥ आत्मा देवता ॥ १, ३ साम्न्यनुष्टुप् ; २ प्राजापत्योष्णिक् ; ४ आर्ची पङ्क्तिः ; ५ आसुरी गायत्री ; ६ साम्नी त्रिष्टुप् ; ७ भुरिगार्ष्युष्णिक् ॥

आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की वृद्धि के लिये उपदेश ॥

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

नाभिः । अहम् । रयीणाम् । नाभिः । समानानाम् । भूयासम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं (रयीणाम्) धनों की (नाभिः) नाभि [मध्यस्थान] और (समानानाम्) समान [तुल्यगुणी] पुरुषों की (नाभिः) नाभि (भूयासम्) हो जाऊं ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्याधन और सुवर्ण आदि धन के साथ गुणी मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, वे संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ १ ॥

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥

सु-आसत् । असि । सु-उषाः । अमृतः । मर्त्येषु । आ ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे आत्मा !] तू (स्वासत्) सुन्दर सत्ता वाला, (सूषाः) सुन्दर प्रभातों वाला [प्रभात के प्रकाश के समान बढ़ने वाला] (आ) और (मर्त्येषु) मनुष्यों के भीतर (अमृतः) अमर (असि) है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यह विचारते हैं कि यह आत्मा जो बड़े पुण्यों के कारण इस मनुष्य शरीर में वर्तमान है, वह प्रभात के प्रकाश के समान उन्नति-

---

१—(नाभिः) मध्यस्थानम् (अहम्) पुरुषः (रयीणाम्) विद्यासुवर्णादिधनानाम् (नाभिः) (समानानाम्) सू० ३ म० १ । तुल्यगुणवताम् (भूयासम्) भवेयम् ॥

२—(स्वासत्) सु + आस सतायाम्-शतृ । शोभनसत्तावान् (असि) हे आत्मन् त्वं भवसि (सूषाः) उषः किच्च । उ० ४ । २३४ । सु + उष दाहे-असि । शोभना उषलो यस्य सः । प्रभातवेलाप्रकाशतुल्यप्रवर्धमानः (अमृतः) अमरः । नित्यः पुरुषार्थी (मर्त्येषु) मनुष्येषु (आ) समुच्चये ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील और भी अमर अर्थात् नित्य और पुरुषार्थी है, वे संसार में बढ़ती करके यश पाते हैं ॥ २ ॥

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥

मा । माम् । प्राणः । हासीत् । मो इति । अपानः । अव-हाय । परा । गात् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर !] (प्राणः) प्राण [श्वास] (माम्) मुझे (मा हासीत्) न छोड़े, (मो) और न (अपानः) अपान [प्रश्वास] (अव-हाय) छोड़कर (परा गात्) दूर जावे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्य शरीर की स्वस्थता के साथ आत्मबल बढ़ाते रहें ॥ ३ ॥

सूर्यो अह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनु-ष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

सूर्यः । मा । अह्नः । पातु । अग्निः । पृथिव्याः । वायुः । अन्तरिक्षात् । यमः । मनुष्येभ्यः । सरस्वती । पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सूर्यः) सब का चलाने वाला परमात्मा (मा) मुझे (अह्नः) दिन [के भय] से (पातु) बचावे, (अग्निः) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी [के भय] से, (वायुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (अन्त-रिक्षात्) अन्तरिक्ष [के भय] से, (यमः) न्यायकारी ईश्वर (मनुष्येभ्यः) मनुष्यों [के भय] से और (सरस्वती) सर्वविज्ञानमय परमेश्वर (पार्थि-वेभ्यः) पृथिवी के प्राणी आदियों [के भय] से [बचावे] ॥ ४ ॥

३—(मा हासीत्) मा त्यजेत् (माम्) प्राणिनम् (प्राणः) श्वासः (मो) न च (अपानः) प्रश्वासः (अवहाय) परित्यज्य (परा गात्) दूरे गच्छतु ॥ ३ ॥

४—(सूर्यः) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (मा) माम् (अह्नः) दिनभयात् (पातु) रक्षतु (अग्निः) अग गतौ-नि । ज्ञानस्वरूपो जगदीश्वरः (वायुः) सर्वव्यापकः परमेश्वरः (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षभयात् (यमः) न्यायकारी-श्वरः (मनुष्येभ्यः) मनुष्याणां भयात् (सरस्वती) सरस्-मतुप्, ङीप् । सरांसि विज्ञानानि विद्यन्ते यस्यां सा चितिः । सर्वविज्ञानमयः परमेश्वरः (पार्थिवेभ्यः) पृथिवीभवानां प्राण्यादीनां भयात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा की उपासना करता हुआ सदा उपाय करे कि वह सब प्रकार के विघ्नों से सुरक्षित होकर शुभ कर्मों को करता रहे ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

प्राणापानौ । मा । मा । हासिष्टम् । मा । जने । प्र । मेषि ५

भाषार्थ—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनों (मा) मुझे (मा हासिष्टम्) मत छोड़ो, (जने) मनुष्यों के बीच (मा प्र मेषि) कभी नष्ट न होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शरीर और आत्मा से सावधान रहकर निर्भयता से कर्तव्य परायण हो ॥ ५ ॥

स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपुः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

स्वस्ति । अद्य । उषसः । दोषसः । च । सर्वः । आपुः । सर्व-गणः । अशीय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(आपः) हे आप्त विद्वानो ! (सर्वगणः) अपने सब गणों के सहित (सर्वः) सम्पूर्ण मैं (स्वस्ति) कल्याण से (अद्य) अब (उषसः) प्रभात वेलाओं को (च) और (दोषसः) रात्रियों को (अशीय) पाता रहूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य आप्त विद्वानों के सत्संग से प्रयत्न करें कि वे और उन के इष्ट मित्र प्रजागण आदि सदा रात दिन सुखी रहें ॥ ६ ॥

५—(प्राणापानौ) हे श्वासप्रश्वासौ (मा) माम् (मा हासिष्टम्) नैव त्यजतम् (जने) मनुष्येषु (प्र) प्रकर्षेण (मा मेषि) मीङ् हिंसायाम्—लुङ् । नाशं मा प्राप्नुयाम् ॥

६—(स्वस्ति) कल्याणेन (अद्य) इदानीम् (उषसः) प्रभातवेलाः (दोषसः) दुष वैकृत्ये—असुन् । रात्रीः (च) (सर्वः) सम्पूर्णोऽहम् (आपः) हे आप्ता विद्वांसः (सर्वगणः) सर्वेष्टमित्रप्रजादिसहितः (अशीय) बहुलं छन्दसि । पा० २ । ४ । ७३ । अश्नुतेः शपो लुकि लिङ्युत्तमैकवचने रूपम् । प्राप्नुयाम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानाव-
ग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

शक्वरीः । स्थ । पशवः । मा । उप । स्थेषुः । मित्रावरुणौ ।
मे । प्राणापानौ । अग्निः । मे । दक्षम् । दधातु ॥ ७ ॥

भाषार्थ—[हे प्रजाओ !] तुम (शक्वरीः) बलवती (स्थ) हो, (पशवः) सब प्राणी (मा उप) मेरे समीप (स्थेषुः) ठहरें, (अग्निः) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर (मित्रावरुणौ) दो श्रेष्ठ मित्र (मे) मेरे (प्राणापानौ) प्राण और अपान को और (मे) मेरी (दक्षम्) चतुराई को (दधातु) स्थिर रक्खे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश और परमात्मा की उपासना में तत्पर रहते हैं, वे अपने शरीर और आत्मा से स्वस्थ रहकर कार्यकुशल होते हैं ॥ ७ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ५ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१० ॥ स्वप्नो देवता ॥ १ भुरिगार्ची गायत्री; २, ६ प्राजापत्या गायत्री; ३, १० साम्नी बृहती; ४—६ साम्नी पङ्क्तिः; ७ आर्च्युष्णिक्; ८ साम्नी त्रिष्टुप् ॥

आलस्यादिदोषत्यागोपदेशः—आलस्यादि दोष के त्याग के लिये उपदेश ॥

७—(शक्वरीः) स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप् । उ० ४। ११३ । शक्नोतेर्वनिप्, ङीब्रेफौ । शक्तिमत्यः प्रजाः (स्थ) भवथ (पशवः) प्राणिनः (मा) माम् (उप) उपेत्य (स्थेषुः) तिष्ठन्तु (मित्रावरुणौ) मित्रवरौ (मे) मम (प्राणापानौ) श्वासप्रश्वासौ (अग्निः) ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः (मे) (दक्षम्) कार्यकुशलताम् (दधातु) स्थापयतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । ग्राह्याः । पुत्रः । असि । यमस्य । करणः ॥ १ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ॥२

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्नः दुष्वप्न्यात् पाहि ३

तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । नः । स्वप्न । दुः-स्वप्न्यात् । पाहि ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (ग्राह्याः) गठिया [रोगविशेष] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है ॥ १ ॥ तू (अन्तकः) अन्त करने वाला (असि) है और तू (मृत्युः) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (असि) है ॥ २ ॥ (स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (तम्) उस (त्वा) तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) अच्छे प्रकार (विद्म) हम जानते हैं, (सः) सो तू (स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (नः) हमें (दुःस्व-प्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (पाहि) बचा ॥ ३ ॥

१-इदं सूक्तं किञ्चिद् भेदेन गतं व्याख्यातं च-अ० ६ । ४६ । २ (विद्म) जानीमः (ते) तव (स्वप्न) हे निद्रे । हे आलस्य (जनित्रम्) जन्मस्थानम् (ग्राह्याः) अ० २ । ६ । १ । सन्धीनां ग्रहणशीलपीडायाः (पुत्रः) पुत्र इवोत्पन्नः (यमस्य) मृत्योः (करणः) करोतेर्ल्युः । कर्ता ॥

२—(अन्तकः) अन्त, णिच्—एवुल् । अन्तयतीति अन्तकः । अन्तकरः (असि) (मृत्युः) मृत्युरिव दुःखप्रदः (असि) ॥

३—(तम्) तादृशम् (त्वा) त्वाम् (स्वप्न) (तथा) तेन प्रकारेण (सम्) सम्यक् (सः) स त्वम् (नः) अस्मान् (दुःस्वप्न्यात्) दुःस्वप्न—यत् । दुष्टस्वप्नेषु भवात् कुविचारात् (पाहि) रक्ष ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—हे मनुष्यो ! कुपथ्य आदि करने से गठिया आदि रोग होते हैं, गठिया आदि से आलस्य और उससे अनेक विपत्तियां मृत्यु आदि होती हैं। इससे सब लोग दुःखों के कारण अति निद्रा आदि को खोज कर निकालें और केवल परिश्रम की निवृत्ति के लिये ही उचित निद्रा का आश्रय लेकर सदा सचेते रहें ॥ १—३ ॥

यह सूक्त कुछ भेद से आ चुका है-अथर्व ६ । ४६ । २॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।०।०।४॥

०। जनित्रम् । निः-ऋत्याः । पुत्रः ०। ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्मस्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (निर्ऋत्याः) निर्ऋति [महामारी] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है .....[म० २, ३]॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है॥ ४॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि ०। ०। ०॥ ५ ॥

०। जनित्रम् । अभूत्याः । पुत्रः । ०॥ ५ ॥

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्मस्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (अभूत्याः) अभूति [असम्पत्ति] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है..... [म० २, ३]॥ ५॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है॥ ५॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि ०। ०। ०॥ ६ ॥

०। जनित्रम् । निः-भूत्याः । पुत्रः । ०॥ ६ ॥

४—(निर्ऋत्याः) कुच्छापत्तेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—(अभूत्याः) असम्पत्याः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म स्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (निर्भूत्याः) निर्भूति [हानि, नाश वा अभाव] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है.....[म० २, ३] ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ६ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि ० । ० । ० ॥ ७ ॥

० । जनित्रम् । परा-भूत्याः । पुत्रः । ० ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (पराभूत्याः) पराभूति [पराभव, हार] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है.....[म० २, ३] ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ७ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ ८ ॥

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । देव-जामीनाम् । पुत्रः । असि । यमस्य । करणः ॥ ८ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥

अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ॥ ९ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्मु स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि १० ॥

तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्मु । सः । नः । स्वप्न । दुः-स्वप्न्यात् । पाहि ॥ १० ॥

६—(निर्भूत्याः) नित्याः । नाशस्य । अभावस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥
७—(पराभूत्याः) पराजितेः । पराभवस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (देवजामीनाम्) उन्मत्तों की गतियों का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है ॥८॥ तू (अन्तकः) अन्त करने वाला (असि) है और तू (मृत्युः) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (असि) है ॥ ९ ॥ (स्वप्न) हे स्वप्न [आलस्य] (तम्) उस (त्वा) तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) अच्छे प्रकार (विद्म) हम जानते हैं, (सः) सो तू (स्वप्न) हे स्वप्न ! (नः) हमें (दुःस्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (पाहि) बचा ॥ १० ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ८—१० ॥

सूक्तम् ६ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—११ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १—४ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ५ साम्नी पङ्क्तिः; ६ निचृदार्ची बृहती ; ७ साम्नी बृहती ; ८ आसुरी जगती ; ९ आसुरी बृहती ; १० आर्च्युष्णिक् ; ११ आर्षी गायत्री ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

अजैष्माद्यासनाम्माद्याभूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

अजैष्म । अद्य । असनाम । अद्य । अभूम । अनागसः । वयम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अद्य) अब [अनिष्ट को] (अजैष्म) हम ने जीत लिया है, (अद्य) अब [इष्ट को] (असनाम) हम ने पा लिया है, (वयम्) हम (अनागसः) निर्दोष (अभूम) हो गये हैं ॥ १ ॥

८—(देवजामीनाम्) दिवु मदे—पचाद्यच् । नियो मिः । उ० ४ । ४३ । या गतिप्रापणयोः—मि, आदेर्जत्वम् । देवानामुन्मत्तपुरुषाणां जामीनां यामीनां गतीनाम् ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

१—(अजैष्म) वयं जितवन्तः (अद्य) इदानीम् (असनाम) षण संभक्तौ—लङ् । वयं लब्धवन्तः (अद्य) (अभूम) (अनागसः) निर्दोषाः (वयम्) पुरुषार्थिनः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जो मनुष्य दोषों को छोड़ते हैं, वे अनिष्ट को जीत कर इष्ट प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

मन्त्र १ तथा २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं–८ । ४७ । १८ ॥

उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

उषः । यस्मात् । दुः-स्वप्न्यात् । अभैष्म । अप । तत् । उच्छतु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(उषः) हे उषा ! [प्रभात वेला] (यस्मात्) जिस (दुःस्वप्न्यात्) दुष्ट स्वप्न में उठे कुविचार से (अभैष्म) हम डरे हैं, (तत्) वह (अप) दूर (उच्छतु) चला जावे ॥ २ ॥

भावार्थ—यदि किसी कुपथ्य वा रोग के कारण निद्राभंग होकर मस्तक में कुविचार घूमने लगें, मनुष्य उसका प्रतीकार प्रभात ही अर्थात् बहुत शीघ्र करें ॥ २ ॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥

द्विषते । तत् । परा । वह । शपते । तत् । परा । वह ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे उषा !] तू (तत्) वह [कष्ट] (द्विषते) [वैद्यों से] बैर करने वाले के लिये (परा वह) पहुंचा दे, (तत्) वह (शपते) [उन्हें] कोसने वाले के लिये (परा वह) पहुंचा दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्यों के शासन पर नहीं चलते, वे शीघ्र दुःख भोगते हैं ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

२—(उषः) हे प्रभातवेले (यस्मात्) (दुःस्वप्न्यात्) दुष्टस्वप्ने भवात् कुविचारात् (अभैष्म) वयं भयं प्राप्तवन्तः (अप) दूरे (तत्) भयम् (उच्छतु) गच्छतु ॥

३—(द्विषते) वैद्येभ्यः कुप्रीतिकारिणे (तत्) कष्टम् (परा वह) दूरे गमय (शपते) शापं कुर्वते । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम् । द्विष्मः । यत् । च । नः । द्वेष्टि । तस्मै । एनत् । गमयामः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(यम्) जिस [कुपथ्यकारी] से (द्विष्मः) हम [वैद्य लोग] वैर करते हैं, (च) और (यत्=यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) वैर करता है, (तस्मै) उसको (एनत्) यह [कष्ट] (गमयामः) हम जताते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—वैद्य लोग कह दें कि कुपथ्यकारी मनुष्य अवश्य कष्ट भोगेगा ॥ ४ ॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥५॥

उषाः । देवी । वाचा । सम्-विदाना । वाक् । देवी । उषसा । सम्-विदाना ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(उषाः देवी) उषा देवी [उत्तम गुण वाली प्रभात वेला] (वाचा) वाणी से (संविदाना) मिली हुयी और (वाक् देवी) वाक् देवी [श्रेष्ठ वाणी] (उषसा) प्रभात वेला से (संविदाना) मिली हुयी [होवे] ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रभात वेला को सत्य वाणी के साथ और सत्य-वाणी को प्रभात वेला के साथ संयुक्त करते हैं, अर्थात् जो प्रभात से लेकर दूसरी प्रभात तक सत्यवाणी से काम करते हैं, वे अवश्य सुखी रहते हैं ॥ ५ ॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥

४—(यम्) कुपथ्यसेविनम् (द्विष्मः) वैरयामः, वयं वैद्याः (यत्) अव्ययम् । यः (च) (नः) अस्मान् वैद्यान् (द्वेष्टि) वैरयति (तस्मै) कुपथ्यसेविने (एनत्) कष्टम् (गमयामः) ज्ञापयामः ॥

५—(उषाः) प्रभातवेला (देवी) दिव्यगुणवती (वाचा) वाण्या सह (संविदाना) संगच्छमाना (वाक्) (देवी) (उषसा) प्रभातवेलया सह (संविदाना) संगच्छमाना ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ॒षः । पतिः॑ । वा॒चः । पति॑ना । स॒म्-वि॒दा॒नः । वा॒चः । पतिः॑ । उ॒षः । पति॑ना । स॒म्-वि॒दा॒नः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(उषः=उषसः) उषा का (पतिः) पति [प्रभात उठने वाला मनुष्य] (वाचः) वाणी के (पतिना) पति [विद्याभ्यासी] के साथ (संविदानः) मिला हुआ और (वाचः) वाणी का (पतिः) पति [विद्याभ्यासी पुरुष] (उषः=उषसः) उषा के (पतिना) पति [प्रभात उठने वाले] के साथ (संविदानः) मिला हुआ [होवे] ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रभात वेला में उठकर वेदादि शास्त्रों को विचारें और वेदादि शास्त्र विचारने वाले प्रभात वेला में उठें, जिससे उनकी स्वस्थता और स्मृति बढ़ती रहे ॥ ६ ॥

ते अ॒मुष्मै॒ परा॑ वहन्त्व॒राया॑न् दु॒र्णाम्नः॑ स॒दान्वाः॑ ॥ ७ ॥

ते । अ॒मुष्मै॑ । परा॑ । व॒ह॒न्तु॒ । अ॒राया॑न् । दुः॒-नाम्नः॑ । स॒दान्वाः॑ ॥ ७ ॥

कु॒म्भीका॑ दू॒षीकाः॒ पय॑कान् ॥ ८ ॥

कु॒म्भीकाः॑ । दू॒षीकाः॒ । पीय॑कान् ॥ ८ ॥

जा॒ग्र॒द्दु॒ष्व॒प्न्यं स्व॑प्नेदुष्व॒प्न्यम् ॥ ९ ॥

जा॒ग्र॒त्-दु॒स्व॒प्न्यम् । स्व॒प्ने॒-दु॒स्व॒प्न्यम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [ईश्वर नियम] (अमुष्मै) उस [कुपथ्यकारी] के लिये (अरायान्) क्लेशों, (दुर्णाम्नः) दुर्नामों [अर्श आदि रोगों], (सदान्वाः)

६—(उषः) विभक्तिलोपः । उषसः । प्रभातवेलायाः (पतिः) पालकः पुरुषः (वाचः) वाण्याः (पतिना) पालकेन पुरुषेण (संविदानः) संगच्छमानः (वाचस्पतिः) विद्याभ्यासी पुरुषः (उषस्पतिना) प्रभातबोधनशीलेन (संविदानः) ॥

७—(ते) ईश्वरनियमाः (अमुष्मै) कुपथ्यसेविने (परा वहन्तु) दूरे प्रापयन्तु (अरायान्) श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः । उ० ३ । ९६ । ऋ हिंसायाम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा चिल्लाने वाली पीड़ाओं [रोग जिन में रोगी चिल्लाता है] ॥ ७ ॥ (कुम्भीकाः) कुम्भीकाओं [-रोग जिस में पेट बटलो ही सा बजता है], (दूषीकाः) दूषीकाओं [जिन रोगों में रोगी गिरता जाता है], (पीयकान्) अन्य दुःखदायी रोगों ॥ ८ ॥ (जाग्रद्दुस्वप्न्यम्) जागते में बुरे स्वप्न और (स्वप्नेदुस्वप्न्यम्) सोते में बुरे स्वप्न को ॥९॥ (परा वहन्तु—म० ७) दूर पहुंचावें ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर नियम को छोड़कर कुपथ्य करते हैं वे अनेक महाक्लिष्ट रोग भोगते हैं ॥ ७–९ ॥

अनागमिष्यतो वरान्त्रविंत्तेः संकल्पानमुं'च्या द्रुहः पाशान् ।१०

अनागमिष्यतः । वरान् । अविंत्तेः । सम्-कल्पान् । अमुं'च्याः । द्रुहः । पाशान् ॥ १० ॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विर्यु'रो न साधुः ॥ ११ ॥

तत् । अमुष्मै । अग्ने । देवाः । परा । वहन्तु । वध्रिः । यथा । असत् । विर्यु'रः । न । साधुः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(अनागमिष्यतः) न आने वाले (वरान्) वरदानों [श्रेष्ठ कर्मफलों] को, (अविंत्तेः) निर्धनता के (संकल्पान्) विचारों को और

—आय्य, यलोपः । क्रूशान् (दुर्णाम्नः) अ० ८ । ६ । १ । अर्शआदिरोगान् (सदान्वाः) अ० २ । १४ । १ । सदा नोनुवाः । सर्वदा नोनूयमानाः शब्दायमानाः पीडाः ॥

८—(कुम्भीकाः) कुम्भी + कै शब्दे—क । कुम्भी उखेव कायन्ति शब्दायन्ते यासु ताः पीडाः (पीयकान्) पीयतिर्हिंसाकर्मा—निघ० ४ । २५ । कुन्शिलिपसंज्ञयोरपूर्वस्यापि । उ० २ । ३२ । पीयति—कुन् । हिंसकान् रोगान् ॥

९—(जाग्रद्दुस्वप्न्यम्) जाग्रदवस्थायां दुष्टस्वप्नम् (स्वप्नेदुस्वप्न्यम्) स्वप्नावस्थायां दुष्टस्वप्नम् ॥

१०—(अनागमिष्यतः) अनागमनमिच्छतः (वरान्) श्रेष्ठफलान् (अविंत्तेः) दरिद्रतायाः (संकल्पान्) विचारान् (अमुंच्याः) मुचॢ मोचने-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अमुच्याः) न छोड़ने वाले (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] के (पाशान्) फन्दों को ॥ १० ॥ (तत्) इस [सब दुःख] को (अमुष्मै) उस [कुपथ्यसेवी] के लिये, (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (देवाः) [तेरे] दिव्य नियम (परा वहन्तु) पहुंचावें, (यथा) जिस से (न साधुः) वह असाधु पुरुष (वध्रिः) निर्वीर्य और (विथुरः) व्याकुल (असत्) हो जावे ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कुपथ्यसेवी होवे, वह ईश्वर नियम के अनुसार दुष्ट कर्मों की अधिकता से श्रेष्ठ फल कभी न पावे, किन्तु दरिद्रता आदि महाक्लेशों में पड़कर घोर नरक भोगे ॥ १०, ११ ॥

सूक्तम् ७ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ आर्षी पङ्क्तिः ; २ साम्न्यनुष्टुप् ; ३ आसुर्युष्णिक् ; ४ प्राजापत्या गायत्री ; ५ आर्च्युष्णिक् ; ६, ८, ९, ११ साम्नी बृहती ; ७ याजुषी गायत्री ; १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् ॥

शत्रुनाशनोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

तेनैनंविध्याऽभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि परा-भूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥

तेन । एनम् । विध्यामि । अभूत्या । एनम् । विध्यामि । निः-भूत्या । एनम् । विध्यामि । परा-भूत्या । एनम् । विध्यामि । ग्राह्या । एनम् । विध्यामि । तमसा । एनम् । विध्यामि ॥ १ ॥

क, ङीप् । अमोचनशीलायाः (द्रुहः) अनिष्टचिन्तायाः (पाशान्) बन्धान् ॥

११—(तत्) पूर्वोक्तं दुःखम् (अमुष्मै) तस्मै कुपथ्यसेविने (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (देवाः) दिव्यनियमाः (परा वहन्तु) प्रापयन्तु (वध्रिः) निर्वीर्यः (यथा) येन प्रकारेण (असत्) भूयात् (विथुरः) व्यथेः सम्प्रसारणं धः किच्च । उ० १ । ३६ । व्यथ भयसंचलनयोः—उरच्, कित् । व्याकुलः (न साधुः) असाधुः । दुष्टजनः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तेन) उस [ईश्वर नियम] से (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अभूत्या) अभूति [असम्पत्ति] से (विध्यामि) मैं छेदता हूं, (एनम्) इस को (निर्भूत्या) निर्भूति [हानि वा नाश] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (पराभूत्या) पराभूति [पराभव, हार] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (ग्राह्या) गठिया रोग से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (तमसा) अन्धकार [महाक्लेश] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस [कुमार्गी] को [अन्य विपत्तियों से] (विध्यामि) मैं छेदता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—कुमार्गी दुराचारी लोग ईश्वर नियम से नाना विपत्तियां झेलते हैं ॥ १ ॥

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥

देवानाम् । एनम् । घोरैः । क्रूरैः । प्र-एषैः । अभि-प्रेष्यामि २

भाषार्थ—(एनम्) इस [कुमार्गी] को (देवानाम्) [परमात्मा के] उत्तम नियमों के (घोरैः) घोर [भयानक] और (क्रूरैः) क्रूर [निर्दय] (प्रैषैः) शासनों से (अभिप्रेष्यामि) मैं सामने से प्राप्त होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—दुराचारी लोग परमात्मा के नियमों से घोर क्रूर क्लेशों में पड़ते हैं ॥ २ ॥

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥

वैश्वानरस्य । एनम् । दंष्ट्रयोः । अपि । दधामि ॥ ३ ॥

१—(तेन) ईश्वरनियमेन (एनम्) कुमार्गिणम् (विध्यामि) विदारयामि । पीडयामि (अभूत्या) असम्पत्त्या (निर्भूत्या) हान्या (पराभूत्या) पराजित्या । पराभवेन (ग्राह्या) सन्धीनां रोगविशेषेण (तमसा) अन्धकारेण । महाक्लेशेन । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२—(देवानाम्) ईश्वरस्य दिव्यनियमानाम् (एनम्) कुमार्गिणम् (घोरैः) भयानकैः (क्रूरैः) दयारहितैः (प्रैषैः) प्र+इष वाच्छायां गतौ च—घञ् । शासनैः (अभिप्रेष्यामि) आभिमुख्येन प्राप्नोमि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(एनम्) इस [कुमार्गी] को (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारी पुरुष के (दंष्ट्रयोः) दोनों डाढ़ों के बीच [जैसे अन्न को] (अपि) अवश्य (दधामि) धरता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—प्रजागण कुकर्मी जन को पकड़कर सब के हित के लिये राजा को देवें, वह उसे ऐसा नष्ट करे जैसे अन्न को डाढ़ों से कुचलते हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ४। ३६। २॥

एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥ एव । अनेव । अव । सा । गरत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(एव) इस प्रकार से [अथवा] (अनेव) अन्य प्रकार से (सा) वह [न्याय व्यवस्था] [कुमार्गी को] (अव गरत्) निगल जावे ॥४॥

भाषार्थ—राजा अपनी अनेक न्याय व्यवस्थाओं से दुष्टों का नाश करता रहे ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । तम् । आत्मा । द्वेष्टु । यम् । वयम् । द्विष्मः । सः । आत्मानम् । द्वेष्टु ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(यः) जो [कुमार्गी] (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) बैर करता है, (तम्) उस से [उस का] (आत्मा) आत्मा (द्वेष्टु) बैर करे, (यम्) जिस [कुमार्गी] से (वयम्) हम (द्विष्मः) बैर करते हैं, (सः) वह (आत्मा-

---

३—(वैश्वानरस्य) सर्वनरहितस्य पुरुषस्य (एनम्) कुमार्गिणम् (दंष्ट्रयोः) दन्तपङ्क्तिविशेषयोर्मध्ये (अपि) अवश्यम् (दधामि) धरामि ॥

४—(एव) एवम् । अनेन प्रकारेण (अनेव) अनेवम् । अन्यप्रकारेण (सा) न्यायव्यवस्था (अव गरत्) विनाशयेत् ॥

५—(यः) कुमार्गी (अस्मान्) धार्मिकान् (द्वेष्टि) वैरयति (तम्) दुष्टम् (आत्मा) तस्यात्मा (द्वेष्टु) वैरयतु (यम्) (वयम्) धार्मिकाः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्) [अपने] आत्मा से (द्वेष्टु) बैर करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! कुमार्गी पुरुष धर्मात्माओं का मार्ग छोड़ने से आप ही अपना बैरी बन जाता है ॥ ५ ॥

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६॥

निः । द्विषन्तम् । दिवः । निः । पृथिव्याः । निः । अन्तरिक्षात् । भजाम ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(द्विषन्तम्) बैर करने वाले [कुमार्गी] को (दिवः) आकाश से (निः) पृथक्, (पृथिव्याः) पृथिवी से (निः) पृथक् और (अन्तरिक्षात्) मध्यलोक से (निः भजाम) हम भाग रहित करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—शूर धर्मात्मा लोग दुराचारियों को आकाश मार्ग, पृथिवी-मार्ग और अन्य मार्ग से सर्वथा निकाल देवें ॥ ६ ॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥ सु-यामन् ॥ चाक्षुष ॥ ७ ॥

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं सृजे ॥ ८ ॥

इदम् । अहम् । आमुष्यायणे । अमुष्याः । पुत्रे । दुः-स्वप्न्यम् । सृजे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(सुयामन्) हे सुमार्गी ! (चाक्षुष) हे नेत्र वाले ! [विद्वान्] ॥ ७ ॥ (इदम्) अब (अहम्) मैं (आमुष्यायणे) अमुक पुरुष के सन्तान,

---

(द्विष्मः) वैरयामः (सः) दुराचारी (आत्मानम्) स्वकीयमात्मानम् (द्वेष्टु) ॥

६—(निः) पृथक् (द्विषन्तम्) वैरयन्तम् (दिवः) आकाशात् (निः) (पृथिव्याः) भूलोकात् (अन्तरिक्षात्) मध्यलोकात् (निर्भजाम) भागरहितं कुर्याम ॥

७—(सुयामन्) या गतौ—मनिन् । हे सुमार्गिन् (चाक्षुष) हे नेत्रवन् । दूरदर्शिन् ॥

८—(इदम्) इदानीम् (अहम्) धर्मात्मा (आमुष्यायणे) अमुष्य पुरु-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रे) [कुमार्गी] पुत्र पर (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न [आलस्य आदि] में उठे कुविचार को (मृजे) शोधता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—धर्मात्मा दूरदर्शी लोग कुमार्गी जन के कुल, माता पिता आदि का पता लगाकर यथोचित दण्ड देवें ॥ ७, ८ ॥

यदुदोऽदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥

यत् । उदः-अदः । अभि-अगच्छन् । यत् । दोषा । यत् । पूर्वाम् । रात्रिम् ॥ ९ ॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यत् । जाग्रत् । यत् । सुप्तः । यत् । दिवा । यत् । नक्तम् १०

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनुमव दये ॥ ११ ॥

यत् । अहः-अहः । अभि-गच्छामि । तस्मात् । एनम् । अव । दुये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(यत्) जैसे (अदोअदः) उस उस समय पर (यत्) जो [कष्ट] (दोषा) रात्रि में, (यत्) जो [कष्ट] (पूर्वां रात्रिम्) रात्रि के पूर्व भाग में (अभ्यगच्छन्) उन [पूर्वज लोगों] ने सामने से पाया है ॥ ९ ॥ [वैसे ही] (यत्) जो [कष्ट] (जाग्रत्) जागता हुआ, (यत्) जो [कष्ट] (सुप्तः) सोता हुआ मैं (यत्) जो [कष्ट] (दिवा) दिन में, (यत्) जो

षस्य सन्ताने (अमुष्याः) अमुकस्त्रियाः (पुत्रे) कुमार्गिणि सन्ताने (दुःस्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्ने भवं कुविचारम् (मृजे) शोधयामि ॥

९—(यत्) यथा (अदोअदः) तस्मिंस्तस्मिन् समये (अभ्यगच्छन्) ते पूर्वजा आभिमुख्येन प्राप्नुवन् (यत्) कष्टम् (दोषा) रात्रौ (यत्) (पूर्वाम्) पूर्वभागभवायाम् (रात्रिम्) ॥

१०—(यत्) कष्टम् (जाग्रत्) जागरणयुक्तः सन् (सुप्तः) निद्रालुः सन् (दिवा) दिने (नक्तम्) रात्रौ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नक्तम्) रात्रि में, ॥ १० ॥ (यत्) जो (अहरहः) दिन दिन (अभिगच्छामि) सामने से पाता हूं; (तस्मात्) उसी कारण से (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अव दधे) मार गिराता हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे पूर्वज विद्वान् लोग बड़े बड़े कष्ट सहकर दुराचारी असुरों को हराते आये हैं, वैसे ही मनुष्य क्लेश सहकर दुष्टों को हराकर शिष्टों का पालन करते रहें ॥ ६, १०, ११ ॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥

तम् । जहि । तेन । मन्दस्व । तस्य । पृष्टीः । अपि । शृणीहि १२

भाषार्थ—(तम्) उस [कुमार्गी] को (जहि) नाश करदे, (तस्य) उसकी (पृष्टीः) पसलियां (अपि) सर्वथा (शृणीहि) तोड डाल, (तेन) उस [शूर कर्म] से (मन्दस्व) तू चल ॥ १२ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् शूर लोग दुष्टों को नाश करके सदा आगे बढ़ते रहें ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(सः) वह [कुमार्गी] (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ १३ ॥

भावार्थ—प्रतापी राजा दुराचारियों को सर्वथा नाश करके प्रजा पालन करे ॥ १३ ॥

११—(यत्) कष्टम् (अहरहः) प्रतिदिनम् (अभिगच्छामि) अहमाभिमुख्येन प्राप्नोमि (तस्मात्) कारणात् (एनम्) दुष्टम् (अव दधे) विनाशयामि ॥

१२—(तम्) कुमार्गिणम् (जहि) नाशय (तेन) शूरकर्मणा (मन्दस्व) मदि स्तुतिगत्यादिषु । गच्छ (तस्य) दुष्टस्य (पृष्टीः) पार्श्वास्थीनि (अपि) सर्वथा (शृणीहि) विदारय ॥

१३—(सः) दुष्टः (मा जीवीत्) नैव प्राणान् धारयेत् (तम्) दुष्टम् (प्राणः) जीवनम् (जहातु) त्यजतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ८ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—३३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ जितमित्यादि १, ५—३० ब्राह्म्यनुष्टुप् ; २, ५—२६, ३१ विराडार्षी गायत्री ; ३ प्राजापत्या गायत्री ; तस्येत्यादि ४-२६, ३३ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; स इत्यादि ५, ६, ७, १२, १४, १६, २०, २२, २७ आसुरी जगती ; स इत्यादि ८, १०, १३, २१, २३, २४, २५ आसुरी त्रिष्टुप् ; स इत्यादि ९, १५, १७, १८, १९, २६, ३२ आसुरी पङ्क्तिः ; २८, २९ याजुषी जगती ॥

शत्रुनाशनोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्-भिन्नम् । अस्माकम् । ऋतम् । अस्माकम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म । अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् । यज्ञः । अस्माकम् । पशवः । अस्माकम् । प्र-जाः । अस्माकम् । वीराः । अस्माकम् ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममौ यः ॥२॥

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् । अमुष्याः । पुत्रम् । अमौ । यः ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥

सः । ग्राह्याः । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ४ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेद-ज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देव-पूजा, संगतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] ॥ १ ॥ (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक, (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है ॥ २ ॥ (सः) वह [कुमार्गी] (आह्याः) गठिया रोग के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ॥ ३ ॥ (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूं, (इदम्) अब (एनम्)

१—(जितम्) जयेन प्राप्तं वस्तु (अस्माकम्) धर्मात्मनाम् (उद्भिन्नम्) उद्भेदनं स्फुरणम् । आयधनम् (ऋतम्) वेदज्ञानम् (तेजः) (ब्रह्म) अन्नम्-निघ० २ । ७ (स्वः) सुखम् (यज्ञः) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारः (पशवः) गवाश्वादयः (प्रजाः) प्रजागणाः (वीराः) वीरपुरुषाः (अस्माकम्) भवन्तु इति शेषः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२—(तस्मात्) प्रसिद्धात् पदात् (अमुम्) अमुकपुरुषम् (अमुम्) अमुकपुरुषम् (निर्भजामः) भागरहितं कुर्मः (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुषस्य सन्तानम् (अमुष्याः) अमुकस्त्रियाः (पुत्रम्) सुतम् (असौ) (यः) कुमार्गी पुरुषः ॥

३—(सः) कुमार्गी (आह्याः) आहीरोगस्य (पाशात्) बन्धनात् (मा मोचि) न मुक्तो भवतु ॥

४—(तस्य) कुमार्गिणः पुरुषस्य (इदम्) इदानीम् (वर्चः) प्रतापम् (तेजः) प्रकाशम् (प्राणम्) श्वासव्यापारम् (आयुः) जीवनम् (नि) नितराम् (वेष्टयामि) आच्छादयामि (इदम्) इदानीम् (एनम्) कुमार्गिणम् (अधराञ्चाम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् धर्मवीर राजा सुवर्ण आदि धन और सब सम्पत्ति का सुन्दर प्रयोग करे और अपने प्रजागण और वीरों को सदा प्रसन्न रख कर कुमार्गियों को कष्ट देकर नाश करे ॥ १-४ ॥

१—आगे के सब मन्त्रों का भावार्थ इस भावाथ के समान है ॥

२—मन्त्र १, २, ४ कुछ भेद से आ चुके हैं-अ० १० । ५ । ३६ ॥

जितम् ० । ० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ५ ॥

० । सः । निः-ऋत्याः । पाशात् । ० ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (निर्ऋत्याः) निर्ऋति [महामारी] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥ ५ ॥

जितम् ० । ० सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ६ ॥

० । सः । अभूत्याः । पाशात् । ० ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अभूत्याः) अभूति [असम्पत्ति] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥ ६ ॥

जितम् ० । ० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ७ ॥

० । स । निः-भूत्याः । पाशात् । ० ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (निर्भूत्याः) निर्भूति [हानि] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥ ७ ॥

अधोगतम् (पादयामि) पादेन प्रहरामि ॥

५—(निर्ऋत्याः) कृच्छ्रापत्तेः । महामारीरोगस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

६—(अभूत्याः) असम्पत्तेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—(निर्भूत्याः) हानेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितम् ० । ० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ८ ॥

० । सः । परा-भूत्याः । पाशात् । ० ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (पराभूत्याः) पराभूति [हार] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ ८ ॥

जितम् ० । ० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । ० ॥ ९ ॥

० । सः । देव-जामीनाम् । पाशात् । ० ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (देवजामीनाम्) उन्मत्तों की गतियों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ ९ ॥

जितम् ० । ० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । ० ॥ १० ॥

० । सः । बृहस्पतेः । पाशात् । ० ॥ १० ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (बृहस्पतेः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक सेनाध्यक्ष] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ १० ॥

जितम् ० । ० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ११ ॥

० । सः । प्रजा-पतेः । पाशात् । ० ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (प्रजापतेः) प्रजापति [प्रजापालक सेनापति] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ ११ ॥

८—(पराभूत्याः) पराजितेः । पराभवस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

९—(देवजामीनाम्) सू० ५। म० ८। उन्मत्तपुरुषाणां गतीनाम्। अन्यत्पूर्ववत् ॥

१०—(बृहस्पतेः) बृहतीनां विद्यानां पालकस्य सेनाध्यक्षस्य। अन्यत् पूर्ववत्॥

११—(प्रजापतेः) प्रजापालकस्य सेनापतेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितम् ० । ० । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १२ ॥

० । सः । ऋषीणाम् । पाशात् । ० ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (ऋषीणाम्) ऋषियों [सन्मार्ग दर्शक महात्माओं] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।..... [म० ४] ॥ १२ ॥

जितम् ० । ० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १३ ॥

० । सः । आर्षेयाणाम् । पाशात् । ० ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आर्षेयाणाम्) आर्षेय शास्त्रों [ऋषिप्रणीत धर्मशास्त्रों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥ १३ ॥

जितम् ० । ० सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १४ ॥

० । सः । अङ्गिरसाम् । पाशात् । ० ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अङ्गिरसाम्) अङ्गिराओं [महाज्ञानी युद्धकुशलों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥ १४ ॥

जितम् ० । ० । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १५ ॥

० । सः । आङ्गिरसानाम् । पाशात् । ० ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आङ्गिरसानाम्) अङ्गिराओं [महाज्ञानियों] के शिक्षित योद्धाओं

१२—(ऋषीणाम्) सन्मार्गदर्शकमहात्मनाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१३—(आर्षेयाणाम्) ऋषिप्रणीतानां धर्मशास्त्राणाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१४—(अङ्गिरसाम्) अ० २ । १२ । ४ । अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च । उ० ४ । २३६ । अगि गतौ—असि, इरुट् । महाज्ञानिनां युद्धकुशलानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१५—(आङ्गिरसानाम्) अङ्गिरस्-अण् । महाज्ञानिभिः शिक्षितयोद्-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ १५ ॥

जितम् ० । ० सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १६ ॥

० । सः । अथर्वणाम् । पाशात् । ० ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (अथर्वणाम्) अथर्वाओं [निश्चल स्वभाव वाले सेना नायकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ १६ ॥

जितम् ० । ० । स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १७ ॥

० । सः । आथर्वणानाम् । पाशात् । ० ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (आथर्वणानाम्) अथर्वाओं के सेना दलों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ १७ ॥

जितम् ० । ० । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १८ ॥

० । सः । वनस्पतीनाम् । पाशात् । ० ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों [वृक्षों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ १८ ॥

धृणाम्। अन्यत् पूर्ववत् ॥

१६—(अथर्वणाम्) अ० ४ । १ । ७ । अथर्वाणोऽथनवन्तस्थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु० ११ । १८ । ब्राम्रदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप् । उ० ४ । ११३ । अथर्व चरणे=गतौ-वनिप् । वलोपो विकल्पेन । निश्चलस्वभावानां सेनानायकानाम् ॥

१७—(आथर्वणानाम्) अ० ४ । ३ । ७ । अथर्वन्—अण् । अन् । पा० ६ । ४ । १६७ । अनः प्रकृतिभावः । अथर्वणां निश्चलस्वभावसेनानायकानां गणानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१८—(वनस्पतीनाम्) वृक्षाणाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितम् ० । ० । स वानस्पत्यानां पाशान्मामोचि । ० ॥ १९ ॥

० । सः । वानस्पत्यानाम् । पाशात् । ० ॥ १९ ॥

भाषार्थ-- (जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (वानस्पत्यानाम्) वनस्पतियों से उत्पन्न [काष्ठ, पुष्प, फल आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥१९॥

जितम् ० । ० । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । ० ॥ २० ॥

० । सः । ऋतूनाम् । पाशात् । ० ॥ २० ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (ऋतूनाम्) ऋतुओं [वसन्त आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।.....[म० ४] ॥ २० ॥

जितम् ० । ० । स आर्तवानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ २१ ॥

० । सः । आर्तवानाम् । पाशात् । ० ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आर्तवानाम्) ऋतुओं में उत्पन्न [शीत, उष्ण, पुष्प फल, आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । .....[म० ४] ॥ २१ ॥

जितम् ० । ० । स मासानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ २२ ॥

० । सः । मासानाम् । पाशात् । ० ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह

१९—(वानस्पत्यानाम्) वृक्षेभ्य उत्पन्नकाष्ठपुष्पफलादिकानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२०—(ऋतूनाम्) वसन्तादिकालानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२१—(आर्तवानाम्) ऋतुषूत्पन्नानां शीतोष्णपुष्पफलादीनाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२२—(मासानाम्) वर्षावयवानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कुमार्गी] (मासानाम्) महीनों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ २२ ॥

जितम् ० । ० सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि । ० । २३ ॥

० । सः । अर्ध-मासानाम् । पाशात् । ० ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अर्धमासानाम्) आधे महीनों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। .....[म० ४] ॥ २३ ॥

जितम् ० । ० । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि । ० ॥ २४ ।

० । सः । अहोरात्रयोः । पाशात् । ० ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अहोरात्रयोः) दिन और रात्रि के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ २४ ॥

जितम् ० । ० । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि । ० ।।२५।।

० । सः । अह्नोः । सम्-यतोः । पाशात् । ० ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ.....[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (संयतोः) मिले हुये (अह्नोः) दो दिन [दो समय के संयोग] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।.....[म० ४] ॥ २५ ॥

जितम् ० । ० । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । ० ।।२६।।

० । सः । द्यावापृथिव्योः । पाशात् । ० ॥ २६ ॥

२३—(अर्धमासानाम्) मासावयवानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२४—(अहोरात्रयोः) रात्रिदिवसयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२५—(अह्नोः) दिनयोः । कालयोः (संयतोः) यमेः क्विप् । संयुक्तयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ……[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (द्यावापृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।……[म० ४]॥ २६॥

जितम् ० । ० स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । ० ॥ २७ ॥

० । सः । द्यावापृथिव्योः । पाशात् । ० ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ……[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (इन्द्राग्न्योः) बिजुली और भौतिक अग्नि के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।……[म० ४]॥ २७॥

जितम् ० । ० स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि । ० ॥ २८ ॥

० । सः । मित्रावरुणयोः । पाशात् । ० ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ……[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (मित्रावरुणयोः) प्राण और अपान [श्वास प्रश्वास के कष्ट] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।……[म० ४]॥ २८॥

जितम् ० । ० । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि । ० ॥२९॥

० । सः । राज्ञः । वरुणस्य । पाशात् । ० ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ……[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (वरुणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।……[म० ४]॥ २९॥

जितमस्माकमृद्धिरस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं

२६—(द्यावापृथिव्योः) सूर्यपृथिव्योः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२७—(इन्द्राग्न्योः) विद्युदग्न्योः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२८—(मित्रावरुणयोः) प्राणापानयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२९—(राज्ञः) भूपतेः (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरा अस्माकम् ॥ ३० ॥

ओ । अस्माकम् । ऋतम् । अस्माकम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म । अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् । यज्ञः । अस्माकम् । पशवः । अस्माकम् । प्र-जाः । अस्माकम् । वीराः । अस्माकम् ॥ ३० ॥

तस्मादुमं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुं यः॥३१॥

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् । अमुष्याः । पुत्रम् । अमुं । यः ॥ ३१ ॥

स्व मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥

स्वः । मृत्योः । पड्वीशात् । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३२ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३३ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सगतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें]—[म० १]॥३०॥ (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है—[म० २] ॥ ३१ ॥ (सः) वह [कुमार्गी] (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशात्) बेड़ी के प्रवेश वाले (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ॥ ३२ ॥ (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूं, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूं—[म० ४] ॥ ३३ ॥

भावार्थ—म० १—४ के समान ॥ ३०—३३ ॥

सूक्तम् ८ [पर्यायसूक्तम्]

१—४ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ साम्नी त्रिष्टुप् ; २ आर्च्युष्णिक् ; ३ साम्नी गायत्री ; ४ आर्च्युष्णिक् ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः१

जितम् । अस्माकम् । उत्-भिन्नम् । अस्माकम् । अभि । अस्थाम् । विश्वाः । पृतनाः । अरातीः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा और (उद्भिन्नम्) निकाली किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा [हो], (विश्वाः) [शत्रुओं की] सब (पृतनाः) सेनाओं और (अरातीः) कंजूसियों को (अभि अस्थाम्) मैं ने रोक दिया है ॥ १ ॥

भावार्थ—पराक्रमी वीर पुरुष शत्रुओं को जीतकर और उन से कर लेकर अपने वश में रक्खे ॥ १ ॥

यह मन्त्र आचुका है-अ० १० । ५ । ३६ ॥

तदग्निराह तदु सोमो आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥२॥

तत् । अग्निः । आह । तत् । उ इति । सोमः । आह ।

३२—(मृत्योः) मरणस्य (पड्वीशात्) अ० ६ । ९६ । २ । सर्त्तेरटिः । उ० १ । १३४ । पश बन्धने—अटि, डित्+विश प्रवेशे—क, दीर्घः । पाशप्रवेशयुक्तात् । अन्यत् पूर्ववत्—म० १—४ ॥

१—(जितम्) जयेन प्राप्तम् (अस्माकम्) धर्मात्मनाम् (उद्भिन्नम्) उद्भेदनं स्फुरणम् । आयधनम् (अस्माकम्) (अभि अस्थाम्) अभिभूतवानस्मि (विश्वाः) सर्वाः (पृतनाः) शत्रुसेनाः (अरातीः) अदानशीलताः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूषा । मा । धात् । सु-कृतस्य । लोके ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तत्) यह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (आह) कहता है, (तत् उ) यही (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (आह) कहता है, (पूषा) पोषण करने वाला जगदीश्वर (मा) मुझे (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोके) लोक [समाज] में (धात्) रक्खे ॥ २ ॥

भावार्थ—परमात्मा निरन्तर आज्ञा देता है कि मनुष्य सदा धर्मात्माओं के समाज में रह कर उन्नति करे ॥ २ ॥

इस मन्त्र का कुछ भाग आ चुका है-अ० ८ । ५ । ५ ॥

अगन्म स्वः१ स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥

अगन्म । स्वः । स्वः । अगन्म । सम् । सूर्यस्य । ज्योतिषा । अगन्म ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(स्वः) सुख [तत्त्वज्ञान का आनन्द] (अगन्म) हम पावें और (स्वः) सुख [मोक्ष आनन्द] (अगन्म) हम पावें और (सूर्यस्य) सर्व—प्रेरक परमात्मा की (ज्योतिषा) ज्योति से (सम् अगन्म) हम मिल जावें॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य पुरुषार्थ के साथ तत्त्वज्ञानी होकर मोक्ष सुख पावें और परमात्मा के दर्शन के भागी होवें ॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

वस्यः-भूयाय । वसु-मान् । यज्ञः । वसु । वंशिषीय । वसु-मान् । भूयासम् । वसु । मयि । धेहि ॥ ४ ॥

२—(तत्) इदम् (अग्निः) ज्ञानस्वरूपपरमेश्वरः (आह) ब्रवीति । उपदिशति (तत्) (उ) एव (सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (आह) (पूषा) सर्वपोषकजगदीश्वरः (मा) माम् (धात्) दध्यात् (सुकृतस्य) पुण्यकर्मणः (लोके) समाजे ॥

३—(अगन्म) छन्दसि लुङ्लङ्लिटः । पा० ३ । ४ । ६ । लिङर्थे लुङ् । गच्छेम । प्राप्नुयाम (स्वः) तत्त्वज्ञानसुखम् (स्वः) मोक्षसुखम् (अगन्म) प्राप्नुयाम (सम्) संगत्य (सूर्यस्य) सर्वप्रेरकस्य परमात्मनः (ज्योतिषा) तेजसा (अगन्म) प्राप्नुयाम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(वस्योभूयाय) अधिक श्रेष्ठ पद पाने के लिये [हमारा] (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दानव्यवहार] (वसुमान्) श्रेष्ठ गुण वाला [हो], (वसु) श्रेष्ठ पद (वंशिषीय) मैं मांगूं, (वसुमान्) श्रेष्ठ पद वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं, [हे परमात्मन् !] (वसु) श्रेष्ठ पद (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा में विश्वास कर के यह प्रयत्न करे कि वह परोपकार द्वारा संसार के भीतर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पद पावे ॥ ४ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

इति षोडशं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री सयाजी राव गायकवाड़ाधिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासदक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्री पण्डित

क्षेमकरणदास त्रिवेदिना

कृते अथर्ववेदभाष्ये षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे मार्गशीर्षकृष्णद्वितीयायां तिथौ १९७५ [पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि श्रीराजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—मार्गशीर्षशुक्ला ११ संवत् १९७५ ता० १४ दिसम्बर १९१८ ॥

४—(वस्योभूयाय) वसु-ईयसुन्, ईलोपः + भू सत्तायां प्राप्तौ च-क्यप् । श्रेष्ठतरपदप्राप्तये (वसुमान्) श्रेष्ठगुणवान् (यज्ञः) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारः (वसु) श्रेष्ठपदम् (वंशिषीय) अ० ९ । १ । १४ । वनु याचने-आशीर्लिङि छान्दसं रूपम् । अहं वनिषीय । याचिषीय (वसुमान्) श्रेष्ठपदयुक्तः (वसु) श्रेष्ठपदम् (मयि) पुरुषार्थिनि (धेहि) धारय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियाँ ॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-१७ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे, उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जाव॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५९७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर, नमस्ते!

आप को ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आप ने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य का करने का प्रयत्न किया है। भाष्य काण्डों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्यसमाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्णकार्य हो रहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस दान करें। स्वयम् ग्रहक बनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाजक पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही जरूरी है। भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य मंगाइये।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,

BSo. LL. B. उपमन्त्री।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१९१४। कार्यालय श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध, बुलन्दशहर।

आपका पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धि शाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्र धारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आप को उत्तरोत्तर उस महत्त्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए०, एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश, मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारो वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दाबन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त। आर्यमित्र आगरा, २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैं ने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम, आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खे।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एकबड़ी कमी के पूर्ण करने का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो...छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

श्रीयुत महाशय **मुन्शीराम जी**—जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७-१०-१९६९।

अथर्ववेद भाष्य आप का दिया व किया हुआ अवकोशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आप का परिश्रम सराहनीय है।

तथा— पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१९६९।

अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० **शिवशंकर शर्मा**—काव्यतीर्थ-छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वाद ग्रंथकर्त्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि, सम्पादक आर्यमित्र—८ फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।... आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी करं और अब वहाँ से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आपने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आप का अथर्ववेदीय भाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित **भीमसेन शर्मा इटावा**—उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में.....अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है...भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है, अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१९१५॥

श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते,

महेवा के पते से आप का भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आप ने हम सभों पर अत्यन्त कृपा की है आप को अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पाँचवाँ कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है, कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है, कि आप ने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है...बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आप ने अपने भाष्य को अलंकृत किया है...आप की राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आप का भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पण्डित गणेश प्रसाद शर्मा—संपादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू कालिकाप्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१३।

आप का भेजा अथर्ववेद भाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंहजी वर्मा, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, जिला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आप ने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आप को वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता. सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७-६—१३।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६ लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है-कि वेद का पढ़ना पढाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है-जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।..... .....इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोच कर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है..... ...त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर-इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDY ADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No* 624 *dated 6th February* 1913.

...It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable "For Encouragement Fund.

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope...the venture will not fail for want of pecuniary support

---

THE MAGISTRATE OF ALLAHAABD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

THE ARYA PATRIKA LAHORE APRIL 18 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda*, which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature .....The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works.....The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind.

Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves .....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

All rights reserved.

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र-और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

सप्तदशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सेयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना

निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.
Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि } संवत् १९७५ वि० सन् १९१८ ई० { मूल्यम् ।=)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ८२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad) ।

॥ ओ३म् ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥"

आनन्दसमाचार ।

अथर्ववेदभाष्यम्—जिन वेदों की महिमा सब बड़े २ ऋषि, मुनि और योगी गाते आये हैं और विदेशी विद्वान् जिनका अर्थ खोजने में लग रहे हैं। वे अब तक संस्कृत में होने के कारण बड़े कठिन थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अर्थ तो भाषा में हो चुका है। परन्तु अथर्ववेद का अर्थ अभी तक नागरी भाषा में नहीं था, इस महात्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयाग निवासी पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने उत्साह किया है। वे भाष्य को नागरी (हिन्दी) और संस्कृत में वेद, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरणादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण से बड़े परिश्रम के साथ बनाकर प्रकाशित कर रहे हैं।

भाष्य का क्रम इस प्रकार है। १—सूक्त के देवता, छन्द, उपदेश, २-सस्वर मूल मन्त्र, ३-सस्वर पदपाठ, ४—मन्त्रों के शब्दों को कोष्ठ में देकर सान्वय भाषार्थ, ५—भावार्थ, ६—आवश्यक टिप्पणी, पाठान्तर, अनुरूप पाठादि, ७—प्रत्येक पृष्ठ में लाइन देकर सन्देह निवृत्ति के लिये शब्दों और क्रियाओं की व्याकरण निरुक्तादि प्रमाणों से सिद्धि।

इस वेद में २० छोटे बड़े काण्ड हैं, एक एक काण्ड का भावपूर्ण संक्षिप्त स्त्री पुरुषों के समझने योग्य अति सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य अल्प मूल्य में छपकर ग्राहकों के पास पहुंचता है। वेदप्रेमी श्रीमान् राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, विद्वान् और सर्व साधारण स्त्री पुरुष स्वाध्याय, पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मंगावें और जगत्पिता परमात्मा के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यकविद्या, शिल्पविद्या, राजविद्यादि अनेक क्रियाओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें और धर्मात्मा पुरुषार्थी होकर कीर्ति पावें। छपाई उत्तम और काग़ज़ बढ़िया रायल अठपेजी है।

स्थायी ग्राहकों में नाम लिखाने वाले सज्जन २०) सैकड़ा छोड़कर पुस्तक वी० पी० वा नगद दाम पर पाते हैं। डाकव्यय ग्राहक देते हैं।

काण्ड	१ भूमिका सहित	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
मूल्य	१।)	१।-)	१॥-)	२)	१॥=)	३)	२।)	२)	२।)	२॥)	२।)

काण्ड	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	मन्त्र सूची		पृष्ठ ३,६०० लगभग
मूल्य	२=)	१।=)	१।)	१-)	॥-)	।=)						२९=)

काण्ड—१८ छप रहा है। कांड १९ शीघ्र प्रकाशित होगा।

हवनमन्त्राः—धर्म शिक्षा का उपकारी पुस्तक—चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवनमन्त्र, वामदेव्यगान सरल भाषा में शब्दार्थ सहित संशोधित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ६०, मूल्य ।)॥

रुद्राध्यायः—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अंग्रेज़ी में बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४८ मूल्य ।=)

रुद्राध्यायः—मूलमात्र बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४ मूल्य)॥

वेदविद्यायें—वेदों में विमान, नौका अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन मूल्य -)॥

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी

२५ दिसम्बर १९१८। ५२, लूकरगंज, प्रयाग। (Allahabad)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Panini Kanya Maha Vidyalaya, Ujjain. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड १७ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	विषासहिं सहमानं	इन्द्र वा विष्णु	आयुकी बढ़ती	आर्ची जगती आदि

२—अथर्ववेद, काण्ड १७ के मन्त्र अन्यवेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से।

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड १७) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र,	यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र,	सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्या
१	उदगादयमादित्यो	१।२४	१।५०।१३		

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

सप्तदशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—३० ॥ इन्द्रो विष्णुर्वा देवता ॥ १ आर्ची जगती ; २, ३, ४ विराडति-जगती ; ५ निचृदतिजगती ; ६, ७ अष्टिः ; ८, ११, १६ अतिधृतिः ; ९, १५ विराट् शक्करी ; १० भुरिग् धृतिः ; १२ कृतिः ; १३ प्रकृतिः ; १४ शक्करी ; १७ स्वराट् शक्करी ; १८ भुरिगष्टिः ; १९, २४ स्वराडष्टिः ; २० आर्षी गायत्री ; २१ विराडार्षी बृहती ; २२ आर्ष्यनुष्टुप् ; २३ आर्ची त्रिष्टुप् ; २५ अनुष्टुप् ; २६ आर्ष्युष्णिक् ; २७ विराडार्षी जगती ; २८, २९ त्रिष्टुप् ; ३० आर्षी त्रिष्टुप् ॥ आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की बढ़ती के लिये उपदेश ॥

वि॒षासु॑हिं सह॑मानं सास॒हानं॑ सही॒यांस॑म् ।
सह॑मानं सहो॒जित॑ꣳ स्व॒र्जित॑ꣳ गो॒जित॑ꣳ संधना॒जित॑म् ।
ई॒ड्यं॑ नाम॑ हु॒ इन्द्र॒मायु॑ष्मान् भूयास॑म् ॥ १ ॥
वि-स॒सु॒हिम् । सह॑मानम् । स॒स॒हा॒नम् । स॒ही॒यांस॑म् ॥
सह॑मानम् । सु॒हः-जित॑म् । स्वः-जित॑म् । गो-जित॑म् । सं॒ध॒ना-जित॑म् ॥ ई॒ड्य॑म् । नाम॑ । हु॒ । इन्द्र॑म् । आयु॑ष्मान् । भूया॑सम् ॥ १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले, (सहमानम्) दबा लेते हुये, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्तिवाले—(सहमानम्) वश में करते हुये, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनजितम्) पूरा धन जीतने वाले—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (हुवे) मैं पुकारता हूं, (आयुष्मान्) बड़े आयु वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस सर्वजनक जगदीश्वर परमात्मा ने सब विघ्नों को नाश करके तुम्हें अनेक सुख के साधन दिये हैं, तुम उसी की उपासना से बहुप्रकार शक्ति बढ़ाकर संसार में यश और कीर्ति फैलाओ ॥ १ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम हु इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥

वि-सासहिम् । सहमानम् । सासहानम् । सहीयांसम् ॥ सह-मानम् । सहः-जितम् । स्वः-जितम् । गो-जितम् । संधन-जितम् ॥ ईड्यम् । नाम । हु । इन्द्रम् । प्रियः । देवानाम् । भूयासम् ॥ २ ॥

१—(विषासहिम्) षह अभिभवे शक्तौ च यङि—क्विप्प्रत्ययः। विशेषेणाभिभवितारम् (सहमानम्) ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्। पा० ३। २। १२६। सहेश्चानश्। अभिभवन् (सासहानम्) सहेर्लिटः कानच्, छान्दसो दीर्घः। पूर्वमपि अभिभवितारम् (सहीयांसम्) तुश्छन्दसि। पा० ५। ३। ५९। सोढृ—ईयसुन्। तुरिष्ठेमेयःसु। पा० ६। ४। १५४। तृलोपः। शक्तिमत्तरम् (सहमानम्) वशीकुर्वन् (सहोजितम्) बलवतो जेतारम् (स्वर्जितम्) स्वर्गस्य जेतारम् (गोजितम्) भूमेर्जेतारम् (संधनजितम्) सांहितिको दीर्घः। सम्यग् धनस्य सम्पूर्णस्वर्णादिलक्षणस्य जेतारम् (ईड्यम्) स्तुत्यम् (नाम) प्रसिद्धौ। नाम्ना (हुवे) हुवे। आह्वयामि (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं जगदीश्वरम् (आयुष्मान्) दीर्घजीवनयुक्तः (भूयासम्) भवेयम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले.....[मन्त्र १,]—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥ २ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

वि-सासहिम् । सहमानम् । सासहानम् । सहीयांसम् ॥ सहमानम् । सहः-जितम् । स्वः-जितम् । गो-जितम् । सं धन-जितम् ॥ ईड्यम् । नाम । ह्वे । इन्द्रम् । प्रियः । प्र-जानाम् । भूयासम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले.....[मन्त्र १]—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (प्रजानाम्) प्रजागणों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ३ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥

वि-सासहिम् । सहमानम् । सासहानम् । सहीयांसम् ॥ सहमानम् । सहः-जितम् । स्वः-जितम् । गो-जितम् । सं धन-

२—(प्रियः) प्रीतिकरः (देवानाम्) विदुषाम् । अन्यत् पूर्ववत्-म० १ ॥
३—(प्रजानाम्) जनपदपुरुषाणाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितम् ॥ ईड्यम् । नाम । ह्वे । इन्द्रम् । प्रियः । पशूनाम् । भूयासम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले.....[मन्त्र १]—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (पशूनाम्) प्राणियों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

विषासहिं सहमानं सासह्वांसं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥ ५ ॥

वि-सासहिम् । सहमानम् । सासह्वांसम् । सहीयांसम् ॥ सहमानम् । सहः-जितम् । स्वः-जितम् । गो-जितम् । संधन-जितम् ॥ ईड्यम् । नाम । ह्वे । इन्द्रम् । प्रियः । समानानाम् । भूयासम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले, (सहमानम्) दबा लेते हुये, (सासह्वांसम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्ति वाले—(सहमानम्) वश में करते हुये, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले,(स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनजितम्) पूरा धन जीतने वाले—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (समानानाम्) तुल्य गुण वालों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

४—(पशूनाम्) प्राणिनाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—(समानानाम्) कुलजातिवयोधनविद्याकर्मादिभिः स्वसदृशानाम् । तुल्यगुणवताम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६॥

उत् । इहि । उत् । इहि । सूर्य । वर्चसा । मा । अभि-उदिहि ॥ द्विषन् । च । मह्यम् । रध्यतु । मा । च । अहम् । द्विषते । रधम् । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [सब के चलाने वाले परमेश्वर] (उत् इहि) तू उदय हो, (उत् इहि) तू उदय हो, (वर्चसा) प्रताप के साथ (मा) मुझ पर (अभ्युदिहि) उदय हो—(द्विषन्) बैर करता हुआ [शत्रु] (च) अवश्य (मह्यम् रध्यतु) मेरे वश में हो जावे, (च) और (अहम्) मैं (द्विषते) बैर करते हुये के (मा रधम्) वश में न पड़ूं (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे)

६—(उदिहि) उदितो भव (उदिहि) वीप्सायां द्विर्वचनम् (सूर्य) राजसूयसूर्य० । पा० ३ । १ । ११४ । सरतेः सुवतेर्वा क्यप् । हे सर्वव्यापक सर्वप्रेरक परमेश्वर (वर्चसा) प्रतापेन (मा) माम् (अभ्युदिहि) अभिलक्ष्योदितो भव (द्विषन्) वैरयन्, शत्रुः (च) निश्चयेन (मह्यम्) मदर्थम् (रध्यतु) रध हिंसासंराद्ध्योः—श्यन् दिवादित्वात् । रध्यतिर्वशगमनेऽपिदृश्यते—निरु० १० । ४० । वशं प्राप्नोतु (च) समुच्चये (अहम्) धार्मिकः (द्विषते) द्वेषं कुर्वते शत्रवे (मा रधम्) वशं न प्राप्नुयाम् (तव) त्वदीयानि (इत्) एव (विष्णो) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (वीर्याणि) वीरकर्माणि (त्वम्) हे परमेश्वर (नः) अस्मान् (पृणीहि) पूरय (पशुभिः) प्राणिभिः (विश्वरूपैः) नानास्वरूपैः (सुधायाम्) सु+डु धाञ् धारणपोषणयोः—अङ्, टाप् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे वीर विद्वानो ! उस महाबली सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को सर्वव्यापक साक्षात् करके सब का उपकार करो ॥ ६ ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ७ ॥

उत् । इहि । उत् । इहि । सूर्य । वर्चसा । मा । अभि-उदिहि ॥ यान् । च । पश्यामि । यान् । च । न । तेषु । मा । सु-मतिम् । कृधि । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्वरूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [सब के चलाने वाले परमेश्वर] (उत् इहि) तू उदय हो, (उत् इहि) तू उदय हो, (वर्चसा) प्रताप के साथ (मा) मुझ पर (अभ्युदिहि) उदय हो । (यान्) जिन [समीपस्थ प्राणियों] को (पश्यामि) मैं देखता हूं (च च) और (यान्) जिन [दूर वालों] को (न) नहीं [देखता हूं], (तेषु) उन पर (मा) मुझ को (सुमतिम्) सुमति वाला (कृधि) कर, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही.....[मन्त्र ६] ॥ ७ ॥

अतिशयेन पोषणशक्तौ (मा) माम् (धेहि) धारय (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) सर्वधातुभ्यो मनिन् । उ० ४ । १४५ । वि+अव रक्षणे—मनिन्, विभक्तिलोपः । व्योमन्=व्यवने-निरु० ११ । ४० । विशेषरक्षापदे ॥

७—(यान्) समीपस्थान् प्राणिनः (च) (पश्यामि) चक्षुषा विषयीकरोमि (यान्) दूरस्थान् प्राणिनः (च) (न) निषेधे (मा) माम् (सुमतिम्) अनुग्रहबुद्धियुक्तम् (कृधि) कुरु । अन्यत् पूर्ववत्—म० ६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा को उपास्य देव समझकर सब समीप वाले और दूर वाले प्राणियों का उपकार करते रहें ॥ ७ ॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र । हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्धि विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

मा । त्वा । दभन् । सलिले । अप्-सु । अन्तः । ये । पाशिनः । उप-तिष्ठन्ति । अत्र ॥ हित्वा । अशस्तिम् । दिवम् । आ । अरुक्षः । एताम् । सः । नः । मृड । सु-मतौ । ते । स्याम । तव । इत् । हि । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझे उन [विघ्नों] ने (मा दभन्) नहीं रोका है, (ये) जो (पाशिनः) बन्धन वाले [विघ्न] (सलिले) अन्तरिक्ष में (अप्सु अन्तः) तन्मात्राओं के भीतर (अत्र) यहां [संसार में] (उपतिष्ठन्ति) उपस्थित हैं। (एताम्) इस (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (हित्वा) छोड़कर (दिवम्) व्यवहार में (आरुक्षः) तू ऊंचा हुआ है, (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति

८—(त्वा) त्वाम् (मा दभन्) दम्भु हिंसायां माङि लुङि रूपम् । न हिंसितवन्तस्ते विघ्नाः (सलिले) अन्तरिक्षे (अप्सु) आपो व्यापिकास्तन्मात्राः—दयानन्दभाष्ये-यजु० २७ । २५ । व्यापिकासु तन्मात्रासु (अन्तः) मध्ये (ये) विघ्नाः (पाशिनः) बन्धनवन्तः (उपतिष्ठन्ति) उपस्थिता भवन्ति (अत्र) संसारे (हित्वा) त्यक्त्वा (अशस्तिम्) अपकीर्तिम् (दिवम्) व्यवहारम् (आ अरुक्षः) आरूढवानसि (एताम्) पूर्वोक्ताम् (सः) स त्वम् (नः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सुन्दर आज्ञा] में (स्याम) हम होवें, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही..... [मन्त्र ६] ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने सब विघ्नों को हटाकर तत्त्वों के परमाणुओं से सूर्य तृण आदि बड़े छोटे पदार्थों को रचकर परस्पर आकर्षण में ठहराया है, तुम सब उस परमात्मा की उपासना करके तत्त्वज्ञान से उन्नति करते जाओ ॥८॥

त्वं नं इन्द्र मह ते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्त-वेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्व-रूपैः । सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ९ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । महे ते । सौभगाय । अदब्धेभिः । परि । पाहि । अक्तु-भिः । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणिः ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (नः) हमें (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (अदब्धेभिः) [अपने] अखण्ड (अक्तुभिः) प्रकाशों के साथ (परि) सब ओर से (पाहि) बचा, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही..... [मन्त्र ६] ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा के अखण्डज्ञान के प्रकाश से संसार में बड़ा ऐश्वर्य पाकर सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥

अस्मान् (मृड) सुखय (सुमतौ) अनुग्रहबुद्धौ (ते) तव (स्याम) भवेम । अन्यत् पूर्ववत् ॥

९—(त्वम्) (नः) अस्मान् (महते) प्रवृद्धाय (सौभगाय) महैश्वर्य-प्राप्तये (अदब्धेभिः) अहिंसितैः । अखण्डितैः (परि) सर्वतः (पाहि) रक्ष (अक्तुभिः) पः किच्च । उ० १ । ७१ । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—तुन् । व्यञ्जकैः प्रकाशैः किरणैः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं नं इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव । आरोहं त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १० ॥ (१)

त्वम् । नः । इन्द्र । ऊति-भिः । शिवाभिः । शम्-तमः । भव ॥ आ-रोहन् । त्रि-दिवम् । दिवः । गृणानः । सोम- पीतये । प्रिय-धामा । स्वस्तये । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १० ॥ (१)

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (शिवाभिः) मङ्गलमय (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (त्रिदिवम्) तीन [आय व्यय वृद्धि] व्यवहार में (आरोहन्) ऊंचा होता हुआ और (दिवः) व्यवहारों को (गृणानः) जताता हुआ (प्रियधामा) प्रिय पद वाला (त्वम्) तू (सोमपीतये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये [वा अमृत पीने के लिये] और (स्वस्तये) सुन्दर सत्ता [दशा] के लिये (नः) हम को (शंतमः) अत्यन्त सुख देने वाला (भव) हो, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्व व्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही……[मन्त्र ६] ॥१०॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी अपार महिमा से प्राणियों को उनके पुरुषार्थ के अनुसार आय, व्यय और वृद्धिरूप फल देता हुआ अनेक व्यवहारों

१०—(त्वम्) (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् जगदीश्वर (ऊतिभिः) रक्षाभिः (शिवाभिः) मङ्गलयुक्ताभिः (शंतमः) सुखयितृतमः (भव) (आरोहन्) आरूढ उन्नतः सन् (त्रिदिवम्) अ० ६। ५। १० । दिवु व्यवहारे—क । त्रयो दिवा आयव्ययवृद्धिरूपा यस्मिंस्तं व्यवहारम् (दिवः) व्यवहारान् (गृणानः) विज्ञापयन् । उपदिशन् (सोमपीतये) ऐश्वर्यरक्षणाय । अमृतपानाय (प्रियधामा) प्रियपदः । प्रियतेजाः (स्वस्तये) शोभनास्तित्वाय । सुदशाप्राप्तये । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उपदेश करता है, हे मनुष्यो ! उसी की उपासना से पुरुषार्थ के साथ ऐश्वर्य बढ़ाकर अपनी दशा सुधारते रहो ॥ १० ॥

त्वमिन्द्राभि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र । त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ११ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । विश्व-जित् । सर्व-वित् । पुरु-हूतः । त्वम् । इन्द्र ॥ त्वम् । इन्द्र । इमम् । सु-हवम् । स्तोमम् । आ । ईरयस्व । सः । नः । मृड । सु-मतौ । ते । स्याम । तव । इत् । विष्णो इति । बह-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (विश्वजित्) सब का जीतने वाला, (सर्ववित्) सब का जानने वाला, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (पुरुहूतः) बहुत प्रकार पुकारा गया (असि) है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (इमम्) इस (सुहवम्) अच्छे प्रकार पुकारने वाली (स्तोमम्) स्तुति को (आ) यथावत् (ईरयस्व) प्राप्त कर, (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति [सुन्दर आज्ञा] में (स्याम) हम होवें, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्व व्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही ……[मन्त्र ६] ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के गुणों को यथावत् जानकर अपने गुण, कर्म, स्वभाव उत्तम बनाते हैं, वे परमेश्वर के भक्त सदा सुखी रहते हैं॥११॥

११—(त्वम्) (इन्द्र) (असि) (विश्वजित्) सर्वस्य जेता । वशीकर्ता (सर्ववित्) सर्वज्ञः (पुरुहूतः) बहुप्रकारेणाहूतः (इमम्) क्रियमाणम् (सुहवम्) शोभनाह्वानयुक्तम् (स्तोमम्) स्तवम् (आ) समन्तात् (ईरयस्व) प्रापुहि । अन्यत् पूर्ववत्—म०८ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न ते आपुर्महिमानमन्तरिक्षे । अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं नो इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १२ ॥

अदब्धः । दिवि । पृथिव्याम् । उत । असि । न । ते । आपुः । महिमानम् । अन्तरिक्षे ॥ अदब्धेन । ब्रह्मणा । ववृधानः । सः । त्वम् । नः । इन्द्र । दिवि । सन् । शर्म । यच्छ । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (दिवि) सूर्य [प्रकाश वाले लोक] पर (उत) और (पृथिव्याम्) पृथिवी [प्रकाशरहित लोक] पर (अदब्धः) अखण्ड (असि) है, (ते) तेरी (महिमानम्) महिमा को (अन्तरिक्षे) आकाश में उन [लोकों और लोकवासियों] ने (न आपुः) नहीं पाया । (अदब्धेन) अखण्ड (ब्रह्मणा) बढ़ते हुये वेद ज्ञान से (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता हुआ और (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (सन्) वर्तमान, (सः त्वम्) सो तू (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही..... [मन्त्र ६] ॥ १२ ॥

१२—(अदब्धः) अखण्डः (दिवि) सूर्ये । प्रकाशमानलोके (पृथिव्याम्) भूमौ । प्रकाशरहितलोके (उत) अपि (असि) (न) निषेधे (ते) तव (आपुः) प्राप्तवन्तस्ते लोका लोकिनश्च (महिमानम्) महत्त्वम् (अन्तरिक्षे) आकाशे (अदब्धेन) अखण्डेन (ब्रह्मणा) प्रवृद्धेन वेदज्ञानेन (वावृधानः) भृशं वर्धमानः (सः) तादृशः (त्वम्) (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्र) (दिवि) व्यवहारे (सन्) वर्तमानः (शर्म) सुखम् (यच्छ) देहि । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जो परमात्मा संसार में बड़ो से बड़ा, अनन्त ज्ञानी और प्रत्येक व्यवहार में वर्तमान है, मनुष्य उसी जगदीश्वर की उपासना से वृद्धि करके सुख पावें ॥ १२ ॥

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि । यया इन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १३ ॥

या । ते । इन्द्र । तनूः । अप्-सु । या । पृथिव्याम् । या । अन्तः । अग्नौ । या । ते । इन्द्र । पवमाने । स्वः-विदि ॥ यया । इन्द्र । तन्वा । अन्तरिक्षम् । वि-आपिथ । तया । नः । इन्द्र । तन्वा । शर्म । यच्छ । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्वा-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन्१३

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (या) जो (ते) तेरी (तनूः) उपकार शक्ति (अप्सु) जल में और (या) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (या) जो (ते) तेरी [उपकार शक्ति] (अग्नौ अन्तः) अग्नि के भीतर और (या) जो (स्वर्विदि) सुख पहुंचाने वाले (पवमाने) शुद्ध करने वाले पवन में है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यया) जिस (तन्वा) उपकार शक्ति से (अन्तरिक्षम्) आकाश में (व्यापिथ) तू व्यापा है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (तया) (तन्वा) उपकार शक्ति से (नः) हमें (शर्म)

१३—(या) (ते) तव (तनूः) कृषिचमितनि० । उ० १ । ८० । तन उपकारे—ऊप्रत्ययः । उपकारशक्तिः (अप्सु) उदकेषु (पृथिव्याम्) भूमौ (अन्तः) मध्ये (अग्नौ) (पवमाने) संशोधके पवने (स्वर्विदि) सुखप्रापके (यया) (तन्वा) उपकारशक्त्या (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (व्यापिथ) त्वं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख (यच्छ) दे, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही·····[मन्त्र ६] ॥ १३ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने पृथिवी आदि पांच तत्त्वों में अनन्त उपकार शक्ति दी है, मनुष्य उन तत्त्वों के विज्ञान से उपकार लेकर सुख प्राप्त करें ॥ १३ ॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सुत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १४ ॥

त्वाम् । इन्द्र । ब्रह्मणा । वर्धयन्तः । सुत्रम् । नि । सेदुः । ऋषयः । नाधमानाः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (ब्रह्मणा) बढ़े हुये वेदज्ञान से (त्वाम्) तुझे (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए, (नाधमानाः) [मोक्ष सुख] मांगते हुये (ऋषयः) ऋषि [वेदज्ञाता] लोग (सत्रम्) बैठक [वा यज्ञ] में (निषेदुः) बैठे हैं, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही····· [मन्त्र ६] ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे ऋषि लोग वेद ज्ञान द्वारा जगदीश्वर की महिमा के ज्ञान से उन्नति करके संसार को सुख पहुंचाते हैं, वैसे ही सब मनुष्य परस्पर उपकार करें ॥ १४ ॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद्

व्याप्तवनसि (तया) (नः) अस्मभ्यम् (तन्वा) उपकारशक्त्या (शर्म) सुखम् (यच्छ) देहि । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१४—(त्वाम्) परमात्मानम् (इन्द्र) (ब्रह्मणा) प्रवृद्धेन वेदज्ञानेन (वर्धयन्तः) उन्नयन्तः । स्तुवन्त इत्यर्थः (सत्रम्) षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु-त्रल् । स्थानम् । यज्ञम् (निषेदुः) निषण्णा नियमेन स्थिता बभूवुः (ऋषयः) वेदवेत्तारः (नाधमानाः) मोक्षं याचमानाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १५ ॥

त्वम् । तृतम् । त्वम् । परि । एषि । उत्सम् । सहस्र-धारम् । विदथम् । स्वः-विदम् । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (तृतम् = त्रितम्) तीनों [कालों] के बीच फैले हुये [जगत्] में, (त्वम्) तू (सहस्रधारम्) सहस्रों धाराओं वाले (उत्सम्) स्रोते, [अर्थात्] (स्वर्विदम्) सुख पहुंचाने वाले (विदथम्) विज्ञान समाज में (परि) सब ओर से (एषि) व्यापक है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही ·····[मन्त्र ६] १५

भावार्थ—जो परमात्मा सर्वदा सब संसार में व्यापक रह कर विद्वानों की उन्नति करता है, हम सब उसी की उपासना से विद्वान् होकर उन्नति करें ॥ १५ ॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं द्यौचिषा नभसी वि भासि । त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १६ ॥

त्वम् । रक्षसे । प्र-दिशः । चतस्रः । त्वम् । द्यौचिषा । नभसी इति । वि । भासि ॥ त्वम् । इमा । विश्वा । भुवना ।

१५—(त्वम्) (तृतम्) सम्प्रसारणं छान्दसम् । अ० ५ । १ । १ । त्रि + तनु विस्तारे - ड । त्रिषु कालेषु विस्तीर्णं जगत् (त्वम्) (परि) सर्वतः (एषि) व्याप्नोषि (उत्सम्) उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च । उ० ३ । ६८ । उन्दी क्लेदने—सप्रत्ययः । जलस्रवणस्थानम् (सहस्रधारम्) बहुधारायुक्तम् (विदथम्) विज्ञानसमाजम् (स्वर्विदम्) सुखस्य लम्भयितारम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु । तिष्ठसे । ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । एषि । विद्वान् । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं की (रक्षसे) रक्षा करता है, (त्वम्) तू (शोचिषा) प्रकाश से (नभसी) सूर्य और पृथिवी में (वि) विविध प्रकार (भासि) चमकता है। (त्वम्) तू (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवना अनु) भुवनों [लोकों] में (तिष्ठसे) ठहरता है, और (विद्वान्) जानता हुआ तू (ऋतस्य) सत्यधर्म के (पन्थाम्) मार्ग पर (अनु) लगातार (एषि) चलता है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही..... [मन्त्र ६] ॥ १६ ॥

भावार्थ—परमात्मा सब दिशाओं में हमारी रक्षा करता है, सूर्य पृथिवी आदि लोकों में प्रकाश पहुंचा कर सब का धारण करता है और सदा सत्य नियम पर चलता है, तुम उसी की आराधना से धर्म पथ पर चल कर अपनी उन्नति करो ॥ १६ ॥

पुञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशंस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १७ ॥

पुञ्च-भिः । पराङ् । तपसि । एकया । अर्वाङ् । अशंस्तिम् ।

१६—(त्वम्) (रक्षसे) रक्षसि । पालयसि (प्रदिशः) प्रकृष्टा दिशाः (चतस्रः) चतुःसंख्याकाः (त्वम्) (शोचिषा) प्रकाशेन (नभसी) सुपां सुलुक्० । पा० ७ । १ । ३९ । पूर्वसवर्णदीर्घः । ईदूतौ च सप्तम्यर्थे । पा० १ । १ । १९ । इति प्रगृह्यम् । नभस्योर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये (वि) विविधम् (भासि) दीप्यसे (त्वम्) (इमा) दृश्यमानानि (विश्वा) सर्वाणि (भुवना) लोकान् (अनु) प्रति (तिष्ठसे) वर्त्तसे (ऋतस्य) सत्यधर्मस्य (पन्थाम्) मार्गम् (अनु) निरन्तरम् (एषि) अञ्चसि (विद्वान्) जानन् सन् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषि । सु-दिने । बाधमानः । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् १७

भाषार्थ—[हे परमेश्वर ! (पञ्चभिः) पांच [दिशाओं] के साथ और (एकया) एक [दिशा] के साथ [अर्थात् छह दिशाओं के साथ) (पराङ्) दूरवर्ती और (अर्वाङ्) समीपवर्ती होकर (तपसि) तू प्रतापी [ऐश्वर्यवान्] होता है, और (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (बाधमानः) हटाता हुआ (सुदिने) अच्छे दिन [निर्मल प्रकाश] में (एषि) चलता रहता है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही……[मन्त्र ६] ॥१७॥

भावार्थ—परमात्मा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची, ऊंची दिशाओं में का स्वामी होकर सब विघ्नों को हटाकर व्याप रहा है, उसी का आश्रय लेकर तुम आगे बढ़ो ॥ १७ ॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः । तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १८ ॥

त्वम् । इन्द्रः । त्वम् । महा-इन्द्रः । त्वम् । लोकः । त्वम् । प्रजा-पतिः ॥ तुभ्यम् । यज्ञः । वि । तायते । तुभ्यम् । जुह्वति । जुह्वतः । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १८ ॥

१७—(पञ्चभिः) पञ्चभिर्दिग्भिः (पराङ्) दूरगतः सन् (तपसि) तप ऐश्वर्ये । ईशिषे (एकया) एकया दिशा च (अर्वाङ्) समीपवर्ती सन् (अशस्तिम्) अपकीर्त्तिम् (एषि) गच्छसि (सुदिने) नीहारमेघाद्युपद्रवरहिते दिवसे । स्वच्छप्रकाशे (बाधमानः) निवारयन् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाला], (त्वम्) तू (महेन्द्रः) महेन्द्र [बड़ों में परम ऐश्वर्य वाला], (त्वम्) तू (लोकः) लोकपति [संसार का स्वामी] और (त्वम्) तू (प्रजापतिः) प्रजापति [प्राणियों का रक्षक] है । (तुभ्यम्) तेरे लिये [तेरी आज्ञा पालने के लिये] (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (वि तायते) विविध फैलाया जाता है, (तुभ्यम्) तेरे लिये (जुह्वतः) होम [हवन, दान आदि] करते हुये पुरुष (जुह्वति) होम [हवन, दान आदि] करते हैं, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्व—व्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही……[मन्त्र ६] ॥ १८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर सब का स्वामी, सब का रक्षक और सब का नियम में रखने वाला है, उस की आज्ञा पालने से तुम अपनी उन्नति करो ॥ १८ ॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् । भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १९ ॥

असति । सत् । प्रति-स्थितम् । सति । भूतम् । प्रति-स्थितम् ॥ भूतम् । ह । भव्ये । आ-हितम् । भव्यम् । भूते । प्रति-स्थितम् । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(असति) अनित्य [कार्य] में (सत्) नित्य वर्त्तमान

१८—(त्वम्) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (महेन्द्रः) महत्सु परमैश्वर्यवान् (लोकः) अर्शआद्यच् । लोकपतिः (प्रजापतिः) प्राणिनां रक्षकः (तुभ्यम्) तवाज्ञापालनाय (यज्ञः) श्रेष्ठव्यवहारः (वि) विविधम् (तायते) विस्तार्यते (जुह्वति) होमं हवनदानादिकं कुर्वन्ति (जुह्वतः) होमं हवनदानादिकं कुर्वन्तः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१९—(असति) अस सत्तायाम्—शतृ । अनित्ये कार्ये (सत्) नित्य-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[आदिकारण ब्रह्म] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है, और (सति) नित्य [ब्रह्म] में (भूतम्) सत्ता वाला जगत् [अथवा पृथिवी आदि भूतपञ्चक] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है। (भूतम्) बीता हुआ (भव्ये) होने वाले में (ह) निश्चय करके (आहितम्) रक्खा हुआ है, और (भव्यम्) होने वाला (भूते) बीते हुये में (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीरकर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षापद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो ओं तत्सत् परमात्मा अपनी महिमा से सब का आदि कारण होकर सब के भीतर और बाहिर और भूत भविष्यत् और वर्त्तमान में एक रस व्यापकर सब ब्रह्माण्ड को थांमे है, हम सब उसकी ही उपासना करके सुखी होवें ॥ १९ ॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २० ॥ (२)

शुक्रः । असि । भ्राजः । असि ॥ सः । यथा । त्वम् । भ्राजता । भ्राजः । असि । एव । अहम् । भ्राजता । भ्राज्यासम् ॥२०॥(२)

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (शुक्रः) शुद्ध [स्वच्छ निर्मल] (असि) है, तू (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है। (सः त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है,

---

मादिकारणं परब्रह्म—ओंतत्सदिति निर्देशात् (प्रतिष्ठितम्) प्रतीत्या स्थितम् (सति) नित्ये ब्रह्मणि (भूतम्) सत्तायुक्तं जगत् । पृथिव्यादिभूतपञ्चकम् (प्रतिष्ठितम्) (भूतम्) अतीतम् (ह) निश्चयेन (भव्ये) भविष्यति (आहितम्) स्थापितम् (भव्यम्) भविष्यत् (भूते) अतीते । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२०—(शुक्रः) शुक्रः । शुद्धः (असि) (भ्राजः) भ्राजृ दीप्तौ—पचाद्यच् । प्रकाशमानः (असि) (सः) तादृशः (यथा) येन प्रकारेण (त्वम्) (भ्राजता) प्रकाशमानेन स्वरूपेण (भ्राजः) प्रकाशमानः (असि) (एवम्) (अहम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एव) वैसे ही (अहम्) मैं (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राज्यासम्) प्रकाशमान रहूं ॥ २० ॥

भावार्थ—जगदीश्वर के प्रकाश स्वरूप का ध्यान करके मनुष्य विद्या आदि उत्तम गुणों से संसार में तेजस्वी होवें ॥ २० ॥

रुचि॑रसि रो॒चो॑ऽसि । स यथा॒ त्वं रुच्या॑ रो॒चोऽस्ये॒वाहं प॒शुभि॑श्च ब्राह्मणवर्च॒सेन॑ च रुचिषीय ॥ २१ ॥

रुचिः॑ । अ॒सि॒ । रो॒चः । अ॒सि॒ ॥ सः । यथा॑ । त्वम् । रुच्या॑ । रो॒चः । असि॑ । ए॒व । अ॒हम् । प॒शु-भिः॑ । च॒ । ब्रा॒ह्म॒ण॒-व॒र्च॒-सेन॑ । च॒ । रु॒चि॒षी॒य॒ ॥ २१ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (रुचिः) प्रीतिरूप (असि) है, तू (रोचः) प्रीति कराने वाला (असि) है । (सः त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (रुच्या) प्रीति के साथ (रोचः) प्रीति कराने वाला (असि) है, (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (पशुभिः) प्राणियों के साथ (च च) और (ब्राह्मणवर्चसेन) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] के समान तेज के साथ (रुचिषीय) रुचि करूं ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा हमारे साथ प्रीति करके अनेक उपकार करता है, वैसे ही हम महात्माओं के समान सब प्राणियों और वेद ज्ञान से प्रीति करके सदा उपकार करें ॥ २१ ॥

उ॒तेद्य॒ नम॑ उदाय॒ते नम॒ उदि॑ताय॒ नमः॑ ।
वि॒राजे॒ नमः॑ स्व॒राजे॒ नमः॑ स॒म्राजे॒ नमः॑ ॥ २२ ॥

उपासकः (भ्राजता) दीप्यमानेन स्वरूपेण (भ्राज्यासम्) दीपिषीय ॥

२१—(रुचिः) रुच दीप्तावभिप्रीतौ च—कि । प्रीतिस्वरूपः (असि) (रोचः) रोचयतेः पचाद्यच् । प्रीतिकारकः (सः) तादृशः (यथा) (त्वम्) (रुच्या) प्रीत्या (रोचः) प्रीतिकारकः (असि) (एव) तथा (अहम्) उपासकः (पशुभिः) प्राणिभिः (च) (ब्राह्मणवर्चसेन) ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः । पा० ५ । ४ । ७८ । इति ब्राह्मणशब्दात् परस्यापि वर्चसः समासान्तोऽच् । ब्रह्मज्ञानितुल्यतेजसा (च) (रुचिषीय) रुचिमान् भवेयम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्-यते । नमः । उत्-आयते । नमः । उत्-ढ़ताय । नमः ॥
वि-राजे । नमः । स्व-राजे । नमः । सम्-राजे । नमः ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(उद्यते) उदय होते हुये [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है, (उदायते) ऊंचे आते हुये को (नमः) नमस्कार है, (उदिताय) उदय हो चुके हुये को (नमः) नमस्कार है। (विराजे) विविध राजा को (नमः) नमस्कार है, (स्वराजे) अपने आप राजा को (नमः) नमस्कार है, (सम्राजे) सम्राट् [राजराजेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥ २२ ॥

भावार्थ—परमात्मा एक प्रलय और सृष्टि की सन्धि दशा में, दूसरे सृष्टि करने की दशा में और तीसरे सृष्टि की समाप्ति में अपनी महिमा विविध प्रकार प्रकट करता है, उस सर्वशक्तिमान् अद्वितीय जगदीश्वर की आज्ञा में रहकर हम सदा आनन्दित रहें ॥ २२ ॥

अस्तं यते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २३ ॥

अस्तम्-यते । नमः । अस्तम्-एष्यते । नमः । अस्तम्-इताय । नमः ॥ वि-राजे । नमः । स्व-राजे । नमः । सम्-राजे । नमः ॥२३

भाषार्थ—(अस्तंयते) अस्त होते हुये [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है, (अस्तमेष्यते) अस्त होना चाहने वाले को (नमः) नमस्कार है, (अस्तमिताय) अस्त हो चुके हुये को (नमः) नमस्कार है। (विराजे) विविध राजा को (नमः) नमस्कार है, (स्वराजे) अपने आप राजा को (नमः) नमस्कार है, (सम्राजे) सम्राट् [राजराजेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥२३॥

२२–(उद्यते) प्रलयसृष्टिसन्धिदशायामुदयं गच्छते परमेश्वराय (नमः) नमस्कारः (उदायते) उत् + आङ् + इण् गतौ—शतृ। सृष्टिकाल उदयमागच्छते (उदिताय) सृष्टिसमाप्तिकाल उदयं प्राप्ताय (विराजे) विविधेश्वराय (स्वराजे) स्वयमैश्वर्यवते (सम्राजे) राजराजेश्वराय । अन्यद् गतम् ॥

२३—(अस्तंयते) अस्तंगच्छते परमेश्वराय (नमः) नमस्कारः (अस्तमेष्यते) अस्तं गमिष्यते (अस्तमिताय) अस्तं प्राप्ताय । अन्यत् पूर्ववत् म० २२॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—परमात्मा एक सृष्टि और प्रलय की सन्धि दशा में, दूसरे प्रलय करने की दशा में और तीसरे प्रलय की समाप्ति में विविध प्रकार अपनी महिमा दिखाता है, उसी सर्वशक्तिमान् सम्राट् की आज्ञा मान कर हम सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह । सपत्नान मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ २४ ॥

उत् । अगात् । अयम् । आदित्यः । विश्वेन । तपसा । सह ॥ सु-पत्नान् । मह्यम् । रन्धयन् । मा । च । अहम् । द्विषते । रधम् । तव । इत् । विष्णो इति । बहु-धा । वीर्याणि ॥ त्वम् । नः । पृणीहि । पशु-भिः । विश्व-रूपैः । सु-धायाम् । मा । धेहि । परमे । वि-ओमन् ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(अयम्) यह (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड प्रभाव वाला परमात्मा] (सपत्नान्) वैरियों को (मह्यं रन्धयन्) मेरे वश में करता हुआ, (विश्वेन) समस्त (तपसा सह) ऐश्वर्य के साथ (उत् अगात्) उदय हुआ है, (च) और (अहम्) मैं (द्विषते) बैर करते हुये के (मा रधम्) वश में न पड़ूं, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीरकर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षापद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥ २४ ॥

२४—(उदगात्) उदितवान् (अयम्) सर्वव्यापकः (आदित्यः) अदिति—अय । अखण्डप्रभावः परमेश्वरः (विश्वेन) समस्तेन (तपसा) ऐश्वर्येण (सह) (सपत्नान्) शत्रून् (मह्यं रन्धयन्) मम वशं प्रापयन् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जो पुरुषार्थी मनुष्य परमेश्वर को सब प्रकार अपना रक्षक जानता है, वह वैरियों को जीतता है और आप उनके वश में नहीं पड़ता ॥२४॥

यह मन्त्र (उदगादय.....द्विषते रधम्) कुछ भेद से ऋग्वेद में है १।५०।१३॥

मन्त्र ६ और १६ से इस मन्त्र का मिलान करो ॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्रातिं पारय ॥ २५ ॥

आदित्य । नावम् । आ । अरुक्षः । शत-अरित्राम् । स्व-स्तये ॥ अहः । मा । अतिं । अपीपरः । रात्रिम् । सत्रा । अतिं । पारय ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(आदित्य) हे आदित्य ! [अखण्ड प्रभाव वाले परमात्मा] (स्वस्तये) [हमारे] आनन्द के लिये (शतारित्राम्) सैकड़ों डांड़ वाली (नावम्) नाव पर (आ अरुक्षः) तू चढ़ा है । (मा) मुझ से (अहः) दिन (अति अपीपरः) तू ने सर्वथा पार कराया है, (रात्रिम्) रात्रि (सत्रा) भी (अति पारय) तू सर्वथा पार करा ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा अनेक प्रकार जगत् को चला रहा है, मनुष्य उस की अनन्त कृपा से दिन का कर्तव्य पूरा करके रात्रि का कर्तव्य पूरा करने का प्रयत्न करें, और इस मन्त्र से सायंकाल में प्रार्थना करें ॥ २५ ॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्रातिं पारय ॥ २६ ॥

सूर्य । नावम् । आ । अरुक्षः । शत-अरित्राम् । स्वस्तये ॥

२५—(आदित्य) म० २४। हे अखण्डप्रभाव परमात्मन् (नावम्) (आ अरुक्षः) आरूढवानसि (शतारित्राम्) शतं बहूनि अरित्राणि उदकाकर्षणसाधनानि विद्यन्ते यस्यां ताम् (स्वस्तये) क्षेमाय (अहः) दिनकार्यमित्यर्थः (मा) माम् (अति अपीपरः) पॄ पालनपूरणयोः—णिचि लुङ्। पारं प्रापितवानसि (रात्रिम्) रात्रिकर्तव्यमित्यर्थः (सत्रा) सत्यं निश्चयेन (अति पारय) पॄ—णिचि, यद्वा, पार कर्मसमाप्तौ—लोट्। सर्वथा पारं गमय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रिम् । मा । अति । अपीपरः । अहः । सुत्रा । अति । पारय ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [सब के चलाने वाले जगदीश्वर] (खस्तये) [हमारे] आनन्द के लिये (शतारित्राम्) सैकड़ों डाड़ों वाली (नावम्) नाव पर (आ अरुक्षः) तू चढ़ा है। (मा) मुझ से (रात्रिम्) रात्रि को (अति अपीपरः) तूने सर्वथा पार कराया है, (अहः) दिन (सत्रा) भी (अति पारय) सर्वथा तू पार करा ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर इस संसार को विविध प्रकार चला रहा है, मनुष्य उसकी महती कृपा से रात्रि का कर्त्तव्य पूरा करके दिन का कर्त्तव्य पूरा करने का उद्योग करें, और इस मन्त्र से प्रातःकाल में प्रार्थना करें ॥ २६ ॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च । जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७

प्रजा-पतेः । आ-वृतः । ब्रह्मणा । वर्मणा । अहम् । कश्यपस्य । ज्योतिषा । वर्चसा । च ॥ जरत्-अष्टिः । कृत-वीर्यः । वि-हायाः । सहस्र-आयुः । सु-कृतः । चरेयम् ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(प्रजापतेः) प्रजापति [प्राणियों के रक्षक] और (कश्यपस्य) कश्यप [सर्वदर्शक परमेश्वर] के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से, (वर्मणा) आश्रय [वा रक्षा] से, (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से (आवृतः) घेरा हुआ (अहम्) मैं, (जरदष्टिः) बड़ाई के साथ प्रवृत्ति [वा भोजन] वाला, (कृतवीर्यः) पूरे पराक्रम वाला, (विहायाः) विविध उपायों

२६—(सूर्य) हे सर्वप्रेरक जगदीश्वर (रात्रिम्) रात्रिकर्त्तव्यम् (अहः) दिनकर्त्तव्यम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० २५ ॥

२७—(प्रजापतेः) प्राणिपालकस्य (आवृतः) समन्ताद् वेष्टितः (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (वर्मणा) आश्रयेण रक्षणेन (अहम्) उपासकः (कश्यपस्य) म० २ । ३३ । ७ । कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन् । उ० ५ । ३५ । दृशिर् प्रेक्षणे—वुन्, पश्यादेशः, आद्यन्ताक्षरविपर्ययेण सिद्धिः । पश्यकस्य । सर्वद्रष्टुः परमेश्वरस्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला, (सहस्रायुः) सहस्रों प्रकार से अन्न वाला और (सुकृतः) पुण्यकर्म वाला [होकर], (चरेयम्) चलता रहूं ॥ २७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वपालक, सर्वदर्शक, जगदीश्वर का अनेक प्रकार आश्रय लेकर और विविध प्रकार उपाय करके सुकर्मी होकर सदा आनन्द भोगें ॥ २७ ॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८

परि-वृतः । ब्रह्मणा । वर्मणा । अहम् । कश्यपस्य । ज्योतिषा । वर्चसा । च ॥ मा । मा । प्र । आपन् । इषवः । दैव्याः । याः । मा । मानुषीः । अव-सृष्टाः । वधाय ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(कश्यपस्य) कश्यप [सर्वदर्शक परमेश्वर] के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से, (वर्मणा) आश्रय से, (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से मैं (परिवृतः) ढका हुआ हूं । (याः) जो (दैव्याः) दैवी [आधिदैविक] (इषवः) बाण हैं, वे (मा) मुझ को (मा प्र आपन्) न पहुंचे, (च) और (मानुषीः) मानुषी [आधिभौतिक] (अवसृष्टाः) छोड़े हुये [बाण] (वधाय) मारने के लिये (मा) न [पहुंचें] ॥ २८ ॥

(ज्योतिषा) तेजसा (वर्चसा) प्रतापेन (च) (जरदष्टिः) अ० २ । २८ । ५ । जरतिर्अर्चतिकर्मा–निघ० ३ । १४ । जीर्यतेरतृन् । पा० ३ । २ । १०४ । जॄ स्तुतौ–अतृन् + अशू व्याप्तौ, अश भोजने वा–क्तिन् । जरता स्तुत्या सह अष्टिः कार्यव्याप्तिर्भोजनं वा यस्य सः (कृतवीर्यः) पर्याप्तपराक्रमः (विहायाः) वहिहाधाभ्यश्छन्दसि । उ० ४ । २२१ । ओ हाङ् गतौ–असुन्, णिद्वद्भावाद् युगागमः । विविधगतियुक्तः । बहुप्रयत्नः (सहस्रायुः) आयुः, अन्ननाम—निघ० २ । ७ । छन्दसीणः । उ० १ । २ । इण् गतौ–उण् । सहस्रप्रकारेणान्नयुक्तः । (सुकृतः) पुण्यकर्मा (चरेयम्) गच्छेयम् ॥

२८—(परिवृतः) परिवेष्टितः । अन्यत् पूर्ववत्–म० २७ (मा) माम् (मा प्रापन्) मा प्राप्नुयुः (इषवः) बाणाः (दैव्याः) देव—यञ् । आधिदैविक्यः (याः) (मा) निषेधे (मानुषीः) मानुष्यः । आधिभौतिक्य इत्यर्थः (अवसृष्टाः) प्रेरिताः (वधाय) हननाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर ऐसे दूरदर्शी पुरुषार्थी होवें कि आधिदैविक और आधिभौतिक क्लेशों से सदा बचे रहें ॥ २८ ॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् । मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२८॥

ऋतेन । गुप्तः । ऋतु-भिः । च । सर्वैः । भूतेन । गुप्तः । भव्येन । च । अहम् ॥ मा । मा । प्र । आपत् । पाप्मा । मा । उत । मृत्युः । अन्तः । दधे । अहम् । सलिलेन । वाचः ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं (ऋतेन) सत्य धर्म से (च) और (सर्वैः ऋतुभिः) सब ऋतुओं से (गुप्तः) रक्षा किया हुआ और (भूतेन) बीते हुये से (च) और (भव्येन) होने वाले से (गुप्तः) रक्षा किया हुआ हूं। (मा) मुझे (पाप्मा) पाप [बुराई] (मा प्र आपत्) न पावे, (उत) और (मा) न (मृत्युः) मृत्यु [पावे], (अहम्) मैं (वाचः) वेदवाणी के (सलिलेन) जल के साथ (अन्तः दधे) अन्तर्धान होता हूं [डुबकी लगाता हूं] ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्य धर्म का सहारा लेकर सब भूत, भविष्यत् और वर्तमान को विचार के सब काल में सुरक्षित रह कर निष्पाप और अमर अर्थात् यशस्वी होवें, यही वेदवाणी रूप जल में स्नातक होना है ॥ २८ ॥

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वतं उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् । व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥ (३)

अग्निः । मा । गोप्ता । परि । पातु । विश्वतः । उत्-यन् । सूर्यः । नुदताम् । मृत्यु-पाशान् ॥ वि-उच्छन्तीः । उषसः । पर्वताः । ध्रुवाः । सहस्रम् । प्राणाः । मयि । आ । यतन्ताम् ॥ ३० ॥ (३)

२८—(ऋतेन) सत्यधर्मेण (गुप्तः) रक्षितः (ऋतुभिः) वसन्तादिकालैः (च) (सर्वैः) (भूतेन) अतीतेन (गुप्तः) (भव्येन) भविष्यता (च) (अहम्) उपासकः (मा) माम् (मा प्रापत्) मा प्राप्नुयात् (पाप्मा) पापम् (मा) निषेधे (उत) अपि च (मृत्युः) मरणम् (अन्तर्दधे) अन्तर्धानं करोमि (अहम्) (सलिलेन) जलेन (वाचः) वेदवाण्याः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(गोप्ता) रक्षा करने वाला (अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (विश्वतः) सब ओर से (मा परि पातु) मेरी रक्षा करे, (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सर्वप्रेरक परमात्मा (मृत्युपाशान्) मृत्यु के बन्धनों को (नुदताम्) हटावे। (व्युच्छन्तीः) विशेष चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें, (ध्रुवाः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ और (प्राणाः) सब प्राण [शारीरिक और आत्मिक बल] (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (मयि) मुझ में (आ यतन्ताम्) सब ओर से यत्न करते रहें ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर अमर अर्थात् यशस्वी होकर सब कालों को सब ऊंची नीची अवस्थाओं को और शारीरिक और आत्मिक बलों को अनुकूल बनावें ॥ ३० ॥

इति प्रथमोनुऽवाकः ॥

इति सप्तदशं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री सयाजी राव गायकवाड़ाधिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासदक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्री पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदिना कृते अथर्ववेद भाष्ये सप्तदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

इदं काण्डम् प्रयागनगरे मार्गशीर्षमासे कृष्णद्वादश्यां तिथौ १९७५ [पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि श्री राजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—पौषकृष्णा ८ संवत् १९७५ वि० ता० २५ दिसम्बर १९१८ ई० ॥

३०—(अग्निः) ज्ञानमयः परमेश्वरः (मा) माम् (गोप्ता) रक्षकः (परिपातु) परितो रक्षतु (विश्वतः) सर्वतः (उद्यन्) उदयं गच्छन् (सूर्यः) सर्वप्रेरकः परमात्मा (नुदताम्) अपसारयतु (मृत्युपाशान्) मरणबन्धान् (व्युच्छन्तीः) व्युच्छन्त्याः । विशेषप्रकाशयुक्ताः (पर्वताः) शैलाः (ध्रुवाः) दृढाः (सहस्रम्) सहस्रप्रकारेण (प्राणाः) श्वासप्रश्वासाः । शारीरिकात्मिकपराक्रमाः (मयि) पुरुषार्थिनि (आ) समन्तात् (यतन्ताम्) यत्नशीला भवन्तु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-१७ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे, उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जाव॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५९७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर, नमस्ते !

आप को ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आप ने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य का करने का प्रयत्न किया है। भाष्य काण्डों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्यसमाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्णकार्य हो रहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रह हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्ममात्र श्री त्रिवेदी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस दान करें। स्वयम् ग्रहक बनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाजके पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही ज़रूरी है। भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य मंगाइये।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,

BSo. LL. B. उपमन्त्री।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१५१४। कार्यालय श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध, बुलन्दशहर।

आपका पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धि शाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्र धारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आप को उत्तरोत्तर उस महत्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए०, एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश, मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारो वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त। आर्यमित्र आगरा, २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैं ने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम, आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एकबड़ी कमी के पूर्ण करने का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो...छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

श्रीयुत महाशय **मुन्शीराम जी**—जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७-१०-१९६९।

अथर्ववेद भाष्य आप का दिया व किया हुआ अवकोशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आप का परिश्रम सराहनीय है।

तथा— पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१९६९।
अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० **शिवशंकर शर्मा**—काव्यतीर्थ-छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वादि ग्रंथकर्त्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि, सम्पादक आर्यमित्र—८ फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।.... आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर और अब वहाँ से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आपने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आप का अथर्ववेदीय भाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित **भीमसेन शर्मा इटावा**—उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में.....अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है...भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है, अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१९१५॥
श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते,

महेवा के पते से आप का भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आप ने हम सभों पर अत्यन्त कृपा की है आप को अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पाँचवाँ कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है, कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है, कि आप ने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है...बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आप ने अपने भाष्य को अलंकृत किया है...आप की राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आप का भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पण्डित गणेश प्रसाद शर्मा—संपादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू कालिकाप्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१३।

आप का भेजा अथर्ववेद भाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंहजी वर्मा, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, जिला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आप ने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आप को वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता. सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७-९—१३।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६ लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है-कि वेद का पढ़ना पढाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक-प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है-जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी परुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।.....इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोच कर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है..... ...त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर-इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनको आर्थिक सहायता करें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDY ADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No* 624 *dated 6th February* 1913.

....It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable "For Encouragement Fund.

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope ..the venture will not fail for want of pecuniary support.

THE MAGISTRATE OF ALLAHAABD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd. Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

THE ARYA PATRIKA LAHORE APRIL 18 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda*, which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature .....The arrangement is good; the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works.....The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind.

Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves .....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri All rights reserved.

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

* ओ३म् *

विज्ञापन ।

महाशयो ! अथर्ववेदभाष्य का यह काण्ड १८ आप के पास पहुंचता है । यह काण्ड पिछले कई काण्डों से बड़ा है । काण्ड १६ छपरहा है, वह काण्ड १८ से भी बड़ा है । काण्ड २० सब काण्डों से बड़ा है, वह तीन भागों में करके छपकर भेजा जावेगा । इसके सिवाय एक मन्त्रसूची और एक पदसूची छपकर यह भाष्य समाप्त हो जायगा ।

निवेदक

५२ लूकरगंज, प्रयाग
१५ जून १६१६

क्षेमकरणदास त्रिवेदी ।

अय ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः ।
सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ	संवत् १६७६ वि०	मूल्यम् २।=)
१००० पुस्तकानि	सन् १६१६ ई०	

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad) ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDY ADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No 624 dated 6th February* 1913.

....It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable "For Encouragement Fund.

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan Letter dated March 25th, 1914.

may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves .....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B. —The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri All rights reserved.

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

अष्टादशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि. श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना

निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.

Griffith's Trans. Atharva 19: 62: 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः ।

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि } संवत् १९७६ वि० सन् १९१९ ई० { मूल्यम् २।=)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad) ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड १८) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र	सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि
१२४	द्रप्सश्चस्कन्द	४ । २८	१० । १७ । ११	१३ । ५	
१२५	शतधारं वायुमर्कं	४ । २९	१० । १०७ । ४		
१२६	कोशं दुहन्ति कलशं	४ । ३०		१३ । ४९	
१२७	सहस्रधारं शतधार	४ । ३६		१३ । ४९	
१२८	वृषा मतीनां पवते	४ । ५८	९ । ८६ । १९	...	पू० ६।७।६ उ०२।१।१७
१२९	त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु	४ । ५९	६ । २ । ६		पू०१।९। ३
१३०	प्र वा एतीन्दुरिन्द्र	४ । ६०	९ । ८६ । १६	...	पू०६।७।४ उ०४।२।७
१३१	अक्तमीमदन्त	४ । ६१	१ । ८२ । २	३ । ५१	पू०५।३। ७
१३२	अभूद् दूतः प्रहितो	४ । ६५	४ । ५४ । १	५ । २६	
१३३	शुम्भन्तां लोकाः	४ । ६७		२ । २९	
१३४,१३५	अग्नये कव्यवाह	४ । ७१, ७२		९ । २	
१३६–१३८	स्वधा पितृभ्य	४ । ७८–८०		२ । ३२	
१३९–१४३	नमो व पितर ऊर्जे	४ । ८१–८५			
१४४	आत्वाग्न इधीमहि	४ । ८८	५ । ६ । ४	...	पू०५।४।१ उ०३।२।२१
१४५	चन्द्रमा अप्स्वन्त	४ । ८९	१ । १०५ । १	३३ । ९०	पू०५।३।९

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

अष्टादशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ [मन्त्राः १-६१] ॥

मन्त्राः १-१६ ॥

यमयम्यौ देवते ॥ १, ५, ६—११ त्रिष्टुप् ; २ विराट् त्रिष्टुप् ; ३, ४, ६, १७, १२, १३ निचृत् त्रिष्टुप् ; ८ विराट् छन्दः ; १४ भुरिक् त्रिष्टुप् ; १५ आर्षी पङ्क्तिः ; १६ विराडार्षी त्रिष्टुप् ॥

भ्रातृभगिनीपरस्परविवाहनिषेधोपदेशः—भाई बहिन के परस्पर विवाह के निषेध का उपदेश ॥

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् । पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

ओ इति । चित् । सखायम् । सख्या । ववृत्याम् । तिरः । पुरु । चित् । अर्णवम् । जगन्वान् ॥ पितुः । नपातम् । आ । दधीत । वेधाः । अधि । क्षमि । प्र-तरम् । दीध्यानः १

भाषार्थ—(ओ) ओ ! [हे पुरुष !] (सखायम्) [तुझ] मित्र

१—(ओ) सम्बोधने (चित्) एव (सखायम्) सुहृदम् (सख्या)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (चित्) ही (सख्या) मित्रता के साथ (ववृत्याम्) मैं [स्त्री] प्रवृत्त करूं-(पुरु चित्) बहुत ही प्रकार से (अर्णवम्) विज्ञान युक्त शास्त्र को (तिरः जगन्वान्) पार जा चुकने वाले, (प्रतरम्) बहुत अधिक (दीध्यानः) प्रकाशमान, (वेधाः) बुद्धिमान् आप (पितुः) [अपने] पिता के (नपातम्) नाती [पौत्र] को (क्षमि अधि) पृथिवी पर (आ दधीत) धारण करें ॥ १ ॥

भावार्थ—यह मन्त्र स्त्री का वचन है। हम दोनों बड़े प्रेमी हैं, तू वेद आदि शास्त्रों का जानने वाला बुद्धिमान् पुरुष है, ऐसा प्रयत्न किया जावे कि हम दोनों के सम्बन्ध से उत्तम सन्तान उत्पन्न हो ॥ १ ॥

इस सूक्त के मन्त्र १-१६ में यमीयम अर्थात् जोड़िया बहिन और भाई को संवाद वा प्रश्न उत्तर की रीति से यह बताया है कि वे दोनों बहिन भाई होकर परस्पर विवाह कभी न करें, किन्तु बहिन भाई से अन्य पुरुष के साथ और भाई बहिन से दूसरी स्त्री के साथ विवाह करे ॥

मन्त्र १—५। अभेद वा भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १०। १—५ ॥

न ते॑ सखा॑ सु॒ख्यं व॑ष्ट्ये॒तत् स॒लक्ष्मा॒ यद् विषु॑रूपा॒ भवा॑ति।
म॒हस्पु॒त्रासो॒ असु॑रस्य वी॒रा दि॒वो ध॒र्तार॑ उर्वि॒या परि॑ ख्यन् २

न। ते। सखा॑। सु॒ख्यम्। व॒ष्टि॒। ए॒तत्। स-ल॑क्ष्मा। यत्। विषु॑-रूपा। भवा॑ति ॥ म॒हः। पु॒त्रासः॑। असु॑रस्य। वी॒राः। दि॒वः। ध॒र्तारः॑। उ॒र्वि॒या। परि॑। ख्यन् ॥ २ ॥

सुपां सुलुक्० । पा० ७ । १ । ३९ । विभक्तेराकारः । सख्येन । मित्रत्वेन (ववृत्याम्) वृतु वर्तने—लिङ्, शपः श्लुः । प्रवर्तयेयम् (तिरः) पारे (पुरु) बहुप्रकारेण (चित्) एव (अर्णवम्) अर्णवं विज्ञानम्-दयानन्दभाष्ये, यजु० १२। ४९ । धापृवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । ऋ गतिप्रापणयोः—नप्रत्ययः, ततो मत्वर्थीयो वः । विज्ञानयुक्तं शास्त्रम् (जगन्वान्) गमेर्लिटः क्वसुः । गतवान् (पितुः) स्वजनकस्य (नपातम्) नप्तारं पौत्रम् (आदधीत) आदध्यात् । समन्ताद् धारयतु (वेधाः) मेधाविनाम-निघ० ३ । १५ । मेधावी भवान् (क्षमि अधि) भूमेरुपरि (प्रतरम्) प्रकृष्टतरम् (दीध्यानः) दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः—शानच् । दीप्यमानः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सखा) [यह] प्रेमी (ते) तेरी (एतत्) यह (सख्यम्) प्रीति (न) नहीं (वष्टि) चाहता है—(यत्) कि (सलक्ष्मा) समान [धार्मिक] लक्षण वाली [आप] (विषुरूपा) नाना स्वभाव वाली [चंचल अधार्मिक] (भवाति) हो जावें। (महः) महान् (असुरस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (दिवः) व्यवहार के (धर्तारः) धारण करने वाले, (वीराः) वीर (पुत्रासः) पुत्र (उर्विया) भूमि पर (परि ख्यन्) विख्यात हुये हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—यह मन्त्र पुरुष का उत्तर है। हे स्त्री! तू जो मुझ से पुत्र की कामना करती है सो उचित नहीं, हम दोनों धर्मात्मा होकर अधर्म न करें—क्योंकि बड़े कुल में उत्पन्न व्यवहारकुशल धर्मात्मा वीर ही संसार में कीर्तिमान् होते हैं ॥ २ ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वं१ मा वि विश्याः३

उशन्ति । घ । ते । अमृतासः । एतत् । एकस्य । चित् । त्यजसम् । मर्त्यस्य ॥ नि । ते । मनः । मनसि । धायि । अस्मे इति । जन्युः । पतिः । तन्वम् । आ । वि विश्याः ॥३॥

भाषार्थ—(ते) वे (अमृतासः) अमर [यशस्वी] लोग (घ) अवश्य (एतत्) इस प्रकार से (एकस्य) एक [अद्वितीय, अति श्रेष्ठ] (मर्त्यस्य)

२—(न) निषेधे (ते) तव (सखा) प्रियः (सख्यम्) प्रीतिम् (वष्टि) कामयते (एतत्) (सलक्ष्मा) समानलक्षणा । धर्मशीला (यत्) यतः (विषुरूपा) नानास्वभावा । चञ्चला । अधार्मिका (भवाति) भवेत् (महः) महतः (पुत्रासः) पुत्राः (असुरस्य) असुः प्रज्ञानाम—निघ० ३ । ९, रो मत्वर्थीयः । प्रज्ञावतः पुरुषस्य (वीराः) विक्रान्ताः (दिवः) व्यवहारस्य (धर्तारः) धारकाः (उर्विया) इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् । वा० पा० ७ । १ । ३९ । उर्वीडियाच् । उर्व्यां भूमौ (परि ख्यन्) ख्या प्रकथने, प्रसिद्धौ—लुङ्, अडभावः । विख्याता अभूवन् ॥

३—(उशन्ति) कामयन्ते (घ) प्रसिद्धौ (ते) प्रसिद्धाः (अमृतासः) अमराः । यशस्विनः (एतत्) अनेन प्रकारेण (एकस्य) अद्वितीयस्य । अतिश्रेष्ठस्य (चित्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के (चित्) ही (त्यजसम्) सन्तान की (उशन्ति) कामना करते हैं। (ते मनः) तेरा मन (अस्मे) हमारे (मनसि) मन में (नि धायि) जमाया जावे, और (जन्युः) उत्पन्न करने वाला (पतिः) पति [होकर] (तन्वम्) [मेरे] शरीर में (आ विविश्याः) प्रवेश कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—स्त्री का वचन है। महात्मा लोग मानते है कि अद्वितीय वीर पुरुष का सन्तान अद्वितीय वीर होता है, इस लिये तू श्रेष्ठ होकर मेरे साथ विवाह करके श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ४

न। यत्। पुरा। चकृम। कत्। ह। नूनम्। ऋतम्। वदन्तः। अनृतम्। रपेम ॥ गन्धर्वः। अप्-सु। अप्या। च। योषा। सा। नौ। नाभिः। परमम्। जामि। तत्। नौ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो [कर्म] (पुरा) पहिले (न चकृम) हम ने नहीं किया, (कत्) कैसे (ह) निश्चय करके (नूनम्) अब (ऋतम्) सत्य (वदन्तः) बोलते हुये हम (अनृतम्) असत्य (रपेम) बोलें। [जैसे] (अप्सु) सत्कर्मों में (गन्धर्वः) दृष्टि रखने वाला पुरुष (च) और (अप्या) सत्कर्मों में प्रसिद्ध (योषा) सेवा करने वाली स्त्री [होवे], (सा) वही (नौ)

एव (त्यजसम्) त्यज हानौ दाने च—असुन्। सन्तानम् (मर्त्यस्य) मनुष्यस्य (नि) निश्चयेन। नियमेन (ते) तव (मनः) चित्तम् (मनसि) चित्ते (धायि) धीयताम् (अस्मे) अस्माकम् (जन्युः) भुजिमृङ्भ्यां युक्त्यकौ। उ० ३। २१। जन जनने-युक्। जनयिता (पतिः) त्वं पतिः सन् (तन्वम्) मम तनूं शरीरम् (आ विविश्याः) विश प्रवेशने—लिङ्, शपःश्लुः। प्रविश ॥

४—(न) निषेधे (यत्) यस्मात् कारणात् (पुरा) पूर्वकाले (चकृम) वयं कृतवन्तः (कत्) कथम् (ह) निश्चयेन (नूनम्) इदानीम् (ऋतम्) सत्यम् (वदन्तः) कथयन्तः (अनृतम्) असत्यम् (रपेम) कथयेम (गन्धर्वः) गां दृष्टिं धरतीति यः सः (अप्सु) सत्कर्मसु (अप्या) अप्यः, अप्सु सत्कर्मसु भवः—दयानन्दभाष्ये, ऋग्० ६। ६७। ६। सत्कर्मसु प्रसिद्धा (च) (योषा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम दोनों की (नाभिः) बन्धुता, और (तत्) वह (नौ) हम दोनों का (परमम्) सब से बड़ा (जामि) सम्बन्ध [होवे] ॥ ४ ॥

भावार्थ—पुरुष का वचन है। तू कहती है-श्रेष्ठ पुरुष का सन्तान श्रेष्ठ होता है, परन्तु मैं मर्यादा तोड़कर असत्य कभी नहीं बोलूंगा। स्त्री पुरुष सदा सत्कर्म करें, यही दोनों में परस्पर बड़े स्नेह का कारण है ॥ ४ ॥

गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः। नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ५

गर्भे। नु। नौ। जनिता। दंपती इति दम्-पती। कः। देवः। त्वष्टा। सविता। विश्व-रूपः॥ नकिः। अस्य। प्र। मिनन्ति। व्रतानि। वेद। नौ। अस्य। पृथिवी। उत। द्यौः ५

भाषार्थ—(जनिता) उत्पन्न करने वाले, (देवः) प्रकाशमान, (त्वष्टा) बनाने वाले, (सविता) प्रेरक, (विश्वरूपः) सब के रूप देने वाले परमेश्वर ने (गर्भे) गर्भ में (नु) ही (नौ) हम दोनों को (दम्पती) पति पत्नी (कः) बनाया है। (अस्य) इस [परमेश्वर] के (व्रतानि) नियमों को (नकिः प्र मिनन्ति) कोई भी नहीं तोड़ सकते, (नौ) हम दोनों के लिये (अस्य) इस [बात] को (पृथिवी) पृथिवी (उत) और भी (द्यौः) सूर्य (वेद) जानता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—स्त्री का वचन। परमात्मा ने अपने अटल नियम से माता के गर्भ में ही हम दोनों को एक साथ जोड़िया उत्पन्न करके पति पत्नी बनाया है,

---

युष भजने-अच्, टाप्। सेवाशीला स्त्री (सा) (नौ) आवयोः (नाभिः) बन्धुता (परमम्) निरतिशयम् (जामि) वसिवपियजि० । उ० ४ । १२५ । जमु अदने-इञ्। सम्बन्धः (तत्) (नौ) आवयोः ॥

५—(गर्भे) गर्भाशये (नु) निश्चयेन (नौ) आवाम् (जनिता) उत्पादकः (दम्पती) जायापती। पतिपत्न्यौ (कः) करोतेर्लुङ्। अकः। कृतवान् (देवः) प्रकाशमानः (सविता) प्रेरकः (विश्वरूपः) सर्वस्य रूपकर्ता (नकिः) न केऽपि (अस्य) परमेश्वरस्य (प्र) (मिनन्ति) मीञ् हिंसायाम्। हस्वः प्वादित्वात्। हिंसन्ति। अतिक्रामन्ति (व्रतानि) कर्माणि (वेद) जानाति (नौ) आवाभ्याम् (अस्य) इदं वचनम् (पृथिवी) (उत) अपि च (द्यौः) सूर्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे यह प्रत्यक्ष है कि सृष्टि की आदि से सूर्य और पृथिवी में पतिपत्नी भाव है क्योंकि सूर्य वृष्टि करता है पृथिवी उसे ग्रहण करके अन्न आदि उत्पन्न करती है ॥ ५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्ह-णायून् । आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ६ ॥

कः । अद्य । युङ्क्ते । धुरि । गाः । ऋतस्य । शिमी-वतः । भामिनः । दुः-हृणायून् ॥ आसन्-इषून् । हृत्सु-असः । मयः-भून् । यः । एषाम् । भृत्याम् । ऋणधत् । सः । जीवात् ॥६॥

भाषार्थ—(कः) कर्ता [प्रजापति] परमेश्वर (अद्य) आज (ऋतस्य) सत्य के (गाः) गाने वाले, (शिमीवतः) उत्तम कर्म वाले, (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हणायून्) [शत्रुओं पर] भारी क्रोध वाले, (आसन्निषून्) ठीक स्थान पर बाण पहुंचाने वाले, (हृत्स्वसः) [शत्रुओं के] हृदयों में शस्त्र मारने वाले और (मयोभून्) [धर्मात्माओं को] सुख देने वाले वीरों को (धुरि) धुरी [भारी बोझ] में (युङ्क्ते) जोड़ता है, (यः) जो पुरुष (एषाम्) इन [वीरों] की (भृत्याम्) पोषण रीति को (ऋणधत्) बढ़ावेगा, (सः) वह (जीवात्) जीवेगा ॥ ६ ॥

६—(कः) करोतेर्डप्रत्ययः । कर्ता । प्रजापतिः परमेश्वरः (अद्य) अस्मिन् दिने (युङ्क्ते) योजयति (धुरि) भारे (गाः) गौः स्तोतृनाम—निघ० ३ । १६ । गायकान् (शिमीवतः) शिमी कर्मनाम—निघ० २ । १ । उत्तमकर्मयुक्तान् (भामिनः) भाम—इनि । तेजस्विनः (दुर्हणायून्) हृणीयतेः क्रुध्यतिकर्मा—निघ० २ । १२ । हृणीङ् रोषणे लज्जायां च—उण्, कण्ड्वादित्वाद् यक्, अतो लोपे सति ईकारस्य आकारः । शत्रुषु महाक्रोधयुक्तान् (आसन्निषून्) पद्दन्नो-मास्० । पा०६।१।६३ । आसनशब्दस्य आसन् आदेशः । आसने लक्ष्ये प्राप्तबाणान् (हृत्स्वसः) अस्यतेः—क्विप् । शत्रुहृदयेषु प्रक्षिप्तशस्त्रान् (मयोभून्) सुखं भावुकान् वीरान् (यः) पुरुषः (एषाम्) वीराणाम् (भृत्याम्) पोषणरीतिम् (ऋणधत्) ऋधु वृद्धौ-लेटि अडागमः । वर्धयेत् (सः) (जीवात्) लेटि आडागमः । चिरं जीवेत् । यशस्वी भवेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—पुरुष का वचन है। परमात्मा धुरन्धर धर्मात्मा वीरों पर संसार की रक्षा का भार रखता है, और वे उस नियम का यथावत् पालन करते हैं। जो मनुष्य ऐसे मर्यादा पुरुषों की नीति पर चलता है, वह संसार में यशस्वी होकर अमर होता है ॥ ६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है, १। ८४। ६। महर्षि दयानन्द ने सेनापति के योग्य कर्म में इसकी व्याख्या की है ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७॥

कः। अस्य। वेद। प्रथमस्य। अह्नः। कः। ईम्। ददर्श। कः। इह। प्र। वोचत्॥ बृहत्। मित्रस्य। वरुणस्य। धाम। कत्। ऊं इति। ब्रवः। आहनः। वीच्या। नॄन् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(कः) कौन [पुरुष] (अस्य) इस [जगत्] के (प्रथमस्य) पहिले (अह्नः) दिन को (वेद) जानता है (कः) किस ने (ईम्) इस [दिन] को (ददर्श) देखा है, (कः) कौन (इह) इस [विषय] में (प्र वोचत्) बोले। (मित्रस्य) सर्व प्रेरक (वरुणस्य) श्रेष्ठ परमेश्वर का (बृहत्) बड़ा (धाम) धाम [धारण सामर्थ्य वा नियम] है, (आहनः) हे चोट लगाने वाली ! (कत् उ) कैसे (वीच्या) छल के साथ (नॄन्) नरों [नेताओं] से (ब्रवः) तू बोल सके ॥ ७ ॥

भावार्थ—यह भी पुरुष का वचन है। तू कहती है कि सूर्य और

७—(कः) प्रश्ने। कः पुरुषः (अस्य) जगतः (वेद) जानाति (प्रथमस्य) प्रथमम् (अह्नः) अहः। दिनम् (कः) (ईम्) इदं दिनम् (ददर्श) दृष्टवान् (कः) (इह) अस्मिन् विषये (प्र वोचत्) प्रकथयेत् (बृहत्) महत् (मित्रस्य) डु मिञ् प्रक्षेपणे—क्त्र। सर्वप्रेरकस्य (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य परमेश्वरस्य (धाम) धारणसामर्थ्यम्। प्रभावः (कत्) कथम् (उ) पादपूरणः (ब्रवः) ब्रूयाः। ब्रवीषि (आहनः) आङ्+हन हिंसागत्योः—असुन्। हे आहननशीले। क्लेशकारिणि (वीच्या) व्यच व्याजीकरणे—किप्रत्ययः। छान्दसो दीर्घः। छलेन (नॄन्) नयतेर्डिच्च। उ०२। १००। णीञ् प्रापणे—ऋ, स च डित्। नेतॄन् पुरुषान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी प्राकृतिक पदार्थों में भी पति पत्नी भाव है, यह ठीक नहीं। परमेश्वर के नियम मनुष्य नहीं समझ सकता, जैसे सूर्य और पृथिवी में आकर्षण धारण आदि गुण हैं जिनके कारण उनके बीच बारंबार आपस में वृष्टि देने और लेने का सामर्थ्य है। तू हमें मत ठग ॥ ७ ॥

मन्त्र ७-१२ कुछ अभेद वा भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १०। ६-११ ॥

यमस्य मा यम्यं १ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८॥

यमस्य। मा। यम्यम्। कामः। आ। अगन्। समाने। योनौ। सहशेय्याय ॥ जाया-इव। पत्ये। तन्वम्। रिरिच्याम्। वि। चित्। वृहेव। रथ्या-इव। चक्रा ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(यमस्य) यम [जोड़िया भाई] की (कामः) कामना (मा) मुझ (यम्यम्) यमी [जोड़िया बहिन] को, (समाने योनौ) एक घर में (सहशेय्याय) साथ साथ सोने के लिये, (आ अगन्) आकर प्राप्त हुयी है। (जाया इव) पत्नी के समान (पत्ये) पति के लिये (तन्वम्) [अपना] शरीर (रिरिच्याम्) मैं फैलाऊं, (चित्) और (रथ्या) रथ ले चलने वाले (चक्रा इव) दो पहियों के समान (वि विरहेव) हम दोनों मिलें ॥ ८ ॥

भावार्थ—स्त्री का वचन है। तू और मैं दोनों एक माता से एक साथ

८—(यमस्य) यम परिवेषणे—अच्। एकगर्भजायमानस्य यमजस्य भ्रातुः (मा) माम् (यम्यम्) यम ङीष् गौरादित्वात्, यणादेशः। यमीम्। एकगर्भजायमानां यमजां भगिनीम् (कामः) कामना (आ अगन्) आगमत् (समाने) एकस्मिन्नेव (योनौ) गृहे (सहशेय्याय) अचो यत्। पा० ३। १। ९७। शीङ् शयने—यत्। शेयं शयनं स्वार्थेयत्। सहशयनाय (जाया) पत्नी (इव) यथा (पत्ये) स्वभर्त्रे (तन्वम्) तनूम्। स्वशरीरम् (रिरिच्याम्) रिचिर् विरेचने। विस्तारयेयम् (चित्) अपि च (वि वृहेव) परस्परसंश्लेषो विवर्हा। आवां संश्लेषं करवाव (रथ्या) तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्। पा० ४। ४। ७६। इति यत्। विभक्तेः पूर्वसवर्णदीर्घः। रथ्ये। रथवाहके (इव) यथा (चक्रा) चक्रद्वे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोड़िया उत्पन्न हुये हैं सो हम दोनों में अति प्रीति है। हम दोनों ही आपस में विवाह करके पति पत्नी बनें और मिलकर गृहस्थ आश्रम चलावें, जैसे रथ के दो पहिये धुरा के साथ आपस में मिलकर रथ चलाते हैं ॥ ८ ॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९ ॥
न । तिष्ठन्ति । न । नि । मिषन्ति । एते । देवानाम् । स्पशः । इह । ये । चरन्ति ॥ अन्येन । मत् । आहनः । याहि । तूयम् । तेन । वि । वृह । रथ्या-इव । चक्रा ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(देवानाम्) विद्वानों के (एते) यह (स्पशः) नियम (न) न (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं और (न) न (नि मिषन्ति) मुंदते हैं, (ये) जो (इह) यहां पर (चरन्ति) चलते हैं। (आहनः) हे चोट लगाने वाली ! तू (मत्) मुझ से (अन्येन) दूसरे के साथ (तूयम्) शीघ्र (याहि) जा और (तेन) उसके साथ (रथ्या) रथ ले चलने वाले (चक्रा इव) दो पहियों के समान (वि वृह) संयोग कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—पुरुष का वचन है। बड़े लोगों की अटल मर्यादायें सब को मानने योग्य हैं, मैं बहिन के साथ विवाह नहीं कर सकता, तू दूसरे से विवाह करके गृहस्थिनी हो ॥ ९ ॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि१०(१)

९—(न) निषेधे (तिष्ठन्ति) गत्या निवर्तन्ते (न) (नि मिषन्ति) निमेषं चक्षुर्मुद्रणं कुर्वन्ति (एते) (देवानाम्) विदुषाम् (स्पशः) स्पश, ग्रन्थे बाधने च-क्विप्। प्रबन्धाः। नियमाः (इह) संसारे (ये) (चरन्ति) प्रवर्तन्ते (अन्येन) इतरेण सह (मत्) मत्तः (आहनः) म० ७। हे आहनन-शीले (याहि) गच्छ (तूयम्) क्षिप्रनाम—निघ० २। १५। शीघ्रम् (तेन) पुरुषेण सह (वि वृह) संश्लेषं कुरु (रथ्या) म० ८। रथवाहके (इव) (चक्रा) चक्रवत्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रीभिः । अस्मै । अहं-भिः । दशस्येत् । सूर्यस्य । चक्षुः । मुहुः । उत् । मिमीयात् ॥ दिवा । पृथिव्या । मिथुना । सबन्धू इति स-बन्धू । यमीः । यमस्य । विवृहात् । अजामि ॥ १० ॥ (१)

भाषार्थ—(रात्रीभिः) रात्रियों के साथ और (अहभिः) दिनों के साथ (अस्मै) इस [भाई] को (सूर्यस्य) सूर्य की (चक्षुः) ज्योति (दशस्येत्) [सुमति] देवे और (मुहुः) वारम्बार (उत् मिमीयात्) फैली रहे । (दिवा) सूर्य के साथ और (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (मिथुना) जोड़ा जोड़ा(सम्बन्धू) भाई के साथ वाले हैं,[फिर] (यमीः) जोड़िया बहिन (यमस्य) जोड़िया भाई के (अजामि) बिना सम्बन्ध से (विवृहात्) उद्यम करे ॥ १० ॥

भावार्थ—स्त्री का वचन है। हे भाई ! सूर्य के प्रकाश में आंख खोल कर देख कि राति और दिन बहिन भाई होकर पति पत्नी भाव से रहते हैं और सूर्य और पृथिवी के बीच सब पदार्थों में भी यही सम्बन्ध है, फिर मैं भी बहिन होकर अपने भाई से ही विवाह करूं ॥ १० ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि । उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११॥

आ । घ । ता । गच्छान् । उत्-तरा । युगानि । यत्र । जामयः । कृणवन् । अजामि ॥ उप । बर्बृहि । वृषभाय ।

१०—(रात्रीभिः) (अस्मै) यमाय (अहभिः) अहोभिः । दिनैः (दशस्येत्) दद्यात् सुमतिम् (सूर्यस्य) (चक्षः) प्रकाशकं तेजः (मुहुः) वारम्बारम् (उन्मिमीयात्) माङ् माने, परस्मैपदं छान्दसम् । ऊर्ध्वं मानं गमनं कुर्यात् (दिवा) सूर्येण सह(पृथिव्या) भूम्या सह (मिथुना) स्त्रीपुरुषयोर्युग्मे । द्वन्द्वे (सबन्धू) बन्धुना भ्रात्रा सहिते (यमीः) विगर्गश्छान्दसः—म० ८ । यमी । एकगर्भजायमाना यमजा भगिनी (यमस्य) म० ८ । एकगर्भजायमानस्य यमजस्य । भ्रातुः (वि वृहात्) वृह उद्यमने । विविधं यत्नं कुर्यात् (अजामि) अजामित्वेन । सम्बन्धराहित्येन ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहुम् । अन्यम् । इच्छस्व । सु-भगे । पतिम् । मत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(ता) वे (उत्तरा) अगले (युगानि) युग [समय] (घ) निःसन्देह (आ गच्छान्) आवें, (यत्र) जिन में (जामयः) कुल स्त्रियां [वा बहिनें] (अजामि) कुल स्त्रियों [वा बहिनों] के अयोग्य काम को (कृणवन्) करने लगें । (वृषभाय) श्रेष्ठ वर के लिये (बाहुम्) [अपनी] भुजा (उप बर्बृहि) आगे बढ़ा, (सुभगे) हे सुभगे ! [बड़े ऐश्वर्य वाली (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे (पतिम्) पति को (इच्छस्व) ढूंढ़ ॥ ११ ॥

भावार्थ—पुरुष का बचन है । चाहे कुल स्त्रियां धर्म छोड़ कर अधर्म करने लगें, मैं अधर्म न करूंगा, तू अपने लिये दूसरा पति करके गृहस्थ आश्रम कर ॥ ११ ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्नि-गच्छात् । काममूता बह्वेतद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ १२ ॥

किम् । भ्राता । असत् । यत् । अनाथम् । भवाति । किम् । ऊं इति । स्वसा । यत् । निः-ऋतिः । नि-गच्छात् ॥ काम-मूता । बह्वेतत् । रपामि । तन्वा । मे । तन्वम् । सम् । पिपृग्धि ॥ १२ ॥

११—(आ गच्छान्) आगच्छेयुः (घ) निश्चयेन (ता) तानि (उत्तरा) आगामीनि (युगानि) समयविशेषाः (यत्र) येषु युगेषु (जामयः) कुल-स्त्रियः । भगिन्यः (कृणवन्) कृवि हिंसाकरणयोः । कुर्युः (अजामि) कुलस्त्रीणां भगिनीनां वा अयोग्यं कर्म (उप) समीपे (वर्बृहि) बृह वृद्धौ यङ्लुकि लोट् । भृशं वर्धय (वृषभाय) श्रेष्ठाय वराय (बाहुम्) स्वभुजम् (अन्यम्) भिन्नपुरुषम् (इच्छस्व) कामयस्व (सुभगे) हे बह्वैश्वर्यवति (पतिम्) भर्तारम् (मत्) मत्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(भ्राता) भाई (किम्) क्या (असत्) होवे, (यत्) जब [बहिन को] (अनाथम्) बिन सहारा (भवाति) होवे, (उ) और (स्वसा) बहिन (किम्) क्या है (यत्) जब [भाई पर] (निर्ऋतिः) महाविपत्ति (निगच्छात्) आपड़े। (काममूता) काम से बंधी हुई मैं (बहु) बहुत कुछ (एतत्) यह (रपामि) कहती हूं, (तन्वा) [अपने] शरीर से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर को (सं पिपृग्धि) मिलकर छू ॥ १२ ॥

भावार्थ—स्त्री का बचन है। वह भाई नहीं है जो बहिन की विपत्ति में सहाय न करे और न वह बहिन है जो भाई के कष्ट को न मिटावे। मैं काम से पीड़ित होकर तेरे साथ विवाह के लिये कहती हूं ॥ १२ ॥

न ते॑ ना॒थं य॒म्यत्रा॒हम॑स्मि॒ न ते॑ त॒नूं त॒न्वा॒ ३॒॑ सं प॑पृच्याम् ।
अ॒न्येन॒ मत् प्र॒मुदः॑ कल्पयस्व॒ न ते॒ भ्राता॑ सुभगे वष्ट्ये॒तत् ॥१३॥

न । ते॒ । ना॒थम् । य॒मि॒ । अत्र॑ । अ॒हम् । अ॒स्मि॒ । न । ते॒ । त॒नूम् । त॒न्वा॑ । सम् । प॒पृ॒च्या॒म् ॥ अ॒न्येन॑ । मत् । प्र॒-मुदः॑ । क॒ल्प॒य॒स्व॒ । न । ते॒ । भ्राता॑ । सु॒-भ॒गे॒ । व॒ष्टि॒ । ए॒तत् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(यमि) हे यमी ! [जोड़िया बहिन] (अहम्) मैं (अत्र) इस [विषय] में (ते) तेरा (नाथम्) आश्रय (न) नहीं (अस्मि) हूं, (ते) तेरे (तनूम्) शरीर को (तन्वा) [अपने] शरीर से (न) नहीं (सम्)

१२—(किम्) किमर्थम्। निष्फलम् (भ्राता) सहोदरः (असत्) भवेत् (यत्) यदि (अनाथम्) अनाथत्वम्। अनाश्रयत्वम् (भवाति) भवेत्, भगिन्याम् (किम्) निष्फलम् (उ) समुच्चये (स्वसा) भ्रगिनी (यत्) यदि (निर्ऋतिः) कृच्छ्रापत्तिः (निगच्छात्) निपतेत् भ्रातरि (काममूता) मूङ् बन्धने—क्त। कामेन बद्धा पीडिता (बहु) नानाप्रकारेण (एतत्) इदं वचनम् (रपामि) कथयामि (तन्वा) स्वशरीरेण (मे) मम (सम्) संगत्य (पिपृग्धि) पृची सम्पर्के। छान्दसःश्लुः, अभ्यासस्य इत्वं। संपर्चय ॥

१३—(न) निषेधे (ते) तव (नाथम्) आश्रयः (यमि) म० ८। हे यमजे भगिनि (अत्र) अस्मिन् विषये (अहम्) भ्राता (अस्मि) भवामि (न)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर (पपृच्याम्) छू ऊंगा। (मत्) मुझे से (अन्येन) दूसरे [वर] के साथ (प्रमदः) आनन्दों को (कल्पयस्व) मना, (सुभगे) हे सुभगे ! [बड़े ऐश्वर्य वाली] (ते भ्राता) तेरा भाई (एतत्) यह (न) नहीं (वष्टि) चाहता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—पुरुष का वचन है। यह ठीक है कि हम दोनों भाई बहिन होकर विपत्ति में परस्पर सहाय करें, परन्तु धर्म छोड़कर बहिन से विवाह न करूंगा। मैं तुझ से कहता हूं कि तू दूसरे योग्य वर से विवाह कर ले ॥ १३ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऋग्वेद में है—१० । १० । १२ ॥

न वा उ ते तनूं तन्वा ३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् । असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥

न । वै । ऊं इति । ते । तनूम् । तन्वा । सम् । पपृच्याम् । पापम् । आहुः । यः । स्वसारम् । नि-गच्छात् ॥ असम्-यत् । एतत् । मनसः । हृदः । मे । भ्राता । स्वसुः । शयने । यत् । शयीय ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(वै उ) कभी भी (ते तनूम्) तेरे शरीर को (तन्वा) [अपने] शरीर से (न) नहीं (सम्) मिलकर (पपृच्याम्) छूऊंगा, [उस मनुष्य को] (पापम्) पापी (आहुः) वे [शिष्ट लोग] कहते हैं, (यः) जो (स्वसारम्) बहिन को (निगच्छात्) नीचपन से प्राप्त करे। (एतत्) यह

नहि (ते) तव (तनूम्) शरीरम् (तन्वा) स्वशरीरेण (सम्) संगत्य (पपृच्याम्) संपर्चयाम् (अन्येन) भिन्नेन वरेण (मत्) मत्तः (प्रमुदः) प्रहर्षान् (कल्पयस्व) समर्थय। साधय (न) निषेधे (ते) तव (भ्राता) सहोदरः (सुभगे) हे बह्वैश्वर्यवति (वष्टि) इच्छति (एतत्) इदं कर्म ॥

१४—(न) निषेधे (वै उ) कदापि (ते) तव (तनूम्) शरीरम् (तन्वा) स्वशरीरेण (सम्) संगत्य (पपृच्याम्) संपर्चयाम् (पापम्) पापिनं तं पुरुषम् (आहुः) कथयन्ति शिष्टाः (यः) भ्राता (स्वसारम्) भगिनीम् (निगच्छात्) नीचं प्राप्नुयात् (असंयत्) यमु उपरमे—क्विप। असंगतम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बात] (मे) मेरे (मनसः) मन [संकल्प] के और (हृदः) हृदय [निश्चय] के (असंयत्) असंगत है—(यत्) कि (भ्राता) मैं भाई (स्वसुः) बहिन की (शयने) सेज पर (शयीय) सोऊं ॥ १४ ॥

भावार्थ—यह भी पुरुष का वचन है। मैं कभी भी तेरे साथ विवाह न करूंगा। बड़े लोग भाई के साथ बहिन का विवाह पाप मानते हैं और मैं भी अन्तः करण से इसे पाप समझता हूं ॥ १४ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है—१०। १०। १२ ॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम। अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥ १५ ॥

बतः। बत। असि। यम। न। एव। ते। मनः। हृदयम्। च। अविदाम ॥ अन्या। किल। त्वाम्। कक्ष्या-इव। युक्तम्। परि। स्वजाते। लिबुजा-इव। वृक्षम् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(बत) हा ! (यम) हे यम ! [जोड़िया भाई] तू (बतः) बड़ा निर्बल (असि) है, (ते) तेरे (मनः) मन [संकल्प] को (च) और (हृदयम्) हृदय [निश्चय] को (एव) निःसन्देह (न अविदाम) हम ने नहीं पाया। (अन्या) दूसरी स्त्री (किल) अवश्य (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजाते) आलिङ्गन करेगी, (कक्ष्या इव) जैसे घोड़े की पेटी (युक्तम्) कसे

(एतत्) इदं कर्म (मनसः) चित्तस्य। संकल्पस्य (हृदः) हृदयस्य। निश्चयस्य (मे) मम (भ्राता) (स्वसुः) भगिन्याः (शयने) शय्यायाम् (यत्) अर्थबोधने (शयीय) अहं शयनं कुर्याम् ॥

१५—(बतः) वन उपकारे उपतापे च—क। बतो बलादतीतो भवति दुर्बलः—निरु० ६। २८। अतिनिर्बलः (बत) शोके। हा (असि) (यम) म० ८। हे यमजभ्रातः (न) निषेधे (एव) निश्चयेन (ते) तव (मनः) चित्तम् संकल्पम् (हृदयम्) अन्तःकरणम्। निश्चयम् (च) (अविदाम) विद्लृ लाभे—लुङ्। वयं प्राप्तवत्यः (अन्या) मद्भिन्ना स्त्री (किल) प्रसिद्धौ (त्वाम्) (कक्ष्या) अश्वस्य कक्षाप्रदेशस्था रज्जुः (इव) यथा (युक्तम्) गमनाय योजि-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुये [घोड़े] से और (लिबुजा इव) जैसे बेल [लता] (वृक्षम्) वृक्ष से [लिपट जाती है] ॥ १५ ॥

भावार्थ—स्त्री का वचन है। भाई! मैं ने तुझे इतना समझाया पर तू ने मेरी बात न मानी, अवश्य मुझ से दसरी स्त्री तेरे साथ विवाह कर के सुख भोगेगी ॥ १५ ॥

मन्त्र १५ और १६ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १०। १३, १४ ॥

अन्यमू षु यमन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् । तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १६ ॥

अन्यम् । ऊं इति । सु । यमि । अन्यः । ऊं इति । त्वाम् । परि । स्वजाते । लिबुजा-इव । वृक्षम् ॥ तस्य । वा । त्वम् । मनः । इच्छ । सः । वा । तव । अध । कृणुष्व सम्-विदम् । सु-भद्राम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(यमि) हे यमी! [जोड़िया बहिन] तू (अन्यम्) दूसरे पुरुष से (सु उ) अच्छे प्रकार [मिल], (उ) और (अन्यः) दूसरा पुरुष (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजाते) मिले, (लिबुजा इव) जैसे बेल [लता] (वृक्षम्) वृक्ष से। (वा) और (त्वम्) तू (तस्य) उसके (मनः) मन को (इच्छ) चाह, (वा) और (सः) वह (तव) तेरे [मन को चाहे], (अध) फिर तू (सुभद्राम्) बड़े मङ्गल युक्त (संविदम्) संगति (कृणुष्व) कर ॥ १६ ॥

भावार्थ—पुरुष का अन्तिम वचन है। हे बहिन! तू प्रसन होकर दूसरे योग्य वर से विवाह कर ले। तुम दोनों परस्पर प्रीति बढ़ाकर आनन्द भोगो १६

तमश्वम् (परिष्वजाते) आलिङ्गेत् (लिबुजा) अ० ६। ८। १। लता (वृक्षम्) तरुम् ॥

१६—(अन्यम्) भिन्नपुरुषम्—परिष्वजेति शेषः (उ) एव (सु) सुष्ठु (यमि) म० ८। हे यमजे भगिनि (अन्यः) इतरः पुरुषः (उ) (त्वाम्) (परिष्वजाते) आलिङ्गेत् (लिबुजा) अ० ६। ८। १। लता (इव) यथा (वृक्षम्) (तस्य) वरस्य (वा) समुच्चये। च (त्वम्) (मनः) चित्तम् (इच्छ) कामयस्व (सः) वरः (वा) च (तव) (अध) अथ। अनन्तरम् (कृणुष्व) कुरु (संविदम्) संगतिम् (सुभद्राम्) अत्यन्तमङ्गलप्रदाम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः १७—२६ ॥

अग्निर्देवता [ऋग्वेदे १०। ११। १-९ यथा] ॥ १७ आर्षी त्रिष्टुप्; १८-२०, २२ निचृज्जगती; २१, २३ जगती; २४—२६ त्रिष्टुप् ॥

विद्वत्कर्मोपदेशः—विद्वानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

त्रीणि॒ छन्दाꣳसि॒ कव॑यो॒ वि ये॑तिरे पुरु॒रूपं॑ दर्श॒तं वि॒श्वच॑क्षणम्। आपो॒ वाता॒ ओष॑धय॒स्तान्येक॑स्मि॒न् भुव॑न॒ आर्पि॑तानि ॥ १७ ॥

त्रीणि॑। छन्दाꣳसि॑। कव॑यः। वि। ये॒तिरे॑। पुरु-रूपं॑म्। दर्श॒तम्। वि॒श्व-च॑क्षणम्॥ आपः॑। वाताः॑। ओष॑धयः। तानि॑। एक॑स्मिन्। भुव॑ने। आर्पि॑तानि ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(कवयः) बुद्धिमानों ने (पुरुरूपम्) अनेक प्रकार निरूपण करने योग्य, (दर्शतम्) अद्भुत गुण वाले (विश्वचक्षणम्) सब के देखने योग्य, (त्रीणि) तीन (छन्दांसि) आनन्द देने वाले पदार्थों को (वि) विविध प्रकार (येतिरे) यत्न में किया है। वे (आपः) जल, (वाताः) पवनें और (ओषधयः) ओषधें [सोमलता, जौ, चावल आदि] हैं, (तानि) वे सब (एकस्मिन्) एक (भुवने) भुवन [सब के आधार परमात्मा] में (आर्पितानि) ठहरे हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग अनेक प्रकार उपकारी जल, वायु और ओषधियों आदि के गुणों को विद्वानों में उपदेश करके लाभ उठावें और उनके कर्ता परमात्मा की महिमा जानकर उन्नति करें ॥ १७ ॥

१७—(त्रीणि) त्रिसंख्याकानि (छन्दांसि) अ० ४। ३४। १ । चन्देरादेश्च छः । उ० ४। २१९। चदि आह्लादने—असुन्, चस्य छः । आनन्दप्रदपदार्थान् (कवयः) मेधाविनः (वि) विविधम् (येतिरे) यती प्रयत्ने—लिट्। यत्ने कृतवन्तः (पुरुरूपम्) बहुविधनिरूपणीयम् (दर्शतम्) दृशिर्—अतच्। दर्शनीयम्। अद्भुतगुणयुक्तम् (विश्वचक्षणम्) सर्वैर्दर्शनीयम् (आपः) जलानि (वाताः) वायवः (ओषधयः) सोमलताव्रीहियवादयः (तानि) वस्तूनि (एकस्मिन्) (भुवने) सर्वाधारे परमेश्वरे (आर्पितानि) समन्ताद् निवेशितानि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः। विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यक्षियो यजति यक्षियाँ ऋतून् ॥ १८ ॥

वृषा। वृष्णे। दुदुहे। दोहसा। दिवः। पयांसि। यह्वः। अदितेः। अदाभ्यः ॥ विश्वम्। सः। वेद। वरुणः। यथा। धिया। सः। यक्षियः। यजति। यक्षियान्। ऋतून् ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(यह्वः) महान्, (अदाभ्यः) न दबने वाले (वृषा) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा ने (वृष्णे) पराक्रमी मनुष्य के लिये (दिवः) आनन्द देने वाली (अदितेः) अखण्ड वेदवाणी की (दोहसा) पूरणता से (पयांसि) अनेक रसों को (दुदुहे) भरपूर किया है। (वरुणः यथा) श्रेष्ठ पुरुष के समान (सः) वह [मनुष्य] (विश्वम्) संसार को (धिया) [अपनी] बुद्धि से (वेद) जानता है और (सः) वह (यक्षियः) पूजनीय होकर (यक्षियान्) पूजनीय (ऋतून्) ऋतुओं [उचित कालों] को (यजति) पूजता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने वेदद्वारा पुरुषार्थी के लिये संसार में अनेक ऐश्वर्य का उपदेश किया है। वही ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठों के समान आचरण करके उचित समय को न खोकर संसार का उपकार करता है ॥ १८ ॥

मन्त्र १८—२४ कुछ भेद वा अभेद से ऋग्वेद में हैं—१०। ११। १-७ ॥

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः।

१८—(वृषा) वृषु प्रजनने, परमशक्तौ पराक्रमे च—कनिन्। परमशक्तिमान् परमेश्वरः। इन्द्रः (वृष्णे) पराक्रमिणे पुरुषाय (दुदुहे) प्रपूरितवान् (दोहसा) दुह प्रपूरणे—असुन्। प्रपूर्त्या (दिवः) दिवु मोदे—डिवि। आनन्दप्रदायाः (पयांसि) रसान् (यह्वः) महान्—निघ० ३। ३। (अदितेः) अदितिर्वाङ्-नाम—निघ० १। ११। अखण्डिताया वेदवाण्याः (अदाभ्यः) अहिंस्यः (विश्वम्) संसारम् (सः) पराक्रमी (वेद) वेत्ति (वरुणः) श्रेष्ठपुरुषः (यथा) सादृश्ये (धिया) प्रज्ञया (सः) (यक्षियः) पूजार्हः (यजति) पूजयति (यक्षियान्) पूजनीयान् (ऋतून्) अर्तेश्चतुः। उ० १। ७२। ऋ गतौ—तु, कित्। गमनशीलान् योग्यकालान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्टस्यु मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ १९ ॥

रपत्। गन्धर्वीः। अप्या। च। योषणा। नदस्य। नादे। परि। पातु। नः। मनः॥ दुष्टस्य। मध्ये। अदितिः। नि। धातु। नः। भ्राता। नः। ज्येष्ठः। प्रथमः। वि। वोचति१९

भाषार्थ—(गन्धर्वीः) विद्वानों को धारण करने वाली, (अप्या) सत्कर्मों में प्रसिद्ध (च) और (योषणा) सेवने योग्य [वेद वाणी] (रपत्) स्पष्ट कहती है—कि वह [वेदवाणी] (नदस्य) स्तोता [गुणज्ञ] पुरुष के (नादे) सत्कार में (नः) हमारे (मनः) मन [वा विज्ञान] की (परि) सब ओर से (पातु) रक्षा करे। (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी (इष्टस्य) अभीष्ट सुख के (मध्ये) बीच में (नः) हमें (नि) नित्य (धातु) रक्खे, (भ्राता) भाई [के समान हितकारी] (ज्येष्ठः) अतिश्रेष्ठ, (प्रथमः) मुख्य पुरुष (नः) हम को (वि) अनेक प्रकार (वोचति) उपदेश करे॥ १९॥

भावार्थ—वेदवाणी हमें उपदेश करती है कि मनुष्य गुणों के जानने से अपनी रक्षा करता और अभीष्ट सुख पाता है, श्रेष्ठ विद्वान् परस्पर यही उपदेश करे॥ १९॥

सेा चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवासु मनवे स्वर्वती। यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनत्

१९—(रपत्) रपति। उपदिशति (गन्धर्वीः) गौः स्तोतृनाम—निघ० ३।१६। स्तोतॄणां धारयित्री (अप्या) म० ४। सत्कर्मसु भवा (च) (योषणा) युष भजने—ल्यु, टाप्। सेवनीया (नदस्य) नदः स्तोतृनाम—निघ० ३। १६। स्तोतुः। गुणज्ञस्य (नादे) नदतिरर्चतिकर्मा—निघ० ३। १४। अर्चने। सत्कारे (परि) सर्वतः (पातु) रक्षतु (नः) अस्माकम् (मनः) विज्ञानम्। अन्तःकरणम् (इष्टस्य) अभीष्टसुखस्य (मध्ये) (अदितिः) अखण्डिता वेदवाणी (नि) नित्यम् (धातु) दधातु (नः) अस्मान् (भ्राता) भ्रातेव हितकारी (नः) अस्माकम् (ज्येष्ठः) प्रशस्यतमः (प्रथमः) मुख्यः पुरुषः (वि) विविधम् (वोचति) वक्तु। उपदिशतु॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन् ॥ २० ॥ (२)

सो इति । चित् । नु । भद्रा । क्षु-मती । यशस्वती । उषाः । उवास । मनवे । स्वः-वती ॥ यत् । ईम् । उशन्तम् । उशताम् । अनु । क्रतुम् । अग्निम् । होतारम् । विदथाय । जीजनन् ॥ २० ॥ (२ ॥

भाषार्थ—(सो) वही (चित्) निश्चय करके (नु) अब (भद्रा) कल्याणी, (क्षुमती) अन्न वाली, (यशस्वती) यश वाली, (स्वर्वती) बड़े सुख वाली [वेदवाणी], (उषाः) उषा [प्रभात वेला के समान], (मनवे) मनुष्य के लिये (उवास) प्रकाशमान हुयी है। (यत्) क्योंकि (ईम्) इस [वेदवाणी] को (उशन्तम्) चाहने वाले, (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (उशताम्) अभिलाषी पुरुषों की (क्रतुम् अनु) बुद्धि के साथ (विदथाय) ज्ञान समाज के लिये (जीजनन्) उन्होंने [विद्वानों ने] उत्पन्न किया है ॥२०॥

भावार्थ—परमात्मा ने मनुष्य के कल्याण के लिये वेदवाणी को सूर्य के प्रकाश के समान संसार में प्रकट किया है। जो मनुष्य वेदज्ञाता महाविद्वान् होवे, विद्वान् लोग उसको मुखिया बनाकर समाज का सुख बढ़ावें ॥ २० ॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे। यदी विशो वृणते दुस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत २१

अध । त्यम् । द्रप्सम् । वि-भ्वम् । वि-चक्षणम् । विः । आ ।

२०—(सो) सा—उ । सैव वेदवाणी (चित्) एव (नु) सम्प्रति (भद्रा) कल्याणी (क्षुमती) अन्नवती—निघ० २ । ७ (यशस्वती) कार्त्तिमती (उषाः) प्रभातवेलारूपा वेदवाणी (उवास) वस—लिट् । प्रकाशं कृतवती (मनवे) (मनुष्याय (स्वर्वती) सुखवती (यत्) यतः (ईम्) इमां वेदवाणीम् (उशन्तम्) कामयमानम् (उशताम्) कामयमानानाम् । अभिलाषिणाम् (अनु) अनुसृत्य (क्रतुम्) प्रज्ञाम्—निघ० ३ । ९ (अग्निम्) विद्वांसम् (होतारम्) दातारम् (विदथाय) ज्ञानसमाजाय (जीजनन्) अजीजनन् । उदपादयन् ते विद्वांसः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभरत् । इषिरः । श्येनः । अध्वरे ॥ यदि । विशः । वृणते । दस्मम् । आर्याः । अग्निम् । होतारम् । अध । धीः । अजायत ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(अध) और (त्यम्) उस (द्रप्सम्) हर्ष देने वाले, (विभ्वम्) बली (विचक्षणम्) चतुर [विद्वान्] पुरुष को (श्येनः) श्येन [बाज] (विः) पक्षी [के समान] (इषिरः) फुरतीला [आचार्य आदि] (अध्वरे) यज्ञ में (आ अभरत्) लाया है। (यदि) यदि (आर्याः) आर्य [श्रेष्ठ] (विशः) मनुष्य (दस्मम्) दर्शनीय, (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (वृणते) चुने, (अध) तब (धीः) वह कर्म (अजायत) हो जावे ॥ २१ ॥

भावार्थ—जिस विद्वान् दूरदर्शी जन को उत्तम गुणों के कारण विद्वान् आचार्य आदि प्रसिद्ध करें उसको श्रेष्ठ लोग प्रधान बनाकर कार्य सिद्ध करें २१॥

सदांसि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः । विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो३ वाजं सस्वाँ उपयासि भूरिभिः ॥ २२ ॥

सदा । असि । रण्वः । यवसा-इव । पुष्यते । होत्राभिः । अग्ने । मनुषः । सु-अध्वरः ॥ विप्रस्य । वा । यत् । शशमानः ।

२१—(अध) अथ (त्यम्) तम् (द्रप्सम्) वृतॄवदिवचि० । उ० ३ । ६२ । दृप हर्षमोहनयोः—सप्रत्ययः । हर्षकारिणम् (विभ्वम्) विभुम् । प्रभुम् । (विचक्षणम्) दूरदर्शिनम् । चतुरम् (विः) वातेर्डिच्च । उ० ४ । १३४ । वा गतिगन्धनयोः—इण, डित् । पक्षी (आ अभरत्) हस्य भः । आहरत् । आहृतवान्(इषिरः) इषिमदिमुदि० । उ० १ । ५१ । इष गतौ—किरच् । शीघ्रगामी (श्येनः) श्येन इव (अध्वरे) यज्ञे (यदि) (विशः) मनुष्याः—निघ० २ । ३ (वृणते) वरणं कुर्वन्ति । पुरस्कुर्वन्ति (दस्मम्) दर्शनीयम् (आर्याः) ऋ गतिप्रापणयोः—ण्यत् । श्रेष्ठाः (अग्निम्) विद्वांसम् (होतारम्) दातारम् (अध) अनन्तरम् (धीः) कर्म—निघ० २ । १ (अजायत) जायते ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुानः । उक्थ्यः । वाजम् । सस-वान् । उप-यासि । भूरि-भिः२२

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञ वाला होकर (मनुषः) ज्ञान की (होत्राभिः) वाणियों से (पुष्यते) पुष्ट करने वाले [मनुष्य] के लिये (यवसा इव) जैसे घास [गौ आदिके लिये] (सदा) सदा तू (रण्वः) रमणीय [सुखदायक] (असि) होता है । (वा) और (यत्) क्योंकि (विप्रस्य) विद्वान् [आचार्य आदि] के (वाजम्) विज्ञान को (ससवान्) सेवन कर चुका हुआ, (शशमानः) फुरतीला, (भूरिभिः) बहुत [उत्तम पुरुषों] से (उक्थ्यः) स्तुतियोग्य तू (उपयासि) आता है ॥ २२ ॥

भावार्थ—विद्वान् को योग्य है कि ज्ञानदाता आचार्य आदि को अपने सत्कर्मों से सदा प्रसन्न रक्खे, क्योंकि उन्हीं महात्माओं की कृपा से वह विज्ञान प्राप्त करके संसार में विख्यात हुआ है ॥ २२ ॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति । विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती२३

उत् । ईरय । पितरा । जारः । आ । भगम् । इयक्षति । हर्यतः । हृत्तः । इष्यति ॥ विवक्ति । वह्निः । सु-अपस्यते । मखः । तविष्यते । असुरः । वेपते । मती ॥ २३ ॥

२२—(सदा) सर्वदा (असि) भवसि (रण्वः) कृगृशृदृभ्यो वः । उ १ । १५५ । रमु क्रीडायाम्—व, मस्य णः । रमणीयः । सुखप्रदः यद्वा, रण शब्दे गतौ च—वप्रत्ययः । स्तुत्यः । प्राप्तव्यः (यवसा) विभक्तेराकारः । यवसम् । घासः । तृणम् (इव) यथा (पुष्यते) पुष पुष्टौ—शतृ । पोषणं कुर्वते पुरुषाय (होत्राभिः) वाग्भिः—निघ० १ । ११ (अग्ने) हे विद्वन् (मनुषः) जनेरुसिः उ० २ । ११५ । मन ज्ञाने—उसि । ज्ञानस्य (स्वध्वरः) शोभनयागः (विप्रस्य) मेधाविनः (वा) च (यत्) यतः (शशमानः) अ० २ । ३४ । २ । शश प्लुतगतौ—चानश् । उत्प्लुत्य गमनशीलः ॥ शीघ्रगामी (उक्थ्यः) स्तुत्यः (वाजम्) विज्ञानम् (ससवान्) षण संभक्तौ—क्वसु । संभजमानः । सेवमानः (उपयासि) आगच्छसि (भूरिभिः) बहुपुरुषैः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (जारः आ) स्तोता [गुणज्ञ पुरुष] के समान (पितरा) माता पिता को (भगम्) ऐश्वर्य की ओर (उत् ईरय) ऊंचा पहुंचा, [क्योंकि] (हर्यतः) [शुभगुणों का] चाहने वाला (हृत्तः) हृदय से (इयक्षति) [उन्हें] पूजना चाहता है और (इष्यति) चलता है। (वहिः) भार उठाने वाला (विवक्ति) बोलता है, (मखः) उद्यागी (स्वपस्यते) सत्कर्म करना चाहता है और (असुरः) प्राणवान् [बलवान्] (तविष्यते) महान् होना चाहता है, और (मती) बुद्धि के साथ (वेपते) चेष्टा करता है ॥ २३॥

भावार्थ—विद्वान् कृतज्ञ पुरुष धन आदि से माता पिता की सेवा करे, क्योंकि वृद्धों की सेवा से मनुष्य पुरुषार्थी होकर जगत् में बड़ा होता है ॥ २३ ॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसःसूनो अति स प्र शृण्वे।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून्२४

यः। ते। अग्ने। सु-मतिम्। मर्तः। अख्यत्। सहसः। सूनो इति। अति। सः। प्र। शृण्वे॥ इषम्। दधानः। वहमानः। अश्वैः। आ। सः। द्यु-मान्। अम-वान्। भूषति। द्यून्॥२४॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (यः मर्तः) जो मनुष्य (ते) तेरी

२३—(उदीरय) द्विकर्मकः। उद्गमय। उच्चैः प्रापय (पितरा) मातापितरौ (जारः) जरतिरर्चतिकर्मा-निघ० ३। १४। जरिता स्तोतृनाम—निघ० ३। १६। जॄ स्तुतौ-अच्। स्तोता। गुणज्ञः (आ) सादृश्ये। इव (भगम्) ऐश्वर्यं प्रति (इयक्षति) यजेः सन्, अभ्यासस्य संप्रसारणं छान्दसम्। यष्टुं पूजयितुमिच्छति (हर्यतः) कमनीयः पुरुषः (हृत्तः) हृदयात् (इष्यति) इष गतौ। गच्छति (विवक्ति) कथयति (वहिः) भारस्य वोढा (स्वपस्यते) अपः कर्मनाम—निघ० २। १। सुप आत्मनः क्यच्। पा० ३। १।८। सु+अपस्—क्यच्। सत्कर्म कर्तुमिच्छति (मखः) मख सर्पणे, गतौ—घप्रत्ययः। उद्योगी पुरुषः (तविष्यते) तविषो महन्नाम—निघ० ३। ३। तविष—क्यच्। अकारलोपश्छान्दसः। तविषयते। महान् भवितुमिच्छति (असुरः) प्राणवान्। बलवान् (वेपते) चेष्टते (मती) मत्या ॥

२४—(यः) (ते) तव (अग्ने) हे विद्वन् (सुमतिम्) उत्तमबुद्धिम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुमतिम्) सुमति को (अख्यत्) बखानता है, (सहसः सूनो) हे बलवान् पुरुष के पुत्र ! (सः) वह (अति) अति (प्र) बड़ाई से (शृण्वे) सुना जाता है [यशस्वी होता है]। और (सः) वह (इषम्) अन्न (दधानः) रखता हुआ, (अश्वैः) घोड़ों से (वहमानः) ले जाता हुआ, (द्युमान्) प्रकाशमान और (अमवान्) पराक्रमी होकर (द्यून्) दिनों को (आ) सब प्रकार (भूषति) सुधारता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कुलीन बली विद्वानों की सुमति पर चलता है, वह यशस्वी, धनी और पराक्रमी होकर संसार का उपकार करता है ॥ २४ ॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथमृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः २५

श्रुधि । नः । अग्ने । सदने । सध-स्थे । युक्ष्व । रथम् । ऋत-स्य । द्रवित्नुम् ॥ आ । नः । वह । रोदसी इति । देवपुत्रे इति देव-पुत्रे । माकिः । देवानाम् । अप । भूः । इह । स्याः २५

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (सधस्थे) मिलकर बैठने योग्य (सदने) बैठक [समाज] में (नः) हमारी [बात] (श्रुधि) सुन,—(ऋत-तस्य) अमृत [अमरपन, पुरुषार्थ] के (द्रवित्नुम्) वेग वाले (रथम्) रथ को (युक्ष्व) जोड़ । (नः) हमारे लिये (रोदसी) भूमि और सूर्य [के समान

(मर्तः) मनुष्यः (अख्यत्) लडर्थे लुङ् । कथयति (सहसः) बलवतः पुरुषस्य (सूनो) पुत्र (अति) अत्यन्तम् (सः) (प्र) प्रकर्षेण (शृण्वे) लोपस्त आत्मनेपदेषु । पा० ७ । १ । ४१ । तलोपः, यणादेशः । शृणुते । श्रूयते । विश्रुतो भवति (इषम्) अन्नम् (दधानः) धारयन् (वहमानः) उह्यमानः (अश्वैः) तुरङ्गैः (आ) समन्तात् (सः) मर्तः (द्युमान्) दीप्तिमान् (अमवान्) बलवान् (भूषति) अलंकरोति (द्यून्) दिनानि—निघ० १ । ९ ॥

२५—(श्रुधि) शृणु (नः) अस्माकं वचः (अग्ने) हे विद्वन् (सदने) समाजे (सधस्थे) सहस्थितियोग्ये (रथम्) (अमृतस्य) अमरणस्य । (द्रवित्नुम्) स्तनिहृषियुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच् । उ० ३ । २९ । द्रु गतौ—इत्नुच्, अण्यन्तादपि । शीघ्रगामिनम् (आवह) आनय (नः) अस्मान् (रोदसी)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकारी] (देवपुत्रे) विद्वानों को पुत्र रखने वाले [दो प्रजायें अर्थात् माता पिता] को (आ वह) ला, (देवानाम्) विद्वानों के बीच (माकिः) न कभी (अप भूः) तू दूर हो, (इह) यहां [हम में] (स्याः) रह ॥ २५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सभा के बीच अधिक विद्वान् पुरुष को प्रधान बनाकर व्यवस्था करें कि सब माता पिता विज्ञान पूर्वक उत्तम सन्तान उत्पन्न करके संसार का उपकार करें और विद्वानों से आदर पूर्वक मिलते रहें ॥ २५ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ११ । ४ ॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र । रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६॥

यत् । अग्ने । एषा । सम्-इतिः । भवाति । देवी । देवेषु । यजता । यजत्र ॥ रत्ना । च । यत् । वि-भजासि । स्वधा-वः । भागम् । नः । अत्र । वसु-मन्तम् । वीतात् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(यजत्र) हे संगति योग्य ! (अग्ने) हे विद्वान् ! (यत्) जब (एषा) यह (समितिः) समिति [सभा] (देवेषु) विद्वानों के बीच (देवी) विज्ञानवती और (यजता) संगति योग्य (भवाति) होवे । (च) और (यत्) जब, (स्वधावः) हे आत्मधारी ! तू (रत्ना) रत्नों को (विभजासि) बांटे, (नः) हमारे लिये (अत्र) यहां [संसार में] (वसुमन्तम्) बहुत धन युक्त (भागम्) भाग (वीतात्) भेज ॥ २६ ॥

भूमिसूर्यतुल्योपकारशीले (देवपुत्रे) देवा विद्वांसः पुत्रा ययोस्ते द्वे प्रजे । मातापितरौ (माकिः) न कदापि (देवानाम्) विदुषां मध्ये (अप भूः) अपगतो भव (इह) अस्मासु (स्याः) भवेः ॥

२६—(यत्) यदा (एषा) (समितिः) सभा (भवाति) भूयात् (देवी) विज्ञानवती (देवेषु) विद्वत्सु (यजता) संगन्तव्या (यजत्र) हे संगन्तव्य (रत्ना) रत्नानि । बहुमूल्यधनानि (च) (यत्) यदा (विभजासि) विभागेन दद्याः (स्वधावः) मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि । पा० ८ । ३ । १ । मत्वन्तस्य रुः । हे स्वधारणशक्तियुक्त (भागम्) अंशम् (नः) अस्माकम् (अत्र) संसारे (वसुमन्तम्) बहुधनयुक्तम् (वीतात्) वी असने क्षेपणे । प्रेरय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्संग से सार्वभौम विद्यासभा बनाकर विज्ञान का प्रचार करें जिससे लोग गुणी होकर धनी होवें ॥ २६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ११ । ८ ॥

मन्त्राः २७—३६ ॥

अग्निर्देवता [ऋग्वेदे १० । १२ । १–६ यथा] ॥ २७—२९, ३१, ३३ त्रिष्टुप् । ३०, ३२, ३५, ३६ निचृत् त्रिष्टुप् ; ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों का उपदेश ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ २७ ॥

अनु । अग्निः । उषसाम् । अग्रम् । अख्यत् । अनु । अहानि । प्रथमः । जात-वेदाः ॥ अनु । सूर्यः । उषसः । अनु । रश्मीन् । अनु । द्यावापृथिवी इति । आ । विवेश ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (अनु) निरन्तर, [उसी] (प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (अनु) निरन्तर (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है । (सूर्यः) [उसी] सूर्य [सब में व्यापक वा सबको चलाने वाले परमेश्वर] ने (उषसः) उषाओं में (अनु) लगातार, (रश्मीन्) व्यापक किरणों में (अनु) लगातार, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी में (अनु) लगातार (आविवेश) प्रवेश किया है ॥२७॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों को रचकर सब को अपने वश में कर रक्खा है, वही सब मनुष्यों का उपास्य है ॥ २७ ॥

मन्त्र २७, २८ आ चुके हैं—अ० ७ । ८२ । ४, ५ ॥

मन्त्र २७ का प्रथम पाद ऋग्वेद में है—४ । १३ । १ ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः । प्रति

२७—मन्त्रौ २७, २८ पूर्वत्र व्याख्यातौ—अ० ७ । ८२ । ४, ५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८॥

प्रति । अग्निः । उषसाम् । अग्रम् । अख्यत् । प्रति । अहानि । प्रथमः । जातवेदाः ॥ प्रति । सूर्यस्य । पुरु-धा । च । रश्मीन् । प्रति । द्यावापृथिवी इति । आ । ततान ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, [उसी] (प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (च) और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन्) व्यापक किरणों को (पुरुधा) अनेक प्रकार (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, और (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोकों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है ॥२८॥

भावार्थ—सब जगत् के उत्पादक और सर्वनियन्ता ईश्वर की महिमा को विचार कर मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥ २८ ॥

द्यावा हु क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा । देवो यन्मर्तान् युजयाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ २९ ॥

द्यावा । हु । क्षामा । प्रथमे इति । ऋतेन । अभि-श्रावे । भवतः । सत्य-वाचा ॥ देवः । यत् । मर्तान् । युजयाय । कृण्वन् । सीदत् । होता । प्रत्यङ् । स्वम् । असुम् । यन् ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी [के समान उपकारी], (प्रथमे) मुख्य, (सत्यवाचा) सत्यवाणी वाली [दो प्रजायें स्त्री और पुरुष] (ह) निश्चय करके (ऋतेन) सत्य धर्म से (अभिश्रावे) पूरी कीर्ति के बीच

२८—(द्यावा) द्यौः । सूर्यः (ह) प्रसिद्धौ (क्षामा) पृथिवी–निघ० १। १ (प्रथमे) मुख्ये (ऋतेन) सत्यधर्मेण (अभिश्रावे) श्रु श्रवणे—घञ्। सर्वयशसि (भवतः) वर्तेते (सत्यवाचा) सत्यवाचौ। सत्यवादिन्यौ स्त्रीपुरुष-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देवः) प्रकाशमान (भवतः) होते हैं। (यत्) क्योंकि (होता) दूसरे पर मिलने के लिये [परमेश्वर] (मर्तान्) मनुष्यों को (यजथाय) संगति के लिये (अप्तुम्) बुद्धि को (यन्) (कृण्वन्) बनाता हुआ और (स्वम्) अपना (सीदत्) बैठता है ॥ २६ ॥ प्राप्त होता हुआ (प्रत्यङ्) सामने

भावार्थ—सब में सर्वोपकारी स्त्री पुरुष ही कीर्त्ति पाते हैं, क्योंकि सर्वव्यापक परमात्मा मनुष्यों को परस्पर सहायक बनाकर कर्मों का फल देने के लिये अपने ज्ञान से सब के सन्मुख रहता है ॥ २६ ॥

मन्त्र २६, ३० ऋग्वेद में हैं १० । १२ । १,२ ॥

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् । धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥ ३० ॥ (३)

देवः । देवान् । परि-भूः । ऋतेन । वह । नः । हव्यम् । प्रथमः । चिकित्वान् ॥ धूम-केतुः । सम्-इधा । भाः-ऋजीकः । मन्द्रः । होता । नित्यः । वाचा । यजीयान् ॥ ३० ॥ (३)

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (देवः) प्रकाशमान, (ऋतेन) सत्य धर्म से (देवान्) गतिमान् लोकों में (परिभूः) व्यापता हुआ, (प्रथमः) पहिले से वर्तमान (चिकित्वान्) [सब] जानता हुआ तू (नः) हमारे लिये (हव्यम्) ग्राह्य पदार्थ (वह) पहुंचा। (समिधा) समिधा [काष्ठ

रूपे प्रजे (देवः) प्रकाशमानः परमेश्वरः (यत्) यतः (मर्तान्) मनुष्यान् (यजथाय) संगतिकरणाय (कृण्वन्) कुर्वन् (सीदत्) निषीदति (होता) दानी (प्रत्यङ्) अभिमुखः सन् (स्वम्) स्वकीयम् (अप्तुम्) प्रज्ञाम्- निघ० ३ । ६ (यन्) गच्छन् । प्राप्नुवन् ॥

३०—(देवः) प्रकाशमानः परमेश्वरः (देवान्) गतिमतो लोकान् (परिभूः) परिभवन् । सर्वतो व्याप्नुवन् (ऋतेन) सत्यधर्मेण (वह) आनय (नः) अस्मान् (हव्यम्) ग्राह्यं पदार्थम् (प्रथमः) आदिमः (चिकित्वान्) सर्वं जानन् (धूमकेतुः) धूमेन जायमानः । धूमध्वजोऽग्निः (समिधा) समिध्यतेन ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि] से (धूमकेतु-
बड़े प्रकाश वाला, (मन्द्रः) सदा वर्तमान और (वाचा) व. वाला है ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्य अनादि अनन्त सर्वस्र सर्वनियन्ता और सर्वज्ञ जान कर पुरुषार्थ के साथ ग्राह्य करें ॥ ३० ॥

अर्चा॑मि वां॒ वर्धा॒यापो॑ घृतस्नू॒ द्यावा॑भूमी शृणु॒तं रो॑दसी॒ मे॒ ॥ अहा॒ यद् दे॒वा असु॑नीति॒माय॒न् मध्वा॑ नो॒ अत्र॑ पि॒तरा॑ शिशीताम् ॥ ३१ ॥

अर्चा॑मि । वा॒म् । वर्धा॑य । अपः॑ । घृ॒त॒स्नू॒ इति॑ घृत-स्नू । द्यावा॑भूमी॒ इति॑ । शृ॒णु॒तम् । रो॒द॒सी॒ इति॑ । मे॒ ॥ अहा॑ । यत् । दे॒वाः । असु॑-नीतिम् । आय॑न् । मध्वा॑ । नः॒ । अत्र॑ । पि॒तरा॑ । शि॒शी॒ता॒म् ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—(घृतस्नू) हे जल समान [व्यवहार को] शुद्ध करने वाले ! [दोनों माता पिता] (वर्धाय) [अपने] बढ़ने के लिये (वाम्) तुम दोनों के (अपः) कर्म की (अर्चामि) मैं पूजा करता हूं, (रोदसी) हे व्यवहार की रक्षक ! [दो प्रजाओ] तुम (द्यावाभूमी) सूर्य और भूमि [के समान उप-

---

सन्दीपनसाधनेन काष्ठादिना (भाऋजीकः) ऋजेश्च । उ० ४ । २२ । भास्+ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु—ईकन्, कित् । भाऋजीकः प्रसिद्धभाः—निरु० ६ । ४ । बहुप्रकाशयुक्तः (मन्द्रः) मोदयिता । आनन्दयिता (होता) दाता (नित्यः) सदा वर्तमानः (वाचा) वाण्या (यजीयान्) यष्टृ—ईयसुन् । तुरिष्ठेमेयःसु । पा० ६ । ४ । १५४ । तृचो लोपः । अत्यन्तं संयोजकः ॥

३१—(अर्चामि) पूजयामि । सत्करोमि (वाम्) युवयोः (वर्धाय) वृधेर्घञ् । वृद्धये (अपः) कर्म (घृतस्नू) ष्णा शौचे—डु । हे उदकमिव व्यवहारशोधयित्र्यौ (द्यावाभूमी) सूर्यभूलोकसमानोपकारिण्यौ (शृणुतम्) (रोदसी) रुधेरसुन् । धस्य दः, ङीप्, पूर्वसवर्णदीर्घः । रोदसी रोधसी द्यावापृथिव्यौ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अहा) दिन (भवतः) होते हैं । (यत्) क्योंकि (होता) दानी [परमेश्वर] (मर्तान्) मनुष्यों को (यजथाय) [परमात्मा] को (कृण्वन्) बनाता हुआ और (स्वम्) अपने [भ] (नः) हमें (पितरा) प्राप्त होता हुआ (प्रत्यङ्) सामने [ ] (शिशीताम्) तीक्ष्ण करें ॥ ३१ ॥

भावार्थ—सब में [ ] आदि पूजनीय विद्वानों के कर्मों से और सर्वव्यापक परमात्मा [ ] परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे ही महाज्ञानी देने के लिये [ ]

[ ] मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १२ । ४ ॥

देवस्यामृतं यदी गोरतौ जातासो धारयन्त उर्वी । विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३२॥

स्वावृक् । देवस्य । अमृतम् । यदि । गोः । अतः । जातासः । धारयन्ते । उर्वी इति ॥ विश्वे । देवाः । अनु । तत् । ते । यजुः । गः । दुहे । यत् । एनी । दिव्यम् । घृतम् । वाः ॥३२॥

भाषार्थ—(यदि) जब कि (देवस्य) प्रकाशमय परमेश्वर का (अमृतम्) अमृत [जीवन सामर्थ्य] (गोः) पृथिवी के लिये (स्वावृक्) सहज में पाने योग्य है, (अतः) इसी [जीवन सामर्थ्य] से (जातासः) उत्पन्न हुये प्राणी (उर्वी) पृथिवी पर (धारयन्ते) [अपने को] रखते हैं । हे परमात्मन् ! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरे (तत्) उस (यजुः अनु)

विरोधनात्—निरु० ६ । १ । हे व्यवहारस्यावरोधयित्र्यौ रक्षित्र्यौ प्रजे (मे) मम वचः (अहा) दिनानि (यत्) यतः (देवाः) गतिमन्तो लोकाः (असुनीतिम्) प्राणप्रापकं परमात्मनम् (आयन्) लडर्थे—लङ् । यन्ति । प्राप्नुवन्ति (मध्वा) मधुना । ज्ञानेन (नः) अस्मान् (अत्र) संसारे (पितरा) मातापितरौ (शिशीताम्) शो तनूकरणे लोटि छान्दसरूपम् । तीक्ष्णीकुरुतां भवत्यौ ॥

३२—(स्वावृक्) सु + आङ् + वृजी वर्जने—क्विप् । सुष्ठु सहजेन आवर्जनीयमाहरणीयं ग्राह्यम् (देवस्य) प्रकाशमयस्य परमेश्वरस्य (अमृतम्) अमरणम् । जीवनसामर्थ्यम् (यदि) यदा (गोः) चतुर्थ्यां षष्ठी । गवे । भूमये (अतः) अस्माद् अमृतात् (जातासः) उत्पन्नाः प्राणिनः (धारयन्ते) आत्मानं धारयन्ति (उर्वी) सप्तम्यां पूर्वसवर्णदीर्घः । ईदूतौ च सप्तम्यर्थे । पा० १ । १ । १९ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनीय कर्म के २ (गुः) चलते हैं, (यत्) क्योंकि (एनी) चलने वाली भूमि (दिव्यम्) श्रेष्ठ (घृतम्) सार युक्त (वाः) वरणीय उत्तम पदार्थ (दुहे) भरपूर करती है ॥ ३२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्राणियों के पालन के लिये पृथिवी पर प्रकाश, वायु, जल, अन्न आदि अनेक पदार्थ स्वयं योग्य बनाये हैं, सब विद्वान् लोग परमेश्वर के नियमों को समझ कर संसार में अनेक लाभ उठाते हैं ॥३२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १२ । ३ ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्यांति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मिनश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवांल्लोकाो न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ३३ ॥

किम् । स्वित् । नः । राजा । जगृहे । कत् । अस्य । अति । व्रतम् । चकृम । कः । वि । वेद ॥ मित्रः । चित् । हि । स्म । जुहुराणः । देवान् । श्लोकः । न । यातास् । अपि । वाजः । अस्ति ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(किं स्वित्) क्यों [किस कर्म फल से] (नः) हमें (राजा) राजा [परमेश्वर] ने (जगृहे) ग्रहण किया है [सुख दिया है], (कत्) कब (अस्य) इस [परमात्मा] के (व्रतम्) नियम को (अति चकृम) हम ने

इति प्रगृह्यम् । उर्व्याम् । पृथिव्याम् (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसः (अनु) अनुसृत्य (तत्) (ते) तव (यजुः) अर्त्तिस्तपूवपियजि० । उ० २ । ११७ । यज पूजायाम्—उसि, नित् । पूजनीयं कर्म (गुः) गच्छन्ति (दुहे) तलोपः । दुग्धे । प्रपूरयति (यत्) यतः (एनी) वीज्याज्वरिभ्यो निः । उ० ४ । ४८ । इण् गतौ-नि । एन्यो नद्यः—निघ० १ । १३ । गमनशीला पृथिवी (दिव्यम्) श्रेष्ठम् (घृतम्) सारयुक्तम् (वाः) वारयतेः क्विप् । वरणीयं द्रव्यम् ॥

३३—(किं स्वित्) कस्मात् कर्मफलात् (नः) अस्मान् (राजा) परमेश्वरः (जगृहे) जग्राह । गृहीतवान् (कत्) कदा (अस्य) परमेश्वरस्य (व्रतम्) नियमम् (अति चकृम) वयमतिक्रान्तवन्तः (कः) प्रजापतिः परमेश्वरः (वि)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लंघन किया है [जिस से क्लेश पाया है], (कः) प्रजापति परमेश्वर [इस को] (वि) विविध प्रकार (वेद) जानता है। (हि) क्योंकि (मित्रः) सब का मित्र [परमात्मा] (चित्) ही (स्म) अवश्य (देवान्) उन्मत्तों को (जुहुराणः) मरोड़ देने वाला और (याताम्) गतिशीलों [पुरुषार्थियों] का (अपि) ही (श्लोकः न) स्तुति के समान (वाजः) बल (अस्ति) है ॥१३॥

भावार्थ—पूर्वजन्म के फल की व्यवस्था को, जो हमारे अकस्मात् सुख दुःख का कारण है, परमेश्वर जानता है, परन्तु वह अपनी न्याय व्यवस्था से उन्मत्त आलसियों को कष्ट और उद्योगियों को सुख देता है ॥ ८ ॥

मन्त्र ३३—३५ ऋग्वेद में हैं—१० । १२ । ५—३८ ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
युमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यंहुचछन् ॥ ३४ ॥

दुः-मन्तु । अत्र । अमृतस्य । नाम । स-लक्ष्मा । यत् । विषु-रूपा । भवाति ॥ युमस्य । यः । मनवते । सु-मन्तु । अग्ने । तम् । ऋष्व । पाहि । अंहः-युच्छन् ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—(अत्र) यहां [संसार में] (अमृतस्य) अमर [अविनाशी परमात्मा] का (नाम) नाम (दुर्मन्तु) दुर्माननीय [सर्वथा अपूजनीय] [होवे], (यत्) यदि (सलक्ष्मा) एकसे लक्षण वाली [धर्मव्यवस्था] (विषुरूपा) नाना स्वभाव वाली [चंचल, अधार्मिक] (भवाति) हो जावे।

विविधम् (वेद) वेत्ति (मित्रः) सर्वसुहृत् (चित्) एव (हि) यस्मात् कारणात् (स्म) अवश्यम् (जुहुराणः) हवृ कौटिल्ये—कानच् । कुटिलीकुर्वाणः (देवान्) दिवु मदे—पचाद्यच् । उन्मत्तान् । अलसान् (श्लोकः) स्तुतिः (न) यथा (याताम्) या गतौ—शतृ । गच्छताम् (अपि) एव (वाजः) बलम् (अस्ति) भवति ॥

३४—(दुर्मन्तु) कृमृज निजनि० । उ० १ । ७३ । मन पूजायाम्-तु दुर्माननीयम् । न कदापिसत्करणीयम् (अत्र) संसारे (अमृतस्य) अविनाशिनः परमेश्वरस्य (नाम) नामधेयम् (सलक्ष्मा) समानलक्षणा धर्मव्यवस्था (यत्) यदि (विषुरूपा) नाना स्वभावा । चंचला । अधार्मिका (भवाति) भवेत्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः) जो कोई [मनुष्य] (यमस्य) [तुझ] न्यायकारी परमेश्वर के [नाम को] (सुमन्तु) बड़ा माननीय (मनवते) मानता है, (अग्ने) हे ज्ञानमय ! (ऋष्व) हे महान् परमेश्वर ! (तम्) उसको (अप्रयुच्छन्) बिना चूके हुये (पाहि) पाल ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा अन्याय करे सब संसार उलट पलट हो जावे। जो कोई मनुष्य उस की न्यायव्यवस्था पर चलते हैं, वे सुख पाते हैं ॥ ३४ ॥

इस मन्त्र का दूसरा पाद मन्त्र २ में आया है ॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते । सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा॥३५॥

यस्मिन् । देवाः । विदथे । मादयन्ते । विवस्वतः । सदने । धारयन्ते ॥ सूर्ये । ज्योतिः । अदधुः । मासि । अक्तून् । परि । द्योतनिम् । चरतः । अजस्रा ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमात्मा] में (देवाः) दिव्य नियम (विदथे) विज्ञान के बीच (मादयन्ते) तृप्त रहते हैं और (विवस्वतः) प्रकाशमय [परमेश्वर] के (सदने) घर (ब्रह्माण्ड] में (धारयन्ते) [अपने को] ठहराते हैं। (सूर्ये) सूर्य में (ज्योतिः) ज्योति और (मासि) चन्द्रमा में (अक्तून्) [सूर्य की] किरणों को (अदधुः) उन [नियमों] ने रक्खा है,

(यमस्य) न्याककारिणः परमेश्वरस्य, नाम-इत्यस्यानुवृत्तिः (यः) कश्चित् पुरुषः (मनवते) मनुते। जानाति (सुमन्तु) सुमाननीयम् (अग्ने) हे ज्ञानमय परमेश्वर (तम्) पुरुषम् (ऋष्व) सर्वनिघृष्वरिष्व०। उ० १। १५३। ऋष गतौ दर्शने च-वन्, गुणाभावः। ऋषिर्दर्शनात्—निरु० २। ११ । ऋषो महन्नाम-निघ० ३। ३ । हे महन् परमेश्वर (पाहि) पालय (अप्रयुच्छन्) अप्रमाद्यन्-॥

३५—(यस्मिन्) परमात्मनि (देवाः) दिव्यनियमाः (विदथे) विज्ञाने (मादयन्ते) तृप्ता भवन्ति (विवस्वतः) प्रकाशमयस्य परमेश्वरस्य (सदने) गृहे। ब्रह्माण्डे (धारयन्ते) आत्मनं धारयन्ति (सूर्ये) सूर्यलोके (ज्योतिः) तेजः (अदधुः) धारितवन्तस्ते दिव्यनियमाः (मासि) चन्द्रलोके (अक्तून्) अ०१७। १। ६। व्यञ्जकान् सूर्यरश्मीन् (द्योतनिम्) अर्त्तिसृधृ०। उ० २। १०२।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अजस्रा) निरन्तर वे दोनों (द्योतनिम्) उस प्रकाशमान [परमात्मा] की (परि चरतः) सेवा करते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—ऋषि मुनि लोग ध्यान लगाकर जिस परमात्मा के ज्ञान का प्रचार संसार में फैलाते हैं, उसी परमेश्वर के नियम से सूर्य चन्द्र आदि लोक उपकार करते हैं ॥ ३५ ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि सं चरन्त्यपीच्ये ३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६

यस्मिन् । देवाः । मन्मनि । सम्-चरन्ति । अपीच्ये । न । वयम् । अस्य । विद्म ॥ मित्रः । नः । अत्र । अदितिः । अनागान् । सविता । देवः । वरुणाय । वोचत् ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमात्मा] में (देवाः) दिव्य नियम (अपीच्ये) गुप्त (मन्मनि) ज्ञान के बीच (सं चरन्ति) चलते रहते हैं, (वयम्) हम लोग (अस्य) उसे (न) नहीं (विद्म) जानते हैं। (मित्रः) सब का मित्र, (अदितिः) अखण्ड, (सविता) सब का उत्पन्न करने हारा, (देवः) प्रकाशमान परमात्मा (अनागान् नः) हम निरपराधियों [धार्मिक पुरुषार्थियों] को (अत्र) इस [विषय] में (वरुणाय) श्रेष्ठ गुण के लिये (वोचत्) उपदेश करे ॥ ३६ ॥

द्युत दीप्तौ—अनि । प्रकाशमानं तं परमेश्वरम् (परि चरतः) सेवेते (अजस्रा) निरन्तरौ तौ सूर्याचन्द्रौ ॥

३६—(यस्मिन्) परमात्मनि (देवाः) दिव्यनियमाः (मन्मनि) ज्ञाने (सं चरन्ति) विचरन्ति (अपीच्ये) ऋत्विग् दधृक्० । पा० ३ । २ । ५९ । अपि+अञ्चतेः किन् । भवे छन्दसि च । पा० ४ । ४ । ११० । इति यत् । अपीच्यं निर्णीतान्तर्हितनाम—निघ० ३ । २५ । अन्तर्हिते । गुप्ते (न) निषेधे (वयम्) विद्वांसः (अस्य) इदम् (विद्म) जानीमः (मित्रः) सुहृत् (नः) अस्मान् (अत्र) अस्मिन् विषये (अदितिः) अखण्डः । अविनाशी (अनागान्) इण आगोऽपराधे च । उ० ४ । २१२ । इति अवणाद् इण् गतौ—ड, आगादेशः । अनागसः । निरपराधिनः (सविता) सर्वोत्पादकः (देवः) प्रकाशमयः परमात्मा (वरुणाय) श्रेष्ठगुणाय (वोचत्) कथयेत् । उपदिशेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—परमात्मा के नियम संसार में ऐसे गुप्त हैं कि जितना जितना विद्वान् लोग उन्हें खोजते हैं, उतना ही अधिक जानते जाते हैं। मनुष्य निरालसी होकर परमेश्वर की शरण में रहकर सदा पुरुषार्थ करें ॥ ३६ ॥

मन्त्रौ ३७, ३८ ॥

इन्द्रो देवता [ऋग्वेदे ८। २४। १,२ यथा] ॥ ३७ निचृदुष्णिक्; ३८ उष्णिक् ॥

राजनिर्वाचनोपदेशः—राजा के चुनाव का उपदेश ॥

सखायु आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥

सखायः । आ । शिषामहे । ब्रह्म । इन्द्राय । वज्रिणे ॥
स्तुषे । ऊं इति । सु । नृ-तमाय । धृष्णवे ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (वज्रिणे) वज्र [अस्त्र-शस्त्र] रखने वाले, (नृतमाय) बहुत बड़े नेता, (धृष्णवे) साहसी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (ब्रह्म) ब्रह्म ज्ञान (स्तुषे) स्तुति करने के लिये (ऊ) अवश्य (सु) भले प्रकार (आ शिषामहे) हम निवेदन करें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग महागुणी, नीतिज्ञ पुरुषार्थी मनुष्य को राजसिंहासन पर विराजने के लिये निवेदन करें ॥ ३७ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८। २४। १ और सामवेद में पू० ४। १०। १०॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

३७—(सखायः) हे सुहृदः (आशिषामहे) आङः शासु इच्छायाम्, लेटि, आडागमः। शास इदङ्हलोः। पा० ६। ४। ३४। इति इत्वं छान्दसम्। शासिवसिघसीनां च। पा० ८। ३। ६०। इति षत्वम्। इच्छेम। निवेदयेम (ब्रह्म) बृहत् तत्त्वज्ञानम् (इन्द्राय) परमैश्वर्यवते जनाय (वज्रिणे) अस्त्रशस्त्रधारिणे (स्तुषे) तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेन्०। पा० ३। ४। ९। ष्टुञ् स्तुतौ-क्से। स्तोतुम् (उ) एव (सु) सुष्ठु (नृतमाय) नेतृतमाय (धृष्णवे) प्रगल्भाय। साहसिने ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शवसा । हि । असि । श्रुतः । वृत्र-हत्येन । वृत्र-हा ॥
मघैः । मघोनः । अति । शूर । दाशुषि ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—(हि) क्योंकि, (शूर) हे शूर ! तू (शवसा) बल से (श्रुतः) विख्यात और (वृत्रहत्येन) दुष्टों के मारने से (वृत्रहा) दुष्ट नाशक (असि) है, और (मघैः) धनों के कारण (मघोनः अति) धन वालों से बढ़कर (दाशसि) तू दान करता है ॥ ३८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप महाबली, शत्रुनाशक और सुपात्रों के लिये बहुत दान देने वाले हैं, इन गुणों से हम आप को राजा बनाते हैं ॥ ३८ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । २४ । २ ॥

मन्त्रः ३९ ॥

मित्रो देवता ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजकृत्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वातो दुह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्टु शोकम् ३९

स्तेगः । न । क्षाम् । अति । एषि । पृथिवीम् । मही इति । नः । वातः । दुह । वान्तु । भूमौ ॥ मित्रः । नः । अत्र । वरुणः । युज्यमानः । अग्निः । वने । न । वि । असृष्टु । शोकम् ३९

भाषार्थ—[हे राजन् !] (स्तेगः न) संग्रह कर्ता पुरुष के समान (क्षाम्) निवास देने वाली (पृथिवीम् अति) पृथिवी पर (एषि) तू चलता

३८—(शवसा) बलेन (हि) यस्मात् कारणात् (असि) (श्रुतः) विख्यातः (वृत्रहत्येन) शत्रुहननेन (वृत्रहा) दुष्टानां हन्ता (मघैः) धनैः (मघोनः) मघवतः । धनवतः पुरुषान् (अति) अतीत्य (शूर) हे वीर (दाशसि) ददासि ॥ ३८ ॥

३९—(स्तेगः) मुदिम्रोर्गग्गौ । उ० १ । १२८ । स्त्यै शब्दसंघातयोः—गप्रत्ययः । पृषोदरादिरूपम् । संग्रहकर्ता पुरुषः (न) यथा (क्षाम्) अन्येष्वपि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, (वाताः) वायुओं [के समान वेग वाले पुरुष] (इह) यहां पर [राज्य में] (नः) हमारे लिये (मही) बड़ी (भूमौ) भूमि पर (वान्तु) चलें। (अत्र) यहां पर (नः) हमारे (युज्यमानः) मिलते हुये (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्र [आप] ने (शोकम्) प्रताप को (वि) दूर दूर (असृष्ट) फैलाया है, (अग्निः न) जैसे आग (वने) वन में [ताप फैलाता है] ॥ ३६ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि बहुत धन का संग्रह करके राज्य की रक्षा करे और प्रजागणों को उद्योगी बना कर शत्रुओं को मारे ॥ ३६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ३१ । ६ । और वहां [विश्वे—देवाः] देवता हैं ॥

मन्त्रः ४० ॥

रुद्रो देवता [ऋग्वेदे २ । ३३ । ११ यथा] ॥ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

राजकृत्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् । मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥४० (४)

स्तुहि । श्रुतम् । गर्त-सदम् । जनानाम् । राजानम् । भीमम् । उप-हत्नुम् । उग्रम् । मृड । जरित्रे । रुद्र । स्तवानः । अन्यम् । अस्मत् । ते । नि । वपन्तु । सेन्यम् ४० (४)

भाषार्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! [शत्रुनाशक राजन्] (श्रुतम्) विख्यात, (गर्तसदम्) रथ पर बैठने वाले, (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (राजानम्)

दृश्यते । पा० ३ । २ । १०१ । क्षि निवासगत्योः—डप्रत्ययः, टाप् । निवासयित्रीम् (अति) प्रति (एषि) गच्छसि (पृथिवीम्) पृथिवीराज्यम् (मही) सप्तम्याम् ईकारः । मह्याम् । महत्याम् (नः) अस्मभ्यम् (वाताः) वायव इव शीघ्रगामिनः पुरुषाः (इह) अत्र राज्ये (वान्तु) गच्छन्तु (भूमौ) (मित्रः) मित्रभूतो राजा (नः) अस्माकम् (अत्र) राज्ये (वरुणः) श्रेष्ठः (युज्यमानः) संगच्छमानः (अग्निः) पावकः (वने) वृक्षसमूहे (न) इव (वि) विविधम् । अति-दूरम् (असृष्ट) सृज विसर्गे—लुङ् । विस्तारितवान् (शोकम्) प्रतापम् ॥

४०—(स्तुहि) प्रशंस (श्रुतम्) विख्यातम् (गर्तसदम्) हसिमृग्रिण० । उ० ३ । ८६ । गॄ विज्ञापने स्तुतौ च-तन् । रथोऽपि गर्त उच्यते गृणातेः स्तुतिक-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभायमान, (भीमम्) भयङ्कर, (उपहत्नुम्) बड़े मारने वाले, (उग्रम्) प्रचण्ड [सेनापति] की (स्तुहि) बड़ाई कर। और (स्तवानः) बड़ाई किया गया तू (जरित्रे) बड़ाई करने वाले के लिये (मृड) सुखी हो, (अस्मत्) हम से (अन्यम्) दूसरे पुरुष [अर्थात् शत्रु] को (ते) तेरे (सेन्यम्) सेना-दल (नि वपन्तु) काट डालें ॥ ४० ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि बड़े बड़े शूर सेनापतियों की बड़ाई करके आदर करे, और जो प्रजागण आदि राजा के श्रेष्ठ गुणों की स्तुति करें, वह उन्हें प्रसन्न करे और धर्मात्माओं की रक्षा करके शत्रुओं का नाश करे॥४०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है। २। ३३। ११ ॥

मन्त्रः ४१—४३ ॥

सरस्वती देवता [ऋग्वेदे १०। १७। ७-९ यथा] ॥ ४१,'४२ निचृत् त्रिष्टुप्; ४३ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सरस्वत्यावाहनोपदेशः—सरस्वती के आवाहन का उपदेश ॥

सर॑स्वतीं देव॒यन्तो॑ हवन्ते॒ सर॑स्वतीमध्व॒रे ता॒यमा॑ने।
सर॑स्वतीं सु॒कृतो॑ हवन्ते॒ सर॑स्वती दा॒शुषे॒ वार्यं॑ दात् ॥ ४१ ॥

सर॑स्वतीम् । दे॒व॒-यन्तः॑ । हु॒व॒न्ते॒ । सर॑स्वतीम् । अ॒ध्व॒रे । ता॒य-मा॑ने ॥ सर॑स्वतीम् । सु-कृ॑तः । हु॒व॒न्ते॒ । सर॑स्वती । दा॒शुषे॑ । वार्य॑म् । दा॒त् ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को,

र्मणः स्तुततमं यानम्—निरु० ३। ५। रथे स्थितिशीलम् (जनानाम्) मनुष्याणां मध्ये (राजानम्) शोभायमानम् (भीमम्) भयङ्करम् (उपहत्नुम्) अतिहन्तारम् (उग्रम्) प्रचण्डं सेनापतिम् (मृड) सुखी भव (जरित्रे) स्तोत्र (रुद्र) हे शत्रुनाशक (स्तवानः) स्तूयमानः (अन्यम्) भिन्नम्। शत्रुम् (अस्मत्) अस्मत्तः (ते) तव (नि वपन्तु) डु वप बीजसन्ताने छेदने च। नितरां छिन्दन्तु (सेन्यम्) एकवचनं बहुवचने। सेनादलानि ॥

४१—(सरस्वतीम्) विज्ञानवतीं वेदविद्याम् (देवयन्तः) देव—क्यच्।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्तः) दिव्यगुणों को चाहने वाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुये (अध्वरे) हिंसा रहित व्यवहार में (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती लोग (हवन्ते) बुलाते हैं, (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—विज्ञानी लोग परिश्रम के साथ आदर पूर्वक वेदविद्या का अभ्यास करके पुण्य कर्म करते और मोक्ष आदि इष्ट पदार्थ पाते हैं ॥ ४१ ॥

१—मन्त्र ४१—४३। कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं १०। १७। ७-९ ॥

२—इस सूक्त का मिलान करो—अ० ७ । ६८ १ -३ ॥

३—यह तीनों मन्त्र आगे भी हैं अ० १८। ४। ४५—४७॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ४२

सरस्वतीम् । पितरः । हवन्ते । दक्षिणा । यज्ञम् । अभि-नक्षमाणाः ॥ आ-सद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् । अनमीवाः । इषः । आ । धेहि । अस्मे इति ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (दक्षिणा) सरल मार्ग में (यज्ञम्) यज्ञ [संयोगव्यवहार] को (अभिनक्षमाणाः) प्राप्त करते हुये (पितरः) पितर [पालन करने वाले विज्ञानी] लोग

देवान् श्रेष्ठगुणान् आत्मन इच्छन्तः (हवन्ते) आह्वयन्ति (सरस्वतीम्) (अध्वरे) हिंसारहिते व्यवहारे (तायमाने) विस्तार्यमाणे (सरस्वतीम्)(सुकृतः) पुण्यकर्माणः (हवन्ते) (सरस्वती) (दाशुषे) आत्मानं दत्तवते स्वभक्ताय (वार्यम्) वरणीयं स्वीकरणीयं मोक्षादिपदार्थम् (दात्) अदात् । ददाति ॥

४२—(सरस्वतीम्) विज्ञानवतीं वेदविद्याम् (पितरः) पालनशीला विज्ञानिनः (हवन्ते) आह्वयन्ति (दक्षिणा) दक्षिण-आच् । दक्षिणतः । सरल-मार्गे (यज्ञम्)संयोगव्यवहारम् (अभिनक्षमाणाः) अभितो गच्छन्तः (आसद्य)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हवन्ते) बुलाते हैं। [हे विद्वानो ! (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो, [हे सरस्वती !] (अस्मे) हम में (अनमीवाः) पीड़ा रहित (इषः) इच्छायें (आ धेहि) स्थापित कर ॥ ४२ ॥

भावार्थ--विद्वान् लोग निर्विघ्न होकर सरल रीति में सब से मिलकर वेदविद्या के प्रचार से विज्ञान की वृद्धि और इष्ट पदार्थ की सिद्धि करते हैं॥४२॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४३ ॥

सरस्वति । या । सु-रथम् । ययाथ । उक्थैः । स्वधाभिः । देवि । पितृ-भिः । मदन्ती ॥ सहस्र-अर्घम् । इडः । अत्र । भागम् । रायः । पोषम् । यजमानाय । धेहि ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [विज्ञानवती वेदविद्या] (देवि) हे देवी ! [उत्तम गुण वाली] (या) जो तू (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (सरथम्) रमणीय गुणों वाली होकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के सहित [विराजमान] (पितृभिः) पितरों [विज्ञानियों] के साथ (मदन्ती) तृप्ति होती हुयी (ययाथ) प्राप्त हुयी है। सो तू (अत्र) यहां

उपविश्य (अस्मिन्) (बर्हिषि) बृंहेर्नलोपश्च । उ० २ । १०६ । बृहि वृद्धौ—इषि । वृद्धिकर्मणि (मादयध्वम्) तर्पयत सर्वान्, हे विद्वांसः (अनमीवाः) पीडारहिताः (इषः) इच्छाः (आ धेहि) स्थापय, हे सरस्वति (अस्मे) अस्मासु ॥ ४२ ॥

४३—(सरस्वति) हे विज्ञानवति वेदविद्ये (या) या त्वम् (सरथम्) यथा भवति तथा । रमणीयगुणैः सह वर्तमाना सती (ययाथ) या प्रापणे—लिट् । प्राप्तासि (उक्थैः) वेदोक्तस्तोत्रैः (स्वधाभिः) आत्मधारणशक्तिभिः सह (देवि) हे उत्तमगुणवति (पितृभिः) पालनशीलैर्विज्ञानिभिः (मदन्ती) तृप्ता भवन्ती (सहस्रार्घम्) अर्ह पूजायाम्—घञ्, कुत्वम् । सहस्रप्रकार-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इडः) विद्या के (सहस्रार्घम्) सहस्रों प्रकार पूजनीय (भागम्) भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कारी] के लिये (धेहि) दान कर ॥ ४३ ॥

भावार्थ—आत्मविश्वासी विज्ञानी लोग वेदविद्या प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं। सब मनुष्य विद्वानों के सत्संग से वेदविद्या ग्रहण करके धन आदि की वृद्धि करें ॥ ४३ ॥

मन्त्राः ४४—४६ ॥

पितरो देवताः [ऋग्वेदे १० । १५ । १—३ यथा] ॥ ४४, ४६ निचृत् त्रिष्टुप्, ४५ त्रिष्टुप् ॥

पितृसत्कारोपदेशः—पितरों के सत्कार का उपदेश ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४॥

उत् । ईरताम् । अवरे । उत् । परासः । उत् । मध्यमाः । पितरः । सोम्यासः ॥ असुम् । ये । ईयुः । अवृकाः । ऋतज्ञाः । ते । नः । अवन्तु । पितरः । हवेषु ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—(अवरे) छोटे पद वाले (सोम्यासः) ऐश्वर्य के हितकारी, (पितरः) पितर [पालन करने वाले विद्वान्] (उत्) उत्तमता से, (परासः) ऊंचे पद वाले (उत्) उत्तमता से और (मध्यमाः) मध्य पद वाले (उत्) उत्तमता से (ईरताम्) चलें। (ये) जिन (अवृकाः) भेड़िये वा चोर का स्वभाव न रखने वाले, (ऋतज्ञाः) सत्य धर्म जानने वाले [विद्वानों] ने (असुम्) प्राण [बल वा जीवन] (ईयुः) पाया है (ते) वे (पितरः) पितर

पूजनीयम् (इडः) इडायाः । विद्यायाः (अत्र) अस्मिन् संसारे (भागम्) अंशम् (रायः) धनस्य (पोषम्) वृद्धिम् (यजमानाय) संयोगकराय विदुषे (धेहि) धारय ॥

४४—(उत्) उत्तमतया (ईरताम्) गच्छन्तु (अवरे) नीचपदस्थाः (उत्) (परासः) उच्चपदस्थाः (उत्) (मध्यमाः) मध्यपदस्थाः (पितरः) पालनशीला विद्वांसः (सोम्यासः) सोमायैश्वर्याय हिताः (असुम्) प्राणम्। बलम्। जीवनम् (ईयुः) प्रापुः (अवृकाः) वृकस्य श्वापदस्य चौरस्य वा स्वभावरहिताः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पालन करने वाले] लोग (नः) हमें (हवेषु) संग्रामों में (अवन्तु) बचावें ॥ ४४ ॥

भावार्थ—प्रधान पुरुष को चाहिये कि विद्या, कर्म और स्वभाव की योग्यता के अनुसार विद्वानों का सत्कार करे, जिस से वे लोग सब की रक्षा करने में सदा तत्पर रहें ॥ ४४ ॥

मन्त्र ४४-४६ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १५ । १, ३, २ और यजुर्वेद में १९ । ५९, ५६, ६८ और और महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पितृयज्ञ विषय में भी व्याख्यात हैं ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ४५

आ । अहम् । पितॄन् । सु-विदत्रान् । अवित्सि । नपातम् । च । वि-क्रमणम् । च । विष्णोः ॥ बर्हि-सदः । ये । स्वधया । सुतस्य । भजन्त । पित्वः । ते । इह । आ-गमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं ने (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमात्मा] से (सुविदत्रान्) बड़े ज्ञानी वा बड़े धनी (पितॄन्) पितरों [पालने वाले विद्वानों] को (च च) और भी (नपातम्) न गिरने वाली (विक्रमणम्) विविध प्रवृत्ति को (आ अवित्सि) पाया है । (ये) जिन आप (बर्हिषदः) उत्तम पद पर बैठने वालों ने (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (सुतस्य)

(ऋतज्ञाः) सत्यधर्मस्य ज्ञातारः (ते) (नः) अस्मान् (अवन्तु) रक्षन्तु (पितरः) (हवेषु) संग्रामेषु ॥

४५—(आ) समन्तात् (अहम्) प्रधानजनः (पितॄन्) पालकान् विदुषः (सुविदत्रान्) अ० १ । ३१ । ४ । सुविदेः कत्रन् । उ० ३ । १०८ । सु + विद ज्ञाने विद्लृ लाभे च—कत्रन् । उत्तमज्ञानान् । बहुधनान् (अवित्सि) विद्लृ लाभे—लुङ् । लब्धवानस्मि (नपातम्) पातरहितम् । अनश्वरम् (च) (विक्रमणम्) विविधप्रवृत्तिम् (च) अपि (विष्णोः) सर्वव्यापकात् परमेश्वरात् (बर्हिषदः) उत्तमपदस्थाः (ये) पितरः (स्वधया) स्वधारणशक्त्या (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्तस्य (भजन्त) अभजन्त । सेवनं कृतवन्तः (पित्वः) कमिमनिजनि० ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य युक्त (पित्वः) रक्षा साधन अन्न का (भजन्त) सेवन किया है, (ते) वे तुम सब (इह) यहां (आगमिष्ठाः) आये हो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—प्रधान पुरुष परमात्मा की कृपा से धर्मात्माओं के साथ कार्य कुशलता को प्राप्त करे और जो बड़े पराक्रमी विद्वान् हों, उनका उचित सत्कार करके प्रजा की रक्षा करे ॥ ४५ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः । ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥

इदम् । पितृ-भ्यः । नमः । अस्तु । अद्यः । ये । पूर्वासः । ये । अपरासः । ईयुः ॥ ये । पार्थिवे । रजसि । आ । नि-सत्ताः । ये । वा । नूनम् । सु-वृजनासु । दिक्षु ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—(इदम्) यह (नमः) अन्न (पितृभ्यः) उन पितरों [पालन करने वाले वीरों] के लिये (अद्य) आज (अस्तु) होवे, (ये) जो (पूर्वासः) पहिले [विद्वान्] होकर और (ये) जो (अपरासः) अर्वाचीन [नवीन विद्वान्] होकर (ईयुः) चले हैं। (ये) जो (पार्थिवे) भूमि विद्या [राजनीति आदि] सम्बन्धी (रजसि) समाज में (आ) आकर (निषत्ताः) बैठे हैं, (वा) और (ये) जो (नूनम्) निश्चय करके (सुवृजनासु) बड़े बल [गढ़ सेना आदि] वाली (दिक्षु) दिशाओं में हैं ॥ ४६ ॥

उ० १ । ७३ । पा रक्षणे—तु, पिभावः । पितुरित्यन्ननाम पातेर्वा पिबतेर्वा प्यायतेर्वा—निरु० ६ । २४ । रक्षासाधनस्यान्नस्य (ते) तादृशाः पितरः (इह) अत्र (आगमिष्ठाः) लुङि रूपम् । यूयम् आगताःस्थ ॥

४६—(इदम्) (पितृभ्यः) पालकेभ्यो विद्वद्भ्यः (नमः) अन्नम् (अस्तु) (अद्य) इदानीम् (पूर्वासः) पूर्वे विद्वांसः सन्तः (ये) (अपरासः) अपरे । अर्वाचीनाः । नूतना विद्वांसः (ईयुः) जग्मुः । गताः (ये) (पार्थिवे) भूमिविद्यासम्बन्धिनि । राजनीतिसम्बन्धिनि (रजसि) लोके । समाजे (आ) आगत्य (निषत्ताः) निषण्णाः । उपविष्टाः (ये) (वा) चार्थे (नूनम्) निश्चयेन (सुवृजनासु) वृजनं बलनाम—निघ० २ । ६ । शोभनं वृजनं बलं दुर्गसेनादिकं यासां तादृशीषु (दिक्षु) प्राच्यादिषु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—राजा उन वृद्ध और युवा विद्वानों का यथोचित आदर करे जो नीतिकुशल होकर भूमि सम्बन्धी अनेक विद्याओं का प्रचार करके राज्य की उन्नति करें ॥ ४६ ॥

मन्त्रः ४७ ॥

पितरो देवताः ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

पितृकर्त्तव्योपदेश—पितरों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा ववृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥

मातली । कव्यैः । यमः । अङ्गिरः-भिः । बृहस्पतिः । ऋक्व-भिः । ववृधानः ॥ यान् । च । देवाः । ववृधुः । ये । च । देवान् । ते । नः । अवन्तु । पितरः । हवेषु ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(मातली) ऐश्वर्य सिद्ध करने वाला, (यमः) संयमी और (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक पुरुष] (कव्यैः) बुद्धिमानों के हितकारी (अङ्गिरोभिः) विज्ञानी महर्षियों द्वारा (ऋक्वभिः) बड़ाई वाले कामों से (ववृधानः) बढ़ने वाला होता है। (च) और (यान्) जिन [पितरों] को (देवाः) विद्वानों ने (ववृधुः) बढ़ाया है, (च) और (ये) जिन [पितरों] ने (देवान्) विद्वानों को [बढ़ाया है], (ते) वे (पितरः) पितर [पालन करने वाले] लोग (नः) हमें (हवेषु) संग्रामों में (अवन्तु) बचावें ॥ ४७ ॥

४७—(मातली) अ० ८। ६। ५। सर्वधातुभ्य इन्। उ० ४। ११८। मा+तल प्रतिष्ठायाम्-इन्। विभक्तेः पूर्वसवर्णदीर्घः। मां लक्ष्मीं तालयति स्थापयतीति मातलिः (कव्यैः) कविभ्यो हितैः (यमः) संयमी पुरुषः (अङ्गिरोभिः) अ० २। १२। ४। अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च। उ० ४। २३६। अगि गतौ—असि, इरुडागमश्च विज्ञानिभिः। महर्षिभिः (बृहस्पतिः) बृहतीनां विद्यानां पालको जनः (ऋक्वभिः) ऋच् स्तुतौ—किप्। छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ। वा० पा० ५। २। १०२। मत्वर्थे वनिप्, छान्दसं कुत्वम्। स्तुतिमद्भिः कर्मभिः (ववृधानः) वर्धमानः (यान्) पितॄन् (च) (देवाः) विद्वांसः (ववृधुः) वर्धितवन्तः (ये) पितरः (च) (देवान्) विदुषः पुरुषान् अन्यत् पूर्ववत्—म० ४४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—ऐश्वर्य चाहने वाला जितेन्द्रिय पुरुष बड़े बड़े विद्वानों के उपदेश और वेदादि शास्त्रों के मनन से उन्नति करके संसार की रक्षा करें ॥४७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १४ । ३ और ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

मन्त्रः ४८ ॥

सोमो देवता [ऋग्वेद ६ । ४७ । १ यथा] ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

शूरवीरलक्षणोपदेशः—शूरवीर के लक्षण का उपदेश ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥

स्वादुः । किल । अयम् । मधु-मान् । उत । अयम् । तीव्रः । किल । अयम् । रस-वान् । उत । अयम् ॥ उतो इति । नु । अस्य । पपि-वांसम् । इन्द्रम् । न । कः । चन । सहते । आ-हवेषु ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(अयम्) यह [सोम अर्थात् विद्यारस वा सोमलता आदि रस] (किल) निश्चय करके (स्वादुः) बड़ा स्वादु, (अयम्) यह (मधुमान्) विज्ञान युक्त [वा मधुर गुण युक्त], (उत) और (अयम्) यह (किल) निश्चय करके (तीव्रः) तेजस्वी, (उत) और (अयम्) यह (रसवान्) उत्तम रस वाला [बड़ा वीर्यवान्] है । (उतो) और भी (नु) अब (अस्य) इस [रस] के (पपिवांसम्) पी चुकने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले शूर पुरुष] को (कः चन) कोई भी (आहवेषु) संग्रामों में (न) नहीं

४८—(स्वादुः) आस्वादनीयः (किल) निश्चयेन (अयम्) सोमः । विद्यारसः । सोमलतादिमहौषधिरसः (मधुमान्) मधुविद्योपेतः । मधुर्गुणः (उत) अपि (अयम्) (तीव्रः) तेजस्वी (किल) (अयम्) (रसवान्) बहुवीर्यवान् (उत) (अयम्) (उतो) अपि च (नु) क्षिप्रम् (अस्य) रसस्य (पपिवांसम्) पीतवन्तम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं शूरपुरुषम् (न)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सहते) हराता है ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी होकर विद्यारस को तथा परीक्षित महौषधियों के रस को चखकर तेजस्वी होते हैं, वे ही युद्धो में शत्रुओं को हराते हैं ॥ ४८ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—६ । ४७ । १ ॥

मन्त्रौ ४९, ५० ॥

यमो देवता [ऋग्वेदे १० । १४ । १,२ यथा] ॥ ४९ भुरिक् त्रिष्टुप्; ५० निचृत् त्रिष्टुप्

परमात्मशक्त्युपदेशः—परमात्म की शक्ति का उपदेश ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥४९॥

परेयि-वांसम् । प्र-वतः । महीः । इति । बहु-भ्यः । पन्थाम् । अनु-पस्पशानम् ॥ वैवस्वतम् । सम्-गमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् । हविषा । सपर्यत ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—(प्रवतः) उत्तम गति वाली (महीः) बड़ी भूमियों को (परेयिवांसम्) पराक्रम से पहुंच चुके हुये, (इति) इसी से, (बहुभ्यः) बहुत से [लोकों और जीवों] के लिये (पन्थाम्) मार्ग (अनुपस्पशानम्) गांठने वाले (वैवस्वतम्) सूर्य लोकों में विदित, (जनानाम्) मनुष्यों के (संगमनम्) मेल कराने वाले (यमम्) यम [न्यायकारी परमात्मा] (राजानम्)

निषेधे (कश्चन) कोऽपि (सहते) पराभवति (आहवेषु) संग्रामेषु ॥

४९—(परेयिवांसम्) उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च । पा० ३ । २ । १०९ । परा + इण् गतौ—क्वस्वन्तो निपातितः । परा पराक्रमेण गतवन्तम् (प्रवतः) अ० ३ । १ । ४ । उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे । पा० ५ । १ । ११८ । इति उपसर्गात् साधने धात्वर्थे वर्तमानात् स्वार्थे वतिः प्रत्ययः । प्रकृष्टगतीः (महीः) भूमिलोकान् (इति) अस्मात् कारणात् (बहुभ्यः) सर्वलोकेभ्यः प्राणिभ्यश्च (पन्थाम्) मार्गम् (अनुपस्पशानम्) स्पश बाधनग्रन्थनग्रहणसंश्लेषणेषु कानच् । अनु निरन्तरं ग्रथ्नन् प्रबध्नन् (वैवस्वतम्) तत्र विदित इति च । पा० ५ । १ । ४३ । इत्यण्, बाहुलकात् । विवस्वत्सु सूर्यलोकेषु विदितम् (संगमनम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा [शासक] को (हविषा) भक्ति के साथ (सपर्यत) तुम पूजो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा सब लोकों में व्यापक और सूर्य आदि का आकर्षक और मनुष्य आदि का नियामक है, सब लोग उस की उपासना से उन्नति करें ॥ ४६ ॥

मन्त्र ४८, ५० कुछ भेद से ऋग्वेद में–१०। १४। १, २। और ऋग्वेद पाठ महर्षिदयानन्द कृत संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः५०(५)

यमः । नः । गातुम् । प्रथमः । विवेद । न । एषा । गव्यूतिः । अप-भर्तवै । ऊं इति ॥ यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । परा-इताः । एना । जज्ञानाः । पथ्याः । अनु । स्वाः ॥ ५० ॥ (५)

भाषार्थ—(प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (यमः) यम [न्यायकारी परमात्मा] ने (नः) हमारे लिये (गातुम्) मार्ग (विवेद) जाना, (एषा) यह (गव्यूतिः) मार्ग (उ) कभी (अपभर्तवै) हटा धरने योग्य (न) नहीं है। (यत्र) जिस [मार्ग] में (नः) हमारे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितर [पालन करने वाले बड़े लोग] (परेताः) पराक्रम से चले हैं, (एना) उसी से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुये [प्राणी] (स्वाः) अपनी अपनी (पथ्याः अनु)

संगमयितारम् (जनानाम्) मनुष्याणाम् (यमम्) न्यायकारिणं परमात्मानम् (राजानम्) शासकम् (हविषा) भक्तिदानेन (सपर्यत) पूजयत ॥

५०—(यमः) न्यायकारी परमेश्वरः (नः) अस्मभ्यम् (गातुम्) मार्गम् (प्रथमः) सर्वादिमः (विवेद) विद ज्ञाने—लिट् । ज्ञातवान् (न) निषेधे (एषा) पूर्वस्थापिता (गव्यूतिः) पद्धतिः (अपभर्तवै) तुमर्थे सेसेन-से० । पा० ३ । ४ । ६ । इति तवै । अपभर्त्तुं दूरीकर्तुम् (उ) निश्चयेन (यत्र) यस्मिन् मार्गे (नः) अस्माकम् (पूर्वे) पूर्वजाः (पितरः) पालका महापुरुषाः (परेताः) पराक्रमेण गताः (एना) अनेन (जज्ञानाः) जाताः प्रणिनः (पथ्याः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़कों पर [चलें] ॥ ५० ॥

भावार्थ—परमात्मा ने पहिले से पहिले सब के लिये वेदमार्ग खोल दिया है, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने उस मार्ग पर चलकर यश पाया है, उसी वेदमार्ग पर चलकर सब मनुष्य उन्नति करें ॥ ५० ॥

मन्त्रौ ५१ । ५२ ॥

पितरो देवताः [ऋग्वेदे १० । १५ । ४, ६ यथा] ॥ ५१ विराडार्षी त्रिष्टुप्; ५२ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

पितृसन्तानकर्त्तव्योपदेशः पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्यका उपदेश ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥

बर्हि-सदः । पितरः । ऊती । अर्वाक् । इमा । वः । हव्या । चकृम । जुषध्वम् ॥ ते । आ । गत । अवसा । शम्-तमेन । अध । नः । शम् । योः । अरपः । दधात ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—(बर्हिषदः) हे उत्तम पद पर बैठने हारे (पितरः) पितरो [पालने वाले वीरो] (ऊती) रक्षा के साथ (अर्वाक्) सामने [होकर] (इमा) इन (हव्या) ग्राह्य भोजन आदि को (जुषध्वम्) सेवन करो [जिन को] (वः) तुम्हारे लिये (चकृम) हम ने बनाया है । (ते) वे तुम (शन्तमेन) अत्यन्त सुखदायक (अवसा) रक्षा के साथ (आ गत) आओ, (अध) फिर (नः) हमारे लिये (शम्) सुख, (योः) अभय और (अरपः) निर्दोष आचरण (दधात) धारण करते रहो ॥ ५१ ॥

पथे राजमार्गाय हितान् महामार्गान् (अनु) प्रति (स्वाः) स्वीयाः ॥

५१—(बर्हिषदः) उत्तमपदे सदनशीलाः (पितरः) हे पालकाः शूरवीराः (ऊती) ऊत्या । रक्षया (अर्वाक्) अभिमुखं भूत्वा (इमा) पुरोगतानि (वः) युष्मभ्यम् (हव्या) ग्राह्याणि भोजनादिवस्तूनि (चकृम) वयं संस्कृतवन्तः (ते) तादृशा यूयम् (आगत) आगच्छत (अवसा) रक्षणेन (शन्तमेन) अतिशयसुखदायकेन (अध) पुनः (नः) अस्मभ्यम् (शम् योः) शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम्—निरु० ४ । २१ । सुखं च अभयं च (अरपः) निर्दोषाचरणम् (दधात) धारयेत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—सब मनुष्य वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध पितरों का भली भांति सत्कार करें और उनसे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की शिक्षा पावें ॥ ५१ ॥

मन्त्र ५१, ५२ कुछ भेद से ऋग्वेद मे हैं १० । १५ । ४, ६ और यजुर्वेद में भी—१९ । ५५, ६२ ॥

आ॒च्या जानु॑ दक्षिण॒तो नि॒षद्ये॒दं नो॑ ह॒विर॒भि गृ॑णन्तु॒ विश्वे॑ ।
मा हिं॑सिष्ट पितरः॒ केन॑ चिन्नो॒ यद् व॒ आग॑: पुरुष॒ता करा॑म॥५२

आ-अच्य॑ । जानु॑ । दक्षिण॒तः । नि-सद्य॑ । इ॒दम् । नः॒ । ह॒विः॒ । अ॒भि । गृ॒ण॒न्तु॒ । विश्वे॑ ॥ मा । हिं॑सिष्ट । पि॒त॒रः॒ । केन॑ । चि॒त् । नः॒ । यत् । व॒ः । आग॑: । पु॒रु॒ष॒ता । करा॑म ५२

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [रक्षक विद्वानो] (विश्वे) आप सब (जानु) घुटना (आच्य) टेक कर और (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (निषद्य) बैठकर (नः) हमारे (इदम्) इस (हविः) ग्राह्य अन्न को (अभि गृणन्तु) बड़ाई योग्य करें । (वः) तुम्हारा (यत्) जो कुछ (आगः) अपराध (कराम) हम करें, (केन चित्) उस किसी [अपराध] के कारण (नः) हमें (पुरुषता) अपने पुरुषपन से (मा हिंसिष्ट) मत दुःख दो ॥ ५२ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने पिता पितामह आदि पितरों को सत्कार पूर्वक बैठा कर भोजन आदि से सेवा किया करें और अपनी भूल चूक के लिये क्षमा मांगते रहें ॥ ५२ ॥

मन्त्रः ५३ ॥

त्वष्टा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

५२—(आच्य) अधो निपात्य (जानु) जानुप्रदेशम् (दक्षिणतः) अवामपार्श्वतः (निषद्य) उपविश्य (इदम्) (नः) अस्माकम् (हविः) ग्राह्य-भोजनम् (अभि गृणन्तु) स्तुत्यं कुर्वन्तु । सुखेन स्वीकुर्वन्तु (विश्वे) सर्वे भवन्तः (मा हिंसिष्ट) दुःखिनो मा कुरुत (पितरः) हे रक्षका विद्वांसः (केन चित्) केनापि दोषेण (नः) अस्मान् (यत्) (वः) युष्माकम् (आगः) दोषम् (पुरुषता) स्वपुरुषतया । मनुष्यत्वेन (कराम) लेटि रूपम् । कुर्याम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञाननाशोपदेशः— अज्ञान के नाश का उपदेश ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।५३।

त्वष्टा । दुहित्रे । वहतुम् । कृणोति । तेन । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । सम् । एति ॥ यमस्य । माता । परि-उह्यमाना । महः । जाया । विवस्वतः । ननाश ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—(त्वष्टा) त्वष्टा [प्रकाशमान सूर्य] (दुहित्रे) दुहिता [पूर्ति करने वाली उषा] का (वहतुम्) चलाना (कृणोति) करता है, (तेन) उस [चलने] के साथ (इदम्) यह (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (सम्) ठीक ठीक (एति) चलता है। (यमस्य) यम [दिन] की (माता) माता [बनाने वाली], (महः) बड़े (विवस्वतः) प्रकाशमान सूर्य की (जाया) पत्नी रूप [रात्रि] (पर्युह्यमाना) सब ओर हटायी गयी (ननाश) छिप जाती है ॥ ५३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य उषा अर्थात् प्रभात किरणों को फैलाता जाता है, सब जगत् अपने अपने कामों में चेष्टा करता है, और जैसे जैसे दिन चढ़ता जाता है रात्रि का अन्धकार हटता जाता है, इसी प्रकार ज्ञानी पितर लोग अज्ञान हटाकर ज्ञान के प्रकाश से संसार को सुख पहुंचावें ॥ ५३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १७। १ ॥

भगवान् यास्क मुनि ने निरुक्त १२। ११ में व्याख्या की है—"त्वष्टा दुहिता का वहन [चलाना] करता है, यह सब भुवन ठीक ठीक चलता है

५३—(त्वष्टा) प्रकाशमानः सूर्यः (दुहित्रे) षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । दुहितुः । प्रपूरयित्र्या उषसः (वहतुम्) वहनम् । चालनम् । (कृणोति) करोति (तेन) पूर्वोक्तेन कर्मणा गमनेन (इदम्) विश्वम्) सर्वम् (भुवनम्) जगत् (सम्) सम्यक् (एति) गच्छति । चेष्टते (यमस्य) दिनस्य (माता) निर्मात्री । रात्रिः (पर्युह्यमाना) प्रकाशेन पर्य्युत्सार्यमाणा (महः) महतः (जाया) पत्नीरूपा रात्रिः (विवस्वतः) प्रकाशमानस्य सूर्यस्य (ननाश) लडर्थे-लिट् । नश्यति । अदृश्या भवति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यह सब प्राणी सब ओर से आकर मिलते हैं, यम की माता सब ओर को ले जायी गयी छिप गयी। रात्रि सूर्य की [पत्नी] सूर्य के उदय होने पर छिप जाती है" ॥

मन्त्रौ ५४, ५५ ॥

पितरो देवताः [ऋग्वेदे १०। १४।७, ८ यथा] ॥ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्योन्नत्युपदेशः—मनुष्य की उन्नति का उपदेश ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ५४

प्र । इहि । प्र । इहि । पथि-भिः । पूः-यानैः । येन । ते । पूर्वे । पितरः । परा-इताः ॥ उभा । राजानौ । स्वधया । मदन्तौ । यमम् । पश्यासि । वरुणम् । च । देवम् ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] तू (प्र इहि) आगे बढ़, (पूर्याणैः) नगरों को जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से (प्र इहि) आगे बढ़, (येन) जिस [कर्म] से (ते) तेरे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितर [रक्षक पिता आदि महापुरुष] (परेताः) पराक्रम से गये हैं। और (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (मन्दन्तौ) तृप्त होते हुये (उभा) दोनों (राजानौ) शोभायमान, [अर्थात्] (देवम्) प्रकाशमान (यमम्) यम [न्यायकारी परमात्मा] को (च) और (वरुणम्) वरुण [श्रेष्ठ जीवात्मा] को (पश्यासि) तू देखता रह ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि पूर्व महात्माओं के वेदोक्त मार्ग पर चल कर देश देशान्तरों में जाकर उन्नति करे और सदा परमात्मा की उपासना

५४—(प्रेहि) प्रकर्षेण गच्छ (प्रेहि) (पथिभिः) मार्गैः (पूर्याणैः) पुरो नगरान् गच्छद्भिः (येन) कर्मणा (ते) तव (पूर्वे) पूर्वजाः (पितरः) पालका महापुरुषाः (परेताः) पराक्रमेण गताः (उभा) उभौ (राजानौ) शोभायमानौ (स्वधया) स्वधारणशक्त्या (मदन्तौ) तृप्यन्तौ (यमम्) न्यायकारिणं परमात्मानम् (पश्यासि) पश्येः (वरुणम्) श्रेष्ठं जीवात्मानम् (च) (देवम्) प्रकाशमानम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जीवात्मा की दशा का चिन्तन करता रहे ॥ ५४ ॥

मन्त्र ५४, ५५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १४ । ७, ८ और दोनों का ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥

अप । इत । वि । इत । वि । च । सर्पत । अतः । अस्मै । एतम् । पितरः । लोकम् । अक्रन् ॥ अहः-भिः । अत्-भिः । अक्तु-भिः । वि-अक्तम् । यमः । ददाति । अव-सानम् । अस्मै ॥५५॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] (अतः) यहां से [इस घर वा विद्यालय आदि से] (अप इत) बाहिर चलो, (वि इत) विविध प्रकार चलो, (च) और (वि सर्पत) फैल जाओ, (अस्मै) इस [जीव के हित] के लिये (एतम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] (पितरः) पितरों [रक्षक महात्माओं] ने (अकरन्) बनाया है । (यमः) यम [न्यायकारी परमात्मा] (अस्मै) इस [समाज] को (अहोभिः) दिनों से, (अक्तुभिः) रातों से और (अद्भिः) जल [अन्न जल आदि] से (व्यक्तम्) स्पष्ट (अवसानम्) विराम [स्थिर पद] (ददाति) देता है ॥ ५५ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी लोग महापुरुषों के बनाये विद्यालय आदि से विद्या समाप्त करके विविध उद्योग करें और परमात्मा के उपकारों को विचारते हुये अपने समय और आहार विहार आदि का सुप्रयोग करके समाज को स्थिर सुख पहुंचावें ॥ ५५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में भी है—१२ । ४५ ॥

५५—(अप इत) दूरे गच्छत (वि इत) विविधं गच्छत (च) (वि सर्पत) विस्तृता भवत (अतः) अस्मात् स्थानात् (अस्मै) जीवाय (एतम्) (पितरः) पालकाः पुरुषाः (लोकम्) दर्शनीयं समाजम् (अकरन्) कृतवन्तः (अहोभिः) दिवसैः (अद्भिः) जलेन । अन्नजलादिना (अक्तुभिः) रात्रिभिः (व्यक्तम्) विशदम् (यमः) न्यायकारी परमात्मा (ददाति) (अवसानम्) विरामम् । स्थिरपदम् (अस्मै) समाजाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रौ ५६, ५७ ॥

पितरो देवताः [यजुर्वेदे १९ । ७० यथा] ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पितृसन्तानकर्त्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हुविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

उशन्तः । त्वा । इधीमहि । उशन्तः । सम् । इधीमहि ॥
उशन् । उशतः । आ । वह । पितॄन् । हुविषे । अत्तवे ॥५६॥

भाषार्थ—[हे ब्रह्मचारी !] (उशन्तः) कामना करते हुये हम (त्वा) तुझे (इधीमहि) प्रकाशित करें, (उशन्तः) अभिलाषा करते हुये हम (सम्) मिलकर (इधीमहि) तेजस्वी करें । (उशन्) कामना करता हुआ तू (उशतः) कामना करते हुये (पितॄन्) पितरों [रक्षक जनों] को (हविषे) ग्रहण करने योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) ले आ ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् माता पिता आदि बड़े लोग जितेन्द्रिय विद्वान् सभ्य सन्तान की कामना करें, वैसे ही सन्तान भी उन पितृजनों की सेवा करके गुण प्राप्त करें ॥ ५६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । १२ और यजुर्वेद में १९ । ७० और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पितृयज्ञविषय में भी व्याख्यात हैं ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हुविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

५६—(उशन्तः) कामयमानाः (त्वा) त्वां ब्रह्मचारिणम् (इधीमहि) दीपयेम । तेजस्विनं कुर्याम (उशन्तः) (सम्) एकीभावे (इधीमहि) (उशन्) कामयमानः (उशतः) कामयमानान् (आ वह) आनय (पितॄन्) पालकान् । जनकादीन् (हविषे) द्वितीयार्थे चतुर्थी । हविः । ग्राह्यं भोजनम् (अत्तवे) अत्तुं भोक्तुम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यु-मन्तः । त्वा । दुधीमहि । द्यु-मन्तः । सम् । दुधीमहि ॥ द्यु-मान् । द्यु-मतः । आ । वह । पितॄन् । हविषे । अत्तवे ५७

भाषार्थ—[हे पुत्र !] (द्युमन्तः) बड़े गति वाले हम (त्वा) तुझे (धीमहि) प्रकाशित करें, (द्युमन्तः) व्यवहार कुशल हम (सम्) एक होकर (धीमहि) तेजस्वी करें । (द्युमान्) व्यवहार कुशल तू (द्युमतः) व्यवहार कुशल (पितॄन्) पितरों [रक्षक विद्वानों] को (हविषे) ग्रहण करने योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) ले आ ॥ ५७ ॥

भावार्थ—मन्त्र ५६ के समान है ॥ ५७ ॥

मन्त्राः ५८-६१ ॥

पितरो देवताः ॥ ५८ निचृत् त्रिष्टुप्; ५९ आर्षी पङ्क्तिः; ६० त्रिष्टुप्; ६१ अनुष्टुप् ॥

पितृसन्तानकर्त्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

अङ्गिरसः । नुः । पितरः । नव-ग्वाः । अथर्वाणः । भृगवः । सोम्यासः ॥ तेषाम् । वयम् । सु-मतौ । यज्ञियानाम् । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—(नः) हमारे (अङ्गिरसः) महाविज्ञानी (पितरः) पितर [रक्षक पिता आदि बुद्धिमान् लोग] (नवग्वाः) स्तुति योग्य चरित्र वाले

५७—(द्युमन्तः) दिवु द्युतिगतिव्यवहारेषु-विच्, ततो मतुप् । दिव उत् । पा० ६ । १ । १३१ । इत्युत्त्वम् । दीप्तिमन्तः । गतिमन्तः (द्युमन्तः) व्यवहारकुशलाः (द्युमान्) व्यवहारकुशलः (द्युमतः) व्यवहारकुशलान् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५६ ॥

५८—(अङ्गिरसः) महाविज्ञानिनो महर्षयः (नः) अस्माकम् (पितरः) पालका ज्ञानिनः पुरुषाः (नवग्वाः) अ० १४ । १ । ५६ । णु स्तुतौ—अप् + गम्लृ गतौ—ड्वप्रत्ययः । नवगतयः । स्तोतव्यचरित्राः । नवीनविद्याः प्राप्ताः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वा नवीन नवीन विद्यायें प्राप्त करने और कराने हारे], (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव वाले, (भृगवः) परिपक्व ज्ञान युक्त और (सोम्यासः) ऐश्वर्य पाने योग्य [होवें]। (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) पूजनीय महापुरुषों की (अपि) ही (सुमतौ) सुमति में और (भद्रे) कल्याण करने हारी (सौमनसे) मन की प्रसन्नता में (वयम्) हम (स्याम) होवें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—सन्तानो को योग्य है कि बड़े बड़े विज्ञानी माता पिता आदि पूजनीय महात्माओं की उत्तम शिक्षा को सदा ग्रहण करें ॥ ५८ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १४ । ६ और यजुर्वेद में १९ । ५० ॥

इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध का मिलान करो—अथर्व० ६ । ५५ । ३ तथा ७ । ९५ । १ ॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

अङ्गिरः-भिः । यज्ञियैः । आ । गहि । इह । यम । वैरूपैः । इह । मादयस्व ॥ विवस्वन्तम् । हवे । यः । पिता । ते । अस्मिन् । बर्हिषि । आ । नि-सद्य ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—(यम) हे संयमी जन ! (अङ्गिरोभिः) महाविज्ञानी, (यज्ञियैः) पूजा योग्य पुरुषों के साथ (इह) यहां [समाज में] (आ गहि)

प्रापयितारश्च (अथर्वाणः) अ० ४ । १ । ७ । थर्वतिश्चरतिकर्मा—निरु० ११ । २८ । स्नामदिपद्यर्त्ति० उ० ४ । ११३ । अ + थर्व चरणे गतौ = वनिप्, वकार-लोपो वा । निश्चलस्वभावाः (भृगवः) परिपक्वज्ञानयुक्ताः (सोम्यासः) सोममैश्वर्यमर्हन्ति ये (तेषाम्) (वयम्) (सुमतौ) कल्याणबुद्धौ (यज्ञिया-नाम्) पूजार्हाणाम् (अपि) (भद्रे) मङ्गलप्रदे (सौमनसे) सुमनसो भावे । प्रसादे (स्याम) भवेम ॥

५९—(अङ्गिरोभिः) महाविज्ञानिभिः (यज्ञियैः) पूजार्हैः (आ गहि) आगच्छ (इह) अस्मिन् समाजे (यम) हे संयमिन् पुरुष (वैरूपैः) अ०१५ । २ । १६ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू आ, और (वैरूपैः) विविध पदार्थों के निरूपण करने वाले वेद ज्ञानों से (इह) यहां (मादयस्व) [हमें] तृप्त कर। (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम पद पर (आ) भले प्रकार (निषद्य) बैठकर (विवस्वन्तम्) प्रकाशमय परमात्मा को (हुवे) मैं बुलाता हूं, (यः) जो (ते) तेरा (पिता) पालक है ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष विविध विद्वानों के सत्संग से अनेक विद्यायें प्राप्त करके वेदाभ्यास द्वारा परमात्मा का विचार करें ॥५६॥

मन्त्र ५६, ६० कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं-१०। १४। ५, ४ और दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्दकृतसंस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ६०

इमम् । यम । प्र-स्तरम् । आ । हि । रोह । अङ्गिरः-भिः । पितृ-भिः । सम्-विदानः॥ आ । त्वा । मन्त्राः। कवि-शस्ताः। वहन्तु । एना । राजन् । हविषा । मादयस्व ॥ ६० ॥

भाषार्थ—(यम) हे संयमी पुरुष ! (अङ्गिरोभिः) महाविज्ञानी (पितृभिः) पितरों [रक्षक लोगों] से (हि) ही (संविदानः) मिला हुआ तू (इमम्) इस (प्रस्तरम्) विस्तीर्ण आसन पर (आ रोह) ऊंचा हो। (त्वा) तुझे (मन्त्राः) मन्त्र कुशल [बड़े विचारशील] (कविशस्ताः)

विरूप—अण । विविधपदार्थानां रूपं निरूपणं येभ्यः सकाशात् तैर्वेदज्ञानैः (इह) (मादयस्व) अस्मान् तर्पयस्व (विवस्वन्तम्) प्रकाशमयं परमात्मानम् (हुवे) आह्वयामि (यः) (पिता) पालकः (ते) तव (अस्मिन्) (बर्हिषि) उत्तमे पदे (आ) समन्तात् (निषद्य) उपविश्य ॥

६०—(इमम्) (यम) हे संयमिन् पुरुष (प्रस्तरम्) विस्तीर्णमासनम् (हि) निश्चयेन (आ रोह) आरूढो भव (अङ्गिरोभिः) महाविज्ञानिभिः (पितृभिः) पालकैः (संविदानः) संगच्छमानः (त्वा) शूरम् (मन्त्राः) मन्त्र-अर्शआद्यच् । मन्त्रकुशलाः । महाविचारशीलाः (कविशस्ताः) मेधाविष

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों में श्रेष्ठ पुरुष (आ वहन्तु) बुलावें (राजन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (एना) इस (हविषः = हविषा) भक्तिदान से (मादयस्व) [हमें] प्रसन्न करे ॥ ६० ।

भावार्थ—जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी पुरुष विद्वानों के मेल से उच्च पद प्राप्त करें और अपने शुभ गुण और पराक्रम से सब प्रजा को सदा प्रसन्न रक्खें ॥ ६० ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥ (६)

इतः । एते । उत् । आ । अरुहन् । दिवः । पृष्ठानि । आ । अरुहन् ॥ प्र । भूः-जयः । यथा । पथा । द्याम् । अङ्गिरसः । ययुः ॥ ६१ ॥ (६)

भाषार्थ—(एते) यह [पितर लोग] (इतः) इस [सामान्य दशा] से (उत्) उत्तमता के साथ (आ अरुहन्) ऊंचे चढ़े हैं, और (दिवः) व्यवहार के (पृष्ठानि) पूछने योग्य स्थानों पर (आ अरुहन्) ऊंचे चढ़े हैं। (भूर्जयः यथा) भूमि जीतने वालों के समान (पथा) सन्मार्ग से (अङ्गिरसः) विज्ञानी महर्षि लोग (द्याम्) प्रकाश को (प्र) अच्छे प्रकार (ययुः) प्राप्त हुये हैं ॥ ६१ ।

भावार्थ—बड़े बड़े महात्मा ब्रह्मचर्य आदि तप के साथ विद्या ग्रहण करके सामान्य अवस्था से ऊंचे हुये हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य परिश्रम और

प्रशस्ताः (आ वहन्तु) आनयन्तु (एना) एनेन । अनेन (राजन्) ऐश्वर्यवन् (हविषः) तृतीयार्थे षष्ठी । हविषा । भक्तिदानेन (मादयस्व) अस्मान् प्रसादय ॥

६१—(इतः) अस्मात्) स्थानात् । सामान्यदशासकाशात् (एते) पितरः (उत्) उत्तमतया (आ अरुहन्) आरूढा अभवन् (दिवः) व्यवहारस्य (पृष्ठानि) प्रष्टव्यानि स्थानानि (आ अरुहन्) (प्र) प्रकर्षेण (भूर्जयः) भू सत्तायाम्—रुक् । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । पा० । ३ । २ । ७५ । जि जयै—विच् । भूर्भुवो भूमेर्जेतारः (यथा) सादृश्ये (पथा) सन्मार्गेण (द्याम्) विद्याप्रकाशम् (अङ्गिरसः) महाविज्ञानिनः (ययुः) प्रापुः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग करके सदा उन्नति करें ॥ ६१ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में है-पू० १ । १० । २ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २ [मन्त्राः १-६०] ॥

मन्त्राः १—३ ॥

यमो देवता ॥ १, ३, अनुष्टुप्; २ विराट् पथ्या बृहती ॥

ईश्वरभक्त्युपदेशः—ईश्वर की भक्ति का उपदेश ॥

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

यमाय । सोमः । पवते । यमाय । क्रियते । हविः ॥ यमम् । ह । यज्ञः । गच्छति । अग्नि-दूतः । अरम्-कृतः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यमाय) यम [सर्वनियन्ता परमात्मा] के लिये (सोमः) ऐश्वर्यवान् [जीवात्मा] (पवते) अपने को शुद्ध करता है, (यमाय) यम [न्यायकारी ईश्वर] के लिये (हविः) भक्तिदान (क्रियते) किया जाता है । (यमम्) यम [परमेश्वर] को (ह) ही (यज्ञः) संगति वाला संसार (गच्छति) चलता है, [जैसे] (अरंकृतः) पर्याप्त किया हुआ (अग्निदूतः) अग्नि से तपाया हुआ [जल आदि रस ऊपर जाता है] ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से ईश्वर भक्ति करके ऐश्वर्यवान् होवें । वह परमात्मा इतना बड़ा है कि यह सब संसार उसी की आज्ञा में

१—(यमाय) सर्वनियामकाय । न्यायकारिणे परमात्मने (सोमः) ऐश्वर्ययुक्तो जीवात्मा (पवते) आत्मानं शोधयति (यमाय) (क्रियते) अनुष्ठीयते (हविः) हु दानादानादनेषु—इसि । भक्तिदानम् (यमम्) परमेश्वरम् (ह) एव (यज्ञः) संयोगं प्राप्तः संसारः (गच्छति) प्राप्नोति (अग्निदूतः) टु दु उपतापे—क्त, दीर्घः । अग्निना परितापिता जलादिरसो यथा (अरंकृतः) पर्याप्तीकृतः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता है, जैसे अग्नि के पूरे ताप से भाप ऊंचा उठता है ॥ १ ॥

मन्त्र १—३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १४। १३, १५, १४। ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्दकृतसंस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

यमाय । मधुमत्-तमम् । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत ॥ इदम् । नमः । ऋषि-भ्यः । पूर्वजेभ्यः । पूर्वेभ्यः । पथिकृत्-भ्यः ॥२॥

भाषार्थ—(यमाय) यम [सर्वनियन्ता परमात्मा] के लिये (मधुमत्तमम्) अत्यन्त विज्ञान युक्त कर्म (जुहोत) तुम दान करो, (च) और (प्र तिष्ठत) प्रतिष्ठा पावो (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (पूर्वेभ्यः) पहिले [पूर्ण विद्वान्], (पथिकृद्भ्यः) मार्ग बनाने वाले (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज (ऋषिभ्यः) ऋषियों [महाज्ञानियों] को है ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य विज्ञान पूर्वक उस जगदीश्वर को आत्मसमर्पण करके संसार में प्रतिष्ठा पावें और जो महर्षि वेदानुकूल ग्रन्थ रचना और शिक्षा करें, उस से सुधार करके उनका उद्देश्य पूरा करें ॥ २ ॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

यमाय । घृत-वत् । पयः । राज्ञे । हविः । जुहोतन ॥ सः । नः । जीवेषु । आ । यमेत् । दीर्घम् । आयुः । प्र । जीवसे ॥३॥

२—(यमाय) सर्वनियामकाय परमात्मने (मधुमत्तमम्) मन ज्ञाने-उ, नस्य धः, तमप् । अतिशयेन विज्ञानयुक्तं कर्म (जुहोत) जुहुत । समर्पयत (च) (प्र तिष्ठत) प्रतिष्ठां प्राप्नुत (इदम्) (नमः) सत्कारः (ऋषिभ्यः) वेदार्थदर्शकेभ्यः (पूर्वजेभ्यः) प्रथमोत्पन्नेभ्यः (पूर्वेभ्यः) प्रथमेभ्यः । पूर्णविद्वद्भ्यः (पथिकृद्भ्यः) सन्मार्गकर्तृभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यमाय राज्ञे) यम राजा [न्यायकारी शासक परमेश्वर] के लिये (घृतवत्) प्रकाशयुक्त (पयः) विज्ञान और (हविः) भक्ति दान का (जुहोतन) तुम दान करो। (सः) वह [परमात्मा] (नः) हमें (जीवेषु) जीवों के बीच (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (प्र) उत्तम (जीवसे) जीवन के लिये (आ यमेत्) देवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विज्ञानपूर्वक परमात्मा की आज्ञा मानकर ब्रह्मचर्य आदि से आप चलते और दूसरों को चलाते हैं, वे अपना जीवन बढ़ाकर शुभ कर्म से यश पाते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्राः ४—१० ॥

अग्निर्देवता ॥ ४, ७ निचृज् जगती, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप्; ८ त्रिष्टुप्; ९ भुरिगार्षी जगती; १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥

आचार्यब्रह्मचारिकृत्योपदेशः—आचार्य और ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

मैनंमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् । भृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥ ४ ॥

मा । एनम् । अग्ने । वि । दहः । मा । अभि । शुशुचः । मा । अस्य । त्वचम् । चिक्षिपः । मा । शरीरम् ॥ भृतम् । यदा । करसि । जातवेदः । अथ । ईम् । एनम् । प्र । हिणुतात् । पितॄन् । उप ॥ ४ ॥

३—(यमाय) न्यायकारिणे परमात्मने (घृतवत्) प्रकाशयुक्तम् (पयः) पय गतौ—असुन् । विज्ञानम् (राज्ञे) सर्वशासकाय (हविः) भक्तिदानम् (जुहोतन) जुहुत । समर्पयत (सः) परमात्मा (नः) अस्मभ्यम् (जीवेषु) जीवत्सु प्राणिषु (आ यमेत्) प्रयच्छेत् । दद्यात् (दीर्घम्) (आयुः) जीवनम् (प्र) प्रकृष्टाय (जीवसे) जीवनाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! [आचार्य] (एनम्) इस [ब्रह्मचारी] को (वि) विपरीत भाव से (मा दहः) मत जला [मत कष्ट दे] और (मा अभि शूशुचः) मत शोक में डाल, (मा) न (अस्य) इसकी (त्वचम्) त्वचा को और (मा) न (शरीरम्) शरीर को (चिक्षिपः) गिरने दे। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले [आचार्य !] (यदा) जब [इसे] (शृतम्) परिपक्व [बड़ा ज्ञानी] (करसि) तू कर लेवे, (अथ) तब (ईम्) ही (एनम्) इस [शिष्य] को (पितॄन् उप) पितरों [रक्षक विद्वानों] के पास (प्र) अच्छे प्रकार (हिनुतात्) तू भेज ॥ ४ ॥

भावार्थ—आचार्य शिष्यों को विपरीत भाव से मानसिक वा शारीरिक कष्ट कदापि न देवे, किन्तु कोमल भाव से उन्हें पक्का ज्ञानी बनावे, जिस से वे विद्वान् लोगों में प्रतिष्ठा पावें ॥ ४ ॥

मन्त्र ४, ५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १६ । १, २ ॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

यदा । शृतम् । कृणवः । जात-वेदः । अथ । इमम् । एनम् । परि । दत्तात् । पितृ-भ्यः ॥ यदो इति । गच्छाति । असु-नीतिम् । एताम् । अथ । देवानाम् । वशु-नीः । भवाति ५

४—(एनम्) ब्रह्मचारिणम् (अग्ने) हे विद्वन् आचार्य (वि) विपरीतभावेन (मा दहः) दहनं मा कुरु । कष्टं मा देहि (अभि) (मा शूशुचः) शुच शोके—णिचि लुङ् । शोकयुक्तं मा कुरु (अस्य) ब्रह्मचारिणः (त्वचम्) (मा चिक्षिपः) क्षिप प्रेरणे—णिचि लुङ् । मा विकिर (मा) निषेधे (शरीरम्) (शृतम्) श्रा पाके—क्त । शृतं पाके । पा०—६ । १ । २७ । इति शृभावः । परिपक्वम् । दृढज्ञानयुक्तम् (यदा) (करसि) लेटि रूपम् । त्वं कुर्याः (जातवेदः) हे प्रसिद्धप्रज्ञ (अथ) अनन्तरम् (ईम्) एव (एनम्) ब्रह्मचारिणम् (प्र) प्रकर्षेण (हिनुतात्) त्वंहिनु । प्रेरय (पितॄन्) पालकान् पुरुषान् (उप) प्रति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ--(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले ! [आचार्य] (यदा) जब (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (श्रुतम्) [दृढ़ ज्ञानी] (कृणवः) तू कर लेवे, (अथ) तब (एनम्) इस [परिश्रमी] को (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक विद्वानों] को (परि दत्तात्) तू दे दे । (यदो) जब ही वह (एताम्) इस(असुनीतिम्) बुद्धि के साथ नीति [उन्नति मार्ग] को (गच्छाति) पावे, (अथ) तब वह (देवानाम्) दिव्य पदार्थों का (वशनीः) वश में लाने वाला (भवाति) होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ--जब ब्रह्मचारी आचार्य से शिक्षा पाकर विद्वानों में गिना जावे. तब वह अपनी बुद्धि और विद्या के बल से संसार के स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों के परीक्षण से उपकार करे ॥ ५ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

त्रि-कद्रुकेभिः । पवते । षट् । उर्वीः । एकम् । इत् । बृहत् ॥
त्रि-स्तुप् । गायत्री । छन्दांसि । सर्वा । ता । यमे । आर्पिता ६

भाषार्थ—(एकम् इत्) एक ही (बृहत्) बड़ा [ब्रह्म] (त्रिकद्रुकेभिः) तीन [संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय] के विधानों से (षट्) छह

५—(यदा) (श्रुतम्) म० ४ । परिपक्वं दृढज्ञानिनम् (कृणवः) कृवि हिंसाकरणयोः--लेटि अडागमः । त्वंकुर्याः (जातवेदः) हे प्रसिद्धज्ञान (अथ) तदा (इमम्) ब्रह्मचारिणम् (एनम्) परिश्रमिणं शिष्यम् (परिदत्तात्) समर्पय (पितृभ्यः) रक्षकविद्वद्भ्यः (यदो) यदा हि (गच्छाति) स प्राप्नुयात् (असुनीतिम्) असुः प्रज्ञानाम-निघ० ३ । ९ । प्रज्ञया सह नीतिमुन्नतिमार्गम् (एताम्) प्रसिद्धां वेदविहिताम् (अथ) तदा (देवानाम्) उत्तमपदार्थानाम् (वशनीः) वशे नेता (भवाति) भूयात् ॥

६—(त्रिकद्रुकेभिः) अ० २ । ५ । ७ । रुशातिभ्यां कुन् । उ० ४ । १०३ । त्रि + कद आह्वाने—कुन्, समासान्तः कप् । त्रयाणां संसारोत्पत्तिस्थितिविना-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उर्वीः) चौड़ी दिशाओं को (पवते) शोधता है। (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (गायत्री) गायत्री और (ता) वे [दूसरे] (सर्वा) सब (छन्दांसि) छन्द [वेद मन्त्र] (यमे) यम [न्यायकारी परमात्मा] में (आर्पिता) ठहरे हुये हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची और ऊंची दिशा में व्यापक है, और सब छन्द अर्थात् चारों वेद उसी परमात्मा का गान करते हैं, हे मनुष्यो! उसी की उपासना करके अपनी उन्नति करो ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । १४ । १६ ॥

सूर्यं॑ चक्षु॒षा ग॑च्छ वा॒तमा॒त्मना॑ दि॒वं च॑ गच्छ पृथि॒वीं च॒ धर्म॑भिः । अ॒पो वा॑ गच्छ॒ यदि॒ तत्र॑ ते हि॒तमो॑ष॒धीषु॒ प्रति॑ तिष्ठा॒ शरी॑रैः ॥ ७ ॥

सूर्य॑म् । चक्षु॑षा । ग॒च्छ॒ । वात॑म् । आ॒त्मना॑ । दिव॑म् । च॒ । ग॒च्छ॒ । पृ॒थि॒वीम् । च॒ । धर्म॑-भिः॥ अ॒पः । वा॒ । ग॒च्छ॒ । यदि॑ । तत्र॑ । ते॒ । हि॒तम् । ओ॒ष॒धीषु । प्रति॑ । ति॒ष्ठ॒ । शरी॑रैः॥७

भाषार्थ—[हे जीव !] तू (सूर्यम्) सूर्य [तत्त्व] को (चक्षुषा) नेत्र से, (वातम्) वायु को (आत्मना) प्राण से (गच्छ) प्राप्त हो, (च) और (धर्मभिः) धर्मों [उनके धारण गुणों] से (दिवम्) आकाश को (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी को (गच्छ) प्राप्त हो (वा) और (अपः) जल को

शानां कद्रुकैः, आह्लानैर्विधानैः (पवते) पुनाति । शोधयति (षट्) प्राच्यदिक्षट्संख्याकाः (उर्वीः) विस्तीर्णा दिशाः (एकम्) अद्वितीयम् (इत्) एव (बृहत्) ब्रह्म (त्रिष्टुप्) छन्दोविशेषः (गायत्री) छन्दोविशेषः (छन्दांसि) वेदमन्त्राः (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि । इतराणि (यमे) न्यायकारिणि परमात्मनि (आर्पिता) स्थापितानि ॥

७—(सूर्यम्) सूर्यतत्त्वम् (चक्षुषा) नेत्रविज्ञानेन (गच्छ) प्राप्नुहि । जानीहि (वातम्) वायुतत्त्वम् (आत्मना) प्राणेन (दिवम्) आकाशतत्त्वम् (च) (गच्छ) (पृथिवीम्) पृथिवीतत्त्वम् (च) (धर्मभिः) तेषां धारणगुणैः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गच्छ) प्राप्त हो, और (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न आदिकों] में (शरीरैः) [उनके] अङ्गों सहित (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा पा, (यदि) क्योंकि (तत्र) वहां [उन सब में] (ते) तेरा (हितम्) हित है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य नेत्र आदि इन्द्रियों की रचना और उपकारों से सूर्य आदि के तत्त्वों को जानकर विज्ञान द्वारा अन्न आदि पदार्थों और उनके अङ्गों से अपना और संसार का भला करते हैं वे ही सर्वहितकारी होते हैं ॥ ७॥

मन्त्र ७, ८ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं-१०। १६। ३, ४ और ऋग्वेद पाठ महर्षिदयानन्दकृतसंस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८

अजः । भागः । तपसः । तम् । तपस्व । तम् । ते । शोचिः । तपतु । तम् । ते । अर्चिः ॥ याः । ते । शिवाः । तन्वः । जात-वेदः । ताभिः । वहु । एनम् । सु-कृताम् । ऊं इति । लोकम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—[हे जीव !] (अजः) अजन्मा [वा गतिमान् जीवात्मा] (तपसः=तपसा) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] से (भागः) सेवनीय है, (तम्) उसे (तपस्व) प्रतापी कर, (तम्) उसे (ते) तेरा (शोचिः) पवित्र कर्म और (तम्) उसे (ते) तेरा (अर्चिः) पूजनीय व्यवहार (तपतु) ऐश्वर्य युक्त करे। (जातवेदः) हे बड़े विद्वान् ! (याः) जो (ते) तेरी (शिवाः)

(अपः) जलम् (वा) च (गच्छ) (यदि) यतः (तत्र) तेषु पूर्वोक्तेषु (ते) तव (हितम्) इष्टम् (ओषधीषु) व्रीहियवादिषु (प्रतितिष्ठ) प्रतिष्ठितो भव (शरीरैः) अवयवैः ॥

८—(अजः) न जायते, जन—ड, यद्वा, अज गतिक्षेपणयोः—अच्। अजा अजनाः—निरु० ४। २५। अजन्मा। गतिमान्। जीवात्मा (भागः) सेवनीयः (तपसः) तृतीयार्थे षष्ठी। तपसा। ब्रह्मचर्यसेवनेन वेदाध्ययनेन च (तम्) जीवात्मानम् (तपस्व) तप सन्तापे ऐश्वर्ये च। प्रतापिनं कुरु (तम) (ते) तव (शोचिः) शुच शौचे—इसि। शौचं पवित्रकर्म (तपतु) ऐश्वर्यवन्तं करोतु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणकारी (तन्वः) उपकार शक्तियां हैं, (ताभिः) उनसे (एनम्) इस [जीवात्मा] को (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक [समाज] में (उ) अवश्य (वह) लेजा ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य सेवन, वेदाध्ययन और शुभ आचरण से आत्मवान् होकर उपकारी होवें, वे ही पुण्यात्माओं में गिने जावें ॥ ८ ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् । अजं यन्तमनु ताः सं ऋवतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ८ ॥

याः । ते । शोचयः । रंहयः । जातवेदः । याभिः । आ-पृणासि दिवम् । अन्तरिक्षम् ॥ अजम् । यन्तम् । अनु । ताः । सम् । ऋवताम् । अथ । इतराभिः । शिवतमाभिः । शृतम् । कृधि ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(जातवेदः) हे बड़े विद्वान् ! [मनुष्य] (याः) जो (ते) तेरी (शोचयः) पवित्र क्रियायें और (रंहयः) वेग क्रियायें हैं और (याभिः) जिन [क्रियाओं] से (दिवम्) व्यवहार कुशल [वा गतिमान्] (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती हृदय को (आपृणासि) तू सब ओर से पूर्ण करता है । (ताः) वे [सब क्रियायें] (यन्तम्) चलते हुये (अजम् अनु) अजन्मे [वा गतिशील

(तम्) (ते) (अर्चिः) अर्च पूजायाम्—इसि । पूजनीयव्यवहारः (याः) (ते) तव (शिवाः) सुखकराः (तन्वः) तन उपकारे—ऊ । उपकारशक्तयः (जातवेदः) हे प्रसिद्धज्ञान । महाविद्वन् (ताभिः) उपकारशक्तिभिः (वह) प्रापय (एनम्) जीवात्मानम् (सुकृताम्) पुण्यकर्मणाम् (उ) अवश्यम् (लोकम्) समाजम् ॥

८—(याः) (ते) तव (शोचयः) शुचिक्रियाः (रंहयः) रहि गतौ—इप्रत्ययः । वेगक्रियाः (जातवेदः) हे प्रसिद्धज्ञान महाविद्वन् (याभिः) पूर्वोक्ताभिः (आपृणासि) समन्तात् पूरयसि (दिवम्) दिवु व्यवहारे गतौ च—क । व्यवहारकुशलम् । गतियुक्तम् (अन्तरिक्षम्) मध्ये दृश्यमानं हृदयम् (अजम्) अजन्मानं गतिमन्तं वा जीवात्मानम् (यन्तम्) इण् गतौ—शतृ । गच्छन्तम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा] के अनुकूल होकर (सम्) ठीक ठीक (ऋणवताम्) चलें, (अथ) फिर तू (इतराभिः) दूसरी [ईश्वर की प्राप्ति वाली] (शिवतमाभिः) अत्यन्त कल्याणकारी [क्रियाओं] से [जीवात्मा] को (श्रुतम्) परिपक्व (कृधि) कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी शुद्ध और वेग वाली वृत्तियों को व्यवहार कुशल वा गतिमान् मन में ठहराकर पुरुषार्थी जीवात्मा को खोजते हैं, वे ही फिर परमात्मा को पाकर पक्के ज्ञानी होते हैं ॥ ९ ॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः॥१०॥ (७)

अव । सृज । पुनः । अग्ने । पितृ-भ्यः । यः । ते । आ-हुतः ।
चरति । स्वधा-वान् ॥ आयुः । वसानः । उप । यातु । शेषः ।
सम् । गच्छताम् । तन्वा । सु-वर्चाः ॥ १० ॥ (७)

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (पुनः) बारम्बार (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महापुरुषों] को [अपने आत्मा का] (अव सृज) दान कर, (यः) जो [आत्मा] (ते) तुझ को (आहुतः) यथावत् दिया हुआ (स्वधावान्) अपनी धारण शक्ति वाला (चरति) विचरता है । (शेषः) विशेष गुणी [वह आत्मा] (आयुः) जीवन (वसानः) धारण करता हुआ (उप यातु) आवे और (सुवर्चाः) बड़ा तेजस्वी होकर (तन्वा) उपकार शक्ति के साथ

(ताः) पूर्वोक्ताः क्रियाः (ऋणवताम्) ऋण गतौ-लोट् । गच्छन्तु (अथ) पुनः । जीवात्मप्राप्तिपश्चात् (इतराभिः) जीवात्मभिन्नाभिः परमात्मप्राप्ति-क्रियाभिः (शिवतमाभिः) अत्यन्तसुखकराभिः (श्रुतम्) परिपक्वज्ञानम् (कृधि) कुरु—जीवात्मानमिति शेषः ॥

१०—(अव सृज) त्यज । देहि—स्वात्मानमिति शेषः (पुनः) वारंवारम् (अग्ने) हे विद्वन् (पितृभ्यः) रक्षकमहापुरुषाणां हिताय (यः) आत्मा (ते) तुभ्यम् (आहुतः) समन्ताद् दत्तः (चरति) गच्छति (स्वधावान्) स्वधारणशक्तिमान् (आयुः) जीवनम् (वसानः) दधानः (उपयातु) आ-गच्छतु (शेषः) शिषलु विशेषणे—अच् । विशेषगुणी (संगच्छताम्) (तन्वा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सं गच्छताम्) मिलता रहे ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों की सेवा और परोपकार में स्वविश्वासी होकर विचरे और अपने जीवन को विशेष गुणी बनाकर लोक परलोक में कीर्त्ति पावे ॥ १० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १६। ५। और महर्षि दयानन्द-कृत संस्कारविधिअन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

मन्त्राः ११—१३ ॥

श्वानौ देवते ॥ ११, १२ त्रिष्टुप् ; १३ विराड् जगती ॥

कालस्य सुप्रयोगोपदेशः—समय के सुप्रयोग का उपदेश ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ११

अति । द्रव । श्वानौ । सारमेयौ । चतुः-अक्षौ । शबलौ । साधुना । पथा ॥ अध । पितॄन् । सु-विदत्रान् । अपि । इहि । यमेन । ये । सध-मादम् । मदन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थ—[हे जीव !] तू (सारमेयौ) सार कर्मों से प्रमाण करने योग्य, (चतुरक्षौ) चार दिशाओं में व्यापक, (शबलौ) चितकबरे (श्वानौ) दो चलने वाले [राति दिन] को (साधुना) धर्म के साधने वाले (पथा) मार्ग से (अति) पार करके (द्रव) चल। (अध) तब (सुविदत्रान्) बड़े ज्ञानी (पितॄन्) पितरों [रक्षक महापुरुषों] को (अपि) निश्चय करके (इहि)

उपकारशक्त्या (सुवर्चाः) महातेजस्वी ॥

११—(अति) अतीत्य (द्रव) गच्छ (श्वानौ) श्वन्युक्तनूषन्० । उ० १। १५६। टु ओ श्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन्। गमनशीलौ रात्रिदिवसौ (सारमेयौ) सार+माङ् माने—यत्। ईद्यति। पा० ६। ४। ६५। इति ईत्त्वम्। सारकर्मभिः प्रमेयौ प्रतिपादनीयौ बोधनीयौ (चतुरक्षौ) अक्षू व्याप्तौ-अच्। चतसृषु दिक्षु व्यापकौ (शबलौ) कर्बूरवर्णौ । श्यामश्वेतौ (साधुना) साध संसिद्धौ-उण्। धर्मसाधकेन (पथा) मार्गेण (अध) अथ। अनन्तरम् (पितॄन्) पालकान् महापुरुषान् (सुविदत्रान्) महाज्ञानान् (अपि) अवश्यम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो, (ये) जो [पितर] (यमेन) न्यायकारी परमात्मा के साथ (सधमादम्) मिले हुये हर्ष को (मदन्ति) भोगते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य गमनशील समय का धर्म मार्ग में सुप्रयोग करते हैं, वे महाविद्वानों के समान परमात्मा से मिलकर मोक्ष सुख भोगते हैं ॥ ११ ॥

मन्त्र ११—१३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १४। १०—१२ ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदौ नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥१२॥

यौ । ते । श्वानौ । यम् । रक्षितारौ । चतुः-अक्षौ । पथि-षदौ इति पथि-सदौ । नृ-चक्षसा ॥ ताभ्याम् । राजन् । परि । धेहि । एनम् । स्वस्ति । अस्मै । अनमीवम् । च । धेहि ।१२

भाषार्थ—(यम) हे संयमी मनुष्य ! (यौ) जो (चतुरक्षौ) चारो दिशाओं में व्यापक, (पथिषदौ) मार्ग में बैठने वाले, (नृचक्षसा) नेता पुरुषों से देखने योग्य (श्वानौ) दो चलने वाले [राति दिन] (ते) तेरे (रक्षितारौ) दो रक्षक हैं। (राजन्) हे ऐश्वर्यवान् जीव ! (ताभ्याम्) उन दोनों [राति दिन] को (एनम्) यह [अपना आत्मा] (परि धेहि) सौंप दे, और (अस्मै) इस [अपने आत्मा] को (स्वस्ति) सुन्दर सत्ता [बड़ा कल्याण] (च) और (अनमीवम्) नीरोगता (धेहि) दे ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम पूर्ण भक्ति से अपने समय को धर्म में

(इहि) प्राप्नुहि (यमेन) न्यायकारिणा परमात्मना (ये) पितरः (सधमादम्) सहहर्षम् (मदन्ति) हर्षन्ति । सेवन्ते ॥

१२—(यौ) रात्रिदिवसौ (ते) तव (श्वानौ) म० ११ । गमनशीलौ (यम) हे संयमिन् जीव (रक्षितारौ) रक्षकौ (चतुरक्षौ) म० ११ । चतसृषु दिक्षु व्यापकौ (पथिषदौ) षदॢ विशरणगत्यवसादनेषु—इन् । मार्गे सीदन्तौ व्यापकौ (नृचक्षसा) नेतृमनुष्यैर्द्रष्टव्यौ (ताभ्याम्) रात्रिदिवसाभ्याम् (राजन्) ऐश्वर्यवन् पुरुष (परि धेहि) डुधाञ् दाने । समर्पय (एनम्) स्वात्मानम् (स्वस्ति) सुसत्ताम् । महत्कल्याणम् (अस्मै) स्वात्मने (अनमीवम्) नैरोग्यम् (च) (धेहि) देहि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाओगे, तो तुम नीरोग रह कर सदा आनन्द भोगोगे ॥ १२ ॥

उरुणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥

उरु-नसौ । असु-तृपौ । उदुम्बलौ । यमस्य । दूतौ । चरतः । जनान् । अनु ॥ तौ । अस्मभ्यम् । दृशये । सूर्याय । पुनः । दातास् । असुम् । अद्य । इह । भद्रम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(यमस्य) संयमी पुरुष के (दूतौ) उत्तेजक (उरुणसौ) बड़ी गति वाले, (असुतृपौ) बुद्धि को तृप्त करने वाले, (उदुम्बलौ) दृढ़ बल वाले दोनों [रात्रि दिन] (जनान् अनु) मनुष्यों में (चरतः) विचरते हैं । (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (सूर्याय दृशये) सर्वप्रेरक परमात्मा के देखने के लिये (अद्य) अब (इह) यहां पर (असुम्) बुद्धि और (भद्रम्) आनन्द (पुनः) बारम्बार (दाताम्) देते रहें ॥ १३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य समय के लक्षणों को पूरा विचार कर ऐसा प्रयत्न करें कि वे दोनों रात्रि दिन अपने लिये बुद्धि और आनन्द बढ़ाते रहें ॥ १३ ॥

मन्त्राः १४—१८॥

यमो देवता ॥ १४—१८ अनुष्टुप् छन्दः ॥

विद्वत्संगत्या वृद्ध्युपदेशः—विद्वानों के सत्संग से बढ़ती का उपदेश ॥

१३—(उरुणसौ) णस कौटिल्ये गतौ च—क्विप् । नसतेर्गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । विस्तीर्णगतिमन्तौ (असुतृपौ) प्रज्ञातर्पकौ (उदुम्बलौ) उड संहतौ सौ० धा०—कु, डस्य दः, यद्वा उन्दी क्लेदने—कु+बल संवरणे—खच् । संहतबलौ । दृढबलौ । रात्रिदिवसौ (यमस्य) संयमिनः पुरुषस्य (दूतौ) दुतनिभ्यां दीर्घश्च । उ०३।८०। दु दु उपतापे, यद्वा, दु गतौ—क्त । उपतापकौ । उत्तेजकौ (चरतः) विचरतः (जनान्) मनुष्यान् (अनु) अनुलक्ष्य (तौ) तादृशौ रात्रिदिवसौ (अस्मभ्यम्) (दृशये) इगुपधात् कित् । उ० ४ । १२० । दृशिर् प्रेक्षणे—इप्रत्ययः, कित् । दर्शनाय (सूर्याय) सर्वप्रेरकाय परमेश्वराय (पुनः) वारंवारम् (दाताम्) लोडर्थे लुङ्, अडभावः । दत्ताम् (असुम्) प्रज्ञाम् (अद्य) इदानीम् (इह) अत्र (भद्रम्) कल्याणम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम॒ एके॑भ्यः पवते घृ॒तमेक॒ उपा॑सते ।
येभ्यो॒ मधु॑ प्र॒धाव॑ति॒ ताꣳश्चि॑दे॒वाऽपि॑ गच्छतात् ॥ १४ ॥

सोमः॑ । एके॑भ्यः । प॒व॒ते॒ । घृ॒तम् । एके॑ । उप॑ । आ॒स॒ते॒ ॥ येभ्यः॑ ।
मधु॑ । प्र॒-धाव॑ति । तान् । चि॒त् । ए॒व । अपि॑ । ग॒च्छ॒तात्॥१४

भाषार्थ—(सोमः) ऐश्वर्य (एकेभ्यः) किन्हीं किन्हीं [विद्वानों] को (पवते) मिलता है, (घृतम्) सार पदार्थ को (एके) कोई कोई [विद्वान्] (उप आसते) सेवते हैं। (येभ्यः) जिन [विद्वानों] को (मधु) विज्ञान (प्रधावति) शीघ्र प्राप्त होता है, (तान्) उन [सब महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्य ऐश्वर्यवान्, तत्त्ववेत्ता, विज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर उन्नति करें ॥ १४ ॥

मन्त्र १४-१८ कुछ भेद वा अभेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १५४। १, ४, २, ३, ५ । और मन्त्र १४—१७—ऋग्वेद पाठ से महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

ये चि॒त् पूर्वे॑ ऋ॒तसा॑ता ऋ॒तजा॑ता ऋ॒तावृ॑धः ।
ऋषी॑न् तप॒स्वतो॑ यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ॥ १५ ॥

ये । चि॒त् । पूर्वे॑ । ऋ॒त-सा॑ताः । ऋ॒त-जा॑ताः । ऋ॒त-वृ॑धः ॥
ऋषी॑न् । तप॒स्वतः । य॒म॒ । त॒पः॒-जान् । अपि॑ । ग॒च्छ॒तात् १५

भाषार्थ—(ये) जो (चित्) ही (पूर्वे) पहिले [पूर्ण विद्वान्]

१४—(सोमः) ऐश्वर्यम् (एकेभ्यः) केभ्यश्चिद् विद्वद्भ्यः (पवते) पवतेर्गतिकर्मा—निघ० २। १४। गच्छति। प्राप्नोति (घृतम्) सारपदार्थम् (एके) केचिद् विद्वांसः (उपासते) उपभुञ्जते। सेवन्ते (येभ्यः) (मधु) विज्ञानम् (प्रधावति) प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छति (तान्) विदुषः पुरुषान् (चित्) सत्कारे (एव) निश्चयेन (अपि) अवश्यम् (गच्छतात्) गच्छ। प्राप्नुहि ॥

१५—(ये) विद्वांसः (चित्) एव (पूर्वे) प्रथमश्रेणिस्थाः। पूर्णविद्वांसः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋतसाताः) सत्य धर्म से सेवन किये गये, (ऋतजाताः) सत्य धर्म से प्रसिद्ध हुये और (ऋतावृधः) सत्य धर्म से बढ़ने और बढ़ाने वाले हैं। (यम) हे यम ! [संयमी पुरुष] (तपस्वतः) उन तपस्वी, (तपोजान्) तप से प्रकट हुये (ऋषीन्) ऋषियों को (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो महात्मा पूर्ण श्रद्धा से अनुष्ठान करके सत्य वैदिक धर्म का उपदेश करते हैं, और जिन्होंने अपने पूर्व जन्म के पुण्य से तथा अपने माता पिता के तप से ऋषि पद पाया है, मनुष्य उनके सत्संग से अपनी उन्नति करें ॥ १५ ॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥

तपसा । ये । अनाधृष्याः । तपसा । ये । स्वः । ययुः ॥ तपः । ये । चक्रिरे । महः । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात् १६

भाषार्थ—(ये) जो [विद्वान्] (तपसा) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] से (अनाधृष्याः) नहीं दबने वाले हैं और (ये) जिन्होंने (तपसा) तप से (स्वः) स्वर्ग [आनन्द पद] (ययुः) पाया है । और (ये) जिन्होंने (तपः) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] को (महः) अपना महत्त्व (चक्रिरे) बनाया है, (तान्) उन [महात्माओं] को (चित्) सत्कार

(ऋतसाताः) षण संभक्तौ—क्त । जनसनखनां सञ्झलोः । पा० ६ । ४ । ४२ । इत्यात्वम् । सत्यधर्मेण सेविताः (ऋतजाताः) सत्यधर्मेण प्रादुर्भूताः प्रसिद्धाः (ऋतावृधः) सत्यधर्मेण वर्धितारो वर्धयितारश्च (ऋषीन्) वेदार्थदर्शिनः पुरुषान् (तपस्वतः) ब्रह्मचर्यवेदाध्ययनयुक्तान् (यम) हे संयमिन् पुरुष (तपोजान्) तपसा जातान् (अपि) अवश्यम् (गच्छतात्) गच्छ ॥

१६—(तपसा) ब्रह्मचर्यसेवनेन वेदाध्ययनेन च (ये) महात्मानः (अनाधृष्याः) धर्षितुमशक्याः । दुर्धर्षाः । अहिंसनीयाः (तपसा) (ये) (स्वः) सुखपदम् (ययुः) प्रापुः (तपः) ब्रह्मचर्यसेवनं वेदाध्ययनं च (ये)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो महर्षि ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन को अपना महत्त्व समझ कर आनन्द पाते हैं, मनुष्य उन से शिक्षा लेकर ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन से महान् होकर सुखी होवें ॥ १६ ॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥

ये । युध्यन्ते। प्र-धनेषु । शूरासः । ये । तनू-त्यजः॥ ये । वा । सहस्र-दक्षिणाः । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात् १७

भाषार्थ—(ये) जो [वीर] (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं, और (ये) जो (शूरासः) शूर (तनूत्यजः) शरीर का बलिदान करने वाले [वा उपकार का दान करने वाले] हैं। (वा) और (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) सहस्रों प्रकार की दक्षिणा देने वाले हैं, (तान्) उन [महात्माओं] का (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे शूरवीर पुरुष धर्म युद्ध में अपने को बलिदान करके संसार में शान्ति स्थापित करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को दुष्कर्मियों के दण्ड देने में सदा उद्यत रहना चाहिये ॥ १७ ॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥

(चक्रिरे) कृतवन्तः (महः) स्वमहत्त्वम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० १४ ॥

१७—(ये) वीराः (युध्यन्ते) शस्त्राणि संप्रहरन्ति (प्रधनेषु) संग्रामेषु (शूरासः) शूराः पराक्रमिणः (ये) (तनूत्यजः) तनु विस्तारे तन उपकारे च-ऊ+त्यज हानौ दाने च—क्विप् । शरीराणां त्यक्तारः । उपकारस्य दातारः (ये) (वा) चार्थे (सहस्रदक्षिणाः) सहस्राणि दक्षिणाः प्रतिष्ठापदानि दत्तानि यैस्ते । अन्यत् पूर्ववत्—म० १४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्र-नीथाः । कवयः । ये । गोपायन्ति । सूर्यम् ॥ ऋषीन् । तपस्वतः । यम । तपः-जान् । अपि । गच्छतात् ॥ १८ ॥

भाषार्थ--(ये) जो (सहस्रणीथाः) सहस्रों [योधाओं] के नेता (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सूर्यम्) सर्वप्रेरक मनुष्य की (गोपायन्ति) रक्षा करते हैं। (यम) हे यम ! [संयमी पुरुष] (तपस्वतः) उन तपस्वी (तपो-जान्) तप से उत्पन्न हुये (ऋषीन्) ऋषियों को (अपि) अवश्य (गच्छ-तात्) तू प्राप्त हो ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने बुद्धिबल और कर्म से प्रधान नेता होकर सर्वहितैषी पुरुष की रक्षा करते हैं, सब लोग उनके अनुकरण से महान् होवें ॥१८॥

मन्त्रौ १९, २० ॥

पृथिवी देवता ॥ १९ गायत्री ; २० अनुष्टुप् छन्दः ॥

पृथिवीविद्योपदेशः—पृथिवी की विद्या का उपदेश ॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥

स्योना । अस्मै । भव । पृथिवि । अनृक्षरा । नि-वेशनी ॥
यच्छ । अस्मै । शर्म । स-प्रथाः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (स्योना) सुख देने हारी, (अनृक्षरा) बिना कांटे वाली और (निवेशनी) प्रवेश करने योग्य (भव) हो। और (सप्रथाः) विस्तार वाली तू (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (शर्म) शरण (यच्छ) दे ॥ १९ ॥

१८—(सहस्रणीथाः) हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन् । उ० २ । २ । सहस्र + णीञ् प्रापणे—क्थन् । सहस्राणां योद्धॄणां नेतारः (कवयः) मेधा-विनः (ये) (गोपायन्ति) रक्षन्ति (सूर्यम्) सर्वप्रेरकं मनुष्यम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० १५ ॥

१९—(स्योना) सुखप्रदा (अस्मै) पुरुषाय (भव) (पृथिवि) हे भूमे (अनृक्षरा) अकण्टका (निवेशनी) प्रवेशयोग्या (यच्छ) देहि (शर्म) शरणम् (सप्रथाः) प्रथसा विस्तारेण सहिता त्वम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य पृथिवी विद्या में निपुण होकर अनेक रत्नों और पदार्थों को प्राप्त करके निर्विघ्नता से आनन्द भोगें ॥ १९ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । २२ । १५ तथा यजु० ३५ । २१ ॥

असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥ (८)

असम्-बाधे । पृथिव्याः । उरौ । लोके । नि । धीयस्व ॥
स्वधाः । याः । चकृषे । जीवन् । ताः । ते । सन्तु । मधु-श्चुतः ॥२०॥

भाषार्थ—[हे पुरुष !] (पृथिव्याः) पृथिवी के (असंबाधे) बाधा रहित, (उरौ) विस्तीर्ण (लोके) स्थान में (नि) दृढ़ता से (धीयस्व) तू ठहराया गया हो । (याः) जिन (स्वधाः) आत्मधारण शक्तियों को (जीवन्) जीवते हुये (चकृषे) तू ने किया है, (ताः) वे [सब शक्तियां] (ते) तेरे लिये (मधुश्चुतः) ज्ञान की बरसाने वाली (सन्तु) होवें ॥ २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विघ्नों को हटाकर दृढ़ता से पृथिवी पर श्रेष्ठ पदार्थ खोजते जाते हैं, वे आत्मविश्वासी सदा सुख पाते हैं ॥ २० ॥

मन्त्राः २१—३० ॥

पितरो देवताः ॥ २१, २६ भुरिक् त्रिष्टुप् ; २२, २३, २५, ३० अनुष्टुप् ; २४ आर्षी गायत्री ; २७, २८ त्रिष्टुप् ; २९ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

मनुष्याणां पितॄन् प्रति कर्त्तव्योपदेशः—मनुष्यों का पितरों के साथ कर्त्तव्य का उपदेश ॥

२०—(असम्बाधे) संबाधारहिते । निर्विघ्ने (पृथिव्याः) भूमेः (उरौ) विस्तृते (लोके) स्थाने (नि) निश्चयेन (धीयस्व) दधातेः कर्मणि यक् । धारितो भव (स्वधाः) स्वधारणशक्तीः (याः) (चकृषे) त्वं कृतवानसि (जीवन्) प्राणान् धारयन् सन् (ताः) शक्तयः (ते) तुभ्यम् (सन्तु) (मधुश्चुतः) श्चुतिर् क्षरणे—क्विप् । ज्ञानस्य क्षारयित्र्यो वर्षयित्र्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि । सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥ २१ ॥

ह्वयामि । ते । मनसा । मनः । इह । इमान् । गृहान् । उप । जुजुषाणः । आ । इहि ॥ सम् । गच्छस्व । पितृ-भिः । सम् । यमेन । स्योनाः । त्वा । वाताः । उप । वान्तु । शग्माः २१

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (ते) तेरे (मनः) मन को (मनसा) [अपने] मन के साथ (इह) यहां (ह्वयामि) मैं बुलाता हूं, (इमान्) इन (गृहान्) घरों [घर वालों] को (उप) आदर से (जुजुषाणः) प्रसन्न करता हुआ तू (आ इहि) आ । (पितृभिः) पितरों [रक्षक महात्माओं] से और (यमेन) यम [न्यायकारी परमात्मा] से (सं सं गच्छस्व) तू भले प्रकार मिल, (स्योनाः) सुखदायक और (शग्माः) शक्ति वाले (वाताः) सेवनीय पदार्थ (त्वा) तुझ को (उप) यथावत् (वान्तु) प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों को आदर पूर्वक बुलावें और उनसे उचित शिक्षा और परमेश्वर ज्ञान प्राप्त करके प्रयत्न के साथ उत्तम उत्तम पदार्थों द्वारा आनन्द पावें ॥ २१ ॥

इस मन्त्र का तीसरा पाद ऋग्वेद में है—१० । १४ । ८ ॥

२१—(ह्वयामि) आह्वयामि (ते) तव (मनसा) स्वान्तःकरणेन (मनः) अन्तःकरणम् (इह) अत्र (इमान्) दृश्यमानान् (गृहान्) गृहस्थान् (उप) आदरेण (जुजुषाणः) जुषी प्रीतिसेवनयोः—कानच् । प्रीयमाणः (एहि) आगच्छ (सं सं गच्छस्व) अतिशयेन सङ्गतो भव । पितृभिः) पालकमहात्मभिः सह (यमेन) न्यायकारिणा परमात्मना सह (स्योनाः) सुखप्रदाः (त्वा) त्वाम् (वाताः) वात गतिसुखसेवनेषु–अच् । सेवनीयाः । पदार्थाः (उप) यथावत् (वान्तु) प्राप्नुवन्तु (शग्माः) युज्रिरुचितिजां कुश्च । उ० १ । १४६ । शक्लृ शक्तौ—मक्, कस्य गः । शक्तिमन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत् त्वा वहन्तु मरुतः उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥
उत् । त्वा । वहन्तु । मरुतः । उद्-वाहाः । उद्-प्रुतः ॥
अजेन । कृण्वन्तः । शीतम् । वर्षेण । उक्षन्तु । बाल् । इति २२

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (उदवाहाः) जल पहुंचाने वाले, (उदप्रुतः) जल में चलने वाले (मरुतः) पवन रूप विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (उत् वहन्तु) ऊंचा पहुंचावें । और (अजेन) अजन्मे परमात्मा के साथ (वर्षेण) वृष्टि से (शीतम्) शीतलता (कृण्वन्तः) करते हुये वे [तुझ को] (उक्षन्तु) बढ़ावें—(बाल् इति) यही बल है ॥ २२ ॥

भावार्थ—जैसे पवन अपने झकोरों से मेघों को चला वृष्टि करके ताप हटाकर संसार को सुख पहुंचाता है, वैसे ही विद्वान् लोग अज्ञान मिटा शान्ति के साथ मनुष्यों को ऊंचा करके शक्तिमान् करें ॥ २२ ॥

उदहमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥ २३ ॥
उत् । अहम् । आयुः । आयुषे । क्रत्वे । दक्षाय । जीवसे ॥
स्वान् । गच्छतु । ते । मनः । अध । पितॄन् । उप । द्रव २३

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (आयुः) [तेरे] जीवन को (आयुषे) [अपने] जीवन के लिये, (क्रत्वे) बुद्धि वा कर्म के लिये, (दक्षाय) बल के

२२—(उत्) ऊर्ध्वम् (त्वा) (वहन्तु) प्रापयन्तु (मरुतः) मरुतो ऋत्विङ्नाम—निघ० ३ । १८ । पवना इव विद्वांसः (उदवाहाः) कर्मण्यण् । पा० ३ । २ । १ । उदक+वह प्रापणे—अण्, उदकस्य उदभावः । जलस्य वोढारः प्रापयितारः (उदप्रुतः) प्रुङ् गतौ—क्विप् । जले गन्तारः (अजेन) अजन्मना परमात्मना (कृण्वन्तः) कुर्वन्तः (शीतम्) शैत्यम् (वर्षेण) वृष्टिजलेन (उक्षन्तु) उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मणः—निरु० १२ । ६ । वर्धयन्तु (बाल्) क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च । उ० २ । ५७ । बल दाने जीवने वधे च—क्विप्, दीर्घश्च । बलम् (इति) एवम् ॥

२३—(उत्) उत्तमतया (अहम्) आहूतवानस्मि (आयुः) तव जीव-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये और (जीवसे) प्राण धारण [पराक्रम] के लिये (उत्) उत्तमता से (अहम्) मैं ने बुलाया है। (ते) तेरा (मनः) मन (स्वान्) अपने लोगों में (गच्छतु) जावे, (अध) और तू (पितॄन्) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (उप) आदर से (द्रव) दौड़ जा ॥ २३ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से अपना आचरण, अपना ज्ञान, अपना शारीरिक और आत्मिक बल ठीक रख कर माता पिता आदि और सब महात्माओं के सदा कृतज्ञ रहें ॥ २३ ॥

मा ते मनो मासो मार्ङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥

मा । ते । मनः । मा । असोः । मा । अङ्गानाम् । मा । रसस्य । ते ॥ मा । ते । हास्त । तन्वः । किम् । चन । इह ॥ २४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (मा) न तो (ते) तेरा (मनः) मन, (मा) न (ते) तेरे (असोः) प्राण का (मा) न (अङ्गानाम्) अङ्गों का, (मा) न (रसस्य) रस [वीर्य] का, (मा) न (ते) तेरे (तन्वः) शरीर का (किं चन) कुछ भी (इह) यहां पर से (हास्त) चला जावे ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों से सुशिक्षित होकर प्रयत्न करे कि उसकी शारीरिक और आत्मिक अवस्था सदा स्वस्थ रहे ॥ २४ ॥

नम् (आयुषे) स्वजीवनहिताय (क्रत्वे) क्रतुः कर्मनाम—निघ० २ । १, प्रज्ञानाम ३ । ९ । क्रतवे । प्रज्ञायै, कर्मणे (दक्षाय) बलाय (जीवसे) प्राणधारणाय । पराक्रमाय (स्वान्) स्वकीयान् । ज्ञातीन् (गच्छतु) प्राप्नोतु (ते) तव (मनः) चित्तम् (अध) अपि च (पितॄन्) पालकान् महात्मनः (उप) आदरेण (द्रव) शीघ्रं गच्छ ॥

२४—(मा) निषेधे (ते) तव (मनः) चित्तम् (मा) (असोः) प्राणस्य (मा) (अङ्गानाम्) अवयवानाम् (मा) (रसस्य) वीर्यस्य (ते) (मा हास्त) ओ हाङ् गतौ—लुङ् । मा गच्छेत् (ते) (तन्वः) शरीरस्य (किं चन) किमपि (इह) अत्र । अस्माकं मध्यात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

मा । त्वा । वृक्षः । सम् । बाधिष्ट । मा । देवी । पृथिवी । मही ॥ लोकम् । पितृषु । वित्त्वा । एधस्व । यमराज-सु ॥२५॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझे (मा) न तो (वृक्षः) सेवनीय संसार और (मा) न (देवी) चलने वाली (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी (सं बाधिष्ट) कुछ बाधा देवे । (यमराजसु) यम [न्यायकारी परमात्मा] को राजा मानने वाले (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (लोकम्) स्थान (वित्त्वा) पाकर (एधस्व) तू बढ़ ॥ २५ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थी मनुष्य संसार में विघ्नों को हटा, रत्नों की खानि पृथिवी से उपकार लेकर बड़े लोगों में पद पाकर बढ़ती करें ॥ २५ ॥

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य ऊं वा ते परेतः ।
तत् ते सं गत्यै पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु २६

यत् । ते । अङ्गम् । अति-हितम् । पराचैः । अपानः । प्राणः । यः । ऊं इति । वा । ते । परा-इतः ॥ तत् । ते । सम्-गत्यै । पितरः । स-नीडाः । घासात् । घासम् । पुनः । आ । वेशयन्तु २६

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो (ते) तेरा (अङ्गम्) [शारीरिक वा आत्मिक] अङ्ग (पराचैः) उलटा होकर (अतिहितम्) हट गया है,

---

२५—(मा बाधिष्ट) बाधृ विलोडने-लुङ् । मा पीडयेत् (त्वा) (वृक्षः) वृक्ष वरणे-क्प्रत्ययः । सेवनीयः । संसारः (सम्) सम्यक् (मा) (देवी) दिवु गतौ-अच् । गतिमती (पृथिवी) (मही) विशाला (लोकम्) स्थानम् (पितृषु) पालकमहात्मसु (वित्त्वा) लब्ध्वा (एधस्व) वर्धस्व (यमराजसु) यमो न्यायकारी परमात्मा राजा येषां तेषु ॥

२६—(यत्) (ते) तव (अङ्गम्) अवयवः (पराचैः) पराङ्मुखम् । प्रतिकूलम् (अतिहितम्) अतीत्य धृतम् (अपानः) प्रश्वासः (प्राणः) श्वासः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उ) और (ते) तेरा (यः) (अपानः) अपान [श्वास] (वा) अथवा (प्राणः) प्राण [श्वास] (परेतः) विचल गया है । (सनीडाः) समान घर वाले (पितरः) पितर लोग [रक्षक महात्मा] (संगत्य) मिलकर (ते) तेरी (तत्) उस [हानि] को (पुनः) फिर (आ वेशयन्तु) भर देवें, [जैसे] (घासात्) घास से (घासम्) घास को [बांध देते हैं] ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक दोषों को समझ कर विद्वानों की संमति से उनकी निवृत्ति करें ॥ २६ ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार २७

अप । इमम् । जीवाः । अरुधन् । गृहेभ्यः । तम् । निः । वहत । परि । ग्रामात् । इतः ॥ मृत्युः । यमस्य । आसीत् । दूतः । प्र-चेताः । असून् । पितृ-भ्यः । गमयाम् । चकार ॥ २७

भाषार्थ—(इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (जीवाः) प्राणधारी [आचार्य आदि] लोगों ने (गृहेभ्यः) घरों के हित के लिये (अप) आनन्द से (अरुधन्) रोका था, (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (इतः) इस (ग्रामात्) ग्राम [विद्यालय] से (परि) सब ओर को (निः) निश्चय करके (वहत) तुम ले जाओ । (मृत्युः) मृत्यु [आत्मत्याग] (यमस्य) संयमी पुरुष का

(यः) (उ) चार्थे (वा) अथवा (ते) तव (परेतः) दूरे गतः (तत्) तत्सर्वम् (ते) तव (संगत्य) एकीभूय (पितरः) रक्षका महात्मानः (सनीडाः) समानगृहाः (घासात्) तृणात् (घासम्) तृणं यथा (पुनः) (आ वेशयन्तु) प्रवेशयन्तु ॥

२७—(अप) आनन्दे (इमम्) ब्रह्मचारिणम् (जीवाः) प्राणधारकाः । महात्मानः (अरुधन्) अवरोधेन धारितवन्तः (गृहेभ्यः) गृहाणां हिताय (तम्) ब्रह्मचारिणम् (निः) निश्चयेन (वहत) नयत (परि) परितः (ग्रामात्) समूहात् । विद्यालयमध्यात् (इतः) अस्मात् (मृत्युः) प्राणत्यागः । आत्मत्यागः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दूतः) उत्तेजक, (प्रचेतः) ज्ञान करने वाला (आसीत्) हुआ है, उसने (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (असून्) प्राण (गमायाम् चकार) भेजे हैं ॥ २७ ॥

भावार्थ—आचार्य लोग ब्रह्मचारियों को विद्यालय में उत्तम शिक्षा देने तक रक्खें और विद्या समाप्ति पर उन को उपदेश करें कि वे परिश्रम के साथ आत्म त्याग करके अर्थात् आपा छोड़ कर संसार का उपकार करें, जैसे कि महात्मा लोग आपा छोड़कर विद्या द्वारा आत्मबल प्राप्त करके उपकारी होते हैं ॥ २७ ॥

यह मन्त्र महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है॥

ये दस्य॑वः पि॒तृषु॒ प्रवि॑ष्टा ज्ञातिमु॒खा अ॑हु॒ताद॒श्चर॑न्ति । प॒रा॒-पुरो॑ नि॒पुरो॒ ये भर॑न्त्य॒ग्निष्टान॒स्मात् प्र ध॑माति य॒ज्ञात् ॥२८॥

ये । दस्य॑वः । पि॒तृषु॑ । प्र-वि॑ष्टाः । ज्ञा॒ति॒-मु॒खाः । अ॒हु॒त॒-अदः॑ । चर॑न्ति ॥ प॒रा॒-पुरः॑ । नि॒-पुरः॑ । ये । भर॑न्ति । अ॒ग्निः । तान् । अ॑स्मात् । प्र । ध॒मा॒ति॒ । य॒ज्ञात् ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (ज्ञातिमुखाः) बन्धुओं के समान मुख वाले [छल से हित बोलने वाले], (अहुतादः) बिना दिया हुआ खाने वाले (दस्यवः) डाकू लोग (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होकर (चरन्ति) विचरते हैं । और (ये) जो [दुराचारी] (परापुरः)

(यमस्य) संयमिनः पुरुषस्य (आसीत्) अभवत् (दूतः) उत्तापकः । उत्तेजकः (प्रचेताः) प्रकृष्टानि चेतांसि यस्य सः । प्रचेतयिता । प्रज्ञापयिता (असून्) प्राणान् (पितृभ्यः) पालकमहात्मभ्यः (गमयांचकार) प्रेषयामास ॥

२८--(ये) (दस्यवः) महासाहसिकाश्चौरादयः (पितृषु) पालक—महात्मसु (प्रविष्टाः) (ज्ञातिमुखाः) ज्ञातीनां मुखं वचनमिव वचनं येषां ते (अहुतादः) अहुतस्य अदत्तस्य भक्षकाः (चरन्ति) विचरन्ति (परापुरः) परा+पॄ पालनपूरणयोः—क्विप् । उदोष्ठ्यपूर्वस्य । पा० ७ । १।१०२ । इत्युत्त्वम् । परा प्रातिकूल्येन पालनस्वभावान् (निपुरः) नि+पुर अग्रगतौ-क्विप् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलटेपन से पालन स्वभावों को और (निपुरः) नीचपन से अगुआ होने की क्रियाओं को (भरन्ति) धारण करते हैं, (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (तान्) उन [दुष्टों] को (अस्मात्) इस (यज्ञात्) पूजा स्थान से (प्र धमाति)दूर भेजे ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऊपर से मीठा बोलकर दूसरों के पदार्थों को खा जावें और शिष्ट पुरुषों में मिल कर छल करें। विद्वान् राजा आदि प्रधान पुरुष उन अन्यायियों को दण्ड देकर निकाल देवे ॥ २८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं--२ । ३० ॥

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः । तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥ २९ ॥

सम् । विशन्तु । इह । पितरः । स्वाः । नः । स्योनम् । कृण्वन्तः । प्र-तिरन्तः । आयुः ॥ तेभ्यः । शकेम । हविषा । नक्षमाणाः । ज्योक् । जीवन्तः । शरदः । पुरूचीः ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(नः) हमारे लिये (स्योनम्) सुख (कृण्वन्तः) करते हुये और (आयुः) जीवन (प्रतिरन्तः) बढ़ाते हुये (पितरः) रक्षा करने वाले (स्वाः) बान्धव लोग (इह) यहां (सम्) मिलकर (विशन्तु) प्रवेश करें। (हविषा) भक्ति के साथ (नक्षमाणाः) चलते हुये और (ज्योक्) बहुत काल तक (पुरूचीः) अनेक (शरदः) वर्षों तक (जीवन्तः) जीवते हुये हम लोग (तेभ्यः) उन [बान्धवों] के लिये (शकेम) समर्थ होवें ॥२९॥

निकृष्टभावेन अग्रगमनक्रियाः (ये) (भरन्ति) धरन्ति(अग्निः) ज्ञानवान् पुरुषः (तान्) दुष्टान् (अस्मात्) (प्रधमाति) धमतिर्गतिकर्मा—निघ० २ । १४ ; वधकर्मा २। १९। बहिर्गमयेत् (यज्ञात्) पूजास्थानात् ॥

२९—(सम्) संगत्य (विशन्तु) प्रविशन्तु (इह) अस्मासु (पितरः) पालकाः (स्वाः) ज्ञातयः। बान्धवाः (नः) अस्मभ्यम् (स्योनम्) सुखम् (कृण्वन्तः) कुर्वन्तः (प्रतिरन्तः) वर्धयन्तः (आयुः) जीवनम् (तेभ्यः) स्वेभ्यः (शकेम) शक्ताः समर्था भवेम सेवितुम् (हविषा) आत्मदानेन। भक्त्या (नक्षमाणाः) गच्छन्तः (ज्योक्) चिरकालम् (जीवन्तः) प्राणान् धारयन्तः (शरदः) संवत्सरान् (पुरूचीः) पुरु+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन्। बह्वीः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य अपने माता पिता आदि के प्रयत्न और आशीर्वाद से उन्नति करके और कीर्ति बढ़ा कर उनकी सेवा करते रहें ॥ २९ ॥

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥ ३० ॥ (८)

याम् । ते । धेनुम् । नि-पृणामि । यम् । ऊं इति । ते । क्षीरे । ओदनम् ॥ तेन । जनस्य । असुः । भर्ता । यः । अत्र । असत् । अजीवनः ॥ ३० ॥

भाषार्थ—[हे महात्मन्] (ते) तेरे लिये (याम्) जिस (धेनुम्) दुधैल गौ को (ऊ) और (ते) तेरे लिये (यम् ओदनम्) जिस भात को (क्षीरे) दूध में (निपृणामि) मैं रखता हूं । (तेन) उसी [कारण] से तू (जनस्य) उस मनुष्य का (भर्ता) पोषक (असः) होवे, (यः) जो [मनुष्य] (अत्र) यहां (अजीवनः) निर्जीव [बिना जीविका, निर्बल] (असत्) होवे ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुग्ध अन्न आदि से विद्वान् महात्माओं की सेवा करते हैं, वे पुरुषार्थी अपना जीवन निर्विघ्न बिताते हैं ॥ ३० ॥

मन्त्राः ३१—३३ ॥

मन्त्रः ३१ प्रजापतिः ; ३२ यमः ; ३३ सरण्यूर्देवता ॥ ३१ निचृत् त्रिष्टुप्, ३२, ३३ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अश्वावतीं प्र तरु या सुशेवार्षाकं वा प्रतरं नवीयः । यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भाग्धेयम् ॥३१॥

३०—(याम्) (ते) तुभ्यम् (धेनुम्) दोग्ध्रीं गाम् (निपृणामि) पृ पालनपूरणयोः । नितरां पालयामि । धरामि (यम्) (ऊ) चार्थे (क्षीरे) दुग्धे (ओदनम्) भक्तम् । स्विन्नान्नम् (तेन) कारणेन (जनस्य) तस्य पुरुषस्य (असः) भवेः (भर्त्ता) पोषकः (यः) (अत्र) (असत्) भवेत् (अजीवनः) निर्जीवकः । निर्बलः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्व॑-वतीम् । प्र । तु॒र । या । सु-शे॑वा । ऋ॒ष्टाक॑म् । वा । प्र-तु॒रम् । नवी॑यः ॥ यः । त्वा । ज॒घान॑ । वध्यः॑ । सः । अ॒स्तु॒ । मा । सः । अ॒न्यत् । वि॒दत॒ । भाग॒-धेय॑म् ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] तू (अश्वावतीम्) घोड़ों वाली [शक्ति] को (प्र तर) बढ़ा, (या) जो (सुशेवा) बड़े सुख देने वाली है, (वा) निश्चय करके [आगे] (ऋष्टाकम्) हिंसा मिटाने वाला (प्रतरम्) अधिक उत्तम (नवीयः) अधिक नवीन [स्थान] है। और (यः) जिस [अत्याचारी] ने (त्वा) तुझ [सदाचारी] को (जघान) मारा है [दुखाया है], (सः) वह (वध्यः) बध्य [मार डालने योग्य] (अस्तु) होवे, (सः) वह (अन्यत्) दूसरा (भागधेयम्) भाग (मा विदत) न पावे ॥ ३१ ॥

भावार्थ—संसार में मनुष्य शीघ्रगामी होकर आगे उत्तम उत्तम पद पाने का प्रयत्न करे और सब प्रकार के विघ्नों को हटाता रहे ॥ ३१ ॥

यमः॑ परो॒ऽवरो॒ विव॑स्वान् त॒तः॑ परं॒ नाति॑ पश्यामि॒ किं च॒न । यमे॑ अ॒ध्वरो॒ अधि॑ मे॒ नि॑वि॒ष्टो भु॒वो॑ विव॑स्वान॒न्वात॑तान ॥३२

यमः॑ । परः॑ । अ॒वरः॑ । विव॑स्वान् । ततः॑ । परम् । न । अति॑ । पश्यामि॒ । किम् । च॒न ॥ यमे॑ । अ॒ध्वरः॑ । अधि॑ । मे॒ । नि-वि॒ष्टः॑ । भु॒वः॑ । विव॑स्वान् । अ॒नु-आत॑तान ॥ ३२ ॥

३१—(अश्वावतीम्) मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय० । पा० ६ । ३ । १३१ । इति मता दीर्घः । अश्वक्रियायुक्तां शक्तिम् (प्र तर) वर्धय (या) शक्तिः (सुशेवा) सुसुखा (ऋष्टाकम्) ऋष्ट हिंसायाम्-अच्, टाप्+कष वधे-ड । हिंसानाशकम् (वा) अवधारणे (प्रतरम्) प्रकृष्टतरम् (नवीयः) नवीनतरं स्थानम् (यः) दुराचारी (त्वा) त्वां सदाचारिणम् (जघान) हतवान् दुःखं प्रापितवान् (वध्यः) वधार्हः (सः) दुराचारी (अस्तु) (मा विदत) विदॢ लाभे-लुङ् । मा लभताम् (सः) (अन्यत्) वधाद् भिन्नम् (भागधेयम्) भागम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(विवस्वान्) प्रकाशमय (यमः) न्यायकारी परमात्मा (परः) दूर और (अवरः) समीप है, (ततः) उस से (परम्) बड़ा (किं चन) किसी वस्तु को भी (अति) उल्लंघन करके (न पश्यामि) नहीं देखता हूं। (यमे) न्यायकारी परमात्मा में (अध्वरः) हिंसा रहित व्यवहार (मे) मेरे लिये (अधि) सर्वथा (निविष्टः) स्थापित है, (विवस्वान्) प्रकाशमय परमात्मा ने (भुवः) सत्ताओं को (अन्वाततान) निरन्तर सब ओर फैलाया है ॥ ३२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता है, उस से बड़ा संसार में कुछ भी नहीं है, उसी ने सब लोकों को रचा है; तुम उसी की उपासना से अपनी उन्नति करो ॥ ३२ ॥

मन्त्र ३२ और ३३ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहाद् द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३॥

अप । अगूहन् । अमृताम् । मर्त्येभ्यः । कृत्वा । स-वर्णाम् । अदधुः । विवस्वते ॥ उत । अश्विनौ । अभरत् । यत् । तत् । आसीत् । अजहात् । ऊं इति । द्वा । मिथुना । सरण्यूः ३३॥

भाषार्थ—(अमृताम्) अमर [नित्य प्रकृति, जगत् सामग्री] को

३२—(यमः) न्यायकारी परमात्मा (परः) दूरस्थः (अवरः) समीपस्थः (विवस्वान्) प्रकाशमयः (ततः) तस्मात् परमेश्वरात् (परम्) उत्कृष्टम् (न) निषेधे (अति) अतीत्य । उल्लङ्घ्य (पश्यामि) अवलोकयामि (यमे) न्यायकारिणि परमेश्वरे (अध्वरः) हिंसारहितो व्यवहारः (अधि) सर्वथा (मे) मह्यम् (निविष्टः) स्थापितः (भुवः) भू सत्तायाम्—क्विप् । सर्वाः सत्ताः । लोकान् (विवस्वान्) प्रकाशमयः परमेश्वरः (अन्वाततान) निरन्तरं समन्ताद् विस्तारितवान् ॥

३३—(अप) आनन्दे (अगूहन्) गुहू संवरणे-लङ् । अन्तर्हितां कृत-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप) सुख से (अगूहन्) उन [ईश्वर नियमों]ने गुप्त रक्खा और (मर्त्येभ्यः) मरण धर्मी [मनुष्य आदि प्राणियों] के हित के लिये [उसे] (सवर्णाम्) समान अङ्गीकार करने योग्य (कृत्वा) करके (विवस्वते) प्रकाशमय परमात्मा [की आज्ञा मानने] के लिये (अदधुः) उन्हों ने पुष्ट किया । (उत) और (यत्) जो कुछ [जगत्] (आसीत्) था, (तत्) उस [जगत्] ने (अश्विनौ) व्यापक प्राण और अपान को (अभरत्) धारण किया, (उ) और (सरण्यूः) व्यापक [प्रकृति, जगत् सामग्री] ने (द्वा) दो (मिथुना) जोड़ियाओं [स्त्री पुरुष] को (अजहात्) त्यागा [उत्पन्न किया] ॥ ३३ ॥

भावार्थ—ईश्वर नियम से प्रकृति अर्थात् जगत् सामग्री प्रलय समय में अदृश्य रहती और सृष्टि काल में सर्वोपकारी होकर प्रकट होती है, तब यह जगत् प्राण और अपान द्वारा चेष्टा करता है और स्त्री पुरुष आदि प्राणी उत्पन्न होते हैं ॥ ३३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १७ । २ ॥

मन्त्रौ ३४, ३५ ॥

पितरो देवताः । ३४ अनुष्टुप् ; ३५ त्रिष्टुप् ॥

पितृसत्कारोपदेशः—पितरोंके सत्कार का उपदेश ॥

ये निखात्ता ये परोप्ता ये दुग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥
ये । नि-खाताः । ये । परा-उप्ताः । ये । दुग्धः । ये । च ।

वन्तः परमात्मनियमाः प्रलये (अमृताम्) नित्यां प्रकृतिम् । जगत्सामग्रीम् (मर्त्येभ्यः) मरणधर्मणां मनुष्यादिप्राणिनां हिताय (सवर्णाम्) समानवर्णनीयां स्वीकरणीयाम् (अदधुः) अधारयन् परमेश्वरनियमाः (विवस्वते) प्रकाशमयाय । परमात्माज्ञापालनाय (उत) अपि च (अश्विनौ) प्राणापानौ (अभरत्) अधरत् (यत्) जगत् (तत्) सर्वम् (आसीत्) (अजहात्) ओ हाक् त्यागे–लङ् । अत्यजत् । असृजत् (उ) चार्थे (द्वा) द्वौ (मिथुना) मिथुनौ । स्त्रीपुंसात्मकौ यमलौ (सरण्यूः) सृ युवचिभ्योऽन्युजागूजक्षुचः । उ० ३ । ८१ । सृ गतौ—अन्युच्, ऊङ् स्त्रियाम् । व्यापका प्रकृतिः । जगत्सामग्री ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धिताः ॥ सर्वान् । तान् । अग्ने । आ । वह । पितॄन् । हविषे । अत्तवे ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—(ये) जो पुरुष [ब्रह्मचर्य आदि सदाचार में] (निखाताः) दृढ़ गड़े हुये, (ये) जो (परोप्ताः) उत्तमता से बीज बोये गये, (ये) जो (दग्धाः) तपाये गये [वा चमकते हुये] (च) और (ये) जो (उद्धिताः) ऊंचे उठाये गये हैं । (अग्ने) हे विद्वान् ! (तान् सर्वान्) उन सब (पितॄन्) पितरों [पिता आदि ज्ञानियों] को (हविषे) ग्रहण योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) तू ले आ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो पुरुष दृढ़ स्वभाव, ब्रह्मचर्य सेवी, सुशिक्षित, परिश्रमी महाविद्वान् हों, उनका भोजन आदि से सदा सत्कार करें ॥ ३४ ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

ये । अग्नि-दग्धाः । ये । अनग्नि-दग्धाः । मध्ये । दिवः । स्वधया । मादयन्ते ॥ त्वम् । तान् । वेत्थ । यदि । ते । जात-वेदः । स्वधया । यज्ञम् । स्व-धितिम् । जुषन्ताम् ॥३५॥

भाषार्थ—(ये) जो (अग्निदग्धाः) अग्नि जलाने वाले [हवन आदि

३४—(ये) विद्वांसः (निखाताः) खनु अवदारणे-क्त । ब्रह्मचर्यादि-सदाचारे दृढतया स्थिताः (ये) (परोप्ताः) परा+डु वप बीजसन्ताने-क्त । उत्तमतया बीजवत् स्थापिताः (ये) (दग्धाः) दह दीप्तौ भस्मीकरणे च-क्त । ब्रह्मचर्यादिना तप्ताः। प्रदीप्यमानाः (ये) (च) (उद्धिताः) उत्+दधातेः-क्त । ऊर्ध्वं धृताः (सर्वान्) (तान्) (अग्ने) हे विद्वन् (आ वह) आनय (पितॄन्) पित्रादिरक्षकान् विद्वत्पुरुषान् (हविषे) द्वितीयार्थे चतुर्थी । हविः । ग्राह्यं पदार्थम् (अत्तवे) अद भक्षणे-तवेन् प्रत्ययः । अत्तुं भक्षितुम् ॥

३५—(ये) पुरुषाः (अग्निदग्धाः) अग्नय आहवनीयगार्हपत्यदाक्षि-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले गृहस्थ आदि] और (ये) जो (अनग्निदग्धाः) अग्नि को नहीं जलाने वाले पुरुष [आहवनीय आदि भौतिक यज्ञ अग्नि छोड़ देने वाले संन्यासी] (दिवः) ज्ञान के (मध्ये) बीच (स्वधया) आत्मधारण शक्ति से (मादयन्ते) आनन्द पाते हैं। (जातवेदः) हे पूर्ण ज्ञानी पुरुष ! (त्वम्) तू (तान्) उन को (यदि) जो (वेत्थ) जानता है, (ते) वे (स्वधया) अन्न के साथ (स्वधितिम्) स्वधारण शक्ति वाले (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] का (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि हवन आदि यज्ञ करने वाले ब्रह्मचारी, गृहस्थ लोगों को और भौतिक अग्नि के यज्ञ को छोड़कर ज्ञान यज्ञ करने वाले संन्यासी विद्वानों को यथाविधि सत्कार से बुलावें और उन से श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करें ॥ ३५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । १५ । १४, १३ और यजुर्वेद-१९ । ७, ६७ ॥

भगवान् मनु ने इस आशय को इस प्रकार वर्णन किया है ॥ अध्याय ६ श्लोक ३६, ३८ ॥

अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ १ ॥
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ २ ॥

विधि पूर्वक वेदों को पढ़कर और धर्म से सन्तानों को उत्पन्न कर के और यथाशक्ति यज्ञों को कर के मन को मोक्ष [अर्थात् सन्यासाश्रम] में

णात्या दग्धाः प्रज्वलिता यैस्ते ब्रह्मचारिणो गृहस्थाश्च (ये) (अनग्निदग्धाः) अग्नय आहवनीयादयो न दग्धाः प्रज्वलिता यैस्ते ज्ञानाग्निप्रदीपकाः सन्यासिनः (मध्ये) (दिवः) दिवु गतौ-डिवि । ज्ञानस्य (स्वधया) स्वधारणशक्त्या (मादयन्ते) हृष्यन्ति (त्वम्) (तान्) पूर्वोक्तान् (वेत्थ) जानासि (यदि) (ते) पूर्वोक्ताः (जातवेदः) हे प्रसिद्धज्ञान विद्वन् (स्वधया) अन्नेन-निघ० २ । ७ (यज्ञम्) पूजनीयं व्यवहारम् (स्वधितिम्) धि धारणे-क्तिन् । स्वधारणशक्तियुक्तम् (जुषन्ताम्) सेवन्ताम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगावे ॥ १ ॥

प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति कराने वाले, सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ को कर के आत्मा में [आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणात्य] अग्नियों को समारोपित करके ब्राह्मण, वेद और ईश्वर जानने वाला पुरुष, गृहाश्रम से संन्यास लेवे ॥ २ ॥

मन्त्रः ३६ ॥

अग्निर्देवता ॥ आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥

बलवर्धनोपदेशः—बल बढ़ाने का उपदेश ॥

शं तपु मातिं तपो अग्ने मा तुन्वं १ तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥ ३६ ॥

शम् । तपु । मा । अतिं । तपः । अग्ने । मा । तुन्वम् । तपः ॥
वनेषु । शुष्मः । अस्तु । ते । पृथिव्याम् । अस्तु । यत् । हरः ३६

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! तू (शम्) शान्ति के लिये (तप) तप कर, [किसी को] (अति) अत्याचार से (मा तपः) मत तपा और [किसी के] (तन्वम्) शरीर को [अत्याचार से] (मा तपः) मत तपा [मत सता]। वनेषु) सेवनीय व्यवहारों में (ते) तेरा (शुष्मः) बल (अस्तु) होवे और (यत्) जो (हरः) [तेरा] तेज है, वह (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अस्तु) होवे ॥ ३६ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष संसार में शान्ति फैलाने के लिये शम दम आदि तप करे और किसी को किसी प्रकार न सतावे। इस विधि से बल बढ़ा उत्तम उत्तम पदार्थ प्राप्त करके पृथिवी पर प्रतापी होवे ॥ ३६ ॥

मन्त्रः ३७ ॥

यमो देवता । विराड् जगती छन्दः ॥

३६—(शम्) शान्तये (तप) शमदमादितपः कुरु (अति) अत्याचारेण (मा तपः) मा तापय । मा दुःखय कमपि (अग्ने) हे विद्वन् पुरुष (तन्वम्) कस्यचिदपि शरीरम् (मा तपः) मा दुःखय (वनेषु) वन सेवने-अच् । सेवनीयव्यवहारेषु (शुष्मः) बलम् (अस्तु) (ते) तव (पृथिव्याम्) भूमौ (अस्तु) (यत्) (हरः) हरो हरतेः, ज्योतिर्हर उच्यते—निरु० ४। १६ । तेजः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्माज्ञापालनोपदेशः—परमात्मा की आज्ञा पालने का उपदेश ॥

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७॥

ददामि । अस्मै । अव-सानम् । एतत् । यः । एषः । आ-अगन् । मम । च । इत् । अभूत् । इह ॥ यमः । चिकित्वान् । प्रति । एतत् । आह । मम । एषः । राये । उप । तिष्ठताम् । इह ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(एतत्) यह (अवसानम्) विश्राम (अस्मै) उस पुरुष को (ददामि) मैं देता हूं, (यः एषः) जो यह (आ-अगन्) आया है, (च) और (मम इत्) मेरा ही (इह) यहां (अभूत्) हुआ है, (मम) मेरा (एषः) यह पुरुष (राये) धन के लिये (इह) यहां पर (उप तिष्ठताम्) सेवा करे—(चिकित्वान्) ज्ञानवान् (यमः) न्यायकारी परमात्मा (एतत्) यह (प्रति) प्रत्यक्ष (आह) कहता है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—यह परमात्मा का वचन है कि जो पुरुष संसार के बीच उत्तम शरीर और ज्ञान पाकर मेरी शरण आते हैं, वे मेरे प्रीतिपात्र होकर लोक और परलोक में मोक्षरूप धन प्राप्त करते हैं ॥ ३७ ॥

मन्त्राः ३८—४५ ॥

प्रजापतिर्देवता ॥ ३८, ३९, ४१ गायत्री ; ४०, ४२-४४ भुरिग् गायत्री ; ४५ विराडनुष्टुप् ॥

मोक्षाय प्रयत्नोपदेशः-मोक्ष के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

३७—(ददामि) प्रयच्छामि (अस्मै) पुरुषाय (अवसानम्) विरामम् विश्रामम् (एतत्) प्रत्यक्षम् (यः) पुरुषः (एषः) विद्यमानः (आगन्) आगमत् (मम) मत्सम्बन्धी । मदुपासकः (च) (इत्) एव (अभूत्) (इह) अत्र संसारे (यमः) न्यायकारी परमात्मा (चिकित्वान्) सर्वं जानन् (प्रति) प्रत्यक्षम् (एतत्) वाक्यम् (आह) ब्रवीति (मम) मत्प्रीतिपात्रम् (एषः) पुरुषः (राये) मोक्षरूपाय धनाय (उपतिष्ठताम्) सेवताम् (इह) जगति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥

इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ॥
शते । शरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (मिमीमहे) हम नापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) नाप सकता । (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—सब प्राणी परमेश्वर की ही वेदोक्त आज्ञा में रहकर निबाह करते हैं, और चाहे कोई नास्तिक अपने जीवन भर अन्यथा प्रयत्न करे, तो भी परमेश्वर के नियम को नहीं टाल सकता ॥ ३८ ॥

प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥

प्र । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न ।
मासातै ॥ शते । शरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (प्र) आगे बढ़कर (मिमीमहे) हम नापते हैं.....[मन्त्र ३८] ॥ ३९ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३८ के समान ॥ ३९ ॥

३८—(इमाम्) वेदोक्ताम् (मात्राम्) मर्यादाम् (मिमीमहे) माङ् माने । मानेन जानीमः (यथा) यस्मात् कारणात् (अपरम्) अन्यप्रकारेण (न) निषेधे (मासातै) माङ् माने—लेट् । मानेन जानीयात् (शते) (शरत्सु) जीवनसंवत्सरेषु (नो) नैव (पुरा) पुरा प्रबन्धचिरातीतनिकटाऽऽगामिषु—इत्यव्ययार्थः । प्रबन्धेन निरन्तरेण ॥

३९—(प्र) प्रकर्षेण । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शुते शुरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥ (१०)

अप । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न ।
मासातै ॥ शुते । शुरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ४० ॥ (१०)

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (अप) आनन्द से (मिमीमहे) हम नापते हैं.....[मन्त्र ३८] ॥ ४० ॥

भावार्थ—मन्त्र ३८ के समान ॥ ४० ॥

वी३ मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शुते शुरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

वि । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न ।
मासातै ॥ शुते । शुरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (वि) विशेष करके (मिमीमहे) हम नापते हैं.....[मन्त्र ३८] ॥ ४१ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३८ के समान ॥ ४१ ॥

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शुते शुरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥

निः । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न ।
मासातै ॥ शुते । शुरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (निः) निश्चय करके (मिमीमहे) हम नापते हैं.....[म० ३८] ॥ ४२ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३८ के समान ॥ ४२ ॥

४०—(अप) आनन्देन । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥
४१—(वि) विशेषेण । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥
४२—(निः) निश्चयेन । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥

उत् । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न ।
मासाति ॥ शते । शरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (उत्) उत्तमता से (मिमीमहे) हम नापते हैं.....[मन्त्र ३८] ॥ ४३ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३८ के समान ॥ ४३ ॥

सम्मिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

सम् । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न ।
मासाति ॥ शते । शरत्-सु । नो इति । पुरा ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (सम्) सब प्रकार (मिमीमहे) हम नापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासाति) नाप सकता । (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥ ४४ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३८ के समान ॥ ४४ ॥

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासाति शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥

अमासि । मात्राम् । स्वः । अगाम् । आयुष्मान् । भूयासम् ॥
यथा । अपरम् । न । मासाति । शते । शरत्-सु । नो इति ।
पुरा ॥ ४५ ॥

४३—(उत्) उत्तमतया । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥
४४—(सम्) सम्यक् ॥ अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(मात्राम्) मात्रा [इस वेदोक्त मर्यादा] को (अमासि) मैं नापूं, (स्वः) सुख (अगाम्) पाऊं, और (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं। (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) नाप सकता, (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥ ४५ ॥

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य वेद विहित ईश्वर मर्यादा पर चल कर मोक्ष सुख प्राप्त करे, वेदविमुख पुरुष सारे जीवन भर भी प्रयत्न करने पर ईश्वर नियम को नहीं हटा सकता ॥ ४५ ॥

मन्त्राः ४६—४९ ॥

पितरो देवताः ॥ ४६ भुरिगनुष्टुप् । ४७ त्रिष्टुप् ; ४८ अनुष्टुप् ४९ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

पितृगुणोपदेशः—पितरों के गुणों का उपदेश ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥

प्राणः । अपानः । वि-आनः । आयुः । चक्षुः । दृशये । सूर्याय ॥
अपरि-परेण । पथा । यम-राज्ञः । पितॄन् । गच्छ ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य ! तेरे] (प्राणः) प्राण [श्वास], (अपानः) अपान [प्रश्वास], (व्यानः) व्यान [सर्व शरीर व्यापक वायु], (आयुः) जीवन और (चक्षुः) नेत्र (सूर्याय दृशये) सर्वप्रेरक परमात्मा के देखने को [होवें]। (अपरिपरेण) इधर उधर न घूमने वाले [सर्वथा सीधे] (पथा)

४५—(अमासि) माङ् माने लिङर्थे लुङ् । अहं मासीय (मात्राम्) वेदोक्तमर्यादाम् (स्वः) सुखम् (अगाम्) इण् गतौ—लिङर्थे लुङ् । ईयासम् । प्राप्नुयाम् (आयुष्मान्) उत्तमजीवनयुक्तः (भूयासम्) अन्यत् पूर्ववत्—म० ३८ ॥

४६—(प्राणः) श्वासः (अपानः) प्रश्वासः (व्यानः) सर्वशरीरव्यापको वायुः (आयुः) जीवनम् (चक्षुः) नेत्रम् (दृशये) दर्शनाय । द्रष्टुम् (सूर्याय) सूर्यम् । सर्वप्रेरकं परमात्मानम् (अपरिपरेण) छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि । पा० ५ । २ । ८९ । अत्र परिपरशब्द इन्प्रत्ययान्तो दृश्यते ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग से (यमराज्ञः) यम [न्यायकारी परमात्मा] को राजा रखने वाले (पितॄन्) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (गच्छ) प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—मनुष्य अनन्यभाव से परमात्मा की प्राप्ति के लिये वेदानुयायी महात्माओं की शरण लेवे ॥ ४६ ॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्यविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७॥

ये । अग्रवः । शशमानाः । परा-ईयुः । हित्वा । द्वेषांसि । अनपत्य-वन्तः ॥ ते । द्याम् । उत्-इत्य । अविदन्त । लोकम् । नाकस्य । पृष्ठे । अधि । दीध्यानाः ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (अग्रवः) आगे चलने वाले, (शशमानाः) उद्योगी (अनपत्यवन्तः) अनैश्वर्य [दरिद्रता] न रखने वाले पुरुष (द्वेषांसि) द्वेषों को (हित्वा) छोड़कर (परेयुः) ऊंचे गये हैं। (ते) उन (दीध्यानाः) प्रकाशमान लोगों ने (द्याम्) प्रकाशमान विद्या को (उदित्य) उत्तमता से प्राप्त करके (नाकस्य) महासुख के (पृष्ठे) उपरि भाग में (लोकम्) स्थान (अधि) अधिकार पूर्वक (अविदन्त) पाया है ॥ ४७ ॥

परि परितः सर्वतः परः परभावो भिन्नभावः कुटिलभावो न विद्यते यस्मिन् तादृशेन महासरलेन (पथा) मार्गेण (यमराज्ञः) यमो न्यायकारी परमात्मा राजा येषां तान् (पितॄन्) पालकान् । महापुरुषान् (गच्छ) प्राप्नुहि ॥

४७—(ये) विद्वांसः (अग्रवः) मीपीभ्यां रुः । उ० ४ । १०१ । अग गतौ रुप्रत्ययः । अग्रगामिनः (शशमानाः) शश प्लुतगतौ—चानश् । प्लुतगमनशीलाः । उद्योगिनः (परेयुः) परा प्राधान्येन गताः (हित्वा) त्यक्त्वा (द्वेषांसि) विरोधान् (अनपत्यवन्तः) अदभ्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । ञिनञ्पूर्वात् पत ऐश्वर्ये—यक् । पत्यतेरैश्वर्यकर्मा—निघ० २ । २१ । अनैश्वर्यरहिताः । परमैश्वर्यवन्तः (ते) (द्याम्) प्रकाशमानां विद्याम् (उदित्य) उत्तमतया प्राप्य (अविदन्त) विदॢ लाभे—लुङ् । अलभन्त (लोकम्) स्थानम् (नाकस्य) महासुखस्य (दीध्यानाः) दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः—शानच् । दीप्यमानाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् उद्योगी महापुरुष ही पक्षपात छोड़ विद्या प्राप्त करके मोक्षसुख भोगते हैं ॥ ४७ ॥

उदुन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

उदुन्-वती । द्यौः । अवमा । पीलु-मती । इति । मध्यमा ॥
तृतीया । ह । प्र-द्यौः । इति । यस्याम् । पितरः । आसते ॥४८॥

भाषार्थ—(उदन्वती) थोड़े जल वाली [नदी के समान] (अवमा) थोड़ी (द्यौः) प्रकाशमान विद्या है, (पीलुमती) फूलों वाली [लता के समान] (मध्यमा इति) मध्यम विद्या है। (तृतीया) तीसरी (ह) निश्चय करके (प्रद्यौः इति) बड़े प्रकाश वाली [विद्या] है, (यस्याम्) जिस [बड़ी विद्या] में (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा लोग] (आसते) ठहरते हैं ॥ ४८ ॥

भावार्थ—छोटे विद्वान् छोटी नदी के समान, मध्यम विद्वान् केवल फल वाली लता के समान बाहिर से शोभायमान होते हैं, परन्तु पूर्ण विद्या प्राप्त करके सर्वोपकारी हो पितर अर्थात् पालनकर्ता कहाते हैं ॥ ४८ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ॥
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ४९

ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । ये । आ-विविशुः ।

४८—(उदन्वती) उदन्वानुदधौ च । पा० ८ । २ । १३ । उदकस्य उदन् मतौ, निन्दायां मतुप् । अल्पजला नदी यथा (द्यौः) प्रकाशकर्मा विद्या—दयानन्द-भाष्ये, यजु० १८ । १८ । प्रकाशमाना विद्या (अवमा) अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते । उ० ५ । ५४ । अव रक्षणगतिवधादिषु—अमप्रत्ययः । कुत्सिता । अल्पा (पीलुमती) मृगय्वादयश्च । उ० १ । ३७ पील रोधने-कु । द्रुमप्रभेदमातङ्ग-काण्डपुष्पाणि पीलवः । अमरः २३ । १९३ । प्रसूनवती । पुष्पयुक्ता लता यथा (इति) पादपूरणे (मध्यमा) (तृतीया) (ह) निश्चयेन (प्रद्यौः) प्रकर्षेण दीप्यमाना विद्या (इति) (यस्याम्) विद्यायाम् (पितरः) पालका महात्मानः (आसते) तिष्ठन्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उरु । अन्तरिक्षम् ॥ ये । आ-क्षियन्ति । पृथिवीम् । उत । द्याम् । तेभ्यः । पितृ-भ्यः । नमसा । विधेम ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—(ये) जो पुरुष (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता के समान हैं, और (ये) जो [उसके] (पितामहाः) दादे के तुल्य हैं, और (ये) जो (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) आकाश में [विद्या बल से विमान आदि द्वारा] (आविविशुः) प्रविष्ट हुये हैं और (ये) जो (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) आकाश में (आक्षियन्ति) सब प्रकार शासन करते हैं, (तेभ्यः) उन (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] की (नमसा) अन्न से (विधेम) हम सेवा करें ॥ ४९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे पिता दादे, परदादे आदि बड़े योगी विद्वान् होकर विद्याबल से विमान आदि द्वारा आकाश में पहुंचे हैं और जो पृथिवी और आकाश में राज्य करते हैं, उनका अन्न आदि से सत्कार करके अपनी उन्नति करो ॥ ४९ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आगे है—अथ० १८ । ३ । ५९ ।

मन्त्राः ५०—५२ ॥

भूमिर्देवता ॥ ५०, ५२ अनुष्टुप् ; ५१ भुरिगनुष्टुप् ॥

परमात्मोपासनोपदेशः—परमात्मा की उपासना का उपदेश ॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (११)

इदम् । इत । वै । ऊं इति । न । अपरम् । दिवि । पश्यसि ।

४९—(ये) माननीयाः (नः) अस्माकम् (पितुः) जनकस्य (पितरः) पितृतुल्यमाननीयाः (ये) (पितामहाः) पितामहसमानपूजनीयाः (ये) (आविविशुः) प्रविष्टा बभूवुः (उरु) विस्तृतम् (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (ये) (आक्षियन्ति) क्षि ऐश्वर्यनिवासयोः । अन्तर्गतण्यर्थः । क्षयति क्षियति, ऐश्वर्यकर्मा—निघ० २ । २१ । समन्ताद्दर्शयन्ति । सम्यक् शासति (पृथिवीम्) (उत) अपि च (द्याम्) आकाशम् (तेभ्यः) तादृशेभ्यः (पितृभ्यः) पालकेभ्यो महात्मभ्यः (नमसा) अन्नेन (विधेम) परिचरेम—निघ० ३ ५

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यम् ॥ माता । पुत्रम् । यथा । सिचा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

भाषार्थ—[हे जीव !] (इदम् इत्) यही [सर्वव्यापक ब्रह्म] (वै) निश्चय करके है, (उ) और (अपरम्) दूसरा (न) नहीं है, तू (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (सूर्यम्) सर्वप्रेरक परमात्मा को (पश्यसि) देखता है ।

(यथा) जैसे (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) अपने आंचल से, [वैसे] (भूमे) हे सर्वाधार परमेश्वर ! (एनम्) इस [जीव] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढकले ॥ ५० ॥

भावार्थ—परमात्मा सर्वव्यापक है, उसके समान और कोई नहीं है, वह ज्ञान नेत्र से दीखता है। वह अपने शरणागत भक्तों की इस प्रकार सर्वथा रक्षा करता है, जैसे माता अपने छोटे बच्चों की वस्त्र आदि से रक्षा करती है ५०

इस मन्त्र का उत्तरार्ध ऋग्वेद में है—१० । १८ । ११, और आगे है—अथर्व १८ । ३ । ५० ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वासस्याभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥

इदम् । इत् । वै । ऊं इति । न । अपरम् । जरसि । अन्यत् । इतः । अपरम् ॥ जाया । पतिम् -इव । वाससा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥

५०—(इदम्) दृश्यमानम् । सर्वव्यापकं ब्रह्म (इत) एव (वै) निश्चयेन (उ) च (न) निषेधे (अपरम्) अन्यत् किंचित् (दिवि) ज्ञानप्रकाशे (पश्यसि) अवलोकयसि (सूर्यम्) सर्वप्रेरकं परमात्मानम् (माता) जननी (पुत्रम्) (यथा) येन प्रकारेण (सिचा) षिच क्षरणे—क्विप् । वस्त्रेण । चेलाञ्चलेन (अभि) सर्वतः (एनम्) जीवम् (भूमे) भवन्ति लोका यस्यां सा भूमिः परमेश्वरः । हे सर्वाधार परमात्मन् (ऊर्णुहि) आच्छादय । सर्वथा रक्ष ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(इदम् इत्) यही [सर्वव्यापक ब्रह्म] (वै) निश्चय करके है, (उ) और (जरसि) स्तुति में (इतः) इस [ब्रह्म] से (अन्यत्) भिन्न (अपरम् अपरम्) दूसरा कुछ भी (न) नहीं है।

(इव) जैसे (जाया) सुख उत्पन्न करने वाली पत्नी (पतिम्) पति को (वाससा) वस्त्र से, [वैसे] (भूमे) हे सर्वाधार परमेश्वर ! (एनम्) इस [जीव] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढकले ॥ ५१ ॥

भावार्थ—वह अद्वितीय सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर अपने उपासकों को अपनी कृपा से ऐसा प्रसन्न रखता है, जैसे पत्नी पति को वस्त्र आदि की सेवा से प्रसन्न रखती है ॥ ५१ ॥

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥

अभि। त्वा। ऊर्णोमि। पृथिव्याः। मातुः। वस्त्रेण। भद्रया ॥ जीवेषु। भद्रम्। तत्। मयि। स्वधा। पितृषु। सा। त्वयि ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—[हे जीव !] (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) जगत् के विस्तार करने वाले परमेश्वर के [दिये] (भद्रया) कल्याण से (अभि) सब ओर से (ऊर्णोमि) मैं ढकता हूं, [जैसे] (मातुः) माता के (वस्त्रेण) वस्त्र से [बालक को]। (जीवेषु) जीवों में (भद्रम्) [जो] कल्याण हो, (तत्) वह

५१—(अपरम् अपरम्) अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते—निरु० १०। ४२। अन्यत् किंचिदपि (जरसि) जॄ स्तुतौ—असुन्। जरतिरर्चतिकर्मा—निघ० ३। १४। स्तुतौ (अन्यत्) (इतः) अस्मात् परब्रह्मणः (जाया) सुखोत्पादिका पत्नी (पतिम्) भर्तारम् (इव) यथा—अन्यत् पूर्ववत्—म० ५०॥

५२—(अभि) अभितः। सर्वतः (त्वा) जीवम् (ऊर्णोमि) आच्छादयामि (पृथिव्याः) प्रथेः षिवन्०। उ० १। १५०। प्रथ प्रख्याने—षिवन्, संप्रसारणं ङीष् च। प्रथयति विस्तारयति सर्वं जगत् सा पृथिवी परमेश्वरः। जगद् विस्तारकस्य परमेश्वरस्य (मातुः) जनन्याः (वस्त्रेण) वाससा यथा (भद्रया) सुपां सुलुक्०। पा० ७। १। ३९। विभक्तेर्याप्रत्ययः। भद्रेण। कल्या-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मयि) मुझ में [हो] (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (स्वधा) [जो] आत्म धारण शक्ति हो, (सा) वह (त्वयि) तुझ में होवे ॥ ५२ ॥

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य परमात्मा की शरण में रहकर इस प्रकार सुख पावे, जैसे बालक माता के पास पाता है, और ऐसा प्रयत्न करे कि सब प्राणी एक दूसरे के समान सुख पावें और ज्ञानी महात्माओं के समान आत्मावलम्बन करें ॥ ५२ ॥

मन्त्राः ५३-५५ ॥

पूषा देवता ॥ ५३, ५५ भुरिक् त्रिष्टुप् ; ५४ त्रिष्टुप् ॥

सन्मार्गगमनोपदेशः—सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने का उपदेश ॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥

अग्नीषोमा । पथि-कृता । स्योनम् । देवेभ्यः । रत्नम् । दधथुः । वि । लोकम् ॥ उप । प्र । ईष्यन्तम् । पूषणम् । यः । वहाति । अञ्जोयानैः । पथि-भिः । तत्र । गच्छतम् ५३

भाषार्थ—(अग्नीषोमा) हे ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् ! [स्त्री पुरुषो] (पथिकृता) मार्ग बनाने वाले तुम दोनों (देवेभ्यः) विद्वानों को (स्योनम्) सुख, (रत्नम्) रत्न और (लोकम्) स्थान (वि) विविध प्रकार (दधथुः) दो । (यः) जो [परमेश्वर] (अञ्जोयानैः) सीधे चलने वाले (पथिभिः)

णेन (जीवेषु) प्राणिषु (भद्रम्) यत् कल्याणम् (तत्) (मयि) प्राणिनि (स्वधा) या स्वधारणशक्तिः (पितृषु) पालकेषु महात्मसु (सा) (त्वयि) प्राणिनि भवतु ॥

५३—(अग्नीषोमा) अग गतौ-नि + षू प्रसवैश्वर्ययोः—मन् । ज्ञानैश्वर्यवन्तौ स्त्रीपुरुषौ (पथिकृता) मार्गकर्तारौ (स्योनम्) सुखम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (रत्नम्) प्रशस्तं धनम् (दधथुः) लोडर्थे लिट् । धत्तम् । दत्तम् (वि) विविधम् (लोकम्) स्थानम् (उप) उपेत्य (प्र) प्रकर्षेण (ईष्यन्तम्)

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गों से [हम सब को] (वहाति) ले चलता है, (प्र ईश्वन्तम्) उस अच्छे प्रकार देखते हुये (पूषणम्) पोषक परमात्मा को (उप) प्राप्त होकर (तत्र) वहां [मार्गों में] (गच्छतम्) तुम दोनों चलो ॥ ५३ ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष विद्वानों का सब प्रकार सत्कार करके वेद-विहित मार्गों पर चल कर परमात्मा को साक्षात् करके परम आनन्द पावें ॥५३॥

पूषा त्वेतश्यवयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः॥५४॥

पूषा । त्वा । इतः । च्यवयतु । प्र । विद्वान् । अनष्ट-पशुः । भुवनस्य । गोपाः ॥ सः । त्वा । एतेभ्यः । परि । ददत् । पितृ-भ्यः । अग्निः । देवेभ्यः । सु-विदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—(विद्वान्) सब जानने वाला, (अनष्टपशुः) जीवों का नाश नहीं करने वाला, (भुवनस्य) संसार का (गोपाः) रक्षक, (पूषा) पोषक परमात्मा (त्वा) तुझे (इतः) यहां से [इस दशा से] (प्र च्यवयतु) आगे को बढ़ावे । (सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (त्वा) तुझे (एतेभ्यः) इन (देवेभ्यः) विद्वान् (सुविदत्रियेभ्यः) बड़े धन वाले (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (परि) सब प्रकार (ददत्) देवे ॥ ५४ ॥

ईष गतिहिंसादर्शनेषु—शतृ । पश्यन्तम् (पूषणम्) तं पोषकं परमात्मानम् (यः) पूषा परमात्मा (°वहाति) लडर्थे लेट् । वहति । नयति (अञ्जोयानैः) अञ्जसा सरलभावेन गन्तृभिः (पथिभिः) मार्गैः (तत्र) तेषु मार्गेषु (गच्छतम्) ॥

५४—(पूषा) पोषकः परमात्मा (त्वा) त्वामुपासकम् (च्यवयतु) गमयतु (प्र) प्रकर्षेण (विद्वान्) (अनष्टपशुः) अनष्टा अहताः पशवः प्राणिनो येन स तथोक्तः (भुवनस्य) संसारस्य (गोपाः) गुपू रक्षणे-आय-प्रत्यये कृते किप्, अल्लोपयलोपौ । गोपायिता । रक्षकः (त्वा) (एतेभ्यः) (परि) सर्वतः (ददत्) दद्यात् (पितृभ्यः) पालकेभ्यो महात्मभ्यः (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वरः (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (सुविदत्रियेभ्यः) सुविदत्र-घप्रत्ययः । सुविदत्रं धनं भवति विन्दतेः-निरु० ७ । ६ । बहुधनाढ्येभ्यः । महाधनिभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य सर्वदर्शक, सर्वरक्षक, सर्वनियामक, जगदीश्वर की उपासना करके आगे बढ़े, जिस से वह बड़े बड़े विद्वानों में स्थान पावे ॥ ५४ ॥

मन्त्र ५४ अभेद से और मन्त्र ५५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०।१७ ।३,४॥

आयुर्विश्वायुःपरि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५

आयुः । विश्व-आयुः । परि । पातु । त्वा । पूषा । त्वा । पातु । प्र-पथे । पुरस्तात् ॥ यत्र । आसते । सु-कृतः । यत्र । ते । ईयुः । तत्र । त्वा । देवः । सविता । दधातु ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—(विश्वायुः) सब को अन्न देने वाला (आयुः) सर्वव्यापक परमात्मा (त्वा) तेरी (परि) सब ओर से (पातु) रक्षा करे, (पूषा) पोषक परमेश्वर (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पुरस्तात्) सामने से (त्वा) तेरी (पातु) रक्षा करे । (यत्र) जहां [उत्तम स्थान में] (सुकृतः) सुकर्मी लोग (आसते) बैठते हैं, और (यत्र) जहां [उत्तम मार्ग में] (ते) वे (ईयुः) चले हैं, (तत्र) वहां [उस स्थान और मार्ग में] (त्वा) तुझको (देवः) प्रकाशमय (सविता) सर्वप्रेरक परमात्मा (दधातु) रक्खे ॥ ५५ ॥

भावार्थ—सर्वपालक, सर्वव्यापक, सर्वपोषक जगदीश्वर का आश्रय लेकर सदा सुकर्मी लोग सन्मार्ग पर चलते हैं, उसी जगत् पिता की शरण में रह कर प्रत्येक मनुष्य श्रेष्ठ मार्ग पर चल कर सुखी होवे ॥ ५५ ॥

५५—(आयुः) छन्दसीणः । उ० १ । २ । इण् गतौ—उण् । सर्वव्यापकः (विश्वायुः) आयुः, अन्नम्–निघः २ । ७ । सर्वेभ्यः प्रापणीयमन्नं यस्मात् सः परमेश्वरः (परि) सर्वतः (पातु) (त्वा) (पूषा) पोषकः परमेश्वरः (त्वा) (पातु) (प्रपथे) प्रकृष्टे मार्गे (पुरस्तात्) अग्रे (यत्र) यस्मिन् श्रेष्ठस्थाने (आसते) उपविशन्ति (सुकृतः) पुण्यकर्माणः (यत्र) सन्मार्गे (ते) सुकृतिनः (ईयुः) जग्मुः (तत्र) स्थाने मार्गे च (त्वा) (देवः) प्रकाशमयः (सविता) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (दधातु) धारयतु । स्थापयतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रः ५६ ॥

परमात्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पुरुषार्थकरणोपदेशः—पुरुषार्थ करने का उपदेश ॥

इमौ युनज्मि ते वही असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां युमस्य सदनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥

इमौ । युनज्मि । ते । वही इति । असु-नीताय । वोढवे ॥
ताभ्याम् । युमस्य । सदनम् । सम्-इतीः । च । अव । गच्छतात् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—(इमौ) इन (वही) ले चलने वाले दोनों [प्राण और अपान] को (असुनीताय) बुद्धि से ले जाये गये (ते) तुझे (वोढवे) ले चलने के लिये (युनज्मि) मैं [परमेश्वर] युक्त करता हूं। (ताभ्याम्) उन दोनों [प्राण और अपान] के द्वारा (यमस्य) नियम के (सदनम्) प्राप्ति योग्य पद को (च) और (समितीः) समितियों [सभाओं] को (अव गच्छतात्) निश्चय से तू प्राप्त हो ॥ ५६ ॥

भावार्थ—परमात्मा आज्ञा देता है कि हे मनुष्य मैं ने प्राण अपान आदि बुद्धि सहित तुझे इस लिये दिये हैं कि तू नियम के साथ उत्तम पद प्राप्त करके सभाओं में प्रतिष्ठा पावे ॥ ५६ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

मन्त्राः ५७—६० ॥

जीवात्मा देवता ॥ ५७ भुरिक् त्रिष्टुप् , ५८ निचृत् त्रिष्टुप् ; ५९ , ६० त्रिष्टुप् ॥

५६— (इमौ) शरीरे वर्तमानौ (युनज्मि) अहं परमेश्वरो योजयामि (ते) द्वितीयार्थे चतुर्थी । त्वाम् (वही) वोढारौ प्राणापानौ (असुनीताय) असु-रिति प्रज्ञानामास्यत्यनर्थान्-निरु० १० । ३४ । प्रज्ञया नीतं प्रापितम् (वोढवे) वह प्रापणे—तवेन्प्रत्ययः । वोढुम् । नेतुम् (ताभ्याम्) प्राणापानाभ्यां द्वारा (यमस्य) नियमस्य (सदनम्) स्थानम् । पदम् (समितीः) सभाः (च) (अव) निश्चयेन (गच्छतात्) प्राप्नुहि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकर्म करणोपदेशः—सुकर्म करने का उपदेश ॥

ए॒तत् त्वा॒ वासः॑ प्रथ॒मं न्वाग॒न्नपै॒तदू॑ह॒ यदि॒हाबि॑भः पु॒रा ।
इ॒ष्टा॒पू॒र्तम॑नु॒संक्रा॑म वि॒द्वान् यत्र॑ ते द॒त्तं ब॑हु॒धा विब॑न्धुषु ॥५७॥

ए॒तत् । त्वा॒ । वासः॑ । प्र॒थ॒मम् । नु । आ । अ॒ग॒न् । अप॑ । ए॒तत् । ऊ॒ह॒ । यत् । इ॒ह । अबि॑भः । पु॒रा ॥ इ॒ष्टा॒पू॒र्तम् । अ॒नु॒-संक्रा॑म । वि॒द्वान् । यत्र॑ । ते॒ । द॒त्तम् । ब॒हु॒-धा । वि-ब॑न्धुषु ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—(एतत्) यह (प्रथमम्) मुख्य (वासः) वस्त्र (त्वा) तुझे (नु) अब (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, (एतत्) इस [वस्त्र] को (अप ऊह) छोड़ (यत्) जो (इह) यहां पर (पुरा) पहिले (अबिभः) तू ने धारण किया है। (विद्वान्) विद्वान् तू (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन और अन्नदान आदि पुण्य कर्म के (अनुसंक्राम) पीछे पीछे चल, (यत्र) जिस [पुण्य कर्म] में (ते) तेरा (दत्तम्) दान (बहुधा) बहुत प्रकार से (विबन्धुषु) बिना बन्धु वालों [दीन, अनाथों] में है ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जैसे नवीन वस्त्र पाने पर जीर्ण वस्त्र छोड़ दिया जाता है, वैसे ही ज्ञान की प्राप्ति पर अज्ञान त्यागा जाता है। मनुष्य को चाहिये कि वेदाध्ययन आदि शुभकर्म करता हुआ निष्काम होकर परोपकार करे ॥ ५७ ॥

५७—(एतत्) इदं दृश्यमानम् (त्वा) त्वाम् (वासः) वस्त्रम् (प्रथमम्) मुख्यम् (नु) इदानीम् (आगन्) आगमत् । प्राप्नोत् (अप ऊह) ऊह वितर्के । परित्यज (एतत्) वस्त्रम् (यत्) वस्त्रम् (इह) अत्र संसारे (अबिभः) बिभर्त्तेर्लङ् । अधारयः (पुरा) पूर्वकाले (इष्टापूर्तम्) अ० २ । १२ । १४ । यज्ञवेदाध्ययनान्नप्रदानादि पुण्यकर्म (अनुसंक्राम) अनुलक्ष्य गच्छ (विद्वान्) (यत्र) यस्मिन् पुण्यकर्मणि (ते) तव (दत्तम्) दानम् (बहुधा) बहुप्रकारेण (विबन्धुषु) विगतबान्धवेषु । दीनेषु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ५८

अग्नेः । वर्म । परि । गोभिः । व्ययस्व । सम् । प्र । ऊर्णुष्व । मेदसा । पीवसा । च ॥ न । इत् । त्वा । धृष्णुः । हरसा । जर्हृषाणः । दधृक् । वि-धक्षन् । परि-ईङ्खयातै ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (अग्नेः) ज्ञानमय परमेश्वर के (वर्म) कवच [समान आश्रय] को (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (परि) सब ओर से (व्ययस्व) तू पहिन और (मेदसा) ज्ञान से (च) और (पीवसा) वृद्धि से [अपने को] (सम्) सब प्रकार (प्र ऊर्णुष्व) ढके रख । (न इत्) नहीं तो (धृष्णुः) साहसी, (जर्हृषाणः) अत्यन्त हर्ष मनाने वाला, (दधृक्) निर्भय परमात्मा (त्वा) तुझ को (हरसा) [अपने] तेज से (विधक्षन्) विविध प्रकार सन्ताप देता हुआ (परीङ्खयातै) इधर उधर चला देगा ॥ ५८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य वेदों के मनन से परमात्मा का आश्रय ले बुद्धि बढ़ाकर उन्नति करें, नहीं तो सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के नियम से दुष्ट मूर्ख नरक भोगेगा ॥ ५८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । ७ । और महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

५८—(अग्नेः) ज्ञानमयस्य परमात्मनः (वर्म) कवचरूपमाश्रयम् (परि) सर्वतः (गोभिः) वेदवाग्भिः (व्ययस्व) व्येञ् संवरणे । संवृणु (सम्) सम्यक् (प्र) प्रकर्षेण (ऊर्णुष्व) आच्छादय (मेदसा) मेद मेधायाम्—असुन् । मेधया । ज्ञानेन (पीवसा) पीव स्थौल्ये—असुन् । वृद्ध्या (च) (न इत्) नो चेत् (त्वा) (धृष्णुः) धर्षकः । अविभविता (हरसा) स्वतेजसा (जर्हृषाणः) अत्यन्तं हृष्यन् (दधृक्) ऋत्विग्दधृक्स्रग्० । पा० । ३ । २ । ५९ । धृष्णोतेः क्विन् द्वित्वमन्तोदात्तत्वं च । धृष्टः । प्रगल्भः (विधक्षन्) विविधं दग्धुं तापयितुमिच्छन् (परीङ्खयातै) ईङि गतौ—लेट् । ईङ्खत इति गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । सर्वथा चालयेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन । अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥५९

दण्डम् । हस्तात् । आ-ददानः । गत-असोः । सह । श्रोत्रेण । वर्चसा । बलेन ॥ अत्र । एव । त्वम् । इह । वयम् । सु-वीराः । विश्वाः । मृधः । अभि-मातीः । जयेम ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—(गतासोः) प्राण छोड़े हुये [मृतक समान निरुत्साही] पुरुष के (हस्तात्) हाथ से (श्रोत्रेण) [अपने] श्रवण सामर्थ्य [विद्याबल], (वर्चसा) तेज और (बलेन सह) बल के साथ (दण्डम्) दण्ड [शासन पद] को (आददानः) लेता हुआ (त्वम्) तू (अत्र एव) यहां पर और (वयम्) हम (इह) यहां पर (सुवीराः) बड़े वीरों वाले होकर (विश्वाः) सब (मृधः) संग्रामों और (अभिमातीः) अभिमानी शत्रुओं को (जयेम) जीतें ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्म में निरुत्साही हो, सब धर्मात्मा पुरुष उस दुराचारी को पदच्युत करके परास्त करें ॥ ५९ ॥

मन्त्र ५९ का उत्तरार्द्ध और मन्त्र ६० का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १८ । ९ ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन । सुमार्गृभाय वसु भूरि पुष्टमुर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥६०॥(१२)

धनुः । हस्तात् । आ-ददानः । मृतस्य । सह । क्षत्रेण । वर्चसा ।

५९—(दण्डम्) शासनाधिकारम् (हस्तात्) अधिकारात् (आददानः) गृह्णानः (गतासोः) विगतप्राणस्य । मृतकसदृशस्य (सह) (श्रोत्रेण) श्रवणसामर्थ्येन । विद्याबलेन (वर्चसा) तेजसा (बलेन) सामर्थ्येन (अत्र) अस्मिन् संसारे (एव) (त्वम्) (इह) (वयम्) पुरुषार्थिनः (सुवीराः) सुवीरवन्तः (विश्वाः) सर्वाः (मृधः) संग्रामान् (अभिमातीः) अभिमन्यमानान् शत्रून् (जयेम) अभिभवेम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलेन ॥ सम्-आगृभाय । वसु । भूरि । पुष्टम् । अर्वाङ् । त्वम् । आ । इहि । उप । जीव-लोकम् ॥ ६० ॥ (१२)

भाषार्थ—(मृतस्य) मरे हुये [मरे हुये के समान दुर्बलेन्द्रिय पुरुष] के (हस्तात्) हाथ से (धनुः) धनुष [शासनशक्ति] को (क्षत्रेण) [अपने] क्षत्रियपन, (वर्चसा) तेज और (बलेन सह) बल के साथ (आददानः) लेता हुआ तू (भूरि) बहुत (पुष्टम्) पुष्ट [पुष्टिकारक] (वसु) धन (समागृभाय) यथावत् संग्रह कर और (अर्वाङ्) सामने होता हुआ (त्वम्) तू (जीवलोकम्) जीवते हुये [पुरुषार्थी] मनुष्यों के समाज में (उप) आदर से (आ इहि) आ ॥ ६० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मके पालने में पुरुषार्थ न करता हो, उस को अधिकार से हटाकर पुरुषार्थी पुरुष धर्मसे धन का संग्रह करके सब लोगों की वृद्धि करे ॥ ६० ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३ [मन्त्राः १-७३] ॥

मन्त्राः १—४ ॥ नारी देवता ॥ १,२,३ त्रिष्टुप्, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

नियोगविधानोपदेशः—नियोग विधान का उपदेश ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥

६०— (धनुः) चापम् । शासनचिह्नम् (हस्तात्) अधिकारात् (आददानः) गृह्णानः (मृतस्य) मृतकतुल्यस्य दुर्बलेन्द्रियस्य (सह) (क्षत्रेण) क्षत्रियत्वेन (वर्चसा) (बलेन) (समागृभाय) ग्रह उपादाने–श्ना-प्रत्ययस्य शायजादेशः, हस्य भः । संग्रहेण प्राप्नुहि (वसु) धनम् (भूरि) बहुलम् (पुष्टम्) पोषकम् (अर्वाङ्) अभिमुखः सन् (त्वम्) (एहि) आगच्छ (उप) पूजायाम् (जीवलोकम्) जीवानां जीवितानां पुरुषार्थिनां लोकं समाजम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयम् । नारी । पति-लोकम् । वृणाना । नि । पद्यते । उप । त्वा । मर्त्य । प्र-इतम् ॥ धर्मम् । पुराणम् । अनु-पालयन्ती । तस्यै । । प्र-जाम् । द्रविणम् । च । इह । धेहि ॥ १ ॥

भाषार्थ—(मर्त्य) हे मनुष्य ! (इयम्) यह (नारी) नारी (पतिलोकम्) पति के लोक [गृहाश्रम के सुख] को (वृणाना) चाहती हुयी और (पुराणम्) पुराने [सनातन] (धर्मम्) धर्म को (अनुपालयन्ती) निरन्तर पालती हुयी (प्रेतम्) मरे हुये [पति] की (उप) स्तुति करती हुयी (त्वा) तुझको (निपद्यते) प्राप्त होती है, (तस्यै) उस [स्त्री] को (प्रजाम्) सन्तान (च) और (द्रविणम्) बल (इह) यहां पर (धेहि) धारण कर ॥१ ॥

भावार्थ—यदि विधवा स्त्री मृत पति के गुण गाती हुयी सन्तान उत्पन्न करना चाहे, वह मृतस्त्रीक पुरुष के साथ यथाविधि नियोग करके अपने कुल की वृद्धि के लिये सन्तान उत्पन्न करे। इसी प्रकार मृतस्त्रीक पुरुष अपने कुलकी बढ़ती के लिये सन्तान उत्पन्न करने को विधवा स्त्री से विधिवत् नियोग करे ॥ १ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका नियोग विषय में व्याख्यात है ॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ २ ॥

१—(इयम्) दृश्यमाना विधवा (नारी) ऋतोऽञ् । पा० ४ । ४ । ४६ । नराच्चेति वक्तव्यम् । इति तत्रैव वार्त्तिकं च । नृ, नर—अञ् । शार्ङ्गरवाद्यञोङीन् । पा० ४ । १ । ७३ । इति ङीन् । नुर्नरस्य वा धर्माचारोऽस्यां सा । स्त्री (पतिलोकम्) पतिगृहम् । गृहाश्रमसुखम् (वृणाना) वाञ्छन्ती (निपद्यते) प्राप्नोति (उप) पूजायाम् । उपगच्छन्ती । स्तुवाना (त्वा) त्वाम् मृतस्त्रीकम् (मर्त्य) हे मनुष्य (प्रेतम्) प्र+इण् गतौ-क्त । मृतं पतिम् (धर्मम्) धारणीयं नियमम् (पुराणम्) पुरा अग्रे नीयते । णीञ्—ड । सनातनम् (अनुपालयन्ती) निरन्तरं रक्षन्ती (तस्यै) विधवायै (प्रजाम्) सन्तानम् (द्रविणम्) बलम्—निघ० २ । ६ (च) (इह) गृहाश्रमे (धेहि) धारय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत् । ईर्ष्व । नारि । अभि । जीव-लोकम् । गत-असुम् । एतम् । उप । शेषे । आ । इहि ॥ हस्त-ग्राभस्य । दधिषोः । तव । इदम् । पत्युः । जनि-त्वम् । अभि । सम् । बभूथ ।२

भाषार्थ—(नारि) हे नारी ! (जीवलोकम् अभि) जीवते पुरुषों के समाज की ओर (उत्) उठकर (ईर्ष्व) चल, (एतम्) इस (गतासुम्) गये प्राण वाले [मरे वा रोगी पति] को (उप) सराहती हुयी (शेषे) तू पड़ी है, (आ इहि) आ (दधिषोः) वीर्यदाता [नियुक्त पति] से (ते) अपने (हस्तग्राभस्य) [विवाह में] हाथ पकड़ने वाले (पत्युः) पति के (जनित्वम्) सन्तान को (इदम्) अब (अभि) सब प्रकार (सम्) यथावत् [शास्त्रानुसार] (बभूथ) तू प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—विपत्ति काल में अर्थात् सन्तान न होने पर पति के बड़े रोगी होने वा मर जाने पर स्त्री मृतस्त्रीक पुरुष से नियोग कर सन्तान उत्पन्न करके पति के वंश को चलावे । इसी प्रकार जिस पुरुष की स्त्री बड़ी रोगिनी हो वा मर गई हो वह विधवा से नियोग कर सन्तान उत्पन्न करके अपना वंश चलावे ॥ २ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १८ । ८, वहां पर (दधिषोः) के स्थान पर (दिधिषोः) पद है और ऋग्वेद पाठ ही महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि

२—(उत्) उत्थाय (ईर्ष्व) गच्छ (नारि) म० १ । हे स्त्रि (अभि) अभिलक्ष्य (जीवलोकम्) जीवितानां समाजम् (गतासुम्) विगतप्राणम् । मृतं रोगिणं वा (एतम्) दृश्यमानम् (उप) पूजायाम् । उपगच्छन्ती । स्तुवाना (शेषे) शीङ् स्वप्ने । भूमौ वर्तसे (एहि) आगच्छ (हस्तग्राभस्य) ग्रह उपादाने—कर्मण्यण्, हस्य भः । विवाहे गृहीतहस्तस्य (दधिषोः) दधातेर्द्वित्वमित्त्वं षुक् च । उ० ३ । ९७ । इति दर्शनात् । कुर्भ्रश्च । उ० १ । २२ । दधातेः कु, इत्वं षुगागमश्च । दध्रिषुरेव दिधिषुः । नियुक्तायां स्त्रियां गर्भस्थापकात् पुरुषात् (तव) स्वकीयायाः (इदम्) इदानीम् (पत्युः) स्वामिनः (जनित्वम्) सन्तानम् (अभि) सर्वतः (सम्) सम्यक् । यथाविधि (बभूथ) भू सत्तायां प्राप्तौ च । छन्दसि लुङ्लुङ्लिटः । पा० ३ । ४ । ६ । लोडर्थे लिट् । बभूविथ । प्राप्नुहि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य भूमिका के और सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास के नियोग विषय में में व्याख्यात है ॥

मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ५८ आदि में नियोग विषय का वर्णन है, यहां दो श्लोक लिखे जाते हैं—

देवराद् वा सपिण्डाद् वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ १ ॥
विधवायां नियोगार्थे निर्वृते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥ २ ॥

मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ५९, ६२ ॥

देवर [पति के छोटे वा बड़े भाई] से अथवा सपिण्ड से [पति की छह पीढ़ियों के भीतर वाले से] यथाविधि [पति आदि बड़े लोगों द्वारा] नियुक्त की हुयी स्त्री को सन्तान के सर्वथा नाश होने पर यथेष्ट सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये ॥ १ ॥

विधवा [आदि] में नियोग का प्रयोजन यथाविधि पूरा हो जाने पर दोनों [पुरुष और स्त्री] गुरु के समान और पुत्र बधू के समान आपस में बर्ताव करें ॥ २ ॥

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ३
अपश्यम् । युवतिम् । नीयमानाम् । जीवाम् । मृतेभ्यः ।
परि-नीयमानाम् ॥ अन्धेन । यत् । तमसा । प्रावृता ।
आसीत् । प्राक्तः । अपाचीम् । अनयम् । तत् । एनाम् ॥३॥

भाषार्थ—(जीवाम्) जीवती हुयी [पुरुषार्थ युक्त] (युवतिम्) युवा स्त्री (नीयमानाम्) ले जायी गयी और (मृतेभ्यः) मरे हुओं से [मृतक वा महारोगियों से] (परिणीयमानाम्) पृथक् ले जायी गयी (अपश्यम्) मैं ने देखी है । (यत्) क्योंकि वह (अन्धेन तमसा) गहरे अन्धकार से [सन्तान न

३—(अपश्यम्) अहं दृष्टवानस्मि (युवतिम्) यौवनवतीं स्त्रियम् (नीयमानाम्) प्राप्यमाणाम् (जीवाम्) जीवन्तीम् प्राणवतीम् (मृतेभ्यः) गतप्राणपुरुषेभ्यः सकाशात् (परिणीयमानाम्) पृथक् प्राप्यमाणाम् (अन्धेन) गाढेन (यत्) यस्मात् कारणात् (तमसा) अन्धकारेण सन्तानाभावशोकेन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के शोक से] (प्रावृता) ढकी हुयी (आसीत्) थी, (तत्) इसी से (एनाम्) उस (अपाचीम्) अलग पड़ी हुयी स्त्री को (प्राक्तः) सामने (अनयम्) मैं लाया हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदि स्त्री का पति मर गया हो वा महारोगी हो और स्त्री सन्तान के न होने से दुःखित हो, तो बुद्धिमान् लोग उस को धैर्य देकर नियोग विधि से सन्तान उत्पन्न करा के प्रसन्न करें ॥ ३ ॥

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥

प्र-जानती । अघ्न्ये । जीव-लोकम् । देवानाम् । पन्थाम् । अनु-सं चरन्ती ॥ अयम् । ते । गो-पतिः । तम् । जुषस्व । स्वः-गम् । लोकम् । अधि । रोहय । एनम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(अघ्न्ये) हे निष्पाप स्त्री ! तू (जीवलोकम्) जीवित मनुष्यों के समाज को (प्रजानती) अच्छे प्रकार जानती हुई और (देवानाम्) विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग पर (अनुसंचरन्ती) निरन्तर चलती हुई है। (अयम्) यह [नियुक्त पति] (ते) तेरी (गोपतिः) वाणी का रक्षक [वंश चलाने की बात निबाहने वाला] है, (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन कर (एनम्) इसको (स्वर्गम् लोकम्) स्वर्ग लोक [सुख के समाज] में (अधि) अधिकार पूर्वक (रोहय) प्रकट कर ॥ ४ ॥

(प्रावृता) अतिशयेन वेष्टिता (आसीत्) (प्राक्तः) आभिमुख्येन (अपाचीम्) अपीच्यमपचितमपगतमपिहितमन्तर्हितं वा—निरु० ४ । २५ । अपगताम् । पृथग् गताम् (अनयम्) आनीतवानस्मि (तत्) तस्मात् कारणात् (एनाम्) युवतिम् ॥

४—(प्रजानती) प्रकर्षेण जानाना (अघ्न्ये) हे अहन्तव्ये । निष्पापे (जीवलोकम्) जीवितानां समाजम् (देवानाम्) विदुषाम् (पन्थाम्) पन्थानम् (अनुसंचरन्ती) निरन्तरं गच्छन्ती (अयम्) नियुक्तः पतिः । दधिषुः (ते) तव (गोपतिः) वाचो रक्षकः (जुषस्व) सेवस्व । प्रीणीहि (स्वर्गम्) सुखप्रापकम् (लोकम्) समाजम् (अधि) अधिकृत्य (रोहय) प्रादुर्भावय । प्रापय (एनम्) पुरुषम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—कुल की वृद्धि के मर्म को जानने हारी धर्मशीला स्त्री नियुक्त पति से यथेष्ट कुल वर्धक सन्तान अपने लिये और उस पुरुष के लिये उत्पन्न करे और इस प्रकार वे दोनों अपने अपने कुलों को बढ़ाकर अपने वचन की रक्षा करें ॥ ४ ॥

मन्त्राः ५—९ ॥

अग्निर्देवता ॥ ५ निचृद् गायत्री; ६ अनुष्टुप्; ७, ९ त्रिष्टुप्; ८ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ॥

उन्नतिकरणोपदेशः—उन्नति करने का उपदेश ॥

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥५॥

उप । द्याम् । उप । वेतसम् । अवत्-तरः । नदीनाम् ॥
अग्ने । पित्तम् । अपाम् । असि ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (द्याम्) विद्या प्रकाश को (उप) पाकर और (नदीनाम्) स्तुतियों के (वेतसम्) विस्तार को (उप) आदर से (अवत्तरः) अधिक रक्षा करता हुआ तू (अपाम्)प्राणों के (पित्तम्) तेज (असि) है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्या प्राप्त करके स्तुति योग्य व्यवहारों की रक्षा रक्षा करता हुआ सब प्राणियों का बल बढ़ावे ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो यजुर्वेद १७ । ६ ॥

५—(उप) उपेत्य । प्राप्य (द्याम्) विद्याप्रकाशम् (उप) पूजायाम् (वेतसम्) वेञस्तुट् च । उ० ३ । ११८ । वेञ् तन्तुसन्ताने—असच् तुट् च । विस्तारम् (अवत्तरः) अव रक्षणे—शतृ, तरप् । अतिशयेन अवन् रक्षन् (नदीनाम्) णद अव्यक्ते शब्दे भाषायां स्तुतौ च—अच्, ङीप् । नदतिरर्चतिकर्मा—निघ० ३ । १४ । ऋषिर्नदो भवति नदतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० ५।२।स्तुतीनाम् (अग्ने) हे विद्वन् पुरुष (पित्तम्) अपि + देङ् पालने—क्त । अच उपसर्गात्तिः । पा० ७ । ४ । ४७ । इति तादेशः । अपिदीयते रक्ष्यते शरीरं येन तत् । तेजः (अपाम्) प्राणानाम् (असि) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥

यम् । त्वम् । अग्ने । सम्-अदहः । तम् । ऊं इति । निः । वापय । पुनः ॥ क्याम्बूः । अत्र । रोहतु । शाण्ड-दूर्वा । वि-अल्कशा ६

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) तू ने (यम्) जिस [ब्रह्मचारी] को (समदहः) यथाविधि तपाया है [ब्रह्मचर्य तप कराया है] (तम् उ) उस को (पुनः) अवश्य (निः) निश्चय करके (वापय) बीज के समान फैला । (अत्र) यहां [संसार में] (क्याम्बूः) ज्ञान उपदेश करने वाली, (शाण्डदूर्वा) दुःख नाश करने वाली और (व्यल्कशा) विविध प्रकार शोभा वाली [शक्ति] (रोहतु) प्रकट होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—माता पिता आचार्य आदि विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य आदि तप करा के सन्तानों को ऐसी शिक्षा देवें कि जिस से वे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कर सकें ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १० । १६ । १३ और वही पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

इदं तु एकं पर ऊं तु एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
सं वेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥

६—(यम्) ब्रह्मचारिणम् (त्वम्) (अग्ने) हे विद्वन् (समदहः) समन्ताद् ब्रह्मचर्यादि तपः कारितवानसि (तम्) ब्रह्मचारिणम् (उ) पादपूर्त्तौ (निः) निश्चयेन (वापय) डु वप बीजसन्ताने—णिच् । बीजवद् विस्तारय (पुनः) अवधारणे (क्याम्बूः) वातेर्डिच्च । उ० ४ । १३४ । कि कित वा ज्ञाने-इण्प्रत्ययः, डित् । णित्कशिपद्यर्त्तेः । उ० १ । ८५ । अबि शब्दे-ऊप्रत्ययो णित् । ज्ञानस्य शब्दयित्री ज्ञापयित्री (अत्र) संसारे (रोहतु) प्रादुर्भवतु (शाण्डदूर्वा) शडि संघाते रोगे च—घञ्+दुर्व दूर्व हिंसायाम्—अच्, टाप्, दुःखस्य नाशयित्री (व्यल्कशा) कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः । उ० ३ । ४० । वि+अल भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणेषु—कप्रत्ययः, शो मत्वर्थीयः । विविधशोभावती शक्तिः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदम् । ते । एकम् । परः । ऊं इति । ते । एकम् । तृतीयेन । ज्योतिषा । सम् । विशस्व ॥ सुम्-वेशने । तन्वा । चारुः । एधि । प्रियः । देवानाम् । परमे । सधऽस्थे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वान् पुरुष !] (ते) तेरे लिये (इदम्) यह [कार्य रूप जगत्] (एकम्) एक [ज्योति तुल्य] है, (उ) और (परः) परे [आगे बढ़कर] (ते) तेरे लिये (एकम्) एक [कारण रूप जगत् ज्योति समान] है, (तृतीयेन) तीसरी (ज्योतिषा) ज्योति [प्रकाशस्वरूप परब्रह्म] के साथ (सम्)मिलकर (विशस्व) प्रवेश कर। (संवेशने) यथावत् प्रवेशविधि में (तन्वा) [अपनी] उपकार क्रिया से (चारुः) शोभायमान और (परमे) बड़े ऊंचे (सधस्थे) समाज में (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (एधि) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य स्थूल और सूक्ष्म जगत् के तत्त्व को परमात्मा के ज्ञान के साथ जान कर विद्या द्वारा उपकार करता हुआ विद्वानों में उच्च पद प्राप्त करे ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ५६ । १ । और सामवेद में पू० १ । ७ । ३ ॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे । तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं यमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८ ॥

उत् । तिष्ठ । प्र । इहि । प्र । द्रव । ओकः । कृणुष्व ।

७—(इदम्) दृश्यमानं कार्यरूपं जगत् (ते) तुभ्यम् (एकम्) ज्योतिर्वत् (परः) परस्तात् । अग्रे (उ) चार्थे (ते) तुभ्यम् (एकम्) कारणरूपं सूक्ष्मं जगत्, ज्योतिः समानम् (तृतीयेन) कार्यकारणरूपसंसारात् परेण (ज्योतिषा) प्रकाशस्वरूपेण परब्रह्मणा (सम्)संगत्य (विशस्व) प्रवेशं कुरु (संवेशने) सम्यक् प्रवेशविधाने (तन्वा) तन उपकारे, तनु विस्तारे-ऊ । उपकारक्रियया (चारुः) शोभनः (एधि) अस भुवि—लोट् । भव (प्रियः) प्रीतिकरः (देवानाम्) विदुषाम् (परमे) उत्कृष्टे (सधस्थे) समाजे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलिले । सुध-स्थे ॥ तत्र । त्वम् । पितृ-भिः । सम् -विदानः । सम् । सोमेन । मदस्व । सम् । स्वधाभिः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (उत् तिष्ठ) उठ, (प्र इहि) आगे बढ़ (प्र द्रव) आगे को दौड़ और (सलिले) चलते हुये जगत् में (सधस्थे) समाज के बीच (ओकः) घर (कृणुष्व) बना। (तत्र) वहां (त्वम्) तू (पितृभिः) पितरों [पिता आदि रक्षक महात्माओं] के साथ (संविदानः) मिलता हुआ (सोमेन) ऐश्वर्य से (सम्) मिलकर और (स्वधाभिः) आत्म-धारण शक्तियों से (सम्) मिल कर (मदस्व) आनन्द पा ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य सदा पुरुषार्थ करके विद्वानों के सत्संग से प्रतिष्ठित होकर ऐश्वर्य प्राप्त करे और आत्मावलम्बन करता हुआ सुखी रहे ॥ ८ ॥

प्र च्यवस्व तुन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्ट मनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥

प्र । च्यवस्व । तुन्वम् । सम् । भरस्व । मा । ते । गात्रा । वि । हायि । मो इति । शरीरम् ॥ मनः । नि-विष्टम् । अनु-संविशस्व । यत्र । भूमेः । जुषसे । तत्र । गच्छ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (तन्वम्) [अपने] शरीर को (प्र) आगे (च्यवस्व) चला और (सम्) मिलकर (भरस्व) पोषण कर, [जिस से] (मा) न तो (ते) तेरे (गात्रा) अङ्ग (मो) और न (शरीरम्) [तेरा]

८—(उत्तिष्ठ) ऊर्ध्वं तिष्ठ (प्रेहि) अग्रे गच्छ (प्र द्रव) अग्रे धाव (ओकः) गृहम् (कृणुष्व) कुरु (सलिले) षल गतौ—इलच् । संगते जगति यथा सायणः—ऋग्० १० । १२९ । ३ (सधस्थे) समाजे (तत्र) समाजे (त्वम्) (पितृभिः) रक्षकैर्महात्मभिः (संविदानः) संगच्छमानः (सम्) संगत्य (सोमेन) ऐश्वर्येण (मदस्व) तृप्तो भव (सम्) संगत्य (स्वधाभिः) स्वधारणशक्तिभिः । आत्मावलम्बनैः ॥

९—(प्र) प्रकर्षेण । अग्रे (च्यवस्व) च्यावय । गमय (तन्वम्) शरीरम् (सम्) संगत्य (भरस्व) पोषय (मा) निषेधे (ते) तव (गात्रा) अङ्गानि (वि) विपरीतं विचलं भूत्वा (हायि) ओहाक् त्यागे—कर्मणि लुङ् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर (वि) विचल होकर (हायि) छूटे । (निविष्टम्) जमे हुये (मनः) मन के (अनुसंविशस्व) पीछे पीछे प्रवेश कर, और (यत्र) जहां (भूमेः) भूमि की (जुषसे) तू प्रीति करता है, (तत्र) वहां (गच्छ) जा ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शरीर से सदा उद्योग करके सब के पोषण में अपनी शरीर रक्षा करे और दृढ़ संकल्पी होकर आगे बढ़ता हुआ दुष्टों से शिष्टों की रक्षा करे ॥ ६ ॥

मन्त्राः १०—२४ ॥

पितरो देवताः ॥ १०, १२—१४, १६,१७,२०—२२,२४ त्रिष्टुप् ; ११ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ; १५ आर्ची त्रिष्टुप् ; १८ पादनिचृज् जगती ; १६ भुरिक् त्रिष्टुप् ; २३ आर्षी पङ्क्तिः ॥

पितृकर्तव्योपदेशः—पितरों के कर्तव्य का उपदेश ॥

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ।१०।(१३)

वर्चसा । माम् । पितरः । सोम्यासः । अञ्जन्तु । देवाः । मधुना । घृतेन ॥ चक्षुषे । मा । प्र-तरम् । तारयन्तः । जरसे । मा । जरत्-अष्टिम् । वर्धन्तु ॥ १० ॥ (१३)

भाषार्थ—(सोम्यासः) ऐश्वर्य वाले, (देवाः) विद्वान्, (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा] (माम्) मुझ को (वर्चसा) तेज से, (मधुना) विज्ञान और (घृतेन) प्रकाश से (अञ्जन्तु) प्रसिद्ध करें । (चक्षुषे) सूक्ष्म दृष्टि के लिये (मा) मुझे (प्रतरम्) आगे को (तारयन्तः) पार करते हुये [वे लोग]

त्यक्तं भवेत् (मे) नैव (शरीरम्) (मनः) चित्तम् (निविष्टम्) अवस्थितम् (अनुसंविशस्व) अनुसृत्य प्रविष्टो भव (यत्र) स्थाने (भूमेः) पृथिव्याः (जुषसे) प्रीतिं करोषि (तत्र) स्थाने (गच्छ) ॥

१०—(वर्चसा) तेजसा (माम्) (पितरः) रक्षका महात्मानः (सोम्यासः) ऐश्वर्यवन्तः (अञ्जन्तु) अञ्जूव्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । व्यक्तीकुर्वन्तु । विख्यातं कुर्वन्तु (देवाः) विद्वांसः (मधुना) विज्ञानेन (घृतेन) प्रकाशेन (चक्षुषे) सूक्ष्मदर्शनाय (प्रतरम्) प्रकृष्टतरम् । अधिकतरम् (तारयन्तः) पारयन्तः (जरसे)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाले (मा) मुझ को (जरसे) स्तुति के लिये (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग ऐसी शिक्षा प्रणाली चलावें कि जिस से सब लोग बलवान्, विज्ञानवान्, तेजस्वी और सूक्ष्मदर्शी होकर संसार में कीर्ति पावें ॥ १० ॥

वर्चसा मां सम॑नक्त्व॒ग्निर्मे॑धां मे विष्णु॒र्न्य॑नक्त्वासन्। र॒यिं मे॒ विश्वे॒ नि य॑च्छन्तु दे॒वाः स्यो॒ना मा॒पः पव॑नैः पुनन्तु ॥११॥

वर्च॑सा । माम् । सम् । अ॒न॒क्तु॒ । अ॒ग्निः । मे॒धाम् । मे॒ । विष्णुः॑ । नि । अ॒न॒क्तु॒ । आ॒स॒न् ॥ र॒यिम् । मे॒ । विश्वे॑ । नि । य॒च्छ॒न्तु॒ । दे॒वाः । स्यो॒नाः । मा॒ । आपः॑ । पव॑नैः । पु॒न॒न्तु॒ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (वर्चसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) विख्यात करे, (विष्णुः) विष्णु [सर्वव्यापक जगदीश्वर] (मे) मेरे (आसन्) मुख में (मेधाम्) बुद्धि को (नि) नियम से (अनक्तु) प्रसिद्ध करे। (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण (रयिम्) धन (मे) मुझ को (नि) निरन्तर (यच्छन्तु) देवें, (स्योनाः) सुख देने वाले (आपः) आप्त विद्वान् (मा) मुझे (पवनैः) शुद्ध व्यवहारों से (पुनन्तु) शुद्ध करें ॥ ११ ॥

जॄ स्तुतौ-असुन् । जरतिरर्चतिकर्मा-निघ० ३ । १४ । स्तुतये (मा) माम् (जरदष्टिम्) अ० २ । २८ । ५ । जॄ स्तुतौ—अतृन्+अशू व्याप्तौ—क्तिन् । जरता स्तुत्या सह अष्टिः कार्यव्याप्तिर्यस्य तम् (वर्धन्तु) वर्धयन्तु उन्नयन्तु ॥

११—(वर्चसा) तेजसा (माम्) (सम्) सम्यक् (अनक्तु) विख्यातं करोतु (अग्निः) ज्ञानमयः परमेश्वरः (मेधाम्) प्रज्ञाम् (विष्णुः) सर्वव्यापकः परमात्मा (नि) नियमेन (अनक्तु) प्रसिद्धं करोतु (आसन्) आसनि । आस्ये । मुखे (मे) मह्यम् (विश्वे) सर्वे (नि) निरन्तरम् (यच्छन्तु) दाण् दाने । ददतु (देवाः) उत्तमगुणाः (स्योनाः) सुखप्रदाः (मा) माम् (आपः) सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितः-दयानन्दभाष्ये, यजु० ६ । १७ । आप्ता विद्वांसः (पवनैः) शुद्धव्यवहारैः (पुनन्तु) शोधयन्तु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा की आराधना से तेजस्वी होकर विद्या का प्रकाश करें और धर्म से धन प्राप्त करके आप्त विद्वानों द्वारा अपना आचरण शुद्ध रक्खें ॥ ११ ॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ।१२

मित्रावरुणा। परि। माम्। अधाताम्। आदित्याः। मा। स्वरवः। वर्धयन्तु ॥ वर्चः। मे। इन्द्रः। नि। अनक्तु। हस्तयोः। जरत्-अष्टिम्। मा। सविता। कृणोतु ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(मित्रावरुणा) स्नेही और श्रेष्ठ दोनों [माता पिता] ने (माम्) मुझे (परि) सब ओर से (अधाताम्) पुष्ट किया है, (आदित्याः) पृथिवी के (स्वरवः) जयस्तम्भ (मा) मुझे (वर्धयन्तु) बढ़ावें। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (मे) मेरे (हस्तयोः) दोनों हाथों के (वर्चः) बल को (नि) नियम से (अनक्तु) प्रसिद्ध करे, (सविता) सर्वप्रेरक परमात्मा (मा) मुझे (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाला(कृणोतु) करे ॥ १२ ॥

भावार्थ—जिन लोगों के माता पिता आदि बड़े लोग श्रेष्ठ और सच्चे प्रेमी होते हैं, वे ही विजयी हो कर संसार में कीर्ति पाते हैं और परमात्मा के अनुग्रह से अपने भुजबल द्वारा श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्ति करते हैं ॥ १२ ॥

१२—(मित्रावरुणा) स्नेहिश्रेष्ठपुरुषौ मातापितरौ (परि) सर्वतः (माम्) विद्यार्थिनम् (अधाताम्) धृतवन्तौ। पोषितवन्तौ (आदित्याः) अदिति–एय । अदितिः पृथिवीनाम—निघ० १ । १ । अदितेः पृथिव्या एते (मा) माम् (स्वरवः) शॄस्निहि० । उ० १। १०। स्वृ शब्दोपतापयोः–उप्रत्ययः । जयस्तम्भाः (वर्धयन्तु) उन्नयन्तु (वर्चः) शुक्रम्। बलम् (मे) मम (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वरः (नि) नियमेन (अनक्तु) प्रसिद्धं करोतु (हस्तयोः) करयोः (जरदष्टिम्) म० ११। स्तुत्या सह प्रवृत्तिमन्तम् (मा) माम् (सविता) सर्वप्रेरकः परमात्मा (कृणोतु) करोतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो मुमारं प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं सं गमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३॥

यः । मुमारं । प्रथमः । मर्त्यानाम् । यः । प्र-इयाय । प्रथमः । लोकम् । एतम् ॥ वैवस्वतम् । सम्-गमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् । हविषा । सपर्यत ॥ १३ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (यः) जो [मनुष्य] (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के बीच (प्रथमः) मुख्य होकर (ममार) मर गया, और (यः) जो (प्रथमः) मुख्य होकर (एतम् लोकम्) इस लोक में (प्रेयाय) आगे बढ़ा । (वैवस्वतम्) उस मनुष्यों के हितकारी, (जनानाम्) मनुष्यों के (संगमनम्) मेल कराने वाले (यमम्) न्यायकारी (राजानम्) राजा को (हविषा) भक्ति के साथ (सपर्यत) तुम पूजो ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब के हित के लिये आत्मसमर्पण करके उन्नति करता जावे, सब मनुष्य उस के साथ सदा प्रीति करें ॥ १३ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अ० १८ ॥ १ ॥ ४६ ॥

परा यात पितरः आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणे ह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥१४॥

परा । यात । पितरः । आ । च । यात । अयम् । वः । यज्ञः । मधुना । सम्-अक्तः ॥ दत्तो इति । अस्मभ्यम् । द्रविणा ।

१३—(यः) मनुष्यः (ममार) मरणं प्राप्तवान् । आत्मानं समर्पितवान् (प्रथमः) मुख्यः सन् (मर्त्यानाम्) मनुष्याणां मध्ये (यः) (प्रेयाय) अग्रे गतवान् । प्राप्तवान् (प्रथमः) मुख्यः (लोकम्) संसारम् (एतम्) (वैवस्वतम्) विवस्वन्तो मनुष्यनाम—निघ० २ । ३ । तस्मै हितम् । पा० ५ । १ । ५ । इत्यण् । विवस्वद्भ्यो मनुष्येभ्यो हितम् (संगमनम्) संगमयितारम् (जनानाम्) मनुष्याणाम् (यमम्) न्यायकारिणं मनुष्यम् (राजानम्) शासकम् (हविषा) भक्तिदानेन (सपर्यत) पूजयत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इह । भद्रम् । रयिम् । च । नः । सर्व-वीरम् । दधातु ॥१४॥

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि रक्षक महात्माओ] (परा) प्रधानता से (यात) चलो, (च) और (आ यात) आओ, (वः) तुम्हारा (अयम्) यह (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (मधुना) विज्ञान के साथ (समक्तः) सर्वथा प्रख्यात है। (अस्मभ्यम्) हमको (इह) यहां पर (द्रविणा) अनेक धन और (भद्रम्) कल्याण (दत्तो) अवश्य देओ, (च) और (नः) हमें (सर्ववीरम्) सब वीरों को रखने वाला (रयिम्) धन (दधात) धारण करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—विद्वान् माता पिता आदि महापुरुष सन्तान आदि गृहस्थों से मिलकर उन को उपदेश करें कि जिस से वे लोग अनेक धनों को प्राप्त होकर वीर पुरुषों का आदर करते रहें ॥ १४ ॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभरर्चनानाः । विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः१५

कण्वः । कक्षीवान् । पुरु-मीढः । अगस्त्यः । श्याव-अश्वः । सोभरी । अर्चनानाः ॥ विश्वामित्रः । अयम् । जमत्-अग्निः । अत्रिः । अवन्तु । नः । कश्यपः । वाम-देवः ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(अयम्) यह (कण्वः) बुद्धिमान्, (कक्षीवान्) शासन करने वाला, (पुरुमीढः) बड़ा धनी, (अगस्त्यः) पाप नाशक, (श्यावाश्वः) ज्ञान में व्याप्ति वाला (सोभरी) ऐश्वर्य धारण करने वाला, (अर्चनानाः)

१४—(परा) प्राधान्येन (यात) गच्छत (पितरः) हे पित्रादिमहात्मानः (च) (आयात) आगच्छत (अयम्) उपस्थितः (वः) युष्माकम् (यज्ञः) पूजनीयव्यवहारः (मधुना) विज्ञानेन (समक्तः) अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—क्त। सम्यग् व्यक्तीकृतः (दत्तो) दत्त—उ। प्रयच्छतैव (अस्मभ्यम्) (द्रविणा) धनानि (इह) (भद्रम्) कल्याणम् (रयिम्) धनम् (च) (नः) अस्मभ्यम् (सर्ववीरम्) सर्ववीरैरुपेतम् (दधात) धारयत ॥

१५—(कण्वः) अ० ६। ५२। ३। मेधावी (कक्षीवान्) अ० ४। २६। ५। शासनशीलः (पुरुमीढः) अ० ४। २६। ४। बहुधनः (अगस्त्यः) अ० ४। ३७। १। आतोऽनुपसर्गे कः। पा० ३। २। ३। अग + स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनीय जीवन वाला, (विश्वामित्रः) सब का मित्र, (जमदग्निः) [शिल्प और यज्ञ आदि में] अग्नि प्रकाश करने वाला, (अत्रिः) सदा प्राप्ति योग्य, (कश्यपः) सूक्ष्मदर्शी, (वामदेवः) उत्तम व्यवहार वाला, [ये सब गुणी पुरुष] (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—कर्मवीर बुद्धिमान् पुरुष संसार की रक्षा करने में सदा तत्पर रहें ॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव । शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

विश्वामित्र । जमत्-अग्ने । वसिष्ठ । भरत्-वाज । गोतम । वाम-देव ॥ शर्दिः । नुः । अत्रिः । अग्रभीत् । नमः-भिः । सु-संशासः । पितरः । मृडत । नुः ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(विश्वामित्र) हे सब के मित्र ! (जमदग्ने) हे अग्नि के प्रकाश करने वाले ! [शिल्प और यज्ञ में] (वसिष्ठ) हे अत्यन्त श्रेष्ठ ! (भरद्वाज) हे विज्ञान बल के धारण करने वाले ! (गोतम) हे अतिशय स्तुति करने वाले वा विद्या की कामना करने वाले ! (वामदेव) हे श्रेष्ठ व्यवहार वाले !

कप्रत्ययः । अगस्य पापस्य संहन्ता नाशकः (श्यावाश्वः) अ० ४ । २६ । ४ । श्यैङ् गतौ—व+अशू व्याप्तौ—क्वन् । श्यावे ज्ञाने अश्वो व्याप्तिर्यस्य सः (सोभरी) षु प्रसवैश्वर्ययोः—विच्+भर—इञि । सोः ऐश्वर्यस्य भरो भरणं धारणं यस्य सः (अर्चनानाः) अर्चन+अन प्राणने—असुन् । अर्चनमर्चनीयम् अनो जीवनं यस्य सः (विश्वामित्रः) सर्वेषां मित्रम् (अयम्) (जमदग्निः) अ० ४ । २६ । ३ । जमन्तः प्रज्वलन्तोऽग्नयो यज्ञे शिल्पसिद्धौ वा यस्य सः (अत्रिः) अ० १३ । २ । ४ । अत सातत्यगमने—त्रिप् । सदा प्रापणीयो विज्ञानवान् (अवन्तु) रक्षन्तु (नः) अस्मान् (कश्यपः) अ० २ । ३३ । ७ । पश्यकः सूक्ष्मदर्शी (वामदेवः) वामः प्रशस्यो देवो व्यवहारकुशलः ॥

१६—(विश्वामित्र) हे सर्वमित्र (जमदग्ने) हे अग्निप्रकाशक (वसिष्ठ) वसु—ईष्ठन् । हे अतिशयेन श्रेष्ठ (भरद्वाज) हे विज्ञानधारक (गोतम) अ० ४ । २६ । ६ । गो—तमप् । गौः स्तोतृनाम—निघ० ३ । १६ । अतिशयेन स्तोता । यद्वा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[यह तुम सब] (सुसंशासः) उत्तम रीति से सर्वथा शासन करने वाले (पितरः) पितरो ! [रक्षक महात्माओ] (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (शर्दिः) विजयी (अत्रिः) प्राप्ति योग्य ज्ञानी पुरुष ने (नमोभिः) अन्नों के साथ (नः) हमें (अग्रभीत्) ग्रहण किया है ॥ १६ ॥

भावार्थ—शूर वीर ज्ञानी महात्मा लोग ही अन्न आदि से वृद्धि करके सब जीवों को सुख पहुंचावें ॥ १६ ॥

कस्ये मृजानाः यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
अप्यायमानाः प्रजया धनेनार्धं स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

कस्ये । मृजानाः । अति । यन्ति । रिप्रम् । आयुः । दधानाः । प्र-तरम् । नवीयः ॥ आ-प्यायमानाः । प्र-जया । धनेन । अर्धं । स्याम । सुरभयः । गृहेषु ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(कस्ये) [अपने] शासन में (मृजानाः) शुद्ध करते हुये, (प्रतरम्) अधिक श्रेष्ठ और (नवीयः) अधिक नवीन (आयुः) जीवन (दधानाः) धारण करते हुये लोग (रिप्रम्) पाप को (अति) उलांघ कर (यन्ति) चलते हैं (अध) फिर (प्रजया) प्रजा [सन्तान आदि] से और

गौर्वाङ् नाम—निघ० १ । ११ । गो+तमु काङ्क्षायाम्—पचाद्यच् । हे विद्याभिलाषिन् (वामदेव) हे प्रशस्यव्यवहारकुशल (शर्दिः) सर्वधातुभ्य इन् । उ० ४ । ११८ । शृधु शब्दकुत्सायाम्, उन्दने असहने च—इन् धस्य दः । शर्धोबलम्—निघ० २ । ९ । प्रसोढा । अभिभविता । विजेता (अत्रिः) म० १५ । प्राप्तियोग्यो वद्वान् (अग्रभीत्) अग्रहीत् । गृहीतवान् (नमोभिः) अन्नैः (सुसंशासः) सु+सम्+शासु अनुशिष्टौ—विट् । सुष्ठु सम्यक् शासकाः (पितरः) (मृडत) सुखयत (नः) अस्मान् ॥

१७—(कस्ये) अन्नाद्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । कस गतिशासनयोः—यक् । क्षाने । शासने (मृजानाः) शोधकाः (अति) अतीत्य । उल्लङ्घ्य (यन्ति) गच्छन्ति (रिप्रम्) लीरीङोर्ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः । उ० । ५ । ५५ । रीङ् स्रवणे—रप्रत्ययः कुत्सने धातोर्ह्रस्वत्वं पुट् च प्रत्ययस्य । रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः—निरु० ४ । २१ । पापं कष्टम् (आयुः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धनेन) धन से (आप्यायमानाः) बढ़ते हुये (गृहेषु) घरों में हम (सुरभयः) ऐश्वर्यवान् (स्याम) होवें ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि शासक शुद्धाचारी निष्पाप महात्माओं के जीवन को विचार कर अपने को और अपनी प्रजा अर्थात् सन्तान और राज्य जनों को धनी और ऐश्वर्यवान् बनावें ॥ १७ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते । सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते १८

अञ्जते । वि । अञ्जते । सम् । अञ्जते । क्रतुम् । रिहन्ति । मधुना । अभि । अञ्जते ॥ सिन्धोः । उत्-श्वासे । पतयन्तम् । उक्षणम् । हिरण्य-पावाः । पशुम् । आसु । गृह्णते ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(हिरण्यपावाः) तेज [वा सुवर्ण आदि धन] के रक्षक लोग (क्रतुम्) कर्म [वा बुद्धि] को (मधुना) विज्ञान के साथ (अञ्जते) शुद्ध करते हैं, (वि अञ्जते) विख्यात करते हैं, (सम्) मिलकर (अञ्जते) प्राप्त करते हैं, (अभि अञ्जते) सब ओर फैलाते हैं और (रिहन्ति) सराहते हैं। (सिन्धोः) समुद्र के (उच्छ्वासे) बढ़ाव में (पतयन्तम्) जाते हुये

जीवनम् (दधानाः) धारयन्तः (प्रतरम्) अधिकश्रेष्ठम् (नवीयः) नवईयसुन्। नवीनतरम् (आप्यायमानाः) प्रवर्धमानाः (प्रजया) सन्तानराज्यजनरूपया (धनेन) (अध) अथ (स्याम) (सुरभयः) अ० १२ । १ । २३ । सुर ऐश्वर्यदीप्त्योः—अभिच्। ऐश्वर्यवन्तः (गृहेषु) निवासेषु ॥

१८—(अञ्जते) अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । शोधयन्ति (व्यञ्जते) विख्यातं कुर्वन्ति (सम्) संगत्य (अञ्जते) गच्छन्ति । प्राप्नुवन्ति (क्रतुम्) कर्म—निघ० २ । १ । प्रज्ञाम्—निघ० ३ । ९ (रिहन्ति) अर्चन्ति—निघ० ३ । १४ । स्तुवन्ति (मधुना) विज्ञानेन (अभि) सर्वतः (अञ्जते) विस्तारयन्ति । प्रकटयन्ति (उच्छ्वासे) उद्गमे (पतयन्तम्) पत गतौ चुरादिरदन्तः—शतृ । गच्छन्तम् (उक्षणम्) उक्ष वृद्धौ—कनिन्। उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मणः—निरु० १२ । ९ । वृद्धिकर्तारम् (हिरण्यपावाः) कृगृशुदृभ्यो वः । उ० १ । १५५ । हिरण्य + पा रक्षणे—वप्रत्ययः । हिरण्यस्य तेजसः सुवर्णादिधनस्य वा रक्षकाः (पशुम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उक्षणम्) वृद्धि करने वाले (पशुम्) दृष्टि वाले प्राणी को (आसु) इन [प्रजाओं] के बीच (गृह्णते) गहते हैं [सहारा देते हैं] ॥ १८ ॥

भावार्थ—प्रतापी, धनी, विज्ञानी, महात्मा पुरुष शुभ कर्मों और ज्ञानों को संसार में फैलावें और समुद्र वा आकाश आदि कठिन स्थानों में जाने वाले उद्योगी दृष्टिमान् पुरुषों को सब लोगों के बीच सहाय करें ॥ १८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—८ । ८६ । ४३ । और सामवेद में है—पू० ६ । ७ । ११ तथा उ० ७ । ३ । २१ ॥

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविद्त्रा विदथे हूयमानाः ॥१९॥

यत् । वः । मुद्रम् । पितरः । सोम्यम् । च । तेनो इति । सचध्वम् । स्व-यशसः । हि । भूत ॥ ते । अर्वाणः । कवयः । आ । शृणोत । सु-विद्त्राः । विदथे । हूयमानाः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [रक्षक महात्माओ] (यत्) जो कुछ [कर्म] (वः) तुम्हारा (मुद्रम्) हर्षदायक (च) और (सोम्यम्) सोम्य [प्रियदर्शन उत्तम गुणयुक्त] है, (तेनो) उस से ही [हमें] (सचध्वम्) तुम सींचो [बढ़ाओ] और (हि) अवश्य (स्वयशसः) अपने आप यश वाले (भूत) होओ । (अर्वाणः) शीघ्रगामी, (कवयः) बुद्धिमान्, (सुविदत्राः) बड़े धनी और (विदथे) ज्ञान समाज में (हूयमानाः) पुकारे गये (ते) वे तुम (आ) आकर (शृणोत) सुनो ॥ १९ ॥

अर्जिदृशिकम्यमि० । उ० । १ । २७ । दृशिर् प्रेक्षणे—कु । पशुः पश्यतेः—निरु० ३ । १६ । द्रष्टारं जीवम् (आसु) दृश्यमानासु प्रजासु (गृह्णते) गृह्णन्ति ॥

१९—(यत्) यत् किञ्चित् कर्म (वः) युष्माकम् (मुद्रम्) स्फायितञ्चि-वञ्चि० । उ० २ । १३ । मुद हर्षे-रक् । हर्षकरम् (पितरः) हे रक्षकाः पित्रादयः (सोम्यम्) प्रियदर्शनम् । उत्तमगुणविशिष्टम् (च) (तेनो) तेन-उ । तेनैव कर्मणा (सचध्वम्) षच समवाये सेचने च । संगच्छध्वम् । सिञ्चत (स्वयशसः) आत्मयशस्विनः (हि) अवश्यम् (भूत) भवत (ते) ते यूयम् (अर्वाणः) ऋ गतौ—वनिप् । विज्ञानिनः । शीघ्रगामिनः (कवयः) मेधाविनः (आ) आगत्य (शृणोत) शृणुत (सुविदत्राः) बहुधनाः (विदथे) ज्ञानसमाजे (हूयमानाः) आह्वाहनं प्राप्ताः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् महात्मा लोग अपने शान्तिदायक कर्मों से संसार की रक्षा करके यशस्वी होवें ॥ १९ ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा दुष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः । दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ २० ॥ (१४)

ये । अत्रयः । अङ्गिरसः । नव-ग्वाः । दुष्ट-वन्तः । राति-साचः । दधानाः ॥ दक्षिणा-वन्तः । स-कृतः । ये । ऊं इति । स्थ । आ-सद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् ॥ ॥२०॥(१४)

भाषार्थ—(ये) जो तुम (अत्रयः) सदा प्राप्ति योग्य, (अङ्गिरसः) ज्ञानवान्, (नवग्वाः) स्तुति योग्य चलने वाले, (इष्टवन्तः) यज्ञ, तप, वेदाध्ययन आदि वाले, (रातिषाचः) दानों की वर्षा करने वाले और (दधानाः) पोषण करने वाले [हो] । (उ) और (ये) जो तुम (दक्षिणावन्तः) दक्षिणा [प्रतिष्ठा के दान] वाले (सुकृतः) सुकर्मी जन (स्थ) हो, वे तुम (अस्मिन्)) इस (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) आनन्द करो । २० ।

भावार्थ—जो विद्वान् महर्षि विद्याप्रचारक धर्मात्मा और बहु प्रतिष्ठित होवें, गृहस्थ आदि लोग सत्कार करके उनको प्रसन्न करें ॥२०॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः । शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् २१

२०—(ये) यूयम् (अत्रयः) सदा प्राप्तव्याः (अङ्गिरसः) अगि गतौ—असि, इरुडागमः । ज्ञानिनः (नवग्वाः) अ० १४ । १ । ५६ । णु स्तुतौ—अप्+गम्लृ गतौ-ड्वप्रत्ययः । स्तोतव्यचरित्राः (इष्टवन्तः) अ० २ । १२ । ३ । यज्ञ-तपोवेदाध्ययनादिमन्तः (रातिषाचः) भजो ण्विः । पा० ३ । २ । ६२ । इति बाहुलकात् षच सेचने- ण्वि । धनानां वर्षयितारः (दधानाः) पोषणं कुर्वाणाः (दक्षिणावन्तः) प्रतिष्ठादानोपेताः (सुकृतः) सुकर्माणः (ये) (उ) चार्थे (स्थ) भवथ (आसद्य) उपविश्य (अस्मिन्) (बर्हिषि) उत्तमासने (मादयध्वम्) हृष्टा भवत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधं । यथा । नः । पितरः । परासः । प्रत्नासः । अग्ने । ऋतम् । आ-शशानाः ॥ शुचि । इत् । अयन् । दीध्यतः । उक्थ-शसः । क्षाम । भिन्दन्तः । अरुणीः । अप । व्रन् ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (अध) फिर (यथा) जैसे (नः) हमारे (परासः) उत्तम (प्रत्नासः) प्राचीन (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा] (ऋतम्) सत्य धर्म को (आशशानाः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म करने वाले [हुये हैं] [वैसे ही] (दीध्यतः) प्रकाशमान, (उक्थशासः) प्रशंसनीय कर्मों की स्तुति करने वालों ने (शुचि) पवित्र कर्म को (इत्) ही (अयन्) प्राप्त किया है, और (क्षाम) हानि को (भिन्दन्तः) तोड़ते हुये उन्होंने (अरुणीः) प्राप्ति योग्य क्रियाओं को वैसेही (अपव्रन्) खोला है ॥ २१ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार पहिले विद्वान् लोग पिता आदि महात्माओं का अनुकरण करके विघ्नों को हटा कर उपकारी कामों का प्रचार करते आये हैं, वैसे ही सब विद्वानों को करना चाहिये ॥ २१ ॥

मन्त्र २१–२३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं–४ । २ । १६–१८ और यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में भी है– १६ । ६६ ॥

२१—(अध) अथ । अनन्तरम् (यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्माकम् (पितरः) (परासः) पराः । उत्कृष्टाः (प्रत्नासः) प्रत्नाः । प्राचीनाः (अग्ने) हे विद्वन् (ऋतम्) सत्यधर्मम् (आशशानाः) आङ्+शो तनूकरणे यद्वा शश प्लुतगतौ—कानच् । सूक्ष्मीकुर्वाणाः (शुचि) पवित्रं कर्म (इत्) एव (अयन्) इण् गतौ—लङ् । प्राप्तवन्तः (उक्थशासः) मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् । पा० ३ । २ । ७१ । उक्थ+शंसु स्तुतौ–ण्विन् , नकारलोपः, पदकाले ह्रस्वश्छान्दसः । उक्थ्यानां प्रशंसनीयकर्मणां शंसितारः स्तोतारः (क्षाम) सर्वधातुभ्यो मनिन् । उ० ४ । १४५ । क्षै क्षये—मनिन् । क्षयम् । हानिम् (भिन्दन्तः) छिन्दन्तः । विदारयन्तः (अरुणीः) अर्तेश्च । उ० ३ । ६० । ऋ गतौ—उनन् चित् , ङीप् । प्राप्तव्याः क्रियाः (अप व्रन्) वृणोतेर्लुङ् । मन्त्रे घसह्वरणशवृ० । पा० २ । ४ । ८० । इति च्लेर्लुक् । अपावृण्वन् । प्रकाशितवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सु॒कर्मा॑णः सु॒रुचो॑ देव॒यन्तो॒ अयो॒ न दे॒वा जनि॑मा॒ धम॑न्तः ।
शु॒चन्तो॑ अ॒ग्निं वा॑वृ॒धन्त॒ इन्द्र॑मु॒र्वीं गव्यां॑ परि॒षदं॑ नो अक्रन् २२

सु॒-कर्मा॑णः । सु॒-रुचः॑ । दे॒व॒-यन्तः॑ । अयः॑ । न । दे॒वाः । जनि॑म । धम॑न्तः ॥ शु॒चन्तः॑ । अ॒ग्निम् । व॒वृ॒धन्तः॑ । इन्द्र॑म् । उ॒र्वीम् । गव्या॑म् । प॒रि॒-सद॑म् । नः॒ । अ॒क्र॒न् ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(सुकर्माणः) पुण्यकर्म करने वाले, (सुरुचः) बड़ी प्रीति वाले, (देवयन्तः) उत्तम गुणों को चाहने वाले, (अयः न) सुवर्ण के समान (जनिम) जन्म [जीवन] को (धमन्तः) [धमन रूप तप से] शुद्ध करते हुये, (अग्निम्) अग्नि [शारीरिक और आत्मिक बल] को (शुचन्तः) प्रकाशित करते हुये और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (ववृधन्तः) बढ़ाते हुये (देवाः) विद्वानों ने (नः) हमारे लिये (उर्वीम्) विस्तृत, (गव्याम्) वाणीमय (परिषदम्) परिषद [सभा] (अक्रन्) बनाई है ॥ २२ ॥

भावार्थ—पवित्र वेदों के विचार से पुण्यात्मा पुरुषों ने ब्रह्मचर्य आदि तप द्वारा संसार में हमारी उन्नति के अनेक मार्ग दिखाये हैं, उसी प्रकार हम लोग भी स्वाध्याय आदि से अपना जन्म उच्च बनावें ॥ २२ ॥

आ यू॒थेव॑ क्षु॒मति॑ प॒श्वो अ॑ख्यद् दे॒वानां॒ जनि॒मान्त्यु॒ग्रः ।
मर्ता॑सश्चिदु॒र्वशी॑रकृप्रन् वृ॒धे चि॑द॒र्य उप॑रस्या॒योः ॥ २३ ॥

आ । यू॒था-इ॑व । क्षु॒-मति॑ । प॒श्वः । अ॒ख्य॒त् । दे॒वाना॑म् ।

२२—(सुकर्माणः) पुण्यकर्मकर्तारः (सुरुचः) बहुप्रीतयः (देवयन्तः) देवान् शुभगुणान् कामयमानाः (अयः) अयो हिरण्यनाम—निघ० १ । २ । सुवर्णम् (न) यथा (देवाः) विद्वांसः (जनिम) जन्म । जीवनम् (धमन्तः) ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः—शतृ । धमनेन शोधयन्तः । तपसा निर्मलीकृतवन्तः (शुचन्तः) दीपयन्तः (अग्निम्) तेजः । शारीरिकात्मिकबलमित्यर्थः (ववृधन्तः) वर्धयन्तः (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (उर्वीम्) विस्तृताम् (गव्याम्) वाङ्मयाम् । विद्यायुक्ताम् (परिषदम्) सभाम् (नः) अस्मभ्यम् (अक्रन्) करोतेर्लुङ् । मन्त्रे घसह्वरणशवृ० । पा० २ । ४ । ८० । इति च्लेर्लुक् । अकार्षुः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनिम । अन्ति । उग्रः ॥ मर्तासः । चित् । उर्वशीः । अकृ-प्रन् । वृधे । चित् । अर्यः । उपरस्य । आयोः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(उग्रः) तेजस्वी पुरुष ने (क्षुमति) अन्न [घास आदि] वाले स्थान में (पश्वः) पशुओं के (यूथा इव) यूथों के समान (देवानाम्) विद्वानों के (जनिम) जन्म [जीवन] को (अन्ति) समीप से (आ) सब प्रकार (अख्यत्) देखा है। (मर्तासः) मनुष्यों ने (चित्) भी (उर्वशीः) बहुत फैली हुयी क्रियाओं को (अकृप्रन्) विचारा है, (चित्) जैसे (अर्यः) वैश्य (उपरस्य) समीपस्थ (आयोः) आय की (वृधे) बढ़ती के लिये [विचारता है] ॥ २३ ॥

भावार्थ—प्रतापी बुद्धिमान् पुरुष विद्वानों के आचरणों को इस प्रकार ध्यान से देखता है, जैसे ग्वाला चरते हुये पशुओं को इधर उधर जाने से रोक कर देखता रहता है। और जैसे वैश्य अपने आय को उन्नति सोचता है, वैसे ही सब मनुष्य उत्तम विद्याओं और क्रियाओं का प्रचार करें ॥ २३ ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।२४
अकर्म । ते । सु-अपसः । अभूम । ऋतम् । अवस्रन् । उषसः ।

२३—(आ) समन्तात् (यूथा) यूथानि । समूहान् (क्षुमति) क्षु, अन्नम्-निघ० २ । ७ । अन्नवति । तृणयुक्ते स्थाने (पश्वः) बहुवचनस्यैकवचनम् । पशोः । पशूनाम् (अख्यत्) चक्षिङ् दर्शने । अदर्शत् (देवानाम्) विदुषाम् (जनिम) जन्म । जीवनम् (अन्ति) अन्तिके । समीपे (उग्रः) तेजस्वी मनुष्य; (मर्तासः) मनुष्याः (चित्) अपि (उर्वशीः) उरु + अशूङ् व्याप्तौ—क, गौरादित्वाद् ङीष् । उर्वशी पदनाम—निघ० ४ । २। तथा ५ । ५ । बहुव्यापिकाः क्रियाः (अकृप्रन्) कृपू सामर्थ्ये कल्पने च—लुङि् च्लेः अङ् आदेशः । बहुलं छन्दसि । पा० ७ । १ । ८ । इति रुडागमः । कल्पनया समर्थितवन्तः । विचारितवन्तः (वृधे) वर्धनाय (चित्) यथा (उपरस्य) उप + रमु क्रीडायाम्—ड । समीपस्थस्य (अर्यः) अर्यः स्वामिवैश्ययोः । पा० ३ । १। १०३। ऋ गतौ—यत् । वैश्यः (आयोः) छन्दसीणः । उ० १। २ । इण् गतौ—उण् । गतस्य । लब्धस्य । आयस्य॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि-भातीः ॥ विश्वम् । तत् । भद्रम् । यत् । अवन्ति । देवाः। बृहत् । वदेम । विदथे । सु-वीराः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (ते) तेरे लिये [उत्तम कर्म] (अकर्म) हम ने किये है, (स्वपसः) अच्छे कर्म वाले (अभूम) हम हुये हैं, (विभातीः) प्रकाश करती हुयी (उषसः) प्रभात वेलाओं ने (ऋतम्) सत्य धर्म में (अवस्रन्) निवास किया है । (यत्) जो कुछ (भद्रम्) कल्याण कारक कर्म है, (तत्) उस (विश्वम्) सब की (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्ति) रक्षा करते हैं, (सुवीराः) अच्छे वीरों वाले हम (विदथे) ज्ञान सामाज में (बृहत्) बढ़ती करने वाला [वचन] (वदेम) बोलें ॥ २४ ॥

भावार्थ—जैसे प्रभात वेलायें अन्धकार नाश करके प्रकाश करती हैं, वैसे ही सत्य धर्म असत्य का नाश करके प्रकाशमान होता है, विद्वान् लोग उस सत्य का ग्रहण करके और सभाओं में बैठकर सर्ववृद्धि का विचार करें ॥२४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है— ४ । २। १६ और उत्तरार्द्ध ऋग्वेद—६ २ । २३ । १६ और यजुर्वेद–३४ । ५८ ॥

मन्त्राः २५—२६ ॥

प्रजापतिर्देवता ॥ २५ निचृदार्षी जगती; २६, २८ भुरिगार्षी जगती; २७ आर्षी जगती; २६ विराडार्षी जगती ॥

सर्वदिक्षु रक्षोपदेशः—सब दिशाओं में रक्षा का उपदेश ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी

२४—(अकर्म) मन्त्रे घसह्वर० । पा०२ । ४ । ८० । च्लेर्लुक् । वयं कृतवन्तः श्रेष्ठकर्माणि (ते) तुभ्यम् (स्वपसः) अपः कर्मनाम-निघ० २ । १ । धार्मिककर्माणः (अभूम (ऋतम्) सत्यधर्मम् (अवस्रन्) वस निवासे—लङ्, रुडागमः । निवसन्ति स्म (उषसः) प्रभातवेलाः (विभातीः) विभात्यः । प्रकाशमानाः (विश्वम्) सर्वम् (तत्) (भद्रम्) शुभं कर्म (यत्) अवन्ति) रक्षन्ति (देवाः) विद्वांसः (बृहत्) वृद्धिकरं वचनम् (वदेम) ब्रूयाम (विदथे) ज्ञानसमाजे (सुवीराः) श्रेष्ठवीरैरुपेताः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुत-भागा इह स्थ ॥ २५ ॥

इन्द्रः । मा । मरुत्वान् । प्राच्याः । दिशः । पातु । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ २५

भाषार्थ—(मरुत्वान्) शूरों का स्वामी (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर (प्राच्याः) पूर्व वा सामने वाली (दिशः) दिशा से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर, प्राणियों की रक्षा करती है] (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥ २५ ॥

भावार्थ—परमात्मा पूर्व आदि और सामने वाली आदि दिशाओं में शूरों को बल देकर रक्षा करता है, जैसे चतुर लोगों के उद्योग से पृथिवी सूर्य के आकर्षण और प्रकाश आदि द्वारा वृष्टि ताप आदि पाकर अन्न आदि उत्पन्न करके रक्षा करती है, सब मनुष्य हितैषी विद्वानों का आश्रय लेकर उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥ २५ ॥

२५—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (मा) माम् (मरुत्वान्) अ० १।२०।१। मरुतां शूराणां स्वामी (प्राच्याः) पूर्वायाः। अभिमुखीभूतायाः सकाशात् (पातु) रक्षतु (बाहुच्युता) च्यु सहने हसने च, अन्तर्गतणिजर्थः। बाहुभिर्भुजैश्च्याविता उत्साहिता (पृथिवी) (द्याम्) सूर्यम्। सूर्यस्याकर्षण-प्रकाशादिकमित्यर्थः (इव) यथा (उपरि) उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ० ।वा० पा० २।३।२। इत्यनाम्रेडितान्तेऽपि उपरियोगे द्यामित्यस्य द्वितीया। आश्रित्येत्यर्थः (लोककृतः) लोकानां समाजानां कर्तॄन् (पथिकृतः) सन्मार्गाणां कर्तॄन् दर्शकान् (यजामहे) पूजयामहे (ये) पुरुषाः (देवानाम्) विदुषां मध्ये (हुतभागाः) हु दानादानादनेषु-क। हुता आत्ता गृहीता भागा यैस्ते (इह) संसारे (स्थ) भवथ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युतौ पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥

धाता । मा । निः-ऋत्याः । दक्षिणायाः । दिशः । पातु । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ २६

भाषार्थ—(धाता) धारण करने वाला परमात्मा (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा की (निर्ऋत्याः) महाविपत्ति से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी.....[मन्त्र २५] ॥ २६ ॥

भावार्थ—मन्त्र २५ के समान है ॥ २६ ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युतौ पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुत-भागा इह स्थ ॥ २७ ॥

अदितिः । मा । आदित्यैः । प्रतीच्याः । दिशः । पातु । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(अदितिः) अखण्ड परमात्मा (आदित्यैः) अखण्डव्रती ब्रह्मचारियों द्वारा (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (मा)

२६—(धाता) सर्वधारकः परमात्मा (निर्ऋत्याः) कृच्छ्रापत्तेः सकाशात् (दक्षिणायाः) दक्षिणस्याः । दक्षिणहस्तस्थायाः (दिशः) दिक् सम्बन्धिन्याः । अन्यत् पूर्ववत्–म० २५ ॥

२७—(अदितिः) अखण्डव्रतिब्रह्मचारी परमात्मा (आदित्यैः) अखण्डव्रतिब्रह्म-

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी (पातु) रक्षा करे, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी ....[म० २५] ॥ २७ ॥

भावार्थ—मन्त्र २५ के समान है ॥ २७ ॥

सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २८ ॥

सोमः । मा । विश्वैः । देवैः । उदीच्याः । दिशः । पातु । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(सोमः) सर्वजनक परमात्मा (विश्वैः) सब (देवैः) उत्तम गुणों के साथ (उदीच्याः) उत्तर वा बाईं ओर वाली (दिशः) दिशा से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी..... [मन्त्र २५] ॥ २८ ॥

भावार्थ—मन्त्र २५ के समान है ॥ २८ ॥

धर्ता हि त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥

धर्ता । हि । त्वा । धरुणः । धारयातै । ऊर्ध्वम् । भानुम् । सविता । द्याम्-इव । उपरि ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः ।

चारिभिः (प्रतीच्याः) पश्चिमायाः । पश्चाद्भागस्थायाः (दिशः) दिक्सकाशात् । अन्यत् पूर्ववत्—म० २५ ॥

२८—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (विश्वैः) सर्वैः (देवैः) उत्तमगुणैः (उदीच्याः) उत्तरायाः । वामभागस्थायाः । अन्यत् पूर्ववत्—म० २५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य॒जा॒म॒हे॒ । ये । दे॒वाना॑म् । हु॒त-भा॑गाः । इ॒ह । स्थ ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(धर्ता) पोषण करने वाला (धरुणः) स्थिर स्वभाव वाला परमात्मा (ह) निश्चय करके (त्वा) तुझे (ऊर्ध्वम्) ऊंचा (धारयातै) रक्खे, (इव) जैसे (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (भानुम्) सूर्य को (द्याम् उपरि) आकाश पर [रखता है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां (स्थ) हो ॥ २९ ॥

भावार्थ—परमात्मा सर्वपोषक, दृढ़ स्वभाव वाले पुरुषार्थी जनों को उच्च स्थान देता है, जैसे वह अनेक लोकों के आकर्षक, पोषक सूर्य को आकाश में ऊंचा रखता है । सब मनुष्य सर्वहितैषी विद्वानों का आश्रय लेकर उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥ २९ ॥

मन्त्राः ३०—३७ ॥

ईश्वरो देवता ॥ ३० अतिजगती ; ३१ विराट् शक्करी ; ३२—३५ भुरिगतिजगती ; ३६ आसुर्यनुष्टुप् ३७ आसुरी गायत्री ॥

सर्वत्रपरमेश्वरधारणोपदेशः—सर्वत्र परमेश्वर के धारण का उपदेश ॥

प्राच्यां॑ त्वा दि॒शि पु॒रा सं॒वृतः॑ स्व॒धाया॒मा द॑धामि बाहु॒च्युता॑ पृथि॒वी द्यामि॑वो॒परि॑ । लो॒क॒कृतः॑ पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ ॥ ३० ॥ (१५)

प्राच्या॑म् । त्वा॒ । दि॒शि॒ । पु॒रा । स॒म्-वृतः॑ । स्व॒धाया॑म् । आ । द॒धा॒मि॒ । बा॒हु॒-च्युता॑ । पृ॒थि॒वी । द्याम्-इ॑व । उ॒परि॑ ॥

२९—(धर्ता) पोषकः (ह) निश्चयेन (त्वा) (धरुणः) कॄवृदारिभ्य उनन् । उ० ३ । ५३ । धृङ् अवस्थाने—उनन् । स्थिरस्वभावः परमात्मा (धारयातै) लेटि रूपम् । धारयेत् (ऊर्ध्वम्) उन्नतम् (भानुम्) सूर्यम् (सविता) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (द्याम्) आकाशम् (इव) यथा (उपरि) म० २५ । आश्रित्येत्यर्थः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ ३० ॥ (१५)

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (प्राच्याम्) पूर्व वा सामने वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ मैं (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर], [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले, [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥ ३० ॥

भावार्थ—सर्वथा परिपूर्ण परमेश्वर से पूर्व आदि और सामने वाली आदि दिशाओं में मनुष्य अपने में आत्मशक्ति पाकर पुरुषार्थ करता है, जैसे पृथिवी सूर्य के आकर्षण आदि में रह कर परमेश्वर की दी हुई आत्मशक्ति से उपकार करती है । सब मनुष्य हितैषी विद्वानों का आश्रय लेकर उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहु-च्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३१ ॥

दक्षिणायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्-वृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि ॥

३०—(प्राच्याम्) पूर्वस्याम् । अभिमुखीभूतायाम् (दिशि) (पुरा) पृ पालनपूरणयोः—क्विप् । उदोष्ठ्यपूर्वस्य । पा० ७ । १ । १०२ । इत्युत्वम् । पूर्त्या (संवृतः) सम्यग् वेष्टितः (स्वधायाम्) आत्मधारणशक्तौ (आ) समन्तात् (दधामि) धारयामि । अन्यत् पूर्ववत्—म० २५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक्-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—(दक्षिणायाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे [मन्त्र ३०] ॥ ३१ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३० के समान है ॥ ३१ ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा सं वृतः स्वधायामा दधामि बाहु-च्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोकृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥

प्रतीच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्-वृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि॥ लोक्-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—(प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे.....[म० ३०] ॥ ३२ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३० के समान है ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा सं वृतः स्वधायामा दधामि बाहु-च्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोकृतः । पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

उदीच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्-वृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि॥

३१—(दक्षिणायाम्) दक्षिणहस्तस्थितायाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

३२—(प्रतीच्याम्) पश्चिमायाम् । पश्चाद्भागे वर्तमानायाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकु-कृतः । पृथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(उदीच्याम्) उत्तर वा बायीं (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे.....[म० ३०] ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३० के समान है ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा सं वृतः स्वधायामा दधामि बाहु-च्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोकुकृतः पथिकृतौ यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ध्रुवायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्-वृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि॥ लोकु-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—(ध्रुवायाम्) स्थिर वा नीचे वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे.....[मन्त्र ३०] ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३० के समान है ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा सं वृतः स्वधायामा दधामि बाहु-च्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोकुकृतः पथिकृतौ यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्-वृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहु-च्युता । पृथिवी । द्याम्-इव । उपरि॥

३३—(उदीच्याम्) उत्तरस्याम् । वामहस्तवर्तमानायाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥
३४—(ध्रुवायाम्) स्थिरायाम् । अधो वर्त्तमानायाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ मैं [मनुष्य] (आ) सब ओर से (दधामि) धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर, [अपने में तुझे धारण करती है] (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले, [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३० के समान है ॥ ३५ ॥

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥

धर्ता । असि । धरुणः । असि । वंसगः । असि ॥ ३६ ॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

उदपूः । असि । मधुपूः । असि । वातपूः । असि ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर !] (धर्ता) तू धारण करने वाला (असि) है, (धरुणः) तू स्थिर स्वभाव वाला (असि) है और (वंसगः) तू सेवनीय व्यवहारों का प्राप्त कराने वाला (असि) है ॥ ३६ ॥ (उदपूः) तू जल से शोधने वाला [वा जल से अग्रगामी] (असि) है, (वातपूः) तू वायु से

३५—(ऊर्ध्वायाम्) उपरि स्थितायाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

३६—(धर्ता) धारकः परमेश्वरः(असि) (धरुणः) म० २६ स्थिरस्वभावः (असि) (वंसगः) वृतृवदिवचि० । उ० ३ । ६२ । वन संभक्तौ—सप्रत्ययः+ गमयतेर्डः । वंसानां सेवनीयानां व्यवहाराणां गमयिता प्रापयिता (असि) ॥

३७—(उदपूः) उदक+पूञ शोधने—क्विप्, वा पुर अग्रगमने—क्विप् । जलेन शोधयिता जलादग्रगामी वा (असि) (मधुपूः) मधु+पॄ पालन पूर-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालने वाला [वा वायु से अग्रगामी] (असि) है, (मधुपूः) तू मधुर [स्वास्थ्य वर्धक] रस से पूर्ण करने वाला [वा ज्ञान से अग्रगामी] (असि] है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा को सब दिशाओं में व्यापक जानकर दृढ़ स्वभाव होवें और शुद्ध जल, वायु, अन्न आदि से शरीर के धातुरसों को पुष्ट करें। वह सर्वपोषक परमात्मा जल आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों से और ज्ञानियों के ज्ञान से अधिक आगे है ॥ ३६, ३७ ॥

मन्त्राः ३८—४१ ॥

स्त्रीपुरुषौ देवते ॥ ३८ विराट् त्रिष्टुप् ; ३९ भुरिक् पङ्क्तिः ; ४० त्रिष्टुप्; ४१ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्यों के कर्तव्य का उपदेश ॥

इतश्च मामुतश्चावतां युमे इव यतमाने यदैतम् । प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥३८॥

इतः । च । मा । अमुतः । च । अवताम् । युमे इवेति युमे-इव । यतमाने इति । यत् । ऐतम् ॥ प्र । वाम् । भरन् । मानुषाः । देव-यन्तः । आ । सीदताम् । स्वम् । ऊं इति । लोकम् । विदाने इति ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—[हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों] (इतः) यहां से [समीप में वा इस जन्म में] (च च) और (अमुतः) वहां से [दूर में वा परजन्म में] (मा) मुझे (अवताम्) बचावें, (यत्) क्योंकि (यमे इव) दो नियम

णयोः—क्विप्, वा पुर—क्विप्। मधुरस्य स्वास्थ्यवर्धकस्य रसस्य पूरयिता मधुनो ज्ञानादग्रगामी वा (असि) (वातपूः) वात+पॄ—क्विप्, वा पुर—क्विप्। वातेन वायुना पालयिता वायोः सकाशादग्रगामी वा (असि) ॥

३८—(इतः) अस्मात् स्थानाल्लोकाद् वा (च) (मा) माम् (अमुतः) तस्माद् दूरदेशात् परलोकाद् वा (च) (अवताम्) रक्षतां भवन्तौ (यमे) सुपां सुलुक्०। पा० ७। १। ३९। इति सुपः शे। इत्यादेशः। यमौ। नियमवन्तौ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों के समान (यतमाने) यत्न करते हुये तुम दोनों (ऐतम्) चले हो। (देवयन्तः) उत्तम गुण चाहने वाले (मानुषाः) मनन शील मनुष्यों ने (वाम्) तुम दोनों को (प्र) अच्छे प्रकार (भरन्) पाला है, (स्वम्) अपने (लोकम्) स्थान को (उ) अवश्य (विदाने) जानते हुये [आप दोनों] (आ) आकर (सीदताम्) बैठें ॥ ३८ ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष जितेन्द्रिय होकर समीप और दूर में तथा लोक और परलोक में सुख के लिये यत्न करके परस्पर अपनी सत्ता को उच्च बनावें ॥ ३८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १३ । २ ॥

स्वासंस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः । वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥३९॥

स्वासंस्थे इति सु-आसंस्थे । भवतम् । इन्दवे । नः । युजे । वाम् । ब्रह्म । पूर्व्यम् । नमः-भिः ॥ वि । श्लोकः । एति । पथ्या-इव । सूरिः । शृण्वन्तु । विश्वे । अमृतासः । एतत् ॥३९॥

भाषार्थ—(नः) हमारे (इन्दवे) ऐश्वर्य के लिये (स्वासस्थे) अच्छे आसन पर बैठने वाले (भवतम्) तुम दोनों होओ, (वाम्) तुम दोनों के लिये (पूर्व्यम्) पहिले [योगियों] करके प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) बड़े परमेश्वर का (नमोभिः) सत्कारों के साथ (युजे) मैं ध्यान करता हूं । (श्लोकः)

(इव) यथा (यतमाने) सुपः शे । यतमानौ व्याप्रियमाणौ (यत्) यतः (ऐतम्) अगच्छतं युवाम् (प्र) प्रकर्षेण (वाम्) युवाम् (भरन्-) अभरन् । पालितवन्तः (मानुषाः) मननशीलाः पुरुषाः (देवयन्तः) दिव्यगुणान् कामयमानाः (आ) आगत्य (सीदताम्) उपविशतां भवन्तौ (स्वयम्) स्वकीयम् (उ) अवश्यम् (लोकम्) स्थानम् (विदाने) सुपः शे । विदानौ । जानन्तौ ॥

३९—(स्वासस्थे) सु+आस उपवेशने—घञ्+तिष्ठतेः—क । सुपः शे । स्वासस्थौ । सुखासने तिष्ठन्तौ युवाम् (भवतम्) (इन्दवे) ऐश्वर्याय (नः) अस्माकम् (युजे) आत्मनि समादधे (वाम्) युवयोर्हिताय (ब्रह्म) बृहन्तं व्यापकं परमात्मानम् (पूर्व्यम्) पूर्वयोगिभिः प्रत्यक्षीकृतम् (नमोभिः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदवाणी में कुशल (सूरिः) विद्वान् (पथ्या इव) सुन्दर मार्ग के समान (वि) विविध प्रकार से (एति) चलता है, (विश्वे) सब (अमृतासः) अमर [पुरुषार्थी] लोग (एतत्) यह (शृण्वन्तु) सुनें ॥ ३९ ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष पूर्वज योगियों के समान योगाभ्यास से आत्मशुद्धि करके परमात्मा को प्राप्त होवें, और जैसे विद्वानों का बनाया मार्ग सब यात्रियों को सुख दायक होता है, वैसे ही वेद कुशल विद्वानों का विद्या प्रचार सब को आनन्द देता है ॥ ३९ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १३ । १, २ तथा यजुर्वेद में—११ । ५ ॥

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद्व्रतेन । अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥ ४० ॥ (१६)

त्रीणि । पदानि । रुपः । अनु । अरोहत् । चतुः-पदीम् । अनु । एतत् । व्रतेन ॥ अक्षरेण । प्रति । मिमीते । अर्कम् । ऋतस्य । नाभौ । अभि । सम् । पुनाति ॥ ४० ॥ (१६)

भाषार्थ—(रुपः) गतिमान् पुरुष (त्रीणि) तीनों [भूत, भविष्यत् और वर्तमान] (पदानि) पदों [अधिकारों] के (अनु) पीछे पीछे (अरोहत्) प्रसिद्ध हुआ है, और (व्रतेन) व्रत [ब्रह्मचर्य आदि नियम] के साथ (चतुष्पदीम्) चारों [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष] में अधिकार वाली वेद-

---

सत्कारैः (वि) विविधम् (श्लोकः) श्लोक—अर्श आद्यच् । श्लोको वाङ् नाम—निघ० १ । ११ । वेदवाणीकुशलः (एति) गच्छति (पथ्या) पथे मार्गाय हिता । सुगमा स्मृतिः (इव) यथा (शृण्वन्तु) आकर्णयन्तु (विश्वे) सर्वे (अमृतासः) अमराः । पुरुषार्थिनः । यशस्विनः पुरुषाः (एतत्) इदं वचनम् ॥

४०—(त्रीणि) त्रिसंख्याकानि (पदानि) प्राप्तव्यानि भूतभविष्यद्-वर्तमानवस्तूनि (रुपः) च्युवः किच्च । उ० ३ । २४ । रुङ् गतिरेषणयोः, रु शब्दे वा—पप्रत्ययः, कित् । गतिमान् । स्तोतव्यः पुरुषः (अनु) अनुसृत्य (अरोहत्) प्रादुरभवत् (चतुष्पदीम्) चतुर्वर्गे धर्मार्थकाममोक्षेषु पुरुषार्थेषु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी के (अनु) पीछे पीछे (ऐतत्) चला है। वह (अक्षरेण) व्यापक वा अविनाशी [ओ३म् परमात्मा] के साथ (अर्कम्) पूजनीय विचार को (प्रति) प्रत्यक्ष (मिमीते) कर्ता है, और (ऋतस्य) सत्य धर्म की (नाभौ) नाभि में [सब को] (अभि) सब ओर से (सम्) यथावत् (पुनाति) शुद्ध करता है ॥ ४० ॥

भावार्थ—चलते फिरते उद्योगी स्त्री पुरुष भूत, भविष्यत् और वर्तमान का विचार करके वेदद्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होवें और परमात्मा की आज्ञा का पालन करके सब मनुष्यों को शुभ मार्ग पर चलावें ॥ ४० ॥

१—मन्त्र ४० और ४१ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १३ । ३, ४ ॥

२—संहिता के (ऐतत्) पद के स्थान पर पदपाठ में (एतत्) पद विचारणीय है ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वं१ मा रिरेच ॥४१॥
देवेभ्यः । कम् । अवृणीत । मृत्युम् । प्र-जायै । किम् । अमृतम् । न । अवृणीत ॥ बृहस्पतिः । यज्ञम् । अतनुत । ऋषिः । प्रियाम् । यमः । तन्वम् । आ । रिरेच ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—[जिस ने] (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (कम्) सुख से (मृत्युम्) मृत्यु [अहङ्कारत्याग] को (अवृणीत) अङ्गीकार किया है, उस ने (प्रजायै) प्रजा के लिये (किम्) क्या (अमृतम्) अमृत [अमरपन

पदमधिकारो यस्यास्तां वेदवाणीम् (अनु) अनुसृत्य (ऐतत्) इण् गतौ—लङ्, तकारश्छान्दसः । ऐत् । प्राप्नोत् (व्रतेन) ब्रह्मचर्यादितपश्चरणेन (अक्षरेण) अ० ६ । १० । २ । अशू व्याप्तौ—सर । यद्वा नञ् + क्षर संचलने—अच् । व्यापकेन विनाशरहितेन, ओ३म् इति प्रणवेन सह (प्रति) प्रत्यक्षम् (मिमीते) माङ् माने । करोति (अर्कम्) कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः । उ० ३ । ४० । अर्च पूजायाम्—क, यद्वा, अर्च—घञ्, कुत्वम् । अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति—निरु० ५ । ४ । पूजनीयं विचारम् (ऋतस्य) सत्यधर्मस्य (नाभौ) मध्यस्थाने (अभि) सर्वतः (सम्) सम्यक् (पुनाति) शोधयति सर्वान् ॥

४१—(देवेभ्यः) उत्तमगुणानां प्राप्तये (कम्) सुखेन (अवृणीत) अङ्गीकृतवान् (मृत्युम्) मरणम् । अहंकारत्यागम् । आत्मसमर्पणम् (प्रजायै) मनुष्या-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्षपद] को (न) नहीं (अवृणीत) अङ्गीकार किया ? । (बृहस्पतिः) उस बड़े बड़े व्यवहारों के रक्षक (ऋषिः) सन्मार्गदर्शक, (यमः) नियम वाले पुरुष ने (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (अतनुत) फैलाया है और (प्रियाम्) हित करने वाली (तन्वम्) उपकार क्रिया को (आ) सब ओर से (रिरेच) संयुक्त किया है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये अहङ्कार, अर्थात् आपा छोड़ आत्मदान करते हैं, वे ही संसार को मोक्षपद देते और पूजनीय व्यवहारों को फैलाकर अवश्य महान् उपकार करते हैं ॥ ४१ ॥

मन्त्राः ४२—४८ ॥

पितरो देवताः ॥ ४२, ४३, ४८ त्रिष्टुप् ; ४४, ४६ निचृज् जगती; ४५ निचृत् त्रिष्टुप् ; ४७ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

पितृसन्तानकर्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥४२॥

त्वम् । अग्ने । ईडितः । जातवेदः । अवाट् । हव्यानि । सुरभीणि । कृत्वा ॥ प्र । अदाः । पितृभ्यः । स्वधया । ते । अक्षन् । अद्धि । त्वम् । देव । प्रयता । हवींषि ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—(जातवेदः) हे बड़े धनी (अग्ने) विद्वान् ! (ईडितः) प्रशंसित (त्वम्) तू ने (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (सुरभीणि)

दिरूपायै (किम्) (अमृतम्) अमरणम् । मोक्षपदम् (न) निषेधे (अवृणीत) स्वीकृतवान् (बृहस्पतिः) बृहतां व्यवहाराणां रक्षकः (यज्ञम्) पूजनीयं व्यवहारम् (अतनुत) विस्तारितवान् (यमः) सन्मार्गदर्शकः (प्रियाम्) हितकरीम् (यमः) नियमवान् । जितेन्द्रियः पुरुषः (तन्वम्) उपकारक्रियाम् (आ) समन्तात् (रिरेच) रिचिर् विरेचने, रिच वियोजनसम्पर्चनयोः—लिट् । संयोजितवान् ॥

४२—(त्वम्) (अग्ने) हे विद्वन् (ईडितः) प्रशंसितः (जातवेदः) जातानि प्रसिद्धानि वेदांसि धनानि यस्य तत्सम्बुद्धौ (अवाट्) वहतेर्लुङ् , इडागमाभावे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य युक्त (कृत्वा) करके (अवाट्) पहुंचाया है। (पितृभ्यः) पितरों [पिता आदि रक्षक महात्माओं] को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (प्रयता) शुद्ध [वा प्रयत्न से सिद्ध किये] (हवींषि) ग्रहण करने योग्य भोजन (प्र) अच्छे प्रकार (अदाः) तू ने दिये हैं, (ते) उन्होंने (अत्तन्) खाये हैं, (देव) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू [भी] (अद्धि) खा ॥ ४२ ॥

भावार्थ—पुत्रादि सन्तान उत्तम उत्तम पदार्थों से पितरों की सेवा करें और प्रयत्न से शुद्ध बनाये हुये भोजन उन्हें खिलावें और आप खावें, जिस से सब स्वस्थ रहकर आनन्द भोगें ॥ ४२ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । १२ और यजुर्वेद में—१९ । ६६ तथा उत्तरार्द्ध आगे है—अ० १८ । ४ । ६५ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥
आसीनासः । अरुणीनाम् । उप-स्थे । रयिम् । धत्त । दाशुषे । मर्त्याय ॥ पुत्रेभ्यः । पितरः । तस्य । वस्वः । प्र । यच्छत । ते । इह । ऊर्जम् । दधात ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! (अरुणीनाम्) पाने योग्य क्रियाओं [वा विद्याओं] की (उपस्थे) गोद में (आसीनासः) बैठे हुये तुम (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रयिम्) धन (धत्त) धरो, (ते) वे तुम

सिचो लोपे रूपसिद्धिः । अवाट्षीः । प्रापितवानसि (हव्यानि) ग्राह्यवस्तूनि (सुरभीणि) म० १७ । ऐश्वर्ययुक्तानि (कृत्वा) विधाय (प्र) प्रकर्षेण (अदाः) ददातेर्लङ् । दत्तवानसि (पितृभ्यः) (स्वधया) स्वधारणशक्त्या (ते) पितरः (अत्तन्) घस्लृ अदने—लुङ् । भक्षितवन्तः (अद्धि) अद भक्षणे—लोट् । भक्षय (त्वम्) (देव) हे विद्वन् (प्रयता) यमु उपरमे—क्त, यद्वा यती प्रयत्ने—अप् । शुद्धानि । प्रयत्नसाधितानि (हवींषि) ग्राह्यभोजनानि ॥

४३—(आसीनासः) आसीनाः । उपविशन्तः (अरुणीनाम्) म० २१ । प्राप्तव्यानां क्रियाणां विद्यानां वा (उपस्थे) उत्सङ्गे (रयिम्) धनम् (धत्त) धरत (दाशुषे) दात्रे (मर्त्याय) मनुष्याय (पुत्रेभ्यः) सन्तानेभ्यः (पितरः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इह) यहां पर (पुत्रेभ्य) पुत्रों को (तस्य) उस (वस्वः) धन का (प्र यच्छत) दान करो, और (ऊर्जम्) पराक्रम (दधात) धारण करो ॥ ४३ ॥

भावार्थ—वृद्ध पितर लोग उत्तम क्रियाओं और विद्याओं द्वारा धन का संग्रह कर के सुपात्र विद्या आदि देने वाले पुरुष को धन का दान देवें और सन्तानों को यथा योग्य दाय भाग कर के पराक्रमी बनावें ॥ ४३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १५। ७ ।और यजुर्वेद १९ ।६३॥

अग्निष्वात्ताः पितर इह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ४४

अग्नि-स्वात्ताः । पितरः । आ । इह । गच्छत । सदः-सदः । सदत । सु-प्रनीतयः ॥ अत्तो इति । हवींषि । प्र-यतानि । बर्हिषि । रयिम् । च । नः । सर्व-वीरम् । दधात ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—(अग्निष्वात्ताः) हे अग्निविद्या [वा शारीरिक और आत्मिक तेज] के ग्रहण करने वाले (पितरः) पालन करने वाले पितरो ! (इह) यहां (आ गच्छत) आओ और (सुप्रणीतयः) अत्युत्तम नीतों वाले तुम (सदः-सदः) सभा सभा में (सदत) बैठो। और (बर्हिषि) वृद्धि कारक व्यवहार के बीच (प्रयतानि) शुद्ध [वा प्रयत्न से शुद्ध किये] (हवींषि) खाने योग्य अन्नों को (अत्तो) अवश्य खाओ, (च) और (नः) हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब वीर पुरुषों के प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (धत्त) धारण करो ॥४४॥

(तस्य) (वस्वः) वसुनो धनस्य (प्र यच्छत) दानं कुरुत (ते) तादृशा यूयम् (इह) अस्मिंल्लोके (ऊर्जम्) पराक्रमम् (दधात) धरत ॥

४४—(अग्निष्वात्ताः) अग्नि + सु + आङ् + ददातेः—क्त । अग्निः सूर्यविद्युदग्निविद्या शारीरिकात्मिकतेजो वा आत्तं गृहीतं यैस्ते (पितरः) (इह) अस्मिन् काले (आ गच्छत) (सदःसदः) सदसि सदसि (सदत) सीदत । उपविशत (सुप्रणीतयः) अत्युत्तमनीतिमन्तः (अत्तो) अत्त—उ। भक्षयतैव (हवींषि) अदनीयानि भोजनानि (प्रयतानि) म० ४२। शुद्धानि । प्रयत्नेन साधितानि (बर्हिषि) वृद्धिकरे व्यवहारे (रयिम्) धनम् (च) (नः) अस्मभ्यम् (सर्ववीरम्) सर्वे वीराः प्राप्यन्ते यस्मात् तम् (दधात) धरत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् लोग सभाओं में उपदेश करके अग्नि अर्थात् सूर्य, बिजुली और अग्नि आदि विद्याओं द्वारा मनुष्यों का शारीरिक तथा आत्मिक बल बढ़ावें और श्रद्धा से दिये हुये अन्न आदि को ग्रहण करके उन्हें पुरुषार्थी, श्रीमान् और वीर सेनापति बनावें ॥ ४४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । ११ और यजुर्वेद में—१९ । ५९ तथा महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पितृयज्ञ विषय में व्याख्यात है ॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥४५॥

उप-हूताः । नः । पितरः । सोम्यासः । बर्हिष्येषु । नि-धिषु । प्रियेषु ॥ ते । आ । गमन्तु । ते । इह । श्रुवन्तु । अधि । ब्रुवन्तु । ते । अवन्तु । अस्मान् ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—(सोम्यासः) ऐश्वर्य के योग्य [वा प्रियदर्शन] (पितरः) पितर लोग (नः) हमारे (बर्हिष्येषु) वृद्धि योग्य, (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) [रत्न सुवर्ण आदि के] कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाये गये हैं । (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते) वे (इह) इहां (श्रुवन्तु) सुनें, (ते) वे (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रुवन्तु) उपदेश करें और (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ४५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्यावृद्ध और वयोवृद्ध विद्वानों का सत्कार करते रहें और उनसे उत्तम उत्तम उपदेश प्राप्त करके महाधनी और यशस्वी होवें ॥ ४५ ॥

४५—(उपहूताः) निमन्त्रिताः (नः) अस्माकम् (पितरः) पितृवत्पालकाः (सोम्यासः) सोम्याः । ऐश्वर्यार्हाः । प्रियदर्शनाः (बर्हिष्येषु) वृद्धियोग्येषु (निधिषु) निमित्ते सप्तमी । रत्नसुवर्णादिकोशनिमित्ते (प्रियेषु) प्रीतिविषयेषु (ते) पितरः (आ गमन्तु) आगच्छन्तु (ते) (इह) अस्मिन् यज्ञदेशे (श्रुवन्तु) विकरणस्य लुक् । शृण्वन्तु (अधि) अधिकृत्य (ब्रुवन्तु) उपदिशन्तु (ते) (अवन्तु) रक्षन्तु (अस्मान्) धार्मिकान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।१५।५ तथा यजुर्वेद-१९। ५७ और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पितृयज्ञ विषय में व्याख्यात है॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥

ये। नः। पितुः। पितरः। ये। पितामहाः। अनु-जहिरे। सोम-पीथम्। वसिष्ठाः॥ तेभिः। यमः। सम्-रराणः। हवींषि। उशन्। उशत्-भिः। प्रति-कामम्। अत्तु॥ ४६॥

भाषार्थ—(ये) जिन (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पालन करने हारे पिता आदि ने और (ये) जिन (पितामहाः) दादा आदि वयोवृद्धों ने (वसिष्ठाः) अत्यन्त श्रेष्ठ होकर (सोमपीथम्) ऐश्वर्य की रक्षा को (अनुजहिरे) निरन्तर स्वीकार किया है। (संरराणः) अच्छे प्रकार दान करने हारा, (उशन्) कामना करने हारा (यमः) संयमी सन्तान (तेभिः) उन (उशद्भिः) कामना करने हारों के साथ (हवींषि) देने लेने योग्य भोजनों को (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना में (अत्तु) खावे॥ ४६॥

भावार्थ—जैसे पूर्वज वृद्धों ने धार्मिक आचरणों से ऐश्वर्यवान् होकर सन्तानों से प्रीति की है, वैसे ही सब सन्तान जितेन्द्रिय होकर उत्तम व्यवहारों से उनकी सेवा करते रहें॥ ४६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।१५।८ और यजुर्वेद में १९। ५१ और इसका पहिला पाद आ चुका है—अ० १८।२।४९॥

४६—(ये) (नः) अस्माकम् (पितुः) जनकस्य (पितरः) पितृवत् पालकाः (ये) (पितामहाः) जनकस्य पितृवद् वृद्धाः (अनु-जहिरे) हृञ् स्वीकारादिषु—लिट्। अनुजहिरे। निरन्तरं स्वीचक्रुः (सोमपीथम्) निशीथ-गोपीथावगथाः। उ० २।९। सोम+पा रक्षणे—थक्। ऐश्वर्यरक्षणम् (वसिष्ठाः) वसुतमाः। अतिशयेन श्रेष्ठाः सन्तः (तेभिः) तैः (यमः) न्यायी। संयमी सन्तानः (संरराणः) रा दाने-कानच्। सम्यक्सुख-दाता (हवींषि) दातव्य ग्राह्यभोजनानि (उशन्) कामयमानः (उशद्भिः) कामयमानैः (प्रतिकामम्) कामं कामं प्रति (अत्तु) भक्षयतु॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
अग्ने याहि सुहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ४७

ये । ततृषुः । देव-त्रा । जेहमानाः । होत्रा-विदः । स्तोम-तष्टासः । अर्कैः ॥ आ । अग्ने । याहि । सुहस्रम् । देव-वन्दैः । सत्यैः । कवि-भिः । ऋषि-भिः । घर्मसत्-भिः ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(ये) जिन (जेहमानाः) प्रयत्न करते हुये, (होत्राविदः) वेदवाणी जानने वाले, (स्तोमतष्टासः) स्तुति योग्य कर्मों में ढाले हुये पुरुषों ने (अर्कैः) पूजनीय व्यवहारों से (देवत्रा) उत्तम गुणों की (ततृषुः) तृष्णा की है । (अग्ने) हे विद्वान् ! (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (देववन्दैः) विद्वानों से वन्दना किये गये, (सत्यैः) सत्य शील वाले, (कविभिः) बुद्धिमान्, (घर्मसद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले (ऋषिभिः) उन ऋषियों के साथ (आ याहि) तू आ ॥ ४७ ॥

भावार्थ—जो महात्मा लोग उत्तम विचार वाले सत्यशील प्रतिष्ठित वेदवेत्ता होवें, विद्वान् पुरुष उन से मिलकर सत्कार पूर्वक उन्नति का विचार करें ॥ ४७ ॥

मन्त्र ४७, ४८ कुछ पद भेद और पाद भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । ६, १० ॥

४७—(ये) विद्वांसः (ततृषुः) ञि तृषा पिपासायाम्-लिट् । तृष्यन्ति स्म । उत्कण्ठितवन्तः (देवत्रा) देवमनुष्यपुरुष० । पा० ५ । ४ । ५६ । इति द्वितीयार्थे त्रा । देवान् । दिव्यगुणान् (जेहमानाः) जेह प्रयत्ने—शानच् । प्रयतमानाः । व्याप्रियमाणाः (होत्राविदः) होत्रा वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । वेदवाग्ज्ञातारः (स्तोमतष्टासः) तक्ष तनूकरणे—क्त, असुगागमः । स्तोमैः स्तुतिकर्मभिस्तनूकृतः (अर्कैः) म० ४० । पूजनीयविचारैः (अग्ने) हे विद्वन् (आ याहि) आगच्छ (सहस्रम्) सहस्रप्रकारेण (देववन्दैः) विद्वद्भिर्वन्दना नमस्कारो येषां तैः (सत्यैः) सत्यशीलैः (कविभिः) मेधाविभिः (ऋषिभिः) वेदार्थदर्शकैः (घर्मसद्भिः) घर्म यज्ञनाम—निघ० ३ । १७ । यज्ञे सदनशीलैः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः॥४८॥

ये । सत्यासः । हविः-अदः । हविः-पाः । इन्द्रेण । देवैः । सु-रथम् । तुरेण ॥ आ । अग्ने । याहि । सु-विदत्रेभिः । अर्वाङ् । परैः । पूर्वैः । ऋषि-भिः । घर्मसत्-भिः ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (सत्यासः) सत्यशील, (हविरदः) ग्राह्य अन्न खाने वाले, (हविष्याः) देने लेने योग्य पदार्थों के रक्षक पुरुष (देवैः) विजयी पुरुषों के सहित (तुरेण) वेगवान् (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले जन के साथ (सरथम्) एकरथ में [चलते हैं] । (अग्ने) हे विद्वान् ! (सुविदत्रेभिः) बड़े धनी, (परैः) श्रेष्ठ (पूर्वैः) पूर्वज, (घर्मसद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले, (ऋषिभिः) उन ऋषियों के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (आ याहि) तू आ ॥ ४८॥

भावार्थ—विद्वान् लोग, प्रतापी पुरुष के सहायक, शूरवीरों के नायक पूजनीय महापुरुषों से मिलकर सदा उन्नति का उपाय सोचें ॥ ४८ ॥

मन्त्राः ४९–५२ ॥

पृथिवी देवता ॥ ४९, ५१, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५० प्रस्तारपङ्क्तिः ॥
पृथिव्या उपकारोपदेशः—पृथिवी के उपकार का उपदेश ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाःपृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ४९
उप । सर्प । मातरम् । भूमिम् । एताम् । उरु-व्यचसम् ।

४८—(सत्यासः) सत्याः । सत्यशीलाः (हविरदः) हविषां ग्राह्यान्नानां भक्षयितारः (हविष्याः) हविषां दातव्यग्राह्यपदार्थानां रक्षकाः (इन्द्रेण) परमैश्वर्यवता पुरुषेण सह (देवैः) विजयिपुरुषैः सह (सरथम्) यथा तथा । समाने रथे वर्तमानाः (त्वरेण) त्वरमाणेन (अग्ने) हे विद्वन् (आयाहि) आगच्छ (सुविदत्रेभिः) बहुधनयुक्तैः (अर्वाङ्) अभिमुखः सन् (परैः) उत्कृष्टैः (पूर्वैः) पूर्वपुरुषैः [अन्यत् पूर्ववत्—म० ४७ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवीम् । सु-शेवाम् ॥ ऊर्ण-म्रदाः । पृथिवी । दक्षिणा-वते । एषा । त्वा । पातु । प्र-पथे । पुरस्तात् ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—(मातरम्) माता [के समान] (भूमिम्) आधार वाली (एताम्) इस (उरुव्यचसम्) बड़े फैलाव वाली, (सुशेवाम्) बड़ी सुख देने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (उप) आदर से (सर्प) तू प्राप्त कर। (पृथिवी) पृथिवी (दक्षिणावते) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] वाले पुरुष के लिये (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान मृदुल है, (एषा) यह [पृथिवी] (प्रपथे) बड़े मार्ग में (पुरस्तात्) सामने से (त्वा) तेरी (पातु) रक्षा करे ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो जिज्ञासु पुरुष इस पृथिवी को खोजते रहते हैं, वे प्रतिष्ठा के साथ सुख भोगते हुये आगे बढ़ते जाते हैं ॥ ४८ ॥

मन्त्र ४८-५२ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १८ । १०—१३ ॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूप-सर्पणा । माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (१७)

उत् । श्वञ्चस्व । पृथिवि । मा । नि । बाधथाः । सु-उप-अयना । अस्मै । भव । सु-उपसर्पणा ॥ माता । पुत्रम् । यथा । सिचा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (१७)

भाषार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी तू (उत् श्वञ्चस्व) फूलजा [फूलके समान खिल जा], (मानि बाधथाः) मत दबी जा; (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (सूपायना) अच्छे प्रकार पाने योग्य और (सूपसर्पणा) भले प्रकार चलने

४८—(उप) पूजायाम् (सर्प) गच्छ। प्राप्नुहि (मातरम्) मातृतुल्याम् (भूमिम्) आधारभूताम् (एताम्) दृश्यमानाम् (उरुव्यचसम्) बहुव्याप्तिकाम् (पृथिवीम्) (सुशेवाम्) बहुसुखकरीम् (ऊर्णम्रदाः) गतिकारकोप० । उ० ४ । २२७ । ऊर्ण+म्रद क्षोदे-असि । ऊर्णवन्मृदुला (पृथिवी) भूमिः (दक्षिणावते) प्रतिष्ठायुक्ताय मनुष्याय (एषा) (त्वा) (पातु) रक्षतु (पुरस्तात्) अग्रतः ॥

५० —(उच्छ्वञ्चस्व) श्वचि गतौ—लोट्। उदेहि। पुलकिता भव (पृथिवि) (मा नि बाधथाः) संपीडिता मा भूः (सूपायना) सु + उप + अयना। सुखेन प्राप्तव्या (अस्मै) (भव) (सूपसर्पणा) सु + उप + सर्पणा। सुखेन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य (भव) हो। (यथा) जैसे (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) अपने आंचल से, [वैसे] (भूमे) हे भूमि ! (एनम्) इस [पुरुष] को [अपने रत्नों से] (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढक ले ॥ ५० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विज्ञान पूर्वक पृथिवी के पदार्थों और गुणों का प्रकाश करते हैं, वे अनेक रत्नों को पाकर ऐसे सुखी होते हैं जैसे माता से रक्षित बालक आनन्द पाता है ॥ ५० ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध आ चुका है—अथ० १८ । २ । ५० ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् । ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ ५१ ॥

उत्-श्वञ्चमाना । पृथिवी । सु । तिष्ठतु । सहस्रम् । मितः । उप । हि । श्रयन्ताम् ॥ ते । गृहासः । घृत-श्चुतः । स्योनाः । विश्वाहा । अस्मै । शरणाः । सन्तु । अत्र ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—(उच्छ्वञ्चमाना) फूलती हुयी (पृथिवी) पृथिवी (सु) अच्छे प्रकार (तिष्ठतु) ठहरी रहे, (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (मितः) फैले हुये स्थान [दुर्ग आदि] (हि) अवश्य (उप श्रयन्ताम्) आश्रय लेवें। (ते) यह (गृहासः) घर (घृतश्चुतः) घी से सींचने वाले, (स्योनाः) सुख करने हारे और (शरणाः) शरण देने वाले (विश्वाहा) सब दिन (अत्र) यहां पर (अस्मै) इस पुरुष के लिये (सन्तु) होवें ॥ ५१ ॥

गन्तव्या (माता) जननी (पुत्रम्) सन्तानम् (यथा) (सिचा) चेलाञ्चलेन (अभि) सर्वतः (एनम्) जिज्ञासुम् (भूमे) हे पृथिवि (ऊर्णुहि) आच्छादय स्वरत्नैः ॥

५१—(उच्छ्वञ्चमाना) म० ५० । पुलकितावयवा (पृथिवी) (सु) (तिष्ठतु) (सहस्रम्) सहस्रप्रकारेण (मितः) डु मिञ् प्रक्षेपणे—क्विप्, तुक्। प्रक्षिप्ता विस्तृता दुर्गादिनिवासाः (हि) निश्चयेन (उपश्रयन्ताम्) आश्रिता भवन्तु (ते) दृश्यमानाः (गृहासः) गृहाः (घृतश्चुतः) श्चुतिर् क्षरणे—क्विप्। घृतेन क्षारयितारः। सेक्तारः (स्योनाः) सुखकराः (विश्वाहा) सर्वाण्यहानि (अस्मै) पुरुषाय (शरणाः) शरण—अर्शआद्यच्। आश्रयभूताः (सन्तु) (अत्र) अस्मिंल्लोके ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि पृथिवी को भले प्रकार उपकारी करके अच्छे अच्छे दृढ़ सुखदायक स्थान बनावें ॥ ५१ ॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् । एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२ ॥

उत् । ते । स्तभ्नामि । पृथिवीम् । त्वत् । परि । इमम् । लोगम् । नि-दधत् । मो इति । अहम् । रिषम् ॥ एताम् । स्थूणाम् । पितरः । धारयन्ति । ते । तत्र । यमः । सदना । ते । कृणोतु ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत्) उत्तमता से (स्तभ्नामि) मैं [गृहस्थ] थांमता हूं, (त्वत् परि) तेरे सब ओर (इमम्) इस (लोगम्) निवास स्थान को (निदधत्) दृढ़ जमाता हुआ (अहम्) मैं (मो रिषम्) कभी न दुःख पाऊं । (एताम्) इस (स्थूणाम्) नीव [घर की मूल] को (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा लोग] (ते) तेरे लिये (धारयन्ति) धरते हैं, (तत्र) उस [नीव] पर (यमः) संयमी [शिल्पी जन] (ते) तेरे लिये (सदना) घरों को (कृणोतु) बनावे ॥ ५२ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य भूमि को सुथरी सुडौल बनाकर बड़े लोगों के

५२—(उत्) उत्तमतया (ते) तुभ्यम् (स्तभ्नामि) ष्टभि गतिप्रतिबन्धे—श्ना । धारयामि । स्थापयामि (पृथिवीम्) भूमिम् (त्वत् परि) तव परितः (इमम्) (लोगम्) लुज लुजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु—घञ् । चजोः कु घिण्यतोः । पा० ७ । ३ । ५२ । इति कुत्वं घिति प्रत्यये । निवासस्थानम् (निदधत्) दृढं धारयन् (अहम्) गृहस्थः (मो रिषम्) मैव हिंसितो भूवम् (एताम्) (स्थूणाम्) रास्नासास्नास्थूणावीणाः । उ० ३ । १५ । ष्ठा गतिनिवृत्तौ—नप्रत्ययः, आकारस्य ऊ इत्यादेशः । तिष्ठति गृहं यस्यां ताम् । गृहमूलम् (पितरः) पालका महात्मानः (धारयन्ति) धरन्ति (ते) तुभ्यम् (तत्र) गृहमूले (यमः) संयमी । शिल्पी (सदना) गृहाणि (ते) तुभ्यम् (कृणोतु) करोतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों से नींव जमवा कर अच्छे अच्छे शिल्पियों से दृढ़ स्थान बनवावें जिससे रहने वाले सदा सुखी रहें ॥ ५२ ॥

मन्त्राः ५३—६० ॥

अग्निर्देवता ॥ ५३ आर्षी त्रिष्टुप्; ५४ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ५५, ५७ त्रिष्टुप्; ५६ अनुष्टुप्; ५८ भुरिग् विराट् छन्दः; ५९ भुरिक् त्रिष्टुप्; ६० षट्पदा जगती ॥

गृहरक्षणोपदेशः—घर की रक्षा का उपदेश ॥

इ॒मम॑ग्ने चम॒सं मा वि जि॑ह्वरः प्रि॒यो दे॒वाना॑मु॒त सो॒म्याना॑म् ।
अ॒यं यश्च॑म॒सो दे॑व॒पान॒स्तस्मि॑न् दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥५३॥

इ॒मम् । अ॒ग्ने॒ । च॒म॒सम् । मा । वि । जि॒ह्व॒रः॒ । प्रि॒यः । दे॒वा-ना॑म् । उ॒त । सो॒म्याना॑म् ॥ अ॒यम् । यः । च॒म॒सः । दे॒व॒-पानः॑ । तस्मि॑न् । दे॒वाः । अ॒मृताः॑ । मा॒द॒य॒न्ता॒म् ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (इमम्) इस (चमसम्) खाने योग्य अन्न को (वि) बिगाड़ कर (मा जिह्वरः) मत नष्ट कर, वह [अन्न] (देवानाम्) विद्वानों का (उत) और (सोम्यानाम्) ऐश्वर्य वालों का (प्रियः) प्रिय है। (अयम्) यह (यः) जो (चमसः) अन्न (देवपानः) इन्द्रियों का रक्षक है, (तस्मिन्) उस में (अमृताः) अमर [न मरे हुये पुरुषार्थी] (देवाः) व्यवहार कुशल लोग (मादयन्ताम्) [सब को] तृप्त करें ॥ ५३ ॥

भावार्थ—मनुष्य शुद्ध अन्न आदि पदार्थ के सेवन से विद्वान् और ऐश्वर्यवान् होकर शरीर रक्षा करके सब को सुखी रक्खें ॥ ५३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । ८ ॥

५३—(इमम्) उपस्थितम् (चमसम्) अत्यविचमि० । उ० ३ । ११७ । चमु अदने—असच् । भक्षणीयं पदार्थम् (वि) विकृत्य (मा जिह्वरः) ह्वृ कौटिल्ये—णिचि चङि लुङि रूपम् । कुटिलं नष्टं मा कार्षीः (प्रियः) प्रीतिकरः (देवानाम्) विदुषाम् (उत) अपि च (सोम्यानाम्) ऐश्वर्ययोग्यानाम् (अयम्) (यः) (चमसः) भक्षणीयपदार्थः (देवपानः) पा रक्षणे—ल्युट् । इन्द्रियरक्षणः (तस्मिन्) पदार्थे (देवाः) व्यवहारकुशलाः (अमताः) अमराः । पुरुषार्थवन्तः (मादयन्ताम्) तर्पयन्तु सर्वान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते । तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥५४॥

अथर्वा । पूर्णम् । चमसम् । यम् । इन्द्राय । अबिभः । वाजि-नी-वते ॥ तस्मिन् । कृणोति । सु-कृतस्य । भक्षम् । तस्मिन् । इन्दुः । पवते । विश्व-दानीम् ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—(अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (यम्) जिसे (पूर्णम्) पूरे (चमसम्) अन्न को (वाजिनीवते) विज्ञान युक्त क्रिया वाले (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (अबिभः) भरा है। (तस्मिन्) उस [अन्न] में (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सुकृतस्य) सुकर्म का (भक्षम्) सेवन [वा भोग] (कृणोति) करता है, और (तस्मिन्) उसी [अन्न] में वह (विश्वदानीम्) समस्त दानों की क्रिया को (पवते) शुद्ध करता है ॥ ५४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने संसार को अन्न आदि सुखदायक पदार्थों से भर दिया है, मनुष्य पुरुषार्थ से धर्म के साथ उन्हें प्राप्त कर के सब को सुख देवें ॥ ५४ ॥

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः। अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ५५

यत् । ते । कृष्णः । शकुनः । आ-तुतोद । पिपीलः । सर्पः ।

५४—(अथर्वा) अ० ४ । १ । ७ । थर्वतिश्चरतिकर्मा—निरु० ११ । १८ । स्नामदिपद्यर्ति० । उ० ४ । ११३ । अ+थर्व चरणे—वनिप्, वलोपः । निश्चलः परमेश्वरः (पूर्णम्) पर्याप्तम् (चमसम्) म० ५३ । भक्षणीयपदार्थम् (यम्) (इन्द्राय) परमैश्वर्यवते पुरुषाय (अबिभः) बिभर्तेर्लङि प्रथमैक-वचनम् । भृतवान् (वाजिनीवते) विज्ञानवतीक्रियायुक्ताय (तस्मिन्) चमसे (कृणोति) करोति (सुकृतस्य) पुण्यकर्मणः । धर्मस्य (भक्षम्) वृतॄवदिवचि० । उ० ३ । ६२ । भज सेवायाम्—सप्रत्ययः । सेवनम् । भोगम् (तस्मिन्) (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (पवते) शोधयति (विश्वदानीम्) अ० ७ । ७३ । ११ । विश्वानि सर्वाणि दानानि यस्यां तां क्रियाम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत । वा । श्वापदः ॥ अग्निः । तत् । विश्व-अत् । अगदम् । कृणोतु । सोमः । च । यः । ब्राह्मणान् । आ-विवेश ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो कुछ (ते) तेरा [अङ्ग] (कृष्णः) काले (शकुनः) पक्षी [काक आदि], (पिपीलः) चीउंटा, (सर्पः) सर्प, (उत वा) अथवा (श्वापदः) कुत्ते समान पांव वाले, जङ्गली पशु [व्याघ्र शृगाल आदि] ने (आतुतोद) घायल कर दिया है, (तत्) उस [घायल अङ्ग] को (विश्वात्) सर्वरोगभक्षक (अग्निः) आग (अगदम्) नीरोग (कृणोतु) करे, (च) और (यः) जिस (सोमः) ऐश्वर्य [प्रभाव] ने (ब्राह्मणान्) बड़े विद्वानों में (आविवेश) प्रवेश किया है, [वह भी उसे नीरोग करे] ॥ ५५ ॥

भावार्थ—यदि विषैला पक्षी, पशु सर्प, कीट आदि काट खावे, तो मनुष्य थोड़े विषैले के काटे को आग से सेक दें और बड़े विषैले के काटे को आग से जलावें तथा और विद्वान् वैद्यों से भी औषध करावें, यह गृहस्थों को जानना चाहिये ॥ ५५ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १६ । ६ ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयस्यो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥

पयस्वतीः । ओषधयः । पयस्वत् । मामकम् । पयः ॥
अपाम् । पयसः । यत् । पयः । तेन । मा । सह । शुम्भतु ॥५६॥

भाषार्थ—(ओषधयः) ओषधियां [अन्न सोम लता आदि] (पयस्वतीः)

५५—(यत्) अङ्गम् (ते) तव (कृष्णः) कृष्णवर्णः (शकुनः) पक्षी काकादिः (आतुतोद) तुद व्यथने । सर्वतो व्यथितं व्याकुलं कृतवान् (पिपीलः) अपि+पील रोधने—अच् । विषदंष्ट्रः पिपीलकादिः (सर्पः) भुजङ्गः (उत वा) अथवा (श्वापदः) शुनः पादानीव पादानि यस्य सः । व्याघ्रशृगालादिहिंस्रपशुः (अग्निः) भौतिकोऽग्निः (तत्) व्यथितमङ्गम् (विश्वात्) सर्वरोगभक्षकः (अगदम्) नीरोगम् (कृणोतु) करोतु (सोमः) ऐश्वर्यम् । प्रभावः (यः) (ब्राह्मणान्) विदुषः पुरुषान् (आविवेश) सम्यक् प्रविष्टवान् ॥

५६—(पयस्वतीः) रपेरत एच्च । उ० ४ । १६० । पा पाने—असुन्,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार वाली [होवें], (मामकम्) मेरा (पयः) ज्ञान (पयस्वत्) सार वाला [होवे]। और (अपाम्) जलों के (पयसः) सार का (यत्) जो (पयः) सार है, (तेन सह) उस के साथ (मा) मुझे (शुम्भतु) वह [विद्वान्] शोभायमान करे ॥ ५६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विचार पूर्वक सारयुक्त ओषधियों का सेवन शुद्ध उत्तम जल के साथ करके शरीर को पुष्ट करें ॥ ५६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद स ऋग्वेद में है—१०। १७। १४। इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध का मिलान करो—अ० ३। २४। १ ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७॥

इमाः। नारीः। अविधवाः। सु-पत्नीः। आ-अञ्जनेन। सर्पिषा। सम्। स्पृशन्ताम् ॥ अनश्रवः। अनमीवाः। सु-रत्नाः। आ। रोहन्तु। जनयः। योनिम्। अग्रे ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—(इमाः) यह [विदुषी] (नारीः) नारियां (अविधवाः) सधवा [मनुष्यों वाली] और (सुपत्नीः) धार्मिक पतियों वाली होकर (आञ्जनेन) यथावत् मेल से और (सर्पिषा) घी आदि [सारपदार्थ] से (सं स्पृशन्ताम्) संयुक्त रहें। (अनश्रवः) बिना आसुओं वाली, (अनमीवाः) बिना रोगों वाली, (सुरत्नाः) सुन्दर सुन्दर रत्नों वाली (जनयः) मातायें (अग्रे) आगे आगे (योनिम्) मिलने के स्थान [घर, सभा आदि] में (आ रोहन्तु) चढ़ें ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जो विदुषी स्त्रियां ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुण वाली होती हैं, वे अपने विद्वान् सुयोग्य कुटुम्बियों पतियों और पुत्र आदि के साथ शरीर और

मतुप्, ङीप् धातोरीत्वम्। सारवत्यः (ओषधयः) अन्नसोमलतादयः (पयस्वत्) सारयुक्तम् (मामकम्) मदीयम् (पयः) पय गतौ—असुन्। ज्ञानम् (अपाम्) जलानाम् (पयसः) सारस्य (यत्) (पयः) सारः (तेन) पयसा (मा) माम् (सह) (शुम्भतु) शोभनं करोतु ॥

५७—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० १३। २। ३१ ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा से स्वस्थ, रहकर बहुत धनवती और सुखवती होकर अग्रगामिनी बनती हैं ॥ ५७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । १८ । ७ । और ऊपर आचुका है-अ० १२ । २ । ३१ ॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥

सम् । गच्छस्व । पितृ-भिः । सम् । यमेन । इष्टापूर्तेन । परमे । वि-ओमन् ॥ हित्वा । अवद्यम् । पुनः । अस्तम् । आ । इहि । सम् । गच्छताम् । तन्वा । सु-वर्चाः ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यमेन सम्) नियम [ब्रह्मचर्य आदि व्रत] के साथ (इष्टापूर्तेन) यज्ञ, वेदाध्ययन तथा अन्नदान आदि पुण्य कर्म से (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में [वर्तमान] (पितृभिः) पितरों [पालक महात्माओं] से (सं गच्छस्व) तू मिल । (अवद्यम्) निन्दित कर्म [अज्ञान] को (हित्वा) छोड़कर (पुनः) फिर (अस्तम्) घर (आ इहि) तू आ और (सुवर्चाः) बड़ा तेजस्वी होकर (तन्वा) उपकार शक्ति के साथ (सं गच्छताम्) आप मिलें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य आदि तप के साथ बड़े विद्वान् महाशयों से विद्या प्राप्त करके गृहाश्रम में प्रवेश कर प्रतापी होवें ॥ ५८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १४ । ८ । और इस का चौथा पाद ऊपर आचुका है-अ० १८ । २ । १० तथा ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

५८—(सं गच्छस्व) संगतो भव (पितृभिः) पालकैर्महात्मभिः (सम्) सह (यमेन) नियमेन । ब्रह्मचर्यादिव्रतेन (इष्टापूर्तेन) अ०२ । १२ । ४ । यज्ञ-वेदाध्ययनान्नदानादिकर्मणा (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) अ० १ १७ । ६ । वि + अव रक्षणे—मनिन् । विशेषरक्षापदे (हित्वा) त्यक्त्वा (अवद्यम्) निन्द्यम् अज्ञानम् (पुनः) अज्ञानत्यागानन्तरम् (अस्तम्) गृहम् (एहि) आगच्छ (सं गच्छताम्) संगतो भवतु भवान् (तन्वा) उपकारशक्त्या (सुवर्चाः) महा-तेजस्वी ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये नः॑ पि॒तुः पि॒तरो॒ ये पि॑ताम॒हा य आ॑विवि॒शुरु॒र्व१॒॑न्तरि॑क्षम् । तेभ्यः॑ स्व॒राडसु॑नीतिर्नो अ॒द्य य॑थाव॒शं त॒न्वः॑ कल्पयाति ॥ ५९ ॥

ये । नः । पि॒तुः । पि॒तरः॑ । ये । पि॒ता॒म॒हाः । ये । आ॒-वि॒वि॒शुः । उ॒रु । अ॒न्तरि॑क्षम् ॥ तेभ्यः॑ । स्व॒-राट् । असु॑-नीतिः । नः॒ । अ॒द्य । य॒था॒-व॒शम् । त॒न्वः॑ । क॒ल्प॒या॒ति॒ ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—(ये) जो पुरुष (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता के समान हैं, और (ये) जो [उस के] (पितामहाः) दादे के तुल्य हैं, और (ये) जो (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) आकाश में [विद्याबल से विमान आदि द्वारा] (आविविशुः) प्रविष्ट हुये हैं, (तेभ्यः) उन [पितरों] के लिये (स्वराट्) स्वयं राजा (असुनीतिः) प्राण दाता परमेश्वर (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों को (अद्य) अब (यथावशम्) [हमारी] कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थ करे ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जो पितर लोग विद्या के भंडार परोपकारी होवें, सब मनुष्य परमेश्वर की प्रार्थना द्वारा विद्या आदि शुभ गुण प्राप्त कर के उन महात्माओं के उद्देश्य पूरे करने में समर्थ होवें ॥ ५९ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । १४ तथा यजुर्वेद में—१९ । ६० और पूर्वार्द्ध ऊपर आया है—अ० १८ । २ । ४९ ॥

शं ते॑ नीहा॒रो भ॑वतु॒ शं ते॑ प्रु॒ष्वाव॑ शीयताम् ।
शीति॑के॒ शीति॑कावति॒ ह्लादि॑के॒ ह्लादि॑कावति ।
म॒ण्डू॒क्य१॒॑प्सु शं भु॑व इ॒मं स्व१॒॑ग्निं श॑मय ॥ ६० ॥ (१८)

शम् । ते॒ । नी॒हा॒रः । भ॒व॒तु॒ । शम् । ते॒ । प्रु॒ष्वा । अव॑ ।

५९—पूर्वार्द्धो व्याख्यातः—अ० १८ । २ । ४९ । (तेभ्यः) पितृभ्यः (स्वराट्) स्वयमेव राजा शासकः (असुनीतिः) असूनां प्राणानां नेता प्रापकः परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (अद्य) इदानीम् (यथावशम्) यथाकामम् (तन्वः) शरीराणि (कल्पयाति) कल्पयेत् । समर्थयेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुयताम् ॥ शीतिके । शीतिका-वति । ह्लादिके । ह्लादिका-वति ॥ मण्डूकी । अप्-सु । शम् । भुवः । इमम् । सु । अग्निम् । शमय ॥ ६० ॥ (१८)

भाषार्थ—(ते) तेरे लिये (नीहारः) कुहरा (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे, (ते) तेरे लिये (प्रुष्वा) वृष्टि (शम्) शान्ति से (अवशीयताम्) नीचे गिरे। (शीतिके) हे शीतल स्वभाव वाली (शीतिकावति) हे शीतल क्रियाओं वाली (ह्लादिके) हे आनन्द देने वाली (ह्लादिकावति) हे आनन्द युक्त क्रियाओं वाली ! [प्रजा अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष] (अप्सु) जल में (मण्डूकी) मेंडुकी [के समान] तू (शम्) शान्त (भुवः) हो, और (इमम्) इस (अग्निम्) आग [महासन्ताप] को (सु) अच्छे प्रकार (शमय) शान्त कर ॥ ६० ॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष कुहरे, वृष्टि आदि का सहन कर के और जल में मेंडुकी के समान शान्त स्वभाव और प्रसन्न चित्त रहकर सन्ताप अर्थात् विघ्नों का नाश करें ॥ ६० ॥

इस मन्त्र का भाग (शीतिके.....शमय) कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । १४ ॥

मन्त्राः ६१—६४ ॥

विवस्वान् यमो वा देवता ॥ ६१ त्रिष्टुप् ; ६२ आर्षी त्रिष्टुप् ; ६३ निचृत्

६०—(शम्) सुखकरः (ते) तुभ्यम् (नीहारः) घनीभूतशिशिरम् (भवतु) (शम्) शान्तिप्रदः (ते) (प्रुष्वा) शीङ्क्रुशिरुहि० । उ० ४ । ११४ । प्रुष स्नेहनसेवनपूरणेषु—कनिप् । वृष्टिपातः (अवशीयताम्) शीङ् स्वप्ने—भावे लोट् । अधो वर्तताम् । अधः पततु (शीतिके) स्वार्थे कन्, टाप् । उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः । पा० ७ । ३ । ४६ । अत इत्त्वम् । हे शीतल-स्वभावे प्रजे (शीतिकावति) हे शीतलक्रियायुक्ते (ह्लादिके) ह्लादी सुखे—ण्वुल् । प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः । पा० ७ । ३ । ४४ । अत इत्त्वम् । हे सुखकारिणि (ह्लादिकावति) हे सुखवतीक्रियायुक्ते (मण्डूकी) मण्डूक-स्त्री यथा (अप्सु) जलेषु (शम) शान्ता (भुवः) लेटि रूपम् । भवेः (इमम्) (सु) सुष्ठु (अग्निम्) सन्तापम् । विघ्नम् (शमय) शान्तं कुरु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिष्टुप् ; ६४ भुरिक् पथ्या पङ्क्तिः ॥

अभयप्राप्त्युपदेशः—अभय पाने का उपदेश ॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१॥

विवस्वान् । नः । अभयम् । कृणोतु । यः । सु-त्रामा । जीर-दानुः । सु-दानुः ॥ इह । इमे । वीराः । बहवः । भवन्तु । गो-मत् । अश्व-वत् । मयि । अस्तु । पुष्टम् ॥ ६१ ॥

भावार्थ—(विवस्वान्) प्रकाशमय परमेश्वर (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे, (यः) जो [परमात्मा] (सुत्रामा) बड़ा रक्षक (जीरदानुः) वेग का देने वाला, (सुदानुः) बड़ा उदार है (इह) यहां पर (इमे) यह सब (वीराः) वीर लोग (बहवः) बहुत (भवन्तु) होवें, (गोमत्) उत्तम गौ ओं से युक्त और (अश्ववत्) उत्तम घोड़ों से युक्त (पुष्टम्) पोषण (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥ ६१ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर प्रयत्नशाली वेगवान् और उदार होकर संसार में शान्ति करें और सब लोगों को वीर बनाकर समृद्ध होवें ॥ ६१ ॥

यह मन्त्र महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि जात कर्म प्रकरण में उद्धृत है और इस का तीसरा पाद ऊपर आया है—अ० १२ । २ । २१ ॥

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं नु एतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामधि वोचं गुः ॥६२॥

६१—(विवस्वान्) प्रकाशमयः परमेश्वरः (नः) अस्मभ्यम् (अभयम्) भयराहित्यम् (कृणोतु) करोतु (यः) परमेश्वरः (सुत्रामा) सु+त्रैङ् पालने मनिन् । बहुरक्षकः (जीरदानुः) अ० ७ । १८ । २ । जोरी च । उ० २ । २३ । जॄ गतौ-रक्, ईकारादेशः, जीरम् क्षिप्रनाम—निघ० २ । १५, ददातेर्नुः । वेगदाता (सुदानुः) महोदारः (इह) अत्र संसारे (इमे) (वीराः) शूराः (बहवः) बहुसंख्याकाः (भवन्तु) (गोमत्) उत्तमगोभिर्युक्तम् (अश्ववत्) श्रेष्ठाश्वोपेतम् (मयि) (अस्तु) (पुष्टम्) पोषणम् । वर्धनम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवस्वान् । नः । अमृत-त्वे । दधातु । परा । एतु । मृत्युः । अमृतम् । नः । आ । एतु ॥ इमान् । रक्षतु । पुरुषान् । आ । जरिम्णः । मो इति । सु । एषाम् । असवः । यमम् । गुः ॥६२॥

भाषार्थ—(विवस्वान्) प्रकाशमय परमेश्वर (नः) हमें (अमृतत्वे) अमरपन [यश] के बीच (दधातु) रक्खे, (मृत्युः) [निर्धनता आदि दुःख] (परा) दूर (एतु) जावे, (अमृतम्) अमरण [धनाढ्यता] (नः) हम में (आ एतु) आवे। वह [परमेश्वर] (इमान्) इन (पुरुषान्) पुरुषों को (जरिम्णः) जीवन की हानि से (आ) सब प्रकार (रक्षतु) बचावे, (एषाम्) इन के (असवः) प्राण (यमम्) मृत्यु को (सु) कष्ट के साथ (मो गुः) कभी न जावें ॥ ६२ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थी लोग परमात्मा के नियम से कभी भूखे प्यासे नहीं रहते, वे धनवान् होकर अपना जीवन सुख से बिताते हैं ॥ ६२ ॥

यो दुध्रे अन्तरिक्षे न मुह्वा पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् । तमर्चत विश्वमित्रा हुविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ६३

यः । दुध्रे । अन्तरिक्षे । न । मुह्वा । पितॄणाम् । कविः । प्र-मतिः । मतीनाम् ॥ तम् । अर्चत । विश्व-मित्राः । हुविः-भिः । सः । नः । यमः । प्र-तरम् । जीवसे । धात् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—(यः) जिस [परमात्मा] ने (पितॄणाम्) पितरों [पालक-

६२—(विवस्वान्) प्रकाशमयः परमात्मा (नः) अस्मान् (अमृतत्वे) अमरत्वे। यशसि (दधातु) धारयतु (परा) दूरे (एतु) गच्छतु (मृत्युः) मरणम्। निर्धनतादिदुःखम् (अमृतम्) अमरणम्। धनाढ्यत्वम् (नः) अस्मान् (एतु) आगच्छतु (इमान्) उपस्थितान् (रक्षतु) पातु (पुरुषान्) (आ) समन्तात् (जरिम्णः) जरा-इमनिच्। वयोहानेः सकाशात् (मो गुः) इण् गतौ, माङि लुङि रूपम्। मैव गच्छन्तु (सु) कृच्छ्रेण। कष्टेन (एषाम्) पुरुषाणाम् (असवः) प्राणाः (यमम्) मृत्युम् ॥

६३—(यः) परमात्मा (दुध्रे) धृङ् धारणे-लिट्। धृतवान् (अन्तरिक्षे)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माओं] में (कविः) बुद्धिमान् और (मतीनाम्) बुद्धिमानों में (प्रमतिः) बड़ा बुद्धिमान् होकर (अन्तरिक्षे) आकाश के बीच (न) प्रबन्ध के साथ (महा) अपनी महिमा से [सब लोकों को] (दधे) धारण किया है। (तम्) उस [परमात्मा] को (विश्वमित्राः) सब के मित्र होकर तुम (हविर्भिः) आत्मसमर्पणों से (अर्चत) पूजो, (सः) वह (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (नः) हमें (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (जीवसे) जीने के लिये (धात्) धारण करे ॥ ६३ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा आकाश के बीच सब लोगों को रचकर आकर्षण आदि नियम में रखता है, सब मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना कर के अपने जीवन को अधिक अधिक उच्च बनाते हैं ॥ ६३ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध आगे है, अ० १८ । ४ । ५४ ॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन । सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४ ॥

आ । रोहत । दिवम् । उत्-तमाम् । ऋषयः । मा । बिभीतन ॥ सोम-पाः । सोम-पायिनः । इदम् । वः । क्रियते । हविः । अगन्म । ज्योतिः । उत्-तमम् ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (उत्तमाम्) उत्तम (दिवम्) विद्या में (आ रोहत) तुम ऊंचे होओ, (ऋषयः) हे ऋषियो ! [सन्मार्गदर्शको] (मा

आकाशे (न) णह बन्धने—ड । सुपां सुलुक्० । पा० । ७ । १ । ३९ । इति विभक्तेर्लुक् । तेन प्रबन्धेन । आकर्षणादिनियमेन (महा) स्वमहिम्ना (पितृणाम्) पालकमहात्मनां मध्ये (कविः) मेधावी (प्रमतिः) प्रकृष्टबुद्धियुक्तः (मतीनाम्) मतयो मेधाविनाम—निघ० ३ । १५ । मेधाविनां मध्ये (तम्) परमात्मानम् (अर्चत) पूजयत (विश्वमित्राः) सर्वेषां सखायः सन्तः (हविर्भिः) आत्मदानैः (सः) (नः) अस्मान् (यमः) नियामकः परमेश्वरः (प्रतरम्) प्रकृष्टतरम् (जीव से) जीवनाय (धात्) दध्यात् । धारयेत् ॥

६४—(आ रोहत) आरूढा भवत (दिवम्) दिवु गतौ—डिवि । गतिम् । विद्याम् (उत्तमाम्) उत्कृष्टाम् (ऋषयः) सन्मार्गदर्शकाः (मा बिभीतन)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीतन) मत भय करो। तुम (सोमपाः) शान्ति रस पीने वाले और (सोमपायिनः) शान्ति रस पिलाने वाले हो, (वः) तुम्हारे लिये (इदम्) यह (हविः) देने लेने योग्य कर्म (क्रियते) किया जाता है, (उत्तमम्) सब से उत्तम (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (अगन्म) हम सब प्राप्त होवें ॥ ६४ ॥

भावार्थ—जो ऋषि महात्मा उत्तम विद्या प्राप्त कर के शान्तचित्त होकर संसार में शान्ति स्थापित करें, मनुष्य उन से सत्कार पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके परमात्मा की आज्ञा पालने में आनन्द पावें ॥ ६४ ॥

इस मन्त्र का अन्तिमपाद (अगन्म ··) यजुर्वेद में है—२० । २१ ॥

मन्त्राः ६५—६७ ॥

अग्निरिन्द्रो वा देवता ॥ ६५, ६६ त्रिष्टुप् ; ६७ पथ्या बृहती ॥ राजकर्त्तव्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५ ॥

प्र । केतुना । बृहता । भाति । अग्निः । आ । रोदसी इति । वृषभः । रोरवीति ॥ दिवः । चित् । अन्तात् । उप-माम् । उत् । आनट् । अपाम् । उप-स्थे । महिषः । ववर्ध ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—(अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी राजा (बृहता) बड़ी (केतुना) बुद्धि के साथ (प्र भाति) चमकता जाता है, [जैसे] (वृषभः) वृष्टि कराने

विभेतेर्लोटि तनादेशः । मा बिभीत । भयं मा प्राप्नुत (सोमपाः) शान्तिरसस्य पानशीलाः (सोमपायिनः) शान्तिरसस्य पानकारयितारः (इदम्) (वः) युष्मभ्यम् (क्रियते) विधीयते (हविः) दातव्यग्राह्यकर्म (अगन्म) लिङर्थे लुङ् । वयं प्राप्नुयाम (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूपं परमात्मानम् (उत्तमम्) श्रेष्ठम् ॥

६५—(प्र) प्रकर्षेण (केतुना) प्रज्ञया—निघ० ३ । ९ (बृहता) महता (भाति) दीप्यते (अग्निः) अग्निवत्तेजस्वी राजा (आ) व्याप्य (रोदसी)

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला [सूर्य का ताप] (रोदसी) आकाश और पृथिवी में (आ) व्यापकर (रोरवीति) [बिजुली, मेघ, वायु आदि द्वारा] सब ओर से गरजता है। और (दिवः) सूर्य लोक के (चित्) ही (अन्तात्) अन्त से (उपमाम्) [हमारी] निकटता को (उत्) उत्तमता से (आनट्) वह [सूर्य का ताप] व्यापता है, [वैसे ही] (महिषः) वह पूजनीय राजा (अपाम्) प्रजाओं की (उपस्थे) गोद में (ववर्ध) बढ़ता है ॥ ६५ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपने ताप द्वारा पृथिवी से जल खींचकर और फिर बरसा कर आनन्द बढ़ाता है, वैसे ही जो प्रतापी राजा प्रजा से कर लेकर प्रजा को सुख देता है, वह प्रजाप्रिय होकर संसार में बढ़ाता है ॥ ६५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८ । १ तथा सामवेद में—पू० १ । ७ । ६ । दूसरा पाद ऋग्वेद में है—६ । ७३ । १ ॥

नाकं सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६॥

नाकम् । सु-पर्णम् । उप । यत् । पतन्तम् । हृदा । वेनन्तः । अभि-अचक्षत । त्वा ॥ हिरण्य-पक्षम् । वरुणस्य । दूतम् । यमस्य । योनौ । शकुनम् । भुरण्युम् ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—[हे राजन् !] (यत्) जैसे (नाके) आकाश में (उप

द्यावापृथिव्यौ (वृषभः) वर्षकः सूर्यतापः (रोरवीति) भृशं रौति । विद्युदादिना भृशं शब्दं करोति (दिवः) सूर्यलोकस्य (चित्) एव (अन्तात्) (उपमाम्) सामीप्यम् (उत) उत्तमतया (आनट्) अशूङ् व्याप्तौ लिटि, एश्त्वे, एशो लुक् छान्दसः, व्रश्चादिना षत्वम् । झलां जशोऽन्ते । पा० ८ । २ । ३९ । इति डकारः । वावसाने । पा० ८ । ४ । ५६ । डस्य टः । आनट्, व्याप्तिकर्मा—निघ० २ । १८ । आनशे । अश्नुते । व्याप्नोति (अपाम्) प्रजानाम् (उपस्थे) उपस्थाने । उत्सङ्गे (महिषः) महान्—निघ० ३ । ३ । पूजनीयो राजा (ववर्ध) लडर्थे लिट् । ववृधे । वर्धते ॥

६६ (नाके) पिनाकादयश्च । उ० ४ । १५ । णीञ् प्रापणे—आकप्रत्ययः,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन्तम्) उड़ते हुये (सुपर्णम्) सुन्दर पंख वाले [गरुड़ आदि] पक्षी को, [वैसे ही] (हिरण्यपक्षम्) तेज ग्रहण करने वाले, (वरुणस्य) श्रेष्ठ गुण के (दूतम्) पहुंचाने वाले, (यमस्य) न्याय के (योनौ) घर में (शकुनम्) शक्तिमान् और (भुरण्युम्) पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) चाहने वाले पुरुषों ने (अभ्यचक्षत) सब ओर से देखते हैं ॥ ६६ ॥

भावार्थ—जो राजा महाप्रतापी, श्रेष्ठ गुणी, न्यायकारी और प्रजापालक होता है, मनुष्य उस वेगवान् तीव्रबुद्धि को ऐसी प्रीति से देखते हैं, जैसे आकाश में ऊंचे उड़ते हुये गरुड़ आदि को चाव से देखते हैं ॥ ६६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है-१० । १२३ । ५ और सामवेद में—पू० ४ । ३ । ८ तथा उ० ६ । २ । १३ ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ६७ ॥

इन्द्र । क्रतुम् । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ॥ शिक्ष । नः । अस्मिन् । पुरु-हूत । यामनि । जीवाः । ज्योतिः । अशीमहि ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! तू (नः) हमारे लिये (क्रतुम्) बुद्धि (आ भर) भर दे, (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः)

टिलोपः । लोकानां नेतरि आकाशे (सुपर्णम्) शोभनपक्षोपेतं गरुडादिविहङ्गम् (यत) यथा (उप पतन्तम्) उड्डीयमानम् (हृदा) हृदयेन (वेनन्तः) वेनतिः कान्तिकर्मा—निघ० २ । ६ । कामयमानाः (अभ्यचक्षत) सर्वतः पश्यन्ति (त्वा) त्वां राजानम् (हिरण्यपक्षम्) पक्ष परिग्रहे-अच् । तेजसो ग्रहीतारम् (वरुणस्य) श्रेष्ठगुणस्य (दूतम्) दुतनिभ्यां दीर्घश्च । उ० ३ । ६० । दुगतौ—क्त । प्रापकम् (यमस्य) न्यायस्य (योनौ) गृहे (शकुनम्) शकेरुनोन्तान्त्युनयः । उ० ३ । ४६ । शक्लृट् शक्तौ—उनप्रत्ययः । शक्तम् । समर्थम् (भुरण्युम्) यजिमनिशुन्धि० उ० ३ । २० । भुरण धारणपोषणयोः—युच् । भर्तारम् ॥

६७—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् राजन् (क्रतुम्) प्रज्ञाम् (नः) अस्मभ्यम् (भर) पोषय (पिता) (पुत्रेभ्यः) भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् । पा० १ । २ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्रों [सन्तानों] के लिये । (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये [राजन् !] (अस्मिन्) इस (यामनि) समय वा मार्ग में (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दे, [जिस से] (जीवाः) हम जीव लोग (ज्योतिः) प्रकाश को (अशीमहि) पावें ॥ ६७ ॥

भावार्थ—राजा उत्तम उत्तम विद्यालय, शिल्पालय आदि खोलकर प्रजा का हित करे जैसे पिता सन्तानों का हित करता है, जिस से लोग अज्ञान के अन्धकार से छूट कर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है–७ । ३२ । २६ और सामवेद में है—पू० ३ । ७ । ७ तथा उ० ६ । ३ । ६ ॥

मन्त्राः ६८—७३ ॥

प्रजापतिर्देवता ॥ ६८, ७०, ७२ अनुष्टुप् ; ६९, ७१ निचृदार्षी बृहती; ७३ त्रिष्टुप् ॥

गृहाश्रमे मनुष्यकर्तव्योपदेशः—गृहाश्रम में मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥

अपूप-अपिहितान् । कुम्भान् । यान् । ते । देवाः । अधारयन् ॥
ते । ते । सन्तु । स्वधा-वन्तः । मधु-मन्तः । घृत-श्चुतः ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यान्) जिन (अपूपापिहितान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों माल पूये पूड़ी आदि] को ढककर रखने वाले (कुम्भान्) पात्रों को (ते) तेरे लिये (देवाः) विद्वानों ने (अधारयन्) रक्खा है । (ते) वे

६८ । इत्येकशेषः । पुत्रदुहितृभ्यः । सन्तानेभ्यः (यथा) (शिक्ष) अनुशाधि । शिक्षां कुरु (नः) अस्मान् (पुरुहूत) बहुप्रकारेणाहूत (यामनि) समये मार्गे वा (जीवाः) प्राणिनो वयम् (ज्योतिः) प्रकाशम् (अशीमहि) प्राप्नुयाम ॥

६८—(अपूपापिहितान्) पानीविषिभ्यः पः । उ० ३ । २३ । नञ् + पूयी विशरणे दुर्गन्धे च—पप्रत्ययः , यलोपः । अविशीर्णा अक्षीणा अपूपाः सुसंस्कृतभोजनपदार्था अपिहिता आच्छादिता येषु तान् । सुसंस्कृतभोजनपदार्थपूर्णान् (कुम्भान्) घटान् (यान्) (ते) तुभ्यम् (देवाः) विद्वांसः (अधारयन्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] के सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥ ६८ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को योग्य है कि विद्वानों के स्थापित नियमों के अनुसार उत्तम भोजनों के सेवन से स्वस्थ रहें ॥ ६८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—अ० १८ । ४ । २५ और उत्तरार्ध उसी के मन्त्र म० ४२ में है ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः । तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ६९ ॥

याः । ते । धानाः । अनु-किरामि । तिल-मिश्राः । स्वधा-वतीः ॥ ताः । ते । सन्तु । वि-भ्वीः । प्र-भ्वीः । ताः । ते । यमः । राजा । अनु । मन्यताम् ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिलमिश्राः) उद्योग से मिली हुयी, (स्वधावतीः) आत्मधारण शक्ति वाली (धानाः) पोषण क्रियाओं को (अनुकिरामि) मैं अनुकूल रीति से फैलाता हूं । (ताः) वे [पोषण क्रियायें] (ते) तेरे लिये (विभ्वीः) सर्वव्यापिनी और (प्रभ्वीः) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [पोषणक्रियाओं] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक पुरुष] (अनु) अनुकूल

धारितवन्तः (ते) कुम्भाः (ते) तुभ्यम् (सन्तु) (स्वधावन्तः) आत्मधारण-शक्तियुक्ताः (मधुमन्तः) मधुरगुणोपेताः (घृतश्चुतः) श्चुतिर् क्षरणे-क्विप् । घृतस्य साररसस्य सेचकाः ॥

६९—(याः) (ते) तुभ्यम् (धानाः) धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । डुधाञ् धारणपोषणदानेषु—नप्रत्ययः, टाप् । पोषणक्रियाः (अनुकिरामि) कॄ विक्षेपे । आनुकूल्येन विस्तारयामि (तिलमिश्राः) तिल गतौ स्नेहने च—कप्रत्ययः । तिलेन गत्या प्रयत्नेन मिश्रिताः (स्वधावतीः) स्वधारणशक्तिमतीः (ताः) पोषणक्रियाः (ते) तुभ्यम् (सन्तु) (विभ्वीः) विभ्व्यः । सर्वव्यापिन्यः (प्रभ्वीः) प्रभ्व्यः । प्रभुत्वोपेताः (ताः) (ते) तुभ्यम् (यमः) संयमी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मन्यताम्) जाने ॥ ६९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर कहता है कि मैं मनुष्य को अनेक विचित्र प्रभाव शाली क्रियायें सर्वत्र लगातार देता हूं, उन को आत्मशासक संयमी पुरुष ज्ञान पूर्वक प्राप्त करे ॥ ६९ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—अ० १८ । ४ । २६ तथा ४३ ॥

पुन॑र्देहि वनस्पते॒ य ए॒ष निहि॑त॒स्त्वयि॑ ।
यथा॑ य॒मस्य॒ साद॑न॒ आसा॑तै वि॒दथा॒ वद॑न् ॥ ७० ॥

पुनः॑ । दे॒हि॒ । व॒न॒स्प॒ते॒ । यः । ए॒षः । नि-हि॑तः । त्वयि॑ ॥
यथा॑ । य॒मस्य॑ । सद॑ने । आसा॑तै । वि॒दथा॑ । वद॑न् ॥ ७० ॥

भाषार्थ—(वनस्पते) हे सेवकों के रक्षक [परमात्मन् !] [वह श्रेष्ठ गुण] (पुनः) निश्चय कर के (देहि) दे, (यः एषः) जो यह [श्रेष्ठ गुण] (त्वयि) तुझ में (निहितः) दृढ़ रक्खा है। (यथा) जिस से यह [जीव] (यमस्य) न्याय के (सदने) घर में (विदथा) ज्ञानों को (वदन्) बताता हुआ (आसातै) बैठे ॥ ७० ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर के सर्वव्यापक उत्तम गुणों को अवश्य प्रयत्न से प्राप्त करके न्याय के साथ संसार में उपकार करे ॥ ७० ॥

आ र॑भस्व जातवेद॒स्तेज॑स्व॒द्धरो॑ अस्तु ते ।
शरी॑रमस्य॒ सं द॒हाथै॑नं धेहि सु॒कृता॑मु लो॒के ॥ ७१ ॥

आ । र॒भ॒स्व॒ । जा॒त॒-वे॒दः॒ । तेज॑स्वत् । हरः॑ । अ॒स्तु॒ । ते॒ ॥ शरी॑-रम् । अ॒स्य॒ । सम् । द॒ह॒ । अथ॑ । ए॒न॒म् । धे॒हि । सु॒-कृता॑म् ।

पुरुषः (राजा) शासकः । जीवात्मा (अनु) अनुकूलम् (मन्यताम्) जानातु ॥

७०—(पुनः) अवधारणे (देहि) प्रयच्छ श्रेष्ठगुणम् (वनस्पते) वन सेवने—अच् । हे वनानां सेवकानां पालक परमेश्वर (यः) श्रेष्ठगुणः (एषः) (निहितः) दृढं धृतः (त्वयि) (यथा) येन प्रकारेण (यमस्य) न्यायस्य (सदने) गृहे (आसातै) लेटि रूपम् । आसीत् । उपविशेत् (विदथा) ज्ञानानि (वदन्) कथयन् । उपदिशन् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊं इति । लोके ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—(जातवेदः) हे बड़े ज्ञानी वाले जीव ! [धर्म को] (आ रभस्व) आरम्भ कर, (ते) तेरा (हरः) ग्रहण सामर्थ्य (तेजस्वत्) तेज वाला (अस्तु) होवे। (अस्य) इस [प्राणी] के (शरीरम्) शरीर को [ब्रह्मचर्य आदि तप से] (सम्) यथावत् (दह) तपा, (अथ) फिर (एनम्) इस [प्राणी] को (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (उ) अवश्य (धेहि) रख ॥ ७१॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्म को आरम्भ कर के अपना बल पराक्रम बढ़ाते हैं, और अपने शरीर को ब्रह्मचर्य आदि तप से संयम में रखते हैं वेही पुण्यात्माओं में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ ७१ ॥

ये ते॑ पू॒र्वे प॑रागता॒ अप॑रे पि॒तर॑श्च॒ ये ।
तेभ्यो॑ घृ॒तस्य॑ कु॒ल्यैतु॑ श॒तधा॑रा व्यु॒न्दती ॥ ७२ ॥

ये । ते॒ । पू॒र्वे॑ । परा॑-गताः । अप॑रे । पि॒तरः॑ । च॒ । ये ॥ तेभ्यः॑ । घृ॒तस्य॑ । कु॒ल्या । ए॒तु॒ । श॒त-धा॑रा । वि॒-उ॒न्दती ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ये) जो (ते) तेरे (पूर्वे) प्राचीन (च) और (ये) जो (अपरे) अर्वाचीन (पितरः) पितर [पालक महात्मा] (परागताः) प्रधानता से चले हैं। (तेभ्यः) उन के लिये (घृतस्य) जल की (कुल्या) कुल्या [कृत्रिम नाली] (शतधारा) सैकड़ों धाराओं वाली, (व्युन्दती)

७१—(आ रभस्व) उपक्रमस्व धर्मम् (जातवेदः) जातानि प्रसिद्धानि वेदांसि ज्ञानानि यस्य तत्सम्बुद्धौ (तेजस्वत्) प्रकाशयुक्तम् (हरः) हरतेरसुन्। ग्रहणसामर्थ्यम्। बलम् (अस्तु) (ते) तव (शरीरम्) (अस्य) प्राणिनः (सम्) सम्यक् (दह) तापय ब्रह्मचर्यादितपसा (अथ) अनन्तरम् (एनम्) प्राणिनम् (धेहि) स्थापय (सुकृताम्) पुण्यकर्मणाम् (उ) अवश्यम् (लोके) समाजे ॥

७२—(ये) (ते) तव (पूर्वे) प्राचीनाः (परागताः) प्राधान्येन गताः (अपरे) पश्चाद्भाविनः। अर्वाचीनाः (पितरः) पालका महात्मानः (च) (ये) (तेभ्यः) पितॄणां हिताय (घृतस्य) उदकस्य—निघ० १। १२ (कुल्या) कुल—यत्, यद्वा कुल बन्धे संहतौ च-क्यप्, टाप्, कृत्रिमाल्पा नदी (शत-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमड़ती हुयी (एतु) चले ॥ ७२ ॥

भावार्थ—मनुष्य पूर्वज और वर्तमान महात्माओं से गुण ग्रहण करके संसार को अनेक प्रकार आनन्द देवें, जैसे कि किसान लोग जल की नालियां बना खेतों को सींच कर अन्न की वृद्धि से सुख पहुंचाते हैं ॥ ७२ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से आगे है—अ० १८ । ४ । ५७ ॥

एतदा रोहु वयं उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते । अभि प्रेहि मध्यतो मापं हास्थाःपितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र७३(१८

एतत् । आ । रोहु । वयः । उत्-मृजानः । स्वाः । इह । बृहत् । ऊं इति । दीदयन्ते ॥ अभि । प्र । इहि । मध्यतः । मा । अप । हास्थाः । पितॄणाम् । लोकम् । प्रथमः । यः । अत्र ॥ ७३ ॥ (१८)

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (एतत्) इस (वयः) जीवन को (उन्मृजानः) शुद्ध करता हुआ तू (आ रोह) ऊंचा चढ़, (ते) तेरे (स्वाः) बान्धव लोग (इह) यहां पर (बृहत्) बहुत (हि) ही (दीदयन्ते) प्रकाशमान हैं । तू (अभि) सब ओर (प्र) आगे को (इहि) चल, (मध्यतः) बीच से (पितॄणाम्) पितरों के (लोकम्) उस समाज को (अप) बिलगा कर (मा हास्थाः) मत जा, (यः) जो [समाज] (अत्र) यहां पर (प्रथमः) मुख्य है ॥ ७३ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने यशस्वी बान्धवों के समान अपना जीवन उत्तम

धारा) बहुधाराभिरुपेता (व्युन्दन्ती) विशेषेण आर्द्रीकुर्वती ॥

७३—(एतत्) दृश्यमानम् (आ रोह) आरुह्य प्राप्नुहि (वयः) जीवनम् (उन्मृजानः) परिशोधयन् (स्वाः) ज्ञातयः (इह) अस्मिंल्लोके (बृहत्) यथा भवति तथा । अधिकम् (दीदयन्ते) दीदयतिर्ज्वलतिकर्मा निघ० १ । १६ । दीदयतिर्नैरुक्तो धातुः—पश्यत निरु १० । १६ । दीप्यन्ते (अभि) सर्वतः (प्र) प्रकर्षेण अग्रे (इहि) गच्छ (मध्यतः) मध्यभागात् (अप) अपेत्य वियुज्य (मा हास्थाः) ओहाङ् गतौ—लुङ् । मा गच्छ (पितॄणाम्) पालकानाम् ॥ (लोकम्) समाजम् (प्रथमः) मुख्यः (यः) लोकः (अत्र) अस्मिन् संसारे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनावें, और सब श्रेष्ठ कामों को दृढ़ता से आरम्भ कर के सर्वथा समाप्त कर महापुरुषार्थियों में स्थान पावें ॥ ७३ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः॥

सूक्तम् ४ [मन्त्राः १-८८] ॥

मन्त्राः १—१५ ॥

प्रजापतिरग्निश्च देवते ॥ १, २ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ; ३ भुरिगतिजगती; ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप् ;५ स्वराट् त्रिष्टुप्; ६, ९, १३ शक्वरी; ८ भुरिक् शक्वरी; १०, १५ निचृत् त्रिष्टुप् ; ११ त्रिष्टुप् १२ निचृन्महाबृहती; १४ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सन्मार्गगमनोपदेशः—सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश ॥

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाहं ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके॥१॥

आ । रोहत । जनित्रीम् । जात-वेदसः । पितृ-यानैः । सम् । वः । आ । रोहयामि ॥ अवाट् । हव्या । इषितः। हव्य-वाहः। ईजानम् । युक्ताः । सु-कृताम् । धत्त । लोके ॥ १ ॥

भाषार्थ—(जातवेदसः) बड़े ज्ञान वाले तुम (जनित्रीम्) जगत् की जननी [परमात्मा] को (आ) व्याप कर (रोहत) प्रकट होओ, (पितृयाणैः) पितरों [पालक महात्माओं] के मार्गों से (सम्) मिलकर (वः) तुम्हें (आ रोहयामि) मैं [विद्वान्] ऊंचा करता हूं। (इषितः) प्रिय (हव्यवाहः) देने लेने योग्य पदार्थों के पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (हव्या) देने लेने योग्य पदार्थ

१—(आ) व्याप्य (रोहत) प्रादुर्भवत (जनित्रीम्) अ० २ । १ । ३ । जन जनने—णिचि तृच् ,ङीप । जनयित्रीम् । जगतो जननीं परमात्मानम् (जातवेदसः) प्रसिद्धज्ञानवन्तो यूयम् (पितृयाणैः) पितॄणां मार्गैः (सम्) संगत्य (वः) युष्मान् (आ रोहयामि) अधिष्ठापयामि (अवाट्) अ० १८ । ३ । ४२ । वहेर्लुङि रूपम् । अवाक्षीत् । प्रापितवान् (हव्या) दातव्यग्राह्यवस्तूनि (इषितः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अवाट्) पहुंचाये हैं, (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (युक्ताः) मिले हुये तुम (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (धत्त) रक्खो ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य उपदेश करें कि सब मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर अपना कर्तव्य करते हुये उच्च पद प्राप्त करें और जो पुरुष अधिक पुरुषार्थी और परोपकारी होवे, सब मिलकर धर्मात्माओं में उसकी प्रतिष्ठा करें ॥ १ ॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥२॥

देवाः । यज्ञम् । ऋतवः । कल्पयन्ति । हविः । पुरोडाशम् । स्रुचः । यज्ञ-आयुधानि ॥ तेभिः । याहि । पथि-भिः । देव-यानैः । यैः । ईजानाः । स्वः-गम् । यन्ति । लोकम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग और (ऋतवः) सब ऋतुयें (यज्ञम्) यज्ञ [हवन आदि श्रेष्ठ व्यवहार], (हविः) हवि [होमीय वस्तु [, (पुरोडाशम्) पुरोडाश [मोहनभोग आदि], (स्रुचः) स्रुचाओं [हवन के चमचों] और (यज्ञायुधानि) यज्ञ के अस्त्र शस्त्रों [उलूखल मूसल सूप आदि] को (कल्पयन्ति) रचते हैं। [हे मनुष्य !] (तेभिः) उन (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (याहि) तू चल, (यैः) जिन [मार्गों]

इषु इच्छायाम्—क्त। तीषसहलुभरुषरिषः। पा० ७। २। ४८। इडागमः। इष्टः। प्रियः (हव्यवाहः) हव्य+वह प्रापणे—अण्। दातव्यग्राह्यपदार्थानां प्रापकः परमेश्वरः (ईजानम्) यजेर्लिटः कानच्। इष्टवन्तम्। समाप्तयज्ञं पुरुषम् (युक्ताः) संयुक्ता यूयम् (सुकृताम्) सुकर्मणाम् (धत्त) स्थापयत (लोके) समाजे ॥

२—(देवाः) विद्वांसः (यज्ञम्) यजनीयं व्यवहारम् (ऋतवः) वसन्तादिकालाश्च (कल्पयन्ति) रचयन्ति (हविः) हु दानादानादनेषु—इसि। हवनीयद्रव्यम् (पुरोडाशम्) अ० ९। ६ (१) १२। पुरो अग्रे दाश्यते दीयते। दाशृ दाने—घञ्, दस्य डः। संस्कृतान्नविशेषम् (स्रुचः) चिक् च। उ० २। ६२। स्रु गतौ—चिक् प्रत्ययः। यज्ञचमसान् (यज्ञायुधानि) यज्ञसाधनान्यस्त्रशस्त्रादीनि (तेभिः) तैः (याहि) गच्छ (पथिभिः) मार्गैः (देवयानैः) विद्वद्भिर्गन्तव्यैः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (ईजानाः) यज्ञ कर चुकने वाले लोग (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम्) समाज में (यन्ति) पहुंचते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सब ऋतुओं में योग्य सामग्री द्वारा यज्ञ करके श्रेष्ठ कर्म करते रहें और सब से कराते रहें, क्योंकि श्रेष्ठ कर्म समाप्त कर लेने वाले ही आनन्द पद के अधिकारी होते हैं ॥ २ ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये
नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । पश्य । साधु । अङ्गिरसः । सु-
कृतः । येन । यन्ति ॥ तेभिः । याहि । पथि-भिः । स्वः-गम् ।
यत्र । आदित्याः । मधु । भक्षयन्ति । तृतीये । नाके । अधि ।
वि । श्रयस्व ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ऋतस्य) सत्य धर्म के (पन्थाम्) मार्ग को (साधु) साधुपन से [कुशलता से] (अनु) लगातार (पश्य) देख, (येन) जिस [मार्ग] से (अङ्गिरसः) महाविद्वान् (सुकृतः) सुकर्मी लोग (यन्ति) चलते हैं। (तेभिः) उन (पथिभिः) मार्गों से (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले पद को (याहि) प्राप्त हो, (यत्र) जिन [मार्गों] में (आदित्याः) अखण्ड व्रतधारी विद्वान् लोग (मधु) ज्ञान रस को (भक्षयन्ति) भोगते हैं,

(यैः) पथिभिः (ईजानाः) म० १। समाप्तयज्ञाः पुरुषाः (स्वर्गम्) सुखप्राप-
कम् (यन्ति) गच्छन्ति (लोकम्) समाजम् ॥

३—(ऋतस्य) सत्यधर्मस्य (पन्थाम्) मार्गम् (अनु) निरन्तरम् (पश्य) अवलोकय (साधु) यथा भवति तथा। साधुत्वेन कुशलत्वेन (अङ्गि-
रसः) महाज्ञानिनः (सुकृतः) पुण्यकर्माणः (येन) मार्गेण (यन्ति) गच्छन्ति (तेभिः) तैः (याहि) प्राप्नुहि (पथिभिः) मार्गैः (स्वर्गम्) सुखप्रापकं पदम् (यत्र) येषु मार्गेषु (आदित्याः) अदिति—एय। अदितिरखण्डव्रतं येषां ते विद्वांसः (मधु) ज्ञानरसम् (भक्षयन्ति) भुञ्जते। अनुभवन्ति (तृतीये) जीव-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (तृतीये) तीसरे [दोनों जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाके) सुखस्वरूप [वा सब के नायक] परमात्मा में (अधि) अधिकार पूर्वक (वि श्रयस्व) फैलकर विश्राम कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि पुण्यात्मा पुरुषों के वेदोक्त मार्ग पर चलकर जीव प्रकृति और परमात्मा के तत्त्व को जानता हुआ आनन्द को प्राप्त हो ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद (तृतीये...) आ चुका है—अ० ६ । ५ । ८ ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुहाम् ॥४॥

त्रयः । सु-पर्णाः । उपरस्य । मायू इति । नाकस्य । पृष्ठे । अधि । विष्टपि । श्रिताः ॥ स्वः-गाः । लोकाः । अमृतेन । वि-स्थाः । इषम् । ऊर्जम् । यजमानाय । दुहाम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(त्रयः) तीन [ब्रह्म जीव और प्रकृति] (सुपर्णाः) सुन्दर पालन वा पूर्ति वाले पदार्थ [अथवा सुन्दर पंख वाले पक्षियों के समान] (उपरस्य) जल के देने वाले मेघ की (मायू) गर्जन में, (नाकस्य) लोकों के चलाने वाले सूर्य के (पृष्ठे) ऊंचे भाग पर और (विष्टपि) विविध प्रकार थांभने वाले आकाश में (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिताः) आश्रित हैं। (अमृ-

---

प्रकृतिभ्यां भिन्ने (नाके) अ० १ । ६ । २ । पिनाकाद्यश्च । उ० ४ । ५१ । णीञ् प्रापणे-आकप्रत्ययः, टिलोपः । नाक आदित्यो भवति नेता भासां ज्योतिषां प्रणयोऽथ द्यौः कमिति सुखनाम तत्प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्यते—निरु० २ । १४ । सुखस्वरूपे सर्वनायके वा परमात्मनि (अधि) अधिकृत्य (वि) विविधम् (श्रयस्व) आश्रितो भव ॥

४—(त्रयः) त्रिसंख्याकाः । ब्रह्मजीवप्रकृतयः (सुपर्णाः) अ० ६ । ६ । २० । सु—पॄ पालनपूरणयोः—न । शोभनपालनाः शोभनपूर्णाः शोभनपक्षविहगसदृशा वा पदार्थाः (उपरस्य) उप—रा दानादानयोः—क । उपरो मेघनाम—निघ० १ । १० । जलप्रदस्य मेघस्य (मायू) कृवापाजिमि० । उ० १ । १ । माङ् माने शब्दे च—उण्, युगागमः । मायुरिति वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । सुपर्णा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन) अमर परमात्मा के साथ (विष्ठाः) विशेष करके ठहरे हुये (स्वर्गाः) सुख पहुंचाने वाले (लोकाः) समाज (इषम्) ज्ञान को और (ऊर्जम्) बल को (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] के लिये (दुहाम्) भरपूर करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—ब्रह्म जीव और प्रकृति यह तीनों सब पदार्थों और सब लोकों में व्याप रहे हैं, मनुष्य सर्वनायक परमात्मा के आश्रय से उनके तत्त्व को जानकर आनन्द पावें ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो (द्वा सुपर्णा सयुजा.....) अ० ९ । ९ । २० तथा ऋग्वेद—१ । १६४ । २० ॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुहाम् ५

जुहूः । दाधार । द्याम् । उप-भृत् । अन्तरिक्षम् । ध्रुवा । दाधार । पृथिवीम् । प्रति-स्थाम् ॥ प्रति । इमाम् । लोकाः । घृत-पृष्ठाः । स्वः-गाः । कामम्-कामम् । यजमानाय । दुहाम् ५

भाषार्थ—(जुहूः) ग्रहण [आकर्षण] करने वाली शक्ति [परमात्मा] ने (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को, (उपभृत्) समीप से धारण करने वाली [उसी]

सुलुक्० । पा० ७ । १ । ३९। सप्तम्याः पूर्वसवर्णदीर्घः। ईदूतौ च सप्तम्यर्थे । पा० १ । १ । १९। इति प्रगृह्यम् । मायौ । शब्दे (नाकस्य) म० ३ । लोकानां नायकस्य सूर्यस्य (पृष्ठे) उपरिभागे (अधि) अधिकृत्य (विष्टपि) अ० १० । १० । ३१। वि—ष्टभि प्रतिबन्धे—क्विप्, भस्य पः । विविधस्तम्भनशीले । आकाशे । (श्रिताः) स्थिताः (स्वर्गाः) सुखप्रापकाः (लोकाः) समाजाः (अमृतेन) अमरेण परमात्मना (विष्ठाः) विशेषेण स्थिताः (इषम्) इष गतौ—क्विप् । इषतीति गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । ज्ञानम् (ऊर्जम्) बलम् (यजमानाय) यज्ञस्यानुष्ठात्रे (दुहाम्) अ० ३ । २० । ९ । दुह प्रपूरणे तलोपो रुडागमश्च । दुहताम् । प्रपूरयन्तु ॥

५—(जुहूः) हुवः श्लुवच्च । उ० २ । ६० । हु दानादानादनेषु—क्विप् । ग्रहीत्री शक्तिः परमात्मा (द्याम्) प्रकाशमानं सूर्यम् (उपभृत्) सामीप्येन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति ने (अन्तरिक्षम्) भीतर दिखाई देने वाले आकाश को (दाधार) धारण किया है, और (ध्रुवा) [उसी] निश्चल शक्ति ने (प्रतिष्ठाम्) आश्रय स्थान, (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया है। (इमाम्) इसी [शक्ति परमात्मा] में (प्रति) व्याप कर (घृतपृष्ठाः) प्रकाश को ऊपर रखने वाले [सुन्दर ज्योति वाले] (स्वर्गाः) सुख पहुंचाने वाले (लोकाः) लोक [समाज वा अधिकार] (कामंकामम्) प्रत्येक कामना को (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले] के लिये (दुहाम्) भरपूर करें ॥ ५ ॥

भावार्थ--जिस परमात्मा ने सूर्य को अनेक लोकों का आकर्षक, आकाश को सब लोकों का आधार और पृथिवी को प्राणियों का निवास स्थान बनाया है, उस जगदीश्वर के आश्रय में रहकर यह सब लोक पुरुषार्थी धर्मात्मा मनुष्य के लिये बड़े ज्योतिष्मान् होकर शुभ कामनायें पूरी करते हैं ॥ ५ ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व। जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहणीयमानः ॥ ६ ॥

ध्रुवे। आ। रोह। पृथिवीम्। विश्व-भोजसम्। अन्तरिक्षम्। उप-भृत्। आ। क्रमस्व ॥ जुहु। द्याम्। गच्छ। यजमानेन। साकम्। स्रुवेण। वत्सेन। दिशः। प्र-पीनाः। सर्वाः। धुक्ष्व। अहणीयमानः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(ध्रुवे) हे निश्चल शक्ति ! [परमात्मा] (विश्वभोजसम्) सब को पालने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी में (आ) व्याप कर (रोह) प्रकट

धारयित्री शक्तिः (अन्तरिक्षम्) अन्तर्मध्ये दृश्यमानमाकाशम् (ध्रुवा) ध्रु गतिस्थैर्ययोः—क, टाप्। निश्चला शक्तिः (दाधार) (पृथिवीम्) (प्रतिष्ठाम्) आश्रयभूताम् (इमाम्) शक्तिम् (लोकाः) समाजाः। अधिकाराः (घृतपृष्ठाः) घृ क्षरणदीप्त्योः—क्त। दीप्तोपरिभागाः। सर्वतो ज्योतिष्मन्तः (स्वर्गाः) सुख-प्रापकाः (कामंकामम्) प्रत्येककामनाम्। अन्यत् पूर्ववत्—म० ॥ ४ ॥

६—(ध्रुवे) म० ५। हे निश्चलशक्ते। परमात्मन् (आ) व्याप्य (रोह) प्रादुर्भव (पृथिवीम्) (विश्वभोजसम्) सर्वस्य भोजयित्रीं पालयित्रीम् (अन्त-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, (उपभृत्) हे समीप से धारण करने वाली शक्ति ! (अन्तरिक्षम्) भीतर दिखाई देने वाले आकाश में (आ) व्यापकर (क्रमस्व) प्राप्त हो । (जुहु) हे ग्रहण [आकर्षण] करने वाली शक्ति ! (यजमानेन साकम्) यजमान [श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले] के साथ (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को (गच्छ) प्राप्त हो,

[हे यजमान !] (अह्वणीयमानः) संकोच न करता हुआ तू (वत्सेन) बछड़े रूप (स्रुवेण) ज्ञान के साथ (सर्वाः) सब (प्रपीनाः) बढ़ती हुयी (दिशः) दिशाओं को (धुक्ष्व) दुह ॥ ६ ॥

भावार्थ—परमात्मा नीचे ऊंचे और मध्य लोक में व्याप कर धर्मात्मा पुरुष का सदा सहायक है, मनुष्य ज्ञान द्वारा सब दिशाओं से इस प्रकार उपकार लेवे जैसे बछड़े को लगाकर गौ से दूध दुहते हैं ॥ ६ ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥

तीर्थैः । तरन्ति । प्र-वतः । महीः । इति । यज्ञ-कृतः । सु-कृतः । येन । यन्ति ॥ अत्र । अदधुः । यजमानाय । लोकम् । दिशः । भूतानि । यत् । अकल्पयन्त ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(तीर्थैः) तरने के साधनों [शास्त्रों वा घाटों आदि] द्वारा [मनुष्य] (प्रयतः) बहुत गतियों वाली (महीः) बड़ी [विपत्तियों वा नदियों]

रिक्षम्) मध्ये दृश्यमानमाकाशम् (उपभृत्) हे समीपधारयित्रि शक्ते (आ) (क्रमस्व) प्राप्नुहि (जुहु) म० ५। हे ग्रहीत्रि शक्ते (द्याम्) प्रकाशमानं सूर्यम् (गच्छ) प्राप्नुहि (यजमानेन) (साकम्) (स्रुवेण) स्रुवः कः । उ० २। ६१ । स्रु गतौ—क । ज्ञानेन (वत्सेन) गोशिशुरूपेण (दिशः) प्राच्याद्याः (प्रपीनाः) ओ प्यायी वृद्धौ—क्त । प्रवृद्धाः (सर्वाः) (धुक्ष्व) प्रपूरय (अह्वणीयमानः) ह्वणीङ् रोषणे लज्जायां च—शानच् । लज्जां संकोचम् अकुर्वन् ॥

७—(तीर्थैः) पातॄतुदिवचि० । उ० २। ७ । तॄ तरणे—थक् । तरणसाधनैः शास्त्रैर्घट्टादिभिर्वा (तरन्ति) अतिक्रामन्ति (प्रवतः) अ० १८ । १ । ४६ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को [उस प्रकार से] (तरन्ति) पार करते हैं, (येन) जिससे (यज्ञकृतः) यज्ञ करने वाले, (सुकृतः) सुकर्मी लोग (यन्ति) चलते हैं—(इति) ऐसा [निश्चय है]। (अत्र) यहां [संसार में] (यजमानाय) यजमान के लिये (लोकम्) स्थान (अदधुः) उन [पुण्यात्माओं] ने दिया है, (यत्) जब कि (दिशः) दिशाओं को (भूतानि) सत्ता वाले प्राणियों ने (अकल्पयन्त) समर्थ बनाया है ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् धर्मात्माओं के वेद विहित मार्ग पर चल कर विपत्तियों से पार होवें। धर्मात्मा लोग ही संसार में मान्य होते हैं, क्योंकि वे पुरुषार्थी जीव सब दिशाओं को उपकारी बनाते हैं ॥ ७ ॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः । महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्क्तः सर्व उप याहि शुग्मः ॥ ८ ॥

अङ्गिरसाम् । अयनम् । पूर्वः । अग्निः । आदित्यानाम् । अयनम् । गार्हपत्यः । दक्षिणानाम् । अयनम् । दक्षिण-अग्निः ॥ महिमानम् । अग्नेः । वि-हितस्य । ब्रह्मणा । सम्-अङ्क्तः । सर्वः । उप । याहि । शुग्मः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(अङ्गिरसाम्) महर्षियों का (अयनम्) मार्ग (पूर्वः) पूर्वीय (अग्निः) अग्नि है, (आदित्यानाम्) [उन्हीं] अखण्ड व्रत वाले ब्रह्मचारियों का (अयनम्) मार्ग (गार्हपत्यः) गृहपति की अग्नि है, (दक्षिणानाम्) [उन्हीं]

प्रकृष्टगतियुक्ताः (महीः) महतीर्विपत्तीर्नदीर्वा (इति) अवधारणे (यज्ञकृतः) यज्ञस्य कर्तारः (सुकृतः) पुण्यकर्माणः (येन) प्रकारेण (यन्ति) गच्छन्ति (अदधुः) दत्तवन्तः (यजमानाय) (लोकम्) स्थानम् (दिशः) प्राच्याद्याः (भूतानि) सत्तावन्तः प्राणिनः (यत्) यदा (अकल्पयन्त) समर्था अकुर्वन्त ॥

८—(अङ्गिरसाम्) महर्षीणाम् (अयनम्) मार्गः (पूर्वः) पूर्वायां दिशि वर्तमानः (अग्निः) होमाग्निः (आदित्यानाम्) अखण्डब्रह्मचारिणाम् (अयनम्) मार्गम् (गार्हपत्यः) गृहपति—अय । गृहिपतिना संयुक्तो यज्ञाग्निः (दक्षिणा—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य कुशलों का (अयनम्) मार्ग (दक्षिणाग्निः) दक्षिण वाली अग्नि है। (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [चारों वेद जानने वाले] कर के (विहितस्य) स्थापित (अग्नेः) अग्नि की (महिमानम्) महिमा को (समङ्गः) दृढ़ाङ्ग, (सर्वः) सम्पूर्ण [चित्त वाला] और (शग्मः) शक्तिमान् होकर तू (उप याहि) सर्वथा प्राप्त कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—यज्ञ में ब्रह्मा की स्थापित पूर्वाग्नि, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि को प्रकाशित करने से विद्वान् लोग आत्मिक उन्नति करके सब प्रकार शक्तिमान् होवें ॥ ८ ॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्तात्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः। दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

पूर्वः। अग्निः। त्वा। तपतु। शम्। पुरस्तात्। शम्। पश्चात्। तपतु। गार्हपत्यः ॥ दक्षिण-अग्निः। ते। तपतु। शर्म। वर्म। उत्तरतः। मध्यतः। अन्तरिक्षात्। दिशः-दिशः। अग्ने। परि। पाहि। घोरात् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वान् !] (पूर्वः) पूर्व वाली (अग्निः) अग्नि (त्वा) तुझे (शम्) आनन्द के साथ (पुरस्तात्) आगे से (तपतु) प्रतापी [ऐश्वर्यवान्] करे, (गार्हपत्यः) गृहपति की अग्नि [तुझे] (शम्)

नाम्) द्रुदक्षिभ्यामिनन्। उ० २। ५०। दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च—इनन्। दक्षाणां कार्यकुशलानाम् (दक्षिणाग्निः) दक्षिणदिशि वर्तमानोऽग्निः (महिमानम्) महत्त्वम् (अग्नेः) भौतिकस्य (विहितस्य) यथाविधि स्थापितस्य (ब्रह्मणा) चतुर्वेदज्ञेन (समङ्गः) संहतावयवः। दृढाङ्गः (सर्वः) समस्तः। समाहितचित्तः (उप याहि) सर्वथा प्राप्नुहि (शग्मः) युजिरुचितिजां कुश्च। उ० १। १४६। शक्लृ - शक्तौ—मक् कस्य गः। शक्तः। समर्थः ॥

९—(पूर्वः) पूर्वदिशि दीप्यमानः (अग्निः) यज्ञाग्निः (त्वा) (तपतु) तप ऐश्वर्ये, अन्तर्गतण्यर्थः। ऐश्वर्यवन्तं प्रतापिनं करोतु (शम्) सुखेन (पुरस्तात्) अग्रतः (शम्) (पश्चात्) (तपतु) (गार्हपत्यः) गृहपतिना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख के साथ (पश्चात्) पीछे से (तपतु) प्रतापी करे। (दक्षिणाग्निः) दक्षिणीय अग्नि (ते) तेरे लिये (शर्म) शरण और (वर्म) कवच होकर (तपतु) प्रतापी करे ॥

(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (उत्तरतः) ऊपर से (मध्यतः) मध्य से, (अन्तरिक्षात्) आकाश से और (दिशोदिशः) प्रत्येक दिशा से [उस उपासक को] (घोरात्) घोर [भयानक कष्ट] से (परि) सर्वथा (पाहि) बचा ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य भौतिक यज्ञ द्वारा आत्मिक यज्ञ सिद्ध करके समर्थ होते हैं, परमात्मा उनकी सर्वथा रक्षा करता है ॥ ६ ॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्रं देवैः सधमादं मदन्ति १०(२०)

यूयम् । अग्ने । शम्-तमाभिः । तनूभिः । ईजानम् । अभि । लोकम् । स्वः-गम् ॥ अश्वाः । भूत्वा । पृष्टि-वाहः । वहाथ । यत्रं । देवैः । सध-मादम् । मदन्ति ॥ १० ॥ (२०)

भाषार्थ—(अग्ने=अग्नयः) हे अग्नियो ! (यूयम्) तुम (पृष्टिवाहः) पीठ पर ले चलने वाले (अश्वाः) घोड़ों के समान (भूत्वा) होकर (शन्तमाभिः) अत्यन्त शान्ति युक्त (तनूभिः) उपकार क्रियाओं से (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम् अभि)

संयुक्तोऽग्निः (ते) तुभ्यम् (शर्म) शरणरूपः सन् (वर्म) कवचरूपः सन् (उत्तरतः) उपरिदेशात् (मध्यतः) मध्यदेशात् (अन्तरिक्षात्) आकाशात् (दिशोदिशः) प्रत्येकदिशः सकाशात् (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् (परि) सर्वथा (पाहि) रक्ष (घोरात्) घुर भीमार्थशब्दयोः—अच् । भयानकात् कष्टात् ॥

१०—(यूयम्) (अग्ने) बहुवचनस्यैकवचनम् । हे पूर्वाग्न्यादयः (शंतमाभिः) अत्यन्तसुखयुक्ताभिः (तनूभिः) उपकृतिभिः (ईजानम्) समाप्तयज्ञं पुरुषम् (अभि) प्रति (लोकम्) समाजम् (स्वर्गम्) सुखप्रापकम् (अश्वाः) अश्वा यथा (भूत्वा) (पृष्टिवाहः) पृषु सेचने—क्तिन् । वहश्च ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में (वहाथ) ले जाओ, (यत्र) जहां पर (देवैः) विद्वानों के साथ (सधमादम्) संगति सुख को (मदन्ति) वे [विद्वान्] भोगते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—पूर्वाग्नि, गार्हपत्याग्नि और दक्षिणाग्नि यज्ञ के द्वारा मनुष्य आत्मिक और शरीरिक दोषों की निवृत्ति से अत्यन्त शान्तचित्त होकर विद्वानों में मिल कर आनन्द भोगें ॥ १० ॥

शमग्ने पश्चात्तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् । एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सुम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ११

शम् । अग्ने । पश्चात् । तप । शम् । पुरस्तात् । शम् । उत्तरात् । शम् । अधरात् । तप । एनम् ॥ एकः । त्रेधा । वि-हितः । जात-वेदः । सुम्यक् । एनम् । धेहि । सु-कृताम् । ऊं इति । लोके ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (एनम्) इस [विद्वान्] को (शम्) शान्ति के साथ (पश्चात्) पीछे से, (शम्) शान्ति के साथ (पुरस्तात्) सामने से (तप) प्रतापी कर, (शम्) शान्ति के साथ (उत्तरात्) ऊपर से और (शम्) शान्ति के साथ (अधरात्) नीचे से (तप) प्रतापी कर। (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] (एकः) अकेला होकर (त्रेधा) तीन प्रकार से [पूर्वाग्नि, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि रूप से] (विहितः) स्थापित किया हुआ तू (एनम्) इस [पुरुष] को (सुकृताम्)

पा० ३ । २ । ६४ । पृष्टि+वह प्रापणे—णिच । पृष्ठे वाहकाः (वहाथ) लेटि रूपम् । वहत । गमयत (यत्र) (देवैः) विद्वद्भिः (सधमादम्) संगतिसुखम् (मदन्ति) हर्षयन्ति ॥

११—(शम्) शान्त्या । सुखेन (अग्ने) हे यज्ञाग्ने (पश्चात्) पृष्ठतः (तप) तप ऐश्वर्ये । तापय । प्रतापिनं कुरु (शम्) (पुरस्तात्) अग्रतः (शम्) (उत्तरात्) उपरिदेशात् (शम्) (अधरात्) अधोगतदेशात् (तप) (एनम्) पुरुषम् (एकः) एकसंख्याकः (त्रेधा) त्रिप्रकारेण । पूर्वाग्निगार्हपत्यदक्षिणाग्नि-रूपेण (विहितः) स्थापितः (जातवेदः) [illegible] असुन् । हे जातेषु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकर्मियों के (उ) ही (लोके) समाज में (सम्यक्) ठीक रीति से (धेहि) रख ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि हवन आदि यज्ञ द्वारा अपने इन्द्रियों को वश में करके पुण्यात्मा पुरुषों में स्थान पावें ॥ ११ ॥

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्तो इह मावं चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

शम् । अग्नयः । सम्-इद्धाः । आ । रभन्ताम् । प्राजा-पत्यम् । मेध्यम् । जात-वेदसः । शृतम् । कृण्वन्तः । इह । मा । अवं । चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(समिद्धाः) यथाविधि प्रकाशित की हुयी और (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नयः) अग्नियां (प्राजापत्यम्) प्रजापति परमात्मा को देवता मानने वाले (मेध्यम्) पवित्र पुरुष को (शम्) शान्ति के साथ (आ) सब ओर से (रभन्ताम्) उत्साही करें । और [उस को] (इह) यहां (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ स्वभाव] (कृण्वन्तः) करती हुयीं [अग्नियां] (मा अव चिक्षिपन्) कभी न गिरने देवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञ में पूर्वोक्त पूर्वादि तीनों अग्नियों को यथाविधि प्रज्वलित करते हैं, वे ब्राह्मण अपने आचरण को शुद्ध कर के पक्के ज्ञानी होकर संसार में नीचे नहीं गिरते ॥ १२ ॥

उत्पन्नेषु विद्यमानाग्ने (सम्यक्) यथा तथा । समीचीनम् (एनम्) यजमानम् (धेहि) धारय (सुकृताम्) पुण्यकर्मणाम् (उ) एव (लोके) समाजे ॥

१२—(शम्) सुखेन (अग्नयः) पूर्वोक्तपूर्वाग्न्यादयः (समिद्धाः) सम्यक् प्रकाशिताः (आ) समन्तात् (रभन्ताम्) रभ राभस्ये, औत्सुक्ये । रभसो महन्नाम—निघ० ३ । ३ । उत्सुकमुत्साहिनं कुर्वन्तु (प्राजापत्यम्) प्रजापतिः परमात्मा देवता यस्य तम् (मेध्यम्) मेधृ मेधाहिंसनयोः—यत् । पवित्रम् (जातवेदसः) उत्पन्नपदार्थेषु विद्यमानाः (शृतम्) परिपक्वम् । दृढस्वभावम् (कृण्वन्तः) कुर्वन्तः (मा अव चिक्षिपन्) अ० १८ । २ । ४ । क्षिप-प्रेरणे-णिचि लुङ् । अधः क्षेपणं मा कुर्वन्तु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ एति वितंतः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्तं इह मावं चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

यज्ञः । एति । वि-ततः । कल्पमानः । ईजानम् । अभि । लोकम् । स्वः-गम् ॥ तम् । अग्नयः । सर्व-हुतम् । जुषन्ताम् । प्राजा-पत्यम् । मेध्यम् । जात-वेदसः ॥ शृतम् । कृण्वन्तः । इह । मा । अव । चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(विततः) फैला हुआ (यज्ञः) यज्ञ (कल्पमानः) समर्थ होकर (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम् अभि) समाज में (एति) पहुंचाता है। (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नयः) अग्नियां (तम्) उस (सर्वहुतम्) पूर्ण आहुति दे चुकने वाले, (प्राजापत्यम्) प्रजापति परमात्मा को देवता मानने वाले, (मेध्यम्) पवित्र पुरुष को (जुषन्ताम्) सन्तुष्ट करें। और [उस को] (इह) यहां (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ स्वभाव] (कृण्वन्तः) करती हुयीं [अग्नियां] (मा अव चिक्षिपन्) कभी न गिरने दें ॥ १३ ॥

भावार्थ—पूर्वोक्त अग्नियों में हवन करके पूर्ण आहुति से यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ; देवयज्ञ, पितृयज्ञ; भूतयज्ञ और नृयज्ञ, इन पांच महायज्ञों को समाप्त करने वाला पुरुष परमात्मा की भक्ति करता हुआ अनेक आनन्दों से ऊंचा होता जाता है ॥ १३ ॥

१३—(यज्ञः) यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु—नङ् । इज्यते हविर्दीयतेऽत्र । ब्रह्मयज्ञदेवयज्ञपितृयज्ञभूतयज्ञनृयज्ञानां समुदायः (एति) अन्तर्गतण्यर्थः । गमयति (विततः) विस्तृतः (कल्पमानः) समर्थः सन् (ईजानम्) समाप्तयज्ञं पुरुषम् (अभि) प्रति (लोकम्) समाजम् (स्वर्गम्) सुखप्रापकम् (तम्) (अग्नयः) पूर्वाग्न्यादयः—म० ६ (सर्वहुतम्) सर्वं हुतं यज्ञे हविर्दत्तं येन तं कृतपूर्णाहुतिकम् (जुषन्ताम्) जुषी प्रीतिसेवनयोः । प्रीणन्तु । तर्पयन्तु । अन्यत्पूर्ववत्—म० १२ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥

ईजानः । चितम् । आ । अरुक्षत् । अग्निम् । नाकस्य । पृष्ठात् । दिवम् । उत्-पतिष्यन् ॥ तस्मै । प्र । भाति । नभसः । ज्योतिषी-मान् । स्वः-गः । पन्थाः । सु-कृते । देव-यानः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(ईजानः) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष ने (नाकस्य) अत्यन्त सुख के (पृष्ठात्) ऊपरी स्थान से (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की ओर (उत्पतिष्यन्) चढ़ने की इच्छा करके, (चितम्) चुनी हुयी (अग्निम्) अग्नि को (आ) सब ओर (अरुक्षत्) प्रकट किया है। (तस्मै) उस (सुकृते) सुकृती पुरुष के लिये (नभसः) आकाश से [खुले स्थान से] (ज्योतिषीमान्) ज्योतिष्मती बुद्धि वाला (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला, (देवयानः) विद्वानों के चलने योग्य (पन्थाः) मार्ग (प्र भाति) चमकता जाता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य अत्यन्त सुख से परमात्मा की प्राप्ति में ऊंचा होकर अपना कर्तव्यरूप यज्ञ पूरा कर चुकता है, उसकी बुद्धि ऐसी चमकती है जैसे सूर्य खुले निर्मल आकाश में ॥ १४ ॥

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥

१४—(ईजानः) समाप्तयज्ञः पुरुषः (चितम्) हवनपदार्थैः संचितम् (आ) समन्तात् (अरुक्षत्) प्रादुष्कृतवान् (अग्निम्) यज्ञाग्निम् (नाकस्य) अतिसुखस्य (पृष्ठात्) उपरिदेशात् (दिवम्) प्रकाशस्वरूपं परमात्मानम् (उत्पतिष्यन्) उत्पतितुमूर्ध्वं गन्तुमिच्छन् सन् (तस्मै) (प्र) प्रकर्षेण (भाति) दीप्यते (नभसः) निर्मलाकाशादित्यर्थः (ज्योतिषीमान्) ज्योतिष्—अर्शआद्यच्, ङीप्, मतुप्। ज्योतिष्मती बुद्धिर्यस्मिन् सः (स्वर्गः) सुखप्रापकः (पन्थाः) मार्गः (सुकृते) पुण्यकर्मणे पुरुषाय (देवयानः) विद्वद्भिर्गमनयोग्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निः । होता । अध्वर्युः । ते । बृहस्पतिः । इन्द्रः । ब्रह्मा । दक्षिणतः । ते । अस्तु ॥ हुतः । अयम् । सम्-स्थितः । यज्ञः । एति । यत्र । पूर्वम् । अयनम् । हुतानाम् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—[हे यजमान !] (ते) तेरे लिये (अग्निः) [एक] विद्वान् पुरुष (होता) होता [मन्त्रों से आहुति देने वाला], (बृहस्पतिः) [एक] बृहस्पति [विद्वानों का पालन कर्ता] (अध्वर्युः) अध्वर्यु [यज्ञ कराने वाला] (इन्द्रः) [एक] परम ऐश्वर्यवान् महाविद्वान् (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेद जानने वाला यज्ञनिरीक्षक पुरुष] (ते) तेरी (दक्षिणतः) दाहिनी ओर में (अस्तु) होवे । (अयम्) यह (हुतः) आहुति दिया गया और (संस्थितः) पूरा किया गया (यज्ञः) यज्ञ (एति) [वहां] जाता है, (यत्र) जहां (हुतानाम्) आहुति दिये हुये [यज्ञों] का (पूर्वम्) मुख्य (अयनम्) जाना होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—विद्वान् यजमान वेदवेत्ता विद्वानों को होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा आदि ऋत्विज अधिकारी बना कर प्राचीन महात्माओं की रीति से यज्ञ को यथाविधि समाप्त और सुफल करे ॥ १५ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो ऋग्वेद-१० । ७१ । ११ से, जो यहां लिखा जाता है और जिसकी व्याख्या भगवान् यास्कमुनि ने-निरु० १ । ८ में की है ॥

१५—(अग्निः) विद्वान् पुरुषः (होता) आहुतिदाता (अध्वर्युः) मृगय्वादयश्च । उ० १ । ३७ । अध्वर+या प्रापणे-कु, अकारलोपः । यद्वा, अध्वर-क्यच् कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः । पा० ७ । ४ । ३८ । इत्यन्त्यलोपः । क्याच्छन्दसि । पा० ३ । २ । १७० । उप्रत्ययः । अध्वर्युरध्वरयुरध्वरं युनक्त्यध्वरस्य नेताऽध्वरं कामयत इति वा । अपि वाधीयाने युरुपबन्धः—निरु० १ । ८ । याजकः (ते) तुभ्यम् (बृहस्पतिः) बृहतां विदुषां पालकः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् । महाविद्वान् (ब्रह्मा) ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति । ब्रह्मा परिवृढः श्रुततो ब्रह्म परिवृढं सर्वतः-निरु० १ । ८ । चतुर्वेदज्ञः (दक्षिणतः) अवामभागे (ते) तव (अस्तु) (हुतः) आहुत्या निष्पादितः (अयम्) (संस्थितः) समापितः (यज्ञः) (एति) गच्छति (यत्र) (पूर्वम्) मुख्यम् (अयनम्) गमनम् (हुतानाम्) आहुत्या निष्पादितानां यज्ञानाम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शकरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥

(त्वः) एक [होता] (ऋचाम्) ऋचाओं के (पोषम्) विधान की (पुपुष्वान्) पुष्टि करता हुआ (आस्ते) बैठता है, (त्वः) एक [उद्गाता] (गायत्रम्) गाने योग्य [स्तोत्र] को (शाकरीषु) शक्तिवाली ऋचाओं में (गायति) गाता है। (त्वः) एक (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब विद्यायें जानने वाला] (जातविद्याम्) होते हुये कर्म में विद्या (वदति) बताता है, (त्वः) एक [अध्वर्यु] (यज्ञस्य) यज्ञ के (मात्राम्) परिमाण को (उ) ही (वि) विविध प्रकार (मिमीते) बनाता है ॥

मन्त्राः १६—२७ ॥

यज्ञो देवता ॥ १ —२४ भुरिगार्षी बृहती ; २५ अनुष्टुप् ; २६ निचृदार्ची बृहती ; २७ याजुषी गायत्री ॥

यजमानकर्तव्योपदेशः—यजमान के कर्तव्य का उपदेश ॥

अपूपवान् क्षीरवाँश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥

अपूप-वान् । क्षीर-वान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये बूड़ी आदि] वाला, (क्षीरवान्) दूध वाला (चरुः) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे। (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते

१६—(अपूपवान्) पानीविशिभ्यः पः। उ० ३। २३ । नञ् + पूयी विशरणे दुर्गन्धे च—पप्रत्ययः, यलोपः। सुसंस्कृतभोजनपदार्थयुक्तः (क्षीरवान्) दुग्धवान् (चरुः) भृमृशीङ्तृचरि० । उ० १ । ७ । चर गतिभक्षणयोः—उप्रत्ययः । चरुर्मृच्चयो भवति चरतेर्वा समुश्चरन्त्यस्मादापः—निरु० ६ । ११ ।

CC-0. JK Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥ १६ ॥

भावार्थ—यजमान को योग्य है कि विद्वानों को सत्कार पूर्वक बुलाकर शुद्ध, सुगन्धित, पुष्टिकारक मोहन भोग मालपूये आदि पदार्थों के स्थालीपाक से यज्ञ करे ॥ १६ ॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है-अ० १८ । ३ । २५—३५ ॥

अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु । लोकुकृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १७ ॥

अपूप-वान् । दधि-वान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोकुकृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (दधिवान्) पुष्टिकारक पदार्थों वाला (चरुः) चरु..... [मन्त्र १६] ॥ १७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ १७ ॥

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु । लोकुकृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १८ ॥

अपूप-वान् । द्रप्स-वान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोकुकृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ १८ ॥

चरुर्मेघनाम—निघ० १ । १० । यज्ञपाकः (इह) अत्र वेद्याम् (आ सीदतु) आ गच्छतु । तिष्ठतु । अन्यत् पूर्ववत्—अ० १८ । ३ । २५ ॥

१७—(दधिवान्) आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च । पा० ३ । २ । १७१ । डु धाञ् धारणपोषणयोः—किन्प्रत्ययः । पोषकपदार्थयुक्तः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (द्रप्सवान्) हर्षकारक द्रव्यों वाला (चरुः) चरु.....[मन्त्र १६] ॥ १८ ॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ १८ ॥

अपूपवान् घृतवाँश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १९ ॥

अपूप-वान् । घृत-वान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (घृतवान्) घृत वाला (चरुः) चरु.....[मन्त्र १६] ॥ १९ ॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ १९ ॥

अपूपवान् मांसवाँश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २० ॥ (२१)

अपूप-वान् । मांस-वान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २० ॥ (२१)

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (मांसवान्) मननसाधक पदार्थों वाला [अर्थात् बुद्धिवर्धक जैसे मीठे फल बादाम, अखोट आदि वस्तुओं वाला] (चरुः) चरु..... [मन्त्र १६] ॥ २० ॥

१८—(द्रप्सवान्) अ० १८ । १ । २१ । हर्षकारकद्रव्ययुक्तः । अन्यत्-पूर्ववत्—म० १६ ॥

१९—(घृतवान्) आज्येन युक्तः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १६ ॥

२०—(मांसवान्) अ० ९ । ६ (३) ९ । मनेर्दीर्घश्च । उ० ३ । ६४ । मन ज्ञाने—सप्रत्यो दीर्घश्च । मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन्त्सीदतीति वा—निरु० ४ । ३ । मननसाधकेन बुद्धिवर्धकवस्तुना युक्तः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ २० ॥

अपूपवान्नवांश्चुरुरेह सीदतु । लोकुकृतः पथिकृतौ यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २१ ॥

अपूप-वान् । अन्न-वान् । चुरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोकु-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (अन्नवान्) अन्न [जौ, चावल, गेहूं, उरद आदि] वाला (चरुः) चरु ..... (मन्त्र १६]॥ २१ ॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ २१ ॥

अपूपवान् मधुमांश्चुरुरेह सीदतु । लोकुकृतः पथिकृतौ यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २२ ॥

अपूप-वान् । मधु-मान् । चुरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोकु-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (मधुमान्) मधु [मक्खियों का रस] वाला (चरुः) चरु ..... [मन्त्र १६] ॥ २२ ॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ २२ ॥

अपूपवान् रसवांश्चुरुरेह सीदतु । लोकुकृतः पथिकृतौ यजा-

२१—(अन्नवान्) अदनीयपदार्थयुक्तः । यवव्रीहिगोधूममाषादियुक्तः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १६ ॥

२२—(मधुमान्) माक्षिकरसयुक्तः । अन्यत् पूर्ववत् म० १६ ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २३ ॥

अपूप-वान् । रस-वान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (रसवान्) रस वाले [वीर्यवर्धक शर्करा आदि] पदार्थों वाला (चरुः) चरु ·····[मन्त्र १६] ॥ २३ ॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ २३ ॥

अपूपवानपधांश्चुररेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २४ ॥

अपूप-वान् । अपवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ॥ लोक-कृतः । पथि-कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुत-भागाः । इह । स्थ ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (अपवान्) शुद्धजल वाला (चरुः) चरु·····[मन्त्र १६] ॥२४॥

भावार्थ—मन्त्र १६ के समान है ॥ २४ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ २५ ॥

अपूप-अपिहितान् । कुम्भान् । यान् । ते । देवाः । अधारयन् ॥ ते । ते । सन्तु । स्वधा-वन्तः । मधु-मन्तः । घृत-श्चुतः ॥२५॥

२३—(रसवान्) वीर्यवर्धकशर्करादिपदार्थयुक्तः । अन्यत् पूर्ववत्-म०१६॥

२४—(अपवान्) आप्लृ व्याप्तौ—घञ् । आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । उ० ४ । २०८ । इति निर्देशेन ह्रस्वः । अपस्वान् । शुद्धजलयुक्तः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यान्) जिन (अपूपापिहितान्) अपूपों [शुद्ध पके हुये भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] को ढककर रखने वाले (कुम्भान्) पात्रों को (ते) तेरे लिये (देवाः) विद्वानों ने (अधारयन्) रक्खा है । (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] के सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥ २५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर पौष्टिक पदार्थों से यज्ञ करें, जिससे वायु मण्डल शुद्ध होने पर उत्तम बलदायक अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होवें ॥ २५ ॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १८ । ३ । ६८ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीःप्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानुमन्यताम् ॥ २६ ॥
याः । ते । धानाः । अनु-किरामि । तिल-मिश्राः । स्वधा-वतीः ॥
ताः । ते । सन्तु । उत्-भ्वीः । प्र-भ्वीः । ताः । ते । यमः ।
राजा । अनु । मन्यताम् ॥ २६ ॥
अर्धातिं भूयसीम् ॥ २७ ॥ अर्धातिम् । भूयसीम् ॥ २७ ॥

भाषार्थ—[हे यजमान !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिलमिश्राः) तिलों से मिली हुयी, (स्वधावतीः) उत्तम अन्न वाली (धानाः) धानाओं [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थों] को (अनुकिरामि) [अग्नि में] मैं [ऋत्विज] अनुकूल रीति से फैलाता हूं । (ताः) वे [सब सामग्री] (ते) तेरे लिये (उद्भ्वीः) उदय कराने वाली और (प्रभ्वी) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [सामग्रियों] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक अर्थात् याजक पुरुष] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने

२५—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० १८ । ३ । ६८ ॥

२६—(याः) (ते) तुभ्यम् (धानाः) दधातेर्नप्रत्ययः, टाप् । सुसंस्कृत-पौष्टिकपदार्थान् (अनुकिरामि) आनुकूल्येन क्षिपामि प्रसरामि (तिलमिश्राः) तिलैर्मिश्रिताः (स्वधावतीः) उत्तमान्नयुक्ताः (ताः) (सन्तु) (उद्भ्वीः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ २६ ॥ [और वह उनको] (भूयसीम्) अधिकतर (अक्षितिम्) क्षय रहित क्रिया [निरन्तर जाने] ॥ २७ ॥

भावार्थ—यज्ञ कराने वाला पुरुष यथाविधि संशोधित तिल, जौ, चावल आदि जिन सामग्रियों से हवन करता है, उस के द्वारा वायुमण्डल की शुद्धि से संसार का उपकार और यजमान का अधिक पुण्य होता है—२६, २७ ॥

यह मन्त्र आगे है—अ० १८ । ४ । ४३ और कुछ भेद से आ चुका है—अ० १८ । ३ । ६६ ॥

मन्त्रौ २८, २९ ॥

ईश्वरो देवता ॥ २८ त्रिष्टुप् ; २९ निचृज्जगती ॥

ब्रह्मोपासनोपदेशः—ब्रह्म की उपासना का उपदेश ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥२८॥

द्रप्सः । चस्कन्द । पृथिवीम् । अनु । द्याम् । इमम् । च । योनिम् । अनु । यः । च । पूर्वः ॥ समानम् । योनिम् अनु । सम्-चरन्तम् । द्रप्सम् । जुहोमि । अनु । सप्त । होत्राः ॥२८

भाषार्थ—(द्रप्सः) हर्षकारक परमात्मा (पृथिवीम्) पृथिवी और (द्याम् अनु) प्रकाश में (च) और (इमम्) इस (योनिम् अनु) घर [शरीर] में (च) और [उस शरीर में भी] (चस्कन्द) व्यापक है (यः) जो [शरीर] (पूर्वः) पहिला है । (समानम्) समान [सर्वसाधारण] (योनिम् अनु)

उद्भ्यः । उदयं भावयित्रयः । अन्यत् पूर्ववत्—अ० १८ । ३ । ६६ ॥

२७—(अक्षितिम्) क्षयरहितां क्रियाम् (भूयसीम्) अधिकतराम् ॥

२८—(द्रप्सः) अ० १८ । १ । २१ । दृप् हर्षमोहनयोः । हर्षकारी परमात्मा (चस्कन्द) स्कन्दिर् गतिशोषणयोः लिट् । स्कन्दति । गच्छति । व्याप्नोति (पृथिवीम्) (अनु) प्रति (द्याम्) प्रकाशम् (इमम्) दृश्यमानम् (च) (योनिम्) गृहम् । शरीरम् (अनु) प्रति (यः) योनिः । शरीरम् (च) (पूर्वः) पूर्वमुत्पन्नः (समानम्) तुल्यम् । सर्वसाधारणम् (योनिम्) कारणम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण में (संचरन्तम्) विचरते हुये (द्रप्सम्) हर्षकारक परमात्मा को (सप्त) सात [मस्तक के सात गोलक] (होत्राः अनु) विषय ग्रहण करने वाली शक्तियों के साथ (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूं ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर अन्धकार और प्रकाश में, हमारे वर्तमान और पूर्व शरीर में और प्रत्येक सर्व साधारण कारण में व्यापक है, सब मनुष्य योगाभ्यास से इन्द्रियों को वश में करके उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥ २८ ॥

अथर्ववेद कांड १० । २ । ६ में आया है—" कर्ता [परमेश्वर] ने [मनुष्य के] मस्तक में सात गोलक खोदे, यह दोनों कान, दोनों नथने, दोनों आंखें और एक मुख । जिन के विजय की महिमा में चौपाये और दोपाये जीव अनेक प्रकार से मार्ग चलते हैं " ॥

यह मन्त्र अभेद से यजुर्वेद में है—१३ । ५, और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १७ । ११ ॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् । ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुहते दक्षिणां सप्तमातरम् २८

शत-धारम् । वायुम् । अर्कम् । स्वः-विदम् । नृ-चक्षसः । ते । अभि । चक्षते । रयिम् ॥ ये । पृणन्ति । प्र । च । यच्छन्ति । सर्वदा । ते । दुहते । दक्षिणाम् । सप्त-मातरम् ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(ते) वे (नृचक्षसः) मनुष्यों के देखने वाले पुरुष (रयिम् अभि) धन को सब ओर से पाकर (शतधारम्) सैकड़ों प्रकार से धारण करने वाले (वायुम्) सर्वव्यापक, (अर्कम्) पूजनीय, (स्वर्विदम्) सुख

(अनु) प्रति (संचरन्तम्) विचरन्तम् (द्रप्सम्) हर्षकारकं परमात्मानम् (जुहोमि) आदत्ते । गृह्णामि (अनु) अनुसृत्य (होत्राः) हुयामाश्नुभसिभ्यस्त्रन् । उ० ४ । १६८ । हु दानादानादनेषु-त्रन् , टाप् । होत्रा वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । शीर्षण्यच्छिद्ररूपा विषयग्रहीत्रीः शक्तीः ॥

२८—(शतधारम्) बहुप्रकारेण धारकम् (वायुम्) सर्वव्यापकम् (अर्कम्) अर्चनीयम् (स्वर्विदम्) सुखस्य लम्भकं परमात्मानम् (नृचक्षसः) मनुष्याणां द्रष्टारः (ते) प्रसिद्धाः (अभि) अभिगत्य । सर्वतः प्राप्य (चक्षते) पश्यन्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहुंचाने वाले परमेश्वर को (चक्षते) देखते हैं। (ये) जो पुरुष (सर्वदा) सर्वदा (पृणन्ति) [धन को] भरते हैं (च) और (प्र यच्छन्ति) [सुपात्रों को] देते हैं, (ते) वे लोग (सप्तमातरम्) सात [मन्त्र २८, मस्तक के सात गोलकों] द्वारा बनी हुयी (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा को (दुहते) दुहते हैं [पाते हैं] ॥ २९ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थी परोपकारी पुरुष परमात्मा के दिये धन को प्रत्येक स्थान में प्राप्त करके सुपात्रों को देकर यशस्वी होवें, क्योंकि जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर धन बढ़ाते और सुपात्रों को देते हैं, वे ही संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं॥ २९ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है–१० । १०७ । ४ ॥

मन्त्राः ३०–४० ॥

धेनुर्देवता ३० । ३६ त्रिष्टुप् ; ३१, ३८, अनुष्टुप् ; ३२ निचृदनुष्टुप् ; ३३ भुरिगार्षी बृहती ; ३४ त्रिष्टुप् ; ३५ निचृदार्षी त्रिष्टुप् ; ३७, निचृत् त्रिष्टुप् ; ३९ आर्षी पङ्क्तिः ; ४० भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

गोरक्षोपदेशः—गोरक्षा का उपदेश ॥

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ३०(२२

कोशम् । दुहन्ति । कलशम् । चतुः-बिलम् । इडाम् । धेनुम् । मधु-मतीम् । स्वस्तये ॥ ऊर्जम् । मदन्तीम् । अदितिम् । जनेषु । अग्ने । मा । हिंसीः । परमे । वि-ओमन् ॥३०॥(२२)

भाषार्थ—(कोशम्) भण्डार तुल्य, (चतुर्बिलम्) चार छेद [स्तन] वाले (कलशम्) कलश [गौ के लेवा] को (इडाम्) स्तुति योग्य, (मधुमतीम्)

(रयिम्) धनम् (ये) पुरुषार्थिनः (पृणन्ति) पॄ पालनपूरणयोः । पूरयन्ति (च) (प्रयच्छन्ति) ददति सुपात्रेभ्यः (सर्वदा) (ते) पुरुषाः (दुहते) कडागमः । दुहते । प्राप्नुवन्ति (दक्षिणाम्) वृद्धिक्रियाम् । प्रतिष्ठाम् । सत्-क्रियाम् (सप्तमातरम्) म० २८ । सप्तसंख्याकानि शीर्षण्यच्छिद्राणि मातॄणि निर्मातॄणि मातृभूतानि वा यस्यास्तां तथाभूताम् ॥

३०—(कोशम्) रत्नसुवर्णादिसंचयस्थानं यथा (दुहन्ति) दुहिर्द्विकर्मकः । प्रपूरयन्ति (कलशम्) कुम्भसदृशं पयोधरम् (चतुर्बिलम्) चतुश्छि-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर रस [मीठे दूध] वाली (धेनुम्) दुधैल गौ से (स्वस्तये) आनन्द के लिये (दुहन्ति) [मनुष्य] दुहते हैं। (अग्ने) हे ज्ञानी राजन्! (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा में [वर्तमान तू] (जनेषु) मनुष्यों के बीच (ऊर्जम्) बलदायक रस (मदन्तीम्) बढ़ाती हुयी (अदितिम्) अदीन [और अखण्डनीय] गौ को (मा हिंसीः) मतमार ॥ ३० ॥

भावार्थ—राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि गौ आदि पशु जो दूध घी आदि उत्तम पदार्थ देने में दीन नहीं होते और उनके बच्चे बैल आदि जो खेती आदि में उपकार करते हैं जिस से प्रजा की रक्षा होती है, उन सब को कोई मनुष्य कभी न सतावे और न मारे ॥ ३० ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में है-१३ । ४९, और पूर्वार्ध के लिये मन्त्र ३६ आगे देखो ॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्ताप्यं चर ॥ ३१ ॥

एतत् । ते । देवः । सविता । वासः । ददाति । भर्तवे ॥
तत् । त्वम् । यमस्य । राज्ये । वसानः । ताप्यम् । चर ॥३१॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (देवः) व्यवहार कुशल

द्रम्। चतुःस्तनम् (इडाम्) अ० ३। १०। ६। ईड स्तुतौ-घञ्। ईकारस्य ह्रस्वः, टाप्। इला गोनाम-निघ० २। ११। ईड्याम्। स्तुत्याम् (धेनुम्) अ० ३। १०। १। धेट इच्च। उ० ३। ३४। इति धेट् पाने-नु। यद्वा, धि धारणे, तर्पणे च—नु। धेनुर्धयतेर्वा धिनोतेर्वा—निरु० ११। ४२। दोग्ध्रीं गाम् (मधुमतीम्) मधुररसदुग्धयुक्ताम् (स्वस्तये) कल्याणाय (ऊर्जम्) बलकरं रसम् (मदन्तीम्) मदयन्तीम्। तोषयन्तीम्। वर्धयन्तीम् (अदितिम्) अ० २। २८। ४ कृत्यल्युटो बहुलम्। पा० ३। ३। ११६। दीङ् क्षये, दो अवखण्डने-क्तिन्। अदितिरदीना देवमाता-निरु० ४। २२। अदितिर्गोनाम-निघ० २। ११। अदीनामखण्डनीयां गाम् (जनेषु) मनुष्येषु (अग्ने) हे विद्वन् राजन् (मा हिंसीः) मा बधीः मा पीडय (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्)) व्योम्नि। सर्वव्यापके परमात्मनि ॥

३१—(एतत्) उपस्थितम् (ते) तुभ्यम् (देवः) व्यवहारकुशलः

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सविता) प्रेरक [काम चलाने वाला, कपड़ा बनाने वाला पुरुष] (एतत्) यह (वासः) कपड़ा (भर्तवे) पहिरने को (ददाति) देता है। (त्वम्) तू (यमस्य) न्यायकारी राजा के (राज्ये) राज्य में (तार्प्यम्) तृप्तिकारक (तत्) उस [वस्त्र] को (वसानः) पहिरे हुये (चर) विचर ॥ ३१ ॥

भावार्थ—न्यायी राजा के राज्य में गाय बैल आदि के उपकार से [मन्त्र ३०] वस्त्रकार आदि लोग वस्त्र आदि बनाकर मनुष्यों का उपकार करते हैं ॥ ३१ ॥

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥

धानाः । धेनुः । अभवत् । वत्सः । अस्याः । तिलः । अभवत् ॥
ताम् । वै । यमस्य । राज्ये । अक्षिताम् । उप । जीवति ॥३२॥

भाषार्थ—(अस्याः) इस [गौ] से (धानाः) धानियें [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थ] और (धेनुः) गौ और (वत्सः) बछड़ा (अभवत्) होता है और (तिलः) तिल [तिल सरसों आदि] (अभवत्) होता है। (यमस्य) न्यायकारी राजा के (राज्ये) राज्य में [मनुष्य] (वै) निश्चय करके (ताम्) उस (अक्षिताम्) बिना सतायी हुयी [गौ] के (उप जीवति) सहारे से जीवता है ॥ ३२ ॥

भावार्थ—उत्तम राज्य के प्रबन्ध द्वारा गौ के उपकार से अन्न और तेल आदि भोजन आदि के लिये तथा गौ दूध, घी आदि के लिये और बैल खेती

(सविता) कर्मप्रेरकः । वस्त्रकारः । शिल्पी (वासः) वस्त्रम् (ददाति) प्रयच्छति (भर्तवे) भर्तुमाच्छादयितुम् (तत्) वस्त्रम् (त्वम्) हे मनुष्य (यमस्य) न्यायकारिणो राज्ञः (राज्ये) जनपदे (वसानः) आच्छादयन् (तार्प्यम्) तृप प्रीणने-एयत् । तृप्तिकरम् (चर) विचर ॥

३२—(धानाः) सुसंस्कृतपौष्टिकपदार्थाः (धेनुः) दोग्ध्री गौः (अभवत्) भवति (वत्सः) गोशिशुः । वृषभः (अस्याः) धेनोः सकाशात् (तिलः) तिलसर्षपादिपदार्थः (ताम्) गाम् (वै) निश्चयेन (यमस्य) न्यायशीलस्य राज्ञः (राज्ये) जनपदे (अक्षिताम्) अहिंसिताम् (उप) उपेत्य (जीवति) प्राणान् धारयति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के लिये होते हैं, जिन पदार्थों के ऊपर मनुष्य का जीवन निर्भर है ॥ ३२ ॥

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु । एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वाऽत्र ॥ ३३ ॥

एताः । ते । असौ । धेनवः । काम-दुघाः । भवन्तु ॥ एनीः । श्येनीः । स-रूपाः । वि-रूपाः । तिल-वत्साः । उप । तिष्ठन्तु । त्वा । अत्र ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(असौ) हे अमुक पुरुष ! (ते) तेरी (एताः) यह (धेनवः) दुधेल गायें (कामदुघाः) कामधेनु [कामना पूरी करने वाली] (भवन्तु) होवें । (एनीः) चितकबरी, (श्येनीः) धौली, (सरूपाः) एक से रूप वाली, (विरूपाः) अलग अलग रूप वाली, (तिलवत्साः) बड़े बडे बछड़ों वाली [गौयें] (अत्र) यहां (त्वा) तेरी (उप तिष्ठन्तु) सेवा करें ॥ ३३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य गौओं की घास अन्न आदि से यथावत् सेवा करें जिससे वे अभीष्ट घी दूध बड़े बछड़े आदि देकर उपकार करती रहें और प्रीति बढ़ाने के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि गौयें और बछड़े अनेक रंगों और नामों के होवें ॥ ३३ ॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ॥ तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

एनीः । धानाः । हरिणीः । श्येनीः । अस्य । कृष्णाः । धानाः । रोहिणीः । धेनवः । ते ॥ तिल-वत्साः । ऊर्जम् । अस्मै । दुहानाः । विश्वाहा । सन्तु । अनप-स्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

३३—(एताः) (ते) तव (असौ) हे अमुक पुरुष (धेनवः) दोग्ध्र्यो गावः (कामदुघाः) दुग्धघृतादिदानेन कामानां प्रपूरयित्र्यः (भवन्तु) (एनीः) कर्बुरवर्णाः (श्येनीः) श्वेतवर्णाः । धवलाः (सरूपाः) समानरूपाः (विरूपाः) विविधरूपाः (तिलवत्साः) तिलाः तिलकाः प्रधानाः शिशवो यासां ताः (उपतिष्ठन्तु) सेवन्ताम् (त्वा) त्वाम् (अत्र) संसारे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (अस्य) इस (ते) तेरी (एनीः) चित-कबरी, (हरिणीः) पीली, (श्येनीः) धौली, (कृष्णाः) काली, (रोहिणीः) लाल (तिलवत्साः) बड़े बड़े बछड़ों वाली, (अनपस्फुरन्तीः) कभी न चलायमान होने वाली (धेनवः) दुधेल गौयें (धानाः) पुष्टिकारक (धानाः) धानियों [सुसंस्कृत अन्नों] को और (ऊर्जम्) बलदायक रस [दूध घी आदि] को (अस्मै) उस तेरे लिये (विश्वाहा) सब दिनों (दुहानाः) देती हुई (सन्तु) होवें ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वे प्रीतिसूचक रंग और नाम वाली गौओं को सावधानी से पालें जिस से गौओं के दूध घी आदि द्वारा उत्तम उत्तम भोजन और खेती आदि के लिये बड़े बड़े बछड़े करके सदा पुष्ट रहें ॥ ३४ ॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् । स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ३५

वैश्वानरे । हविः । इदम् । जुहोमि । साहस्रम् । शत-धारम् । उत्सम् ॥ सः । बिभर्ति । पितरम् । पितामहान् । प्र-पितामहान् । बिभर्ति । पिन्वमानः ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—(वैश्वानरे) सब नरों के हितकारी पुरुष के निमित्त (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य वस्तु, (साहस्रम्) सहस्रों उपकार वाले, (शतधारम्) सैकड़ों दूध के धाराओं वाले (उत्सम्) स्रोते [अर्थात् गौ रूप

३४—(एनीः) कर्बूरवर्णाः (धानाः) पोषयित्रीः (हरिणीः) हरिण्यः । हरितवर्णाः (श्येनीः) श्वेतवर्णाः (अस्य) पुरुषस्य (कृष्णाः) कृष्णवर्णाः (धानाः) सुसंस्कृतान्नानि (रोहिणीः) रोहितवर्णाः रक्ताः (धेनवः) दोग्ध्र्यो गावः (ते) तव (तिलवत्साः) म० ३३ । प्रधानशिशूपेताः (ऊर्जम्) बलकरं रसं दुग्धघृतादिकम् (अस्मै) तथाभूताय तुभ्यम् (दुहानाः) प्रयच्छन्त्यः (विश्वाहा) सर्वाणि दिनानि (सन्तु) (अनपस्फुरन्तीः) स्फुर संचलने—शतृ । न कदापि संचलन्त्यः ॥

३५—(वैश्वानरे) निमित्तसप्तमी । सर्वनरहितपुरुषस्य निमित्ते (हविः) ग्राह्यं वस्तु गोरूपम् (जुहोमि) ददामि (साहस्रम्) बहूपकारकम् (शतधारम्) बहुदुग्धधारायुक्तम् (उत्सम्) उन्दी क्लेदने—सप्रत्ययः । स्रवज्जलस्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ] को (जुहोमि) मैं देता हूं। (सः) वह (पिन्वमानः) सेवा किया हुआ [गौ रूप पदार्थ] (पितरम्) पिता [पिता आदि बड़ों] को (पितामहान्) दादे आदि मान्य जनों को (बिभर्त्ति) पुष्ट करता है, और (प्रपितामहान्) परदादे आदि महामान्य पुरुषों को (बिभर्ति) पुष्ट करता है ॥ ३५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! गौ को प्राप्त करके उसकी पूरी सेवा करो, उस के पालने से खेती आदि के लिये उत्तम बैल तथा दूध घी आदि उत्तम पदार्थ मिलने से तुम्हारे कुटुम्बी और सब बड़े बूढ़े बलवान् और पुष्ट रहेंगे ॥ ३५ ॥

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥३६॥

सहस्र-धारम् । शत-धारम् । उत्सम् । अक्षितम् । वि-अच्यमानम् । सलिलस्य । पृष्ठे ॥ ऊर्जम् । दुहानम् । अनप-स्फुरन्तम् । उप । आसते । पितरः । स्वधाभिः ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—(सहस्रधारम्) सहस्रों प्रकार से पोषण करने वाले, (शतधारम्) दूध की सैकड़ों धाराओं वाले, (अक्षितम्) न घटने वाले, (सलिलस्य) समुद्र की (पृष्ठे) पीठपर (व्यच्यमानम्) फैले हुये [अर्थात् जल समान बहुत होने वाले], (ऊर्जम्) बलकारक रस [दूध घी आदि] (दुहानम्) देने वाले (अनपस्फुरन्तम्) कभी न चलायमान होने वाले (उत्सम्) स्रोते [अर्थात् गौ रूप पदार्थ] को (पितरः) पितर [पिता आदि

पातसदृशं गोरूपपदार्थम् (सः) गोरूपपदार्थः (बिभर्ति) पुष्णाति (पितरम्) बहुवचनस्यैकवचनम् । पितॄन् । पित्रादिमाननीयान् (पितामहान्) पितामहादीन् सत्करणीयान् (प्रपितामहान्) प्रपितादीन् महामान्यान् (बिभर्ति) (पिन्वमानः) पिवि सेचने, सेवने च—चानश् । सेव्यमानः ॥

३६—(सहस्रधारम्) सहस्रप्रकारेण धारकं पोषकम् (शतधारम्) असंख्यातदुग्धधारोपेतम् (उत्सम्) स्रोतः सदृशं गोरूपपदार्थम् (अक्षितम्) अक्षीणम् (व्यच्यमानम्) अचु गतौ याचने च—शानच् । वि विविधं प्रसरन्तम् (सलिलस्य) समुद्रस्य (पृष्ठे) उपरिभागे (ऊर्जम्) बलकरं रसं दुग्धादिकम् (दुहानम्) प्रयच्छन्तम् (अनपस्फुरन्तम्) न कदापि संचलन्तम् (उपासते)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्य] लोग (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के साथ (उप आसते) सेवते हैं ॥३६॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपना शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाना चाहें, वे गौ की रक्षा करके दूध घी आदि का सेवन करें ॥ ३६ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में है—१३। ४६ और उत्तरार्द्ध के लिये—मन्त्र ३० ऊपर देखो ॥

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत । मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥

इदम् । कसाम्बु । चयनेन । चितम् । तत् । सु-जाताः । अव । पश्यत । आ । इत ॥ मर्त्यः । अयम् । अमृत-त्वम् । एति । तस्मै । गृहान् । कृणुत । यावत्-सबन्धु ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(इदम्) यह (कसाम्बु) शासन का कीर्तन (चयनेन) इकट्ठा करने से (चितम्) इकट्ठा किया गया है, (सजाताः) हे सजातियो ! (तत्) उस को (अव पश्यत) ध्यान से देखो और (आ) सब ओर से (इत) प्राप्त करो । (अयम्) यह (मर्त्यः) मनुष्य (अमृतत्वम्) अमरपन (एति) पाता है । (यावत्सबन्धु) जितने तुम समान गोत्र वाले [अर्थात् सपिण्डी] हो सब मिल कर (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (गृहान्) घरों को (कृणुत) बनाओ ॥ ३७ ॥

सेवन्ते (पितरः) पित्र्यादिमान्याः (स्वधाभिः) आत्मधारणशक्तिभिः ॥

३७—(इदम्) उपस्थितम् (कसाम्बु) कस गतिशासनयोः—अच्+अबि शब्दे गतौ च—उप्रत्ययः । कसस्य शासनस्य कीर्तनम् (चयनेन) संग्रहेण (चितम्) संचितम् । समूहीकृतम् (तत्) शासनकीर्तनम् (सजाताः) हे समानजन्मानः । सगोत्राः (अव पश्यत) अवधानेन ईक्षध्वम् (आ) समन्तात् (इत) प्राप्नुत (मर्त्यः) मनुष्यः (अयम्) (अमृतत्वम्) अमरत्वम् । अमरणम् (एति) प्राप्नोति (तस्मै) मनुष्याय (गृहान्) स्थानानि (कृणुत) कुरुत । रचयत (यावत्सबन्धु) यथा भवति तथा यावन्तः सबन्धवः समानगोत्राः सपिण्डिनो भवथ ते सर्वे यूयं संगत्य ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—संसार में गौ आदि उपकारी जीव और बड़े बड़े घर आदि स्थान युक्ति के साथ क्रम क्रम से ठीक होते हैं, मनुष्य यह विचार कर उन्नति करें। मनुष्य इसी प्रकार श्रेष्ठ कामों से यश पाता है और सब कुटुम्बी आदि उस का सहाय करते हैं ॥ ३७ ॥

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥

इह । एव । एधि । धन-सनिः । इह-चित्तः । इह-क्रतुः ॥
इह । एधि । वीर्यवत्-तरः । वयः-धाः । अपरा-हतः ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (धनसनिः) धन कमाता हुआ, (इहचित्तः) यहां पर चित्त देता हुआ, (इहक्रतुः) यहां पर कर्म करता हुआ तू (इह) यहां पर (एव) ही (एधि) रह। और (वीर्यवत्तरः) अधिक वीर्यवान् होता हुआ, (वयोधाः) बल देता हुआ और (अपराहतः) न मार डाला गया तू (इह) यहां पर (एधि) रह ॥ ३८ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्या द्वारा धन आदि प्राप्त करके यहां अर्थात् अपने घर, नगर, देश तथा संसार में उपकार करता हुआ महाबली उदार और शत्रु-रहित होकर निर्भय होवे ॥ ३८ ॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः । स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ ३९ ॥

पुत्रम् । पौत्रम् । अभि-तर्पयन्तीः । आपः । मधु-मतीः । इमाः ॥ स्वधाम् । पितृ-भ्यः । अमृतम् । दुहानाः । आपः ।

३८—(इह) अत्र (एव) निश्चयेन (एधि) भव (धनसनिः) छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्। पा० ३ । २ । २७ । धन + षण सम्भक्तौ—इन् । धनस्य संभाजकः । लम्भकः (इहचित्तः) अस्मिन् देशे कर्मणि वा चित्तं मनो यस्य सः (इहक्रतुः) क्रतुः कर्मनाम—निघ० २ । १ । अस्मिन् संसारे कर्मयुक्तः (इह) (एधि) भव (वीर्यवत्तरः) अधिकतरो बलवान् (वयोधाः) वयः + डु धाञ् धारणपोषणदानेषु—किप् । पराक्रमस्य दाता (अपराहतः) अनपमारितः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवीः । उभयान् । तर्पयन्तु ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—(इमाः) यह (मधुमतीः) मधुर रस [मीठे दूध घी] वाली (आपः) प्राप्ति योग्य [गौयें] (पुत्रम्) पुत्र और (पौत्रम्) पौत्र को (अभितर्पयन्तीः) सब ओर से तृप्त करती हुयी होवें और (पितृभ्यः) पितरों को (स्वधाम्) स्वधारण शक्ति और (अमृतम्) अमरण [जीवन] (दुहानाः) देती हुयीं, (देवीः) उत्तम गुण वाली (आपः) प्राप्ति योग्य [गौयें] (उभयान्) दोनों पक्षों [स्त्री पुरुषों] को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥ ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को गौ आदि उपकारी पशुओं की सदा रक्षा करनी चाहिये, जिस से बालक युवा और वृद्ध स्त्री पुरुषों का पालन होता रहे ॥ ३६ ॥

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुप इमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् । आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते तेनो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ४०(२३)

आपः । अग्निम् । प्र । हिणुत । पितॄन् । उप । इमम् । यज्ञम् । पितरः । मे । जुषन्ताम् ॥ आसीनाम् । ऊर्जम् । उप । ये । सचन्ते । ते । नः । रयिम् । सर्व-वीरम् । नि । यच्छान् ॥ ४० ॥ (२३)

भाषार्थ—(आपः) हे प्राप्ति योग्य [गौओ !] (अग्निम्) अग्नि [प्रताप वा बल] को (पितॄन् उप) पितरों में (प्र हिणुत) बढ़ाये जाओ, (मे)

३६—(पुत्रम्) आत्मजम् (पौत्रम्) पुत्रस्य पुत्रम् (अभितर्पयन्तीः) सर्वतः संतोषयन्त्यः (आपः) आप्लृ व्याप्तौ—क्विप् । आपः पदनाम—निघ० ५ । ३ । आपः=आपनाः, आपनानि च-निरु० १२ । २७ । प्राप्तव्या गावः (मधुमतीः) मधुरसेन घृतदुग्धादिना युक्ताः (इमाः) दृश्यमानाः (स्वधाम्) आत्मधारणशक्तिम् (पितृभ्यः) पालकेभ्यो विद्वद्भ्यः (अमृतम्) अमरणम् । जीवनम् (दुहानाः) प्रयच्छन्त्यः (आपः) प्राप्तव्या गावः (देवीः) देव्यः । शुभगुणवत्यः (उभयान्) उभयपक्षान् स्त्रीपुरुषरूपान् (तर्पयन्तु) तोषयन्तु । वर्धयन्तु ॥

४०—(आपः) म० ३६ । प्राप्तव्या गावः (अग्निम्) प्रतापं बलं वा (प्र) प्रकर्षेण (हिणुत) हि गतिवृद्ध्योः । वर्धयत (पितॄन्) पालकान् विदुषः

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्कार को (पितरः) पितर लोग (जुषन्ताम्) सेवन करें। (ये) जो [पितर लोग] (आसीनाम्) उपस्थित (ऊर्जम्) बलकारक रस [दूध घी आदि] को (उप) आदर से (सचन्ते) सेवें, (ते) वे [विद्वान् पितर] (नः) हमें (सर्ववीरम्) पूरे वीर पुरुष वाला (रयिम्) धन (नि) नियम से (यच्छान्) देवें ॥ ४० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम दूध घी आदि पदार्थों से विद्वान् बड़े बूढ़ों को तृप्त करते रहें, जिस से उनके विद्यादान और आशीर्वाद से गृहस्थों के कार्यकुशल वीर सन्तानें और बहुत धन होवें ॥ ४० ॥

मन्त्रः ४१—४४ ॥

पितरो देवताः ॥ ४१, ४२ अनुष्टुप्; ४३ आर्षी बृहती; ४४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

पितृसेवोपदेशः—पितरों की सेवा का उपदेश ॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।
स वेदु निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

सम् । इन्धते । अमर्त्यम् । हव्य-वाहम् । घृत-प्रियम् ॥
सः । वेदु । नि-हितान् । नि-धीन् । पितॄन् । परा-वतः । गतान् ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—वे [पितर लोग] (अमर्त्यम्) अमर [न मरते हुये पुरुषार्थी], (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के पहुंचाने वाले, (घृतप्रियम्)

पुरुषान् (उप) प्रति (इमम्) अनुष्ठीयमानम् (यज्ञम्) सत्कारम् (पितरः) (मे) मम (जुषन्ताम्) सेवन्ताम् (आसीनाम्) उपविष्टाम्। उपस्थिताम्- (ऊर्जम्) बलकरं रसं दुग्धघृतादिकम् (ये) पितरः (सचन्ते) सेवन्ते (ते) पितरः (नः (अस्मभ्यम् (रयिम्) धनम् (सर्ववीरम्) पूर्णवीरैरुपेतम् (नि) नियमेन (यच्छान्) अ० १२। ३। ३८। लेटि रूपम्। यच्छन्तु। ददतु ॥

४१—(सम्) सम्यक्। यथाविधि। ज्ञानेन (इन्धते) प्रकाशयन्ते ते पितरः (अमर्त्यम्) अम्रियमाणम्। पुरुषार्थिनम् (हव्यवाहम्) ग्राह्यपदार्थानां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घी आदि को प्रिय जानने वाले [जिस] पुरुष को (सम्) यथाविधि [ज्ञान से] (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं। (सः) वह [पुरुष] (परावतः) पराक्रम से चलने वाले (पितॄन्) पितरों को (गतान्) प्राप्त हुये और (निहितान्) संग्रह किये हुये (निधीन्) [रत्न सुवर्ण आदि के] कोशों को (वेद) जानता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य माता पिता आदि पितरों की सेवा घृत दुग्ध आदि उत्तम पदार्थों से करते हैं, वे पितृभक्त उन पितरों की कृपा से विद्यारत्न प्राप्त करके बड़े धनी होते हैं ॥ ४१ ॥

यं ते॑ म॒न्थं यमो॑द॒नं यन्मां॒सं नि॑पृ॒णामि॑ ते ।
ते ते॑ सन्तु स्व॒धाव॑न्तो॒ मधु॑मन्तो घृत॒श्चुतः॑ ॥ ४२ ॥

यम् । ते॒ । म॒न्थम् । यम् । ओ॒द॒नम् । यत् । मां॒सम् । नि॒-पृ॒णामि॑ । ते॒ ॥ ते । ते॒ । स॒न्तु॒ । स्व॒धा-व॑न्तः । मधु॑-मन्तः । घृ॒त॒-श्चुतः॑ ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—[हे पितृगण !] (यम्) जिस (मन्थम्) मथने से प्राप्त हुये पदार्थ [नवनीत आदि] और (यम्) जिस (ओदनम्) भात आदि [सुसंस्कृत भोजन] को (ते) तेरे लिये और (यत्) जिस (मांसम्) मनन साधक वस्तु [बुद्धिवर्धक मीठे फल बादाम अखोट आदि के गूदे, मींग] को (ते) तेरे लिये (निपृणामि) मैं भेंट करता हूं। (ते) वे [भोजन पदार्थ]

प्रापकम् (घृतप्रियम्) घृतादिकं कामयमानं पुरुषम् (सः) पूर्वोक्तः पुरुषः (वेद) वेत्ति (निहितान्) स्थापितान्। संगृहीतान् (निधीन्) रत्नसुवर्णादि-कोशान् (पितॄन्) "गतान्" इत्यनेन कर्मकारके सम्बन्धः। पालकान् पुरुषान् (परावतः) उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे। पा० ५ । १ । ११८। परा+वतिप्रत्ययो धात्वर्थे। परा पराक्रमेण गन्तॄन् (गतान्) अयं सकर्मकः। प्राप्तान् ॥

४२—(यम्) (ते) तुभ्यम् (मन्थम्) विलोडनेन प्राप्तं नवनीतादि-पदार्थम् (यम्) (ओदनम्) भक्तम्। सुसंस्कृतान्नम् (यत्) (मांसम्) म० २०। मननसाधकं बुद्धिवर्धकं पदार्थम् (निपृणामि) पॄ पालनपूरणयोः।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर से] गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग विद्वान् गुणी माता पिता आदि बड़ों की सेवा घृत दुग्ध आदि से किया करें, जिस से वे पितर लोग बलवान् रह कर उत्तम उत्तम कर्म करने में समर्थ होवें ॥ ४२ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आ चुका है—अ० १८ । ३ । ६८ । तथा १८ । ४ । २५ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः । तास्ते सन्तूद्भवीः प्रभवीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ४३ ॥

याः । ते । धानाः । अनु-किरामि । तिल-मिश्राः । स्वधा-वतीः ॥ ताः । ते । सन्तु । उत्-भवीः । प्र-भवीः । ताः । ते । यमः । राजा । अनु । मन्यताम् ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—[हे पितृगण !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिल-मिश्राः) तिलों से मिली हुयी, (स्वधावतीः) उत्तम अन्न वाली (धानाः) धानाओं [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थों] को (अनुकिरामि) मैं [गृहस्थ] अनुकूल रीति से फैलाता हूं । (ताः) वे [सब सामग्री] (ते) तेरे लिये (उद्भवीः) उदय कराने वाली और (प्रभवीः) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [सामग्रियों] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक वैद्य] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ॥ ४३ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग वैद्यक प्रक्रिया के अनुसार पुष्टिकारक पदार्थों से सेवा करके पितरों को नीरोग रक्खें ॥ ४३ ॥

यह मन्त्र ऊपर आचुका है-मन्त्र २६ तथा कुछ भेद से-अ० १८ । ३ । ६६ ॥

नियमेन पूरयामि । समर्पयामि (ते) तुभ्यम् । अन्यत् पूर्ववत्-अ० १८ । ३ । ६८ तथा १८ । ४ । २५ ॥

४३—(राजा) शासको वैद्यः । अन्यत् पूर्ववत्—म० २६ तथा अ० १८ । ३ । ६६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः । पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥ ४४ ॥

इदम् । पूर्वम् । अपरम् । नि-यानम् । येन । ते । पूर्वे । पितरः । परा-इताः ॥ पुरः-गवाः । ये । अभि-शाचः । अस्य । ते । त्वा । वहन्ति । सु-कृताम् । ऊं इति । लोकम् ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (इदम्] यह (पूर्वम्) पहिला और (अवरम्) पिछला (नियानम्) निश्चित मार्ग है, (येन) जिस से (ते) तेरे (पूर्वे) पहिले [प्रधान] (पितरः) पितर लोग (परेताः) बल के साथ गये हैं । (ये) जो [पितर] (अस्य) इस [मार्ग] के (पुरोगवाः) आगे चलने वाले और (अभिशाचः) सब प्रकार उपदेश करने वाले हैं, (ते) वे [पितर] (त्वा) तुझ को (सुकृताम्) सुकर्मियों के (उ) ही (लोकम्) समाज में (वहन्ति) पहुंचाते हैं ॥ ४४ ॥

भावार्थ—पितरों अर्थात् विद्वान् जनों की सेवा करना प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् सार्वभौम और सर्वकालीन धर्म है, उन की सेवा से मनुष्य योग्य हो कर विद्वानों में प्रतिष्ठा पाता है ॥ ४४ ॥

मन्त्राः ४५-४७ ॥

सरस्वती देवता [ऋग्वेदे १० । १७ । ७—९ यथा] ॥ ४५,४६ निचृत् त्रिष्टुप्, ४७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

४४—(इदम्) पितृसेवारूपमाचरणम् (पूर्वम्) पुरातनम् (अपरम्) अर्वाचीनम् (नियानम्) निश्चितमार्गः (येन) मार्गेण (ते) तव (पूर्वे) प्रथमपदस्थाः प्रधानाः (पितरः) पालका विद्वांसः (परेताः) परा प्राधान्येन गताः (पुरोगवाः) गोरतद्धितलुकि । पा० ५।४ ।९२। इति पुरः+गो-टच्, तत्पुरुषे समासान्तः । अग्रगामिनः (ये) पितरः (अभिशाचः) वहश्च । पा० ३ । २ । ६४। अभि+शच व्यक्तायां वाचि—क्विप्रत्ययो बाहुलकात् सर्वत उपदेशकाः (अस्य) नियानस्य । निश्चितमार्गस्य (ते) पितरः (त्वा) त्वां पितृसेवकम् (वहन्ति) प्रापयन्ति (सुकृताम्) पुण्यकर्मणाम् (उ) निश्चयेन (लोकम्) समाजम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वत्यावाहनोपदेशः—सरस्वती के आवाहन का उपदेश ॥

सरंस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरंस्वतीमध्वरे तायमाने । सरंस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरंस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥

सरंस्वतीम् । देव-यन्तः । हवन्ते । सरंस्वतीम् । अध्वरे । तायमाने ॥ सरंस्वतीम् । सु-कृतः । हवन्ते । सरंस्वती । दाशुषे । वार्यम् । दात ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्तः) दिव्य गुणों को चाहने वाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुये (अध्वरे) हिंसारहित व्यवहार में (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती लोग (हवन्ते) बुलाते हैं, (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती है ॥ ४५ ॥

भावार्थ—विज्ञानी लोग परिश्रम के साथ आदर पूर्वक वेदविद्या का अभ्यास करके पुण्य कर्म करते और मोक्ष आदि इष्ट पदार्थ पाते हैं ॥ ४५ ॥

मन्त्र ४५-४७ ऊपर आ चुके हैं—अ० १८। १ । ४१-४३ ॥

सरंस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः । आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ४६

सरंस्वतीम् । पितरः । हवन्ते । दक्षिणा । यज्ञम् । अभि-नक्षमाणाः ॥ आ-सद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् । अनमीवाः । इषः । आ । धेहि । अस्मे इति ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (दक्षिणा) सरल मार्ग में (यज्ञम्) यज्ञ [संयोग व्यवहार] को (अभिनक्षमाणाः) प्राप्त करते हुये (पितरः) पितर [पालन करने वाले विज्ञानी] लोग

४५—४७ मन्त्रा व्याख्याताः—अ० १८। १ । ४१-४३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हवन्ते) बुलाते हैं। [हे विद्वानों !] (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) आकर (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो, [हे सरस्वती !] (अस्मे) हम में (अनमीवाः) पीड़ा रहित (इषः) इच्छायें (आ धेहि) स्थपित कर ॥ ४६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग निर्विघ्न होकर सरल रीति में सब से मिल कर वेदविद्या के प्रचार से विज्ञान की वृद्धि और इष्ट पदार्थ की सिद्धि करते हैं॥४६॥

सरस्वति या सुरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

सरस्वति । या । सु-रथम् । ययाथ । उक्थैः । स्वधाभिः । देवि । पितृ-भिः । मदन्ती ॥ सहस्र-अर्घम् । इडः । अत्र । भागम् । रायः । पोषम् । यजमानाय । धेहि ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [विज्ञानवती वेदविद्या] (देवि) हे देवी ! [उत्तम गुण वाली] (या) जो तू (उक् थैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (सरथम्) रमणीय गुणों वाली होकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के सहित [विराजमान] (पितृभिः) पितरों [विज्ञानियों] के साथ (मदन्ती) तृप्त होती हुयी (ययाथ) प्राप्त हुयी है। सो तू (अत्र) यहां (इडः) विद्या के (सहस्रार्घम्) सहस्रों प्रकार पूजनीय (भागम्) भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कारी] के लिये (धेहि) दान कर ॥ ४७ ॥

भावार्थ—आत्मविश्वासी विज्ञानी लोग वेद विद्या प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं। सब मनुष्य विद्वानों के सत्संग से वेदविद्या ग्रहण करके धन आदि की वृद्धि करें ॥ ४७ ॥

मन्त्राः ४८—५२ ॥

पितरो देवताः ॥ ४८, ५१, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप्; ४९; अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, ५० निचृज्जगती ॥

पितृसन्तानकर्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरा-त्यायुः । परापरैता वसुविद् वो अस्त्वथा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८ ॥

पृथिवीम् । त्वा । पृथिव्याम् । आ । वेशयामि । देवः । नः । धाता । प्र । तिरातिं । आयुः ॥ परा-परैता । वसु-वित् । वः । अस्तु । अथ । मृताः । पितृषु । सम् । भवन्तु ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—[हे प्रजा ! स्त्री वा पुरुष] (पृथिवीम् त्वा) तुझ प्रख्यात को (पृथिव्याम्) प्रख्यात [विद्या] के भीतर (आ वेशयामि) मैं [माता पिता आचार्य आदि] प्रवेश कराता हूं, (देवः) प्रकाशस्वरूप (धाता) धाता [पोषक परमात्मा] (नः) हमारी (आयुः) आयु को (प्र तिराति) बढ़ावे । (परापरैता) अत्यन्त पराक्रम से चलने वाला पुरुष (वः) तुम्हारे लिये (वसुवित्) श्रेष्ठ पदार्थों का पाने वाला (अस्तु) होवे, (अथ) तब (मृताः) मरे हुये [निरुत्साही पुरुष] (पितृषु) पितरों [पालक विद्वानों] के बीच (सं भवन्तु) समर्थ होवें ॥ ४८ ॥

भावार्थ—माता पिता आचार्य आदि सन्तानों को उत्तम विद्या देवें जिस से वे परमेश्वर के भक्त होकर श्रेष्ठ जीवन बितावें और बड़े नेता और श्रेष्ठ धनी होवें और उनके देखने से निरुत्साही भी उत्साही होकर पितरों में स्थान पावें ॥ ४८ ॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद ऊपर आ चुका—अ० १२ । ३ । २२ ॥

४८—(पृथिवीम्) प्रख्याताम् (त्वा) त्वां प्रजां पुरुषं स्त्रियं वा (पृथिव्याम्) प्रख्यातायां विद्यायाम् (आवेशयामि) प्रवेशयामि (देवः) प्रकाशस्वरूपः (नः) अस्माकम् (धाता) पोषकः परमात्मा (प्र तिराति) तरतेर्लेट् । वर्धयतु (आयुः) जीवनम् (परापरैता) परा+परा+इण् गतौ—तृन् । अभ्यासे भूयां-समर्थं मन्यन्ते—निरु० १० । ४२ । अतिशयेन पराक्रमेण गन्ता (वसुवित्) विद्लृ लाभे—क्विप् । श्रेष्ठपदार्थानां लम्भयिता प्रापयिता (वः) युष्मभ्यम् (अथ) अथ (मृताः) त्यक्तप्राणाः । निरुत्साहिनः (पितृषु) पालकेषु विद्वत्सु (सं भवन्तु) संभूतियुक्ताः समर्था भवन्तु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः । अस्मा-
देतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥ ४९ ॥
आ । प्र । च्यवेथाम् । अप । तत् । मृजेथाम् । यत् । वाम् ।
अभि-भाः । अत्र । ऊचुः ॥ अस्मात् । आ । इतम् ।
अघ्न्यौ । तत् । वशीयः । दातुः । पितृषु । इह-भोजनौ ।
मम ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—[हे स्त्री पुरुषो !] तुम दोनों (आ) सब ओर (प्रच्यवेथाम्) आगे बढ़ो, और (तत्) उस [पाप] को (अप मृजेथाम्) शोध डालो, (यत्) जिस को (वाम्) तुम दोनों के (अभिभाः) सामने चमकती हुयी आपत्तियों ने (अत्र) यहां पर (ऊचुः) बताया है। (पितृषु) पितरों के बीच (दातुः मम) मुझ दानी के (इहभोजनौ) यहां पालन करने वाले (अघ्न्यौः) हिंसा न करने वाले तुम दोनों (अस्मात्) इस [पाप] से पृथक् होकर (तत्) उस [सुकर्म] को (आ) सब प्रकार (इतम्) प्राप्त हो [जो सुकर्म] (वशीयः) अधिक वश करने वाला है ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जिस पाप के कारण मनुष्य पर अनेक विपत्तियां आपड़ती हैं, स्त्री पुरुष पुरुषार्थ पूर्वक विद्वान् पितरों की आज्ञा मान कर उस पाप को हटाकर सुकर्म में प्रवृत्त हों, क्योंकि सुकर्म ही से मनुष्य पाप को वश में करता है ॥ ४९ ॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।

४९—(आ) समन्तात् (प्र च्यवेथाम्) च्युङ् गतौ । प्रकर्षेण गच्छतम् (तत्) पापम् (अप मृजेथाम्) अप मार्जयतम् । शोधयतम् (यत्) पापम् (वाम्) युवाभ्याम् (अभिभाः) अ० १ । २० । १ । अभि भा दीप्तौ—क्विप् । आभिमुख्येन दीप्यमाना विपत्तयः (अत्र) अस्मिन् स्थाने (ऊचुः) उदितवत्यः। प्रकटितवत्यः (अस्मात्) पापात् पृथग् भूत्वा (एतम्) आगच्छतम् (अघ्न्यौः) नञ् + हन हिंसागत्योः—यक्। अहिंसकौ (तत्) सुकर्म (वशीयः) वशितृ—ईयसुन्, तृचो लोपः। वशितृतरं सुकर्म (दातुः) दानशीलस्य (पितृषु) (इह-भोजनौ) इह अस्मिन् स्थाने भोजनं पोषणं ययोस्तौ (मम) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणायादिमान् ५०(२४

आ । इयम् । अगन् । दक्षिणा । भद्रतः । नः । अनेन । दत्ता । सु-दुघा । वयः-धाः ॥ यौवने । जीवान् । उप-पृञ्चती । जरा । पितृ-भ्यः । उपसंपरानयात् । इमान् ॥ ५० ॥ (२४)

भाषार्थ—(अनेन) इस [सुकर्म] करके (दत्ता) दी हुयी, (सुदुघा) बड़ी दुधैल [गौ के समान] (वयोधाः) बल देने वाली (इयम्) यह (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] (भद्रतः) उत्तमता से (नः) हम को (आ अगन्) प्राप्त हुयी है। (यौवने) यौवन [बल की पूरी अवस्था] में (इमान्) इन (जीवान्) जीवते हुये पुरुषों को (उपपृञ्चती) मिलती हुयी (जरा) बड़ाई (पितृभ्यः) पितरों के पास को (उपसंपराणयात्) प्रधानता से ठीक ठीक ले चले ॥ ५० ॥

भावार्थ—जैसे दुधैल गौ सेवा करने से दूध घी आदि पदार्थ देकर मनुष्यों को बलवान् करती है, वैसे ही मनुष्य सुकर्म के अनुष्ठान से दृढ़ गौरव पाकर बड़े लोगों में नाम पावें ॥ ५० ॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ५१

इदम् । पितृ-भ्यः । प्र । भरामि । बर्हिः । जीवम् । देवेभ्यः । उत्-तरम् । स्तृणामि ॥ तत् । आ । रोह । पुरुष । मेध्यः ।

५०—(इयम्) (आ अगन्) आगमत् (दक्षिणा) प्रतिष्ठा। गौरवम् (भद्रतः) कल्याणात् (नः) अस्मान् (अनेन) सुकर्मणा (दत्ता) (सुदुघा) बहुदोग्ध्री गौर्यथा (वयोधाः) बलदायिका (यौवने) पूर्णबलवत्त्वे (जीवान्) जीवनवतः पुरुषार्थिनः पुरुषान् (उपपृञ्चती) संयोजयन्ती (जरा) जरा स्तुति-र्जरतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० १०। ८ । प्रशंसा (पितृभ्यः) तादर्थ्ये चतुर्थी। पालकेभ्यः (उपसंपराणयात्) उप + सम् + परा + नयात् । प्राधान्येन सम्यग् नयतु प्रापयतु (इमान्) प्रसिद्धान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन् । प्रति । त्वा । जानन्तु । पितरः । परा-इतम् ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—(इदम्) यह (बर्हिः) उत्तम आसन (पितृभ्यः) पितरों के लिये (प्र भरामि) आगे धरता हूं, और (देवेभ्यः) श्रेष्ठ गुणों के लिये (जीवम्) इस जीव [अपने आत्मा] को (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (स्तृणामि) फैलाता हूं। (पुरुष) हे पुरुष ! (मेध्यः) पवित्र (भवन्) होता हुआ तू (तत्) उस [आसन] पर (आ रोह) ऊंचा हो, [तब] (पितरः) पितर लोग (त्वा) तुझे (परेतम्) प्रधानता को पहुंचा हुआ (प्रति) प्रत्यक्ष (जानन्तु) जानें ॥ ५१ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् जनों की प्रतिष्ठा करके और उनके समान शुद्धाचारी होकर अपने जीवन को श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित बनाव ॥ ५१ ॥

इदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापुरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२

आ । इदम् । बर्हिः । असदः । मेध्यः । अभूः । प्रति । त्वा । जानन्तु । पितरः । परा-इतम् ॥ यथा-पुरु । तन्वम् । सम् । भरस्व । गात्राणि । ते । ब्रह्मणा । कल्पयामि ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ असदः) तू बैठा है और (मेध्यः) पवित्र (अभूः) हुआ है, (पितरः) पितर लोग (त्वा) तुझे (परेतम्) प्रधानता को पहुंचा हुआ (प्रति) प्रत्यक्ष

५१—(इदम्) (पितृभ्यः) पित्रादिमान्येभ्यः (प्र) प्रकर्षेण (भरामि) धरामि (बर्हिः) उत्तमासनम् (जीवम्) स्वात्मानम् (देवभ्यः) दिव्यगुणानां प्राप्तये (उत्तरम्) उत्कृष्टतरम् (स्तृणामि) विस्तारयामि (तत्) आसनम् (आरोह) आतिष्ठ (पुरुष) (मेध्यः) पवित्रः (भवन्) सन् (प्रति) प्रत्यक्षेण (त्वा) त्वाम् (जानन्तु) (पितरः) (परेतम्) परा प्राधान्यं गतं प्राप्तम् ॥

५२—(इदम्) दृश्यमानम् (बर्हिः) उच्चासनम् (आ असदः) आरूढवानसि (मेध्यः) पवित्रः (अभूः) (प्रति) प्रत्यक्षम् (त्वा) त्वाम् (जानन्तु) विदन्तु (पितरः) (परेतम्) परा प्राधान्यमितं प्राप्तम् (यथापुरु) पुरौ पुरौ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जानन्तु) जानें । (यथापरु) गांठ गांठ में (तन्वम्) उपकार शक्ति को (सम् भरस्व) भर दे, (ते) तेरे (गात्राणि) गातों को (ब्रह्मणा) वेदद्वारा (कल्पयामि) समर्थ करता हूं ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्या आदि उत्तम गुणों से शुद्ध पवित्र हो जावे, विद्वान् उस की प्रतिष्ठा करें और वह वेदज्ञान से समर्थ होकर अपना सब सामर्थ्य परोपकार में लगावे ॥ ५२ ॥

मन्त्रौ ५३, ५४ ॥

परमेश्वरो देवता ॥ ५३ आर्षी पङ्क्तिः ; ५४ निचृत् पङ्क्तिः ॥

परमात्मभक्तिफलोपदेशः—परमात्मा की भक्ति के फल का उपदेश ॥

पूर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो नु आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥

पूर्णः । राजा । अपि-धानम् । चरूणाम् । ऊर्जः । बलम् । सहः । ओजः । नुः । आ । अगन् ॥ आयुः । जीवेभ्यः । वि-दधत् । दीर्घायु-त्वाय । शत-शारदाय ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—(पूर्णः) पालन करने वाला (राजा) राजा [सर्वशासक परमात्मा] (चरूणाम्) पात्र [समान लोकों] का (अपिधानम्) ढकन है, [उस से] (ऊर्जः) पराक्रम, (बलम्) बल, (सहः) उत्साह और (ओजः) प्रभाव [यह चार] (नः) हम को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है । वह (जीवेभ्यः)

ग्रन्थौ ग्रन्थौ (तन्वम्) तनूम् । उपकारशक्तिम् (सम्) सम्यक् (भरस्व) धारय (गात्राणि) अङ्गानि (ते) तव (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (कल्पयामि) समर्थयामि ॥

५३—(पूर्णः) धापृवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । पॄ पालनपूरणयोः—न । पालकः (राजा) सर्वशासकः परमात्मा (अपिधानम्) आच्छादनसाधनं यथा (चरूणाम्) पात्ररूपाणां लोकानाम् (ऊर्जः) ऊर्ज बलप्राणनयोः—पचाद्यच् । पराक्रमः (बलम्) सामर्थ्यम् (सहः) उत्साहः (ओजः) प्रभावः—इति धर्मार्थकाममोक्षचतुर्वर्गः (नः) अस्मान् (आ अगन्) आगमत् । प्राप्तवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवते हुये पुरुषों को (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (आयुः) जीवन (विदधत्) विशेष कर के देवे ॥ ५३ ॥

भावार्थ—सर्वनियन्ता सर्वव्यापक जगदीश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार प्रकार के बल देता है, और वही जीवते हुये पुरुषार्थी का जीवन दीर्घ करता है ॥ ५३ ॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ५४

ऊर्जः । भागः । यः । इमम् । जजान । अश्मा । अन्नानाम् । आधि-पत्यम् । जगाम ॥ तम् । अर्चत । विश्व-मित्राः । हविः-भिः । सः । नः । यमः । प्र-तरम् । जीवसे । धात् ॥५४॥

भाषार्थ—(ऊर्जः) पराक्रम के (यः) जिस (भागः) भाग करने वाले [परमेश्वर] ने (इमम्) इस [संसार] को (जजान) उत्पन्न किया है और (अश्मा) व्यापक होकर (अन्नानाम्) अन्नों का (आधिपत्यम्) स्वामिपन (जगाम) पाया है। (तम्) उस [परमात्मा] को (विश्वमित्राः) सब के मित्र तुम (हविर्भिः) आत्मदानों से (अर्चत) पूजो, (सः) वह (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (नः) हमें (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (जीवसे) जीने के लिये (धात्) धारण करे ॥ ५४ ॥

भावार्थ—जगत् स्रष्टा परमेश्वर सब प्राणियों को उन के पुरुषार्थ के अनुसार सामर्थ्य देकर अन्न आदि देता है, इस लिये मनुष्य अधिक अधिक

(आयुः) जीवनम् (जीवेभ्यः) जीवितेभ्यः पुरुषार्थिभ्यः (विदधत्) दधातेर्लेटि, अडागमः । विशेषेण दध्यात् । प्रयच्छेत् (दीर्घायुत्वाय) अ० १ । ३५ । १ । चिरकालजीवनाय (शतशारदाय) अ० १ । ३५ । १ । शतसंवत्सरयुक्ताय ॥

५४—(ऊर्जः) ऊर्ज बलप्राणनयोः—क्विप् । पराक्रमस्य (भागः) संभक्ता (यः) परमेश्वरः (इमम्) दृश्यमानं संसारम् (जजान) जनयामास (अश्मा) अशू व्याप्तौ—मनिन् । व्यापकः परमात्मा (अन्नानाम्) भोजनानाम् (आधिपत्यम्) स्वामित्वम् (जगाम) प्राप । अन्यत् पूर्ववत्—अ० १८ । ३ । ६३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थ करके अपने जीवन को अधिक अधिक ऊंचा बनावें ॥ ५४ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आ चुका है—अ० १८ । ३ । ६३ ॥

मन्त्राः ५५—५७ ॥

जीवो देवता । ५५, ५७ अनुष्टुप् ; ५६ विराडनुष्टुप् ॥

मनुष्याय वृद्धिकरणोपदेशः—मनुष्य को वृद्धि करने का उपदेश ॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूर्योऽसत ॥ ५५ ॥

यथा । यमाय । हर्म्यम् । अवपन् । पञ्च । मानवाः ॥
एव । वपामि । हर्म्यम् । यथा । मे । भूरयः । असत ॥५५ ॥

भाषार्थ—(यथा) जैसे (यमाय) न्यायकारी राजा के लिये (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्वों] से सम्बन्ध वाले (मानवाः) मनुष्यों ने (हर्म्यम्) स्वीकार करने योग्य राजमहल (अवपन्) फैलाकर बनाया है । (एव) वैसे ही मैं (हर्म्यम्) सुन्दर राजमहल (वपामि) फैलाकर बनाता हूं, (यथा) जिस से (मे) मेरे लिये (भूरयः) बहुत से (असत) तुम होओ ॥ ५५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को बड़े पुरुषों के समान अच्छे अच्छे शिल्पियों द्वारा दृढ़ सुखप्रद गढ़, विद्यालय, न्यायालय, आदि घर बनवाकर सब की यथायोग्य रक्षा करनी चाहिये ॥ ५५ ॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पितार्बिभः पुरा ।

५५—(यथा) सादृश्ये (यमाय) न्यायकारिणे शासकाय (हर्म्यम्) अघ्न्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । हृञ् स्वीकारे—यक्, मुडागमः । हर्म्यं गृहनाम-निघ० ३ । ४ । स्वीकरणीयं महिलायोग्यं गृहम् । धनिनां गृहम् (अवपन्) डुवप बीजसन्ताने । बीजवद् विस्तार्य निर्मितवन्तः (पञ्च मानवाः) अ० १२ । १ । १५ । पृथिव्यादिपञ्चभूतसंबन्धिनो मनुष्याः (एव) एवम् (वपामि) संपादयामि । निर्मिमे (हर्म्यम्) राजगृहम् (यथा) येन प्रकारेण (मे) मह्यम् (भूरयः) बहवः (असत) अस्तेर्लेटि, अडागमः । यूयं स्यात ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निमृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

इदम् । हिरण्ययम् । बिभृहि । यत् । ते । पिता । अबिभः । पुरा ॥ स्वः-गम् । यतः । पितुः । हस्तम् । निः । मृड्ढि । दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (इदम्) इस (हिरण्ययम्) सुवर्ण को (बिभृहि) तू धारण कर, (यत्) जैसे (ते) तेरे (पिता) पिता ने (पुरा) पहिले (अबिभः) धारण किया है। और (स्वर्गम्) सुख देने वाले पद को (यतः) प्राप्त होते हुये (पितुः) पिता के (दक्षिणम्) दाहिने [वा उदार और कार्यकुशल] (हस्तम्) हाथ को (नि) निश्चय करके (मृड्ढि) शोभायमन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थ—मनुष्य बड़े पुरुषों के समान सुवर्ण आदि धन प्राप्त करें और उपकारी कार्यों में चतुर होने के लिये युवराज बनकर बड़े लोगों का हाथ बटावें अर्थात् सहाय करें ॥ ५६ ॥

ये चं जीवा ये चं मृता ये जाता ये चं युज्रियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥

ये । च । जीवाः । ये । च । मृताः । ये । जाताः । ये । च । युज्रियाः ॥ तेभ्यः । घृतस्य । कुल्या । एतु । मधुधारा । वि-उन्दती ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (जीवाः) जीवते हुये [उत्साही], (च) और

५६—(इदम्) उपस्थितम् (हिरण्ययम्) सुवर्णम् (बिभृहि) धारय (यत्) यथा (ते) तव (पिता) जनकः (अबिभः) भृतवान् । धारितवान् (पुरा) पूर्वम् (स्वर्गम्) सुखप्रापकं पदम् (यतः) इण गतौ—शतृ । गच्छतः । प्राप्नुवतः (पितुः) जनकस्य (हस्तम्) करम् (निः) निश्चयेन (मृड्ढि) अ० ११ । १ । २६ । मृजू शौचालङ्कारयोः—लोट् , अदादिः । मार्जय । अलङ्कुरु (दक्षिणम्) असव्यम् ॥ उदारम् । कार्यकुशलम् ॥

५७—(ये) पुरुषाः (च) (जीवाः) जीवन्तः । उत्साहिनः (ये) (च)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ये) जो (मृताः) मरे हुये [निरुत्साही], (च) और (ये) जो (जाताः) उत्पन्न हुये [बालक] (च) और (ये) जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य [वृद्ध] पुरुष हैं। (तेभ्यः) उन के लिये (घृतस्य) जल की (कुल्या) कुल्या [कृत्रिम नाली] (मधुधारा) मधुर धाराओं वाली, (व्युन्दती) उमड़ती हुयी (एतु) चले ॥ ५७ ॥

भावार्थ—उत्साही और निरुत्साही, बाल और वृद्ध सब पुरुषार्थ करके परस्पर आनन्द भोगें, जैसे लोग मीठे जल की नालियों से खेत, वाटिका आदि सींचकर अन्न फूल फल आदि प्राप्तकर सुखी होते हैं ॥ ५७ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—अ० १८। ३। ७२ ॥

मन्त्राः ५८—६० ॥

परमेश्वरो देवता ॥ ५८ जगती ; ५९ अनुष्टुप् ; ६० आर्षी त्रिष्टुप् ॥

ईश्वरोपासनोपदेशः—ईश्वर की उपासना का उपदेश ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ ५८ ॥

वृषा । मतीनाम् । पवते । वि-चक्षणः । सूरः । अह्नाम् । प्र-तरीता । उषसाम् । दिवः ॥ प्राणः । सिन्धूनाम् । कलशान् । अचिक्रदत् । इन्द्रस्य । हार्दिम् । आ-विशन् । मनीषया ।५८।

भाषार्थ—(वृषा) परम ऐश्वर्यवान्, (विचक्षणः) विशेष दृष्टि वाला परमेश्वर (मतीनाम्) बुद्धियों का (पवते) पवित्रकारी है, [जैसे] (सूरः) सूर्य (दिवः) [अपने] प्रकाश से (अह्नाम्) दिनों का और (उषसाम्) प्रभात

(मृताः) त्यक्तप्राणाः। निरुत्साहिनः (ये) (जाताः) उत्पन्ना बालकाः (यज्ञियाः) पूजार्हाः। वृद्धाः। अन्यत् पूर्ववत्—अ० १८। ३। ७२ ॥

५८—(वृषा) वृषु सेचने परमैश्वर्ये च-कनिन्। परमैश्वर्यवान्। इन्द्रः। परमेश्वरः (मतीनाम्) बुद्धीनाम् (पवते) शोधको भवति (विचक्षणः) विशेषेण द्रष्टा (सूरः) प्रेरकः सूर्यः (अह्नाम्) दिनानाम् (प्रतरीता)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेलाओं का (प्रतरीता) फैलाने वाला है। (सिन्धूनाम्) नदियों के (प्राणः) प्राण [चेष्टा देने वाले उस परमेश्वर] ने (मनीषया) बुद्धिमत्ता से (इन्द्रस्य) सूर्य के (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति में (आविशन्) प्रवेश करके (कलशान्) कलसों [घड़ों समान मेघों] को (अचिक्रदत्) गुंजाया है ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे ही परमात्मा अपने ज्ञान से आज्ञाकारी भक्तों की बुद्धियों को निर्मल करता है, वही परमेश्वर सूर्य के भीतर आकर्षण गुण देकर मेघों में गर्जन उत्पन्न करता और जल बरसाता है ॥ ५८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—९। ८६। १६ और सामवेद में पू० ६। ७। ६ तथा उ० २। १। १७ ॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥

त्वेषः । ते । धूमः । ऊर्णोतु । दिवि । सन् । शुक्रः । आ-ततः ॥
सूरः । न । हि । द्युता । त्वम् । कृपा । पावक । रोचसे ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (ते) तेरा (सन्) श्रेष्ठ, (शुक्रः) निर्मल (आततः) सब ओर फैला हुआ (त्वेषः) प्रकाश [हम को] (दिवि) आकाश में (धूमः) भाप [जैसे, वैसे] (ऊर्णोतु) ढक लेवे। (पावक) हे शोधक ! [परमेश्वर] (सूरः न) जैसे सूर्य (द्युता) अपने प्रकाश से [वैसे] (त्वम्) तू

तरतेस्तृच्। वृतो वा। पा० ७। २। ३८। इति इडागमस्य दीर्घः। प्रवर्धयिता (दिवः) स्वप्रकाशात् (प्राणः) प्राणयिता। चेष्टयिता (सिन्धूनाम्) नदीनाम् (कलशान्) कलशसदृशान् मेघान् (अचिक्रदत्) क्रद आह्वाननादनयोः—णिचि लुङि रूपम्। प्रतिध्वनिं कारितवान् (इन्द्रस्य) सूर्यस्य) (हार्दिम्) अ० ६। ८९। १। हृद्—इञ्। हार्दिकां शक्तिम् (आविशन्) प्रविशन् (मनीषया) बुद्धिमत्तया ॥

५९—(त्वेषः) त्विष दीप्तौ—पचाद्यच्। प्रकाशः (ते) तव (धूमः) वाष्पो यथा (ऊर्णोतु) आच्छादयतु (दिवि) आकाशे (सन्) श्रेष्ठः (शुक्रः) शुक्लः। शुद्धः (आततः) समन्ताद् विस्तीर्णः (सूरः) प्रेरकः सूर्यः (न) यथा (हि) निश्चयेन (द्युता) दीप्त्या (त्वम्) (कृपा) कृपू सामर्थ्ये—क्विप्। कृपया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हि) ही (कृपा) अपनी कृपा से (रोचसे) चमकता है ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जैसे मेघ के कण आकाश में व्यापक रहते हैं, वैसे ही परमात्मा को हम लोग सर्वत्र व्यापक साक्षात् करें, वह कृपालु जगदीश्वर सूर्य समान सब में प्रकाशमान है ॥ ५६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । २ । ६ और सामवेद में पू० १ । ६ । ३ ॥

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः । मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥ (२५)

प्र । वै । एति । इन्दुः । इन्द्रस्य । निः-कृतिम् । सखा । सख्युः । न । प्र । मिनाति । सम्-गिरः ॥ मर्यः-इव । योषाः । सम् । अर्षसे । सोमः । कलशे । शत-यामना । पथा ॥ ६० ॥ (२५)

भाषार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् जीवात्मा (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर की (निष्कृतिम्) निस्तार शक्ति को (वै) निश्चय करके (प्र) आगे को (एति) पाता जाता है, (सखा) सखा [परमात्मा का मित्र जीव] (सख्युः) सखा [अपने मित्र जगदीश्वर] की (संगिरः) उचित्त वाणियों को (न) नहीं (प्र मिनाति) तोड़ देता है । (मर्यः इव) जैसे मनुष्य (योषाः) अपनी स्त्री को [प्रीति से वैसे] (सोमः) प्रेरक आत्मा तू (कलशे) कलस [घट रूप हृदय] के भीतर (शतयामना) सैकड़ो गति वाले (पथा) मार्ग से

दयया (पावक) हे शोधक परमात्मन् (रोचसे) दीप्यसे ॥

६०— (प्र) प्रकर्षेण (वै) निश्चयेन (एति) प्राप्नोति (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् जीवात्मा (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः परमेश्वरस्य (निष्कृतिम्) निस्तारशक्तिम् । निर्मुक्तिम् (सखा) सुहृद्वज्जीवात्मा (सख्युः) सर्वमित्रस्य परमात्मनः (न) निषेधे (प्र) (मिनाति) मीञ् हिंसायाम् । मीनातेर्निगमे । पा० ७ । ३ । ८१ । इति ह्रस्वत्वम् । हिनस्ति (संगिरः) गॄ विज्ञापने–क्विप् । संगरान् । समीचीनवचननानि (मर्यः) मनुष्यः (इव) यथा (योषाः) सुपां सुपो भवन्ति । वा० पा० ७ । १ । ३६ । एकवचनस्य बहुवचनम् । योषाम् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परमात्मा को] (सम्) यथाविधि (अर्षसे) प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है, वही पापों से छूटकर मोक्ष सुख भोगता है, और जैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम की सिद्धि के लिये परस्पर हार्दिक प्रीति करते हैं, वैसे ही योगी पुरुष अनेक प्रकार से अपने हृदय में परमात्मा का दर्शन करके उसके साथ प्रीति में मग्न हो जाता है ॥ ६० ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—९ । ८६ । १६ और सामवेद में है—पू० ६ । ७ । ४ तथा उ० ४ । २ । ७ ॥

मन्त्राः ६१—६८ ॥

पितरो देवताः ॥ ६१ अनुष्टुप्, ६२ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ६३ स्वराडार्षी पङ्क्तिः; ६४, ६५ त्रिष्टुप्; ६६ भुरिग् गायत्री; ६७ निचृदार्च्यनुष्टुप्; ६८ आसुर्यनुष्टुप् ॥

पितृसत्कारोपदेशः—पितरों के सत्कार का उपदेश ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

अक्षन् । अमीमदन्त । हि । अव । प्रियान् । अधुषत ॥
अस्तोषत । स्व-भानवः । विप्राः । यविष्ठाः । ईमहे ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—(स्वभानवः) अपना ही प्रकाश रखने वाले, (विप्राः) बुद्धिमान्, (यविष्ठाः) महाबली [पितरों] ने (अक्षन्) भोजन खाया है और

सेवनीयां स्त्रियम् (सम्) सम्यक् (अर्षसे) ऋषी गतौ, भौवादिकः । प्राप्नोषि (सोमः) सोमः सूर्यः प्रसवनात्, सोम आत्माऽप्येतस्मादेव—निरु० १४ । १२ । प्रेरक जीवात्मा (कलशे) घटरूपे हृदये (शतयामना) अल्लोपोऽनः । पा० ६ । ४ । १३४ । इति प्राप्तस्य अकारलोपस्याभावश्छान्दसः । शतयाम्ना । बहुगतियुक्तेन (पथा) मार्गेण ॥

६१—(अक्षन्) अद भक्षणे—लुङ्, च्लेर्लादेशः । अघसन् । भोगान् भक्षितवन्तः (अमीमदन्त) मद तृप्तियोगे, चुरादेरात्मनेपदिनश्चङ्रूपम् । आनन्दं प्राप्तवन्तः (हि) अवधारणे (अव) निश्चयेन (प्रियान्) प्रीतिकरान् बान्धवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अमीमदन्त) आनन्द पाया है, उन्होंने (हि) ही (प्रियान्) अपने प्रिय [बान्धवों] को (अव) निश्चय करके (अधूषत) शोभायमान किया है और (अस्तोषत) बड़ाई योग्य बनाया है, (ईमहे) [उन से] हम विनय करते हैं ॥ ६१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विनय करके विद्यावृद्ध, बलवृद्ध और वयोवृद्ध पुरुषों का सदा सत्कार करना चाहिये, जिस से वे प्रसन्न होकर उत्तम उत्तम शिक्षा दिया करें ॥ ६१ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ८२ । २ । यजुर्वेद में ३ । ५१ और सामवेद में—पू० ५ । ३ । ७ ॥

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः । आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ६२ ॥

आ । यात । पितरः । सोम्यासः । गम्भीरैः । पथि-भिः । पितृ-यानैः ॥ आयुः । अस्मभ्यम् । दधतः । प्र-जाम् । च । रायः । च । पोषैः । अभि । नः । सचध्वम् ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि मान्यो] (सोम्यासः) प्रियदर्शन तुम (गम्भीरैः) गम्भीर [शान्त], (पितृयाणैः) पितरों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आ यात) आओ । (च) और (अस्मभ्यम्) हम को (आयुः) जीवन (च) और (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक

(अधूषत) धूष कान्तिकरणे—लङ् । तिङां तिङो भवन्ति । वा० पा० ७ । १ । ३९ । बहुवचनस्यैकवचनम् । अधूषन्त । शोभायमानान् कृतवन्तः (अस्तोषत) स्तुत्यान् कृतवन्तः (स्वभानवः) स्वकीया भानुर्दीप्तिः प्रकाशो येषां ते (विप्राः) मेधाविनः (यविष्ठाः) युवन्—इष्ठन् । स्थूलदूरयुवह्रस्व० । पा० ६ । ४ । १५६ । इति वकारस्य लोप उकारस्य च गुणः । अतिशयेन युवानः । निसर्ग-बलिनः (ईमहे) याच्ञाकर्मा—निघ० ३ । १९ । याचामहे । प्रार्थयामहे । विनयामः ॥

६२—(आ यात) आगच्छत (पितरः) हे पालका ज्ञानिनः (सोम्यासः) प्रियदर्शना यूयम् (गम्भीरैः) गभीरगम्भीरौ । उ० ४ । ३५ । गम्लृ गतौ—ईरन्, नुगागमः । शान्तैः । गहनैः (पथिभिः) मार्गैः (पितृयाणैः) पितृ-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि] (ददतः) देते हुये तुम (रायः) धन की (पोषैः) वृद्धियों से (नः) हमें (अभि) सब ओर (सचध्वम्) सींचो ॥ ६२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शान्तचित्त, शान्ति के मार्ग पर चलने वाले विद्वान् महात्माओं का सत्संग करते रहते हैं, वह उत्तम जीवन और श्रेष्ठ सन्तान आदि प्रजा पाकर बहुत धनी होते हैं ॥ ६२ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से आ चुका है—अ० ६ । ४ । २२ ॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः । अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३॥

परा । यात । पितरः । सोम्यासः । गम्भीरैः । पथि-भिः । पूः-यानैः ॥ अध । मासि । पुनः । आ । यात । नः । गृहान् । हविः । अत्तुम् । सु-प्रजसः । सु-वीराः ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि मान्यो] (सोम्यासः) प्रियदर्शन तुम (गम्भीरैः) गम्भीर [शान्त], (पूर्याणैः) नगरों को जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से (परा) प्रधानता के साथ (यात) चलो । (अध) और (पुनः) अवश्य (मासि) महीने महीने (सुप्रजसः) उत्तम प्रजाओं वाले और (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले तुम (नः) हमारे (गृहान्) घरों में (हविः) भोजन (अत्तुम्) खाने के लिये (आ यात) आओ ॥ ६३ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग विद्वान् पितर महात्माओं के दर्शन से सदा लाभ उठावें और दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि आदि नियत समय पर तो अवश्य

भिर्गमनयोग्यैः (ददतः) प्रयच्छन्तः (सचध्वम्) सिञ्चत । अन्यद् गतम् अ० ६ । ४ । २२ ॥

६३— (परा) प्राधान्येन । अन्यत् पूर्ववत्-म० ६२ (पूर्याणै) अ० १८ । १ । ५४ । पुरो नगरान् गच्छद्भिः (अध) अथ (मासि) प्रतिमासं दर्शेष्टौ पूर्णमासेष्टौ च (पुनः) अवश्यम् (आयात) आगच्छत (नः) अस्माकम् (गृहान्) निवासान् (हविः) ग्राह्यं भोजनम् (अत्तुम्) भक्षयितुम् (सुप्रजसः) उत्तमप्रजायुक्ताः (सुवीराः) श्रेष्ठवीरयुक्ताः ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन के सत्संग से आनन्द पावें ॥ ६३ ॥

इस मन्त्र के प्रथम पाद को मिलाओ—अ० १८ । ३ । १४ ॥

यद् वो॑ अ॒ग्निर॑जहा॒देक॑मङ्गं पितृलो॒कं ग॑मयं जातवेदाः । तद् व॑ एतत् पुनरा प्या॑यया॒मि सा॒ङ्गाः स्व॒र्गे पि॒तरो॑ मादयध्वम्॥६४॥

यत् । वः । अ॒ग्निः । अ॒ज॒हात् । एक॑म् । अ॒ङ्ग॒म् । पि॒त-लो॒कम् । ग॒म॒य॒न् । जा॒त-वे॑दाः ॥ तत् । वः । ए॒त॒त् । पु॒नः । आ । प्या॒य॒या॒मि॒ । सु-अ॒ङ्गाः । स्व॒ः-गे । पि॒तरः॑ । मा॒द॒य॒ध्व॒म् ॥६४॥

भाषार्थ—[हे पितरो !] (वः) तुम्हारे (यत्) जिस (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग को (पितृलोकम्) पितृ समाज में [मनुष्यों को] (गमयन्) ले चलते हुये, (जातवेदाः) धनों के उत्पन्न करने वाले (अग्निः) अग्नि [शारीरिक पराक्रम] ने (अजहात्) त्याग दिया है । (वः) तुम्हारे (तत्) उस [अङ्ग] को (एतत्) अब (पुनः) निश्चय करके (आ) सब प्रकार (प्यायया॒मि) मैं पूरा करता हूं, (साङ्गाः) पूरे अङ्ग वाले (पितरः) पालक ज्ञानी होकर तुम (स्वर्गे) सुख पहुंचाने वाले पद पर (मादयध्वम्) आनन्द पाओ ॥ ६४ ॥

भावार्थ—यदि विद्वान् पिता आदि बड़ों के अङ्ग में थकान आदि से कुछ हानि होवे, गृहस्थ सुसन्तान आदि उसका प्रतिकार करके उन्हें प्रसन्न करें ॥ ६४ ॥

अभू॑द् दू॒तः प्र॑हि॒तो जा॒तवे॑दाः सा॒यं न्यह्नो॑ उपवन्द्यो नृ॒भिः । प्रादाः॑ पितृभ्यः स्वधया ते अ॑क्षन्नु॒द्धि त्वं दे॑व प्रयता ह॒वींषि॑ ६५

६४— (यत्) (वः) युष्माकम् (अग्निः) शारीरिकपराक्रमः (अजहात्) ओ हाक् त्यागे । त्यक्तवान् (अङ्गम्) अवयवम् (पितृलोकम्) विदुषां समाजम् (गमयन्) प्रापयन् (जातवेदाः) जातान्युत्पन्नानि वेदांसि धनानि यस्मात्सः (तत्) अङ्गम् (वः) युष्माकम् (एतत्) इदानीम् (पुनः) निश्चयेन (आ) समन्तात् (प्यायया॒मि) वर्धयामि । पूरयामि (साङ्गाः) सम्पूर्णावयवाः (स्वर्गे) सुखप्रापके पदे (पितरः) (मादयध्वम्) मादध्वम् ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभूत् । दूतः । प्र-हितः । जात-वेदाः । सायम् । नि-अह्ने । उप-वन्द्यः । नृ-भिः ॥ प्र । अदाः । पितृ-भ्यः । स्वधया । ते । अक्षन् । अद्धि । त्वम् । देव । प्र-यता । हवींषि ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—(दूतः) चलने वाला [उद्योगी] (प्रहितः) बड़ा हितकारी (जातवेदाः) महाज्ञानी [वा महाधनी] पुरुष (सायम्) सायंकाल में और (न्यह्ने) प्रातः काल में (नृभिः) नेताओं करके (उपवन्द्यः) बहुत प्रशंसनीय (अभूत्) हुआ है। [इस लिये] (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (प्रयता) शुद्ध [वा प्रयत्न से सिद्ध किये] (हवींषि) ग्रहण करने योग्य भोजन (प्र) अच्छे प्रकार (अदाः) तू ने दिये हैं,(ते) उन्होंने (अक्षन्) खाये हैं,(देव) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू (अद्धि) खा। ६५

भावार्थ—उद्योगी, हितकारी विद्वान् लोग सदा से बड़े लोगों के माननीय हुये हैं, इस लिये मनुष्य भोजन आदि से विद्वानों का सत्कार करके अपनी रक्षा करें और कीर्ति बढ़ावें ॥ ६५ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आचुका है—अ० १८ । ३ । ४२ । और पूर्वार्द्ध का मिलान करो—ऋग्० ४ । ५४ । १ ॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः ।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

असौ । है । इह । ते । मनः । ककुत्सलम्-इव । जामयः ॥
अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

६५—(अभूत्) (दूतः) दुतनिभ्यां दीर्घश्च । उ० ३ । ९० । दु गतौ—क्त । गमनशीलः । उद्योगी (प्रहितः) प्रकृष्टो हितकारी (जातवेदाः) उत्पन्नज्ञानः । बहुधनः (सायम्) सूर्यास्ते (न्यह्ने) निगते निश्चयेन प्राप्ते दिने । प्रातःकाले (उपवन्द्यः) महाप्रशंसनीयः (नृभिः) नेतृभिः (प्र) प्रकर्षेण (अदाः) दत्तवानसि (पितृभ्यः) (स्वधया) स्वधारणशक्त्या (ते) पितरः (अक्षन्) अघसन् । अभक्षयन् (अद्धि) भक्षय (त्वम्) (देव) हे विद्वन् (प्रयता) शुद्धानि । प्रयत्नेन साधितानि (हवींषि) ग्राह्याणि भोजनानि ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (असौ) वह [पिता आदि] (है) निश्चय करके (इह) यहां पर [हम में] (ते) तेरे (मनः) मन को [ढकता है], (इव) जैसे (जामयः) कुल स्त्रियां (ककुत्सलम्) सुख का शब्द सुनाने वाले को [अर्थात् लड़ैते बालक को वस्त्र से ढकती हैं]। (भूमे) हे भूमि तुल्य [सर्वाधार विद्वान् !] (एनम्) इस [पिता आदि जन] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) तू ढक [सुख दे] ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जैसे माता पिता आदि पितर लोग छोटे प्रिय सन्तान की वस्त्र आदि से रक्षा करते और ज्ञान देते हैं, वैसे ही वे लोग उन पिता आदि की यथोचित सेवा करें ॥ ६६ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद आ चुका है—अ० १८ । २ । ५०, ५१, तथा १८ । ३ । ५० और इस मन्त्र का मिलान भी उन मन्त्रों से करो ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥

शुम्भन्ताम् । लोकाः । पितृ-सदनाः । पितृ-सदने । त्वा । लोके । आ । सादयामि ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—(पितृषदनाः) पितरों [ज्ञानियों] की बैठक वाले (लोकाः) समाज (शुम्भन्ताम्) शोभायमान होवें, (पितृषदने) पितरों की बैठक वाले (लोके) समाज में (त्वा) तुझे (आ सादयामि) मैं बिठालता हूं ॥ ६७ ॥

भावार्थ—ज्ञानी लोग ही विद्वानों के समाजों में शोभा पाते हैं, इसलिये

६६—(असौ) पित्रादिः (है) निश्चयेन (इह) अत्र । अस्मासु (ते) तव (मनः) अन्तःकरणम् (ककुत्सलम्) क+कु कुङ् वा शब्दे—क्विप्, तुक्+षल गतौ—अच् । कस्य सुखस्य शब्दप्रापकं प्रियवाचं सन्तानम् (इव) यथा (जामयः) कुलस्त्रियः (अभि) सर्वतः (एनम्) पित्रादिकम् (भूमे) हे भूमितुल्य सर्वाधार विद्वन् (ऊर्णुहि) आच्छादय । सुखय ॥

६७—(शुम्भन्ताम्) शुम्भ शोभायाम् । शोभायमाना भवन्तु (लोकाः) समाजाः (पितृषदनाः) पितॄणां सदनयुक्ताः (पितृषदने) पितॄणां सदनयुक्ते (त्वा) त्वाम् (लोके) समाजे (आ) समन्तात् (सादयामि) स्थापयामि ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता पिता आदि प्रयत्न करें कि उन के सन्तान भी विद्वानों में प्रतिष्ठा पावें ॥ ६७ ॥

इस मन्त्र का पहिला पाद कुछ भेद से यजुर्वेद में है—५ । २६ ॥

ये ३ स्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

ये । अस्माकम् । पितरः । तेषाम् । बर्हिः । असि ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—(ये) जो पुरुष (अस्माकम्) हमारे बीच (पितरः) पितर [ज्ञानी पुरुष] हैं, (तेषाम्) उनका [यहां] (बर्हिः) उत्तम आसन (असि) है ॥ ६८ ॥

भावार्थ—मनुष्य ध्यान रक्खें कि सर्वहितकारी ज्ञानी पुरुष सदा प्रतिष्ठा पावें ॥ ६८ ॥

मन्त्रौ ६९, ७० ॥

वरुणो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ।

ईश्वरनियमोपदेशः—ईश्वर के नियमों का उपदेश ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ६९ ॥

उत् । उत्-तमम् । वरुण । पाशम् । अस्मत् । अव । अध-मम् । वि । मध्यमम् । श्रथय ॥ अथ । वयम् । आदित्य । व्रते । तव । अनागसः । अदितये । स्याम ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—(वरुण) हे स्वीकार करने योग्य ईश्वर ! (अस्मत्) हम से (उत्तमम्) ऊंचे वाले (पाशम्) पाश को (उत्) ऊपर से, (अधमम्) नीचे वाले को (अव) नीचे से, और (मध्यमम्) बीच वाले को (वि) विविध प्रकार से (श्रथय) खोल दे । (आदित्य) हे सर्वत्र प्रकाशमान वा अखण्डनीय जगदीश्वर ! (अथ) फिर (वयम्) हम लोग (ते) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में (अदितये) अदीना पृथिवी के [राज्य के] लिये (अनागसः)

६८—(ये) पुरुषाः (अस्माकम्) अस्माकं मध्ये (पितरः) पालका ज्ञानिनः (तेषाम्) पितॄणाम् (बर्हिः) उत्तमासनम् (असि) प्रथमस्य मध्यमपुरुषः । अस्ति । भवति ॥

६९—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ७ । ८३ । ३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरपराधी (स्याम) होवें ॥ ६९ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन कर के धर्माचरण से भूत, भविष्यत्, और वर्तमान क्लेशों को अलग कर के सदा सुखी रहें ॥ ६९ ॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ७ । ८३ । ३ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्चु सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे । अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥ ७० ॥ (२६)

प्र । अस्मत् । पाशान् । वरुण । मुञ्चु । सर्वान् । यैः । सम्-आमे । बध्यते । यैः । वि-आमे ॥ अध । जीवेम । शरदम् । शतानि । त्वया । राजन् । गुपिताः । रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

भाषार्थ—(वरुण) हे दुःख निवारक परमेश्वर! (अस्मत्) हम से (सर्वान्) सब (पाशान्) फन्दों को (प्र मुञ्च) खोल दे, (यैः) जिन [फन्दों] से (समामे) छूत रोग में, और (यैः) जिन से (व्यामे) विशेष रोग में (बध्यते) [प्राणी] बांधा जाता है। (अध) तब (राजन्) हे राजन्! [परमेश्वर] (त्वया) तुझ कर के (गुपिताः) रक्षा किये गये और (रक्षमाणाः) [दूसरों की] रक्षा करते हुये हम (शतानि) सैकड़ो (शरदम्) बरसों तक (जीवेम) जीवें ॥ ७० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो कोई रोग परस्पर छूत से वा कुपथ्य आदि दोष से हो जावें, परमेश्वर की उपासना करते हुये वैद्यराजों की सम्मति से उन रोगों का निवारण करके स्वस्थ रहकर सब की रक्षा करें। ७० ॥

७०—(प्रमुञ्च) सर्वथा मोचय (अस्मत्) अस्मत्तः (पाशान्) बन्धान् (वरुण) हे दुःखनिवारकपरमात्मन् (सर्वान्) (यैः) पाशैः (समामे) सम्+अम रोगे पीडने—घञ्। संगतिरोगे। सम्पर्केण प्राप्ते रोगे (बध्यते) बन्धं प्राप्नोति (यैः) (व्यामे) विशेषरोगे (जीवेम) प्राणान् धारयेम (शरदम्) शरदः। संवत्सरान् (शतानि) बहुसंख्याकानि (त्वया) (राजन्) हे शासक परमात्मन् (गुपिताः) रक्षिताः (रक्षमाणाः) अन्यान् रक्षन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का प्रथम पाद आ चुका है—अ० ७ । ८३ । ४ ॥

मन्त्र ७१—८७ ॥

पितरो देवताः ॥ ७१ आसुर्यनुष्टुप्; ७२—७४, ७६ आसुरी पङ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री; ७६ आसुर्युष्णिक्; ७७ दैवी जगती; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्; ८० आसुरी जगती; ८१ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३, ८४ साम्नी त्रिष्टुप्; ८५ आसुरीबृहती; ८६ भुरिगार्ष्युष्णिक्; ८७ निचृदार्ष्युष्णिक् ॥

पितृसन्मानोपदेशः—पितरों के सन्मान का उपदेश ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥

अग्नये । कव्य-वाहनाय । स्वधा । नमः ॥ ७१ ॥

सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥

सोमाय । पितृ-मते । स्वधा । नमः ॥ ७२ ॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥

पितृ-भ्यः । सोमवत्-भ्यः । स्वधा । नमः ॥ ७३ ॥

यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥

यमाय । पितृ-मते । स्वधा । नमः ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—(कव्यवाहनाय) बुद्धिमानों को हितकारी पदार्थों के पहुंचाने वाले (अग्नये) विद्वान् पुरुष को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार होवे ॥ ७१ ॥

(पितृमते) श्रेष्ठमातापिता वाले (सोमाय) प्रेरक पुरुष को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥ ७२ ॥

(सोमवद्भ्यः) बड़े ऐश्वर्य वाले (पितृभ्यः) पितरों [माता पिता

७१—(अग्नये) विदुषे पुरुषाय (कव्यवाहनाय) कविर्मेधाविनाम—निघ० ३ । १५ । कविभ्यो मेधाविभ्यो हितपदार्थानां प्रापकाय (स्वधा) अन्नम् निघ० २ । ७ (नमः) सत्करणम् ॥

७२—(सोमाय) प्रेरकपुरुषाय (पितृमते) प्रशस्तमातापितृभिर्युक्ताय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७३—(पितृभ्यः) मातापित्रादिपालकज्ञानिभ्यः (सोमवद्भ्यः) परमैश्वर्य-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥ ७३ ॥

(पितृमते) श्रेष्ठ माता पिता वाले (यमाय) न्यायाधीश राजा को (स्वधा) अन्न (नमः) नमस्कार हो ॥ ७४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विविध प्रकार के विद्वान् माननीय पुरुषों का अन्न आदि से सत्कार करके विविध शिक्षा ग्रहण करें ॥ ७१—७४ ॥

मन्त्र ७१, ७२ कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं—२ । २९ ॥

एतत् ते प्रतितामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥

एतत् । ते । प्र-तितामह । स्वधा । ये । च । त्वाम् । अनु ।७५

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥

एतत् । ते । ततामह । स्वधा । ये । च । त्वाम् । अनु ॥७६॥

एतत् ते तत स्वधा ॥७७॥ एतत् । ते । तत । स्वधा ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—(प्रतितामह) हे परदादे ! (एतत्) यहां (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो, (च) और [उन के लिये भी अन्न हो] (ये) जो (त्वाम् अनु) तेरे साथ हैं ॥ ७५ ॥

(ततामह) हे दादे ! (एतत्) यहां (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो,(च) और [उन के लिये अन्न हो] (ये) जो (त्वाम् अनु) तेरे साथ हैं ॥ ७६ ॥

(तत) हे पिता ! (एतत्) यहां (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो ॥७७॥

भावार्थ—सन्तानों को चाहिये कि बड़ों से आरंभ करके परदादी परदादा, दादी दादा माता पिता आदि मान्यों की अन्न आदि से सेवा करके उत्तम शिक्षा और आशीर्वाद पावें ॥ ७५—७७ ॥

युक्तेभ्यः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७४—(यमाय) न्यायाधीशाय राज्ञे (पितृमते) म० ७२ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७५—(एतत्) अत्र (ते) तुभ्यम् (प्रतितामह) तनु विस्तारे—क्त । तत इति सन्ताननाम पितुर्वा पुत्रस्य वा—निरु० ६ । ६ । पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः । पा० । ४ । २ । ३६ । प्रतत—डामहच्, बाहुलकात् । हे प्रपितामह (स्वधा) अन्नम् (ये) (च) तेभ्यश्च (त्वाम्) (अनु) अनुसृत्य वर्तन्ते ॥

७६—(ततामह) म० ७५ । हे पितामह । अन्यत् पूर्ववत् ।

७७—(तत) म० ७५ हे पितः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा । पितृ-भ्यः । पृथिविसत्-भ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा । पितृ-भ्यः । अन्तरिक्षसत्-भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥ (२७)

स्वधा । पितृ-भ्यः । दिविसत्-भ्यः ॥ ८० ॥ (२७)

भाषार्थ—(पृथिविषद्भ्यः) पृथिवी की विद्या में गति वाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥ ७८ ॥

(अन्तरिक्षसद्भ्यः) प्राकाश विद्या में गति वाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥ ७९ ॥

(दिविषद्भ्यः) प्रकाश विद्या में गति वाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥ ८० ॥

७८—८० इन मन्त्रों का मिलान करो यजु० ९ । २ ॥

भावार्थ—जो पितर पण्डित लोग पृथिवी अर्थात् राज्यविद्या, भूगर्भ विद्या आदि में चतुर हों, जो ज्योतिषी आकाश विद्या अर्थात् सौर मण्डल, तारामण्डल, वायुमण्डल आदि विद्या में दक्ष हों और जो महापुरुष अन्य व्यवहारों अर्थात् संग्राम विद्या, धर्म शिक्षा आदि विद्या में गुणी होवें, सब मनुष्य ऐसे महात्माओं का सदा आदर करते रहें ॥ ७८—८० ॥

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥ ८१ ॥

नमः । वः । पितरः । ऊर्जे । नमः । वः । पितरः । रसाय ॥ ८१ ॥

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥ ८२ ॥

७८—(स्वधा) अन्नम् (पितृभ्यः) पालकज्ञानिभ्यः (पृथिविषद्भ्यः) ङ्याप्पोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् । पा० ६ । ३ । ६३ । इति ह्रस्वः । पृथिवीविद्यायां गतिशीलेभ्यः ॥

७९—(अन्तरिक्षसद्भ्यः) आकाशविद्यायां गतिशीलेभ्यः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८०—(दिविषद्भ्यः) सप्तम्या अलुक् । प्रकाशविद्यायां गतिशीलेभ्यः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमः । वः । पितरः । भामाय । नमः । वः । पितरः । मन्यवे ८२
नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ८३
नमः । वः । पितरः । यत् । घोरम् । तस्मै । नमः । वः । पितरः । यत् । क्रूरम् । तस्मै ॥ ८३ ॥

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥ ८४ ॥
नमः । वः । पितरः । यत् । शिवम् । तस्मै । नमः । वः । पितरः । यत् । स्योनम् । तस्मै ॥ ८४ ॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५ ॥
नमः । वः । पितरः । स्वधा । वः । पितरः ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (ऊर्जे) पराक्रम पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (रसाय) रस [ज्ञानरस, ओषधिरस, और दूध, जल, विद्या आदि रस] पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥ ८१ ॥

(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (भामाय) प्रताप की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (मन्यवे) क्रोध की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥ ८२ ॥

(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (घोरम्)

८१—(नमः) सत्करणम् (वः) युष्मभ्यम् (पितरः) हे पित्रादिपालकज्ञानिनः (ऊर्जे) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः । पा० २ । ३ । १४ । तुमुनः कर्मणि चतुर्थी । ऊर्जं पराक्रमं प्राप्तुम् (रसाय) ज्ञानरसौषधिरसदुग्धजलविद्यादिरसान् प्राप्तुम् । अन्यद् गतम् ॥

८२—(भामाय) अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभा० । उ० १ । १४० । भा दीप्तौ—मन् । भामं प्रकाशं प्रतापं प्राप्तुम् (मन्यवे) यथा म० ८१ । मन्युं क्रोधं निवर्तयितुम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८३—(यत्) यत् किञ्चित् (घोरम्) हन्तेरच् घुर् च । उ० ५ । ६४ ।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोर [दारुण दुःख] है, (तस्मै) उसे हटाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (क्रूरम्) क्रूर [निर्दयता] है, (तस्मै) उसे दूर करने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥ ८३ ॥

(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गलकारी है, (तस्मै) उसे पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (स्योनम्) सुखदायक है, (तस्मै) उसके लाभ के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥ ८४ ॥

(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (वः) तुम्हारे लिये (स्वधा) अन्न हो ॥ ८५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि पराक्रम आदि शुभ गुणों की प्राप्ति के लिये और क्रोध आदि दुर्गुणों की निवृत्ति के लिये ज्ञानी पितरों का अनेक प्रकार सत्कार करके सदुपदेश ग्रहण करें ॥ ८१—८५ ॥

८१—८५ इन मन्त्रों का मिलान करो—यजुर्वेद २ । ३२ तथा महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पितृयज्ञविषय ॥

येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्त ॥ ८६ ॥

ये । अत्र । पितरः । पितरः । ये । अत्र । यूयम् । स्थ । युष्मान् । ते । अनु । यूयम् । तेषाम् । श्रेष्ठाः । भूयास्त ॥८६॥

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां

हन हिंसागत्योः—अच्, घुरादेशः । भयानकं दारुणं दुःखम् (तस्मै) यथा म० ८१ । तन्नाशयितुम् (क्रूरम्) कृतेश्छः क्रू च । उ० २ । २१ । कृती छेदने—रक, क्रू इत्यादेशः । निर्दयत्वम् (तस्मै) तद्दूरीकर्तुम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८४—(यत्) (शिवम्) कल्याणकरम् (तस्मै) तत् प्राप्तुम् (यत्) (स्योनम्) सुखम् (तस्मै) तल्लब्धुम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८५—(स्वधा) अन्नम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७ ॥

ये । इह । पितरः । जीवाः । इह । वयम् । स्मः ॥ अस्मान् । ते । अनु । वयम् । तेषाम् । श्रेष्ठाः । भूयास्म ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (अत्र) यहां (पितरः) पितर [पालक ज्ञानी] हैं, (ये) जो (यूयम्) तुम (अत्र) यहां पर (पितरः) पितर (स्थ) हो, (ते) वे लोग (युष्मान् अनु) [उन] तुम्हारे अनुकूल होवें, और (यूयम्) तुम (तेषाम्) उन के बीच (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (भूयास्थ) होओ ॥ ८६ ॥

(ये) जो (इह) यहां पर (पितरः) पितर [पालक ज्ञानी] हैं, [उन के अनुग्रह से] (वयम्) हम (इह) यहां पर (जीवाः) जीवते हुये [सचेत] (स्मः) हैं, (ते) वे लोग (अस्मान् अनु) हमारे अनुकूल होवें और (तेषाम्) उनके बीच (वयम्) हम (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (भूयास्म) होवें ८७

भावार्थ—श्रेष्ठ ज्ञानी पितर लोग मिलकर संसार का उपकार करें, जिन के अनुग्रह से सब मनुष्य सचेत और श्रेष्ठ होवें ॥ ८६, ८७ ॥

मन्त्रः—८८ ॥

अग्निर्देवता ॥ स्वराडार्षी बृहती छन्दः ॥

परमात्मोपासनोपदेशः—परमात्मा की उपासना का उपदेश ॥

आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥

आ । त्वा । अग्ने । इधीमहि । द्यु-मन्तम् । देव । अजरम् ॥ यत् । ध । स्या । ते । पनीयसी । सम्-इत् । दीदयति । द्यवि ॥ इषम् । स्तोतृ-भ्यः । आ । भर ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—(देव) हे आनन्दप्रद ! (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (अजरम्) अजर [जरारहित, सदा बलवान्]

८६—(ये) (अत्र) अस्मिन् संसारे (पितरः) पालका ज्ञानिनः (यूयम्) (स्थ) भवथ (युष्मान्) पितॄन् (ते) प्रसिद्धाः (अनु) अनुकूल्य (यूयम्) (तेषाम्) तेषां मध्ये (श्रेष्ठाः) प्रशस्यतमाः (भूयास्थ) तस्य यनादेशः । भूयास्त ॥

८७—(जीवाः) जीवनवन्तः । सचेतसः (इह) (वयम्) (स्मः) भवामः (ते) प्रसिद्धाः (अनु) अनुसृत्य । अनुकूल्य (वयम्) अन्यत् पूर्ववत् ॥

८८—(आ) समन्तात् (त्वा) त्वाम् (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (इधीमहि) इधेर्लिङि रूपम् । दीपयेम (द्युमन्तम्) दीप्तिमन्तम् (देव)

CC-0in Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वा) तुझ को (आ) सब ओर से [हृदय में] (इधीमहि) हम प्रकाशित करें। (यत्) जो (सा) वह (घ) निश्चय कर के (ते) तेरी (पनीयसी) अति प्रशंसनीय (समित्) चमक (द्यवि) चमकते हुये [सूर्य आदि में] (दीदयति) चमकती है। [उस से] (इषम्) इष्ट पदार्थ को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (आ) सब ओर से (भर) भर दे ॥ ८८ ॥

भावार्थ—जो अजर अमर जगदीश्वर सूर्य अग्नि आदि प्रकाशक पदार्थों का प्रकाशक है, उस प्रकाशस्वरूप को हृदय में धारण करके अपने नेत्रों को दिव्य बनावें और प्रत्येक वस्तु में उस की ज्योति देख कर प्रत्येक वस्तु से इष्ट मनोरथ सिद्ध करें ॥ ८८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—५ । ६ । ४ और सामवेद में पू० ५ । ४ । १ तथा उ० ३ । २ । २१ ॥

मन्त्रः—८९ ॥

विश्वेदेवा देवताः ॥ निचृदार्षी पङ्क्तिः ॥

सूर्यचन्द्रादिविषयोपदेशः—सूर्य चन्द्र आदि के विषय का उपदेश ॥

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि । न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८९॥ (२९

चन्द्रमाः । अप्-सु । अन्तः । आ । सु-पर्णः । धावते । दिवि ॥ न । वः । हिरण्य-नेमयः । पदम् । विन्दन्ति । वि-द्युतः । वित्तम् । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ८९ ॥ (२९)

भाषार्थ—(सुपर्णः) सुन्दर पूर्त्ति करने वाला (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (अप्सु अन्तः) [अपने] जलों के भीतर (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आ धावते) दौड़ता रहता है। (हिरण्यनेमयः) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मा में सीमा रखने वाले (विद्युतः) विविध प्रकाशमान [सब लोको !] (वः)

हे सुखप्रद (अजरम्) जरारहितम्। बलवन्तम् (यत्) विभक्तेर्लुक्। या (घ) निश्चयेन (सा) प्रसिद्धा (ते) तव (पनीयसी) पनतिः स्तुतिकर्मा। स्तुत्यतरा (समित्) सम्यग् दीप्तिः (दीदयति) दीप्यते (द्यवि) द्योतमाने सूर्यादौ (इषम्) इष्टं पदार्थम् (स्तोतृभ्यः) स्तावकेभ्यः (आ) समन्तात् (भर) धर ॥

८९—(चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (अप्सु) स्वमण्डलस्थेषु जलेषु (अन्तः) मध्ये (आ) समन्तात् (सुपर्णः) धापृवस्यज्यतिभ्यो नः। उ० ३ । ६ । सु+पॄ पालनपूरणयोः—नप्रत्ययः। सुष्ठु पूरयिता (धावते) शीघ्रं गच्छति (दिवि) सूर्यस्य प्रकाशे (न) निषेधे (वः) युष्माकम् (हिरण्यनेमयः) हर्यतेः कन्यन् हिर्च्च। उ० ५ । ४४ । हर्य गतिकान्त्योः—कन्यन्। तियो मिः। उ० ४। ४३। णीञ् प्रापणे—मिप्रत्ययः। हिरण्ये कमनीये प्रकाशस्वरूपे परमात्मनि नेमिः सीमा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे (पदम्) ठहराव को (न विन्दन्ति) वे [जिज्ञासु लोग] नहीं पाते हैं, (रोदसी) हे पृथिवी और सूर्य के समान स्त्री पुरुषो ! (मे) मेरे (अस्य) इस [वचन] का (वित्तम्) तुम दोनों ज्ञान करो ॥ ८६ ॥

भावार्थ—चन्द्रमा अपने मण्डल के समुद्रों पर सूर्य की किरणों के पड़ने से प्रकाशित होकर अपनी जलमय शीतल किरणों द्वारा पृथिवी के पदार्थों को पुष्ट करता है, इस के अतिरिक्त परमात्मा की अनन्त रचनाओं, अनन्त सूर्य पृथिवी आदि लोकों को जिज्ञासु लोग खोजते जाते हैं और अन्त नहीं पाते। उस जगदीश्वर की महिमा को जानकर सब स्त्री पुरुष अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥ ८६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । १०५ । १ और सामवेद में पू० ५ । ३ । ६ और पहिले दो पाद यजुर्वेद में हैं—३३ । ६० ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज प्रथितमहागुणमहिम श्रीमयाजीराव गायकवाड़ाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रीपण्डित

क्षेमकरणदास त्रिवेदिना ।

कृते अथर्ववेदभाष्ये अष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे चैत्रमासे कृष्णैकादश्यां तिथौ १९७५ [पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि

श्रीराजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य

सुसाम्राज्ये सुसप्तातिमगात् ॥

मुद्रितम्—ज्येष्ठ शुक्ला १० संवत् १९७६ वि०, ता० ८ जून १९१९ ई० ॥

येषां ते तथा भूतास्तत्सम्बुद्धौ (पदम्) स्थितिम् (विन्दन्ति) लभन्ते (विद्युतः) वि + द्युत दीप्तौ—क्विप् । हे विविध प्रकाशमानलोकाः (वित्तम्) जानीतम् । ज्ञानं कुरुतम् (मे) मम (अस्य) वचनस्य (रोदसी) हे द्यावापृथिव्याविव प्रजे स्त्रीपुरुषौ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियाँ

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-२३ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेम-करणदास को अथर्वेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जावें॥

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बने तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इन धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५९७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर नमस्ते !.

आपको ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्वेद का भाष्य कर रहे हैं। आपने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य को करने का प्रयत्न किया है। भाष्य कांडों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्य समाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः वह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों को बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी जी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस प्रदान करें। स्वयम् ग्राहक बने और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाज के पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही ज़रूरी है। भाष्यके प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य को मंगाइये।

भवदीय—
नन्दलाल सिंह,
B. Sc. LL. B. उपमन्त्री।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१५१४। कार्यालय श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध बुलन्दशहर।

आप का पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्रधारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आपको उत्तरोत्तर उस महत्त्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए० एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जीने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारों वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त। आर्यमित्र आगरा २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैंने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों, में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमि का दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खें।

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एक बड़ी कमी के पूर्ण करने का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो··· छपाई और कागज़ भी अच्छा है

श्रीयुत महाशय—**मुन्शीरामजी** जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता कुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७-१०-१६६६।

अथर्ववेदभाष्य आपका दिया व किया हुआ अवकाशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आपका परिश्रम सराहनीय है।

तथा—पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१६६६।

अवलोकन करने से उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० **शिवशंकर शर्म्मा** काव्यतीर्थ-छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वादि ग्रन्थकर्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि सम्पादक आर्यमित्र-८ फ़रवरी १६१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है। ···आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर अब वहां से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आप ने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आपका अथर्ववेदीयभाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित—**भीमसेन शर्म्मा** इटावा उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १६१३।

अथर्ववेदभाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में·····अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१६१५॥

श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते।

महेवा के पते से आपका भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आपने हम सभों पर अत्यंत कृपा की है आपको अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पाँचवां कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्राः को जिसका मूल्य ।)॥ है कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है ।

श्रीयुत पंडित—महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३ ।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रमका यह फल है कि आपने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है···बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं । स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आपने अपने भाष्य को अलंकृत किया है···आपकी राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है" । आपका भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है ।

श्रीयुत पंडित—गणेश प्रसाद शर्मा सम्पादक भारत सुदशाप्रवर्त्तक फतहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३ ।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया । वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है । प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है ।

बाबू कालिका प्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१३ ।

आप का भेजा अथर्ववेदभाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें । आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे । मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना ।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंह जी वर्मा, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, ज़िला फ़तेहपुर हसवां, पत्र ६ दिसम्बर १९१३ ।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है । आपने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है । ईश्वर आपको वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें ।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप का अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६-लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है—कि वेद का पढ़ना पढ़ाना अर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्यन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है—जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।..... इस समय जो पांच काड़ों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द ..विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोचकर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपने सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है.....त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर—इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDYADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State*, *letter No* 624 *dated 6th February* 1913.

....It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable "For Encouragement Fund.

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age. I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope...the venture will not fail for want of pecuniary support.

THE MAGISTRATE OF ALLAHAABD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the Ist and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

THE ARYA PATRIKA LAHORE APRIL 18 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda*, which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature .. ..The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works..... The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition: scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves ..... Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest .....

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
All rights reserved.

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेदभाष्यम् ।

एकोनविंशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन
श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना
निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.

Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः ।

सर्वाधिकारः स्वाधीन एव रक्षितः ।

प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि — संवत् १९७६ वि० / सन् १९१९ ई० — मूल्यम् ३।)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad)।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

एकोनविंशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २ आर्षी बृहती । ३ आर्षी पङ्क्तिः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

सं सं स्रवन्तु नद्यः१ सं वातासः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

सम् । सम् । स्रवन्तु । नद्यः । सम् । वातासः । सम् । पतत्रिणः ॥ यज्ञम् । इमम् । वर्धयत । गिरः । सम्-स्राव्येण । हविषा । जुहोमि ॥ १ ॥

भाषार्थ—(नद्यः) नदियां (सम् सम्) बहुत अनुकूल (स्रवन्तु) बहें, (वातासः) विविध प्रकार के पवन और (पतत्रिणः) पक्षी (सम् सम्) बहुत अनुकूल [बहें] । (गिरः) हे स्तुति योग्य विद्वानो ! (इमम्) इस

१—(सम् सम्) अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते-निरु० १० । ४२ । अत्यन्तसम्यक् । अत्यनुकूलाः (स्रवन्तु) वहन्तु (नद्यः) सरितः (सम् सम्) अत्यनुकूलाः (वातासः) विविधपवनाः (पतत्रिणः) पक्षिणः (यज्ञम्) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारम् (वर्धयत) समृद्धं कुरुत (गिरः) गीर्यन्ते स्तूयन्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] को (वर्धयत) बढ़ाओ, (संस्राव्येण) बहुत अनुकूलता से भरी हुयी (हविषा) भक्ति के साथ [तुम को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि नौका, खेती आदि में प्रयोग करने से नदियों को, विमान आदि शिल्पों से पवनों को और यथा योग्य व्यवहार से पक्षी आदि को अनुकूल करें और नम्रता पूर्वक विद्वानों से मिलकर सुख के व्यवहारों को बढ़ावें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है—अ० १ । १५ । १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० १ । १५ ॥

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

इमम् । होमाः । यज्ञम् । अवत । इमम् । सम्-स्रावणाः । उत ॥ यज्ञम् । इमम् । वर्धयत । गिरः । सम्-स्राव्येण । हविषा । जुहोमि ॥ २ ॥

भाषार्थ—(होमाः) दाता लोगो तुम (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] को, (उत) और (संस्रावणाः) हे बड़े कोमल स्वभाव वालो ! (इमम्) इस [यज्ञ] की (अवत) रक्षा करो । (गिरः) हे स्तुति योग्य विद्वानो ! (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा आदि] को (वर्धयत) बढ़ाओ, (संस्राव्येण) बहुत कोमलता से भरी हुयी (हविषा)

इति गिरः, कर्मणि क्विप् । हे स्तूयमाना विद्वांसः (संस्राव्येण) स्रु गतौ—ण । तस्येदम् । पा० ४ । ३ । १२० । संस्राव-यत् । संस्रावेण सम्यक् स्रवणेन आर्द्रभावेन युक्तेन (हविषा) आत्मदानेन । भक्त्या (जुहोमि) अहमाददे । स्वीकरोमि युष्मान् ॥

२—(इमम्) क्रियमाणम् (होमाः) अ० ८ । ६ । १८ । हु दानादानाद्नेषु-मन् । दातारो यूयम् (यज्ञम्) म० १ (अवत) रक्षत (इमम्) यज्ञम् (संस्रावणाः) स्रु गतौ—णिच्, ल्युट, अर्श आद्यच् । हे आर्द्रस्वभावयुक्ताः ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan and eGangotri

भक्ति के साथ [तुम को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य आप्त विद्वानों से नम्रता पूर्वक मिलकर धर्म-वृद्धि और शिल्प आदि वृद्धि करते रहें ॥ २ ॥

इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध का मिलान करो–पूर्वार्द्ध अ० १ । १५ । २ ॥

रूपंरूपं॑ वयोवयः सं॒रभ्यैनं॒ परि॑ ष्वजे । य॒ज्ञमि॒मं च॑तस्रः प्र॒दिशो॑ वर्धयन्तु संस्राव्ये॑ण ह॒विषा॑ जुहोमि ॥ ३ ॥

रूप॑म्-रूप॑म् । वयः॑-वयः । सं॒-रभ्य॑ । ए॒न॒म् । परि॑ । स्व॒जे॒ ॥ य॒ज्ञम् । इ॒मम् । च॒त॒स्रः॑ । प्र-दिशः॑ । व॒र्ध॒य॒न्तु॒ । सं॒-स्रा॒व्ये॑ण ह॒विषा॑ । जु॒होमि॒ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(रूपंरूपम्) सब प्रकार की सुन्दरता और (वयोवयः) सब प्रकार के बल को (संरभ्य) ग्रहण करके (एनम्) इस (विद्वान्) को (परि ष्वजे) मैं गले लगाता हूं । (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] को (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (वर्धयन्तु) बढ़ावें, (संस्राव्येण) बहुत कोमलता से भरी हुयी (हविषा) भक्ति के साथ [इस विद्वान् को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों से उत्तम शिक्षा और बल प्राप्त कर के उनका सत्कार करें जिससे सब दिशाओं में सत्कर्मों की वृद्धि होवे ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से आचुका है—अ० १ । २२ । ३ ॥

सूक्तम् २ ॥

१—५ ॥ आपो देवता ॥ १–३ अनुष्टुप्, ४, ५ निचृदनुष्टुप् ॥

अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

३—(रूपंरूपम्) अ० १ । २३ । ३ । सर्वसौन्दर्य्यम् (वयोवयः) अ० १ । २२ । ३ । सर्वसामर्थ्यम् (संरभ्य) गृहीत्वा (एनम्) विद्वांसम् (परि) सर्वतः (स्वजे) स्वञ्ज परिष्वङ्गे । आलिङ्गयामि (यज्ञम्) (इमम्) (चतस्रः) (प्रदिशः) प्राच्यादयो महादिशः (वर्धयन्तु) समर्धयन्तु । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलोपकारोपदेशः— जल के उपकार का उपदेश ॥

शं तु आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥

शम् । ते । आपः । हैम-वतीः । शम् । ऊं इति । ते । सन्तु । उत्स्याः ॥ शम् । ते । सनिस्यदाः । आपः । शम् । ऊं इति । ते । सन्तु । वर्ष्याः ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (हैमवतीः) हिम वाले पहाड़ों से उत्पन्न (आपः) जल (शम्) शान्ति दायक, (उ) और (ते) तेरे लिये (उत्स्याः) कूपों से निकले हुये [जल] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें । (ते) तेरे लिये (सनिष्यदाः) शीघ्र बहने वाले (आपः) जल (शम्) शान्तिदायक (उ) और (ते) तेरे लिये (वर्ष्याः) वर्षा से उत्पन्न (जल) (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रबन्ध करें कि पहाड़ों, कुओं, नदियों और वर्षा के जल स्नान पान, खेती शिल्प आदि के कामों में आते रहें ॥ १ ॥

शं तु आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥

शम् । ते । आपः । धन्वन्याः । शम् । ते । सन्तु । अनूप्याः ॥ शम् । ते । खनित्रिमाः । आपः । शम् । याः । कुम्भेभिः । आ-भृताः ॥ २ ॥

१—(शम्) शान्तिप्रदाः (ते) तुभ्यम् (आपः) जलानि (हैमवतीः) तत आगतः । पा० ४ । ३ । ७४ । इत्यण् । हैमवत्यः । हिमवद्भ्यः पर्वतेभ्य उत्पन्नाः (शम्) (उ) चार्थे (ते) (सन्तु) (उत्स्याः) उत्सः कूपनाम—निघ० ३ । २३ । कूपेषु भवाः (सनिष्यदाः) स्यन्दू प्रस्रवणे—यङ्, अच्, यङ्लुकि निगागमः । सर्वदाः स्यन्दमानाः । शीघ्र सूवन्त्यः (वर्ष्याः) वर्षासु भवाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (धन्वन्याः) निर्जल देश के (आपः) जल (शम्) सुखदायक, और (ते) तेरे लिये (अनूप्याः) सजल स्थान के [जल] (शम्) सुखदायक (सन्तु) होवें। (ते) तेरे लिये (खनित्रिमाः) खनती वा फावड़े से निकाले गये (आपः) जल (शम्) सुखदायक [होवें] और (याः) जो [जल] (कुम्भेभिः) घड़ों से (आभृताः) लाये गये हैं, वे भी (शम्) सुखदायक [होवें] ॥ २ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० १ । ६ । ४ ॥

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥

अनभ्रयः । खनमानाः । विप्राः । गम्भीरे । अपसः ॥
भिषक्-भ्यः । भिषक्-तराः । आपः । अच्छ । वदामसि ॥३॥

भाषार्थ—(अनभ्रयः) हिंसा न करने वाले, (खनमानाः) खोदते हुये, (विप्राः) बुद्धिमान्, (गम्भीरे) गहरे [कठिन] स्थान में (अपसः) व्यापने वाले (आपः) सब विद्याओं में व्यापक विद्वान् लोग (भिषग्भ्यः) वैद्यों से (भिषक्तराः) अधिक वैद्य हैं, [उनसे, यह जल का विषय] (अच्छ) अच्छे प्रकार

२—(शम्) सुखकारिण्यः (ते) तुभ्यम् (आपः) जलानि (धन्वन्याः) अ० १ । ६ । ४ । धन्वन्-यत् । धन्वनि निर्जलदेशे भवाः (शम्) (ते) (सन्तु) (अनूप्याः) अ० १ । ६ । ४ । अनूपे सजले देशे भवाः (शम्) (ते) (खनित्रिमाः) अ० १ । ६ । ४ । खनित्रेण खननसाधनेन निर्वृत्ताः (आपः) (शम्) (याः) (कुम्भेभिः) घटैः (आभृताः) आहृताः । आनीताः ॥

३—(अनभ्रयः) अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् । उ० ४ । ६५ । नञ्+णभ हिंसायाम्—क्रिन् । अहिंसकाः (खनमानाः) खननशीला जिज्ञासवः (विप्राः) मेधाविनः (गम्भीरे) अ० १८ । ४ । ६२ । गहने । कठिनस्थाने (अपसः) आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । उ० ४ । २०८ । आप्नोतेः—असुन् ह्रस्वश्च । व्यापनशीलाः (भिषग्भ्यः) वैद्येभ्यः (भिषक्तराः) अधिकचिकित्सकाः (आपः) सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ६ । १७ (अच्छ)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वदामसि) हम कहते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वान् चतुर जिज्ञासु वैद्य लोग बड़े कठिन रोगों में जल का प्रयोग करके उसके गुणों को परस्पर प्रकाश करें ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ३ । ७ । ५ तथा—अ० ६ । ६१ । ३ ॥

अपामहं दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामहं प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥

अपाम् । अहं । दिव्यानाम् । अपाम् । स्रोतस्यानाम् ॥
अपाम् । अहं । प्र-नेजने । अश्वाः । भवथ । वाजिनः ॥४॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (अह) निश्चय करके (दिव्यानाम्) आकाश से बरसने वाले (अपाम्) जलों के और (स्रोतस्यानाम्) स्रोतों से निकलने वाले (अपाम्) फैलते हुये (अपाम्) जलों के (प्रणेजने) पोषण सामर्थ्य में, (अह) निश्चय करके तुम (वाजिनः) वेग वाले (अश्वाः) बलवान् पुरुष [वा घोड़ों के समान] (भवथ) हो जाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य वृष्टि के और नदी कूप आदि के जल की यथावत् चिकित्सा से शरीर में नीरोग, और खेती आदि में उसके प्रयोग से अन्न आदि प्राप्त करके बड़े वेगवान् और बलवान् होवें ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद आया है—अ० १ । ४ । ४ ॥

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥

आभिमुख्येन । सुष्ठु (वदामसि) वदामः । कथयामः ॥

४—(अपाम्) व्यापनशीलानां जलानाम् (अह) विनिग्रहे । निश्चयेन (दिव्यानाम्) दिवि आकाशे भवानाम् (अपाम्) व्यापनशीलानाम् (स्रोतस्यानाम्) स्रोतस्—यत् । स्रोतःसु प्रवाहेषु भवानाम् (अपाम्) जलानाम् (अह) (प्रणेजने) णिजिर् शौचपोषणयोः—ल्युट् । शोधने । पोषणे (अश्वाः) बलवन्तः पुरुषाः । तुरगा इव बलवन्तः (भवथ) थनादेशः । भवत (वाजिनः) वेगवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताः । अपः । शिवाः । अपः । अयक्ष्मम्-करणीः । अपः ॥ यथा । एव । तृप्यते । मयः । ताः । ते । आ । दत्त । भेषजीः ॥५

भाषार्थ--[हे मनुष्य !] (ताः) उन (शिवाः) मङ्गलकारी (अपः) जलों को, (अयक्ष्मंकरणीः) नीरोगता करने वाले (अपः) जलों को और (ताः) उन (भेषजीः) भय जीतने वाले (अपः) जलों को (आ) सब ओर से (दत्त) उस [परमेश्वर] ने दिया है, (यथा) जिससे (एव) निश्चय करके (ते) तेरे लिये (मयः) सुख (तृप्यते) बढ़े ॥ ५ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने संसार में वृष्टि, नदी, कूप आदि का जल इस लिये दिया है कि मनुष्य जलचिकित्सा करके नीरोग होवें, और खेती शिल्प आदि में प्रयोग से हृष्ट पुष्ट रहें ॥ ५ ॥

सूक्तम् ३ ॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, ३, ४ त्रिष्टुप्; २ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

अग्निगुणोपदेशः—अग्नि के गुणों का उपदेश ॥

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्य ओषधीभ्यः । यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्ततस्तुतो जुषमाणो नो अहि ॥१॥

दिवः । पृथिव्याः । परि । अन्तरिक्षात् । वनस्पति-भ्यः । अधि । ओषधीभ्यः ॥ यत्र-यत्र । वि-भृतः । जात-वेदाः । ततः । स्तुतः । जुषमाणाः । नः । आ । वहि ॥ १ ॥

५—(ताः) पूर्वोक्ताः (अपः) जलानि (शिवाः) मङ्गलकरीः (अपः) (अयक्ष्मंकरणीः) आढ्यसुभगस्थूल० । पा० ३ । २ । ५६ । अयक्ष्म + करोतेः—ख्युन्, बाहुलकात् । अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । पा० ६ । ३ । ६७ । मुमागमः । आरोग्यकारिणीः (अपः) (यथा) येन प्रकारेण (एव) निश्चयेन (तृप्यते) वर्धते (मयः) सुखम् (ताः) अपः (ते) तुभ्यम् (आ) समन्तात् (दत्त) डुदाञ् दाने—लङ् । बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि । पा० ६ । ४ । ७५ । अडभावः । अदत्त । दत्तवान् स परमेश्वरः (भेषजीः) भयनिवारिकाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(दिवः) सूर्य से, (पृथिव्याः) पृथिवी से, (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्ष [मध्यलोक] में से, (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों [पीपल आदि वृक्षों] से और (ओषधीभ्यः अधि) ओषधियों [अन्न सोमलता आदिकों] में से, और (यत्रयत्र) जहां जहां (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान तू [अग्नि] (विभृतः) विशेष करके धारण किया गया है, (ततः) वहां से (स्तुतः) स्तुति किया गया [काम में लाया गया] और (जुषमाणः) प्रसन्न करता हुआ तू (नः) हमको (आ) आकर (इहि) प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य अग्नि, बिजुली, धूप आदि को सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियों, ओषधियों अन्य पदार्थों से ग्रहण करके शरीर की पुष्टि और शिल्प विद्या की उन्नति करें ॥ १ ॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आया है—अ० ६ । १ । १ ॥

यस्ते॑ अ॒प्सु म॑हि॒मा यो वने॑षु॒ य ओष॑धीषु पशु॒ष्वप्स्व१॒॑न्तः ।
अग्ने॒ सर्वा॑स्तन्व१॒॑: सं र॑भस्व॒ ताभि॑र्न॒ एहि द्रविणो॒दा अ॑जस्रः॥२॥

यः । ते॒ । अ॒प्-सु । म॒हि॒मा । यः । वने॑षु । यः । ओष॑धीषु ।
प॒शु॒षु॑ । अ॒प्-सु । अ॒न्तः ॥ अग्ने॑ । सर्वाः । त॒न्वः॑ । सम् ।
र॒भ॒स्व॒ । ताभिः॑ । नः॒ । आ । इ॒हि॒ । द्र॒वि॒णः॒-दाः । अ॒ज॒स्रः॒ ।२

भाषार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (महिमा) महत्त्व (अप्सु) जलों में, (यः) जो (वनेषु) बनों में, (यः) जो (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न सोम-

---

१—(दिवः) सूर्यात् (पृथिव्याः) भूमेः (परि) सकाशात् (अन्तरिक्षात्) मध्यलोकात् (वनस्पतिभ्यः) पिप्पलादिवृक्षेभ्यः (अधि) सकाशात् (ओषधीभ्यः) अन्नसोमलतादिपदार्थेभ्यः (यत्रयत्र) यस्मिन् यस्मिन् पदार्थे स्थाने वा (विभृतः) विशेषेण धृतः पूर्णः (जातवेदाः) जातेषूत्पन्नेषु वेदो विद्यमानता यस्य सः (ततः) तस्मात् (स्तुतः) प्रशंसितः । प्रयुक्तः (जुषमाणः) जुषी प्रीतिसेवनयोः—शानच् । प्रीणयन् (नः) अस्मान् (आ) आगत्य (इहि) प्राप्नुहि ॥

२—(यः) ते तव (अप्सु) उदकेषु (महिमा) महत्त्वम् । प्रभावः (यः) (वनेषु) अरण्येषु (यः) (ओषधीषु) अन्नसोमलतादिषु (पशुषु)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता आदि] में, (पशुषु) जीवों में और (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष के बीच है। (अग्ने) हे अग्नि ! (सर्वाः) सब (तन्वः) उपकार शक्तियों को (सं रभस्व) एकत्र ग्रहण कर और (ताभिः) उन [उपकार शक्तियों] के साथ (द्रविणोदाः) सम्पत्ति दाता (अजस्रः) लगातार वर्तमान तू (नः) हम को (आ) आकर (इहि) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सब पदार्थों के बीच अग्नि अर्थात् बिजुली आदि के प्रभाव को खोजें और उसकी अनेक उपयोगिताओं को काम में लाकर धन प्राप्त कर सुखी होवें ॥ २ ॥

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥

यः । ते । देवेषु । महिमा । स्वः-गः । या । ते । तनूः । पितृषु । आ-विवेश ॥ पुष्टिः । या । ते । मनुष्येषु । पप्रथे । अग्ने । तया । रयिम् । अस्मासु । धेहि ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यः) जो (ते) तेरी (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाली (महिमा) महिमा (देवेषु) व्यवहार कुशल विद्वानों में, (या) जो (ते) तेरी (तनूः) उपकार शक्ति (पितृषु) पालक ज्ञानियों में (आविवेश) प्रविष्ट हुयी है। और (या) जो (ते) तेरी (पुष्टिः) पुष्टि [वृद्धिक्रिया] (मनुष्येषु) मनन शील पुरुषों में (पप्रथे) फैली है, (अग्ने) हे अग्नि ! [बिजुली आदि] (तया) उस [पुष्टि आदि] से (रयिम्) धन (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि)

प्राणिषु (अप्सु) अन्तरिक्षे (अन्तः) मध्ये (अग्ने) हे विद्युदादिपावक (सर्वाः) समस्ताः (तन्वः) उपकृतीः (सं रभस्व) संकलय (ताभिः) तनूभिः । उपकृतिभिः (नः) अस्मान् (आ) आगत्य (इहि) प्राप्नुहि (द्रविणोदाः) सम्पत्तिदाता (अजस्रः) निरन्तरः सन् ॥

३—(यः) (ते) तव (देवेषु) व्यवहारकुशलेषु विद्वत्सु (महिमा) प्रभावः (स्वर्गः) सुखप्रापकः (यः) (ते) तव (तनूः) उपकृतिः (पितृषु) पालकेषु ज्ञानिषु (आविवेश) प्रविष्टवती (पुष्टिः) वृद्धिक्रिया (ते) तव (मनुष्येषु) मननशीलेषु पुरुषेषु (पप्रथे) प्रथिता विस्तृता बभूव (अग्ने) हे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य को जैसे जैसे अग्नि विद्या के पण्डित संग्राम में तोप आदि, पृथिवी पर रथ आदि, समुद्र में नौका आदि, आकाश में विमान आदि बनाने और चलाने में निपुण और रुग्न शरीर में ताप पहुंचाने वाले वैद्य प्राप्त होवें, उन से अग्निविद्या ग्रहण करके सुखी होवें ॥ ३ ॥

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्ववं देवानां यज हेडो अग्ने ॥ ४ ॥

श्रुत्-कर्णाय । कवये । वेद्याय । वचः-भिः । वाकैः । उप । यामि । रातिम् ॥ यतः । भयम् । अभयम् । तत् । नः । अस्तु । अव । देवानाम् । यज । हेडः । अग्ने ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(श्रुत्कर्णाय) सुनते हुये कानों वाले, (कवये) बुद्धिमान् (वेद्याय) वेदों में निपुण पुरुष के लिये (वचोभिः) वचनों और (वाकैः) वेद वाक्यों द्वारा (रातिम्) धन [अर्थात् अग्निविद्या] को (उप) आदर कर के (यामि) मैं प्राप्त होता हूं । (यतः) जिस से (भयम्) भय [हो], (तत्) उस से (नः) हमें (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (देवानाम्) विद्वानों के (हेडः) क्रोध को (अव यज) दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि शीघ्र सुनने वाले बुद्धिमान् होकर प्रयत्न पूर्वक अग्निविद्या प्राप्त करके ऐसा सुप्रयोग करें, जिस से सब विद्वान्

विद्युदादिपावक (तया) पुष्ट्यादिभिः (रयिम्) धनम् (धेहि) धारय ॥ ४ ॥

४—(श्रुत्कर्णाय) श्रवणशीलकर्णयुक्ताय (कवये) मेधाविने (वेद्याय) तत्र साधुः । पा० ४ । ४ । ९४ । इति यत् । वेदेषु निपुणाय (वचोभिः) वाक्यैः (वाकैः) वेदानामनुवाकैः (उप) पूजायाम् (यामि) प्राप्नोमि (रातिम्) धनम् । अग्निविद्यामित्यर्थः (यतः) यस्मात् कारणात् (भयम्) भयं भवतु (अभयम्) भयराहित्यम् (तत्) तस्मात् (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) (देवानाम्) विदुषाम् (अवयज) दूरीकुरु । शान्तय (हेडः) हेड् अनादरे-असुन् । क्रोधम् (अग्ने) हे विद्वन् ॥

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग उन से प्रसन्न रहें ॥ ४ ॥

सूक्तम् ४ ॥

१—४ ॥ अग्निर्बृहस्पतिश्च देवते ॥ १ विराडतिजगती ; २ भुरिक् त्रिष्टुप् ; ३ अनुष्टुप् ; ४ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

मेधाजननोपदेशः—बुद्धि बढ़ाने का उपदेश ॥

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्रो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

याम् । आ-हुतिम् । प्रथमाम् । अथर्वा । या । जाता । या । हव्यम् । अकृणोत् । जात-वेदाः ॥ ताम् । ते । एताम् । प्रथमः । जोहवीमि । ताभिः । स्तुप्रः । वहतु । हव्यम् । अग्निः । अग्नये । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थ—(याम्) जिस (आहुतिम्) यथावत् देने लेने योग्य क्रिया [सङ्कल्प शक्ति-म० २] को (अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (प्रथमाम्) सब से पहिली, और (या) जिस (या) प्राप्ति योग्य [संकल्प शक्ति] को (जाता) उत्पन्न [प्रजाओं] के लिये (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ने (हव्यम्) देने लेने योग्य वस्तु (अकृणोत्) बनाया। (ताम्) वैसी (एताम्) इस [संकल्प शक्ति] को (ते) तेरे लिये [हे मनुष्य !] (प्रथमः)

१—(याम्) (आहुतिम्) हु दानादानादनेषु—क्तिन् । समन्ताद् दातव्यग्राह्यक्रियाम् । संकल्पशक्तिम् । आकूतिम्—म० २ (प्रथमाम्) सृष्ट्यादौ वर्तमानाम् (अथर्वा) अ० ४ । १ । ७ । अथर्वाणोऽथनवन्तस्थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु ११ । १८ । नञ् + थर्व चरणे—वनिप् । निश्चलः परमात्मा (या) सुपां सुलुक्० । पा० ७ । १ । ३९ । इति द्वितीयायाः सुः । याम् (जाता) चतुर्थ्याः सुः । जाताभ्यः प्रजाभ्यः (या) या गतिप्रापणयोः—ड । द्वितीयायाः सुः । यां प्राप्तव्याम् (हव्यम्) दातव्यग्राह्यवस्तु (अकृणोत्) अकरोत् (जातवेदाः) जातानामुत्पन्नानां वेत्ता ज्ञाता परमेश्वरः (ताम्) तादृशीम् (ते) तुभ्यम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब में पहिला [अर्थात् मुख्य विद्वान्] मैं (जोहवीमि) बारंबार देता हूं, (ताभिः) उन [प्रजाओं] से (स्तुतः) एकत्र किया गया [हृदय में लाया गया] (अग्निः) ज्ञानमय परमात्मा (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ (वहतु) प्राप्त करे ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने सब से पहिले सृष्टि की आदि में संकल्प वा विचार शक्ति अर्थात् वेदवाणी प्राणियों के हित के लिये उत्पन्न की है। मनुष्य पूर्ण विद्वान् होकर वेदों का उपदेश करके परमेश्वर की महिमा को प्रकाशित करें ॥ १ ॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ २ ॥

आ-कूतिम् । देवीम् । सु-भगाम् । पुरः । दधे । चित्तस्य । माता । सु-हवा । नः । अस्तु ॥ याम् । आ-शाम् । एमि । केवली । सा । मे । अस्तु । विदेयम् । एनाम् । मनसि । प्र-विष्टाम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(देवीम्) दिव्य गुण वाली, (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली, (आकूतिम्) संकल्प शक्ति को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं, (चित्तस्य) चित्त [ज्ञान] की (माता) माता [जननी उत्पन्न करने वाली] वह (नः)

(एताम्) आहुतिम् (प्रथमः) मुख्यो विद्वान् अहम् (जोहवीमि) जुहोतेर्यङ्लुकि रूपम् । बारम्बारं जुहोमि ददामि (ताभिः) जाताभिः प्रजाभिः (स्तुतः) स्टुप उच्छ्राये—क्त । राशीकृतः । हृदये समाहितः (वहतु) प्रापयतु (हव्यम्) दातव्यग्राह्यपदार्थम् (अग्निः) ज्ञानमयः परमात्मा (अग्नये) ज्ञानवते पुरुषाय (स्वाहा) सुवाण्या ॥

२—(आकूतिम्) अ० ३ । २ । ३ । आङ् + कूञ् शब्दे—क्तिन् । संकल्पशक्तिम् (देवीम्) दिव्यगुणवतीम् (सुभगाम्) बह्वैश्वर्ययुक्ताम् (पुरः) अग्रे (दधे) धारयामि (चित्तस्य) मनोविचारस्य । ज्ञानस्य (माता) निर्मात्री जननी (सुहवा) सुष्ठु ह्वातव्या (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) भवतु (याम्) (आशाम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य (अस्तु) होवे। (याम्) जिस (आशाम्) आशा [कामना] को (एमि) मैं प्राप्त करूं, (सा) वह [आशा] (मे) मेरे लिये (केवली) सेवनीय (अस्तु) होवे, (मनसि) मन में (प्रविष्टाम्) प्रवेश की हुई (एनाम्) इस [आशा] को (विदेयम्) मैं पाऊं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य दृढ़ संकल्पी होकर ज्ञान को बढ़ावे, जिससे वह जिस शुभ कर्म की आशा मन में करे वह पूरी होवे ॥ २ ॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या नु उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥

आ-कूत्या । नुः । बृहस्पते । आ-कूत्या । नुः । उप । आ । गहि ॥ अथो इति । भगस्य । नुः । धेहि । अथो इति । नुः । सु-हवः । भव ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओं के स्वामी पुरुष] (आकूत्या) संकल्प शक्ति के साथ (नः) हमको, (आकूत्या) संकल्प शक्ति के साथ (नः) हम को (उप) समीप से (आ) आकर (गहि) प्राप्त हो। (अथो) और (नः) हमें (भगस्य) ऐश्वर्य का (धेहि) दान कर, (अथो) और भी (नः) हमारे लिये (सुहवः) सहज में पुकारने योग्य (भव) हो ॥ ३ ॥

आ समन्तादश्नुते—अच् । दीर्घाकाङ्क्षाम् । कामनाम् (एमि) प्राप्नोमि (केवली) अ० ३ । २५ । ४ । केवृ सेवने—कलच, ङीप् । सेवनीया । असाधारणी (सा) आशा (मे) मह्यम् (अस्तु) (विदेयम्) विद्लृ लाभे—लिङि छान्दसं रूपम् । विन्देयम् । प्राप्नुयाम् (एनाम्) आशाम् (मनसि) हृदये (प्रविष्टाम्) निहिताम् ॥

३—(आकूत्या) म० २ । संकल्पशक्त्या (नः) अस्मान् (बृहस्पते) बृहतीनां विद्यानां स्वामिन् पुरुष (आकूत्या) (नः) अस्मान् (उप) समीपे (आ) आगत्य (गहि) गच्छ । प्राप्नुहि (अथो) अपि च (भगस्य) ऐश्वर्यस्य (नः) अस्मभ्यम् (धेहि) दानं कुरु, (अथो) अपि च (नः) अस्मभ्यम् (सुहवः) सुष्ठु ह्वातव्यः (भव) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य बड़े बड़े विद्वानों से शिक्षा पाकर शुभ कर्म के लिये दृढ़ संकल्प कर के सहज में सफलता प्राप्त करे ॥ ३ ॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् । यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

बृहस्पतिः । मे । आ-कूतिम् । आङ्गिरसः । प्रति । जानातु । वाचम् । एताम् ॥ यस्य । देवाः । देवताः । सम्-बभूवुः । सः । सु-प्रनीताः । कामः । अनु । एतु । अस्मान् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(आङ्गिरसः) ज्ञानवान् परमेश्वर का सेवक, (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का स्वामी पुरुष] (मे) मेरी (आकूतिम्) संकल्प शक्ति, (एताम्) इस (वाचम्) वाणी को (प्रति) प्रतीति के साथ (जानातु) जाने "(सुप्रणीताः) यथाविधि चलाये गये (देवाः) विद्वानों ने (यस्य) जिस [शुभ कामना] के (देवताः) दिव्य भावों [सूक्ष्मगुणों] को (संबभूवुः) सब प्रकार पाया है, (सः) वह (कामः) शुभ कामना (अस्मान्) हम को (अनु) अनुकूलता से (एतु) प्राप्त होवे" ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष परमेश्वर के भक्त ज्ञानी लोगों के बीच जो प्रतिज्ञा करे उस को अवश्य पूरा करे, क्योंकि सुशिक्षित विद्वानों ने ही सत्य सङ्कल्प के दिव्य गुणों को जानकर मनोरथ सिद्ध किये हैं ॥ ४ ॥

सूक्तम् ५ ॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

४—(बृहस्पतिः) बृहतीनां विद्यानां स्वामी पुरुषः (मे) मम (आकूतिम्) सङ्कल्पशक्तिम् (आङ्गिरसः) तस्येदम् । पा० ४ । ३ । १२० । इत्यण् । अङ्गिरसो ज्ञानिनः परमेश्वरस्य सेवकः (प्रति) प्रतीत्या (जानातु) (वाचम्) वाणीम् (एताम्) वक्ष्यमाणाम् (यस्य) कामस्य (देवाः) विद्वांसः (देवताः) तस्य भावस्त्वतलौ । पा० ५ । १ । ११९ । इति तल्प्रत्ययः । देवभावान् । दिव्यगुणान् (संबभूवुः) भू प्राप्तौ—लिट् । सम्यक् प्रापुः (सः) तादृशः (सुप्रणीताः) यथाविधिप्रेरिता देवाः (कामः) शुभकामना (अनु) आनुकूल्येन (एतु) प्राप्नोतु (अस्मान्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजलक्षणोपदेशः—राजा के लक्षणों का उपदेश ॥

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१

इन्द्रः । राजा । जगतः । चर्षणीनाम् । अधि । क्षमि । विषु-रूपम् । यत् । अस्ति ॥ ततः । ददाति । दाशुषे । वसूनि । चोदत् । राधः । उप-स्तुतः । चित् । अर्वाक् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष (जगतः) जगत् के बीच (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का, और (यत्) जो कुछ (अधि क्षमि) पृथिवी पर (विषुरूपम्) नाना रूप [धन आदि] (अस्ति) है, [उस का भी], (राजा) राजा है । (ततः) इसी कारण से वह (दाशुषे) दाता [आत्मदानी राजभक्त] के लिये (वसूनि) धनों को (ददाति) देता है, [तभी] (उपस्तुतः) समीप से प्रशंसित होकर (चित्) अवश्य (राधः) धन को (अर्वाक्) सन्मुख (चोदत्) प्रवृत्त करे [बढ़ावे] ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा अपनी प्रजा की और उसकी सब सम्पत्ति की सुधि रखकर रक्षा करे, और योग्य राजभक्तों का यथोचित् धन आदि से सत्कार करे, वही प्रशंसा पाकर राज्य में धन बढ़ा सकता है ॥ १ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७ । २७ । ३ ॥

१—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (राजा) शासकः (जगतः) संसारस्य मध्ये (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम्—निघ० २ । ३ (अधि) उपरि (क्षमि) आतो धातोः । पा० ६ । ४ । १४० । "आतः" इति योगविभागात् क्षमा शब्दात् सप्तम्येकवचन आकारलोपः । क्षमायाम् । भूम्याम् (विषुरूपम्) नानाविधम् (यत्) यत् किमपि धनादिकम्, तस्य च (अस्ति) भवति (ततः) तस्मात् कारणात् (ददाति) प्रयच्छति (दाशुषे) दात्रे । आत्मसमर्पकाय राजभक्ताय (वसूनि) धनानि (चोदत्) चोदयेत् । प्रेरयत् । प्रवर्तयेत् (राधः) धनम् (उपस्तुतः) समीपे प्रशंसितः (चित्) अवधारणे (अर्वाक्) अभिमुखम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ६ [पुरुषसूक्तम्] ॥

१—१६ ॥ पुरुषो देवता ॥ १, २, ४—६, ८—१६ अनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप्; ७ निचृदनुष्टुप् ॥

सृष्टिविद्योपदेशः—सृष्टिविद्या का उपदेश ॥

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

सहस्र-बाहुः । पुरुषः । सहस्र-अक्षः । सहस्र-पात् ॥ सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दश-अङ्गुलम् १

भाषार्थ—(पुरुषः) पुरुष [अग्रगामी वा परिपूर्ण परमात्मा] (सहस्रबाहुः) सहस्रों भुजाओं वाला, (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्रों वाला और (सहस्रपात्) सहस्रों पैरों वाला है । (सः) वह (भूमिम्) भूमि को (विश्वतः) सब ओर से (वृत्वा) ढक कर (दशाङ्गुलम्) दस दिशाओं में व्याप्ति वाले [वा पांच स्थूल भूत और पांच सूक्ष्म भूत के अङ्ग वाले] जगत् को (अति) लांघ कर

१—(सहस्रबाहुः) सहस्राणि असंख्याता बाहवो भुजबलानि यस्मिन् सः (पुरुषः) पुरः कुषन् । उ० ४ । ७४ । पुर अग्रगतौ, पूरी आप्यायने, पूर्तौ, यद्वा पॄ पालनपूरणयोः—कुषन् । पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य । यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् । इत्यपि निगमो भवति—निरु० २ । ३ । सर्वत्र परिपूर्णः परमेश्वरः (सहस्राक्षः) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः० । पा० ५ । ४ । ११३ । इति षच् । सहस्राण्यसंख्यातानि अक्षीणि नेत्रसामर्थ्यानि यस्य सः (सहस्रपात्) संख्यासुपूर्वस्य । पा० ५ । ४ । १४० । इति पादस्य लोपो बहुव्रीहौ । सहस्राणि असंख्याताः पादाः पादसामर्थ्यानि यस्मिन् सः (भूमिम्) भूगोलम् (विश्वतः) सर्वतः । बाह्याभ्यन्तरतः (वृत्वा) आच्छाद्य । व्याप्य (अति) अतीत्य । उल्लङ्घ्य (अतिष्ठत्) स्थितवान् (दशाङ्गुलम्) वृञ्लुटितनिताडिभ्य उलच् तराडश्च । उ० ५ । ६ । अगि गतौ वा अङ्ग पदे लक्षणे च—उलच् । दशसु दिक्षु अङ्गुलं व्यापनं यस्य तत्,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अतिष्ठत्) ठहरा है ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा में सहस्रों अर्थात् असंख्य भुजाओं, असंख्य नेत्रों और असंख्य पैरों का सामर्थ्य है अर्थात् जो अपनी सर्वव्यापकता से सब इन्द्रियों का काम करके अनेक रचना आदि कर्म करता है। वह जगदीश्वर भूमि से लेकर सकल ब्रह्माण्ड में बाहिर भीतर व्यापक है, सब मनुष्य उस सच्चिदानन्द परमेश्वर की उपासना से आनन्द प्राप्त करें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । १ । यजुर्वेद ३१ । १ और सामवेद पू० ६ । १३ । ३ । और समस्त पुरुष सूक्त २२ मन्त्र यजुर्वेद पाठ के अनुसार महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका सृष्टि विद्या विषय में व्याख्यात है ॥

यहां पर निम्न लिखित मन्त्र से मिलान करो—ऋक० १० । ८१ । ३ और यजुर्वेद १७ । १९ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

(विश्वतश्चक्षुः) सब ओर नेत्र वाला, (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर मुख वाला, (विश्वतोबाहुः) सब ओर भुजाओं वाला (उत) और (विश्वतस्पात्) सब ओर पैरों वाला (एकः) अकेला (देवः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं रूप बल और पराक्रम से (पतत्रैः) गति शील परमाणु आदि के साथ (द्यावाभूमी) सूर्य और भूमि [आदि लोकों] को (सम्) यथाविधि (जनयन्) उत्पन्न कर के (सम्) यथावत् (धमति) प्राप्त होता है ॥

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥

त्रि-भिः । पत्-भिः । द्याम् । अरोहत् । पात् । अस्य । इह । अभवत् । पुनः ॥ तथा । वि । अक्रामत् । विष्वङ् । अशनानशने इत्यशन-अनशने । अनु ॥ २ ॥

यद्वा पञ्चस्थूलपञ्चसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यङ्गानि यस्य तज्जगत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—वह [पुरुष परमात्मा] (त्रिभिः) तीन (पद्भिः) पादों [अंशों] से (द्याम्) [अपने] प्रकाशस्वरूप में (अरोहत्) प्रकट हुआ, (अस्य) इस [पुरुष] का (पात्) एक पाद [अंश] (इह) यहां [जगत् में] (पुनः) बार बार [सृष्टि और प्रलय के चक्र से] (अभवत्) वर्तमान हुआ। (तथा) फिर (विष्वङ्) सर्वव्यापक वह (अशनानशने अनु) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ जगत् में (वि) विविध प्रकार से (अक्रामत्) व्याप्त हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—वह परमेश्वर संसार की अपेक्षा तीन चौथाई अर्थात् बहुत ही बड़ा है और इतना बड़ा ब्रह्माण्ड उसके सामर्थ्य का एक चौथायी अर्थात् बहुत थोड़ा अंश है। वह सब चराचर जगत् को उत्पन्न कर के सब में व्याप्त हो रहा है ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। ४, यजुर्वेद ३१। ४ और सामवेद पू० ६। १३। ४ ॥

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

तावन्तः । अस्य । महिमानः । ततः । ज्यायान् । च । पुरुषः ॥
पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रि-पात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(अस्य) इस [पुरुष] की (तावन्तः) उतनी [पूर्वोक्त]

२—त्रिभिः (पद्भिः) पादैः । अंशैः (द्याम्) स्वप्रकाशस्वरूपम् (अरोहत्) प्रकटीकृतवान् (पात्) पद गतौ स्थैर्य्य च—णिचि क्विप्। पादः । चतुर्थांशः (इह) संसारे (अभवत्) (पुनः) बारम्बारम् । सृष्टिप्रलयरूपचक्रेण (तथा) अनन्तरम् (वि) विविधम् (अक्रामत्) व्याप्नोत् (विष्वङ्) सर्वतोऽञ्चनः । विश्वव्यापनः (अशनानशने) कृत्यल्युटो बहुलम्। पा० ३। ३। ११३। अश भोजने—कर्तरि ल्युट्। भक्षणाभक्षणशीले । चेतनाचेतने द्विप्रकारे जगती (अनु) प्रति ॥

३—(तावन्तः) पूर्वोक्तपरिमाणाः (अस्य) पुरुषस्य (महिमानः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(महिमानः) महिमायें हैं, (च) और (पूरुषः) यह पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] (ततः) उन [महिमाओं] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा है। (अस्य) इस [ईश्वर] का (पादः) पाव [चौथायी अंश] (विश्वा) सब (भूतानि) चराचर पदार्थ हैं, और (अस्य) इस [परमेश्वर] का (अमृतम्) अविनाशी महत्त्व (दिवि) [उसके] प्रकाशस्वरूप में (त्रिपात्) तीन पाव [तीन चौथाई] वाला है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर के चार अंश माने जावें तो अनेक सूर्य, पृथिवी आदि चराचर विचित्र रचना वाला इतना बड़ा जगत् ईश्वर के सामर्थ्य का एक चौथाई अर्थात् बहुत थोड़ा अंश है और उसका अविनाशी सामर्थ्य जगत् की अपेक्षा तीन चौथायी अर्थात् बहुत महान् है ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है--१० । ९० । ३, यजुर्वेद--३१ । ३, सामवेद--पू० ६ । १३ । ६ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भाव्यम् ॥ उत । अमृत-त्वस्य । ईश्वरः । यत् । अन्येन । अभवत् । सह ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो कुछ (इदम्) यह (सर्वम्) सब है, (च) और (यत्) जो कुछ (भूतम्) उत्पन्न हुआ और (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है [उसका] (उत) और (अमृतत्वस्य) अमरपन [अर्थात् दुःख रहित मोक्ष-

महत्त्वानि (ततः) तेभ्यो महिमभ्यः (ज्यायान्) प्रवृद्धतरः (पुरुषः) म० १। परिपूर्णः परमेश्वरः (पादः) एकोंऽशः (अस्य) पुरुषस्य (विश्वा) सर्वाणि (भूतानि) सत्तावन्ति पदार्थजातानि (त्रिपात्) संख्यासुपूर्वस्य । पा० ५ । ४ । १४० । इति पादस्य लोपो बहुव्रीहौ । त्रयः पादा अंशा यस्य तत् (अस्य) पुरुषस्य (अमृतम्) नाशरहितं महत्त्वम् (दिवि) प्रकाशस्वरूपे ॥

४—(पुरुषः) परिपूर्णः परमात्मा (एव) निश्चयेन (इदम्) वर्तमानं जगत् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (यत्) यत् किञ्चित्, तस्यापीश्वरः (भूतम्) उत्पन्नम् (यत्) (च) (भाव्यम्) उत्पत्स्यमानम्, तस्यापीश्वरः (उत)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख] का, और (यत्) जो कुछ (अन्येन सह) दूसरे [अर्थात् मोक्ष से भिन्न दुःख] के साथ (अभवत्) हुआ है, [उसका भी] (ईश्वरः) शासक (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] (एव) ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमात्मा ही भूत, भविष्यत् वर्तमान और सृष्टि, स्थिति, प्रलय का स्वामी होकर जीवों को उनके कर्मानुसार मोक्ष वा नरक देता है। इस मन्त्र का अर्थ यत् तद् भाव के विचार से किया गया है ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । २ । यजुर्वेद ३१ । २ । और सामवेद—पू० ६ । १३ । ५ ॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कति-धा । वि । अकल्पयन् ॥
मुखम् । किम् । अस्य । किम् । बाहू इति । किम् । ऊरू इति । पादौ । उच्येते इति ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(यत्) जब (पुरुषम्) पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] को (वि) विविध प्रकार से (अदधुः) उन [विद्वानों] ने धारण किया, (कतिधा) कितने प्रकार से [उसको] (वि) विशेष करके (अकल्पयन्) उन्होंने माना। (अस्य) इस [पुरुष] का (मुखम्) मुख (किम्) क्या [कहा जाता है], (बाहू) दोनों भुजायें (किम्) क्या, (ऊरू) दोनों घुटने और (पादौ) दोनों पांव (किम्) क्या (उच्येते) कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

अपि च (अमृतत्वस्य) मरणकारणस्य दुःखस्य राहित्यस्य। मोक्षसुखस्य (ईश्वरः) अधिष्ठाता । शासकः (यत्) यत् किञ्चित् (अन्येन) भिन्नेन । अमृतत्वाद् मोक्षसुखाद् । भिन्नेन नरकेण (अभवत्) (सह) ॥

५—(यत्) यदा (पुरुषम्) म० १ । पूर्णं परमात्मानम् वि) विविधम् (अदधुः) धारितवन्तः । समाहितवन्तः (कतिधा) कतिभिः प्रकारैः (वि) विशेषेण (अकल्पयन्) कल्पितवन्तः । निश्चितवन्तः (मुखम्) मुखस्थापनीयं श्रेष्ठम् (किम्) (अस्य) पुरुषस्य (किम्) (बाहू) भुजाविव बलेन धारकः (किम्) (ऊरू) जङ्घे यथा सर्वमध्ये व्यवहारसाधकः (पादौ) पादाविव गमनागमनेन सेवाशीलः (उच्येते) कथ्येते ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—विद्वान् लोग परमात्मा के सामर्थ्यों को विचारते हुये कल्पना करें, जैसे मनुष्य के मुखादि अङ्ग शरीर की पुष्टि करते हैं, वैसे ही इस बड़ी सृष्टि में धारण पोषण के लिये ऐसे बड़े परमात्मा के मुख के समान श्रेष्ठ, भुजाओं के समान बल को धारण करने वाला, घुटनों के समान सबके बीच में व्यवहार करने वाला और पावों के समान चल फिर के सेवा करने वाला कौन है ? इसका उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । ११ और यजुर्वेद ३१ । १० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू इति । राजन्यः । अभवत् ॥ मध्यम् । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्-भ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण [वेद और ईश्वर का जानने वाला मनुष्य] (अस्य) इस [पुरुष] का (मुखम्) मुख (आसीत्) था, (राजन्यः) क्षत्रिय [शासक मनुष्य] (बाहू) [उसकी] दोनों भुजायें (अभवत्) हुआ । (अस्य) इसका (यत्) जो (मध्यम्) मध्य [घुटनों का भाग] है, (तत्) वह (वैश्यः) वैश्य [मनुष्यों का हितकारी] और (पद्भ्याम्) [उसके] दोनों पैरों से (शूद्रः) शूद्र [शोचनीय मूर्ख] (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य के शरीर में अङ्ग के समान परमात्मा की सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि शम दम व्रत से वेद और ईश्वर का जानने वाला मनुष्य ब्राह्मण

६—(ब्राह्मणः) वेदेश्वरवित् (अस्य) पुरुषस्य (मुखम्) मुखमिवोत्तमः (आसीत्) अभवत् (बाहू) भुजाविव बलवीर्ययुक्तः (राजन्यः) क्षत्रियः शासकः (अभवत्) (मध्यम्) मध्याङ्गम् । ऊर्वोरुपलक्षणमेतत् (तत्) मध्यम् (अस्य) पुरुषस्य (यत्) मध्यम् (वैश्यः) विशो मनुष्यनाम—निघ० २ । ३ । तस्मै हितम् । पा० ५ । १ । ५ । विश—यञ् । विड्भ्यो मनुष्येभ्यो हितः । वेदाध्ययनकृषिवाणिज्यादिवृत्तिकः (पद्भ्याम्) पद्भ्यां गमनागमनव्यवहाराभ्यां सेवाशीलः (शूद्रः) शुचेर्दश्च । उ० २ । १९ । शुच शोके—रक् । दश्चान्तादेशो धातोर्दीर्घश्च । शोचनीयो विद्याहीनो मूर्खो जनः (अजायत) उत्पन्नोऽभवत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख के समान मुख्य सर्व हितकारी, वेदवेत्ता अधिक बल पराक्रम वाला क्षत्रिय भुजाओं के समान रक्षक, वेदज्ञ कृषि व्यापार आदि से धनी होकर मनुष्यों का हित करने वाला पोषक वैश्य शरीर के मध्यभाग घुटनों के तुल्य, और मूर्ख विद्याहीन चल फिर कर सेवा करने वाला शूद्र मनुष्य पैरों के समान उपयोगी है ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । १२, यजुर्वेद—३१ । १२ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः । अजायत ॥ मुखात् । इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ॥ ७ ॥

पदार्थ—[इस पुरुष के—मन्त्र ६] (मनसः) मन [मनन सामर्थ्य] से (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (जातः) उत्पन्न हुआ, (चक्षोः) नेत्र से (सूर्यः) सूर्य मण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ । (मुखात्) मुख से (इन्द्रः) बिजुली (च) और (अग्निः) आग (च) और (प्राणात्) प्राण से (वायुः) पवन (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—चन्द्रमा से मनन शक्ति और पदार्थपुष्टि और सूर्य से नेत्र में ज्योति होती है, मुख ज्योतिर्मय और भक्षण सामर्थ्य वाला होने से मुख का संबन्ध इन्द्र और आग से, और जीवन का संबन्ध होने से प्राण का सम्बन्ध वायु से हैं, ऐसा मनुष्यों को ईश्वर की रची सृष्टि में जानना चाहिये ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । १३ और यजुर्वेद ३१ । १२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥

७—(चन्द्रमाः) आह्लादस्य निर्माता । चन्द्रलोकः (मनसः) मननसामर्थ्यात् (जातः) उत्पन्नः (चक्षोः) भृमृशीङ्तृ० । उ० १ । ७ । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि दर्शने च—उप्रत्ययः । दर्शनशीलाद् नेत्रात् (सूर्यः) लोकानां प्रेरकः प्रकाशमानः सूर्यलोकः (अजायत) उदपद्यत (मुखात्) ज्योतिर्मयाद् भक्षणशीलादिन्द्रियविशेषात् (इन्द्रः) विद्युत् (च) (अग्निः) पावकः (च) (प्राणात्) जीवनसाधकात् पवनात् (वायुः) पवनः (अजायत) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् । अवर्तत ॥ पद्-भ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् । अकल्पयन् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—[इस पुरुष की] (नाभ्याः) नाभि से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ, (शीर्ष्णः) शिर से (द्यौः) प्रकाशयुक्त लोक, और (पद्भ्याम्) दोनों पैरों से (भूमिः) भूमि (सम्) सम्यक् (अवर्तत) वर्तमान हुयी, (श्रोत्रात्) कान से (दिशः) दिशाओं की (तथा) इसी प्रकार (लोकान्) सब लोकों की (अकल्पयन्) उन [विद्वानों] ने कल्पना की ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे नाभि में शरीर की धारण शक्ति है, वैसे ही आकाश में सब लोकों का धारण सामर्थ्य है, जैसे शिर शरीर में ज्ञान और नाड़ियों का केन्द्र है, वैसे ही सूर्य आदि प्रकाशमान लोक अन्य लोकों के प्रकाशक और आकर्षक हैं, जैसे पैर शरीर के ठहरने के आधार हैं वैसे ही भूमि लोक सब प्राणियों के ठहरने का आश्रय है, जैसे शब्द आकाश में सब ओर व्याप कर कानों में आता है, वैसे ही सब पूर्व आदि दिशायें आकाश में सर्वत्र व्यापक हैं। इसी प्रकार परमात्मा ने सब लोकों को रचकर परस्पर सम्बन्ध में रक्खा है ॥ ८ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में हैं—१० । १६ । १४ । और यजुर्वेद ३१ । १३ ॥

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥
वि-राट् । अग्रे । सम् । अभवत् । वि-राजः । अधि । पुरुषः ॥

८—(नाभ्याः) नाभिरूपादवकाशमयात् मध्यवर्तिसामर्थ्यात् (आसीत्) (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्त्याकाशम् (शीर्ष्णः) ज्ञानस्य नाडीनां च केन्द्रं शिर इवोत्तमसामर्थ्यात् (द्यौः) प्रकाशयुक्तलोकः (सम्) सम्यक् (अवर्तत) अभवत् (पद्भ्याम्) पादाविव धारणसामर्थ्यात् (भूमिः) आश्रयभूता भूम्यादिलोकाः (श्रोत्रात्) श्रोत्रवदवकाशमयात् सामर्थ्यात् (तथा) तेनैवप्रकारेण (लोकान्) अन्यान् दृश्यमानान् लोकान् (अकल्पयन्) कल्पितवन्तः । निश्चितवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् । अथो इति । पुरः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(अग्रे) पहिले [सृष्टि की आदि में] (विराट्) विराट् [विविध पदार्थों से विराजमान ब्रह्माण्ड] (सम्) यथाविधि (अभवत्) हुआ, (विराजः) विराट् [उस ब्रह्मांण्ड] से (अधि) ऊपर [अधिष्ठाता होकर] (पुरुषः) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] [प्रकट हुआ]। (सः) वह [पुरुष] (जातः) प्रकट होकर (भूमिम्) भूमि [अर्थात् सब सृष्टि से] (पश्चात्) पीछे को (अथो) और भी (पुरः) आगे को (अति) लांघ कर (अरिच्यत) बढ़ गया ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमात्मा ही इस सब विद्यमान सृष्टि का अधिष्ठाता है, वह अनादि अनन्त पुरुष सृष्टि के पीछे और पहिले भी विराजमान रहता है ॥ ८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । ५, यजुर्वेद—३१ । ५, साम० पू० ६ । १३ । ७ ॥

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यज्ञम् । अतन्वत ॥ वसन्तः । अस्य । आसीत् । आज्यम् । ग्रीष्मः । इध्मः । शरत् । हविः ॥ १० ॥

भाषार्थ—(यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] के साथ [अर्थात् परमात्मा को यजमान मानकर] (देवाः)

८—(विराट्) विविधैः पदार्थैः राजते प्रकाशते स विराड् ब्रह्माण्डरूपः संसारः (अग्रे) सृष्ट्यादौ (सम्) सम्यक् (अभवत्) (विराजः) तस्माद् ब्रह्माण्डात् (अधि) उपरि । अधिष्ठाता सन् (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (सः) पुरुषः (जातः) प्रादुर्भूतः (अति) अतीत्य । उल्लङ्घ्य (अरिच्यत) अधिकोऽभवत् (पश्चात्) सृष्टिपश्चात् (भूमिम्) सर्वसृष्टिम् (अथो) अपि च (पुरः) पुरस्तात् । सृष्टिपूर्वम् ॥

१०—(यत्) यदा (पुरुषेण) पूर्णेन परमात्मना (हविषा) आदातव्येन ग्राह्येण (देवाः) विद्वांसः (यज्ञम्) ब्रह्माण्डरूपं पदार्थसमूहम् (अतन्वत)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् लोगों ने (यज्ञम्) यज्ञ [ब्रह्माण्डरूप हवनव्यवहार] को (अतन्वत) फैलाया। (वसन्तः) वसन्त ऋतु (अस्य) इस [यज्ञ] का (आज्यम्) घी, (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु (इध्मः) इन्धन और (शरत्) शरद् ऋतु (हविः) हवनद्रव्य (आसीत्) हुआ ॥ १० ॥

भावार्थ—जब विद्वान् लोग इस ब्रह्माण्ड को ऐसे सिद्ध कर रहे हों जैसे कोई मनुष्य यज्ञ कर रहा हो, तो विद्वानों को जानना चाहिये कि सृष्टि के लिये वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतु परमात्मा ने ऐसे उपयोगी बनाये हैं जैसे यज्ञ के लिये घृत, समिधा और अन्य हवन सामग्री होते हैं। इस मन्त्र में वसन्त, ग्रीष्म और शरद् तीन ही ऋतुयें वर्ष के माने हैं जैसे ग्रीष्म, वर्षा और शीत तीन ऋतु प्रायः माने जाते हैं ॥ १० ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ९० । ६ और यजुर्वेद में ३१ । १४ । और इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आचुका है—अथर्व० ७ । ५ । ४ ॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥

तम् । यज्ञम् । प्रावृषा । प्र । औक्षन् । पुरुषम् । जातम् । अग्रशः ॥ तेन । देवाः । अयजन्त । साध्याः । वसवः । च । ये ११

भाषार्थ—(ये) जो (देवाः) विद्वान् लोग (साध्याः) साधन करने वाले [योगाभ्यासी] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ गुण वाले हैं, उन्होंने (प्रावृषा) बड़े ऐश्वर्य के साथ [वर्तमान] (तम्) उस (यज्ञम्) पूजनीय,

---

विस्तारितवन्तः। कल्पितवन्तः (वसन्तः) ऋतुविशेषः (अस्य) यज्ञस्य (आज्यम्) घृतं यथा (ग्रीष्मः) निदाघकालः (इध्मः) काष्ठं यथा (शरत्) ऋतुविशेषः (हविः) होतव्यं द्रव्यं यथा ॥

११—(तम्) पूर्वोक्तम् (यज्ञम्) पूजनीयम् (प्रावृषा) प्र + वृषु प्रजननैश्वर्ययोः—क्विप्। नहिवृतिवृषि० । पा० ६ । ३ । ११६। पूर्वपदस्य दीर्घः। प्रकृष्टैश्वर्येण सह वर्तमानम् (प्र) प्रकर्षेण (औक्षन्) उक्ष सेचने। उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मणः—निरु० १२ । ४। असिञ्चन्। हृदये शोधितवन्तः। अन्वेषणेन प्राप्तवन्तः (पुरुषम्) पूर्णं परमात्मानम् (जातम्) प्रसिद्धम् (अग्रशः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्रशः) पहिले से [सृष्टि के पूर्व से] (जातम्) प्रसिद्ध (पुरुषम्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] को (तेन) उस [पुण्य कर्म] से (प्र) भले प्रकार (औक्षन्) सींचा [स्वच्छ किया, खोजा] और (अयजन्त) पूजा ॥ ११ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग योगाभ्यास आदि तप के साथ पुण्य कर्म करके परमात्मा को खोजें और पूजें ॥ ११ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । ७ और यजुर्वेद—३१ । ९ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥

तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त । ये । च । के । च । उभयादतः ॥
गावः । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः । अज-अवयः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(तस्मात्) उस [पुरुष परमात्मा] से (अश्वाः) घोड़े (अजायन्त) उत्पन्न हुये, (च च) और [अन्य गदहा खच्चर आदि भी] (ये) जो (के) कोई (उभयादतः) दोनों ओर [नीचे ऊपर] दांतों वाले हैं। (तस्मात्) उससे (ह) ही (गावः) गौयें बैल [एक ओर दांत वाले पशु] (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये, (तस्मात्) उससे (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुये ॥ १२ ॥

अग्रतः सृष्टेः प्राक् (तेन) पूर्वोक्तेन पुण्यकर्मणा (देवाः) विद्वांसः (अयजन्त) पूजितवन्तः (साध्याः) ऋ० ७ । ५ । १ । साधनवन्तः । योगाभ्यासिनः (वसवः) श्रेष्ठाः पुरुषाः (च) (ये) ॥

१२—(तस्मात्) पुरुषात् (अश्वाः) तुरङ्गाः (अजायन्त) उत्पन्नाः (ये) (के) (च) गर्दभखच्चरादयः (उभयाद...) छन्दसि च । पा० ५ । ४ । १४२ । दन्तस्य दतृभावः । अन्येषामपि दृश्यते । पा० ६ । ३ । १३७ । इति दीर्घः । ऊर्ध्वाधोभागयोरुभयोर्दन्तयुक्ताः (गावः) धेनुवृषभाः (ह) एव (जज्ञिरे) उत्पन्नाः (तस्मात्) (तस्मात्) (जाताः) (अजावयः) अजाश्चावयश्च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने घोड़े गदहे, गौ, बैल बकरी भेड़ आदि उपकारी पशु उत्पन्न किये हैं; सब मनुष्य उसकी आज्ञा का पालन करते रहें ॥१२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ९० । १० और यजुर्वेद—३१ । ८ ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्व॒हुत॒ ऋचः॒ सामा॑नि जज्ञिरे ।
छन्दाँ॑सि ह जज्ञिरे॒ तस्माद् यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥ १३ ॥

तस्मा॑त् । यज्ञा॑त् । । सर्व॑-हुतः॑ । ऋचः॑ । सामा॑नि । ज॒ज्ञि॒रे॒ ॥
छन्दा॑ꣳसि । ह॒ । ज॒ज्ञि॒रे॒ । तस्मा॑त् । यजुः॑ । तस्मा॑त् । अ॒जा॒य॒त॒ १३

भाषार्थ—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्वहुतः) सब के दाता [अन्न आदि देने हारे] [पुरुष परमात्मा] से (ऋचः) ऋग्वेद [पदार्थों की गुणप्रकाशकविद्या] के मन्त्र और (सामानि) सामवेद [मोक्षविद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये । (तस्मात्) उससे (ह) ही (छन्दः) अथर्ववेद [आनन्ददायक विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये, और (तस्मात्) उस से (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा ने संसार के हित के लिये ऋग्वेदादि चार वेद प्रकाशित किये हैं, सब मनुष्य उन वेदों के अनुकूल चलकर उसकी भक्ति करें ॥ १३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । ९ और यजुर्वेद ३१।७॥

तस्माद् यज्ञात् सर्व॒हुतः॑ सꣳभृ॑तं पृषदा॒ज्य॑म् ।
प॒शूँ स्तांश्च॑क्रे वायव्या॑नार॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥ १४ ॥

तस्मा॑त् । यज्ञा॑त् । सर्व॑-हुतः॑ । सम्-भृ॑तम् । पृ॒ष॒त्-आ॒ज्य॑म् ॥

१३—(तस्मात्) पूर्वोक्तात् पुरुषात् (यज्ञात्) पूजनीयात् (सर्वहुतः) हु दानादानादनेषु—क्विप् । सर्वेभ्योऽन्नादिदातुः सकाशात् (ऋचः) ऋग्वेदस्य पदार्थगुणप्रकाशिकाया विद्याया मन्त्राः (सामानि) सामवेदस्य मोक्षज्ञानस्य मन्त्राः (जज्ञिरे) उत्पन्नाः (छन्दः) जसः सुः । छन्दांसि । अथर्ववेदस्य आह्लादकज्ञानस्य मन्त्राः (ह) निश्चयेन (जज्ञिरे) (तस्मात्) (यजुः) यजुर्वेदः । सत्कर्मणां ज्ञानम् (अजायत) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् । आरण्याः । ग्राम्याः । च । ये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्वहुतः) सब के दानी [अन्न आदि के देने हारे] [पुरुष परमात्मा] से (पृषदाज्यम्) दही, घी [आदि भोग्य पदार्थ] (संभृतम्) सिद्ध किया गया है। उसने (तान्) उन (पशून्) जीवों [दोपाये चौपायों] और (वायव्यान्) पवन में रहने वाले [पक्षी आदियों] को (चक्रे) बनाया, (ये) जो (आरण्याः) बनैले (च) और (ग्राम्याः) ग्राम के रहने वाले हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा ने जगत् के हित के लिये सब भोग्य पदार्थ और सब बनैले और घरेलू जीव, जैसे मनुष्य, सिंह, बाघ, गाय, बैल तथा गिद्ध, चील, तोता, मैना, कीट, पतङ्ग आदि बनाये हैं, सब लोग उसकी उपासना से आत्मोन्नति करें ॥ १४ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ९० । ८ और यजुर्वेद—३१ । ६ ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

सप्त । अस्य । आसन् । परि-धयः । त्रिः । सप्त । सम्-इधः । कृताः ॥ देवाः । यत् । यज्ञम् । तन्वानाः । अबध्नन् । पुरुषम् । पशुम् ॥ १५ ॥

१४—(तस्मात्) पूर्वोक्तात् पुरुषात् (यज्ञात्) पूजनीयात् (सर्वहुतः) मं० १३ । सर्वेभ्योऽन्तादिदातुः सकाशात् (संभृतम्) सम्यग् धारितं सम्पादितम् (पृषदाज्यम्) दधिघृतादिभोग्यं वस्तु (पशून्) द्विपदश्चतुष्पदो जीवान् (चक्रे) जनयामास (वायव्यान्) वाय्वृतुपित्रुषसो यत् । पा० ४ । २ । ३१ । वायु—यत् । वायुदेवताकान् । वायुभवान् (आरण्याः) अरण्य—अण् । अरण्ये भवाः (ग्राम्याः) ग्रामाद्यखञौ । पा० ४ । २ । ६४ । ग्राम—यप्रत्ययः । ग्रामे भवाः (च) (ये) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यत्) जब कि (यज्ञम्) [संसार रूप] यज्ञ को (तन्वानाः) फैलाते हुये (देवाः) विद्वानों ने (पशुम्) दर्शनीय (पुरुषम्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] को (अबध्नन्) [हृदय में] बांधा, [तब] (सप्त) सात [तीन काल, तीन लोक अर्थात् सृष्टि स्थिति और प्रलय और एक जीवात्मा] (अस्य) इस [संसार रूप यज्ञ] के (परिधयः) घेरे समान (आसन्) थे, और (त्रिःसप्त) तीन बार सात [इक्कीस अर्थात् पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और एक अन्तःकरण] (समिधः) समिधायें [काष्ठ घृत आदि के समान] (कृताः) किये गये ॥१५॥

भावार्थ—जब विद्वान् लोग परमात्मा का ध्यान करते हुये संसार को यज्ञ समान मानें, तो जैसे यज्ञ के लिये वेदी वा हवन कुण्ड और काष्ठ घृत आदि सामग्री आवश्यक हैं, वैसे ही संसार में सृष्टि के लिये मन्त्रोक्त काल आदि सब पदार्थ आवश्यक होते हैं ॥ १५ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ९० । १५ और यजुर्वेद ३१ । १५ ॥

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त संपतीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

मूर्ध्नः । देवस्य । बृहतः । अंशवः । सप्त । सप्तीः ॥
राज्ञः । सोमस्य । अजायन्त । जातस्य । पुरुषात् । अधि ।१६

भाषार्थ—(पुरुषात्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] से (अधि) अधिकार

१५—(सप्त) कालत्रयेण, लोकत्रयेण अर्थात् सृष्टिस्थितिप्रलयेन सह जीवात्मा (अस्य) यज्ञस्य (आसन्) (परिधयः) परितः सर्वतो धीयन्ते ये ते । गोलमण्डलस्य परितो वेष्टनरूपाः (त्रिःसप्त) त्रिवारं सप्त, एक विंशतिसंख्याकाः । पञ्च सूक्ष्मभूतानि, पञ्च स्थूलभूतानि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, एकमन्तःकरणं चेति (समिधः) काष्ठघृतादिसामग्रीभूताः (कृताः) निष्पादिताः (देवाः) विद्वांसः (यत्) यदा (यज्ञम्) संसाररूपं यज्ञम् (तन्वानाः) विस्तृण्वन्तः (अबध्नन्) मनसि धारितवन्तः (पुरुषम्) पूर्णं परमात्मानम् (पशुम्) दर्शनीयम् ॥

१६—(मूर्ध्नः) मस्तकस्य (देवस्य) प्रकाशमानस्य सूर्यस्य (बृहतः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक (जातस्य) उत्पन्न हुये (बृहतः) बड़े (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्ध्नः) मस्तक की (सप्त) सात [वर्ण वाली] (सप्ततीः) नित्य सम्बन्ध वाली [अथवा सातःगुणित सत्तर, चार सौ नब्बे अर्थात् असंख्य] (अंशवः) किरणें (राज्ञः) प्रकाशमान (सोमस्य) चन्द्रमा की [किरणें] (अजायन्त) प्रकट हुयी हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—सृष्टिक्रम विचारने वाले विद्वान् लोगों को जानना चाहिये कि परमात्मा के नियम से शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र वर्ण वाली अथवा असंख्य किरणें पृथिवी की अपेक्षा बड़े सूर्य से आकर चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं ॥ १६ ॥

यह मन्त्र अन्य वेदों में नहीं है ॥

सूक्तम् ७ [नक्षत्रसूक्तम्] ॥

१—५ ॥ नक्षत्राणि देवताः ॥ १ निचृत् त्रिष्टुप् ; २, ३, ५ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

ज्योतिषविद्योपदेशः—ज्योतिष विद्या का उपदेश ॥

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १

चित्राणि । साकम् । दिवि । रोचनानि । सरीसृपाणि । भुवने । जवानि ॥ तुर्मिशम् । सु-मतिम् । इच्छमानः । अहानि । गीः-भिः । सपर्यामि । नाकम् ॥ १ ॥

पृथिव्यादिलोकेभ्यो महतः (अंशवः) किरणाः (सप्त) प्र० ६ । ५ । १५ शप्यशुभ्यां तुट् च । उ० १ । १५७ । षप समवाये—कनिन् तुट् च । शुक्लनील-पीतादिसप्तवर्णाः (सप्ततीः) वहिवस्यर्त्तिभ्यश्चित् । उ० ४ । ६० । षप समवाये-अतिप्रत्ययः, चित् तुट् च, यथा वेतसशब्देऽपि—उ० ३ । ११८ । छान्दसं रूपम् । सप्ततयः । नित्यपरस्परसम्बद्धाः । अथवा (सप्त सप्ततीः) सप्त सप्ततयः सप्तगुणितसप्ततिसंख्याका दशोनपञ्चशतसंख्याकाः । असंख्या इत्यर्थः (राज्ञः) दीप्यमानस्य (सोमस्य) चन्द्रलोकस्य (अजायन्त) प्रादुरभवन् (जातस्य) उत्पन्नस्य (पुरुषात्) पूर्णात् परमेश्वरात् (अधि) अधिकारपूर्वकम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(दिवि) आकाश के बीच (भुवने) संसार में (चित्राणि) विचित्र, (साकम्) परस्पर (सरीसृपाणि) टेढ़े टेढ़े चलने वाले, (जवानि) वेग गति वाले (रोचनानि) चमकते हुये नक्षत्र हैं। (तुर्मिशम्) वेग की ध्वनि [वा समाधि] को और (सुमतिम्) सुमति को (इच्छमानः) चाहता हुआ मैं (अहानि) सब दिन (गीर्भिः) वेदवाणियों से (नाकम्) सुखस्वरूप परमात्मा को (सपर्यामि) पूजता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे परस्पर आकर्षण से शीघ्र गति के साथ चलकर यह तारागण संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य परमात्मा की महिमा को वेद द्वारा गाते हुये परस्पर मेल करके शीघ्रता के साथ सुमति से अपना कर्त्तव्य करते रहें ॥ १ ॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥

सु-हवम् । अग्ने । कृत्तिकाः । रोहिणी । च । अस्तु । भद्रम् । मृग-शिरः । शम् । आर्द्रा ॥ पुनर्वसू इति पुनः-वसू । सूनृता । चारु । पुष्यः । भानुः । आ-श्लेषाः । अयनम् । मघाः । मे ।२

भाषार्थ—(अग्ने) हे अग्ने ! [सर्वव्यापक परमात्मन्] (कृत्तिकाः)

१—(चित्राणि) विचित्राणि । अद्भुतानि (साकम्) सह । परस्परम् (दिवि) आकाशे । सूर्यप्रकाशे (रोचनानि) रुच दीप्तावभिप्रीतौ च—युच् । दीप्यमानानि नक्षत्राणि (सरीसृपाणि) सृपेर्यङ्लुगन्तात् पचाद्यच् । नित्यं कौटिल्ये गतौ । पा० ३ । १ । २३ । इति कौटिल्ये—यङ् । वक्रगतीनि (भुवने) संसारे (जवानि) शीघ्रगामीनि । अनुक्षणमावर्त्तमानानि (तुर्मिशम्) तुर त्वरणे—किप् + मिश शब्दे रोषकृते समाधौ च—कप्रत्ययः । तुरो वेगस्य मिश्रं ध्वनिं समाधिं वा (सुमतिम्) कल्याणबुद्धिम् (इच्छमानः) इच्छन् । कामयमानः (अहानि) कालसंयोगे द्वितीया । सर्वाणि दिनानि (गीर्भिः) वेदवाग्भिः (सपर्यामि) परिचरामि —निघ० ३ । ५ । अहं सेवे (नाकम्) सुखस्वरूपं परमात्मानम् ॥

२—(सुहवम्) अ० ३ । २० । ६ । ईषद्दुःसुषु० । पा० ३ । ३ । १२६ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्तिकायें (च) और (रोहिणी) रोहिणी (सुहवम्) सुख से बुलाने योग्य [नक्षत्र] (अस्तु) होवे, (मृगशिरः) मृगशिर (भद्रम्) मङ्गलप्रद [नक्षत्र] और (आर्द्रा) आर्द्रा [जलयुक्त] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (पुनर्वसू) दो पुनर्वसू और (भानुः) प्रकाशमान (पुष्यः) पुष्य (सुनृता) सुन्दर चेष्टा के साथ (चारु) अनुकूल, और (आश्लेषाः) आश्लेषायें और (मघाः) मघायें (मे) मेरे लिये (अयनम्) सुन्दर मार्ग वाला [नक्षत्र होवे] ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य ज्योतिष शास्त्र के द्वारा नक्षत्रों वा तारागणों का परस्पर सम्बन्ध और चन्द्रमा आदि के साथ संसर्ग और अन्न वायु जल आदि

सु+ह्वयतेः—क्त, यद्वा सु+हु दानादानादनेषु—अप्। सुखेनाह्वातव्यं ग्राह्यं वा नक्षत्रम् (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् (कृत्तिकाः) अ० ६ । ७ । ३ । कृतिभिदिलतिभ्यः कित्। उ०३ । १४७ । कृती छेदने वेष्टने च—तिकन्, टाप् छेदनशीला वेष्टनशीला । अग्निशिखाकृति, षट्तारकामयम्, अश्विन्यादिषु तृतीयनक्षत्रम् (रोहिणी) अ० १ । २२ । ३ । रुहेश्च । उ० २ । ५५ । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च-इनन्, ङीष्। रोहयति जनयति स्वास्थ्यं या सा । शुक्लाकृति, पञ्चतारात्मकम्, अश्विन्यादिषु चतुर्थनक्षत्रम् (च) (अस्तु) (भद्रम्) मङ्गलप्रदम् (मृगशिरः) मृगस्येव शिरो यस्य । विडालाकृति तारात्रयात्मकं पञ्चमनक्षत्रम् (शम्) सुखप्रदम् (आर्द्रा) अ० १ । ३२ । ३ । अर्देर्दीर्घश्च । उ० २ । १८ । अर्द वधे याचने गतौ च—रक्, दीर्घश्च । क्लेदनस्वभावा, सजला पञ्चाकृत्युज्ज्वलैकतारकामयं षष्ठनक्षत्रम् (पुनर्वसू) पुनर्+वस—उ । पुनः पुनश्चन्द्रं वसतः । छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् । पा० १ । २ । ६१ । इति विकल्पकत्वाद् द्विवचनम् । यामकौ, आदित्यौ, पुनर्वसुः । धनुराकृति पञ्चतारात्मकं सप्तमनक्षत्रम् (सुनृता) अ० ३ । १२ । २ । सु+नृती नर्तने-घञर्थे क । विभक्तेराकारादेशः । सुनर्तनेन । सुचेष्टनेन (चारु) मनोहरम् । अनुकूलं नक्षत्रम् (पुष्यः) पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे । पा० ३ । १ । ११६ । पुष पुष्टौ—क्यप्। पुष्णाति पदार्थान् सिद्ध्यः । बाणाकृत्येकातारात्मकम् , अष्टमनक्षत्रम् (भानुः) भा दीप्तौ-नु । प्रकाशमानः (आश्लेषाः) आङ् ईषत्+श्लिष आलिङ्गने—घञ् अश्लेषा । चक्राकृति षट्तारात्मकं नवमनक्षत्रम् (अयनम्) अर्श आद्यच्। सुमार्गयुक्तं नक्षत्रम् (मघाः) मह पूजायाम्-घ प्रत्यय; टाप् । लाङ्गलाकृति गृहाकृति वा पञ्चतारात्मकं दशमनक्षत्रम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उन की गति के प्रभाव को समझ कर परमात्मा की अनन्त शक्ति को विचारते हुये अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥ २ ॥

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है । १—कृत्तिकायें [छेदने वाली वा घेरने वाली अर्थात् उग्र स्वभाव वाली, अग्निशिखा—आकृति, छह तारापुञ्ज, अश्विनी नक्षत्र से तीसरा नक्षत्र], २—रोहिणी [स्वास्थ्य उपजाने वाली, शुक्ल—आकृति, पांच तारापुञ्ज, अश्विनी से चौथा नक्षत्र-इसी प्रकार आगे भी अश्विनी से गणना जानो], ३—मृगशिर [मृग के शिर समान शिर वाला, विडाल आकृति, तीन तारापुञ्ज, पांचवां नक्षत्र], ४—आर्द्रा [भीजी हुयी वा सजल, पद्म—आकृति, उज्ज्वल, एक तारा, छठा नक्षत्र], ५—दो पुनर्वसु [वार बार नक्षत्रों में रहने हारे, धनुष—आकृति, पांच [वा दो वा चार] तारापुञ्ज, सातवां नक्षत्र], ६—पुष्य [पोषण करने वाला, दूसरा नाम तिष्य, बाण—आकृति, एक तारा, आठवां नक्षत्र], ७—आश्लेषायें [कुछ मिली हुयीं, दूसरा नाम अश्लेषा, चक्र—आकृति छह तारापुञ्ज, नवां नक्षत्र], ८—मघायें [पूजा योग्य, हल वा घर—आकृति, पांच तारापुञ्ज, दशवां नक्षत्र] ॥

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु । राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

पुण्यम् । पूर्वा । फल्गुन्यौ । च । अत्र । हस्तः । चित्रा । शिवा । स्वाति । सु-खः । मे । अस्तु ॥ राधे । वि-शाखे । सु-हवा । अनु-राधा । ज्येष्ठा । सु-नक्षत्रम् । अरिष्ट । मूलम् ३

भाषार्थ—(अत्र) यहां (पूर्वा) पूर्वा [पहिली] (च) और [उत्तरा वा पिछली] (फल्गुन्यौ) दोनों फल्गुनी (पुण्यम्) पवित्र [नक्षत्र], (हस्तः) हस्त (सुखः) सुख देने वाला और (चित्रा) चित्रा

३—(पुण्यम्) शुद्धं नक्षत्रम् (पूर्वा) पूर्वभवा (फल्गुन्यौ) अ० १४ । १ । १३ । फलेर्गुक् च । उ० ३ । ५६ । फल निष्पत्तौ—उनन्, गुक् च, ङीप् : फलन्ति वृद्धा यत्र । पूर्वाफल्गुनी उत्तराफल्गुनी च द्वे । फल्गुनी प्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे । पा० १ । २ । ६० । इति द्विवचनं वा । चतुराकृति ताराकाद्वयात्मकमे-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा (स्वाति) स्वाति (शिवा) मङ्गलकारक (मे) मेरे लिये (अस्तु) होवे। (राधे) हे सिद्धि करने वाली ! (विशाखे) विशाखा तू (सुहवा) सुख से बुलाने योग्य [हो], (अनुराधा) अनुराधा और (ज्येष्ठा) ज्येष्ठा [सुख से बुलाने योग्य होवे] और (सुनक्षत्रम्) सुन्दर नक्षत्र (मूलम्) मूल (अरिष्ट) हानि रहित [होवे] ॥ ३ ॥

भावार्थ—मन्त्र २ के समान है ॥ ३ ॥

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है । ९—पूर्वाफल्गुनी [पहिली फल्गुनी वा फल उत्पन्न करने वाली, खाट की आकृति, दो तारापुञ्ज, ग्यारहवां नक्षत्र], १०—उत्तराफल्गुनी [पिछली फल्गुनी फल उत्पन्न करने वाली, खाट की आकृति, दो तारापुञ्ज बारहवां नक्षत्र] ११—हस्त, [हाथ की आकृति, पांच तारापुञ्ज, तेरहवां नक्षत्र], १२—चित्रा [विचित्र वा अद्भुत, मोती समान उज्ज्वल, एक तारा, चौदहवां नक्षत्र], १३—स्वाति [अपने आप चलने वाली कुंकुम समान लाल, एक तारा, पन्द्रहवां नक्षत्र], १४—विशाखा [विशेष

कादशनक्षत्रम् (च) उत्तराफल्गुनी, पूर्ववत्, द्वादशनक्षत्रम् (अत्र) अस्मिन् नक्षत्रगणे (हस्तः) हसिमृग्रिण० । उ० ३ । ८६ । हस विकाशे—तन् । हस्तः । हस्ताकृति पञ्चतारात्मकं त्रयोदशनक्षत्रम् (चित्रा) चित्र संज्ञायां अद्भुते च—अच्, टाप् । मुक्तावदुज्ज्वलमेकतारात्मकं चतुर्दशनक्षत्रम् (शिवा) मङ्गलकारिणी (स्वाति) स्व + अत सातत्यगमने—इन्, सेर्लुक् । स्वातिः । स्वेनैवाततीति कुङ्कुमसदृशारुणैकतारात्मकं पञ्चदशनक्षत्रम् (सुखः) सुखप्रदः (मे) मह्यम् (अस्तु) राधे) राध्नोति साधयति कार्याणि, राध संसिद्धौ—अच्, टाप् । हे सिद्धिकारिके । एतद् विशाखा नक्षत्रस्य नामापि (विशाखे) वि + शाखृ व्याप्तौ-अच्, टाप् । विशिष्टाः शाखाः प्रकारा यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । तोरणाकारचतुस्तारात्मकं षोडशनक्षत्रम् (सुहवा) सुष्ठु आह्वातव्या (अनुराधा) राधां विशाखामनुगता । सर्पाकृति सप्ततारात्मकं सप्तदशनक्षत्रम् (ज्येष्ठा) सर्ववृद्धा सर्वश्रेष्ठा वा । शूकरदन्ताकृति तारात्रयात्मकम्, अष्टादशनक्षत्रम् (सुनक्षत्रम्) णक्ष गतौ—अत्रन् । शोभनं गमनशीलं नक्षत्रम् (अरिष्ट) रिष हिंसायाम्—क्त । विभक्तेर्लुक् । अरिष्टम् । अहिंसितम् । शुभम् (मूलम्) मूल प्रतिष्ठायाम्—क, यद्वा । मूशक्यविभ्यः क्लः । उ० ४ । १०८ । मूङ् बन्धने—क्ल, सिंहपुच्छाकारं शंखमूर्ति वा नवतारात्मकम् ऊनविंशनक्षत्रम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखाओं वाली, इसका नाम (राधा) सिद्धि करने वाली भी है, तोरण वा बड़े द्वार समान आकृति, चार तारापुञ्ज, सोलहवां नक्षत्र], १५—अनुराधा [राधा अर्थात् विशाखा के पीछे चलने वाली, सर्प-आकृति, सात तारापुञ्ज, सत्तरहवां नक्षत्र], १६—ज्येष्ठा [सब से बड़ी वा श्रेष्ठ, सूअर के दांत की आकृति, तीन तारापुञ्ज, अठारहवां नक्षत्र], १७—मूल [वा मूला अर्थात् जड़ समान दृढ़, सिंहपूछ-आकृति वा शंख मूर्ति, नव तारापुञ्ज, उन्नीसवां नक्षत्र] ॥

अन्नं॑ पू॒र्वा रास॑तां मे अषा॒ढा ऊर्जं॑ दे॒व्युत्त॑रा॒ आ व॑हन्तु ।
अ॒भि॒जिन्मे॑ रास॒तां पु॒ण्यमे॒व श्रव॑णः॒ श्रवि॑ष्ठाः॒ कुर्व॑तां सु॒पु॒ष्टिम् ॥४

अन्न॑म् । पू॒र्वा । रास॑ताम् । मे॒ । अषा॒ढाः । ऊर्ज॑म् । दे॒वी । उत्-तरा॒ः । आ । व॒ह॒न्तु ॥ अ॒भि-जित् । मे॒ । रास॑ताम् । पु॒ण्य॑म् । ए॒व । श्रव॑णः । श्रवि॑ष्ठाः । कुर्व॑ताम् । सु-पु॒ष्टिम् ॥४

भाषार्थ—(पूर्वा) पूर्वा [पहिली] (अषाढाः) अषाढ़ायें (मे) मेरे लिये (अन्नम्) अन्न (रासताम्) देवें, और (देवी) चमकीली (उत्तराः) उत्तरायें [पिछली अर्थात् उत्तरा-अषाढायें] (ऊर्जम्) पराक्रम (आ वहन्तु) लावें । (अभिजित्) अभिजित् (मे) मेरे लिये (पुण्यम्) पुण्य कर्म (एव) ही (रासताम्) देवे, (श्रवणः) श्रवण और (श्रविष्ठाः) श्रविष्ठायें (सुपुष्टिम्)

४—(अन्नम्) जीवनसाधनं भक्षणीयं पदार्थं वा (पूर्वा) बहुवचनस्यैकवचनम् । पूर्वाः । प्रथमभवाः (रासताम्) रासतीति दानकर्मा—निघ० ३।२० । रासृ दाने शब्दे च-लोट्, बहुवचनम्, अदादित्वं छान्दसम् । ददतु (मे) मह्यम् (अषाढाः) नञ्+षह मर्षणे-अण्, टाप् । शूर्पाकृति चतुस्तारात्मकं विंशनक्षत्रम् (ऊर्जम्) पराक्रमम् (देवी) देव्यः । प्रकाशमानाः (उत्तराः) उत्तरे भवाः । उत्तराषाढाः । शूर्पाकृति ताराचतुष्टयात्मकमेकविंशनक्षत्रम् (अभिजित्) अभि+जि जये-क्विप् । उत्तराषाढायाः शेषपञ्चदशदण्डाः श्रवणायाः प्रथमदण्डचतुष्टयम् एतदुनविंशतिदण्डात्मकं नक्षत्रम्, तारकात्रयात्मकं शृङ्गाटकाकृति (मे) मह्यम् (रासताम्) रासृ दाने, भ्वादिः, आत्मनेपदम् । ददातु । प्रयच्छतु (पुण्यम्) शुभम् (एव) अवधारणे (श्रवणः) श्रु गतौ श्रवणे च—ल्यु । शराकृति, तारात्रयात्मकं द्वाविंशनक्षत्रम् (श्रविष्ठाः) श्रु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत पुष्टि (कुर्वताम्) करें ॥ ४॥

भावार्थ—मन्त्र २ के समान है ॥ ४ ॥

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है। १८—पूर्वा—अषाढ़ा [यद्वा पूर्वा—आषाढा = पूर्वाषाढा, सूप—आकृति, चार तारापुञ्ज, बीसवां नक्षत्र], १९—उत्तरा—अषाढ़ा [यद्वा उत्तरा—आषाढा = उत्तराषाढ़ा, सूप—आकृति, चार तारापुञ्ज, इक्कीसवां नक्षत्र], २०—अभिजित् [सब ओर से जीतने वाला, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के शेष पन्द्रह दण्ड और श्रवणा नक्षत्र के पहिले चार दण्ड, उन्नीस दण्ड वाला तारा विशेष, सिंगाड़े की आकृति, तीन तारा-पुञ्ज], २१—श्रवणा [यद्वा श्रवण, सुनने वाला वा चलने वाला, तीर की आकृति, तीन तारापुञ्ज, बाइसवां नक्षत्र], २२—अविष्ठायें [अत्यन्त विख्यात, यद्वा धनिष्ठा बहुत धन वाली, मृदङ्ग—आकृति, पांच तारापुञ्ज तेइसवां नक्षत्र]॥

आ मे॑ ब्रह॒च्छ॒तभि॑षग् वरी॒य आ मे॑ द्व॒या प्रो॒ष्ठप॑दा सु॒शर्म॑ ।
आ रे॒वती॑ चाश्व॒युजौ॒ भगं॑ म॒ आ मे॑ रयिं भर॑ण्य॒ आ व॑हन्तु ५

आ । मे॒ । म॒हत् । श॒त-भि॑षक् । व॒री॒यः । आ । मे॒ । द्व॒या । प्रो॒ष्ठ॑-पदा । सु॒-शर्म॑ ॥ आ । रे॒वती॑ । च॒ । अ॒श्व॒-युजौ॑ । भग॑म् । मे॒ । आ । मे॒ । र॒यिम् । भर॑ण्यः । आ । व॒ह॒न्तु ॥५॥

भाषार्थ—(शतभिषक्) शतभिषज् (मे) मेरे लिये (वरीयः) अधिक विस्तृत (महत्) बड़ाई (आ = आ वहतु) लावे, (द्वया) द्विगुनी (प्रोष्ठपदा) प्रोष्ठपदा (मे) मेरे लिये (सुशर्म) बड़ा सुख (आ = आ वहतु) लावे। (रेवती) रेवती (च) और (अश्वयुजौ) दो अश्वयुज (मे) मेरे लिये (भगम्) ऐश्वर्य (आ = आ वहन्तु) लावें, (आ) और (भरण्यः) भरणियें

श्रवणे—अप्, श्रवः—मतुप्, इष्ठन्। अतिशयेन श्रवणीयाः प्रख्याताः। धनिष्ठा-नक्षत्रम्। मर्दलाकृति पञ्चतारात्मकं त्रयोविंशनक्षत्रम् (कुर्वताम्) कुर्वन्तु (सुपुष्टिम्) बहुवृद्धिम्॥

५—(आ) आ वहतु (मे) मह्यम् (महत्) महत्त्वम् (शतभिषक्) शतं भिषज इव तारा यत्र। शतभिषा मण्डलाकाराकृति शततारामयं चतु-र्विंशनक्षत्रम् (वरीयः) उरुतरम् (आ) आ वहतु (मे) (द्वया) ङीप्; स्थाने टाप्। द्विप्रकारा (प्रोष्ठपदा) प्रकृष्टो ओष्ठोऽस्येति प्रोष्ठो गौः, भद्रश्च गौस्तस्येव पादा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मे) मेरे लिये (रयिम्) धन (आ वहन्तु) लावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र २ के समान है ॥ ५ ॥

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है। २३—शतभिषज् [वैद्यों के समान सौ तारा वाला, यद्वा शतभिषा और सायण भाष्य में शतविशाखा, मण्डलाकार—आकृति, सौ तारापुञ्ज, चौबीसवां नक्षत्र], २४, २५ दोनों प्रोष्ठपदा अर्थात् पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा [प्रोष्ठपदा वा भाद्रपदा=बैल वा गौ के समान पांव वाली, पूर्वा भाद्रपदा दाहिनी और बाईं ओर वर्तमान खाट की आकृति दो तारापुञ्ज, उत्तरा भाद्रपदा, खाट की आकृति, आठ तारापुञ्ज], २६—रेवती [चलती हुयी। मछली की आकृति, बत्तीस तारापुञ्ज, सत्ताइसवां नक्षत्र], २७—दो अश्वयुज् [दो घुड़चढ़े अथवा अश्विनी नक्षत्र, घुड़चढ़े पुरुष के समान आकृति वा घोड़ों के मुख समान आकृति, तीन तारापुञ्ज पहिला नक्षत्र], २८—भरणियां [पालने वाली, त्रिकोण—आकृति, तीन तारापुञ्ज दूसरा नक्षत्र] ॥

संक्षेप मन्त्र २—५ ॥

वेद में २८ नक्षत्र हैं—१ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ मृगशिर, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ आश्लेषा [वा अश्लेषा], ८ मघा, ९ पूर्वा फल्गुनी, १० उत्तरा फल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाति, १४ विशाषा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूल, १८ पूर्वा—अषाढ़ा, १९ उत्तरा—अषाढ़ा, २० अभिजित्,

---

यस्याः सा । क्षुप्रातसुश्वसुदिवशारि० । पा० ५ । ४ । १२० । इत्यच् । पूर्वभाद्रपदा नक्षत्रम् । उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रं च । पूर्वभाद्रपदा दक्षिणोत्तरवर्ति खट्वाकृति तारकाद्वयात्मकं पञ्चविंशनक्षत्रम् । उत्तरभाद्रपदा । पर्यङ्करूपमष्टतारात्मकं षड्विंशनक्षत्रम् (सुशर्म) बहुसुखम् (रेवती) अ० ३ । ४ । ७ । रेवृ गतौ—अतच्, ङीष् । मत्स्याकृति द्वात्रिंशत् तारात्मकं सप्तविंशनक्षत्रम् (च) (अश्वयुजा) अश्व+युजिर् योगे-क्विप् । अश्वं युनक्ति रूपेणानुकरोति । अश्विनी । अश्वारूढपुरुषस्य रूपयुक्तं यद्वा घोटकमुखाकृति तारात्रयात्मकं प्रथमनक्षत्रम् (भगम्) ऐश्वर्यम् (मे) मह्यम् (आ) चार्थे (मे) (रयिम्) धनम् (भरण्यः) डु भृञ् धारणपोषणयोः ल्युः, ङीष् । तारकात्रयमितत्रिकोणाकृति द्वितीयं नक्षत्रम् (आ वहन्तु) आनयन्तु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१ श्रवण, २२ अविष्ठा, [वा धनिष्ठा], २३ शतभिषज् वा शतभिषा, २४ तथा २५ दोनों प्रोष्ठपदा [वा पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्र-पद], २६ रेवती, २७ दो अश्वयुज् [वा अश्विनी] और २८ भरणी, [सूक्त ८ मन्त्र १, २ भी देखो] ॥

प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त अध्याय ८ श्लोक २—९ में अश्विनी से रेवती तक २८ नक्षत्र इस प्रकार है । १ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृत्तिका, ४ रोहिणी, ५ मृगशिरा, ६ आर्द्रा ७ पुनर्वसु, ८ पुष्य, ९ अश्लेषा, १० मघा, ११ पूर्वाफल्गुनी, १२ उत्तराफल्गुनी, १३ हस्त, १४ चित्रा, १५ स्वाती, १६ विशाखा, १७ अनुराधा, १८ ज्येष्ठा, १९ मूल [वा मूला], २० पूर्वाषाढ़ा, २१ उत्तराषाढ़ा, २२ अभिजित्, २३ श्रवणा, २४ धनिष्ठा [वा अविष्ठा], २५ शतभिषा [वा शतभिषज्], २६ पूर्वभाद्रपदा, २७ उत्तरभाद्रपदा, २८ रेवती ॥

शब्दकल्पद्रुम कोश में पूर्वोक्त अश्विनी से रेवती तक २७ और २८ वां अभिजित् है । महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि नाम करण प्रक[illegible] की टिप्पणी में अश्विनी से रेवती तक २७ नक्षत्र हैं, अभिजित् नहीं हैं ॥

सूक्तम् ८ ॥

१-७ अग्निः सविता ब्रह्मणस्पतिर्वा देवता ॥ १ विराडार्षी जगती; २ निचृदार्षी त्रिष्टुप्; ३ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ४ निचृदनुष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ७ आर्ची गायत्री ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

मन्त्रौ १,२ [नक्षत्रसूक्तम्] ॥

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि मम तानि शिवानि सन्तु ।१

यानि । नक्षत्राणि । दिवि । अन्तरिक्षे । अप्-सु । भूमौ । यानि । नगेषु । दिक्षु ॥ प्र-कल्पयन् । चन्द्रमाः । यानि । एति । सर्वाणि । मम । एतानि । शिवानि । सन्तु ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यानि) जिन (नक्षत्राणि) नक्षत्रों [चलने वाले लोकों] को (दिवि) आकाश के भीतर (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में, (यानि) जिन

१—(यानि) (नक्षत्राणि) गमनशीलान् लोकान् (दिवि) आकाशे (अन्तरिक्षे) मध्यलोके (अप्सु) उदकानामुपरि (भूमौ) भूमेरुपरि (यानि)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[नक्षत्रों] को (अप्सु) जल के ऊपर और (भूमौ) भूमि के ऊपर और (यानि) जिन [नक्षत्रों] को (नगेषु) पहाड़ों के ऊपर (दिक्षु) सब दिशाओं में (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (प्रकल्पयन्) समर्थ करता हुआ (याति) चलता है, (एतानि) यह (सर्वाणि) सब [नक्षत्र] (मम) मेरे (शिवानि) सुख देने हारे (सन्तु) होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो नक्षत्र [सूक्त ७] अपने तारागणों के साथ चन्द्रमा के आकर्षण और गतिमार्ग में घूमकर वायु द्वारा जल पृथिवी आदि पर प्रभाव डाल कर अन्न स्वास्थ्य आदि बढ़ाने का कारण हैं, विद्वान् लोग उन नक्षत्रों के ज्योतिष ज्ञान से दूरदर्शी होकर विघ्नों को हटा कर सुख पावें ॥ १ ॥

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे । योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु २

अष्टा-विंशानि । शिवानि । शग्मानि । सह । योगम् । भजन्तु । मे ॥ योगम् । प्र । पद्ये । क्षेमम् । च । क्षेमम् । प्र । पद्ये । योगम् । च । नमः । अहोरात्राभ्याम् । अस्तु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(अष्टाविंशानि) प्रत्येक अट्ठाइसवें [नक्षत्र] (शिवानि) कल्याण कारक और (शग्मानि) सुखदायक होकर (सह) मेल के साथ (मे) मुझ को (योगम्) प्राप्ति सामर्थ्य (भजन्तु) देवें । (योगम्)प्राप्ति सामर्थ्य को (च) और (क्षेमम्) रक्षा सामर्थ्य को [अर्थात् पाने के सामर्थ्य के साथ

नक्षत्राणि (नगेषु) पर्वतानामुपरि (दिक्षु) सर्वासु दिक्षु (प्रकल्पयन्) समर्थानि कुर्वन् । प्रोत्साहयन् (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (यानि) नक्षत्राणि (एति) गच्छति (सर्वाणि) (मम) (एतानि) नक्षत्राणि (शिवानि) सुखकराणि (सन्तु) भवन्तु ॥

२—(अष्टाविंशानि) तस्य पूरणे डट् । पा० ५ । २ । ४८ । अष्टाविंशति-डट् पूरणार्थे । ति विंशतेर्डिति । पा० ६ । ४ । १४२ । इति तिलोपः । द्व्यष्टनः संख्यायाम० । पा० ६ । ३ । ४७ । इति अष्टशब्दस्य आत्त्वम् । प्रत्येकमष्टा-विंशतेः संख्यायाः पूरणानीति सर्वाणि अष्टाविंशानीति (शिवानि) कल्याण-कारकाणि (शग्मानि) सुखकारकाणि (सह) साकम् (योगम्) प्राप्ति-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा के सामर्थ्य को] (प्र पद्ये) मैं पाऊं, और (क्षेमम्) रक्षा सामर्थ्य को (च) और (योगम्) प्राप्ति सामर्थ्य को [अर्थात् रक्षा के सामर्थ्य के साथ पाने के सामर्थ्य को] (प्र पद्ये) मैं पाऊं, [और मुझे] (अहोरात्राभ्याम्) दोनों दिन राति के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—सूक्त ७ में कृत्तिकाओं से लेकर भरणियों तक अट्ठाईस नक्षत्र बताये हैं। यह मन्त्र कहता है कि वे नक्षत्र चन्द्रमा के मार्ग में चक्र बनाकर घूमते हैं। इसलिये जिस किसी एक नक्षत्र को ध्रुव मान कर गणना करें तो प्रत्येक अन्तिम नक्षत्र अट्ठाईसवां होता है, जैसे वेद में कृत्तिकाओं से लेकर भरणी, और लोक में अश्विनी से लेकर रेवती अट्ठाईसवां नक्षत्र है। मनुष्यों को योग्य है कि नक्षत्रों की कुचाल से जो दुर्भिक्ष, वायु की अशुद्धि आधिदैविक विपत्तियां पृथिवी पर सूझ पड़ें उनके निवारण के लिये अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करते रहें ॥ २ ॥

महर्षि दयानन्द के अनुसार अर्थ—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना विषय ॥

हे परमेश्वर! (अष्टाविंशानि) अट्ठाईस [दश इन्द्रिय, दश प्राण, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार विद्या, स्वभाव, शरीर और बल] (शिवानि) कल्याण कारक और (शग्मानि) सुखकारक होकर (सह) एक साथ (मे) मेरे (योगम्) उपासना योग को (भजन्ताम्) सेवन करें। (योगम्) उस योग को (च) और (क्षेमम्) रक्षा को [अर्थात् योग के द्वारा रक्षा को] (प्र पद्ये) मैं प्राप्त होऊं और (क्षेमम्) रक्षा को (च) और (योगम्) योग को [अर्थात् रक्षा से योग को] (प्र पद्ये) मैं प्राप्त होऊं, [इसलिये मेरा तुझ को] (अहोरात्राभ्याम्) दिन राति (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥

स्वस्ततं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यं १ मत्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥

सामर्थ्यम् । उपासनायोगम् (भजन्तु) विभक्तं कुर्वन्तु । सेवन्ताम् (मे) मह्यम् । मम (योगम्) (प्र पद्ये) प्राप्नुयाम् (क्षेमम्) रक्षासामर्थ्यम् (च) (क्षेमम्) (प्र पद्ये) (योगम्) (च) (नमः) अन्नम्—निघ० २ । ७ । नमस्कारः (अहोरात्राभ्याम्) अहोरात्रे अनुकूलयितुम् । दिवसे रात्रौ च (अस्तु) भवतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्तितम् । मे । सु-प्रातः । सु-सायम् । सु-दिवम् । सु-मृगम् । सु-शकुनम् । मे । अस्तु ॥ सु-हवम् । अग्ने । स्वस्ति । अमर्त्यम् । गत्वा । पुनः । आय । अभि-नन्दन् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सुप्रातः) सुन्दर प्रातःकाल, (सुसायम्) सुन्दर सायंकाल और (सुदिवम्) सुन्दर दिन (मे) मेरे लिये (सुमृगम्) सुन्दर पशुओं का झुण्ड तथा (सुशकुनम्) सुन्दर पक्षियों का समूह (मे) मेरे लिये (स्वस्तितम्) आनन्द [वा सुन्दर सत्ता] फैलाने वाला (अस्तु) होवे। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (सुहवम्) सुन्दर ग्रहण योग्य और (अमर्त्यम्) अमर [अनश्वर] (स्वस्ति) आनन्द [वा सुन्दर सत्ता] (गत्वा = गमयित्वा) प्राप्त कराकर (अभिनन्दन्) अभिनन्दन [मान] करता हुआ तू (पुनः) अवश्य करके (आय) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थों के ज्ञान और उपयोग से अपने समय को और अपनी सत्ता को सुधारते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त होकर स्थिर सुख भोगते हैं ॥ ३ ॥

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वꣳ रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

अनु-हवम् । परि-हवम् । परि-वादम् । परि-क्षवम् ॥ सर्वः । मे । रिक्त-कुम्भान् । परा । तान् । सवितः । सुव ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(अनुहवम्) विवाद (परिहवम्) बकवाद (परिवादम्)

३—(स्वस्तितम्) स्वस्ति+तनु विस्तारे—ड। आनन्दस्य सुसत्तायाः वा विस्तारकम् (मे) मह्यम् (सुप्रातः) शोभनः प्रातःकालः (सुसायम्) शोभनः सायङ्कालः (सुदिवम्) शोभनं दिनम् (सुमृगम्) स नपुंसकम्। पा० २। ४। १७। इति समाहारे नपुंसकम्। शोभनानां पशूनां समाहारः (सुशकुनम्) शोभनानां पक्षिणां समाहारः (मे) मम (अस्तु) भवतु (सुहवम्) हु दानादानादनेषु—अप्। सुग्राह्यम् (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् (स्वस्ति) कल्याणम्। शोभनम्। अस्तित्वम् (अमर्त्यम्) मरणरहितम्। अनश्वरम् (गत्वा) अन्तर्गतण्यर्थः। गमयित्वा (पुनः) अवश्यम् (आय) आङ्+अय गतौ—लोट्, परस्मैपदम्। आगच्छ। प्राप्नुहि (अभिनन्दन्) मानं हर्षं वा कुर्वन्॥

४—(अनुहवम्) ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु। पा० ३। ३। ७२।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपवाद और (परिह्वम्) नाक के फुरफुराहट, (तान्) इन (रिक्तकुम्भान्) रीते घड़ों [निकम्मे कामों] को (मे) मेरे (सर्वैः) सब [दोषों] सहित, (सवितः) हे सर्व प्रेरक परमात्मन् ! (परा सुव) दूर कर दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक दोषों को विचार कर परमेश्वर की उपासना करके दूर करे ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का कुछ मिलान करो—अ० १० । ३ । ६ ॥

अपपापं परिह्वं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगन्धाभि मेहताम् ॥ ५ ॥

अप-पापम् । परि-ह्वम् । पुण्यम् । भक्षीमहि । क्षवम् ॥ शिवा । ते । पाप । नासिकाम् । पुण्य-गन्धः । च । अभि । मेहताम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(अपपापम्) बहुत दोषयुक्त (परिह्वम्) नाक के फुरफुराहट को [हे परमात्मन् ! दूर कर दे—म० ४], (पुण्यम्) शुद्ध [निर्दोष] (क्षवम्) छींक को (भक्षीमहि) हम भोगें । (पाप) हे पापी ! [रोगी वा दोषी] (ते) तेरी (नासिकाम्) नासिका [आदि इन्द्रियों] को (शिवा) कल्याण कारक [क्रिया] (च) और (पुण्यगन्धः) पवित्रता पहुंचाने वाला [व्यवहार] (अभि) सब ओर से (मेहताम्) सींचे [शोधे] ॥ ५ ॥

अनु+ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च—अप् संप्रसारणं च बाहुलकात् । विवादम् (परिह्वम्) परि+ह्वयतेः—अप् संप्रसारणं च । वकवादम् (परिवादम्) अपवादम् (परिह्वम्) अ० १० । ३ । ६ । टुक्षु नासाशब्दे—अप् । नासातो वायुनिसरणजन्यशब्दम् (सर्वैः) सर्वदोषैः (मे) मम (रिक्तकुम्भान्) शून्य कलशान् । व्यर्थव्यवहारान् (परा) दूरे (तान्) पूर्वोक्तान् (सवितः) हे सर्व-प्रेरक परमात्मन् (सुव) षू प्रेरणे । प्रेरय ॥

५—(अपपापम्) बहुदोषयुक्तम् (परिह्वम्) म० ४ । नासातो वायु-निसरणजन्यशब्दम्—सवितः परासुव इति पूर्वेणान्वयः (पुण्यम्) पवित्रम् । श्रेयस्करम् । निर्दोषम् (भक्षीमहि) भज सेवायाम्—आशीर्लिङि । सेविषीमहि लप्सीमहि (क्षवम्) नासिकाशब्दम् (शिवा) शुभा क्रिया (ते) तव (पाप) हे पापिन् रोगिन् दोषिन् वा (नासिकाम्) (पुण्यगन्धः) शुद्धिप्रापको व्यवहारः (च) (अभि) सर्वतः (मेहताम्) सिञ्चतु । शोधयतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य अशुद्धिकारक रोगजन्य छींक आदि दोषों को हटाकर उत्तम उत्तम व्यवहारों और चेष्टाओं से इन्द्रियों को प्रबल करके सुखी होवें ॥ ५ ॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥

इमाः । याः । ब्रह्मणः । पते । विषूचीः । वातः । ईरते ॥ सध्रीचीः । इन्द्र । ताः । कृत्वा । मह्यम् । शिव-तमाः । कृधि ६

भाषार्थ—(ब्रह्मणःपते) हे ब्रह्माण्ड के स्वामी परमात्मन् । (इमाः) इन (याः) जिन (विषूचीः) विविध फैली हुयी [दिशाओं] को (वातः) पवन (ईरते) पहुंचाता है । (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर ! (ताः) उनको (सध्रीचीः) परस्पर पूजनीय (कृत्वा) करके (मह्यम्) मेरे लिये (शिवतमाः) अत्यन्त सुखकारिणी (कृधि) कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—पूर्वादि सब दिशाओं में वायु जल आदि पदार्थ परिपूर्ण हैं, मनुष्य सर्वत्र परमात्मा के विचार के साथ परस्पर सहाय करके सुख प्राप्त करें ॥६॥

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥

स्वस्ति । नः । अस्तु । अभयम् । नः । अस्तु । नमः । अहोरात्राभ्याम् । अस्तु ॥ ७ ॥

भावार्थ—[हे परमात्मन् !] (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण [सुन्दर

६—(इमाः) परिदृश्यमानाः (याः) (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्माण्डस्य स्वामिन् परमात्मन् (विषूचीः) विष्वगञ्चनाः । विविधव्यापिका दिशाः (वातः) वायुः (ईरते) भौवादिकः । गच्छति । प्राप्नोति (सध्रीचीः) सह+अञ्चतेः—क्विन्, ङीप्, सहस्य सधि आदेशः । परस्परपूजनीयाः (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् जगदीश्वर (ताः) दिशः (कृत्वा) विधाय (मह्यम्) मदर्थम् (शिवतमाः) अत्यर्थं सुखकारिणीः (कृधि) कुरु ॥

७—(स्वस्ति) कल्याणम् । सु ष्टु अस्तिःवम् (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता] (अस्तु) होवे (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, [हमें] (अहोरात्राभ्याम्)दोनों दिन राति के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) होवे॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपनी सत्ता को सुधार कर सदा निर्भय होकर अन्न आदि प्राप्त करें ॥ ७ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद—म० २ में आया है ॥

सूक्तम् ८ [शान्तिसूक्तम्] ॥

१—१४ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १, २, ७ भुरिगनुष्टुप् ; ३, ४, ६, ८, १० अनुष्टुप् ; ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ; ९ आर्षी त्रिष्टुप् ; ११ निचृदनुष्टुप् ; १२ निचृद्दष्टिः ; १३ स्वराडनुष्टुप् ; १४ संकृतिः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्यों को कर्तव्य का उपदेश ॥

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥

शान्ता । द्यौः । शान्ता । पृथिवी । शान्तम् । इदम् । उरु । अन्तरिक्षम् ॥ शान्ताः । उदन्वतीः । आपः । शान्ताः । नः । सन्तु । ओषधीः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(द्यौः) प्रकाशमान [सूर्य आदि की विद्या] (शान्ता) शान्तियुक्त, (पृथिवी) चौड़ी [पृथिवी आदि] (शान्ता) शान्तियुक्त, (इदम्) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती आकाश (शान्तम्) शान्तियुक्त [होवे] । (उदन्वतीः) उत्तम जल वाली (आपः) फैली हुई नदियां (शान्ताः)

भवतु (अभयम्) भयराहित्यम् (नः) (अस्तु) । अन्यत् पूर्ववत्—म० २ ॥

१—(शान्ता) शमु उपशमे—क्त। शान्तियुक्ता (द्यौः) प्रकाशमानः सूर्यादिलोकः (शान्ता) (पृथिवी) विस्तीर्णो भूम्यादिलोकः (शान्तम्) शान्तियुक्तम् (इदम्) दृश्यमानम् (उरु) विस्तीर्णम् (अन्तरिक्षम्) मध्ये वर्तमानमाकाशम् (शान्ताः) (उदन्वतीः) अ० १८ । २ । ४८ । उदकस्य उदन् मतौ, प्रशंसायां मतुप् । उदन्वत्यः । प्रशस्तजलाः (आपः) व्यापिका नद्यः (शान्ताः) (नः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तियुक्त और (ओषधीः) ओषधियां [अन्न सोमलता आदि] (नः) हमारे लिये (शान्ताः) शान्तियुक्त (सन्तु) होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि प्रकाशविद्या, भूमिविद्या, आकाशविद्या, जलविद्या, अन्न, ओषधि आदि की अनेक विद्याओं को प्राप्त करके संसार को सुख पहुंचावें ॥ १ ॥

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥

शान्तानि । पूर्व-रूपाणि । शान्तम् । नः । अस्तु । कृत-अकृतम् ॥ शान्तम् । भूतम् । च । भव्यम् । च । सर्वम् । एव । शम् । अस्तु । नः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(पूर्वरूपाणि) पूर्व रूप [आरम्भ के चिह्न) (शान्तानि) शान्तियुक्त, (कृताकृतम्) किया हुआ और न किया हुआ [मन में विचारा हुआ कर्म] (नः) हमारे लिये (शान्तम्) शान्तियुक्त (अस्तु) होवे । (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (शान्तम्) शान्तियुक्त (च) और (सर्वम्) सब (एव) ही (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तियुक्त (अस्तु) होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—यह कार्य कैसे हुआ वा कैसे होगा, हम ने किया है वा करना विचारा है, उस का फल क्या होगा, पूर्वजों के कर्म का क्या फल हुआ, आगे क्या होगा, ऐसा सोचकर मनुष्य उचित कर्तव्य करता हुआ आनन्द प्राप्त करे ॥ २ ॥

अस्मभ्यम् (सन्तु) (ओषधीः) वा छन्दसि । पा० ६ । १ । १०६ । इति यणादेशाभावे पूर्वसवर्णदीर्घः । ओषध्यः । अन्नसोमलतादयः ॥

२—(शान्तानि) शान्तियुक्तानि । सुखकराणि (पूर्वरूपाणि) प्रथमलक्षणानि । आरम्भचिह्नानि (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) (कृताकृतम्) कृतं निष्पादितम् अकृतमनिष्पादितं मनसि निर्धारितं कर्म (शान्तम्) (भूतम्) अतीतम् (च) (भव्यम्) भविष्यत् । अनागतम् (च) (सर्वम्) (एव) निश्चयेन (शम्) शान्तिकरम् (अस्तु) (नः) अस्मभ्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥

इयम् । या । परमे-स्थिनी । वाक् । देवी । ब्रह्म-संशिता ॥
यया । एव । ससृजे । घोरम् । तया । एव । शान्तिः । अस्तु ।
नः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(इयम्) यह (या) जो (परमेष्ठिनी) सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाली, (देवी) उत्तमगुण वाली (वाक्) वाणी (ब्रह्मसंशिता) वेद-ज्ञान से तीक्ष्ण की गयी है, और (यया) जिस [वाणी] के द्वारा (एव) ही (घोरम्) घोर [भयङ्कर पाप] (ससृजे) उत्पन्न हुआ है, (तया) उस [वाणी] के द्वारा (एव) ही (नः) हमारे लिये (शान्तिः) शान्ति [धैर्य, आनन्द] (अस्तु) होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस वाणी के द्वारा वेदों को विचार कर परमात्मा को पहुंचते हैं, यदि उस वाणी द्वारा कोई अनर्थ होवे, विद्वान् मनुष्य उस भूल को उचित व्यवहार से सुधार कर शान्ति स्थापित करे ॥ ३ ॥

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

इदम् । यत् । परमे-स्थिनम् । मनः । वाम् । ब्रह्म-संशितम् ॥
येन । एव । ससृजे । घोरम् । तेन । एव । शान्तिः ।
अस्तु । नः ॥ ४ ॥

३—(इयम्) दृश्यमाना (या) (परमेष्ठिनी) परमे कित् । उ० ४ । १०। परम+ष्ठा गतिनिवृत्तौ—इनि कित्, ङीप्, सप्तम्या अलुक् षत्वं च । परमे सर्वोत्कृष्टे परमात्मनि स्थितिशीला (वाक्) वाणी (देवी) दिव्यगुणा (ब्रह्मसंशिता) ब्रह्मणा वेदज्ञानेन सम्यक् तीक्ष्णीकृता उत्तेजिता (यया) वाचा (एव) निश्चयेन (ससृजे) सृष्टम् । उत्पन्नम् (घोरम्) भयङ्करं पापम् (तया) वाचा (एव) (शान्तिः) सुखकरी क्रिया । धैर्यम् । आनन्दः (अस्तु) (नः) अस्मभ्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(इदम्) यह (यत्) जो (परमेष्ठिनम्) सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाला (वाम्) तुम दोनों [स्त्री पुरुषों] का (मनः) मन (ब्रह्मसंशितम्) वेदज्ञान से तीक्ष्ण किया गया है, और (येन) जिस [मन]के द्वारा (एव) ही (घोरम्) घोर [भयङ्कर पाप] (ससृजे) उत्पन्न हुआ है, (तेन) उस [मन] के द्वारा (एव) ही (नः) हमारे लिये (शान्तिः) शान्ति [धैर्य, आनन्द] (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—यह मन जो परमात्मा का निवास और वेदज्ञान का कोश है, यदि उस मन में कोई विकार उत्पन्न हो तो हे मनुष्यो ! उस को ठीक करके परस्पर सुख बढ़ाओ ॥ ४ ॥

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि । यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

इमानि । यानि । पञ्च । इन्द्रियाणि । मनःषष्ठानि । मे । हृदि । ब्रह्मणा । सम्-शितानि ॥ यैः । एव । ससृजे । घोरम् । तैः । एव । शान्तिः । अस्तु । नः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(इमानि) ये (यानि) जो (मनःषष्ठानि) छठे मन सहित (पञ्च) पांच (इन्द्रियाणि) इन्द्रियां [कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा और त्वचा ज्ञानेन्द्रियां] (मे) मेरे (हृदि) हृदय में (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (संशितानि) तीक्ष्ण की गयी हैं। और (यैः) जिन [इन्द्रियों] के द्वारा (एव) ही (घोरम्) घोर [भयङ्कर पाप] (ससृजे) उत्पन्न हुआ है, (तैः) उन के द्वारा (एव) ही

४–(इदम्) उपस्थितम् (यत्) (परमेष्ठिनम्) अर्त्तेः किदिच्च । उ० २ । ५१ । परम + ष्ठा गतिनिवृत्तौ—इनन्, कित् । परमे सर्वोत्कृष्टे परमात्मनि स्थितिशीलम् (मनः) अन्तःकरणम् (वाम्) युवयोः । स्त्रीपुरुषयोः (ब्रह्मसंशितम्) ब्रह्मणा वेदज्ञानेन तीक्ष्णीकृतम् उत्तेजितम् । (येन) मनसा (तेन) मनसा । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३ ॥

५—(इमानि) दृश्यमानानि (यानि) (पञ्च) (इन्द्रियाणि) श्रोत्रनेत्रनासिकाजिह्वात्वग्रूपाणि ज्ञानेन्द्रियाणि (मनःषष्ठानि) मनः षष्ठं येषां तानि (मे) मम (हृदि) हृदये (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (संशितानि) तीक्ष्णीकृतानि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारे लिये (शान्तिः) शान्ति [धैर्य्य, आनन्द] (अस्तु) होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ--जो मन और सब ज्ञानेन्द्रियां वेदज्ञान से तेजस्वी हुये हैं, यदि उनके विकार से कोई पाप घटना हो जावे विद्वान् पुरुष उसे सुधार कर आपस में सुख भोगें ॥ ५ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

शम् । नः । मित्रः । शम् । वरुणः । शम् । विष्णुः । शम् । प्रजा-पतिः ॥ शम् । नः । इन्द्रः । बृहस्पतिः । शम् । नः । भवतु । अर्यमा ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(नः) हमारे लिये (मित्रः) सबका मित्र [परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष] (शम्) शान्तिदायक, (वरुणः) सब में श्रेष्ठ (शम्) शान्तिदायक, (विष्णुः) सब गुणों में व्यापक (शम्) शान्तिदायक, (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजाओं का रक्षक] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (नः) हमारे लिये (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान्, (बृहस्पतिः) बड़ी वेदविद्या का रक्षक (शम्) शान्तिदायक, (नः) हमारे लिये (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला [न्यायकारी परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष] (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे सर्वहितकारी, सर्वश्रेष्ठ, सर्वगुण विशिष्ट परमेश्वर सब जगत् की रक्षा करता है, वैसे ही विद्वान् जन परस्पर स्नेह करके संसार का उपकार करें ॥ ६ ॥

यह मन्त्रकुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ९० । ९ और यजुर्वेद-३६ । ९ ॥

(यैः) इन्द्रियैः (तैः) इन्द्रियैः । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३ ॥

६—(शम्) सुखकारी (नः) अस्मभ्यम् (मित्रः) ञिमिदा स्नेहने-क्त्र । सर्वस्नेही परमेश्वरो विद्वान् वा (शम्) (वरुणः) सर्वोत्कृष्टः (शम्) (विष्णुः) सर्वगुणेषु व्यापकः (शम्) (प्रजापतिः) प्रजानां पालकः (शम्) (नः) (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तः (बृहस्पतिः) बृहत्या वाचो विद्यायाः पतिः पालकः (शम्) (नः) (भवतु (अर्यमा) श्रेष्ठानां मानकर्ता न्यायकारी परमेश्वरो मनुष्यो वा ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाँ अमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७

शम् । नः । मित्रः । शम् । वरुणः । शम् । विवस्वान् । शम् । अन्तकः ॥ उत्-पाताः । पार्थिवा । आन्तरिक्षाः । शम् । नः । दिवि-चराः । ग्रहाः ॥ ७ ॥

भाषार्थ--(नः) हमारे लिये (मित्रः) प्राण वायु (शम्) शान्तिदायक, (वरुणः) जल [वा अपान वायु], (शम्) शान्तिदायक (विवस्वान्) विविध चमकने वाला सूर्य (शम्) शान्तिदायक (अन्तकः) अन्त करने वाला [मृत्यु] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (पार्थिवा) पृथिवी पर होने वाले और (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष [आकाश] में होनें वाले (उत्पाताः) उत्पात [उपद्रव] और (दिविचराः) सूर्य के प्रभाव में घूमने वाले (ग्रहाः) ग्रह [चन्द्र, मङ्गल, बुध आदि] (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक [होवें] ॥ ७ ॥

भावार्थ--मनुष्यों को विद्यापूर्वक वायु जल आदि पदार्थों से उपकार लेकर सुखी होना चाहिये ॥ ७ ॥

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यती: ॥ ८ ॥

शम् । नः । भूमिः । वेप्यमाना । शम् । उल्का । निः-हतम् । च । यत् ॥ शम् । गावः । लोहित-क्षीराः । शम् । भूमिः । अव । तीर्यती: ॥ ८ ॥

७--(शम्) शान्तिप्रदः (नः) अस्मभ्यम् (मित्रः) मिनोतेः-कत्र । प्रेरकः प्राणः (शम्) (वरुणः) जलम् । अपानः (शम्) (विवस्वान्) विविध-प्रकाशकः सूर्यः (शम्) (अन्तकः) अन्त+करोतेः--डप्रत्ययः । अन्तकरः । मृत्युः (उत्पाताः) उपद्रवाः (पार्थिवा) विभक्तेर्डा । पार्थिवाः । पृथिव्यां भवाः (आन्तरिक्षाः) आकाशे भवाः (शम्) (नः) (दिविचराः) सूर्यप्रभावे विचरणशीलाः (ग्रहाः) चन्द्रमङ्गलबुधादयः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ--(नः) हमारे लिये (वेप्यमाना) कांपती हुई (भूमिः) भूमि (शम्) शान्तिदायक, (च) और (यत्) जो कुछ (उल्का) उल्काओं से [रेखाकार आकाश से गिरते हुये तेजपुञ्जों, टूटते हुये तारों से] (निर्हतम्) नष्ट किया गया है, [वह] (शम्) शान्तिदायक [होवे] । (लोहितक्षीराः) रुधिर युक्त दूध देने वाली (गावः) गौयें (शम्) शान्तिदायक [होवें] और (अव तीर्यतीः) धसकती हुयी (भूमिः) भूमि (शम्) शान्तिदायक [होवे]॥८॥

भावार्थ—दूरदर्शी मनुष्य भूकम्प, तारे टूटने, रोग के कारण दूध बिगड़ने, दलदल से पृथिवी के बैठ जाने आदि विघ्नों से बचने का उपाय करके सुखी होवें ॥ ८ ॥

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः । शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का दृंशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥

नक्षत्रम् । उल्का । अभि-हतम् । शम् । अस्तु । नः । शम् । नः । अभि-चाराः । शम् । ऊं इति । सन्तु । कृत्याः ॥ शम् । नः । नि-खाताः । वल्गाः । शम् । उल्काः । दृंशोप-सर्गाः । शम् । ऊं इति । नः । भवन्तु ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(उल्का) उल्काओं [टूटते तारों] से (अभिहतम्) नष्ट किया हुआ (नक्षत्रम्) नक्षत्र (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) होवे,

---

८—(शम्) शान्तिप्रदा (नः) अस्मभ्यम् (भूमिः) (वेप्यमाना) कम्पमाना (शम्) (उल्का) उल दाहे-कप्रत्ययः, विभक्तेर्डा । उल्काभिः । रेखाकारे गगनात् पतत्तेजःपुञ्जैः (निर्हतम्) विनष्टम् (च) (यत्) यत् किञ्चित् (शम्) (गावः) धेनवः (लोहितक्षीराः) रुधिरयुक्तदुग्धोपेताः (शम्) (भूमिः) (अवतीर्यतीः) तॄ प्लवनतरणयोः—शतृ, ङीप् । बहुवचनं छान्दसम् । अवतीर्यती । अवतीर्यमाणा जलवाहुल्येनाधोगमना ॥

९—(नक्षत्रम्) गमनशीलो लोकः (उल्का) म० ८ । उल्काभिः । रेखाकारे गगनात् पतत्तेजोभिः (अभिहतम्) विनष्टम् (शम्) शान्तिप्रदम् (अस्तु)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारे लिये (अभिचाराः) विरुद्ध आचरण (शम्) शान्तिदायक (उ) और (कृत्याः) हिंसा क्रियायें (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें । (निखाताः) खोदे हुये (वल्गाः) गढ़े [सुरङ्ग आदि] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक, (उल्काः) उल्कायें [टूटते तारे] (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (देशोपसर्गाः) देश के उपद्रव (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष दैवी और मानुषी विपत्तियों से बचने का प्रयत्न करते रहें ॥ ९ ॥

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥

शम् । नः । ग्रहाः । चान्द्रमसाः । शम् । आदित्यः । च । राहुणा ॥ शम् । नः । मृत्युः । धूम-केतुः । शम् । रुद्राः । तिग्म-तेजसः ॥ १० ॥

भाषार्थ—(चान्द्रमसाः) चन्द्रमा के (ग्रहाः) ग्रह [कृत्तिका आदि नक्षत्र] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक [होवें], (च) और (आदित्यः) सूर्य (राहुणा) राहु [ग्रह विशेष] के साथ (शम्) शान्तिदायक [होवे] । (मृत्युः) मृत्युरूप (धूमकेतुः) धूमकेतु [पुच्छल तारा] (नः) हमें (शम्)

(नः) अस्मभ्यम् (अभिचाराः) व्यभिचाराः । विरुद्धाचरणानि (शम्) (उ) चार्थे (कृत्याः) अ० १४ । २ । ४९ । कृञ् हिंसायाम्—क्यप् तुक् च । हिंसाक्रियाः (शम्) (नः) (निखाताः) विदारिताः (वल्गाः) मुदिमोर्गश्च । उ० १ । १२८ । वल संवरणे—गप्रत्ययः । गर्ताः । भूमिच्छिद्राणि (शम्) (उल्काः) अ० ८ । गगनात्पतत्तेजःपुञ्जाः (देशोपसर्गाः) देशोपद्रवाः (शम्) (उ) (नः) (भवन्तु) ॥

१०—(शम्) शान्तिप्रदाः (नः) अस्मभ्यम् (ग्रहाः) कृत्तिकादिनक्षत्रगणाः (चान्द्रमसाः) चन्द्रलोकसम्बन्धिनः (शम्) (आदित्यः) आदीप्यमानः सूर्यः (च) (राहुणा) दसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो भुण् । उ० १ । ३ । रह त्यागे—भुण् । ज्योतिश्चक्रस्थेन सूर्यकिरणसम्पर्काभावेन जायमानपृथिवीच्छायाकारकेण ग्रहभेदेन (शम्) (नः) (मृत्युः) मृत्युरूपः (धूमकेतुः) उत्पात-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिदायक [हो], (तिग्मतेजसः) तीक्ष्ण तेज वाले (रुद्राः) गतिमान् [बृहस्पति आदि ग्रह] (शम्) शान्तिदायक [होवें] ॥ १० ॥

भावार्थ—राहु ग्रह विशेष, प्रकाश को रोककर सूर्य और चन्द्र के ग्रहण का कारण होता है, धूमकेतु अपनी टेढ़ी चाल से अनेक ग्रहों और नक्षत्रों को टकरा कर नाश करता है, मनुष्य ज्योतिष शास्त्र द्वारा दूरदर्शी होकर विघ्नों से बचने का उपाय करें ॥ १० ॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

शम् । रुद्राः । शम् । वसवः । शम् । आदित्याः । शम् । अग्नयः ॥ शम् । नः । महा-ऋषयः । देवाः । शम् । देवाः । शम् । बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(रुद्राः) रुद्र [ग्यारह रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा] (शम्) शान्तिदायक (वसवः) वसु [आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण] (शम्) शन्तिदायक (आदित्याः) महीने [चैत्र आदि बारह महीने] (शम्) शान्तिदायक और (अग्नयः) अग्नियां [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल] (शम्) शान्तिदायक [होवें]। (महर्षयः) महर्षि [बड़े बड़े वेदज्ञाता] (देवाः) विद्वान् लोग

रूपोऽशुभसूचकस्तारापुञ्जभेदः (शम्) (रुद्राः) रु गतौ—क्विप्, तुक्। रोमत्वर्थीयः। गतिमन्तो ग्रहाः (तिग्मतेजसः) तीक्ष्णतापाः ॥

११—(शम्) शान्तिप्रदाः (रुदाः) रु गतौ—क्विप्, तुक्, रो मत्वर्थीयः गतिमन्तः । प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाख्या दश प्राणा एकादशो जीवश्चेत्येकादश रुद्राः-दयानन्दकृतभाष्ये, यजु० २ । ५ (शम्) (वसवः) अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः—दयानन्दभाष्ये, यजु० २ । ५ (शम्) (आदित्याः) द्वादशमासाः—तत्रैव (शम्) (अग्नयः) शारीरिकात्मिकसामाजिकपराक्रमाः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमें (शम्) शान्तिदायक, (देवाः) उत्तम व्यवहार (शम्) शान्तिदायक [होवें] और (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्डों का स्वामी [परमात्मा] (शम्) शान्तिदायक [होवे] ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य रुद्र, वसु और आदित्य संज्ञक पदार्थों को प्रयत्न पूर्वक महर्षि विद्वानों के सत्संग और परमात्मा के विश्वास से अनेक व्यवहारों में प्रयुक्त करके सब जीवों को सुख पहुंचावें ॥ ११ ॥

रुद्र, वसु और आदित्य शब्दों के लिये महर्षि दयानन्दकृत यजुर्वेदभाष्य—२ । ५ । देखो ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः । तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु । विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥

ब्रह्म । प्रजा-पतिः । धाता । लोकाः । वेदाः । सप्त-ऋषयः । अग्नयः ॥ तैः । मे । कृतम् । स्वस्त्ययनम् । इन्द्रः । मे । शर्म । यच्छतु । ब्रह्मा । मे । शर्म । यच्छतु ॥ विश्वे । मे । देवाः । शर्म । यच्छन्तु । सर्वे । मे । देवाः । शर्म । यच्छन्तु ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्म) अन्न, (प्रजापतिः) प्रजापालक [इन्द्रियादि का रक्षक] और (धाता) पोषक [जीवात्मा], (लोकाः) सब लोक [पृथिवी आदि] (वेदाः) ऋग्वेद आदि चारो वेद, (सप्तऋषयः) सात ऋषि [कान, आंख, नाक, जिह्वा त्वचा पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि], और (अग्नयः) अग्नि [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक पराक्रम] [जो हैं] । (तैः) उन करके

(शम्) (नः) (महर्षयः) महान्तो वेदार्थज्ञातारः (देवाः) विद्वांसः (शम्) (देवाः) उत्तमव्यवहाराः (शम्) (बृहस्पतिः) बृहतां ब्रह्माण्डानां पालकः परमेश्वरः ॥

१२—(ब्रह्म) अन्नम्—निघ० २ । ७ (प्रजापतिः) इन्द्रियादिप्रजानां पालकः (धाता) पोषको जीवात्मा (लोकाः) पृथिव्यादयः (वेदाः) ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदाः (सप्तऋषयः) मनोबुद्धिसहितानि श्रोत्रनेत्रनासिकाजिह्वात्वग्—रूपाणि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि (अग्नयः) ऋ० ११ (तैः) पूर्वोक्तैः (मे) मह्यम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मे) मेरे लिये (स्वस्त्ययनम्) कल्याण का मार्ग (कृतम्) बनाया गया, है (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (मे) मेरे लिये (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे, (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब से बड़ा परमात्मा] (मे) मेरे लिये (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की सृष्टि के बीच वेद आदि शास्त्र द्वारा संसार के अन्न आदि पदार्थों को इन्द्रियों और मन बुद्धि द्वारा यथावत् परीक्षा करके काम में लावें, और परमेश्वर को धन्यवाद देते हुये सुख प्राप्त करें ॥ १२ ॥

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मेऽस्त्वभयं मेऽस्तु ॥ १३ ॥

यानि । कानि । चित् । शान्तानि । लोके । सप्त-ऋषयः । विदुः ॥ सर्वाणि । शम् । भवन्तु । मे । शम् । मे । अस्तु । अभयम् । मे । अस्तु ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(यानि) जिन (कानि) किन्ही (चित्) भी [शान्तानि] शान्तकर्मों को (लोके) संसार में (सप्तऋषयः) सात ऋषि [कान, आंख, नाक, जिह्वा त्वचा पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि] (विदुः) जानते हैं । (सर्वाणि) वे सब (मे) मेरे लिये (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें, (मे) मेरे लिये (शम्) शान्ति [आरोग्यता धैर्य आदि] (अस्तु) होवे, (मे) मेरे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥ १३ ॥

(कृतम्) निष्पादितम् (स्वस्त्ययनम्) कल्याणमार्गः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (मे) (शर्म) सुखम् (यच्छतु) ददातु (ब्रह्मा) सर्वेभ्यः प्रवृद्धः परमात्मा । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१३—(यानि कानि) उक्तानुक्तानि (चित्) एव (शान्तानि) शान्तियुक्तानि कर्माणि (लोके) संसारे (सप्तऋषयः) म० १२ । मनोबुद्धिसहितानि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि (विदुः) जानन्ति (सर्वाणि) (शम्) शान्तकराणि (भवन्तु) (मे) मह्यम् (शम्) (मे) (अस्तु) (अभयम्) भयराहित्यम् (मे) (अस्तु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि संसार के सब पदार्थों को साक्षात् करके उनसे यथावत् लाभ उठावें और धर्म का आचरण करते हुये धैर्य के साथ निर्भय रहें ॥ १३ ॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ १४ ॥

पृथिवी । शान्तिः । अन्तरिक्षम् । शान्तिः । द्यौः । शान्तिः । आपः । शान्तिः । ओषधयः । शान्तिः । वनस्पतयः । शान्तिः । विश्वे । मे । देवाः । शान्तिः । सर्वे । मे । देवाः । शान्तिः । शान्तिः । शान्तिः । शान्ति-भिः॥ ताभिः । शान्ति-भिः । सर्वं । शान्तिभिः । शम् । अयामः । अहम् । यत् । इह । घोरम् । यत् । इह । क्रूरम् । यत् । इह । पापम् । तत् । शान्तम् । तत् । शिवम् । सर्वम् । एव । शम् । अस्तु । नः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(पृथिवी) भूमि (शान्तिः) शान्तिदायक [हो], (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक [वायुमण्डल, मेघमण्डल तारागण आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (द्यौः) प्रकाशमान [सूर्य आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो; (आपः) जल (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (ओषधयः) ओषधें [अन्न सोमलता आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (वनस्पतयः) वनस्पतियां [बट-

१४—(पृथिवी) भूमिः (शान्तिः) शान्तिकरी (अन्तरिक्षम्) मध्यलोकः (शान्तिः) (द्यौः) प्रकाशमानः सूर्यादिः (शान्तिः) (आपः) जलानि (शान्तिः) (ओषधयः) अन्नसोमलताद्याः (वनस्पतयः) वटादिवृक्षाः (शान्तिः) (विश्वे) सर्वे (मे) मह्यम् (देवाः) विद्वांसः (शान्तिः) (सर्वे) (मे) (देवाः) दिव्यपदार्थाः (शान्तिः) (शान्तिः) (शान्तिभिः) सुखदायिकाभिः क्रियाभिः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि वृत्त] (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (सर्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थ (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (शान्तिभिः) शान्तियों [सुखदायक क्रियाओं] के साथ (शान्तिः) शान्ति, (शान्तिः) शान्ति [धैर्य आदि] हो। (ताभिः) उन (शान्तिभिः) शान्तियों [आनन्द क्रियाओं] से, (सर्व=सर्वाभिः) सब (शान्तिभिः) शान्तियों [धैर्य क्रियाओं] से (अहम्=वयम्) हम (शम्) शान्ति (अयामः) पावें, (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (घोरम्) घोर [भयङ्कर] हो, (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (क्रूरम्) क्रूर [निर्दय] हो, और (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (पापम्) पाप [अनिष्ट] हो, (तत्) वह (शान्तम्) शान्तियुक्त हो, (तत्) वह (शिवम्) कल्याण कारक हो, (सर्वम्) सब (एव) ही (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये कि पृथिवी आदि पदार्थ सदा सुखदायक होवें ॥ १४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३६ । १७ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १० [शान्तिसूक्तम्] ॥

१—१० ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १—५, ९ त्रिष्टुप्, ६, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप्, ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥

सृष्टिपदार्थेभ्य उपकारग्रहणोपदेशः—सृष्टि के पदार्थों से उपकार लेने का उपदेश ॥

(सर्व) विभक्तेर्लुक् । सर्वाभिः (शान्तिभिः) (शम्) शान्तिम् (अयामः) अय गतौ । प्राप्नुमः (अहम्) सुपां सुलुक्० । पा० ७। १ । ३९ । इति जसः सुः । वयम् (यत्) यत् किञ्चित् (इह) संसारे (घोरम्) भयङ्करम् (यत्) (इह) (क्रूरम्) निर्दयम् (यत्) (इह) (पापम्) अनिष्टम् (तत्) पूर्वोक्तम् (शान्तम्) (तत्) (शिवम्) कल्याणकरम् (सर्वम्) (एव) निश्चयेन (शम्) शान्तिप्रदम् (अस्तु) (नः) अस्मभ्यम् ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नं इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं नु इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं नु इन्द्रापूषणा वाजसातौ।१

शम् । नुः । इन्द्राग्नी इति । भवताम् । अवः-भिः । शम् । नुः । इन्द्रावरुणा । रात-हव्या ॥ शम् । इन्द्रासोमा । सुवि-ताय । शम् । योः । शम् । नुः । इन्द्रापूषणा । वाज-सातौ ।१॥

भाषार्थ—(इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि दोनों (अवोभिः) रक्षा साधनों के साथ (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवताम्) हों (रात-हव्या) ग्राह्य पदार्थों के देने हारे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल दोनों (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक [हों] । (शम्) शान्तिदायक (इन्द्रासोमा) बिजुली और चन्द्रमा (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (शम्) रोगनाशक और (योः) भयनिवारक हों, (इन्द्रापूषणा) बिजुली और पवन (वाजसातौ) पराक्रम के लाभ वा सङ्ग्राम में (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों ॥१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की सृष्टि में बिजुली आदि पदार्थों से सदा उपकार लेते रहें ॥ १ ॥

यह सूक्त, मन्त्र १-१० [मन्त्र ८ कुछ भेद से] ऋग्वेद में हैं—७ । ३५ । १-१०, और महर्षि दयानन्दकृत भाष्य में भी व्याख्यात हैं; यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३६ । ११ ॥

१—(शम्) सुखकारकौ (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्राग्नी) विद्युत्पावकौ (भवताम्) (अवोभिः) रक्षासाधनैः (शम्) (नः) (इन्द्रावरुणा) विद्युज्जले (रातहव्या) रातानि दत्तानि हव्यानि ग्राह्याणि वस्तूनि याभ्यां तौ (शम्) सुखकरौ (इन्द्रासोमा) विद्युच्चन्द्रौ (सुविताय) पिशेः किच्च । उ० ३ । ९५ । षू ऐश्वर्ये—इतन् स च कित् । ऐश्वर्याय (शम्) शमु उपशमे—विच् । रोगनाशकौ (योः) अ० १ । ६ । १ । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । पा० ३ । २ । ७५ । इति यु मिश्रणामिश्रणयोः—विच्, सकारश्छान्दसः, यद्वा । यु-डोसि । शंयोः.....शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम्-निरु० ४ । २१ । भयनिवारकौ (वाजसातौ) षण संभक्तौ—क्तिन् । पराक्रमस्य लाभे सङ्ग्रामे वा ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

शम् । नुः । भगंः । शम् । ऊं इति । नुः । शंसंः । अस्तु । शम् । नुः । पुरंम्-धिः । शम् । ऊं इति । सुन्तु । रायंः ॥ शम् । नुः । सत्यस्यं । सु-यमंस्य । शंसंः । शम् । नुः । अर्य्मा । पुरु-जातंः । अस्तु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(नः) हमारा (भगः) ऐश्वर्य (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (नः) हमारी (शंसः) स्तुति (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो (नः) हमारी [पुरंधिः] नगरों की धारण करने हारी बुद्धि (शम्) शन्तिदायक हो, (उ) और (रायः) सब प्रकार के धन (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों। (नः) हमारा (सत्यस्य) सच्चे (सुयमस्य) सुन्दर नियम का (शंसः) कथन (शम्) शान्तिदायक हो, (पुरुजातः) बहुत प्रसिद्ध (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने हारा [न्यायकारी परमेश्वर] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करें कि उनका ऐश्वर्य, उनका कथन, उनका शासन आदि सब कार्य न्याययुक्त हो, जिससे वह जगदीश्वर सदा आनन्द देवे ॥ २ ॥

२—(शम्) शान्तिप्रदः (नः) अस्माकम् (भगः) ऐश्वर्यम् (शम्) (उ) चार्थे (नः) (शंसः) शंसु हिंसास्तुतिकथनेषु—घञ् । स्तुतिः, कथनम् (अस्तु) (शम्) (नः) (पुरंधिः) कर्मण्यधिकरणे च । पा० ३ । ३ । ९३ । पुर+डु धाञ् धारणपोषणयोः—किप्रत्ययः, अलुक्समासः । पुरन्धिर्बहुधीः—निरु० ६ । १२ । पुरं गृहं नगरं शरीरं वा दधातीति । नगरस्य धारिका बुद्धिः (शम्) (उ) (सन्तु) (रायः) धनानि (शम्) (नः) (सत्यस्य) यथार्थस्य (सुयमस्य) शोभननियमस्य (शंसः) कथनम् (शम्) (नः) अस्मभ्यम् (अर्यमा) श्रेष्ठानां मानकर्ता न्यायकारी परमेश्वरः (पुरुजातः) बहुप्रसिद्धः (अस्तु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्व-धाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुह-वानि सन्तु ॥ ३ ॥

शम् । नः । धाता । शम् । ऊं इति । धर्ता । नः । अस्तु । शम् । नः । उरूची । भवतु । स्वधाभिः ॥ शम् । रोदसी इति । बृहती इति । शम् । नः । अद्रिः । शम् । नः । देवानाम् । सु-हवानि । सन्तु ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(धाता) पोषण करने वाला [पदार्थ] (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (उ) और (धर्ता) धारण करने वाला [पदार्थ] (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) हो, (उरूची) बहुत फैली हुयी प्रकृति [जगत् सामग्री] (नः) हमें (स्वधाभिः) अपनी धारण शक्तियों से (शम्) शान्तिकारक (भवतु) हो । (बृहती) दोनों बड़े (रोदसी) सूर्य और भूमि, (शम्) शान्तिकारक हों (अद्रिः) मेघ (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) सुन्दर बुलावे (नः) हमें (शम्) शान्ति-कारक (सन्तु) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वे धारण पोषण करने वाले पदार्थों के तत्त्व, प्रकृति के स्वभाव, सूर्य, पृथिवी, मेघ आदि के प्रभावों के ज्ञान से उपकारी होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा पाकर सुखी होवें ॥ ३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना

३—(शम्) शान्तिकारकः (नः) अस्मभ्यम् (धाता) पोषकः पदार्थः (शम्) (उ) चार्थे (धर्ता) धारकः पदार्थः (नः) (अस्तु) (शम्) (नः) (उरूची) बह्वञ्चना । विस्तीर्णव्यापिका प्रकृतिः (भवतु) (स्वधाभिः) आत्म-धारणशक्तिभिः (शम्) (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (बृहती) बृहत्यौ । विशाले (शम्) (नः) (अद्रिः) मेघः (शम्) (नः) (देवानाम्) विदुषाम् (सुहवानि) सत्कारेणाह्वानानि (सन्तु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

शम् । नुः । अग्निः । ज्योतिः-अनीकः । अस्तु । शम् । नुः । मित्रावरुणौ । अश्विना । शम् ॥ शम् । नुः । सु-कृताम् । सु-कृतानि । सन्तु । शम् । नुः । इषिरः । अभि । वातु । वातः ४

भाषार्थ—(ज्योतिरनीकः) ज्योति को सेना समान रखने वाला (अग्निः) अग्नि (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) हो, (मित्रावरुणौ) दोनों दिन और राति (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हों (अश्विना) दोनों सूर्य और चन्द्रमा (शम्) शान्तिकारक हों। (सुकृताम्) सुकर्मियों के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) हों, (इषिरः) शीघ्र गामी (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (अभि) सब ओर से (वातु) चले ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि, दिन राति, सूर्य चन्द्रमा और वायु आदि की गति से विद्वानों के समान उपकार लेते हैं वे सुखी रहते हैं ॥ ४ ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

शम् । नुः। द्यावापृथिवी इति । पूर्व-हूतौ । शम् । अन्तरिक्षम् । दृशये । नुः । अस्तु ॥ शम् । नुः । ओषधीः । वनिनः । भवन्तु । शम् । नुः । रजसः । पतिः । अस्तु । जिष्णुः ॥ ५ ॥

४—(शम्) शान्तिप्रदः (नः) (अग्निः) पावकः (ज्योतिरनीकः) ज्योतिरेवानीकं सैन्यमिव यस्य सः (अस्तु) (शम्) (नः) (मित्रावरुणौ) अहोरात्रे (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (शम्) (शम्) (नः) (सुकृताम्) पुण्यकर्मणाम् (सुकृतानि) पुण्यकर्माणि (सन्तु) (शम्) (नः) अस्मभ्यम् (इषिरः) वेगवान् (अभि) सर्वतः (वातु) गच्छतु (वातः) वायुः ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(पूर्वहूतौ) पहिले बुलावे [अर्थात् कार्य के आरम्भ में] (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक [मध्यवर्ती अवकाश] (दृशये) देखने के लिये (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो। (ओषधीः) ओषधियां [अन्न सोमलता आदि] और (वनिनः) वन के पदार्थ (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों (रजसः) लोक का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) विजयी मनुष्य (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—कार्य के आरम्भ में मनुष्य विचार लें कि सूर्य और भूमि के कारण से ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि ऋतुयें अनुकूल हों, आकाश निर्मल हो, अन्न आदि पदार्थ पुष्कल हों, जिससे मनोरथ सिद्धि में विजय प्राप्त हो ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

शम् । नः । इन्द्रः । वसु-भिः । देवः । अस्तु । शम् । आदि-त्येभिः । वरुणः । सु-शंसः ॥ शम् । नः । रुद्रः । रुद्रेभिः । जलाषः । शम् । नः । त्वष्टा । ग्नाभिः । इह । शृणोतु ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(देवः) प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) अनेक धनों वा किरणों से (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (सुशंसः) उत्तम गुण वाला (वरुणः) जल (आदित्येभिः) सूर्य के किरणों के साथ (शम्) शान्ति-

---

५—(शम्) शान्तिप्रदौ (नः) अस्मभ्यम् (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमिलोकौ (पूर्वहूतौ) प्रथमाह्वाने। कार्यारम्भे (शम्) (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्त्यवकाशः (दृशये) दर्शनाय (नः) (अस्तु) (शम्) (नः) (ओषधीः) अन्नसोमलतादयः (वनिनः) वने भवाः पदार्थाः (भवन्तु) (शम्) (नः) (रजसः) लोकस्य (पतिः) पालकः पुरुषः (अस्तु) (जिष्णुः) विजयी ॥

६—(शम्) शान्तिप्रदः (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) सूर्यः (वसुभिः) धनैः। किरणैः (देवः) प्रकाशमानः (अस्तु) (शम्) (आदित्येभिः) आदित्यस्य । आदित्यकिरणैः (वरुणः) जलसमूहः (सुशंसः) उत्तमगुणयुक्तः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायक हो। (जलाषः) जीवों की अभिलाषा पूरी करने हारा (रुद्रः) ज्ञानदाता परमेश्वर (रुद्रेभिः) ज्ञानदाता मुनियों द्वारा (नः) हमें (शम्) शन्तिदायक हो, (शम्) शान्तिदायक (त्वष्टा) विश्वकर्मा जगदीश्वर) (ग्नाभिः) [हमारी] वाणियों द्वारा (इह) यहां पर (नः) हमारी [प्रार्थना] (शृणोतु) सुने ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य वा प्रकाश और जलादि की विद्या में निपुण होके परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त होते हैं, वे सदा सुख पाते हैं ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः१ शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शम् । नः । सोमः । भवतु । ब्रह्म । शम् । नः । शम् । नः । ग्रावाणः । शम् । ऊं इति । सन्तु । यज्ञाः । तत् । शम् । नः । स्वरूणाम् । मितयः । भवन्तु । शम् । नः । १ । स्वः । शम् । ऊं इति । अस्तु । वेदिः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(सोमः) परम ऐश्वर्य वाला परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो, (ब्रह्म) वेद (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (ग्रावाणः) विज्ञानी लोग (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (उ) और (यज्ञाः) यज्ञ [अग्निहोत्र से शिल्प क्रिया तक] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु)

(शम्) (नः) (रुद्रः) रुतो ज्ञानस्य राता दाता (रुद्रेभिः) ज्ञानदातृभिर्मुनिभिः (जलाषः) जनी जनने ड+लष वाञ्छायाम्—घञ् । जानां जातानां लषो वाञ्छा यस्मात् सः (शम्) (नः) अस्माकं प्रार्थनाम् (त्वष्टा) विश्वकर्मा सर्वकर्ता (ग्नाभिः) वाग्भिः—निघ० १ । ११ (इह) अस्मिन् विषये (शृणोतु) आकर्णयतु ॥

७—(शम्) शान्तिप्रदः (सोमः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (भवतु) (ब्रह्म) वेदः (शम्) (नः) (शम्) (नः) (ग्रावाणः) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । पा० ३ । २ । ७५ । गॄ निगरणे, वा गॄ शब्दे विज्ञापने च-कनिप्। विज्ञानिनः (शम्) (उ) चार्थे (सन्तु) (यज्ञाः) अग्निहोत्रादयः शिल्पान्ताः (शम्)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हों। (स्वरूणाम्) यूपों [जयस्तम्भों] के (मितयः) फैलाव (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों, (प्रस्वः) ओषधें [अन्न सोम लता आदि] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (उ) और (वेदिः) वेदी [यज्ञकुण्ड, चौतरा आदि] (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य परम पिता परमात्मा और परम पवित्र वेदों की शरण लेकर विद्वानों के मेल से यज्ञ और शिल्प-विद्या का प्रचार करके संसार को सुख पहुंचावें ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु-प्रदिशश्चतस्रः । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

शम् । नः । सूर्यः । उरु-चक्षाः । उत् । एतु । शम् । नः । भवन्तु । प्र-दिशः । चतस्रः ॥ शम् । नः । पर्वताः । ध्रुवयः । भवन्तु । शम् । नः । सिन्धवः । शम् । ऊं इति । सन्तु । आपः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(उरुचक्षाः) दूर तक दिखाने वाला (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उत् एतु) उदय हो, (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें। (ध्रुवयः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सिन्धवः)

(नः) (स्वरूणाम्) शॄस्वृस्निहि० । उ० १ । १० । स्वृ शब्दोपतापयोः—उप्रत्ययः । यूपानाम् । विजयस्तम्भानाम् (मितयः) परिमाणानि । विस्ताराः (भवन्तु) (शम्) (नः) (प्रस्वः) प्र+सूयतेः—क्विप् । प्रकर्षेण सूयमाना जायमाना ओषधयः । अन्नसोमलतादयः (शम्) (उ) (अस्तु) (वेदिः) यज्ञकुण्डः । परिष्कृता चतुरस्रादिरूपा भूमिः ॥

८—(शम्) सुखप्रदः (नः) अस्मभ्यम् (सूर्यः) रविः (उरुचक्षाः) चक्षेर्बहुलं सिच्च । उ० ४ । २३३ । उरु+चक्षिङ् दर्शने—असि । विस्तीर्णं चक्षो दर्शनं यस्मात् सः (उदेतु) उदयं गच्छतु (शम्) (नः) (भवन्तु) (प्रदिशः) प्रकृष्टाः पूर्वादयो दिशः (चतस्रः) (शम्) (नः) (पर्वताः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र वा नदियां (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (आपः) जल [वा प्राण] (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या बल से सूर्य के प्रकाश के समान सब दिशाओं को खोजते, पहाड़ों पर जाते, और नदियों को पार करते और कूप, वृष्टि आदि के जलों से खेती शिल्प आदि में काम लेते हैं, वे संसार में कीर्तिमान् होते हैं ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शमु वस्तु वायुः ९

शम् । नः । अदितिः । भवतु । व्रतेभिः । शम् । नः । भवन्तु । मरुतः । सु-अर्काः ॥ शम् । नः । विष्णुः । शम् । ऊं इति । पूषा । नः । अस्तु । शम् । नः । भवित्रम् । शम् । ऊं इति । अस्तु । वायुः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(अदितिः) अखण्ड वेदवाणी (व्रतेभिः) नियमों के साथ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (मरुतः) शूर वीर (स्वर्काः) बड़े पण्डित लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों । (विष्णुः) व्यापक यज्ञ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (पूषा) पोषण करने वाली पृथिवी (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (भवित्रम्)

शैलाः (ध्रुवयः) भुजेः किच्च । उ० ४ । १४२ । ध्रु स्थैर्ये—इप्रत्ययः कित् । स्थिराः (भवन्तु) (शम्) (नः) (सिन्धवः) समुद्रा नद्यो वा (शम्) (उ) (सन्तु) (आपः) जलानि प्राणा वा ॥

९—(शम्) सुखप्रदा (नः) अस्मभ्यम् (अदितिः) अखण्डवेदवाणी (भवतु) (व्रतेभिः) नियमैः (शम्) (नः) (भवन्तु) (मरुतः) शूरवीराः (स्वर्काः) सुपूजनीयाः पण्डिताः (शम्) (नः) (विष्णुः) व्यापको यज्ञः (शम्) (उ) (पूषा) पोषिका पृथिवी—निघ० १ । १ (नः) (अस्तु) (शम्) (नः) (भवित्रम्) अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ । उ० ४ । १७२ । भू सत्तायाम्—इत्रप्रत्ययः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Kanya Vidyalaya

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने का घर (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (वायुः) वायु (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य वेद वाणी द्वारा उत्तम नियमों को ग्रहण करके विद्वानों के सत्संग से सब पदार्थों से उपकार लेकर पृथिवी पर सुख बढ़ाते रहें ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०

शम् । नः । देवः । सविता । त्रायमाणः । शम् । नः । भवन्तु । उषसः । वि-भातीः ॥ शम् । नः । पर्जन्यः । भवतु । प्र-जाभ्यः । शम् । नः । क्षेत्रस्य । पतिः । अस्तु । शम्-भुः ॥१०

भाषार्थ—(देवः) प्रकाशमान (सविता) लोकों का चलाने वाला सूर्य (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (विभातीः) जगमगाती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों । (पर्जन्यः) सींचने वाला मेघ (नः) हमें और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (शम्भुः) मङ्गल दाता (क्षेत्रस्य) खेत का (पतिः) स्वामी (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्य सूर्य के ताप की अनुकूलता का और मेघ से वृष्टि आदि का विचार करके खेती आदि व्यवहार करें और अन्न आदि की वृद्धि से सुखी होवें ॥ १० ॥

भुवनम् । निवासस्थानम् (शम्) (उ) (अस्तु) (वायुः) पवनः ॥

१०—(शम्) शान्तिप्रदः (नः) अस्मभ्यम् (देवः) प्रकाशमानः (सविता) लोकप्रेरकः सूर्यः (त्रायमाणः) रक्षन् (शम्) (नः) (भवन्तु) (उषसः) प्रभातवेलाः (विभातीः) विभात्यः । विशेषेण दीप्यमानाः (शम्) (नः) (पर्जन्यः) पर्जन्यः । उ० ३ । १०३ । पृषु सेचने—अन्यप्रत्ययः, षस्य जः । वृष्टिप्रदो मेघः (भवतु) (प्रजाभ्यः) प्रजानां हिताय (शम्) (क्षेत्रस्य) क्षि ऐश्वर्य, निवासे च-ष्ट्रन् । शस्येोत्पत्तिस्थानस्य (पतिः) स्वामी (अस्तु) (शम्भुः) मङ्गलप्रदः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ११ [शान्तिसूक्तम्] ॥

१—६ ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ १, २, ५, ६ त्रिष्टुप्; ३ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

इष्टप्राप्त्युपदेशः—इष्ट की प्राप्ति का उपदेश ॥

शं नः॑ सत्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सुहस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॑ हवे॒षु॥ १

शम् । नः॒ । स॒त्यस्य॑ । पत॑यः । भ॒व॒न्तु॒ । शम् । नः॒ । अर्व॑न्तः॑ । शम् । ऊं॒ इति॑ । स॒न्तु॒ । गावः॑ ॥ शम् । नः॒ । ऋ॒भवः॑ । सु॒-कृतः॑ । सु॒-हस्ताः॑ । शम् । नः॒ । भ॒व॒न्तु॒ । पि॒तरः॑ । ह॒वे॒षु ॥१॥

भाषार्थ—(सत्यस्य) सत्य के (पतयः) पालन करने वाले पुरुष (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (अर्वन्तः) घोड़े (नः) हमें (शम्) सुखदायक, (उ) और (गावः) गौयें और बैल (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों। (ऋभवः) बुद्धिमान् (सुकृतः) बड़े काम करने वाले (सुहस्ताः) हस्त क्रिया में चतुर लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (पितरः) पितर [पिता आदि रक्षक पुरुष] (नः) हमें (हवेषु) बुलावों पर [यज्ञों वा संग्रामों में] (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सत्यव्रती पुरुषों का अनुकरण करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि घोड़े शीघ्र गामी और गोवें दुधैल, बैल रथादि चलाने वाले, बुद्धिमान् लोग हस्त क्रिया में चतुर और कर्तव्य परायण हों ॥१ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७ । ३५ । १२ ॥

१—(शम्) सुखप्रदाः (नः) अस्मभ्यम् (सत्यस्य) यथार्थव्यवहारस्य (पतयः) पालकाः (भवन्तु) (शम्) (नः) (अर्वन्तः) अश्वाः (शम्) (उ) चार्थे (सन्तु) (गावः) धेनवो वृषभाश्च (शम्) (नः) (ऋभवः) मेधाविनः (सुकृतः) महाकर्माणः (सुहस्ताः) हस्तक्रियायां कुशलाः (शम्) (नः) (भवन्तु) (पितरः) पित्रादिरक्षकाः (हवेषु) आह्वानेषु । यज्ञेषु । सङ्ग्रामेषु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो
अप्याः ॥ २ ॥

शम् । नः । देवाः । विश्व-देवाः । भवन्तु । शम् । सरस्वती ।
सह। धीभिः। अस्तु ॥ शम् । अभि-साचः । शम् । ऊं इति ।
राति-साचः । शम् । नः । दिव्याः । पार्थिवाः । शम् । नः ।
अप्याः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(विश्वदेवाः) सब विजय चाहने वाले, (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सरस्वती) विज्ञानवती वेद विद्या (धीभिः सह) अनेक क्रियाओं के साथ (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो। (अभिषाचः) सब ओर से मिलनसार लोग (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (रातिषाचः) दानों की वर्षा करने हारे (शम्) सुखदायक हों, (दिव्याः) आकाश सम्बन्धी पदार्थ [वायु, मेघ, विमान आदि] और (पार्थिवाः) पृथिवी सम्बन्धी पदार्थ [राज्य, सुवर्ण, अग्नि, रथ आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (अप्याः) जल सम्बन्धी पदार्थ [मोती, मूंगा, नौका आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विजयी आप्त विद्वानों को प्राप्त होकर सब विद्याओं की वृद्धि करते हैं, वे ही सब संसार पर शासन करते हैं ॥ २ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७ । ३५ । ११ ॥

२—(शम्) सुखप्रदाः (नः) अस्मभ्यम् (देवाः) विद्वांसः (विश्वदेवाः) सर्वे विजिगीषवः (भवन्तु) (शम्) (सरस्वती) विज्ञानवती वेदविद्या (सह) साकम् (धीभिः) क्रियाभिः (अस्तु) (शम्) (अभिषाचः) अभि+षच समवाये-क्विप । सर्वतः संगच्छमानाः पुरुषाः (रातिषाचः) राति+षच सेचने—क्विप । दानानां वृष्टिकर्तारः (शम्) (नः) (दिव्याः) आकाशसम्बन्धिनो वायुमेघविमानादयः (पार्थिवाः) पृथिव्यां विद्यमाना राज्यसुवर्णादयः (शम्) (नः) (अप्याः) जलसम्बन्धिनो मुक्ताविद्रुमनौकादयः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः१ शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३॥

शम् । नः । अजः । एक-पात् । देवः । अस्तु । शम् । अहिः । बुध्न्यः । शम् । समुद्रः ॥ शम् । नः । अपाम् । नपात् । पेरुः । अस्तु । शम् । नः । पृश्निः । भवतु । देव-गोपा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(अजः) अजन्मा, (एकपात्) एक डग वाला [एक रस व्यापक], (देवः) प्रकाशमय परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (अहिः) न मारने वाला, (बुध्न्यः) मूल तत्त्वों में रहने वाला [आदि कारण जगदीश्वर] (शम्) शान्तिदायक हो, (समुद्रः) यथावत् सींचने वाला ईश्वर (शम्) शान्तिदायक हो । (अपाम्) प्रजाओं का (नपात्) न गिराने वाला, (पेरुः) पार लगाने वाला (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो. (देवगोपा) प्रकाशमय परमात्मा से रक्षा की गयी (पृश्निः) पूंछने योग्य प्रकृति [जगत् सामग्री] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जगत् पिता परमात्मा की महिमा को विचारता हुआ मनुष्य

३—(शम्) शान्तिप्रदः (नः) अस्मभ्यम् (अजः) अजन्मा जगदीश्वरः (एकपात्) सर्वं जगदेकस्मिन् पादे पादगतिप्रमाणे अंशे वा यस्य सः (देवः) प्रकाशमयः परमात्मा (अस्तु) (शम्) (अहिः) आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च । उ० ४ । १३८ । इति बाहुलकात्, नञ्+हन वधे—इण्, डित्। अहन्ता। अमारकः (बुध्न्यः) बुध्नेषु तत्त्वमूलेषु विद्यमानः (शम्) (समुद्रः) समुद्र आदित्यः, समुद्र आत्मा—निरु० १४ । १६ । सर्वसेचकः परमात्मा (शम्) (नः) (अपाम्) प्रजानाम् (नपात्) न पातयिता । सर्वदा रक्षकः (पेरुः) भीपीभ्यां रुः । उ० ४ । १०१ । पीङ् पाने—रुप्रत्ययः । यद्वा पा रक्षणे—रुप्रत्ययः, आकारस्य एकारः । यद्वा पार कर्मसमाप्तौ—उप्रत्ययः आकारस्य एकारः । पानकर्ता । रक्षकः । पारयिता (अस्तु) (शम्) (नः) (पृश्निः) प्रष्टव्या प्रकृतिः । जगत्सामग्री (भवतु) (देवगोपा) देव+गुपू रक्षणे—अच्, टाप् । देवः परमेश्वरो गोपो रक्षको यस्याः सा ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के संयोग वियोग को खोज कर अपनी उन्नति करे ॥ ३ ॥

मन्त्र ३--५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं--७ । ३५ । १३--१५ ॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥

आदित्याः । रुद्राः । वसवः । जुषन्ताम् । इदम् । ब्रह्म । क्रियमाणम् । नवीयः ॥ शृण्वन्तु । नः । दिव्याः । पार्थिवासः । गो-जाताः । उत । ये । यज्ञियासः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(आदित्याः) अखण्ड ब्रह्मचारी, (रुद्राः) ज्ञानदाता और (वसवः) श्रेष्ठ विद्वान् लोग (इदम्) इस (क्रियमाणम्) सिद्ध होते हुए (नवीयः) अधिक नवीन (ब्रह्म) धन वा अन्न को (जुषन्ताम्) सेवें । (दिव्याः दिव्य [कामना योग्य] गुण वाले, (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी (उत) और (गोजाताः) वाणी में प्रसिद्ध [सत्यवक्ता] पुरुष, (ये) जो (यज्ञियासः) पूजा योग्य हैं, (नः) हमारी [प्रार्थना] (शृण्वन्तु) सुनें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य धार्मिक विद्वानों को अच्छे प्रकार प्रसन्न करके मनोरथ सिद्ध करें ॥ ४ ॥

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

ये । देवानाम् । ऋत्विजः । यज्ञियासः । मनोः । यजत्राः । अमृताः । ऋत-ज्ञाः ॥ ते । नः । रासन्ताम् । उरु-गायम् ।

४—(आदित्याः) अदिति—ण्य । अखण्डब्रह्मचारिणः (रुद्राः) रुदं ज्ञानस्य रातारो दातारः (वसवः) श्रेष्ठपुरुषाः (जुषन्ताम्) सेवन्ताम् (इदम्) (ब्रह्म) धनमन्नं वा (क्रियमाणम्) सम्पाद्यमानम् (नवीयः) अधिकनूतनम् (शृण्वन्तु) (नः) अस्माकं प्रार्थनाम् (दिव्याः) दिवि कमनीये गुणे भवाः (पार्थिवासः) पृथिवीश्वराः (गोजाताः) गवि सत्यवाचि प्रसिद्धाः (उत) अपि (ये) (यज्ञियासः) पूजार्हाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्य । युयम् । पात । स्वस्ति-भिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(ये) जो लोग (देवानाम्) विद्वानों के बीच (ऋत्विजः) तु ऋतु में यज्ञ [श्रेष्ठव्यवहार] करने हारे, (यज्ञियासः) पूजा योग्य, नोः) ज्ञान के (यजत्राः) देने हारे, (अमृताः) अमर [कीर्ति वाले] और ृतज्ञाः) सत्य धर्म के जानने हारे हैं। (ते) वे (नः) हमें (अद्य) आज रुगायम्) चौड़ा मार्ग [वा बहुत ज्ञान] (रासन्ताम्) देवें, (यूयम्) तुम द्वानों] (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) ा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग विद्वानों में महाविद्वान्, जीवनमुक्त, परोपकारी हों, की आज्ञा पालन करके हम सदा सुखी रहें ॥ ५ ॥

ंस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शुस्तम् ।
शीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥

त् । अस्तु । मित्रावरुणा । तत् । अग्ने । शम् । योः । स्मभ्यम् । इदम् । अस्तु । शुस्तम् ॥ अशीमहि । गाधम् । त । प्रति-स्थाम् । नमः । दिवे । बृहते । सादनाय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(मित्रावरुणा) हे स्नेही और श्रेष्ठ माता पिता ! दोनो और ग्ने) हे विद्वान् आचार्य ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (तत्) यही (शम्)

५—(ये) महाविद्वांसः (देवानाम्) विदुषां मध्ये (ऋत्विजः) ऋता- तौ यष्टारः श्रेष्ठकर्मकर्त्तारः (यज्ञियासः) पूजार्हाः (मनोः) ज्ञानस्य (यजत्राः) ातारः (अमृताः) अमराः । कीर्तिमन्तः (ऋतज्ञाः) सत्यधर्मस्य ज्ञातारः (ते) वौकाः (नः) अस्मभ्यम् (रासन्ताम्) ददतु (उरुगायम्) गै शब्दे गाङ् तौ वा—वज्, युगागमः विस्तीर्णमार्गम् । बहुज्ञानम् (अद्य) अस्मिन् दिने यूयम्) (पात) रक्षत (स्वस्तिभिः) कल्याणैः (सदा) (नः) अस्मान् ॥

६—(तत्) वक्ष्यमाणम् (अस्तु) (मित्रावरुणा) हे स्नेहिश्रेष्ठौ माता पितरौ (तत्) (अग्ने) हे विद्वन्नाचार्य (शम्) शान्तिकरम् । रोगनाशकम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिदायक [रोगनाशक], (तत्) यही (योः) भयनिवारक (अस्तु) होवे और (इदम्) यही (शस्तम्) बड़ाई योग्य (अस्तु) होवे । [कि] (गाधम्) गम्भीरता, (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा [गौरव] (उत) और (नमः) सत्कार को (दिवे) कामना योग्य (बृहते) विशाल (सदनाय) स्थान के लिये (अशीमहि) हम पावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य माता पिता और आचार्य आदि विद्वानों की सेवा से उत्तम गुण प्राप्त करके संसार में गम्भीर, प्रतिष्ठित और आदर योग्य होकर उच्च पद पावें ॥ ६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—५ । ४७ । ७ ॥

सूक्तम् १२ ॥

मन्त्रः १॥ उषा देवता ॥ भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥

उषाः । अप । स्वसुः । तमः । सम् । वर्तयति । वर्तनिम् । सु-जातता ॥ अया । वाजम् । देव-हितम् । सनेम । मदेम । शत-हिमाः । सु-वीराः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(उषाः) प्रभात वेला (स्वसुः) [अपनी] बहिन [रात्रि] के (तमः) अन्धकार को (अप=अपवर्तयति) हटा देती है, और (सुजातता)

(योः) सू० १० म० १ । भयनिवारकम् (अस्मभ्यम्) (इदम्) (अस्तु) (शस्तम्) प्रशंसनीयम् (अशीमहि) अशू व्याप्तौ—विधिलिङि विकरणस्य लुक् । अश्नुवीमहि । प्राप्नुयाम् (गाधम्) गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च—घञ् । गाम्भीर्यम् (उत) अपि (प्रतिष्ठाम्) गौरवम् (नमः) सत्कारम् (दिवे) कमनीयाय (बृहते) महते (सदनाय) स्थानाय । अधिकाराय ॥

१—(उषाः) प्रभातवेला (अप) अपवर्तयति । निवारयति (स्वसुः) भगिन्या रात्रेः (तमः) अन्धकारम् (सम्) परस्परम् (वर्तयति) प्रवर्तयति ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अपनी] भलमनसाहत से (वर्तनिम्) [उसके लिये] मार्ग (सम्) मिल कर (वर्तयति) बता देती है। (अया) इस [नीति] से (शतहिमाः) सौ वर्ष जीवते हुये और (सुवीराः) सुन्दर वीरों को रखते हुये हम (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (वाजम्) विज्ञान को (सनेम) बाटें और (मदेम) आनन्द करें ॥ १ ॥

भावार्थ—पृथिवी की गोलाई के कारण आधे भूगोल में एक साथ प्रकाश करने से उषा रात्रि को हटाकर जितनी आगे बढ़ती है, उतना ही स्थान रात्रि को पीछे से देती चलती है और दोनों प्रीति पूर्वक मिलकर जगत् का उपकार करती हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य ज्ञान के प्रचार से परस्पर उपकार करके बड़े बड़े धैर्यवान् बलवानों सहित पूर्ण आयु भोगें ॥ १ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध—ऋग्वेद में है १० । १७२ । ४ और उत्तरार्द्ध ऋग्० ६ । १७ । १५ और सामवेद पू० ५ । ७ । ७ ॥

सूक्तम् १३ [अप्रतिरथसूक्तम्-युद्ध यात्रा का राग] ॥

१—११ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ७, ८, १० त्रिष्टुप्; ३—६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ९ निचृत् त्रिष्टुप्; ११ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सेनापतिकृत्योपदेशः—सेनापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा दुमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् १

इन्द्रस्य । बाहू इति । स्थविरौ । वृषाणौ । चित्रा । दुमा । वृषभौ । पारयिष्णू इति ॥ तौ । योक्षे । प्रथमः । योगे । आ-गते । याभ्याम् । जितम् । असुराणाम् । स्वः । यत् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष सेनापति] के

यूय प्रसारयति (वर्तनिम्) वृत्तेश्च । उ० २ । १०६ । वृतु वर्तने—अनि । मार्गम् (सुजातता) सुजाततया । श्रेष्ठगुणवत्त्वेन (अया) अनया नीत्या (वाजम्) विज्ञानम् (देवहितम्) विद्वद्भ्यो हितकरम् (सनेम) विभजेम (मदेम) आनन्देम (शतहिमाः) शतवर्षजीविनः (सुवीराः) उत्तमवीरयुक्ताः ॥

१—(इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः सेनापतेः (बाहू) भुजौ (स्थविरौ)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमौ) ये दोनों (बाहू) भुजायें (स्थविरौ) पुष्ट, (वृषाणौ) वीर्ययुक्त, (चित्रा) अद्भुत (वृषभौ) श्रेष्ठ और (पारयिष्णू) पार लगाने वाले होवें। (तौ) उन दोनों को (योगे) अवसर (आगते) आने पर (प्रथमः) मुखिया तू (योक्षे) काम में लाता है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (असुराणाम्) असुरों [प्राण लेने वाले शत्रुओं] का (यत्) जो (स्वः) सुख है, [वह] (जितम्) जीता जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सेनापति ऐसा बनाना चाहिये, जो विद्यावान्, धनी, महाप्रतापी, शरीर से पुष्ट, शत्रुओं का दमन करने वाला और प्रजापालक हो ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में है—उ० ६ । ३ । ७ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
सं क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥२

आशुः । शिशानः । वृषभः । न । भीमः । घनाघनः । क्षोभणः । चर्षणीनाम् ॥ सम्-क्रन्दनः । अनि-मिषः । एक-वीरः । शतम् । सेनाः । अजयत् । साकम् । इन्द्रः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (आशुः) फुरतीले, (शिशानः) तीक्ष्ण, (वृषभः न) बैल के समान (भीमः) भयङ्कर, (घनाघनः) अत्यन्त चोट मारने वाले, (क्षोभणः) हलचल मचाने वाले, (सङ्क्रन्दनः) ललकारने

अजिरशिशिरशिथिल० । उ० १ । ५३ । छा गतिनिवृत्तौ—किरच्, वुगागमः। स्थूला । पुष्टौ (वृषाणौ) वीर्ययुक्तौ (चित्रा) चित्रौ । श्लाघनीयौ । अद्भुतौ (इमा) इमौ (वृषभौ) श्रेष्ठौ (पारयिष्णू) पारयितारौ (तौ) भुजौ (योक्षे) युजिर् योगे मध्यमपुरुषस्य लटि छान्दसं रूपम् । त्वं युङ्क्षे । प्रयोगे करोषि (प्रथमः) मुख्यः सन् त्वम् (योगे) अवसरे (आगते) प्राप्ते (याभ्याम्) बाहुभ्याम् (जितम्) जयेन प्राप्तम् (असुराणाम्) असूनां प्राणानां ग्रहीतॄणां शत्रूणाम् (स्वः) सुखम् (यत्) ॥

२—(आशुः) शीघ्रकारी (शिशानः) शो तनूकरणे—कानच् । तीक्ष्ण-स्वभावः (वृषभः) बलीवर्दः (न) इव (भीमः) भयङ्करः (घनाघनः) हन्तेर्घत्वं च । वा० पा० ६ । १ । १२ । हन हिंसागत्योः—अचि प्रत्यये घत्वमभ्यास-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले, (अनिमिषः) पलक न मूंदने वाले, (एकवीरः) एकवीर [अद्वितीय पराक्रमी], (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] ने (शतम्) सौ (सेनाः) सेनाओं को (साकम्) एक साथ (अजयत्) जीता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यह पहिले से नियम चला आता है कि युद्ध-कुशल, पराक्रमी अनालसी सेनापति शत्रुओं को नाश करता है, वैसाही तुम भी करो ॥ २ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० ।१०३ । १, यजुर्वेद १७ । २३ और सामवेद उ० ६ । ३ । १ ॥

सं क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनायोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३॥

सम्-क्रन्दनेन । अनि-मिषेण । जिष्णुना । अयोध्येन । दुः-च्यवनेन । धृष्णुना ॥ तत् । इन्द्रेण । जयत । तत् । सहध्वम् । युधः । नरः । इषु-हस्तेन । वृष्णा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(नरः) हे नरो ! [नेता लोगो] (सङ्क्रन्दनेन) ललकारने वाले, (अनिमिषेण) पलक न मूंदने वाले, (जिष्णुना) विजयी, (अयोध्येन) अजेय, (दुश्च्यवनेन) न हटने वाले, (धृष्णुना) निडर [बड़े उत्साही], (इषुहस्तेन) तीर [अस्त्र शस्त्र] हाथ में रखने वाले, (वृष्णा) वीर्यवान्, (इन्द्रेण) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] के साथ (युधः) लड़ाकाओं को (तत्)

स्यागागमश्च । अतिशयेन प्रहर्ता (क्षोभणः) संचालयिता (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (संक्रन्दनः) शत्रूणामाह्वाता (अनिमिषः) अनिमेषचक्षुः । सदा-सावदानः (एकवीरः) अद्वितीयशूरः (शतम्) असंख्याः (सेनाः) (अजयत्) जितवान् (साकम्) सार्धम् (इन्द्रः) महाप्रतापी सेनापतिः ॥

३—(सङ्क्रन्दनेन) आह्वानशीलेन (अनिमिषेण) अनिमिषचक्षुषा । सदा-सावदानेन (जिष्णुना) विजयिना (अयोध्येन) केनापि योद्धुमशक्येन । अजेयेन (दुश्च्यवनेन) दुर्विचाल्येन । दुर्निवार्येण (धृष्णुना) प्रगल्भेन (तत्) अनेन प्रकारेण (इन्द्रेण) महाप्रतापिना सेनापतिना (जयत) (तत्) एवम् (सहध्वम्) अभिभवत (युधः) योद्धॄन् । शत्रून् (नरः) हे नेतारः (इषुहस्तेन)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार (जयत) तुम जीतो और (तत्) इस प्रकार (सहध्वम्) हराओ ॥ ३॥

भावार्थ—मन्त्र २ में जो सेनापति के लक्षण कहे हैं, वैसे युद्धकुशल, सदासावधान महाप्रतापी पुरुष को सेनानी बनाकर वीर पुरुष शत्रुओं को मारें ॥ ३ ॥

मन्त्र ३, ४ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १०३ । २, ३ तथा यजुर्वेद १७ । ३४, ३५ और सामवेद उ० ६ । ३ । १ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ४॥

सः । इषु-हस्तैः । सः । निषङ्गि-भिः । वशी । सम्-स्रष्टा । सः । युधः । इन्द्रः । गणेन ॥ संसृष्ट-जित् । सोम-पाः । बाहु-शर्धी । उग्र-धन्वा । प्रति-हिताभिः । अस्ता ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सः सः) वही (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (इषुहस्तैः) तीर [अस्त्र शस्त्र] हाथों में रखने वालों, और (निषङ्गिभिः) खड्ग वालों के साथ (वशी) वश में करने वाला, (सः) वही (गणेन) अपने गण [अधिकारी लोगों] सहित (युधः) [अपने] योद्धाओं को (संस्रष्टा) एकत्र करने वाला, (संसृष्टजित्) एकत्र हुये [शत्रुओं] को जीतने वाला, (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने वाला, (बाहुशर्धी) भुजाओं में बल रखने वाला, (उग्रधन्वा) प्रचंड धनुष वाला, (प्रतिहिताभिः) सन्मुख ठहरायी हुयी [सेनाओं] से (अस्ता) [बैरियों का] गिराने वाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो युद्धकुशल मनुष्य अपनी वीर सेनाओं को व्यूह रचना से खड़ा करके शत्रुओं को मारने में समर्थ हो, वही सेनाध्यक्ष बनाया जावे ॥ ४ ॥

इषवो बाणा शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तेन (वृष्णा) वीर्यवता ॥

५—(सः) (इषुहस्तैः) शस्त्रपाणिभिः (सः) (निषङ्गिभिः) खड्गधारिभिः (वशी) वशयिता (संस्रष्टा) संयोजकः (सः) (युधः) स्वयोद्धॄन् (इन्द्रः) महाप्रतापी सेनापतिः (गणेन) अधिकारिसमूहेन (संसृष्टजित्) संयुक्तानां शत्रूणां जेता (सोमपाः) ऐश्वर्यस्य पाता रक्षकः (बाहुशर्धी) बाहोः शर्धो बलं यस्य सः (उग्रधन्वा) प्रचण्डधनुर्धरः (प्रतिहिताभिः) प्रत्यक्षेण व्यूहेन स्थिताभिः सेनाभिः (अस्ता) शत्रूणां क्षेप्ता मारयिता ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरःसहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ५

बल-विज्ञायः । स्थविरः । प्र-वीरः । सहस्वान् । वाजी ।
सहमानः । उग्रः ॥ अभि-वीरः । अभि-सत्वा । सहः-जित् ।
जैत्रम् । इन्द्र । रथम् । आ । तिष्ठ । गो-विदन् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(बलविज्ञायः) बल का जानने हारा, (स्थविरः) पुष्टाङ्ग [वा वृद्ध अर्थात् अनुभवी],(प्रवीरः) बड़ा वीर, (सहस्वान्) बड़ा बली, (वाजी) बड़ा ज्ञानी [वा अन्न वाला], (सहमानः) हराने वाला, (उग्रः) प्रचण्ड, (अभिवीरः) सब ओर वीरों को रखने वाला, (अभिसत्वा) सब ओर युद्धकुशल विद्वानों के रखने वाला, (सहोजित्) बल से जीतने वाला, (गोविदन्) पृथिवी के देशों [वा वाणियों] को जानने वाला होकर, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी सेनापति] (जैत्रम्) विजयी (रथम्)रथ पर (आ तिष्ठ) बैठ ५

भावार्थ—अपने और शत्रु के बल को जानने वाला सेनाध्यक्ष अपने युद्धकुशल वीरों और युद्ध सामग्री के साथ चढ़ाई करे ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ५, यजुर्वेद १७ । ३५ और सामवेद—उ० ६ । ३ । २ ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।

५—(बलविज्ञायः) कर्मण्यण् । पा० ३ । २ । १ । इत्यण् । आतो युक् चिण्-कृतोः । पा० ७ । ३ । ३३ । इति युगागमः । बलस्य ज्ञाता (स्थविरः) म० १ । पुष्टाङ्गः । बलविद्यावृद्धः (प्रवीरः) प्रकृष्टो वीरः शूरः (सहस्वान्) महाबली (वाजी) ज्ञानवान् । अन्नवान् (सहमानः) अभिभवनशीलः (उग्रः) तीव्रतेजाः (अविवीरः) अभितो वीरा यस्य सः (अभिसत्वा) अ० ५ । २० । ८ । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । पा० ३ । २ । ७५ । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु-कनिप्, दस्य तः । अभितः सत्वानो युद्धविद्वांसो यस्य सः (सहोजित्) बलेन जेता (जैत्रम्) जेतृ-अण् प्रज्ञादिः । जेतारम् । विजयिनम् (इन्द्र) हे महाप्रतापिन् सेनापते (रथम्) युद्धयानम् (आ तिष्ठ) आरोह (गोविदन्) गाः पृथिवीदेशान् वाचो वा जानन् सन् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj-Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्मं प्रमृणन्तमोजसा॥६॥

इमम् । वीरम् । अनु । हर्षध्वम् । उग्रम् । इन्द्रम् । सखायः । अनु । सम् । रभध्वम् ॥ ग्राम-जितम् । गो-जितम् । वज्र-बाहुम् । जयन्तम् । अज्मम् । प्र-मृणन्तम् । ओजसा ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (इमम्) इस (वीरम् अनु) वीर [सेनापति] के साथ (हर्षध्वम्) हर्ष करो, (ग्रामजितम्) शत्रुओं के समूह को जीतने वाले, (गोजितम्) उन की भूमि को जीतने वाले, (वज्रबाहुम्) भुजाओं में शस्त्र रखने वाले, (जयन्तम्) विजयी, (ओजसा) [अपने शरीर, बुद्धि और सेना के] बल से (अज्मम्) संग्राम को (प्रमृणन्तम्) मिटाने वाले, (उग्रम्) तेजस्वी (इन्द्रम् अनु) इन्द्र [महाप्रतापी सेनाध्यक्ष] के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (रभध्वम्) उद्योग करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—युद्धकुशल सैनिक लोग चतुर सेनापति के अनुगामी होकर शत्रुओं का राज्य आदि लेकर प्रजापालन करें ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ६, यजुर्वेद १७ । ३८ और सामवेद, उ० ९ । ३ । २ । और ऊपर आचुका है-अथ० ६ । ९७ । ३ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदायः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु॥७॥

अभि । गोत्राणि । सहसा । गाहमानः । अदायः । उग्रः ।

६—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ६ । ९७ । ३ (इमम्) प्रसिद्धम् (वीरम्) सेनाध्यक्षम् (अनु) अनुसृत्य (हर्षध्वम्) हर्षं प्राप्नुत (उग्रम्) प्रचण्डम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं सेनाध्यक्षम् (सखायः) हे सुहृद्गणाः (अनु) अनुगत्य (सम्) सम्यक् (रभध्वम्) रभ राभस्ये । उद्योगं कुरुत (ग्रामजितम्) शत्रुसमूहजेतारम् (गोजितम्) शत्रुभूमिविजयिनम् (वज्र-बाहुम्) वज्राः शस्त्राणि बाह्वोर्यस्य तम् (जयन्तम्) जि जये—झच् । विजयिनम् (अज्म) संग्रामम् (प्रमृणन्तम्) विनाशयन्तम् (ओजसा) स्वस्य शरीरबुद्धिसेनाबलेन ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुत-मन्युः । इन्द्रः ॥ दुः-च्यवनः । पृतनाषाट् । अयोध्यः । अस्माकम् । सेनाः । अवतु । प्र । युत्-सु ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(गोत्राणि) शत्रुकुलों को (सहसा) बल से (अभि) सब ओर से (गाहमानः) गाहता हुआ [मथता हुआ] (अदायः) अखण्ड, (उग्रः) प्रचण्ड, (शतमन्युः) सैकड़ों प्रकार क्रोध वाला, (दुश्च्यवनः) न हटने वाला, (पृतनाषाट्) सेनाओं का हराने वाला, (अयोध्यः) अजेय (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (युत्सु) युद्धों में (प्र) प्रयत्न से (अवतु) बचावे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी अचूक बुद्धि और श्रेष्ठ गुणों से शत्रुओं को हराकर प्रजा की रक्षा कर सके, लोग उसी को सेनापति बनावें ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ७, यजु० १७ । ३६ । और साम० उ० ६ । ३ । ३ ॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८ ॥

बृहस्पते । परि । दीय । रथेन । रक्षः-हा । अमित्रान् । अप-बाधमानः ॥ प्र-भञ्जन् । सेनाः । प्र-मृणन् । अमित्रान् । अस्माकम् । एधि । अविता । तनूनाम् ॥ ८ ॥

७—(अभि) सर्वतः (गोत्राणि) गुधृवीपचि० । उ० ४ । १६७ । गुङ् शब्दे—त्रप्रत्ययः । शत्रुकुलानि (सहसा) बलेन (गाहमानः) विलोडयन् (अदायः) दाप् लवने, दो अवखण्डने वा—घञ् युगागमः । अखण्डः (उग्रः) प्रचण्डः (शतमन्युः) शतधाकोपयुक्तः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनेशः (दुश्च्यवनः) छन्दसि गत्यर्थेभ्यः । पा० ३ । ३ । १२६ । दुर्+च्युङ् गतौ—युच् । दुर्निवार्यः (पृतनाषाट्) छन्दसि सहः । पा० ३ । २ । ६३ । पृतना+षह अभिभवे—ण्वि । सहेः साडः सः । पा० ८ । ३ । ५६ । इति मूर्धन्यादेशः । सेनानामभिभविता (अयोध्यः) योद्धुमशक्यः । अजेयः । अबाध्यः (अस्माकम्) (सेनाः) (अवतु) रक्षतु (प्र) प्रयत्नेन (युत्सु) युद्धेषु ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़े पुरुषों के रक्षक] (रक्षोहा) राक्षसों [दुष्टों] का मारने वाला, (अमित्रान्) अमित्रों [बैरियों] को (अपबाधमानः) हटा देने वाला होकर (रथेन) रथ समूह से (परि) सब ओर से (दीय) नाश कर। (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रभञ्जन्) कुचलता हुआ और (अमित्रान्) अमित्रों को (प्रमृणन्) मार डालता हुआ तू (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (एधि) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—अनुभवी योद्धाओं को उत्साह देने, बैरियों को मारने, और प्रजा के बचाने में योग्य पुरुष ही सेनापति होवे ॥ ८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ४ । यजु० १७ । ३६ और साम०—उ० ६ । ३ । २ ॥

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः । देव-सेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ९ ॥

इन्द्रः । एषाम् । नेता । बृहस्पतिः । दक्षिणा । यज्ञः । पुरः । एतु । सोमः ॥ देव-सेनानाम् । अभि-भञ्जतीनाम् । जयन्ती-नाम् । मरुतः । यन्तु । मध्ये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी मुख्य सेनापति] (एषाम्) इन [वीरों] का (नेता) नेता [होवे], (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े अधिकारों

८—(बृहस्पते) हे बृहतां महतां पुरुषाणां रक्षक (परि) सर्वतः (दीय) दीङ् क्षये, छान्दसो दीर्घः । नाशय (रथेन) युद्धरथसमूहेन (रक्षोहा) रक्षसां दुष्टानां हन्ता (अमित्रान्) अमेर्द्विषति चित् । उ० ४ । १७४ । अम पीडने—इत्र, चित् । पीडकान् । शत्रून् (अपबाधमानः) निवारयन् सन् (प्रभञ्जन्) प्रकर्षेण मर्दयन् (शत्रून्) (प्रमृणन्) अतिशयेन मारयन् (अमित्रान्) (अस्माकम्) (एधि) भव (अविता) रक्षकः (तनूनाम्) शरीराणाम् ॥

९—(इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तो मुख्यसेनापतिः (एषाम्) वीराणाम् (नेता) नायकः (बृहस्पतिः) बृहतामधिकाराणां रक्षकः सेनानायकः (दक्षिणा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्वामी सेना नायक] (दक्षिणा) दाहिनी ओर और (यज्ञः) पूजनीय, (सोमः) सोम [प्रेरक, उत्साहक सेनाधिकारी] (पुरः) आगे (एतु) चले। (मरुतः) मरुद्गण [शूरवीर पुरुष] (अभिभञ्जतीनाम्) कुचल डालती हुयी, (जयन्तीनाम्) विजयिनी (देवसेनानाम्) विजय चाहने वालों की सेनाओं के (मध्ये) बीच में (यन्तु) चलें ॥ ६ ॥

भावार्थ—व्यूह रचना में अपनी अपनी सेना लेकर मुख्य सेनापति की दाहिनी ओर को बृहस्पति नाम सेनाधिकारी हो, सोम नाम सेनाध्यक्ष सब से आगे और अन्य मरुद्गण शूरवीर योद्धा बीच में रहें। इसी प्रकार चक्रव्यूह, पद्मव्यूह आदि अनेक व्यूह रचनाओं से शत्रुओं को जीतें ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ८, यजु० १७ । ४० और साम०, उ० ६ । ३ । ३ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०

इन्द्रस्य । वृष्णः । वरुणस्य । राज्ञः । आदित्यानाम् । मरुताम् । शर्धः । उग्रम् ॥ महा-मनसाम् । भुवन-च्यवानाम् । घोषः । देवानाम् । जयताम् । उत् । अस्थात् ॥ १० ॥

भाषार्थ—(वृष्णः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य) इन्द्र [महाप्रतापी मुख्य सेनापति] का, (वरुणस्य) वरुण [श्रेष्ठ गुणी मन्त्री]

दक्षिण—आच् । दक्षिणहस्तदिशायाम् (यज्ञः) पूजनीयः (पुरः) अग्रे (एतु) गच्छतु (सोमः) प्रेरकः सेनाध्यक्षः (देवसेनानाम्) विजिगीषूणां सेनानाम् (अभिभञ्जतीनाम्) सर्वतो मर्दयन्तीनाम् (जयन्तीनाम्) तॄभूवहिवसि० । उ० ३ । १२८ । जि जये—झच्, ङीष् गौरादित्वात् । विजयिनीनाम् (मरुतः) अ० १ । २० । १ । मृङ्रोरुति । उ० १ । ६४ । मृङ् प्राणत्यागे—उति । मारयन्ति शत्रून् ये । शूरपुरुषाः (यन्तु) गच्छन्तु (मध्ये) ॥

१०—(इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः सेनापतेः (वृष्णः) वीर्यवतः (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य मन्त्रिणः (राज्ञः) शासकस्य (आदित्यानाम्) अखण्डव्रतानाम् (मरुताम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(राज्ञः) राजा [शत्रुनाशक] का, (आदित्यानाम्) अखण्डव्रती (मरुताम्) मरुद्गणों [शत्रुनाशक वीरों] का (शर्धः) बल (उग्रम्) उग्र [प्रचण्ड] होवे । (महामनसाम्) बड़े मन वाले, (भुवनज्यवानाम्) संसार को हिला देने वाले, (जयताम्) जीतते हुये (देवानाम्) विजय चाहने वाले वीरों का (घोषः) जय जयकार (उत् अस्थात्) ऊंचा उठा है ॥ १० ॥

भावार्थ—सेनापति, सेनाध्यक्ष और सब शूर वीर सेनादल, अस्त्र शस्त्र मारू बाजे आदि के साथ जय जय ध्वनि करते हुये शत्रुओं को जीतें ॥ १० ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ६, यजु० १७ । ४१ और साम०, उ० ६ । ३ । ३ ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥ ११ ॥

अस्माकम् । इन्द्रः । सम्-ऋतेषु । ध्वजेषु । अस्माकम् । याः । इषवः । ताः । जयन्तु ॥ अस्माकम् । वीराः । उत्-तरे । भवन्तु । अस्मान् । देवासः । अवत । हवेषु ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(ध्वजेषु) ध्वजाओं के (समृतेषु) मिल जाने पर (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (अस्माकम्) हमारा है, (अस्माकम्) हमारे (याः) जो (इषवः) बाण हैं, (ताः) वे (जयन्तु) जीतें । (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर (उत्तरे) अधिक ऊंचे (भवन्तु) होवें, (देवासः) हे देवो ! [विजय चाहने वाले शूरो] (हवेषु) ललकार के स्थानों [सङ्ग्रामों] में

म० ६ । शत्रुमारकाणां वीराणाम् (शर्धः) बलम् (उग्रम्) प्रचण्डम् (महामनसाम्) उदारचित्तानाम् । परमोत्साहिनाम् (भुवनज्यवानाम्) संसार-चालकानाम् (घोषः) जयध्वनिः (देवानाम्) विजिगीषूणाम् (जयताम्) विजयं-कुर्वताम् (उत्) ऊर्ध्वम् (अस्थात्) स्थितवान् ॥

११—(अस्माकम्) (इन्द्रः) मुख्यसेनाध्यक्षः-अस्तीति शेषः (समृतेषु) शत्रुभिः संगतेषु (ध्वजेषु) पताकासु (अस्माकम्) (याः) (इषवः) बाणाः (जयन्तु) उत्कर्षं प्राप्नुवन्तु (अस्माकम्) (वीराः) (उत्तरे) उच्चतराः (भवन्तु) (अस्मान्) (देवासः) हे विजिगीषवः शूराः (अवत) रक्षत (हवेषु)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्मान्) हमें (अवत) बचाओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जब युद्ध होने लगे और दोनों ओर की ध्वजायें परस्पर मिल जावें, सब वीर पुरुष मुख्य सेनापति की जय मनाते हुये, अस्त्र शस्त्र चलाते हुये आगे बढ़ें और शत्रुओं को मारकर प्रजा की रक्षा करें ॥ ११ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ११, यजु० १७ । ४३ और साम०, उ० ६ । ३ । ४ ॥

सूक्तम् १४ ॥

मन्त्रः १ ॥ इन्द्रो देवता ॥ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

विजयप्राप्त्युपदेशः—विजय प्राप्ति का उपदेश ॥

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १ ॥

इदम् । उत्-श्रेयः । अव-सानम् । आ । अगाम् । शिवे इति । मे । द्यावापृथिवी इति । अभूताम् ॥ असपत्नाः । प्र-दिशः । मे । भवन्तु । न । वै । त्वा । द्विष्मः । अभयम् । नः । अस्तु ॥ १

भाषार्थ—[हे इन्द्र ! महाप्रतापी राजन्] (इदम्) यह (उच्छ्रेयः) अत्युत्तम (अवसानम्) विश्राम (आ अगाम्) मैं ने पाया है, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (मे) मेरे लिये (शिवे) मङ्गलकारी (अभूताम्) हुई हैं। (मे) मेरी (प्रदिशः) दिशायें (असपत्नाः) बिना शत्रु (भवन्तु) होवें, (त्वा) तुझ से (वै) निश्चय करके (न द्विष्मः) हम विरोध नहीं करते, (नः) हमारे

स्पर्धास्थानेषु । संग्रामेषु ॥

१—(इदम्) (उच्छ्रेयः) प्रशस्यतरम् (अवसानम्) विरामम् । विश्रामम् (आ अगाम्) प्राप्तवानस्मि (शिवे) मङ्गलप्रदे (मे) मह्यम् (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमी (अभूताम्) (असपत्नाः) शत्रुरहिताः (प्रदिशः) सर्वा दिशाः (मे) मम (भवन्तु) (न) निषेधे (वै) निश्चयेन (त्वा) त्वाम् (द्विष्मः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस राज्य में प्रजा को सुख मिले, सूर्य और पृथिवी मङ्गलकारी हों अर्थात् जहां वृष्टि और अन्न आदि की उपज ठीक होती हो, वहां प्रजागण चोर उचक्के आदि दुष्टों से रक्षित रहकर राजभक्ति करते रहें ॥ १ ॥

सूक्तम् १५ ॥

१-६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पथ्या बृहती; २,५ विराडार्षी जगती; ३ विराडार्षी पङ्क्तिः; ४ विराट् त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ॥

राजकर्त्तव्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

यतं इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

यतः । इन्द्र । भयामहे । ततः । नः । अभयम् । कृधि ॥ मघ-वन् । शग्धि । तव । त्वम् । नः । ऊति-भिः । वि । द्विषः । वि । मृधः । जहि ॥ १ ॥

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यतः) जिस से (भयामहे) हम डरते हैं, (ततः) उस से (नः) हमें (अभयम्) अभय (कृधि) कर दे । (मघवन्) हे महाधनी ! (त्वम्) तू (तव) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (नः) हमें (शग्धि) शक्ति दे, (द्विषः) द्वेषियों को और (मृधः) सङ्ग्रामों को (वि) विशेष करके (विजहि) विनाश कर दे ॥ १ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि प्रजा को जिन शत्रुओं से भय हो,

विरोधयामः (अभयम्) भयराहित्यम् (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) ॥

१—(यतः) यस्मात् कारणात् (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् राजन् (भयामहे) बिभीमः (ततः) तस्मात् कारणात् (नः) अस्मभ्यम् (अभयम्) भयराहित्यम् (कृधि) कुरु (मघवन्) हे बहुधनवन् (शग्धि) शकेर्लोट् । शक्तिं देहि (तव) स्वकीयाभिः (त्वम्) (नः) अस्मभ्यम् (ऊतिभिः) रक्षाभिः (वि) विशेषेण (द्विषः) द्वेष्टॄन् । द्रोहिणः (मृधः) संग्रामान्—निघ० २ । १७ । (वि जहि) विनाशय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन को नाश करके प्रजा में शान्ति स्थापित करे ॥ १ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । ६१ [वा सायण भाष्य ५०] । १३, साम० पू० ३ । ९ । २ तथा उ० ५ । २ । १५ ॥

इन्द्रं॑ व॒यम॑नूरा॒धं ह॑वाम॒हेऽनु॑ राध्यास्म द्वि॒पदा॒ चतु॑ष्पदा ।
मा नः॒ सेना॒ अर॑रुषी॒रुप॑ गर्विषू॑चीरिन्द्र द्रु॒हो वि ना॑शय ॥ २ ॥

इन्द्र॑म् । व॒यम् । अ॒नु॒-रा॒धम् । ह॒वा॒म॒हे॒ । अनु॑ । रा॒ध्या॒स्म॒ । द्वि॒-पदा॑ । चतुः॑-पदा ॥ मा । नः॒ । सेनाः॑ । अर॑रुषीः । उप॑ । गुः॒ । विषू॑चीः । इ॒न्द्र॒ । द्रु॒हः । वि । ना॒श॒य॒ ॥ २ ॥

भाषार्थ—(अनुराधम्) अनुकूल सिद्धि करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [महा प्रतापी राजा] को (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं, (द्विपदा) दो पाये के साथ और (चतुष्पदा) चौपाये के साथ (अनु) निरन्तर (राध्यास्म) हम सिद्धि पावें । (अररुषीः) लालची (सेनाः) सेनायें [चोर आदि] (नः) हम को (मा उप गुः) न पहुंचें (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (विषूचीः) फैली हुयी (द्रुहः) द्रोह रीतों को (विनाशय) मिटा दे ॥ २ ॥

भावार्थ—प्रजागण महाप्रतापी विद्वान् पुरुष को राजा बना कर अपने मनुष्यों, पशुओं और सम्पत्ति की रक्षा करें ॥ २ ॥

इन्द्र॑ स्त्रा॒तोत वृ॑त्र॒हा प॑र॒स्फानो॒ वरे॑ण्यः । स र॑क्षि॒ता च॑रम॒तः स म॑ध्य॒तः स प॒श्चात् स पु॒रस्ता॑न्नो अस्तु ॥ ३ ॥

इन्द्रः॑ । त्रा॒ता । उ॒त । वृ॒त्र॒-हा । प॒र॒स्फानः॑ । वरे॑ण्यः ॥ सः ।

२—(इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं राजानम् (वयम्) (अनुराधम्) अनुकूला राधा सिद्धिर्यस्मात्तम् (हवामहे) आह्वयामः (अनु) निरन्तरम् (राध्यास्म) सम्पन्ना भूयास्म (द्विपदा) पादद्वयोपेतेन मनुष्यादिना (चतुष्पदा) पादचतुष्टयोपेतेन गवादिना सह (नः) अस्मान् (सेनाः) शत्रुसेनाः (अररुषीः) नञ् पूर्वाद् रातेः क्वसु, ङीपि सम्प्रसारणं पूर्वसवर्णदीर्घश्च । अदात्र्यः । कृपणाः (मा उप गुः) मोपगच्छन्तु । समीपं मा प्राप्नुवन्तु (विषूचीः) विष्वगञ्चनाः । सर्वतो व्याप्ताः (द्रुहः) द्रुह्यन्ती रीतीः (विनाशय) विजहि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षिता । चरमतः । सः । मध्यतः । सः । पश्चात् । सः । पुरस्तात् । नः । अस्तु ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (त्राता) रक्षक, (उत) और (वृत्रहा) शत्रुनाशक, (परस्फानः) श्रेष्ठों का बढ़ाने वाला और (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य है। (सः) वह (चरमतः) अन्त में, (सः) वह (मध्यतः) मध्य में, (सः) वह (पश्चात्) पीछे से, (सः) वह (पुरस्तात्) आगे से (नः) हमारा (रक्षिता) रक्षक (अस्तु) होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—न्यायशील बलवान् राजा सब प्रकार से सब दिशाओं में प्रजा की रक्षा करे। आध्यात्मिक पक्ष में (इन्द्रः) का अर्थ "परमेश्वर" है ॥ ३॥

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा ते इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥

उरुम् । नः । लोकम् । अनु । नेषि । विद्वान् । स्वः । यत् । ज्योतिः । अभयम् । स्वस्ति ॥ उग्रा । ते । इन्द्र । स्थविरस्य । बाहू इति । उप । क्षयेम । शरणा । बृहन्ता ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(विद्वान्) जानकार तू (नः) हमें (उरुम्) चौड़े (लोकम्) स्थान में (अनुनेषि) निरन्तर ले चलता है, (यत्) जो (स्वः) सुखप्रद, (ज्योतिः) प्रकाशमान, (अभयम्) निर्भय और (स्वस्ति) मङ्गल दाता

३—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा परमेश्वरो वा (त्राता) रक्षकः (उत) अपि च (वृत्रहा) शत्रुनाशकः (परस्फानः) स्फायी वृद्धौ—ल्युट्, यलोपश्छान्दसः, अन्तर्गतण्यर्थः। पराणां श्रेष्ठानां वर्धकः (वरेण्यः) वरणीयः स्वीकरणीयः (सः) (रक्षिता) पालकः (चरमतः) अन्ते (सः) (मध्यतः) मध्ये (सः) (पश्चात्) पृष्ठदेशे (सः) (पुरस्तात्) अग्रदेशे (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) ॥

४—(उरुम्) विस्तृतम् (नः) अस्मान् (लोकम्) स्थानम् (अनु) (निरन्तरम्) (नेषि) शपो लुक्। नयसि। प्रापयसि (विद्वान्) जानन् (स्वः) सुखप्रदम् (ज्योतिः) प्रकाशमानम् (अभयम्) निर्भयम् (स्वस्ति) मङ्गल-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अच्छी सत्ता वाला है]। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (स्थविरस्य ते) तुझ दृढ़ स्वभाव वाले के (उग्रा) प्रचण्ड, (शरणा) शरण देने वाले, (बृहन्ता) विशाल (बाहू) दोनों भुजाओं का (उप) आश्रय लेकर (क्षयेम) हम रहें ॥ ४ ॥

भावार्थ—नीति कुशल राजा प्रजाओं को उन्नत करके बल और पराक्रम से अपनी शरण में रक्खे ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । ५७ । ८ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥

अभयम् । नः । करति । अन्तरिक्षम् । अभयम् । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । इमे इति ॥ अभयम् । पश्चात् । अभयम् । पुरस्तात् । उत्-तरात् । अधरात् । अभयम् । नः । अस्तु ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(नः) हमें (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (अभयम्) अभय (करति) करे, (इमे) यह (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (अभयम्) अभय [करें]। (पश्चात्) पश्चिम में वा पीछे से (अभयम्) अभय हो, (पुरस्तात्) पूर्व में वा आगे से (अभयम्) अभय हो, (उत्तरात्) उत्तर में वा ऊपर से और (अधरात्) दक्षिण वा नीचे से (अभयम्) अभय

प्रदम्। सुसत्तायुक्तम् (उग्रा) प्रचण्डौ (ते) तव (इन्द्र) हे महाप्रतापिन् राजन् (स्थविरस्य) स्थिरस्वभावस्य (बाहू) भुजौ (उप) उपेत्य। आश्रित्य (क्षयेम) निवसेम (शरणा) शरणौ (बृहन्ता) विशालौ ॥

५—(अभयम्) भयराहित्यम् (नः) अस्मभ्यम् (करति) लेटि अडागमः। कुर्यात् (अन्तरिक्षम्) मध्यलोकः (अभयम्) कुर्यातामिति शेषः (द्यावापृथिवी) सूर्यपृथिव्यौ (उभे) (इमे) (अभयम्) (पश्चात्) पश्चिमस्यां दिशि पृष्ठदेशे वा (अभयम्) (पुरस्तात्) पूर्वस्यां दिशि, अग्रदेशे वा (अभयम्) (उत्तरात्) उत्तरस्यां दिशि, उपरिदेशे वा (अधरात्) दक्षिणस्यां दिशि, अधो-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारे लिये (अस्तु) हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा, विमान, अस्त्र शस्त्र द्वारा आकाश से प्रजा की रक्षा करता है और सूर्य द्वारा हुई वृष्टि के प्रवाह का प्रबन्ध करके पृथिवी को उपजाऊ बनाता है, वह प्रजा को सुख पहुंचाकर बली होता है ।

आध्यात्मिक पक्ष में यह भावार्थ है कि हम सब पुरुषार्थ करके परमात्मा के अनुग्रह से सब कालों और सब स्थानों में निर्भय रहें ॥ ५ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥

अभयम् । मित्रात् । अभयम् । अमित्रात् । अभयम् । ज्ञातात् । अभयम् । पुरः । यः ॥ अभयम् । नक्तम् । अभयम् । दिवा । नः । सर्वाः । आशाः । मम । मित्रम् । भवन्तु ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(मित्रात्) मित्र से (अभयम्) अभय और (अमित्रात्) अमित्र [पीड़ा देने हारे] से (अभयम्) अभय हो, (ज्ञातात्) जानकर से (अभयम्) अभय और (यः) जो (पुरः) सामने है [उससे भी] (अभयम्) अभय हो । (नः) हमारे लिये (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) अभय और (दिवा) दिन में (अभयम्) अभय हो, (मम) मेरी (सर्वाः) सब (आशाः) आशायें (मित्रम्) मित्र (भवन्तु) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिये कि सर्वदा सब प्रकार चौकस रहकर परमात्मा के विश्वास से और राजा के सुप्रबन्ध से अपनी रक्षा करे ॥ ६ ॥

सूक्तम् १६ ॥

१, २ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ निचृदनुष्टुप्; २ अतिशक्करी ॥

देशे वा (अभयम्) (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) ॥

६—(अभयम्) भयराहित्यम्) (मित्रात्) सुहृदः सकाशात् (अभयम्) (अमित्रात्) अम पीडने—इत्रप्रत्ययः । पीडकात् (अभयम्) (ज्ञातात्) परिचितात् (अभयम्) (पुरः) पुरस्तात् (यः) (अभयम्) (नक्तम्) रात्रौ (अभयम्) (दिवा) दिने (नः) अस्मभ्यम् (सर्वाः) (आशाः) दीर्घाकाङ्क्षाः (मित्रम्) (भवन्तु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभयस्य रक्षणस्य चोपदेशः—अभय और रक्षा का उपदेश ॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥

असपत्नम् । पुरस्तात् । पश्चात् । नः । अभयम् । कृतम् ॥
सविता । मा । दक्षिणतः । उत्तरात् । मा । शची-पतिः ॥१॥

भाषार्थ—(नः) हमारे लिये (मा) मुझ को (पुरस्तात्) सामने [वा पूर्वदिशा] से (पश्चात्) पीछे [वा पश्चिम] से, (दक्षिणतः) दाहिनी ओर [वा दक्षिण] से और (मा) मुझको (उत्तरात्) बाईं ओर [वा उत्तर] से (सविता) सर्व प्रेरक राजा और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों का पालने वाला [मन्त्री], तुम दोनों (असपत्नम्) शत्रुरहित और (अभयम्) निर्भय (कृतम्) करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जहां पर राजा और मन्त्री अपनी वाणी और कर्म में पक्के होते हैं, उस राज्य में प्रजागण शत्रुओं से सुरक्षित रहते हैं ॥ १ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादुश्विनावुभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सुवर्तः सन्तु वर्म ।२

दिवः । मा । आदित्याः । रक्षन्तु । भूम्याः । रक्षन्तु । अग्नयः ॥
इन्द्राग्नी इति । रक्षताम् । मा । पुरस्तात् । अश्विनौ ।

१—(असपत्नम्) शत्रुरहितम् (पुरस्तात्) अग्रे । पूर्वस्यां दिशि (पश्चात्) पश्चाद् भागे पश्चिमस्यां दिशि (नः) अस्मभ्यम्) (अभयम्) (कृतम्)लोटि छान्दसं रूपम् । युवां कुरुतम् (सविता) सर्वप्रेरको राजा (मा) माम् (दक्षिणतः) दक्षिणभागे । दक्षिणस्यां दिशि (उत्तरात्) उपरिभागे । उत्तरस्यां दिशि (मा) माम् (शचीपतिः) शची वाङ्नाम-निघ० १ । ११ कर्मनाम—निघ० २ । १ । वाणीनां कर्मणां वा पालको मन्त्री ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभितः । शर्म । यच्छताम् ॥ तिरश्चीन् । अघ्न्या । रक्षतु । जात-वेदाः । भूत-कृतः । मे । सर्वतः । सन्तु । वर्म ॥ २ ॥

भाषार्थ—(आदित्याः) अखण्डव्रती शूर (मा) मुझे (दिवः) आकाश से (रक्षन्तु) बचावें, (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (भूम्याः) भूमि से (रक्षन्तु) बचावें। (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि [के समान तेजस्वी और व्यापक राजा और मन्त्री दोनों] (मा) मुझे (पुरस्तात्) सामने से (रक्षताम्) बचावें, (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान ठीक मार्ग चलने वाले वे दोनों] (अभितः) सब ओर से (शर्म) सुख (यच्छताम्) देवें । (जातवेदाः) बहुत धन वाली (अघ्नया) अटूट [राजनीति] (तिरश्चीन् = तिरश्चिभ्यः) आड़े चलने वाले [बैरियों] से [मुझे] (रक्षतु) बचावे, (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले पुरुष (मे) मेरे लिये (सर्वतः) सब ओर से (वर्म) कवच (सन्तु) होवें॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजा और राजपुरुष आकाश में वायु यान द्वारा चलने वाले वीरों से और पृथिवी पर अश्ववार आदि से अस्त्र शस्त्र द्वारा शत्रुओं का नाश करते हैं, वही प्रजा की रक्षा कर सकते हैं ॥ २ ॥

सूक्तम् १७ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१० ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ स्वराडार्षी त्रिष्टुप्; २, ३, ४, ८ आर्षी जगती; ५, ६ भुरिगार्षी जगती; ७ अतिजगती; ९ स्वराट् शक्करी; १० निचृदतिजगती ॥

२—(दिवः) आकाशात् (मा) माम् (आदित्याः) अखण्डब्रह्मचारिणः शूराः (रक्षन्तु) पान्तु (भूम्याः) (रक्षन्तु) (अग्नयः) ज्ञानिनः पुरुषाः (इन्द्राग्नी) विद्युदग्निवत्तेजस्विव्यापकौ राजमन्त्रिणौ (रक्षताम्) (मा) माम् (पुरस्तात्) पुरोभागे (अश्विनौ) सूर्याचन्द्रमसाविव सन्मार्गगन्तारौ (अभितः) सर्वतः (यच्छताम्) दत्ताम् (तिरश्चीन्) वातेर्डिच्च । उ० ४। १३४। तिरस्+चर गतौ—इण्, डित्। सुपां सुपो भवन्ति । वा० पा० ७। १ । ३९। पञ्चम्याः शस्। तिरश्चिभ्यः । तिर्यग्गतिभ्यः शत्रुभ्यः (अघ्न्या) अहन्तव्या राजनीतिः (रक्षतु) (जातवेदाः) गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च । उ० ४ । २२७। जात+विद्लृ लाभे—असि । वेदो धननाम—निघ० २। १०। जातं प्रसिद्धं वेदो धनं यस्याः सा (भूतकृतः) भूतस्योचितस्य कर्तारः (मे) मम (सर्वतः) (सन्तु) (वर्म) कवचम् । रक्षासाधनम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षाकरणोपदेशः—रक्षा करने का उपदेश ॥

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १ ॥

अग्निः । मा । पातु । वसु-भिः । पुरस्तात् । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (वसुभिः) श्रेष्ठ गुणों के साथ (मा) मुझे (पुरस्तात्) पूर्व वा सामने से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूं, (तस्मिन्) उसमें (श्रये) आश्रय लेता हूं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूं । (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि

१—(अग्निः) ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः (मा) माम् (पातु) रक्षतु (वसुभिः) श्रेष्ठगुणैः (पुरस्तात्) पूर्वस्यां दिशि, अभिमुखीभूतायां वा (तस्मिन्) ज्ञानस्वरूपे परमेश्वरे (क्रमे) क्रमु पादविक्षेपे । पादं विक्षिपामि (तस्मिन्) (श्रये) श्रिञ् सेवायाम् । आश्रयामि (ताम्) प्रसिद्धाम् (पुरम्) पुर अग्रगमने—क्विप् । अग्रगामिनीं दुर्गरूपां वा शक्तिं परमात्मानम् (प्र) प्रकर्षेण (एमि) गच्छामि । प्राप्नोमि (सः) ज्ञानस्वरूपपरमेश्वरः (मा) (रक्षतु) (सः) (मा) (गोपायतु) पालयतु (तस्मै) परमेश्वराय (आत्मानम्) स्वात्मानम् । मनःसहितं देहं जीवं च (परि ददे) समर्पयामि (स्वाहा) अ० २ । १६ । १ । सु + आङ् + हेञ् आह्वाने—डा, वलोपः । स्वाहा वाङ्नाम—निघ० १ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे) मैं सौंपता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालने में आत्मसमर्पण करते हैं, वे प्रत्येक स्थान पर उस परमात्मा की छत्र छाया में ऐसे सुरक्षित रहते हैं, जैसे शूरवीर पुरुष दुर्ग में सुरक्षित होते हैं ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० ३ । २७ । १—६ तथा १२ । ३ । २४ ॥

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ २ ॥

वायुः । मा । अन्तरिक्षेण । एतस्याः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षत । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थ—(वायुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (अन्तरिक्षेण) मध्यलोक के साथ [पवन, मेघ आदि के साथ] (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में.....[म० १] ॥ २ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ २ ॥

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ३ ॥

सोमः । मा । रुद्रैः । दक्षिणायाः । दिशः । पातु । तस्मिन् ।

---

१९ । सुवाएया । दृढप्रतिज्ञया ॥

२—(वायुः) सर्वव्यापकः परमेश्वरः (अन्तरिक्षेण) मध्यलोकेन (एतस्याः) मध्यवर्तिन्याः (दिशः) दिशायाः सकाशात् । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सोमः) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (रुद्रैः) दुष्ट नाशक गुणों के साथ (मा) मुझे (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में .....[म०१] ॥ ३ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ३ ॥

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥

वरुणः । मा । आदित्यैः । एतस्याः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(वरुणः) सब में उत्तम परमेश्वर (आदित्यैः) प्रकाशमान गुणों के साथ (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में.....[म०१] ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ समान है ॥ ४ ॥

३—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमेश्वरः (रुद्रैः) रुङ् गतौ वधे च-क्विप् तुक् च+रु वधे-डप्रत्ययः । दुष्टनाशकैर्गुणैः (दक्षिणायाः) दक्षिणस्याः । दक्षिणहस्तस्थितायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—(वरुणः) सर्वोत्तमः परमेश्वरः (आदित्यैः) अ० १।६। १ । आङ्+दीपी दीप्तौ—यक्, पृषोदरादिरूपम्। आदीप्यमानैः प्रकाशमानैर्गुणैः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥

सूर्यः । मा । द्यावापृथिवीभ्याम् । प्रतीच्याः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(सूर्यः) सर्वप्रेरक परमात्मा (द्यावापृथिवीभ्याम्) दोनों सूर्य और पृथिवी के साथ (मा) मुझे (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें.....[म०१] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ५ ॥

आपो ओषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि । ता मा रक्षन्तु ता मा गोपपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥

आपः । मा । ओषधी-मतीः । एतस्याः । दिशः । पान्तु । तासु । क्रमे । तासु । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ ताः । मा । रक्षन्तु । ताः । मा । गोपायन्तु । ताभ्यः । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(ओषधीमतीः) ओषधियों [अन्न सोम रस आदि] वाली (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त प्रजायें [उत्पन्न जीव] (मा) मुझे (एतस्याः)

५—(सूर्यः) सुवतेः क्यप् । सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्यभूमिभ्याम् (प्रतीच्याः) पश्चिमायाः । पश्चाद् भवायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

६—(आपः) आपलृ व्याप्तौ—क्विप्, आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये-यजु० ६।२७ (मा) माम् (ओषधीमतीः) ओषधीमत्यः । अन्नसोमरसादियुक्ताः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पान्तु) बचावें, (तासु) उनमें [प्रजाओं के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूं, (तासु) उन में (अभये) अभय लेताहूं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगमिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) मैं प्राप्तहोता हूं। (ताः) वे [प्रजायें](मा) मुझे (रक्षन्तु) बचावें, (ताः) वे (मा) मुझे (गोपायन्तु) पालें, (ताभ्यः) उन को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिन्नभये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥

विश्व-कर्मा । मा । सप्तऋषि-भिः । उदीच्याः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । अभये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु ॥ तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब कर्म करने वाला परमेश्वर (सप्तऋषिभिः) सात ऋषियों सहित [कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि सहित] (मा) मुझे (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में..... [म० १] ॥ ७ ॥

(पान्तु) रक्षन्तु (तासु) अप्सु । प्रजासु (ताः) आपः । प्रजाः (रक्षतु) (गोपायन्तु) पालयन्तु (ताभ्यः) प्रजाभ्यः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—(विश्वकर्मा) सर्वकर्मकर्ता परमेश्वरः (सप्तऋषिभिः) आप्तैः । पा० ६।१।१२८। इति प्रकृतिभावः । मनोबुद्धिसहितैः श्रोत्रनेत्र-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ८ ॥

इन्द्रः । मा । मरुत्-वान् । एतस्याः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(मरुत्वान्) शूरोंका अधिष्ठाता (इन्द्रः) इन्द्र [परम-ऐश्वर्यवान् परमात्मा] (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में .....[म०१] ॥ ८ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ८ ॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सुह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥

प्रजा-पतिः । मा । प्रजनन-वान् । सुह । प्रति-स्थायाः । ध्रुवायाः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(प्रजननवान्) सृजन सामर्थ्य वाला (प्रजापतिः) प्रजापति

नासिकाजिह्वात्वग्रूपैःपञ्चज्ञानेन्द्रियैः (उदीच्याः) उत्तरस्याः । वामभाग-स्थायाः । अन्यत् पूर्ववत्—म०२ ॥

८—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (मा) (मरुत्वान्) म० १ । २० । १ । मरुतः शत्रुमारकाः शूराः, तैस्तद्वान् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

९—(प्रजापतिः) प्रजापालकः परमात्मा (प्रजननवान्) उत्पादन-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रजाओं का पालक परमेश्वर] (मा) मुझे (प्रतिष्ठायाः=प्रतिष्ठया) प्रतिष्ठा [गौरव] के (सह) साथ (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में... ..[म० १] ॥ ९ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ९ ॥

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वायां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १० ॥

बृहस्पतिः । मा । विश्वैः । देवैः । ऊर्ध्वायाः । दिशः । पातु । तस्मिन् । क्रमे । तस्मिन् । श्रये । ताम् । पुरम् । प्र । एमि ॥ सः । मा । रक्षतु । सः । मा । गोपायतु । तस्मै । आत्मानम् । परि । ददे । स्वाहा ॥ १० ॥

भाषार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी का रक्षक परमात्मा] (विश्वैः) सब (देवैः) उत्तम गुणों के साथ (मा) मुझे (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूं, (तस्मिन्) उस में (श्रये) आश्रय लेता हूं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूं। (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उसको (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूं ॥ १० ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ १० ॥

सामर्थ्योपेतः (सः) (प्रतिष्ठायाः) तृतीयार्थे षष्ठी । प्रतिष्ठया । गौरवेण (ध्रुवायाः) स्थिरायाः । अधोभवायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१०—(बृहस्पतिः) बृहत्या वेदवाण्या रक्षकः परमात्मा (विश्वैः) सर्वैः (देवैः) श्रेष्ठगुणैः सह (ऊर्ध्वायाः) उपरिस्थितायाः । शिष्टं पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १८ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१० ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ साम्नी त्रिष्टुप्; २, ३, ६ आर्च्यनुष्टुप्; ४ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; ५ स्वराडार्च्यनुष्टुप्; ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ८ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के प्रयत्न का उपदेश ॥

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥

अग्निम् । ते । वसु-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा । अघ-यवः । प्राच्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (वसुवन्तम्) श्रेष्ठ गुणों के स्वामी (अग्निम्) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (प्राच्याः) पूर्व वा सामने वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करें कि पापी लोग दुष्टाचरण छोड़कर सर्व-नियन्ता परमेश्वर की आज्ञा में रह कर सर्वत्र सब को सुख देवें ॥ १ ॥

इस सूक्त के मन्त्रों को यथाक्रम गत सूक्त के मन्त्रों से मिलाओ ॥

१—(अग्निम्) ज्ञानस्वरूपं परमेश्वरम् (ते) अघायवः (वसुवन्तम्) संज्ञायाम् । पा० ८ । २ । ११ । इति मतोर्वः । श्रेष्ठगुणस्य स्वामिनम् (ऋच्छन्तु) ऋच्छतिः परिचरणकर्मा—निघ० ३ । ५ । परिचरन्तु । सेवन्ताम् (ये) (मा) माम् (अघायवः) अघ—क्यच् परेच्छायाम् । अश्वाघस्यात् । पा० ७ । ४ । ३७ । इत्यात्वम् । क्याच्छन्दसि । पा० ३ । २ । १७० । इति उप्रत्ययः । पापमिच्छन्तः । जिघांसवः (प्राच्याः) पूर्वस्याः । अभिमुखीभूतायाः (दिशः) (अभिदासात्) लेटि बहुवचनस्यैकवचनम् । सर्वतो दासेयुः । हिंस्युः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुं ते३न्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवं एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥

वायुम् । ते । अन्तरिक्ष-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा । अघ-यवः । एतस्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (अन्तरिक्षवन्तम्) मध्यलोक के स्वामी (वायुम्) सर्वव्यापक परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ २ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ २ ॥

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥

सोमम् । ते । रुद्र-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा । अघ-यवः । दक्षिणायाः । दिशः । अभि-दासात् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (रुद्रवन्तम्) दुष्टनाशक गुणों के स्वामी (सोमम्) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ३ ॥

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवं एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥

२—(वायुम्) सर्वव्यापकं परमात्मनम् (अन्तरिक्षवन्तम्) मध्यलोकस्य स्वामिनम् (एतस्याः) मध्यवर्तमानायाः । अन्यत् पूर्ववत् ।

३—(सोमम्) सर्वोत्पादकं परमात्मानम् (रुद्रवन्तम्) रुङ् हिंसायाम्—क्विप् तुक् च+रुङ् हिंसायाम्—ड । रुद्राणां दुष्टनाशकगुणानां स्वामिनम् (दक्षिणायाः) दक्षिणस्याः । दक्षिणहस्तभवायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरुणम् । ते । आदित्य-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा । अघ-यवः । एतस्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (आदित्यवन्तम्) प्रकाशमान गुणों के स्वामी (वरुणम्) सब में उत्तम परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ४ ॥

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ५ ॥

सूर्यम् । ते । द्यावापृथिवी-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा । अघ-यवः । प्रतीच्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (द्यावापृथिवीवन्तम्) सूर्य और पृथिवी के स्वामी (सूर्यम्) सर्व प्रेरक परमात्मा की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ५ ॥

अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥

अपः । ते । ओषधी-मतीः । ऋच्छन्तु ॥
ये । मा । अघ-यवः । एतस्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥ ६ ॥

४—(वरुणम्) सर्वोत्तमं परमेश्वरम् (आदित्यवन्तम्) प्रकाशमान-गुणानां स्वामिनम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—(सूर्यम्) सर्वप्रेरकं परमात्मानम् (द्यावापृथिवीवन्तम्) छन्दसीरः । पा० ८ । २ । १५ । मतुपो मस्य वः । सूर्यपृथिव्योः स्वामिनम् (प्रतीच्याः) पश्चिमायाः । पृष्ठतः स्थितायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (ओषधीमतीः) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] वाली (अपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त प्रजाओं की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥६॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ६ ॥

सूचना—(अपः) शब्द के लिये गत सूक्त का मन्त्र ६ देखो ॥

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥

विश्व-कर्माणम् । ते । सप्तऋषि-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा । अघ-यवः । उदीच्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (सप्तऋषिवन्तम्) सात ऋषियों [हमारे कान आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रियों मन, बुद्धि] के स्वामी (विश्वकर्माणम्) विश्वकर्मा [सब के बनाने वाले परमेश्वर] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ७ ॥

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥

इन्द्रम् । ते । मरुत्-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥
ये । मा । अघ-यवः । एतस्याः । दिशः । अभि-दासात् ॥८॥

६—(अपः) सू० १७ म० ६ । आप्ताः प्रजाः (ओषधीमतीः) अन्नसोमलतायुक्ताः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—(विश्वकर्माणम्) सर्वस्रष्टारं परमेश्वरम् (सप्तऋषिवन्तम्) सू० १७ । म० ७ । छन्दसीरः । पा० ८ । २।१५ । मतुपो वः । मनोबुद्धिसहितपञ्चज्ञानेन्द्रियाणां स्वामिनम् (उदीच्याः) उत्तरस्याः वामस्थायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (मरुत्वन्तम्) शूरों के स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ८ ॥

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥

प्रजा-पतिम् । ते । प्रजनन-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥
ये । मा । अघ-यवः । ध्रुवायाः । दिशः । अभि-दासात् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (प्रजननवन्तम्) सृजन सामार्थ्य के स्वामी (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजाओं के पालक परमेश्वर] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ समान है ॥ ९ ॥

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥ १० ॥

बृहस्पतिम् । ते । विश्वदेव-वन्तम् । ऋच्छन्तु ॥ ये । मा ।
अघ-यवः । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अभि-दासात् ॥ १० ॥

भाषार्थ—(ते) वे [दुष्ट] विश्वदेववन्तम्) सब उत्तम गुण रखने

८—(इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं परमात्मानम् (मरुत्वन्तम्) मरुतां शत्रुमारकाणां शूराणां स्वामिनम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

९—(प्रजापतिम्) सर्वपालकं परमात्मानम् (प्रजननवन्तम्) सृजनसामर्थ्यस्वामिनम् (ध्रुवायाः) स्थिरायाः । अधःस्थितायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१०—(बृहस्पतिम्) बृहत्या वेदवाण्या रक्षकं परमात्मानम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [वेदवाणी के रक्षक परमात्मा] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥१०॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ १० ॥

सूक्तम् १९ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—११ । मन्त्रोक्ता देवताः । १, ६ भुरिगार्षी बृहती; २, ४—७ निचृदार्षी पङ्क्तिः; ३ आर्षी बृहती; ८, ११ आर्षी पङ्क्तिः; १० स्वराडार्षी बृहती ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के प्रयत्न का उपदेश ॥

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥

मित्रः । पृथिव्या । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ १ ॥

भाषार्थ—(मित्रः) मित्र [हितकारी मनुष्य] (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वेदा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूं। (ताम्) उस [शक्ति] में (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस में (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः)

(विश्वदेववन्तम्) सर्वश्रेष्ठगुणयुक्तम् (ऊर्ध्वायाः) उपरिस्थितायाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१—(मित्रः) मिमिदा स्नेहे—क्त्र । स्नेही पुरुषः (पृथिव्या) भूमिराज्यादिना सह (उदक्रामत्) उत्क्रान्तवान् । उच्चपदं प्राप्तवान् (ताम्) प्रसिद्धाम् (पुरम्) पुर अग्रगमने—क्विप् । अग्रगामिनीं दुर्गरूपां वा शक्तिं परमात्मानं प्रति (प्र) अग्रे (नयामि) गमयामि (वः) युष्मान् (ताम्) शक्तिम् (आ विशत) आभिमुख्येन मध्ये गच्छत (ताम्) (प्र विशत) प्रवेशेन प्राप्नुत (सा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रत्नों को धारण करने वाली पृथिवी का मान करते और परमात्मा में पूर्ण विश्वास रखते हैं, वे ही सुरक्षित रहकर उन्नति करते हैं ॥ १ ॥

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ २ ॥

वायुः । अन्तरिक्षेण । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(वायुः) वायु [पवन] (अन्तरिक्षेण) आकाश के साथ (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति..... [मन्त्र १] ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे वायु आकाश में होकर प्रत्येक वस्तु में प्रवेश करके आगे बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर में श्रद्धा करके विद्या और बल में आगे बढ़ें ॥ २ ॥

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ३ ॥

सूर्यः । दिवा । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ ३ ॥

शक्तिः (वः) युष्मभ्यम् (शर्म) सुखम् (च च) समुच्चये (वर्म) कवचम् रक्षासाधनम् (यच्छतु) ददातु ॥

२—(वायुः) वातः । पवनः (अन्तरिक्षेण) आकाशेन । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सूर्यः) सूर्य (दिवा) प्रकाश के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा-चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति……[मन्त्र १] ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य सूर्य के समान प्रतापी होकर परमात्मा का स्मरण करता हुआ पुरुषार्थ करे ॥ ३ ॥

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः। तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ४ ॥

चन्द्रमाः। नक्षत्रैः। उत्। अक्रामत्। ताम्। पुरम्। प्र। नयामि। वः ॥ ताम्। आ। विशत। ताम्। प्र। विशत। सा। वः। शर्म। च। वर्म। च। यच्छतु ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(चन्द्रमाः) चन्द्रमा (नक्षत्रैः) नक्षत्रों के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति……[मन्त्र १] ॥ ४ ॥

भावार्थ—चन्द्रमा और नक्षत्रों के विषय में सू० ७ और सूक्त ८ मन्त्र १, २ देखो। मनुष्य चन्द्रमा के समान परमात्मा के नियम में चलकर परोपकार करे ॥ ४ ॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः। तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ५ ॥

सोमः। ओषधीभिः। उत्। अक्रामत्। ताम्। पुरम्। प्र। नयामि। वः ॥ ताम्। आ। विशत। ताम्। प्र। विशत। सा। वः। शर्म। च। वर्म। च। यच्छतु ॥ ५ ॥

३—(सूर्यः) रविः (दिवा) प्रकाशेन सह। अन्यद् गतम् ॥

४—(चन्द्रमाः) चन्द्रमाह्लादं माति निर्मिमीते सः। आह्लादकश्चन्द्रलोकः (नक्षत्रैः) गमनशीलैस्तारागणैः—पश्यत सूक्तम् ७ तथा ८ म० १, २। अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सोमः) सोम रस (ओषधीभिः) ओषधियों [अन्नादि] के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति·····[म० १] ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे सोमरस उत्तम महौषध दूसरी ओषधियों के साथ में उपकारी होता है, वैसे ही परमेश्वर भक्त विद्वान् पुरुष अन्य मनुष्यों के मेल से उपकार करे ॥ ५ ॥

यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ६ ॥

यज्ञः । दक्षिणाभिः । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(यज्ञः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं [योग्य दानों] के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति·····[मन्त्र १] ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे उत्तम उत्तम काम सुपात्रों के सत्कार से सिद्ध होते हैं, वैसे ही मनुष्यों को ईश्वर भक्ति के साथ लोगों का मान करके बड़े बड़े काम करने चाहियें ॥ ६ ॥

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ७ ॥

समुद्रः । नदीभिः । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ ७ ॥

५—(सोमः) सोमरसः (ओषधीभिः) अन्नादिभिः । अन्यद् गतम् ॥

६—(यज्ञः) पूजनीयव्यवहारः (दक्षिणाभिः) योग्यदानैः । अन्यद् गतम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(समुद्रः) समुद्र [जल समूह] (नदीभिः) नदियों के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति·····[मन्त्र १] ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे समुद्र ईश्वर नियम से नदियों के मेल से बड़ा होता है, वैसे ही मनुष्य मिलकर उन्नति करें ॥ ७ ॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ८ ॥

ब्रह्म । ब्रह्मचारि-भिः । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्म) वेदज्ञान (ब्रह्मचारिभिः) ब्रह्मचारियों [वीर्यनिग्रह से ईश्वर और वेद को प्राप्त होने वालों] के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति·····[मन्त्र १] ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य के उत्तम नियमों के पालन से संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥ ८ ॥

इन्द्रो वीर्येण उदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ९ ॥

इन्द्रः । वीर्येण । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] (वीर्येण) वीरता से (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति

७—(समुद्रः) जलौघः (नदीभिः) । सरिद्भिः । अन्यद् गतम् ॥

८—(ब्रह्म) वेदज्ञानम् (ब्रह्मचारिभिः) वीर्यनिग्रहेण परमेश्वरस्य वेदस्य च प्राप्तये अभ्यासिभिः । अन्यद् गतम् ॥

९—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (वीर्येण) वीरकर्मणा । अन्यद्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

……[मन्त्र १] ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की भक्ति के साथ प्रतापी वीरों के समान वीर कर्म करके उन्नति करनी चाहिये ॥ ९ ॥

देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १० ॥

देवाः । अमृतेन । उत् । अक्रामन् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ १० ॥

भाषार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग (अमृतेन) अमरपन [पुरुषार्थ वा मोक्ष सुख] के साथ (उत् अक्रामन्) ऊंचे चढ़े हैं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति……[मन्त्र १] ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग पुरुषार्थ करके उच्च पद पाते हैं, वैसे ही सब मनुष्य विद्वान् होकर उन्नति करते रहें ॥ १० ॥

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ११ ॥

प्रजा-पतिः । प्र-जाभिः । उत् । अक्रामत् । ताम् । पुरम् । प्र । नयामि । वः ॥ ताम् । आ । विशत । ताम् । प्र । विशत । सा । वः । शर्म । च । वर्म । च । यच्छतु ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] (प्रजाभिः) प्रजाओं के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूं । (ताम्) उस [शक्ति] में (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस में (प्र

गतम् ॥

१०—(देवाः) विद्वांसः (अमृतेन) अमरत्वेन । पुरुषार्थेन । मोक्षसुखेन । अन्यद् गतम् ॥

११—(प्रजापतिः) प्रजापालकः पुरुष (प्रजाभिः) सन्तानैः । जनताभिः ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षासाधन] (यच्छतु) देवे ॥ ११ ॥

भावार्थ—प्रजापालक पुरुष उत्तम सन्तानों और जनताओं के साथ आगे बढ़ते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को परस्पर सहाय करके सब की उन्नति से अपनी उन्नति करनी चाहिये ॥ ११ ॥

सूक्तम् २० ॥

१—४ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ आर्षी त्रिष्टुप् ; २ निचृज् जगती; ३ आर्ष्यनुष्टुप् ; ४ निचृदनुष्टुप् ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के प्रयत्न का उपदेश ॥

अप॒ न्यधुः पौरु॑षेयं॒ वध॑ यमि॑न्द्राग्नी धा॒ता स॑वि॒ता बृह॒स्पतिः॑। सोमो॒ राजा॒ वरु॑णो॒ अश्वि॑ना॒ यमः॑ पू॒षास्मान् परि॑ पातु मृ॒त्योः ॥ १ ॥

अप॑। न्यधुः॑। पौरु॑षेयम्। वध॑म्। यम्। इ॒न्द्रा॒ग्नी इति॑। धा॒ता। स॒वि॒ता। बृह॒स्पतिः॑॥ सोमः॑। राजा॑। वरु॑णः। अश्वि॑ना। यमः॑। पू॒षा। अ॒स्मान्। परि॑। पा॒तु॒। मृ॒त्योः ॥१॥

भाषार्थ—(यम्) जिस (पौरुषेयम्) पुरुषों में विकार करने वाले (वधम्) हथियार को (अप) छिपा कर (न्यधुः) उन [शत्रुओं] ने जमा रक्खा है, [उस] (मृत्योः) मृत्यु [मृत्यु के कारण] से (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि दोनों [के समान व्यापक और तेजस्वी], (धाता) धारण करने वाला, (सविता) आगे चलाने वाला, (बृहस्पतिः) बड़ी विद्याओं का रक्षक, (सोमः)

अन्यद् गतम् ॥

१—(अप) अपगूढम्। अप्रकाशम् (न्यधुः) निहितवन्तः । नीचैः स्थापितवन्तः शत्रवः (पौरुषेयम्) पुरुषाद् वधविकारसमूहहेतनकृतेषु । वा० पा० ५ । १ । १० । पुरुष—ढञ् । पुरुषाणां विकर्तारं नाशकम् (वधम्) हननसाधनं शस्त्रास्त्रादिरूपम् (यम्) (इन्द्राग्नी) विद्युत्पावकाविव व्यापकस्तेजस्वी च (धाता) धारकः (सविता) प्रेरकः (बृहस्पतिः) बृहतीनां विद्यानां पालकः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यवान्, (राजा) राजा [शासक] (वरुणः) श्रेष्ठ, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा दोनों [के समान नियम पर चलने वाला], (यमः) न्यायकारी (पूषा) पोषण करने वाला [शूर पुरुष] (अस्मान्) हमें (परि) सब ओर से (पातु) बचावे ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि शत्रु, चोर, डाकू आदि छल कपट से सुरंग आदि लगा कर प्रजा को दुःख देवें, शूर प्रतापी राजा उन को रोक कर प्रजा की रक्षा करे ॥ १ ॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिःप्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः । प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥

यानि । चकार । भुवनस्य । यः । पतिः । प्रजा-पतिः । मातरिश्वा । प्र-जाभ्यः ॥ प्र-दिशः । यानि । वसते । दिशः । च । तानि । मे । वर्माणि । बहुलानि । सन्तु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(भुवनस्य) संसार का (यः) जो (पतिः) पति [परमात्मा] है, [उस] (प्रजापतिः) प्रजापति, (मातरिश्वा) आकाश में व्यापक [परमात्मा] ने (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (यानि) जिन [रक्षा साधनों] को (चकार) बनाया है । और (यानि) जो (प्रदिशः) दिशाओं (च) और (दिशः) मध्य दिशाओं को (वसते) ढकते हैं [रक्षित करते हैं], (तानि)

(सोमः) ऐश्वर्यवान् (राजा) शासकः (वरुणः) श्रेष्ठः (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसाविव नियमवान् पुरुषः (यमः) न्यायकारी (पूषा) पोषकः (अस्मान्) प्रजागणान् (परि) सर्वतः (पातु) (रक्षतु) (मृत्योः) तस्माद् मरणकारणात् ॥

२—(यानि) वर्माणि । रक्षासाधनानि (चकार) रचितवान् (भुवनस्य) संसारस्य (यः) (पतिः) स्वामी (प्रजापतिः) प्रजापालकः (मातरिश्वा) टुओश्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन् । मातरि आकाशे श्वयति व्याप्नोतीति परमात्मा (प्रजाभ्यः) (प्रदिशः) प्राच्यादिदिशाः (यानि) वर्माणि (वसते) आच्छादयन्ति । रक्षन्ति (दिशः) मध्यवर्तिनीर्दिशाः (च) (तानि) (मे)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे (वर्माणि) कवच [रक्षा साधन] (मे) मेरे लिये (बहुलानि) बहुत से (सन्तु) होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—जगत्पालक परमेश्वर ने मनुष्य के लिये सब दिशाओं में रक्षा के साधन उपस्थित किये हैं मनुष्य प्रयत्न पूर्वक उन्हें प्राप्त करके सुखी होवे ॥२

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

यत् । ते । तनूषु । अनह्यन्त । देवाः । द्यु-राजयः । देहिनः ॥
इन्द्रः । यत् । चक्रे । वर्म । तत् । अस्मान् । पातु । विश्वतः ३

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जिस [कवच] को (तनूषु) शरीरों पर (ते) उन (द्युराजयः) व्यवहारों में ऐश्वर्यवान्, (देहिनः) शरीरधारी (देवाः) विद्वानों ने (अनह्यन्त) बांधा है। और (यत्) जिस (वर्म) कवच [रक्षासाधन] को (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (चक्रे) बनाया है, (तत्) वह [कवच] (अस्मान्) हमें (विश्वतः) सब ओर से (पातु) बचावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोगों ने परमेश्वरकृत नियमों को मान कर सब की रक्षा की है, वैसे ही मनुष्यों को विद्वान् होकर परस्पर रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहुर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः कृन्वन्तु मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥ ४ ॥

मह्यम् (वर्माणि) कवचानि । रक्षासाधनानि (बहुलानि) प्रभूतानि (सन्तु) भवन्तु ॥

३—(यत्) वर्म (ते) प्रसिद्धाः (तनूषु) शरीरेषु (अनह्यन्त) णह बन्धने—लङ् । धृतवन्तः (देवाः) विद्वांसः (द्युराजयः) दिवु व्यवहारे—क्विप्+राजृ दीप्तौ ऐश्वर्ये च—इन् । व्यवहारेषु समर्थाः (देहिनः) शरीरिणः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वरः (यत्) (चक्रे) कृतवान् (वर्म) कवचम् । रक्षासाधनम् (तत्) (अस्मान्) उपासकान् (पातु) (विश्वतः) सर्वतः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्म॑ । मे॒ । द्यावापृथिवो इति । वर्म॑ । अहः॑ । वर्म॑ । सूर्यः॑ ॥ वर्म॑ । मे॒ । विश्वे॑ । दे॒वाः॒ । क्रन् । मा । मा॒ । प्र । आ॒प॒त् ॥ प्रतीचिका ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि ने (वर्म) कवच, (अहः) दिन ने (वर्म) कवच, (सूर्यः) सूर्य ने (वर्म) कवच, (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थों ने (वर्म) कवच (मे) मेरे लिये (क्रन्) किया है, (मा) मुझ को (प्रतीचिका) उलटी चलने वाली [विपत्ति] (मा प्र आपत्) कभी न प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य संसार के बीच सब पदार्थों से सर्वदा उपकार लेते हैं, वह सुखी रहते हैं ॥ ४ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २१ ॥

मन्त्रः १ ॥ वाग् देवता ॥ साम्नी बृहती छन्दः ॥

महाशान्त्युपदेशः—महाशान्ति के लिये उपदेश ॥

गा॒य॒त्र्यु॑१ ष्णिग॑नु॒ष्टुब् बृ॒हती॑ प॒ङ्क्तिस्त्रि॒ष्टुब् ज॑ग॒त्यै ॥ १ ॥

गा॒य॒त्री । उ॒ष्णिक् । अ॒नु॒-स्तुप् । बृ॒हती॑ । प॒ङ्क्तिः । त्रि॒-स्तुप् । ज॒ग॒त्यै ॥ १ ॥

भाषार्थ—(गायत्री) गायत्री [गानेयोग्य] (उष्णिक्) उष्णिक्

४-(वर्म) कवचम् (मे) मह्यम् (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमी (वर्म) (अहः) दिनम् (वर्म) (सूर्यः) भास्करः (वर्म) (मे) (विश्वे) सर्वे (देवाः) दिव्यपदार्थाः (क्रन्) छान्दसो लुङ् । अकार्षुः (मा) निषेधे (मा) माम् (प्र आपत्) अप्नोतेर्लुङ् । प्राप्नोत् (प्रतीचिका) प्रतीची-कन् स्वार्थे । केऽणः । पा० ७ । ४ । १३ । इति ह्रस्वः । प्रतिकूलाञ्चना विपत्तिः ॥

१—(गायत्री) अ० ८ । ६ । १४ । अमिनक्षियजि० । उ० ३ । १०५ । गै गाने-अत्रन्, णित्, युक् ङीप् च । गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० ७ । १२ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बड़े स्नेह वाली], (बृहती) बृहती [बढ़ती हुयी], (पङ्क्तिः) पङ्क्ति [विस्तार-वाली], (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् [तीन कर्म, उपासना, ज्ञान से सत्कार की गयी], (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् [निरन्तर पूजने योग्य वेद वाणी] (जगत्यै) जगती [चलते हुये जगत् के हित के लिये] है ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वरोक्त वेदवाणी द्वारा कर्म, उपासना और ज्ञान में तत्पर होकर संसार का हित करना चाहिये ॥ १ ॥

सूचना—गायत्री २४, उष्णिक् २८, अनुष्टुप् ३२, बृहती ३६, पङ्क्ति ४०, त्रिष्टुप् ४४ और जगती ४८ अक्षर के छन्द विशेष भी हैं, परन्तु इस पक्ष में अर्थ की सङ्गति विचारणीय है ॥

सूक्तम् २२ ॥

१–२१ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ सामन्युष्णिक् ; २, ६, १४–१६, २० दैवी पङ्क्तिः; ३, १६ प्राजापत्या गायत्री; ४, ७, ११, १७ दैवी जगती; ५, १२, १३ दैवी त्रिष्टुप् ; ८–१० आसुरी जगती ; १८ आसुर्यनुष्टुप् ; २१ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

महाशान्त्युपदेशः—महाशान्ति के लिये उपदेश ॥

गानयोग्या । छन्दोविशेषोऽपि (उष्णिक्) ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिग्० । पा० ३ । २ । ५९ । उत्+ष्णिह प्रीतौ स्नेहने च–किन् । उष्णिगुत्स्नाता भवति, स्निह्यतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मण उष्णीषिणी वेत्यौपमिकमुष्णीषं स्नायतेः—निरु० ७ । १२ । उत्कर्षेण स्नेहिनी । प्रीतिमती (अनुष्टुप्) अ० ८ । ६ । १४ । अनु+ष्टुभ पूजायाम्—क्विप् । स्तोभतिरर्चतिकर्मा–निघ० ३ । १४ । अनुष्टुब् वाङ्नाम–निघ० १ । ११ । निरन्तरं स्तुतियोग्या वेदवाणी । छन्दोविशेषोऽपि (बृहती) अ० १ । १७ । ४ । वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्० । उ० २ । ८४ । बृह वृद्धौ–अति, ङीष् । बृहती परिबर्हणात्—निरु० ७ । १२ । प्रवर्धमाना । छन्दोविशेषोऽपि(पङ्क्तिः) अ० ६ । १० । २१ । पचि व्यक्तीकरणे–क्तिन् । पङ्क्तिः पञ्चपदा–निरु० ७ । १२ । विस्तारवती । छन्दो विशेषोऽपि (त्रिष्टुप्)अ० ८ । ६ । १४ । त्रि+ष्टुभ पूजायाम्–क्विप् । स्तोभतिरर्चतिकर्मा– निघ० ३ । १४ । त्रिष्टुप् स्तोभत्युत्तरपदा–निरु० ७ । १२ । त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैः पूजिता । छन्दोविशेषोऽपि (जगत्यै) अ० ८ । ६ । १४ । वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच् । उ० २ । ८४ । गमॢ गतौ–अति, ङीप्, जगते संसारहिताय । जगतीति छन्दो विशेषोऽपि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥

आङ्गिरसानाम् । आद्यैः । पञ्च । अनु-वाकैः । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थ—(आङ्गिरसानाम्) अङ्गिरा [सर्वज्ञ परमेश्वर] के बनाये [ज्ञानों] के (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्चभूतों] से सम्बन्ध वाले (आद्यैः) आदि में [इस सृष्टि के पहिले] वर्तमान (अनुवाकैः) अनुकूल वेदवाक्यों के साथ (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वरीय ज्ञान वेदों द्वारा पृथिवी आदि पदार्थों को यथावत् जानकर अपनी वाणी को सुफल करें ॥ १ ॥

षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥ षष्ठाय । स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थ—(षष्ठाय) छठे [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्च भूतों की अपेक्षा छठे परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २ ॥

भावार्थ—पृथिव्यादि पञ्चभूतों के नियन्ता परमेश्वर की उपासना सब मनुष्य करें । अथर्व० ८ । ६ । ४ । भी देखो ॥ २ ॥

सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥३॥ सप्तम-अष्टमाभ्याम् । स्वाहा ॥३॥

भाषार्थ—(सप्तमाष्टमाभ्याम्) सातवें के लिये और आठवें के लिये [भावार्थ देखो] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—यहां सातवां और आठवां पद परमेश्वर के दो गुणों का नाम

१—(आङ्गिरसानाम्) अङ्गिरस्—अण् । अङ्गिरसा सर्वज्ञेन परमात्मना कृतानां ज्ञानानाम् (आद्यैः) सृष्टेः प्राग् वर्तमानैः (पञ्च) विभक्तेर्लुक् । पञ्चभिः पृथिव्यादिपञ्चभूतसम्बन्धिभिः (अनुवाकैः) अनुकूलवेदवाक्यैः सह (स्वाहा) अ० १९ । १७ । १ । सुवाणी ॥

२—(षष्ठाय) पृथिव्यादिपञ्चभूतापेक्षया षट्संख्यापूरकाय परमेश्वराय ॥

३—(सप्तमाष्टमाभ्याम्) सप्तमश्चाष्टमश्च तौ ताभ्याम् । षड्वर्गेण काम-क्रोधलोभमोहमदमात्सर्यैः पृथग्भूताय सप्तमाय, श्रोत्रनेत्रनासिकाजिह्वात्वग्-मनश्चित्तैः पृथग् वर्तमानाय अष्टमाय च परमेश्वराय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परमेश्वर षड्वर्ग अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य से अलग सातवां है। तथा कान, आंख, नाक जिह्वा, त्वचा पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन और चित्त से पृथक् होने से उसको आठवां माना है। उसकी उपासना हमें सदा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

नी॒ल॒न॒खेभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥ नी॒ल॒-न॒खेभ्यः॑ । स्वाहा॑ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(नीलनखेभ्यः) निश्चित ज्ञान प्राप्त कराने वाले [परमेश्वर के गुणों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—स्पष्ट है ॥ ४ ॥

ह॒रि॒तेभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥ ह॒रि॒तेभ्यः॑ । स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(हरितेभ्यः) स्वीकार करने योग्य [परमेश्वर के गुणों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ५ ॥

क्षु॒द्रेभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥ क्षु॒द्रेभ्यः॑ । स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(क्षुद्रेभ्यः) सूक्ष्म गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर-वाणी] हो ॥ ६ ॥

यह मन्त्र आगे है—अथर्व० १९ । २३ । २१ ॥

प॒र्या॒यि॒केभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥७॥ प॒र्या॒यि॒केभ्यः॑ । स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(पर्यायिकेभ्यः) पर्याय [अनुक्रम] वाले गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ७ ॥

४—(नीलनखेभ्यः) नि+इल गतौ-क+णख गतौ—क। इला वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । नीलानां निश्चितज्ञानानां नखेभ्यः प्रापकेभ्यः परमात्मगुणेभ्यः ॥

५—(हरितेभ्यः) हृश्याभ्यामितन् । उ० ३ । ९३ । हृञ् स्वीकारे—इतन् । स्वीकरणीयेभ्यः परमेश्वरगुणेभ्यः ॥

६—(क्षुद्रेभ्यः) स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदि० । उ० २ । १३ । क्षुदिर् संपेषणे-रक् । सूक्ष्मगुणेभ्यः ॥

७—(पर्यायिकेभ्यः) अत इनिठनौ । पा० ५ । २ । ११५ । पर्याय-ठन् । अनुक्रमयुक्तेभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ।८। प्रथमेभ्यः । शङ्खेभ्यः । स्वाहा ॥८॥

भाषार्थ—(प्रथमेभ्यः) पहिले [सृष्टि से पहिले वर्तमान] (शङ्खेभ्यः) विचार योग्य गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ८ ॥

द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ।९। द्वितीयेभ्यः । शङ्खेभ्यः । स्वाहा ९

भाषार्थ—(द्वितीयेभ्यः) दूसरे [सृष्टि के आदि की अपेक्षा अन्त में विद्यमान] (शङ्खेभ्यः) दर्शनीय गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर-वाणी] हो ॥ ९ ॥

तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा।१०। तृतीयेभ्यः। शङ्खेभ्यः । स्वाहा१०

भाषार्थ—(तृतीयेभ्यः) तीसरे [आदि और अन्त की अपेक्षा मध्य में वर्तमान] (शङ्खेभ्यः) शान्तिदायक गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १० ॥

उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ उप-उत्तमेभ्यः । स्वाहा ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(उपोत्तमेभ्यः) श्रेष्ठों के समीपवर्ती [ब्रह्मचारी आदि पुरुषों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ११ ॥

उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥ उत्-तमेभ्यः । स्वाहा ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(उत्तमेभ्यः) अत्यन्त श्रेष्ठ [पुरुषों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १२ ॥

८—(प्रथमेभ्यः) सृष्टेः पूर्ववर्तमानेभ्यः (शङ्खेभ्यः) शमेः खः । उ० १ । १०२ । शम आलोचने दर्शने च, शमु उपशमे च-खप्रत्ययः । आलोचनीयेभ्यो गुणेभ्यः ॥

९—(द्वितीयेभ्यः) सृष्टेराद्यपेक्षया अन्ते वर्तमानेभ्यः (शङ्खेभ्यः) म० ८ । दर्शनीयगुणेभ्यः ॥

१०—(तृतीयेभ्यः) आद्यन्तापेक्षया मध्ये वर्तमानेभ्यः (शङ्खेभ्यः) म० ८ । शान्तिप्रदगुणेभ्यः ॥

११—(उपोत्तमेभ्यः) श्रेष्ठानां समीपवर्तिभ्यो ब्रह्मचार्यादिभ्यः ॥

१२—(उत्तमेभ्यः) अतिश्रेष्ठपुरुषेभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥ उत्-तरेभ्यः । स्वाहा ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(उत्तरेभ्यः) अधिकतर ऊंचे [पुरुषों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १३ ॥

ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ ऋषि-भ्यः । स्वाहा ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(ऋषिभ्यः) ऋषियों [वेदव्याख्याता मुनियों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १४ ॥

शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५॥ शिखि-भ्यः । स्वाहा ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(शिखिभ्यः) शिखाधारियों [चोटी वालों, अथवा चोटी वाले पर्वतादि के समान ऊंचे ब्रह्मज्ञानियों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १५ ॥

गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥ गणेभ्यः । स्वाहा ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(गणेभ्यः) समूहों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर-वाणी] हो ॥ १६ ॥

महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥ महा-गणेभ्यः । स्वाहा ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(महागणेभ्यः) बड़े समूहों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १७ ॥

सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥

सर्वेभ्यः । अङ्गिरः-भ्यः । विदगणेभ्यः । स्वाहा ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(सर्वेभ्यः) सब (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी (विदगणेभ्यः)

१३—(उत्तरेभ्यः) अधिकतरोन्नतपुरुषेभ्यः ॥

१४—(ऋषिभ्यः) वेदार्थदर्शकेभ्यो मुनिभ्यः ॥

१५—(शिखिभ्यः) व्रीह्यादिभ्यश्च । पा० ५ । २ । ११६ । शिखा—इनि । शिखाधारिभ्यः, यद्वा शिखरयुक्तपर्वतादितुल्योन्नतेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः ॥

१६—(गणेभ्यः) समूहेभ्यः ॥

१७—(महागणेभ्यः) महासमूहेभ्यः ॥

१८—(सर्वेभ्यः) समस्तेभ्यः (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानिभ्यः (विदगणेभ्यः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित समूहों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी) हो ॥ १८ ॥

पृथुक्सहस्राभ्यां स्वाहा॥१८॥ पृथुक्-सहस्राभ्याम् । स्वाहा॥१८॥

भाषार्थ—(पृथक्सहस्राभ्याम्) पृथक् पृथक् और सहस्रों वाले दोनों [समूहों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्य पृथक् पृथक् होकर और सामाजिक समुदाय बनाकर हितकारी कर्म करें करावें ॥ १९ ॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥ ब्रह्मणे । स्वाहा ॥ २० ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मणे) वेदज्ञान के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २० ॥

भावार्थ—मनुष्य वेदविद्या के उपदेश से परस्पर हित करते कराते रहें ॥ २० ॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः २१

ब्रह्म-ज्येष्ठा । सम् -भृता । वीर्याणि । ब्रह्म । अग्रे । ज्येष्ठम् । दिवम् । आ । ततान ॥ भूतानाम् । ब्रह्मा । प्रथमः । उत । जज्ञे । तेन । अर्हति । ब्रह्मणा । स्पर्धितुम् । कः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(संभृता) यथावत् भरे हुये (वीर्याणि) वीर कर्म (ब्रह्मज्येष्ठा) ब्रह्म [परमात्मा] को ज्येष्ठ [महाप्रधान रखने वाले] हैं, (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सर्वप्रधान] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले (दिवम्)

विद ज्ञाने-क । पण्डितसमूहेभ्यः ॥

१९—(पृथक्सहस्राभ्याम्) व्यक्तिजन्यसहस्रजन्याभ्यां समूहाभ्याम् ॥

२०—(ब्रह्मणे) वेदज्ञानाय ॥

२१—(ब्रह्मज्येष्ठा) ब्रह्म परमात्मा ज्येष्ठो महाप्रधानो येषां तानि (संभृता) सम्यक् पोषितानि (वीर्याणि) वीरकर्माणि (ब्रह्म) प्रवृद्धः परमात्मा (अग्रे) सृष्टिपूर्वम् (ज्येष्ठम्) सर्वप्रधानम् (दिवम) दिवु गतौ-क । ज्ञानम् (आ)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान को (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है। (उत) और (ब्रह्मा) वह ब्रह्मा [सब से बड़ा, सर्वजनक परमात्मा] (भूतानाम्) प्राणियों में (प्रथमः) पहिला (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तेन) इस लिये (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [महान् परमात्मा] के साथ (कः) कौन (स्पर्धितुम्) झगड़ने को (अर्हति) समर्थ है ? ॥ २१ ॥

भावार्थ—संसार में सब प्रकार के पराक्रम और बल सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के सामर्थ्य से हैं, उस महावृद्ध, सर्वजनक से तुल्य वा अधिक कोई भी नहीं है। सब मनुष्य उसकी उपासना कर के सुख प्राप्त करें ॥ २१ ॥

मन्त्र २०,२१ आगे हैं-अथर्व० १६। २३। २६, ३०॥

सूक्तम् २३ ॥

१-३० ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ आसुरी बृहती; २-७, २०, २३, २७ दैवी त्रिष्टुप्; ८, १०-१२, १४, १६ प्राजापत्या गायत्री; ६,१३,१८, २२, २६,२८ दैवी जगती; १७, १६, २१, २४, २५, २६ दैवी पङ्क्तिः; ३० निचृत् त्रिष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥

आथर्वणानाम् । चतुःऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थ—(आथर्वणानाम्) अथर्वा [निश्चल ब्रह्म] के बताये ज्ञानों के (चतुर्ऋचेभ्यः) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] की स्तुति योग्य विद्या वाले

समन्तात् (ततान) विस्तारितवान् (भूतानाम्) प्राणिनां मध्ये (ब्रह्मा) सर्वेभ्यः प्रवृद्धः परमात्मा (प्रथमः) आद्यः (उत) अपि (प्रथमोत) रोर्यत्वे तस्य लोपे पुनः सन्धिश्छान्दसः संहितायाम् (जज्ञे) प्रादुर्बभूव (तेन) कारणेन (अर्हति) समर्थो भवति (ब्रह्मणा) परमात्मना सह (स्पर्धितुम्) स्पर्धामभिभवेच्छां कर्तुम् (कः) कः पुरुषः। न कोऽपीत्यर्थः ॥

१—(आथर्वणानाम्) अथर्वन्-अण्। अथर्वणा निश्चलब्रह्मणा प्रोक्तानां ज्ञानानाम् (चतुर्ऋचेभ्यः) ऋक्पूरब्धूपथामानक्षे। पा०५। ४। ७४। इति चतुर+ऋच्—अप्रत्ययः समासान्तः। ऋच स्तुतौ-क्विप्। ऋग्वाङ्नाम—निघ० १।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वरोक्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद द्वारा श्रेष्ठ विद्यायें प्राप्त करके इस जन्म और पर जन्म का सुख भोगना चाहिये ॥ १ ॥

यही भावार्थ आगे मन्त्र २९ तक समझें और "निश्चल ब्रह्म के बताये ज्ञानों के "—इन पदों की अनुवृत्ति जानें ॥

पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २ ॥ पञ्च-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थ—(पञ्चर्चेभ्यः) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २ ॥

षड्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ षट्-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(षड्ऋचेभ्यः) छह [वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् हेमन्त, शिशिर, छह ऋतुओं] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ३ ॥

सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ सप्त-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सप्तर्चेभ्यः) सात [दो कान दो, नथने, दो आंख और एक-मुख-अथर्व० १०।२।६ इन की] स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ४ ॥

---

११ । चतुर्णां धर्मार्थकाममाक्षाणाम् ऋक् स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः (स्वाहा) अ० १९ । १७ । १ । सुवाणी ॥

२-(पञ्चर्चेभ्यः) म० १ । पञ्चानां पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

३—(षड्ऋचेभ्यः) म० १० । षण्णां वसन्तादिषड् ऋतूनां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः । वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः । वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः । साम० पू०६ । १३ । २ । इति षड् ऋतवः ॥

४—(सप्तर्चेभ्यः) म० १ । कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्—अथर्व० १० । २ । ६ । इत्येतेषां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ अष्ट-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(अष्टर्चेभ्यः) आठ [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि, आठ योग के अङ्गों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ५ ॥

नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥ नव-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(नवर्चेभ्यः) नव [दो कान, दो आंख, दो नथने, एक मुख, एक पायु, एक उपस्थ, नवद्वारपुर शरीर] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ६ ॥

दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ दश-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(दशर्चेभ्यः) दस [दान, शील, क्षमा, वीरता, ध्यान, बुद्धि, सेना, उपाय, दूत और ज्ञान इन दस बलों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ७ ॥

एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८॥ एकादश-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥८॥

भाषार्थ—(एकादशर्चेभ्यः) ग्यारह [प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय दस प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा]

५—(अष्टर्चेभ्यः) म० १ । अष्टानां यमनियमादीनां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः । यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि । पातञ्जलयोगदर्शने, २ । २९ ॥

६—(नवर्चेभ्यः) म० १ । नवद्वारपुरस्य शरीरस्य स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः । द्वे श्रोत्रे चतस्रो नासिके च मुखमेकं द्वे पायूपस्थे—इति शरीरस्य नवछिद्ररूपाणि द्वाराणि ॥

७—(दशर्चेभ्यः) म० १ । दशानां दशबलानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः । दानशीलक्षमावीर्यध्यानप्रज्ञाबलानि च । उपायः प्रणिधिर्ज्ञानं दश बुद्ध बलानि वै—इति शब्दस्तोममहानिधौ ॥

८—(एकादशर्चेभ्यः) म० १ ॥ प्राणापानोदानव्यानसमाननागकूर्म-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ८ ॥

द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८॥ द्वादश-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥८॥

भाषार्थ—(द्वादशर्चेभ्यः) बारह [चैत्र आदि बारह महीनों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ९ ॥

त्रयोदशर्चेभ्यःस्वाहा॥१०॥ त्रयोदश-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थ—(त्रयोदशर्चेभ्यः) तेरह [उछालना, गिराना, सकोड़ना, फैलाना और चलना पांच कर्म तथा छोटाई, हलकायी, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य संकल्प आठ ऐश्वर्य इन तेरह] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १० ॥

चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा॥११॥ चतुर्दश-ऋचेभ्यः । स्वाहा ॥११॥

भाषार्थ—(चतुर्दशर्चेभ्यः) चौदह [कान, आंख, नासिका, जिह्वा, त्वचा-पांच ज्ञानेन्द्रिय, और वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ पांच कर्मेन्द्रिय, तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ११ ॥

ककलदेवदत्तधनञ्जया इति दश प्राणा एकादशो जीवात्मा, एतेषां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

९—(द्वादशर्चेभ्यः) म ०१ । चैत्रादिद्वादशमासानां स्तुत्या विद्या येषु तेभ्यो वेदेभ्यः ॥

१०—(त्रयोदशर्चेभ्यः) म० १ उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि-वैशेषिके १ । १ । ७ । अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥ १ " इत्यष्टैश्वर्याणि । इत्येतेषां त्रयोदशानां स्तुत्या विद्या येषु तेभ्यो वेदेभ्यः ॥

११—(चतुर्दशर्चेभ्यः) म० १ । मनोबुद्धि चित्ताहङ्कारसहितानां दशेन्द्रियाणां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चदशर्चेभ्यःस्वाहा॥१२॥ पञ्चदश-ऋचेभ्यः। स्वाहा॥१२॥

भाषार्थ—(पञ्चदशर्चेभ्यः) पन्द्रह [शुक्ल नील, पीत रक्त, हरित, कपिश, चित्र ये सात रूप, तथा मधुर आम्ल, लवण, कटु कषाय, तिक्त ये छह रस और सुरभि, असुरभि दो प्रकार का गन्ध, इन पन्द्रह] की स्तुति योग्य विद्या-वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १२ ॥

षोडशर्चेभ्यः स्वाहा॥१३॥ षोडश-ऋचेभ्यः। स्वाहा॥१३॥

भाषार्थ—(षोडशर्चेभ्यः) सोलह [प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, प्रकाश, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम-इन सोलह कलाओं] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १३ ॥

टिप्पणी—प्रश्नोपनिषद् में सोलह कलायें इस प्रकार हैं [स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद् वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च ॥ प्रश्न ६ श्लोक ४] उस [पुरुष] ने प्राण, प्राण से श्रद्धा [आस्तिक बुद्धि], आकाश, वायु, प्रकाश, जल, पृथिवी, इन्द्रिय [ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय] मन और अन्न को, अन्न से वीर्य, तप, मन्त्रों [ऋग्वेदादि चार वेदों] कर्म और लोकों, और लोकों में नाम को उत्पन्न किया ॥

सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा॥१४॥ सप्तदश-ऋचेभ्यः। स्वाहा॥१४॥

भाषार्थ—(सप्तदशर्चेभ्यः) सत्तरह [चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दस दिशायें-सत्त्व, रज, और तम तीन गुण-

---

१२—(पञ्चदशर्चेभ्यः) म० १ । शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशचित्र-सप्तरूपाणि, मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तषड्रसाः, सुरभिश्चासुरभिश्चेति गन्धौ । इत्येतेषां पञ्चदशानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

१३—(षोडशर्चेभ्यः) म ०१ । प्रश्नोपनिषदि प्रश्ने ६ श्लोके ४ प्रतिपादितानां प्राणश्रद्धादिषोडशकलानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

१४—(सप्तदशर्चेभ्यः) म ०१ । चतस्रो दिशाश्चतस्रो मध्यदिशा एकोपरिष्टा, एकावोसवेति दश दिशः, सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाः, ईश्वरो जीवः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर, जीव, प्रकृति और संसार] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १४ ॥

अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ।१५। अष्टादश-ऋ-चेभ्यः । स्वाहा॥१५॥

भाषार्थ—(अष्टादशर्चेभ्यः) अठारह [धैर्य, सहन, मन का रोकना, चोरी न करना, शुद्धता, जितेन्द्रियता बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध न करना, ये दस धर्म—मनु० ६ । ९२, तथा ब्राह्मण, गौ, अग्नि, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल, राजा ये आठ मङ्गल-शब्दकल्पद्रुमकोश, इन अठारह] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १५ ॥

एकोनविंशतिः स्वाहा । १६ । एकोन-विंशतिः । स्वाहा ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(एकोनविंशतिः) उन्नीस [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्ण-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, चार आश्रम-सत्संग, सुनना, विचारना, ध्यान करना, चार कर्म-अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त की रक्षा, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुये का सन्मार्ग में व्यय करना चार पुरुषार्थ-मन, बुद्धि और अहङ्कार इन उन्नीस स्तुति योग्य विद्याओं के लिये] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १६ ॥

प्रकृतिः संसारश्चेति सप्तदशानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

१५—(अष्टादशर्चेभ्यः) म० १ । धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय-निग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्—मनु० ६ । ९२। लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः । हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥ १ ॥ इति शब्दकल्पद्रुमकोशः । एतेषामष्टादशानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

१६—(एकोनविंशतिः) सुपां सुलुक्० । पा० ७ । १ ।३९ । चतुर्थीस्थाने प्रथमा विशेषणपदलोपश्च । एकोनविंशतये ऋग्भ्यः । चत्वारो वर्णाश्चत्वार आश्रमाः सत्संगश्रवणमननिदिध्यासनानि चत्वारि कर्माणि, अलब्धस्य लिप्सा लब्धस्य रक्षणं रक्षितस्य वृद्धिर्वृद्धस्य सन्मार्गे व्ययकरणम्, मनो-बुद्ध्यहंकाराश्चेत्येकोनविंशतिर्विद्यास्ताभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विंशतिः स्वाहा ॥ १७ ॥ विंशतिः । स्वाहा ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(विंशतिः) बीस [पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, और पांच कर्मेन्द्रिय-इन बीस स्तुति योग्य विद्याओं के लिये] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १७ ॥

महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८॥ महत्-काण्डाय । स्वाहा ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(महत्काण्डाय) बड़े [धर्मात्माओं] के संरक्षक [वेद] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १८ ॥

तृचेभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥ तृचेभ्यः । स्वाहा ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(तृचेभ्यः) तीन [भूत, भविष्यत्, वर्तमान] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१९॥

एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २० ॥ एक-ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ २० ॥

भाषार्थ—(एकर्चेभ्यः) एक [परमात्मा] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २० ॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ २१ ॥ क्षुद्रेभ्यः । स्वाहा ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(क्षुद्रेभ्यः) सूक्ष्मज्ञान वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २१ ॥

१७—(विंशतिः) यथा म० १६, चतुर्थीस्थाने प्रथमा, विशेषणपदलोपश्च । पञ्च सूक्ष्मभूतानि, पञ्च स्थूलभूतानि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि चेति विंशतिर्विद्यास्ताभ्यः ॥

१८—(महत्काण्डाय) कादिभ्यः कित् । उ० १ । ११५ । कमु कन वा कान्तौ—डप्रत्ययो दीर्घश्च, यद्वा कडि भेदने संरक्षणे च—घञ् । महतां विदुषां संरक्षकाय वेदाय ॥

१९—(तृचेभ्यः) म० १ । त्रयाणां भूतभविष्यद्वर्तमानानां स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

२०—(एकर्चेभ्यः) म० १ । एकस्य परमात्मनः स्तुत्या विद्या येषु वेदेषु तेभ्यः ॥

२१—(क्षुद्रेभ्यः) अ० १९ । २२ । ६ । सूक्ष्मज्ञानयुक्तेभ्यो वेदेभ्यः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १९ । २२ । ६ ॥

एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२॥ एकृ-अनृचेभ्यः । स्वाहा ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(एकानृचेभ्यः) एक [परमात्मा] की अत्यन्त ही स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२२॥

रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३॥ रोहितेभ्यः । स्वाहा ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(रोहितेभ्यः) प्रकट होते हुये धार्मिक गुण युक्त [वेदों] के लिये (स्वाहा) (सुन्दर वाणी] हो ॥ २३ ॥

सूर्याभ्यां स्वाहा ॥ २४ ॥ सूर्याभ्याम् स्वाहा ॥ २४ ॥

भाषार्थ—(सूर्याभ्याम्) दो प्रेरकों [परमात्मा और जीवात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २४ ॥

व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥ २५ ॥ व्रात्याभ्याम् । स्वाहा ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(व्रात्याभ्याम्) मनुष्यों के हितकारी दोनों [बल और पराक्रम] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २५ ॥

प्राजापत्याभ्यां स्वाहा॥२६। प्राजा-पत्याभ्याम् । स्वाहा ॥२६॥

भाषार्थ—(प्राजापत्याभ्याम्) प्रजापति [परमात्मा] को पूजनीय मानने वाले दोनों [कार्य और कारण] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २६ ॥

२२—(एकानृचेभ्यः) म० १ । नास्ति ऋक् स्तुत्या विद्या यस्याः सकाशादिति अनृचः । एकस्य परमेश्वरस्य अतिशयेन स्तुत्यविद्यायुक्तेभ्यो वेदेभ्यः ॥

२३—(रोहितेभ्यः) रुहेरश्च लो वा । उ० ३ । ६४ । रुह प्रादुर्भावे—इतन् । प्रादुर्भावशीलेभ्यो धार्मिकगुणयुक्तेभ्यो वेदेभ्यः ॥

२४—(सूर्याभ्याम्) प्रेरकाभ्यां परमात्मजीवात्मभ्याम् ॥

२५—(व्रात्याभ्याम्) अ० १५ । १ । १ । व्रात—यत् । व्राताः, मनुष्यनाम—निघ० २ । ३ । मनुष्येभ्यो हिताभ्यां बलपराक्रमाभ्याम् ॥

२६—(प्राजापत्याभ्याम्) प्रजापतिः परमात्मा देवता पूजनीयो ययोस्ताभ्यां कार्यकारणाभ्याम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषासह्यै स्वाहा ॥ २७ ॥ वि-सासह्यै । स्वाहा ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(विषासह्यै) सदा विजयिनी [वेदविद्या] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २७ ॥

मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८॥ मङ्गलिकेभ्यः । स्वाहा ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(मङ्गलिकेभ्यः) मङ्गल वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २८ ॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २९ ॥ ब्रह्मणे । स्वाहा ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मणे) वेदज्ञान के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ २९ ॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ३०

ब्रह्म-ज्येष्ठा । सम्-भृता । वीर्याणि । ब्रह्म । अग्रे । ज्येष्ठम् । दिवम् । आ । ततान ॥ भूतानाम् । ब्रह्मा । प्रथमः । उत । जज्ञे । तेन । अर्हति । ब्रह्मणा । स्पर्धितुम् । कः ॥ ३० ॥

भाषार्थ—(संभृता) यथावत् भरे हुये (वीर्याणि) वीर कर्म (ब्रह्म—ज्येष्ठा) ब्रह्म [परमात्मा] को ज्येष्ठ [महाप्रधान रखने वाले] हैं, (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [महाप्रधान] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले (दिवम्) ज्ञान को (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है। (उत) और (ब्रह्मा) वह ब्रह्मा [सब से बड़ा सर्वजनक परमात्मा] (भूतानाम्) प्राणियों में (प्रथमः)

२७—(विषासह्यै) सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ । वा० पा० ३ । २ । १७१ । षह अभिभवे—कि । अलोपयलोपौ । विविधं पुनः पुनः सोढ्री तस्यै सदाविजयिन्यै वेदविद्यायै ॥

२८—(मङ्गलिकेभ्यः) अत इनिठनौ । पा० ५ । २ । ११५ । मङ्गल—ठन् । मङ्गलयुक्तेभ्यो वेदेभ्यः ॥

२९—(ब्रह्मणे) वेदज्ञानाय ॥

३०—अयं मन्त्रो व्याख्यातः । अ० १९ । २२ । २१ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिला (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तेन) इस लिये (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [महान् परमात्मा] के साथ (कः) कौन (स्पर्धितुम्) झगड़ने को (अर्हति) समर्थ है ? ॥ ३० ॥

भावार्थ—संसार में सब प्रकार के पराक्रम वा बल सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के सामर्थ्य से हैं, उस महावृद्ध सर्वजनक से तुल्य वा अधिक कोई भी नहीं है। सब मनुष्य उसकी उपासना करके सुख प्राप्त करें ॥ ३० ॥

मन्त्र २९, ३० आ चुके हैं-अ० १९ । २२ । २०, २१ ॥

सूक्तम् २४ ॥

१-८ ॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता ॥ १-३ अनुष्टुप्; ४—६ त्रिष्टुप्; ७ गायत्री; ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

येनं देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥

येनं । देवम् । सवितारम् । परि । देवाः । अधारयन् ॥
तेनं । इमम् । ब्रह्मणः । पते । परि । राष्ट्राय । धत्तन ॥ १ ॥

भाषार्थ—(येन) जिस [नियम] से (देवम्) विजय चाहने वाले (सवितारम्) प्रेरक [पुरुष] को (देवाः) विद्वानों ने (परि) सब ओर से (अधारयन्) धारण किया है [स्वीकार किया है]। (तेन) उस [नियम] से (इमम्) इस [पराक्रमी] को (राष्ट्राय) राज्य के लिये, (ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक ! [और तुम सब] (परि) सब ओर से (धत्तन) धारण करो ॥ १ ॥

१—(येन) नियमेन (देवम्) विजिगीषुम् (सवितारम्) प्रेरकम् (परि) सर्वतः (देवाः) विद्वांसः (अधारयन्) धारितवन्तः । स्वीकृतवन्तः (तेन) नियमेन (इमम्) पराक्रमिणम् (ब्रह्मणस्पते) हे वेदस्य रक्षक यूयं च सर्वे (परि) (राष्ट्राय) राज्याय (धत्तन) तस्य तनपू । धारयत । स्वीकुरुत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जैसे प्रजागण सदा से सदाचारी पराक्रमी पुरुष को राजा बनाते आये हैं, वैसे ही विद्वान् प्रजा के प्रतिनिधि पुरुष प्रजा की सम्मति से राजा बनावें ॥ १ ॥

परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत् ॥ २ ॥

परि । इमम् । इन्द्रम् । आयुषे । महे । क्षत्राय । धत्तन ॥
यथा । एनम् । जरसे । नयाम् । ज्योक् । क्षत्रे । अधि ।
जागरत् ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] को (महे) बड़े (आयुषे) जीवन के लिये और (क्षत्राय) राज्य के लिये (परि) सब प्रकार (धत्तन) धारण करो । (यथा) जिससे (एनम्) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये (नयाम्) मैं ले चलूं, और वह (ज्योक्) बहुत काल तक (क्षत्रे) राज्य के भीतर (अधि) अधिकार पूर्वक (जागरत्) जागता रहे ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस प्रजापालक, महाप्रतापी पुरुष को प्रजागण राजा स्वीकार करें, वह अपनी योग्यता से कीर्तिमान् होकर प्रजा को सावधानी से सदा पालता रहे ॥ २ ॥

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥

परि । इमम् । सोमम् । आयुषे । महे । श्रोत्राय । धत्तन ॥

२—(परि) सर्वतः (इमम्) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं पुरुषम् (आयुषे) जीवनाय (महे) महते (क्षत्राय) राज्याय (धत्तन) धारयत (यथा) येन प्रकारेण (एनम्) (जरसे) जॄ स्तुतौ—असुन् । जरतिरर्चतिकर्मा—निघ० ३ । १४ । स्तुत्यै (नयाम्) लेट् । प्रापयेयम् (ज्योक्) चिरकालम् (क्षत्रे) राज्ये (अधि) अधिकृत्य (जागरत्) लेट् । जागृयात् । सावधानो भवेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा । एनम् । जरसे । नयाम् । ज्योक् । श्रोत्रे । अधि । जागरत् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे प्रजागणो !] (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा [समान शान्तिकारक पुरुष] को (महे) बड़े (आयुषे) जीवन के लिये और (श्रोत्राय) सुनवायी के लिये (परि) सब प्रकार (धत्त) धारण करो। (यथा) जिस से (एनम्) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये (नयाम्) मैं ले चलूं, और वह (ज्योक्) बहुत काल तक (श्रोत्रे) सुनवायी में (अधि) अधिकार पूर्वक (जागरत्) जागता रहे ॥ ३ ॥

भावार्थ—प्रजागणों को उचित है कि जिस पुरुष को राजा बनावें, उस से सदा प्रीति रक्खें जिस से वह स्तुति प्राप्त करके प्रजा के दुःखों को सदा सुने और दूर करे ॥ ३ ॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ ४

परि । धत्त । धत्त । नः । वर्चसा । इमम् । जरा-मृत्युम् । कृणुत । दीर्घम् । आयुः ॥ बृहस्पतिः । प्र । अयच्छत् । वासः । एतत् । सोमाय । राज्ञे । परि-धातवै । ऊं इति ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] (नः) हमारे लिये (इमम्) इस [पराक्रमी] को (परि धत्त) [वस्त्र] पहिराओ और (वर्चसा) तेज के साथ (धत्त) पुष्ट करो और (जरामृत्युम्) बुढ़ापे [अर्थात् निर्बलता] को मृत्यु समान त्याज्य मानने वाला [अथवा स्तुति के साथ मृत्यु वाला] (दीर्घम्) बड़ी (आयुः) आयु (कृणुत) करो। (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े बड़े विद्वानों

३—(सोमम्) चन्द्रसमानशान्तिप्रदं पुरुषम् (श्रोत्राय) श्रवणकरणाय (श्रोत्रे) श्रवणकरणे। अन्यत् पूर्ववत्—म० २ ॥

४—(जरामृत्युम्) जरा निर्बलता मृत्युर्दुःखमिव त्याज्यं यस्य तम्। यद्वा जरया स्तुत्या मरणयुक्तम् (सोमाय) सोमः सूर्यः प्रसवनात्—निरु० १४।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रक्षक पुरोहित] ने (एतत्) यह (वासः) वस्त्र (सोमाय) सूर्यसमान (राज्ञे) राजा को (उ) ही (परिधातवे) धारण करने के लिये (प्र अयच्छत्) दिया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुनीतिज्ञ पुरुष को मनुष्य वस्त्र आदि पहिना कर राज-सिंहासन पर सुशोभित करें और सब विद्वान् लोग प्रतिष्ठा के साथ उसे राज्य करने के लिये उत्साह देवें ॥ ४ ॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० २ । १३ । २ ॥

जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ । शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुप संव्ययस्व ॥५॥

जराम् । सु । गच्छ । परि । धत्स्व । वासः । भव । गृष्टी-नाम् । अभिशस्ति-पाः । ऊं इति । शतम् । च । जीव । शरदः । पुरूचीः । रायः । च । पोषम् । उप-संव्ययस्व ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे राजन् !] (जराम्) स्तुति को (सु) अच्छे प्रकार (गच्छ) प्राप्त हो, (वासः) वस्त्र को (परि धत्स्व) पहिन, (उ) और (गृष्टीनाम्) ग्रहण करने योग्य गौओं की (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा करने वाला (भव) हो । (च) और (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह, (च) और

---

१२ । सूर्यवत्तेजस्विने । अन्यद् व्याख्यातम्—अ० २ । १३ । २ ॥

५—अयं मन्त्रो भेदेन गतः—अ० २ । १३ । ३ (जराम्) स्तुतिम् । जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० १० । ८ (सु) पूजायाम् (गच्छ) प्राप्नुहि (परि धत्स्व) परिधारय (वासः) वस्त्रम् (भव) (गृष्टीनाम्) ग्रह उपादाने क्विप्, पृषोदरादिरूपम् । ग्राह्याणां गवाम् (अभिशस्तिपाः) हिंसाभयाद् रक्षकः (उ) च (शतम्) बहोः (जीव) प्राणान् धारय (शरदः) ऋतुविशेषान् । संवत्स-रान् (पुरूचीः) पुरु+अञ्च गतिपूजनयोः—क्विन् । बहुविधान् पदार्थान् व्याप्नुवती

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि [वृद्धि] को (उपसंव्ययस्व) अपने सब ओर धारण कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग राजा को अलङ्कृत करते हुये आशीर्वाद दें कि वह गौ आदि उपकारी जीवों की सदा रक्षा करे और धन धान्य बढ़ाकर पूर्ण आयु भोगे ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अथर्व० २ । १३ । ३ ॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन्॥६॥

परि । इदम् । वासः । अधिथाः । स्वस्तये । अभूः । वापीनाम् । अभिशस्ति-पाः । ऊं इति ॥ शतम् । च । जीव । शरदः । पुरूचीः । वसूनि । चारुः । वि । भजासि । जीवन् ६॥

भाषार्थ—[हे राजन् !] (इदम्) इस (वासः) वस्त्र को (स्वस्तये) आनन्द बढ़ाने के लिये (परि अधिथाः) तू ने धारण किया है, (उ) और (वापीनाम्) बोने की भूमियों [खेती आदि अथवा बावड़ी, कूप आदि] का (अभिशस्तिपाः) खण्डन से बचाने वाला (अभूः) तू हुआ है । (च) और (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह और (चारुः) शोभायमान होकर (जीवन्) जीता हुआ तू (वसूनि) धनों को (वि भजासि) बांटता रह ॥ ६॥

(रायः) धनस्य (पोषम्) पुष्टिम् । वृद्धिम् (उपसंव्ययस्व) व्येञ् आच्छादने । परिधत्स्व ॥

६—(इदम्) उपस्थितम् (वासः) वस्त्रम् (परि अधिथाः) आच्छादितवानसि (स्वस्तये) आनन्दवर्धनाय (अभूः) । वापीनाम्) वसिवपियजि० । उ० ४ । १२५ । डुवप बीजतन्तुसन्ताने—इञ् प्रत्ययः । वपन्ति बीजं विस्तारयन्ति यत्र तासां भूमीनाम् । कूपादिजलाशयभेदानाम् (अभिशास्तिपाः) खण्डनाद् रक्षकः (वसूनि) धनानि (चारुः) शोभनः (वि भजासि) भजतेर्लेटि आडागमः । विभक्तान् कुरु (जीवन्) प्राणान् धारयन् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—राजा शासनपद ग्रहण करके सब की भलाई का प्रयत्न करता हुआ प्रजा को धनी बना कर कीर्तिमान् होवे ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० २ । १३ । ३ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥७॥

योगे-योगे । तवः-तरम् । वाजे-वाजे । हवामहे ॥ सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(योगेयोगे) अवसर अवसर पर और (वाजेवाजे) सङ्ग्राम सङ्ग्राम के बीच (तवस्तरम्) अधिक बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्र [परमैश्वर्यवान् पुरुष] को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः) मित्र लोग हम (हवामहे) पुकारते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब प्रजागण विद्वान् पुरुषार्थी राजा के साथ मित्रता करके शत्रु से अपनी रक्षा का उपाय करें ॥ ७ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है-१ । ३० । ७, यजु० ११ । १४ तथा साम० पू० २ । ७ । ६ और उ० । १ । २ । ११ और आगे है-अथर्व । २० । २६ । १ ॥

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरासृत्युः प्रजया सं विशस्व । तदग्निराह तद् सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥

हिरण्य-वर्णः । अजरः । सु-वीरः । जरा-मृत्युः । प्र-जया । सम् । विशस्व ॥ तत् । अग्निः । आह । तत् । ऊं इति । सोमः । आह । बृहस्पतिः । सविता । तत् । इन्द्रः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—[हे पुरुषार्थी !] (हिरण्यवर्णः) कमनीय वा तेजस्वी रूप वाला, (अजरः) फुरतीला [वा अनिर्बल] (सुवीरः) बड़े वीरों

७—(योगेयोगे) प्रत्यवसरम् (तवस्तरम्) तव इति बलनाम-निघ० २ । ६ । अस्मायामेधास्रजो विनिः । पा० ५ । २ । १२१ । तवस्-विनि, तवस्तरप्, विनेश्छान्दसो लोपः । तवस्वितरम् । बलवत्तरम् (वाजेवाजे) प्रतिसंग्रामम् (हवामहे) आह्वयामः (सखायः) वयं सुहृदः सन्तः (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं पुरुषम् (ऊतये) अवनाय । रक्षणाय ॥

८—(हिरण्यवर्णः) हिरण्यः कमनीयस्तेजोमयो वा वर्णो रूपं यस्य सः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला, (जरामृत्युः) बुढ़ापे [निर्बलता] को मृत्यु समान त्याज्य मानने वाला [महाबलवान्] तू (प्रजया) प्रजा के साथ (सम्) मिलकर (विशस्व) प्रवेश कर। (तत्) इस बात को (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (आह) कहता है, (तत् उ) उस को ही (सोमः) सोम [चन्द्रमा समान पोषक], (तत्) उसी को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का स्वामी], (सविता) सब का प्रेरक, (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] (आह) कहता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब प्रतापी विद्वानों को यह सिद्धान्त मानना चाहिये कि पुरुषार्थी शूर पुरुष से मिलकर प्रजा की उन्नति करें ॥ ८ ॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा आचुका है-अ० । ८ । ५ । ५ और तीसरा पाद आया है-अ० १६ । ६ । २ ॥

सूक्तम् २५ ॥

मन्त्रः १ ॥ शूरो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शूरलक्षणोपदेशः-शूरों के लक्षण का उपदेश ॥

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च । उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

अश्रान्तस्य । त्वा । मनसा । युनज्मि । प्रथमस्य । च ॥ उत्-कूलम् । उत्-वहः । भव । उत्-उह्य । प्रति । धावतात् ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे शूर !] (अश्रान्तस्य) अनथके (च) और (प्रथमस्य) पहिले पद वाले पुरुष के (मनसा) मन से (त्वा) तुझ को (युनज्मि) मैं संयुक्त

(अजरः) ऋच्छेरः । उ० ३ । १३१ । अज गतिक्षेपणयोः-अरप्रत्ययः । गतिशीलः । जरारहितः (सुवीरः) प्रशस्तवीरोपेतः (जरामृत्युः) जरा निर्बलता मृत्युरिवदुःखप्रदा यस्य सः । महाबलवान् (प्रजया) (सम्) सम्भूय (विशस्व) प्रविश (तत्) वचनम् (अग्निः) अग्निवत्तेजस्वी पुरुषः (आह) ब्रवीति (तदु) तदेव (सोमः) चन्द्रवत्पोषकः (बृहस्पतिः) बृहतीनां विद्यानां स्वामी (सविता) सर्वप्रेरकः (तत्) (इन्द्रः) महाप्रतापी पुरुषः ॥

१—(अश्रान्तस्य) श्रमरहितस्य (त्वा) त्वां पुरुषार्थिनम् (मनसा) अन्तःकरणेन । मननेन (युनज्मि) संयोजयामि (प्रथमस्य) प्रधानपदस्थस्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हूं। (उत्कूलम्) ऊंचे तट की ओर चलकर (उद्वहः) ऊंचा ले चलने वाला (भव) हो, और [मनुष्यों को] (उदुह्य) ऊंचे ले जाकर (प्रति) प्रतीति से (धावतात्) दौड़ ॥ १ ॥

भावार्थ—परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्य तू निरालसी नेता पुरषों के समान पुरषार्थ कर, और जैसे चतुर नाविक सावधानी से धार को काटता हुआ जल प्रवाह के ऊपर की ओर यात्रियों को ठिकाने पर उतारता है, वैसे ही पराक्रमी पुरुष सब को कठिनायी से निकाल कर सुख पहुंचावे ॥ १ ॥

सूक्तम् २६ ॥

१–४ ॥ हिरण्यं देवता ॥ १ आर्षी त्रिष्टुप्; २ निचृदार्षी त्रिष्टुप् ; ३ अनुष्टुप् ; ४ पथ्या पङ्क्तिः ॥

सुवर्णादिधनप्राप्त्युपदेशः–सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति का उपदेश ॥

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यमसृतं दुभ्रे अधि मर्त्येषु । य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥

अग्नेः । प्र-जातम् । परि । यत् । हिरण्यम् । असृतम् । दुभ्रे । अधि । मर्त्येषु ॥ यः । एनत् । वेद । सः । इत् । एनम् । अर्हति । जरा-मृत्युः । भवति । यः । बिभर्ति ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो (हिरण्यम्) कमनीय सुवर्ण (अग्नेः परि) अग्नि से [पार्थिव अग्नि वद्वा पराक्रम रूप तेज से] (प्रजातम्) उत्पन्न हुआ है, (असृतम्) [उस] मृत्यु से बचाने वाले [जीवन के साधन] को (मनुष्येषु) मनुष्यों में (अधि) अधिकार पूर्वक (दभ्रे) मैं ने धरा है। (यः) जो पुरुष (एनत्) इस [बात] को (वेद) जानता है, (सः) वह (इत्) ही (एनम्)

(च) (उत्कूलम्) यथा भवति तथा। ऊर्ध्वतटं प्रति गत्वा (उद्वहः) उद्वहति ऊर्ध्वं नयतीति, वह प्रापणे–अच्। उन्नेता। प्रधानः (भव) (उदुह्य) उन्नीय मनुष्यान् (प्रति) प्रतीत्या (धावतात्) धाव। शीघ्रं गच्छ ॥

१—(अग्नेः) पार्थिवाग्निसकाशात् पराक्रमरूपप्रकाशाद् वा (प्रजातम्) उत्पन्नं वर्तते (परि) (यत्) हिरण्यम्) हर्यतेः कन्यन् हिर् च । उ०५। ४४। हर्य गतिकान्त्योः कन्यन्, हिरादेशः। कमनीयं सुवर्णादिधनम् (असृतम्) न म्रियते यस्मात् तत्। जीवनसाधनं हिरण्यम् (दभ्रे) धृञ् धारणे–लिट्। उत्तम–

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस [पदार्थ] के (अर्हति) योग्य होता है, और वह (जरामृत्युः) बुढ़ापे [निर्बलता] को मृत्यु समान [दुखदायी] मानने वाला महाप्रबल (भवति) होता है, (यः) जो [सुवर्ण को] (बिभर्त्ति) धारण करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—पृथिवी के साथ सूर्य की किरणों का संयोग होने से सोना उत्पन्न होता है और उसको ईश्वर नियम से मनुष्यों में पराक्रमी ही पाते हैं। मनुष्य इस सिद्धान्त को निश्चय जान कर विद्या द्वारा योग्य होकर सुवर्ण आदि धन प्राप्त करें ॥ १ ॥

यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे । तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥

यत् । हिरण्यम् । सूर्येण । सु-वर्णम् । प्रजा-वन्तः । मनवः । पूर्वे । ईषिरे ॥ तत् । त्वा । चन्द्रम् । वर्चसा । सम् । सृजति । आयुष्मान् । भवति । यः । बिभर्ति ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सूर्येण) सूर्य द्वारा (सुवर्णम्) सुन्दर रूप वाले (यत्) जिस (हिरण्यम्) कामना योग्य सोने को (प्रजावन्तः) श्रेष्ठ प्रजाओं वाले (पूर्वे) पहिले (मनवः) विचारशील मनुष्यों ने (ईषिरे) पाया था। (तत्) वह (चन्द्रम्) आनन्द दायक सोना (वर्चसा) तेज के साथ (त्वा) तुझ से (संसृजति) संयोग करता है, वह (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला (भवति) होता है, (यः) जो पुरुष [सोना] (बिभर्ति) रखता है ॥ २ ॥

पुरुषः। अहं धारितवानस्मि (मर्त्येषु) मनुष्येषु (यः) (एनत्) इदं वचनम् (वेद) जानाति (सः) (इति) एव (एनम्) इमं पदार्थम् (अर्हति) धारयितुं योग्यो भवति (जरामृत्युः) जरा निर्बलता मृत्युरिव दुःखप्रदा यस्य सः। महाप्रबलः (भवति) (यः) (बिभर्ति) दधाति हिरण्यम् ॥

२—(यत्) (हिरण्यम्) म० १। कमनीयं सुवर्णम् (सूर्येण) सूर्यकिरणद्वारा (सुवर्णम्) शोभनरूपम् (प्रजावन्तः) श्रेष्ठपुत्रादिप्रजायुक्ताः (मनवः) मननशीला मनुष्याः (पूर्वे) पूर्वजाः (ईषिरे) ईष गतौ—लिट्। प्राप्तवन्तः। (तत्) (त्वा) त्वाम् (चन्द्रम्) आह्लादकं सुवर्णम् (वर्चसा) तेजसा (सं सृजति) संयोजयति (आयुष्मान्) प्रशस्तजीवनयुक्तः (भवति) (यः) पुरुषः (बिभर्ति) धारयति हिरण्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—यह जो सोना सूर्य की किरणों द्वारा पृथिवी में उत्पन्न होता है, उसको विद्वानों ने अपने श्रेष्ठ पुत्रादि प्रजाओं के साथ प्रयत्न करके पाया है, वैसे ही सब मनुष्य पुरुषार्थ करके सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति से सुखी होवें ॥ २ ॥

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे चु बलाय च । यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनां अनु ॥ ३ ॥

आयुषे । त्वा । वर्चसे । त्वा । ओजसे । चु । बलाय । चु ॥ यथा । हिरण्य-तेजसा । वि-भासासि । जनान् । अनु ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ से (आयुषे) जीवन के लिये और (वर्चसे) प्रताप के लिये (च) और (त्वा) तुझ से (बलाय) बल के लिये (च) और (ओजसे) पराक्रम के लिये [वह सोना संयोग करता है—म० २] । (यथा) जिस से कि (हिरण्यतेजसा) सुवर्ण के तेज से (जनान् अनु) मनुष्यों में (विभासासि) तू चमकता रहे ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके मनुष्यों में प्रतापी और यशस्वी होवें ॥ ३ ॥

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः । इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् ते आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥

यत् । वेद । राजा । वरुणः । वेद । देवः । बृहस्पतिः ॥ इन्द्रः यत् । वृत्र-हा । वेद । तत् । ते । आयुष्यम् । भुवत् । तत् । ते । वर्चस्यम् । भुवत् ॥ ४ ॥

३—(आयुषे) जीवनाय (त्वा) त्वाम् । तच्चन्द्रं संसृजतीत्यनुवर्तते—म० २ (वर्चसे) प्रतापाय (त्वा) (ओजसे) पराक्रमाय (बलाय) (यथा) येन प्रकारेण (हिरण्यतेजसा) सुवर्णस्य प्रतापेन (विभासासि) भास दीप्तौ—लेट् आडागमः । विशेषेण भासेथाः । दीप्यस्व (जनान्) मनुष्यान् (अनु) प्रति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यत्) जिस [सुवर्ण] को (राजा) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (वेद) जानता है, और [जिसको] (देवः) विद्वान् (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ज्ञानों का रक्षक पुरुष] (वेद) जानता है। (यत्) जिस को (वृत्रहा) शत्रुनाशक (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] (वेद) जानता है, (तत्) वह (ते) तेरे लिये (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (भुवत्) होवे, (तत्) वह (ते) तेरे लिये (वर्चस्यम्) तेज बढ़ाने वाला (भुवत्) होवे ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् पराक्रमियों के समान सुवर्ण के प्रभाव को जानकर उसे यथावत् प्राप्त करे और धर्म के साथ उसका प्रयोग करके यशस्वी और तेजस्वी होवे ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २७ ॥

१—१५ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २, ५–८ अनुष्टुप्; ३, १० आर्ची त्रिष्टुप्; ४ आर्ची पङ्क्तिः; ९ त्रिष्टुप्; ११ निचृत् साम्नी त्रिष्टुप्; १२ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; १३ साम्नी त्रिष्टुप्; १४ निचृदनुष्टुप्; १५ अतिशक्करी ॥

आशीर्वचनोपदेशः—आशीर्वाद देने का उपदेश ॥

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः। वायुष्ट्वा ब्रह्मणा ॥ पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥

गोभिः। त्वा। पातु। ऋषभः। वृषा। त्वा। पातु। वाजिभिः ॥ वायुः। त्वा। ब्रह्मणा। पातु। इन्द्रः। त्वा। पातु। इन्द्रियैः ॥ १ ॥

४—(यत्) हिरण्यम् (वेद) जानाति (राजा) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठपुरुषः (वेद) (देवः) विद्वान् (बृहस्पतिः) बृहतां ज्ञानानां रक्षकः (इन्द्रः) महाप्रतापी पुरुषः (यत्) (वृत्रहा) शत्रुनाशकः (वेद) (तत्) हिरण्यम् (ते) तुभ्यम् (आयुष्यम्) आयुषे चिरकालजीवनाय हितम्। आयुष्कारि (भुवत्) लेटि रूपम्। भवेत् (तत्) (ते) (वर्चस्यम्) वर्चसे हितम्। तेजस्कारि (भुवत्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ऋषभः) सर्वदर्शक परमेश्वर (गोभिः) गौओं के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (वृषा) वीर्यवान् [परमेश्वर] (वाजिभिः) फुरतीले घोड़ों के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे। (वायुः) सर्वत्रगामी [परमेश्वर] (ब्रह्मणा) बढ़ते हुये अन्न के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् [जगदीश्वर] (इन्द्रियैः) परम ऐश्वर्य के व्यवहारों के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा के श्रेष्ठ गुणों का चिन्तन करके अनेक पुरुषार्थों के साथ रक्षा करे ॥ १ ॥

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः। मद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥

सोमः। त्वा। पातु। ओषधीभिः। नक्षत्रैः। पातु। सूर्यः। मात्-भ्यः। त्वा। चन्द्रः। वृत्र-हा। वातः। प्राणेन। रक्षतु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सोमः) सोम रस (ओषधीभिः) ओषधियों के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (सूर्यः) सब का चलाने वाला सूर्य (नक्षत्रैः) नक्षत्रों के साथ (पातु) बचावे। (वृत्रहा) अन्धकार नाशक (चन्द्रः) आनन्द प्रद चन्द्रमा (मद्भ्यः) मद्दीनों के लिये और (वातः) पवन (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे ॥ २ ॥

१—(गोभिः) धेनुभिः (त्वा) (पातु) (ऋषभः) ऋषिवृषिभ्यां कित्। उ० ३। १२३। ऋष गतौ दर्शने च—अभच्, कित्। ऋषिर्दर्शनात्—निरु० २। ११। सर्वदर्शकः परमेश्वरः (वृषा) वीर्यवान् (त्वा) (पातु) (वाजिभिः) वेगवद्भिरश्वैः (वायुः) सर्वत्रगामी परमेश्वरः (त्वा) (ब्रह्मणा) प्रवृद्धेनान्नेन—निघ० २। ७ (पातु) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्। जगदीश्वरः (पातु) (इन्द्रियैः) परमैश्वर्यव्यवहारैः ॥

२—(सोमः) सोमरसः (त्वा) (पातु) (ओषधीभिः) (नक्षत्रैः) (पातु) (सूर्यः) लोकानां प्रेरक आदित्यः (मद्भ्यः) मासानां हिताय (त्वा) (चन्द्रः) आह्लादकश्चन्द्रमाः (वृत्रहा) शत्रुनाशकः (वातः) पवनः (प्राणेन) जीवनसामर्थ्येन (रक्षतु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य ओषधि आदि संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर सुखी होवें ॥ २ ॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् । त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आपं आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥

तिस्रः । दिवः । तिस्रः । पृथिवीः । त्रीणि । अन्तरिक्षाणि । चतुरः । समुद्रान् ॥ त्रि-वृतम् । स्तोमम् । त्रि-वृतः । आपः । आहुः । ताः । त्वा । रक्षन्तु । त्रि-वृता । त्रिवृत्-भिः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[उत्कृष्ट, निकृष्ट, मध्यम होने से] (दिवः) प्रकाशमान पदार्थों को (तिस्रः) तीन, (पृथिवीः) पृथिवी के देशों को (तिस्रः) तीन, (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष लोकों को (त्रीणि) तीन, और (समुद्रान्) आत्माओं को [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये पुरुषार्थी होने से] (चतुरः) चार, (स्तोमम्) स्तुति योग्य वेद को (त्रिवृतम्) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] में वर्तमान, (त्रिवृतः) तीन [कर्म उपासना, ज्ञान में वर्तमान रहने वाले (आपः) आप्त प्रजा लोग (आहुः) बताते हैं, (त्रिवृता) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] में वर्तमान (ताः) वे [प्रजायें] (त्वा) तुझ को (त्रिवृद्भिः) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञानरूप] वृत्तियों के साथ (रक्षन्तु) बचावें ॥ ३ ॥

३—(तिस्रः) उत्कृष्टनिकृष्टमध्यमभेदेन त्रिसंख्याकाः (दिवः) प्रकाशमान् पदार्थान् (तिस्रः) त्रिसंख्याकाः (पृथिवीः) पृथिवीदेशान् (त्रीणि) त्रिसंख्याकानि (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्षस्थलोकान् (चतुरः) धर्मार्थकाममोक्षेभ्यः पुरुषार्थकरणात् चतुःसंख्याकान् (समुद्रान्) समुद्र आत्मा—निरु० १४। १६। जीवात्मनः (त्रिवतम्) वृतु वर्तने—क्विप्। त्रिषु कर्मोपासनाज्ञानेषु वर्त्तमानम् (स्तोमम्) स्तुत्यं वेदम् (त्रिवृतः) त्रिषु कर्मोपासनाज्ञानेषु वर्तमानाः (आपः) आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ६। २७ (आहुः) कथयन्ति (ताः) प्रजाः (त्वा) (रक्षन्तु) (त्रिवृता) सुपां सुलुक्० । पा० ७। १। ३९। प्रथमाविभक्तेराकारादेशः । त्रिवृतः। त्रिषु कर्मोपासनाज्ञानेषु वर्तमानाः (त्रिवृद्भिः) तिसृभिः कर्मोपासनाज्ञानरूपाभिर्वृत्तिभिः सह ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जो मनुष्य संसार के पदार्थों के तत्त्वों को जानकर पुरुषार्थ करते हैं वे सदा सुरक्षित रहते हैं ॥ ३ ॥

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् । त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥

त्रीन् । नाकान् । त्रीन् । समुद्रान् । त्रीन् । ब्रध्नान् । त्रीन् । वैष्टपान् ॥ त्रीन् । मातरिश्वनः । त्रीन् । सूर्यान् । गोप्तॄन् । कल्पयामि । ते ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (त्रीन्) तीन [आत्मा, मन और शरीर सम्बन्धी] (नाकान्) सुखों को, (त्रीन्) तीन [ऊपर, नीचे और मध्य में वर्तमान] (समुद्रान्) अन्तरिक्षों को, (त्रीन्) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] (ब्रध्नान्) बड़े व्यवहारों को, (त्रीन्) तीन [स्थान, नाम और जन्म वा जाति वाले] (वैष्टपान्) संसार निवासियों को, (त्रीन्) तीन [ऊपर नीचे और तिरछे चलने वाले] (मातरिश्वनः) आकाशगामी पवनों को, और (त्रीन्) तीन [वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और पुष्टि करने वाले] (सूर्यान्) सूर्य [के तापों] को (ते) तेरे (गोप्तॄन्) रक्षक (कल्पयामि) मैं बनाता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थों के तत्त्वों को यथावत् समझकर उपयोग में लाते हैं, वे उन्नति करते हैं ॥ ४ ॥

मन्त्र ३, ४ का मिलान करो—अ० ५ । २८ । १४, १५ ॥

४—(त्रीन्) आत्ममनःशरीरसम्बन्धिनः (नाकान्) आनन्दान् (त्रीन्) ऊर्ध्वाधोमध्यवर्तमानान् (समुद्रान्) अन्तरिक्षदेशान् (त्रीन्) कर्मोपासनाज्ञानाख्यान् (ब्रध्नान्) बन्धेर्ब्रधिबुधी च । उ० ३ । ५ । बन्ध बन्धने—नक्, ब्रधादेशः । ब्रध्नो महन्नाम—निघ० ३ । ३ । महतो व्यवहारान् (त्रीन्) स्थाननामजन्माख्याकान् (वैष्टपान्) विटपविष्टपविशिपोलपाः । उ० ३ । १४५ । विश प्रवेशने—कपप्रत्ययः, तुडागमः । विष्टप—अण् । विष्टपेषु भुवनेषु निवासकान् (त्रीन्) ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गतीन् (मातरिश्वनः) मातरि आकाशे श्वयन्ति गच्छन्ति ये तान् पवनान् (त्रीन्) वृष्ट्यन्नोत्पत्तिपुष्टिकारकान् (सूर्यान्) सूर्यप्रदेशान् (गोप्तॄन्) रक्षकान् (कल्पयामि) रचयामि (ते) तव ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतेन त्वा सम् उक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् । अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥

घृतेन । त्वा । सम् । उक्षामि । अग्ने । आज्येन । वर्धयन् ॥ अग्नेः । चन्द्रस्य । सूर्यस्य । मा । प्राणम् । मायिनः । दभन्॥५

भाषार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी विद्वान् !] [जैसे अग्नि को] (आज्येन) घृत से (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ मैं (त्वा) तुझे (घृतेन) ज्ञान प्रकाश से (सम्) यथावत् (उक्षामि) बढ़ाता हूं । (अग्नेः) अग्नि के, (चन्द्रस्य) चन्द्रमा के और (सूर्यस्य) सूर्य के (प्राणम्) प्राण [जीवन सामर्थ्य] को (मायिनः) छली लोग (मा दभन्) नहीं नाश करें ॥५॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्या से पूर्ण होकर और अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य आदि की जीवन शक्तियों से यथावत् उपकार लेकर शत्रुओं को वश में करें ॥ ५ ॥

मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् । भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥

मा । वः । प्राणम् । मा । वः । अपानम् । मा । हरः । मायिनः । दभन् ॥ भ्राजन्तः । विश्व-वेदसः । देवाः । दैव्येन । धावत ॥६॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (मा) न तो (वः) तुम्हारे (प्राणम्) श्वास को, (मा) न (वः) तुम्हारे (अपानम्) प्रश्वास को, और (मा)

५—(घृतेन) ज्ञानप्रकाशेन (त्वा) त्वाम् (सम्) सम्यक् (उक्षामि) उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मणः—निरु० १२ । ६ । वर्धयामि (अग्ने) हे अग्निवत्तेजस्विन् विद्वन् (आज्येन) सर्पिषा । होमद्रव्येण (वर्धयन्) प्रवृद्धं कुर्वन्—अग्निं यथा (अग्नेः) पावकस्य (चन्द्रस्य) चन्द्रलोकस्य (सूर्यस्य) भास्करस्य । (प्राणम्) जीवनसामर्थ्यम् (मायिनः) छलिनः (मा दभन्) दम्भु दम्भे—लुङ् । मा हिंसन्तु नाशयन्तु ॥

६—(मा) निषेधे (वः) युष्माकम् (प्राणम्) श्वासम् (मा) (वः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न (हरः) तेज को (मायिनः) छली लोग (दभन्) नष्ट करें। (भ्राजन्तः) चमकते हुये, (विश्ववेदसः) सब प्रकार धन वाले, (देवाः) विद्वानों तुम (दैव्येन) विद्वानों के योग्य कर्म के साथ (धावत) धावा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों के समान दूरदर्शी होकर शत्रु लोग रोकने चाहियें कि जिससे वे किसी प्रकार हानि न पहुंचावें ॥ ६ ॥

प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥

प्राणेन । अग्निम् । सम् । सृजति । वातः । प्राणेन । सम्-हितः॥
प्राणेन । विश्वतः-मुखम् । सूर्यम् । देवाः । अजनयन् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—वह [परमात्मा] (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (अग्निम्) अग्नि को (सं सृजति) संयुक्त करता है, (वातः) वायु (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (संहितः) मिला हुआ है। (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (विश्वतोमुखम्) सब ओर मुख वाले (सूर्यम्) सूर्य को (देवाः) दिव्य नियमों ने (अजनयन्) उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा ने अग्नि आदि में प्राण वा जीवन सामर्थ्य देकर उपयोगी बनाया है, वैसे ही मनुष्य अपनी आत्मिक और शारीरिक शक्तियों द्वारा जीवन को उपयोगी बनावें ॥ ७ ॥

(अपानम्) प्रश्वासम् (हरः) तेजः (मायिनः) छलिनः (मा दभन्) मा नाशयन्तु (भ्राजन्तः) दीप्यमानाः (विश्ववेदसः) सर्वधनाः (देवाः) विद्वांसः (दैव्येन) देव—यञ् । विद्वद्योग्यकर्मणा (धावत) शीघ्रं गच्छत ॥

७—(प्राणेन) जीवनसामर्थ्येन (अग्निम्) पावकम् (सं सृजति) संयोजयति स परमेश्वरः (वातः) वायुः (प्राणेन) जीवनसामर्थ्येन (संहितः) संधीकृतः (प्राणेन) (विश्वतोमुखम्) सर्वतो मुखमिवद्रष्टारम् (सूर्यम्) (देवाः) दिव्यनियमाः (अजनयन्) उदपादयन् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः । प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

आयुषा । आयुः-कृताम् । जीव । आयुष्मान् । जीव । मा । मृथाः ॥ प्राणेन । आत्मन्-वताम् । जीव । मा । मृत्योः । उत् । अगाः । वशम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(आयुःकृताम्) जीवन बनाने वाले [विद्वानों] के (आयुषा) जीवन के साथ (जीव) तू जीवित रह, (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला होकर (जीव) तू जीवित रह, (मा मृथाः) तू मत मरे। (आत्मन्वताम्) आत्मा वालों के (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] से (जीव) तू जीवित रह (मृत्योः) मृत्यु के (वशम्) वश में (मा उत् अगाः) मत जा ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि बड़े जितेन्द्रिय पुरुषार्थी महात्माओं के समान अपने जीवन को पुरुषार्थी बनाकर यशस्वी होवें ॥ ८ ॥

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः । आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्धि स्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ९ ॥

देवानाम् । नि-हितम् । नि-धिम् । यम् । इन्द्रः । अनु-अविन्दत् । पथि-भिः । देव-यानैः ॥ आपः । हिरण्यम् । जुगुपुः । त्रिवृत्-भिः । ताः । त्वा । रक्षन्तु । त्रि-वृता । त्रिवृत्-भिः ॥ ९ ॥

८—(आयुषा) जीवनेन (आयुःकृताम्) ब्रह्मचर्यादितपसा आयुषोऽलङ्कुर्वताम् (जीव) प्राणान् धारय (आयुष्मान्) उत्तमजीवनयुक्तः सन् (जीव) (मा मृथाः) प्राणान् मा त्यज (प्राणेन) जीवनसामर्थ्येन (आत्मन्वताम्) अ० ४ । १० । ७ । आत्मन्—मतुप्, नुडागमः । सात्मकानां दृढजीवनवताम् (मृत्योः) मरणस्य (मा उत् अगाः) इण् गतौ—लुङ् । मा प्राप्नुहि (वशम्) अधीनत्वम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(देवानाम्) विद्वानों के (निहितम्) धरे हुये (यम्) जिस (निधिम्) निधि [रत्नों के कोश] को (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] ने (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (अन्वविन्दत) खोज कर पाया है। (आपः) आप्त प्रजाओं ने (हिरण्यम्) उस तेज [वा सुवर्ण] को (त्रिवृद्भिः) तीन [कर्म, उपासना ज्ञानरूप] वृत्तियों के साथ (जुगुपुः) रक्षित किया है, (त्रिवृता) तीन [कर्म, उपासना ज्ञान] में वर्तमान (ताः) वे [प्रजायें] (त्वा) तुझ को (त्रिवृद्भिः) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञानरूप] वृत्तियों के साथ (रन्तु) बचावें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो पुरुष शूर महात्माओं के समान वेदोक्त मार्ग पर चलकर धर्म के साथ तेज वा सुवर्ण आदि धन प्राप्त करते हैं, प्रजागण उन धीर वीरों को प्रिय जानकर सदा उन की रक्षा करते रहें ॥ ९ ॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्व-
१न्तः । अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वी-
र्याणि ॥ १० ॥

त्रयः-त्रिंशत् । देवताः । त्रीणि । च । वीर्याणि । प्रिय-यमा-
णाः । जुगुपुः । अप्-सु । अन्तः ॥ अस्मिन् । चन्द्रे । अधि ।
यत् । हिरण्यम् । तेन । अयम् । कृणवत् । वीर्याणि ॥ १० ॥

भाषार्थ—(प्रियायमाणाः) प्रिय मानते हुये (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस [८ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः वा प्रकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र—११ रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग,

९—(देवानाम्) विदुषाम् (निहितम्) स्थापितम् (निधिम्) रक्षसंग्रहम् (यम्) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (अन्वविन्दत) अन्विष्य लब्धवान् (पथिभिः) मार्गैः (देवयानैः) विद्वद्भिर्गन्तव्यैः (आपः) म० ३ । आप्ताः प्रजाः (हिरण्यम्) तत्तेजः सुवर्णं वा (जुगुपुः) रक्षितवत्यः । अन्यद् पूर्ववत् म० ३ ॥

१०—(त्रयस्त्रिंशत्) अथर्व० ६ । १३९ । १ । अष्टौ वसवो यथा, अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चेति,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय यह दस प्राण और ग्यारहवां जीवात्मा,—१२ महीने-१ इन्द्र अर्थात् बिजुली-एक प्रजापति वा यज्ञ] (देवताः) देवताओं (च) और (त्रीणि) तीन [कायिक, वाचिक और मानसिक] (वीर्याणि) वीर कर्मों ने (अप्सु अन्तः) आप्त प्रजाओं के बीच (अस्मिन्) इस (चन्द्रे) आनन्द देने वाले [जीवात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (यत्) जिस (हिरण्यम्) कमनीय तेज को (जुगुपुः) रक्षित किया है, (तेन) उसी [तेज] से (अयम्) यह [जीवात्मा] (वीर्याणि) वीर कर्मों को (कृणवत्) करे ॥ १० ॥

भावार्थ—परमात्मा ने वसु आदि तेतीस देवताओं शारीरिक आदि शक्तियों और पूर्व संस्कारों द्वारा मनुष्यों में जो तेज स्थापित किया है, मनुष्य उस तेज को विद्या आदि द्वारा प्रकाशित करके पराक्रम करता रहे ॥ १० ॥

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥

ये । देवाः । दिवि । एकादश । स्थ । ते । देवासः । हविः । इदम् । जुषध्वम् ॥ ११ ॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १२

ये । देवाः । अन्तरिक्षे । एकादश । स्थ । ते । देवासः । हविः । इदम् । जुषध्वम् ॥ १२ ॥

ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १३

एकादश रुद्रा यथा प्राणापानव्यानसमानोदाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जया इति दश प्राणा आत्मैकादशः, द्वादश मासाः, इन्द्रश्च प्रजापतिश्चेति (देवताः) देवाः (त्रीणि) कायिकवाचिकमानसानि (वीर्याणि) वीरकर्माणि । सामर्थ्यानि (प्रियायमाणाः) कर्तुः क्यङ् सलोपश्च । पा० ३ । १ । ११ । प्रिय—क्यङ् । प्रिय इवाचरतीति प्रियायते, शानच् । प्रिया इवाचरन्त्यः (जुगुपुः) ररक्षुः (अप्सु) । म० ३ । आप्तासु प्रजासु (अन्तः) मध्ये (अस्मिन्) समीपवर्तिनि (चन्द्रे) आह्लादके जीवात्मनि (अधि) अधिकारपूर्वकम् (यत्) (हिरण्यम्) कमनीयं तेजः (तेन) तेजसा (अयम्) जीवात्मा (वीर्याणि) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये । देवाः । पृथिव्याम् । एकादश । स्थ । ते । देवासः । हविः । इदम् । जुषध्वम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (दिवि) सूर्य लोक में (एकादश) ग्यारह [प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, दस प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा के समान] (स्थ) हो, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (एकादश) ग्यारह [श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग और मन-इन ग्यारह के समान] (स्थ) हो, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (एकादश) ग्यारह [पृथिवी, जल, अग्नि, पवन आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति-इन ग्यारह के समान] (स्थ) हो, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्यादि लोकों में सब पदार्थ स्थित रहकर अपना अपना कर्तव्य कर रहे हैं, वैसे ही मनुष्यों को ईश्वर और वेद में दृढ़ रहकर अपने कर्तव्य में परम निष्ठा रखनी चाहिये ॥ ११—१३ ॥

११—(ये) ये यूयम् (देवाः) हे विद्वांसः (दिवि) सूर्यलोके (एकादश) दयानन्दभाष्ये, यजु० ७।१६ । प्राणापानव्यानसमानोदाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जया इति दश प्राणा आत्मैकादश—इत्येतैः समानाः (स्थ) भवथ (ते) ते यूयम् (देवासः) हे विद्वांसः (हविः) ग्राह्यं वस्तु । वचनम् (इदम्) (जुषध्वम्) सेवध्वम् ॥

१२—(अन्तरिक्षे) मध्यलोके (एकादश) यजु० ७।१६। श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनांसि—इत्येभिः समानाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१३—(पृथिव्याम्) भूम्याम् (एकादश) यजु० ७। १६। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादित्यचन्द्रनक्षत्राहङ्कारमहत्तत्त्वप्रकृतय इत्येभिः समानाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ११—१३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१ । १३६ । ११ और यजुर्वेद ७ । १६ ॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १४ ॥

असपत्नम् । पुरस्तात् । पश्चात् । नः । अभयम् । कृतम् ॥
सविता । मा । दक्षिणतः । उत्तरात् । मा । शची-पतिः ॥१४॥

भाषार्थ—(नः) हमारे लिये (मा) मुझ को (पुरस्तात्) सामने से [वा पूर्व दिशा से], (पश्चात्) पीछे से [वा पश्चिम से], (दक्षिणतः) दाहिनी ओर [वा दक्खिन]से और (मा) मुझको (उत्तरात्) बाईं ओर से [वा उत्तर से] (सविता) सर्वप्रेरक राजा और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों का पालने वाला [मन्त्री], तुम दोनों (असपत्नम्) शत्रुरहित और (अभयम्) निर्भय (कृतम्) करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जहां पर राजा और मन्त्री, अपनी वाणी और कर्म में पक्के होते हैं, उस राज्य में प्रजागण शत्रुओं से सुरक्षित रहते हैं ॥ १४ ॥

यह मन्त्र पहिले आ चुका है अथ० १९ । १६ । १ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्ताद्दिवाभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५

दिवः । मा । आदित्याः । रक्षन्तु । भूम्याः । रक्षन्तु । अग्नयः ॥
इन्द्राग्नी इति । रक्षताम् । मा । पुरस्तात् । अश्विनौ ।
अभितः । शर्म । यच्छताम् ॥ तिरश्चीन् । अघ्न्या । रक्षतु ।
जात-वेदाः । भूत-कृतः । मे । सर्वतः । सन्तु । वर्म ॥ १५ ॥

१४—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० १९ । १६ । १ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(आदित्याः) अखण्डव्रती शूर (मा) मुझे (दिवः) आकाश से (रक्षन्तु) बचावें, (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (भूम्याः) भूमि से (रक्षन्तु) बचावें। (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि [के समान तेजस्वी और व्यापक राजा और मन्त्री दोनों] (मा) मुझे (पुरस्तात्) सामने से (रक्षताम्) बचावें, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा [के समान ठीक मार्ग चलने वाले वे दोनों] (अभितः) सब ओर से (शर्म) सुख (यच्छताम्) देवें। (जातवेदाः) बहुत धन वाली (अघ्न्या) अटूट [राजनीति] (तिरश्चीन्=तिरश्चिभ्यः) आड़े चलने वाले [बैरियों] से [मुझे] (रक्षतु) बचावे, (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले पुरुष (मे) मेरे लिये (सर्वतः) सब ओर से (वर्म) कवच (सन्तु) होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो राजा और राजपुरुष आकाश में वायुयान द्वारा चलने वाले वीरों से और पृथिवी पर अश्ववार आदि से अस्त्र शस्त्र द्वारा शत्रुओं का नाश करते हैं, वही प्रजा की रक्षा कर सकते हैं ॥ १५ ॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० १९ । १६ । २ ॥

सूक्तम् २८ ॥

१—१० ॥ दर्भो देवता ॥ १, ४—१० अनुष्टुप्; २, ३ भुरिगनुष्टुप् ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥

इमम् । बध्नामि । ते । मणिम् । दीर्घायु-त्वाय । तेजसे ॥
दर्भम् । सपत्न-दम्भनम् । द्विषतः । तपनम् । हृदः ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे प्रजागण !] (ते) तेरे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन और (तेजसे) तेज के लिये (इमम्) इस (मणिम्) मणिरूप [अति प्रशंसनीय],

---

१५—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० १९ । १६ । २ ॥

१—(इमम्) प्रसिद्धम् (बध्नामि) नियोजयामि (ते) तव (मणिम्) अ० १ । २९ । १ । मण कूजे—इन् । रत्नम् । प्रशंसनीयम् (दीर्घायुत्वाय) चिर-जीवनाय (तेजसे) प्रतापाय (दर्भम्) अ० ६ । ४३ । १ । दृदाभ्यां भः ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सपत्नदम्भनम्) शत्रुओं के दबाने वाले, (द्विषतः) विरोधी के (हृदः) हृदय के (तपनम्) तपाने वाले (दर्भम्) दर्भ [शत्रुविदारक सेनापति] को (बध्नामि) मैं नियुक्त करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—राजा प्रजा की रक्षा और उन्नति के लिये बलवान् नीतिज्ञ सेनापति को नियुक्त करे ॥ १ ॥

दर्भ एक घास औषध विशेष भी है जो वात पित्त कफ त्रिदोष आदि रोग नाश करता है ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ६ । ४३ । १२ ॥

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वाꣳस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्सन्तापयन् ॥ २ ॥

द्विषतः । तापयन् । हृदः । शत्रूणाम् । तापयन् । मनः ॥
दुः-हार्दः । सर्वान् । त्वम् । दर्भ । घर्मः-इव । अभीन् ।
सम्-तापयन् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(द्विषतः) विरोधी के (हृदः) हृदयों को (तापयन्) तपाता हुआ, और (शत्रूणाम्) शत्रुओं के (मनः) मन को (तापयन्) तपाता हुआ, (दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (अभीन्) अमङ्गलकारियों को (घर्मः इव) ग्रीष्म ऋतु के समान (सन्तापयन्) सर्वथा तपाता हुआ (त्वम्) तू [वर्तमान हो] ॥२॥

उ० ३ । १५१ । दृ विदारणे—भ । शत्रुविदारकं सेनापतिम् । कुशादितृणविशेषम् (सपत्नदम्भनम्) शत्रूणां हिंसकम् (द्विषतः) विरोधिनः पुरुषस्य (तपनम्) तापकम् (हृदः) हृदयस्य ॥

२—(द्विषतः) द्वेषं कुर्वतः शत्रोः (तापयन्) सन्तप्तं कुर्वन् (हृदः) हृदयानि (शत्रूणाम्) (तापयन्) (मनः) चित्तम् (दुर्हार्दः) अ० २ । ७ । ५ । हार्दं करोति हार्दयततीति, हार्दयतेः क्विपि णिलोपे रूपम् । दुष्टहृदयान् (सर्वान्) (त्वम्) (दर्भः) म० १ । हे शत्रुविदारक सेनापते (घर्मः) ग्रीष्मः (इव) यथा (अभीन्) वातेर्डिच्च । उ० ४ । १३४ । नञ् + भद भदी कल्याणकरणे—इण्, स च डित् । अमङ्गलकारिणः शत्रून् (सन्तापयन्) सन्तापं कुर्वन्-वर्तस्वेति शेषः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—शूर वीर सेनापति शत्रुओं को सदा कष्ट देकर नाश करे, जैसे ग्रीष्म का ताप घास आदि को सुखाकर नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

घर्म इ॑वाभि॒तप॑न् दर्भ द्वि॒षतो॒ नि॒तप॑न् मणे ।
हृ॒दः स॒पत्ना॑नां भिन्द्धीन्द्र॑ इव वि॒रुज॑ं ब॒लम् ॥ ३ ॥

घ॒र्मः-इ॑व । अ॒भि-तप॑न् । दर्भ॑ । द्वि॒ष॒तः । नि॒-तप॑न् । म॒णे॒ ॥ हृ॒दः । स॒-पत्ना॑नाम् । भि॒न्धि॒ । इन्द्रः॑-इव । वि॒-रुज॑न् । ब॒लम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(मणे) हे प्रशंसनीय (दर्भ) दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (घर्मः इव) ग्रीष्म के समान (अभितपन्) सर्वथा तपता हुआ (द्विषतः) विरोधियों को (नितपन्) सन्ताप देता हुआ तू, (बलम्) हिंसक को (विरुजन्) नाश करते हुये (इन्द्रःइव) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] के समान, (सपत्नानाम्) बैरियों के (हृदः) हृदयों को (भिन्धि) तोड़ दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—सेनापति महाप्रतापी शूरों के समान पराक्रम करके शत्रुओं को हरावे ॥ ३ ॥

भि॒न्धि॒ दर्भ॑ स॒पत्ना॑नां हृ॒द॑यं द्वि॒षतां॑ म॒णे॑ ।
उ॒द्यन् त्व॒र्च॑मिव॒ भूम्या॒ः शिर॑ एषां॒ वि पा॑तय ॥ ४ ॥

भि॒न्धि॒ । दर्भ॑ । स॒-पत्ना॑नाम् । हृ॒द॑यम् । द्वि॒षता॑म् । म॒णे॒ ॥ उ॒त्-यन् । त्व॒र्च॑म्-इव । भूम्याः॑ । शिर॑ः । एषा॑म् । वि । पा॒त॒य॒ ४

भाषार्थ—(मणे) हे प्रशंसनीय (दर्भ) दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति]

३—(घर्मः) ग्रीष्मः (इव) यथा (अभितपन्) अभितः सन्तापं कुर्वन् (दर्भ) हे शत्रुविदारक (द्विषतः) विरोधिनः पुरुषान् (नितपन्) सन्तापयन् (मणे) हे प्रशंसनीय (हृदः) हृदयानि (सपत्नानाम्) शत्रूणाम् (भिन्धि) विदारय (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (इव) यथा (विरुजन्) नाशयन् (बलम्) बल वधे—अच् । हिंसकं दैत्यम् ॥

४—(भिन्धि) विदारय (दर्भ) हे शत्रुविदारक (सपत्नानाम्) शत्रू-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सपत्नानाम्) वैरियों और (द्विषताम्) विरोधियों के (हृदयम्) हृदय को (भिन्द्धि) तोड़ दे। (उद्यन्) उठता हुआ तू, (भूम्याः) भूमि की (त्वचम् इव) त्वचा [तृण आदि] के समान (एषाम्) इन शत्रुओं का (शिरः) शिर (वि पातय) गिरा दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—पराक्रमी सेनापति शत्रुओं में फूट डालकर घास फूंस के समान नाश करे ॥ ४ ॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥

भिन्द्धि । दर्भ । स-पत्नान् । मे । भिन्द्धि । मे । पृतना-यतः ॥ भिन्द्धि । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । भिन्द्धि । मे । द्विषतः । मणे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ाने वालों को (भिन्द्धि) तोड़ दे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (भिन्द्धि) तोड़ दे ॥ ५ ॥

भावार्थ—स्पष्ट है ॥ ५ ॥

णाम् (हृदयम्) द्विषताम्) वैरिणाम् (मणे) हे प्रशस्त (उद्यन्) ऊर्ध्वं गच्छन्। उन्नतः सन् (त्वचम्) उपरिदेशं तृणादिकम् (इव) यथा (भूम्याः) पृथिव्याः (शिरः) मस्तकम् (एषाम्) शत्रूणाम् (विपातय) विविधं पातय विनाशय ॥

५—(भिन्द्धि) विदारय (दर्भ) म० १। हे शत्रुविदारक सेनापते (सपत्नान्) शत्रून् (मे) मम (भिन्द्धि) (मे) मह्यम् (पृतनायतः) अ० १। २१। २। सुप आत्मनः क्यच्। पा० ३। १। ८। पृतना-क्यच्, आकारलोपाभावश्छान्दसः। ततः शतृ। पृतन्यतः। पृतनां सेनामात्मन इच्छतः शत्रून् (भिन्द्धि) (मे) मम (सर्वान्) (दुर्हार्दः) म० २। दुष्टहृदयान् (भिन्द्धि) (मे) मम (द्विषतः) विरोधकान् (मणे) हे प्रशंसनीय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥

छिन्द्धि । दुर्भ । स-पत्नान् । मे । छिन्द्धि । मे । पृतना-यतः ॥
छिन्द्धि । मे । सर्वान् । दुः-हार्दान् । छिन्द्धि । मे ।
द्विषतः । मणे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (छिन्द्धि) छेद डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (छिन्द्धि) छेद डाल (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दान्) दुष्ट हृदय वालों को (छिन्द्धि) छेद डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (छिन्द्धि) छेद डाल ॥ ६ ॥

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥

वृश्च । दुर्भ । स-पत्नान् । मे । वृश्च । मे । पृतना-यतः ॥
वृश्च । मे । सर्वान् । दु-हार्दः । वृश्च । मे । द्विषतः । मणे ॥७॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (वृश्च) काट डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (वृश्च) काट डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (वृश्च) काट डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (वृश्च) काट डाल ॥ ७ ॥

कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥

६—(छिन्द्धि) छिदिर् द्वैधीकरणे । द्वैधीकुरु (दुर्हार्दान्) दुष्टहृदयान् । शिष्टं समानं सर्वत्र ॥ ७ ॥

७—(वृश्च) ओ व्रश्चू छेदने । छिन्द्धि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृन्त । दर्भ । सु-पत्नान् । मे । कृन्त । मे । पृतना-यतः ॥
कृन्त । मे । सर्वान् । दुः-हार्दान् । कृन्त । मे । द्विषतः ।
मणे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (कृन्त) कतर डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (कृन्त) कतर डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दान्) दुष्ट हृदय वालों को (कृन्त) कतर डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (कृन्त) कतर डाल ॥ ८ ॥

पिंश दर्भ सुपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

पिंश । दर्भ । सु-पत्नान् । मे । पिंश । मे । पृतना-यतः ॥
पिंश । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । पिंश । मे । द्विषतः । मणे ॥ ९

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (पिंश) बोटी बोटी कर, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (पिंश) बोटी बोटी कर । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (पिंश) बोटी बोटी कर, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (पिंश) बोटी बोटी कर ॥ ९ ॥

विध्य दर्भ सुपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥ १० ॥

विध्य । दर्भ । सु-पत्नान् । मे । विध्य । मे । पृतना-यतः ॥
विध्य । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । विध्य । मे । द्विषतः ।
मणे ॥ १० ॥

८—(कृन्त) कृती छेदने मुचादित्वाद् नुम् । छिन्धि ॥
९—(पिंश) पिश अवयवे, मुचा० नुप् । अनेकावयवीकुरु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (विध्य) बेध डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (विध्य) बेध डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (विध्य) बेध डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (विध्य) बेध डाल ॥ १० ॥

सूक्तम् २८ ॥

१—६ ॥ दर्भो देवता ॥ अनुष्टुप्छन्दः ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षण का उपदेश ॥

निक्ष दर्भ सुपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायुतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥

निक्ष । दर्भ । सु-पत्नान् । मे । निक्ष । मे । पृतना-युतः ॥
निक्ष । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । निक्ष । मे । द्विषतः । मणे ॥ १ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (निक्ष) कोंच डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (निक्ष) कोंच डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (निक्ष) कोंच डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (निक्ष) कोंच डाल ॥ १ ॥

तृन्द्धि दर्भ सुपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायुतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥

तृन्द्धि । दर्भ । सु-पत्नान् । मे । तृन्द्धि । मे । पृतना-युतः ॥
तृन्द्धि । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । तृन्द्धि । मे । द्विषतः । मणे ॥ २ ॥

१०—(विध्य) व्यध ताडने । ताडय ॥
१—(निक्ष) णिक्ष चुम्बने, अत्र पीडने । पीडय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (तृन्द्धि) चीर डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (तृन्द्धि) चीर डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (तृन्द्धि) चीर डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (तृन्द्धि) चीर डाल ॥ २ ॥

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥

तृन्द्धि । दर्भ । स-पत्नान् । मे । तृन्द्धि । मे । पृतना-यतः ॥
तृन्द्धि । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । तृन्द्धि । मे । द्विषतः ।
मणे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (रुन्द्धि) रोक दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (रुन्द्धि) रोक दे । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (रुन्द्धि) रोक दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (रुन्द्धि) रोक दे ॥ ३ ॥

मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ ४ ॥

मृण । दर्भ । स-पत्नान् । मे । मृण । मे । पृतना-यतः ॥
मृण । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । मृण । मे । द्विषतः । मणे ॥ ४

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (मृण) मार डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (मृण) मार डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब

२—(तृन्द्धि) उ तृदिर् हिंसानादरयोः । विनाशय ॥
३—(रुन्द्धि) रुधिर् आवरणे । आवृणु । निरोधे कुरु ॥
४—(मृण) मृण हिंसायाम् । मारय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (मृण) मार डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (मृण) मार डाल ॥ ४ ॥

मन्थं दर्भ सुपत्नान् मे मन्थं मे पृतनायुतः ।
मन्थं मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थं मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥

मन्थं । दुर्भ । सु-पत्नान् । मे । मन्थं । मे । पृतना-युतः ॥ मन्थं । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । मन्थं । मे । द्विषतः । मणे ५

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (मन्थ) मथ डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (मन्थ) मथ डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (मन्थ) मथ डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (मन्थ) मथ डाल ॥ ५ ॥

पिण्ड्ढि दर्भ सुपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायुतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥

पिण्ड्ढि । दुर्भ । सु-पत्नान् । मे । पिण्ड्ढि । मे । पृतना-युतः ॥ पिण्ड्ढि । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । पिण्ड्ढि । मे । द्विषतः । मणे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (पिण्डढि) पीस डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल ॥ ६ ॥

५—(मन्थ) मन्थ विलोडने । विलोडय ॥

६—(पिण्ड्ढि) पिष्लृ संचूर्णने । चूर्णीकुरु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषं दर्भ सुपत्नान् मे ओषं मे पृतनायतः ।
ओषं मे सर्वान् दुर्हार्दः ओषं मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥

ओषं । दुर्भ । सु-पत्नान् । मे । ओषं । मे । पृतना-यतः ॥ ओषं । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । ओषं । मे । द्विषतः । मणे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (ओष) जला दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (ओष) जला दे । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (ओष) जला दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (ओष) जला दे ॥ ७ ॥

दहं दर्भ सुपत्नान् मे दहं मे पृतनायतः ।
दहं मे सर्वान् दुर्हार्दो दहं मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥

दहं । दुर्भ । सु-पत्नान् । मे । दहं । मे । पृतना-यतः ॥ दहं । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । दहं । मे । द्विषतः । मणे ॥८॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (दह) दाह कर दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (दह) दाह कर दे । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (दह) दाह कर दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (दह) दाह कर दे ॥ ८ ॥

जहि दर्भ सुपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वा दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

७—(ओष) उष दाहे । भस्मीकुरु ॥

८—(दह) भस्मसात्कुरु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha-Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहि । दर्भ । स-पत्नान् । मे । जहि । मे । पृतना-यतः॥
जहि । मे । सर्वान् । दुः-हार्दः । जहि । मे । द्विषतः ।
मणे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (जहि) नाश कर दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (जहि) नाश करदे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (जहि) नाश कर दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) बैरियों को (जहि) नाश कर दे ॥ ८ ॥

सूक्तम् ३० ॥

१—५ ॥ दर्भो देवता ॥ १,२ निचृदनुष्टुप् ; ३ भुरिगुष्णिक् ; ४, ५ अनुष्टुप् ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नान् जहि वीर्यैः ॥ १ ॥

यत् । ते । दर्भ । जरा-मृत्युः । शतम् । वर्म-सु । वर्म । ते ॥
तेन । इमम् । वर्मिणम् । कृत्वा । स-पत्नान् । जहि । वीर्यैः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (यत्) जो (ते) तेरा (जरामृत्युः) जरा [निर्बलता] को मृत्यु [के समान दुःखदायी] समझना है, और [जो] (वर्मसु) कवचों के बीच (ते) तेरा (वर्म) कवच (शतम्) सौ प्रकार का है। (तेन) उसी [कारण] से (इमम्) इस [शूर]

८—(जहि) हन हिंसागत्योः । नाशय ॥

१—(यत्) यः (ते) तव (दर्भ) हे शत्रुविदारक सेनापते (जरामृत्युः) जरा निर्बलता मृत्युरिव दुःखदायिनी यस्मिन् स व्यवहारः (शतम्) बहुप्रकारम् (वर्मसु) कवचेषु (वर्म) कवचम् । रक्षासाधनम् (ते) तव (तेन) कारणेन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (वर्मिणम्) कवच धारी (कृत्वा) करके (सपत्नान्) वैरियों को (वीर्यैः) वीर कर्मों से (जहि) नाश कर ॥ १ ॥

भावार्थ—पराक्रमी शूर सेनापति अपने दृष्टान्त से अन्य पुरुषों को वीर बनाकर शत्रुओं का नाश करे ॥ १ ॥

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥

शतम् । ते । दर्भ । वर्माणि । सहस्रम् । वीर्याणि । ते ॥ तम् । अस्मै । विश्वे । त्वाम् । देवाः । जरसे । भर्तवै । अदुः ॥२॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (ते) तेरे (वर्माणि) कवच (शतम्) सौ और (ते) तेरे (वीर्याणि) वीर कर्म (सहस्रम्) सहस्र हैं । (तम्) उस (त्वाम्) तुझे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानों ने (अस्मै) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये और (भर्तवै) पालन करने के लिये (अदुः) दिया है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सेनापति अनेक प्रकार से अपनी और प्रजा की रक्षा कर सके, विद्वान् लोग प्रधान पुरुष के सामने उस महान् पुरुष का आदर करें ॥ २ ॥

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥

(इमम्) (वर्मिणम्) कवचिनम् (कृत्वा) विधाय (सपत्नान्) शत्रून् (जहि) नाशय (वीर्यैः) वीरकर्मभिः ॥

२—(शतम्) असंख्यानि (ते) तव (दर्भ) हे शत्रुविदारक सेनापते (वर्माणि) कवचानि (सहस्रम्) अपरिमितानि (वीर्याणि) वीरकर्माणि (ते) (तम्) तादृशम् (अस्मै) प्रधानाय (विश्वे) सर्वे (त्वाम्) शूरम् (देवाः) विद्वांसः (जरसे) स्तुतये (भर्तवै) तवैप्रत्ययः । भरणाय । पोषणाय (अदुः) दत्तवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वाम् । आहुः । देव-वर्म । त्वाम् । दर्भ । ब्रह्मणः । पतिम्॥
त्वाम् । इन्द्रस्य । आहुः । वर्म । त्वम् । राष्ट्राणि । रक्षसि॥३॥

भाषार्थ--(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (त्वाम्) तुझे (देववर्म) विद्वानों का कवच, (त्वाम्) तुझे (ब्रह्मणः) वेद का (पतिम्) रक्षक (आहुः) वे लोग कहते हैं। (त्वाम्) तुझे (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] का (वर्म) कवच (आहुः) वे लोग कहते हैं, (त्वम्) तू (राष्ट्राणि) राज्यों की (रक्षसि) रक्षा करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ--पराक्रमी शूर सेनापति विद्वानों, वेदों और सब राज्यों की रक्षा करे ॥ ३ ॥

सपत्नक्षयणं दर्भं द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
सपत्न-क्षयणम् । दर्भ । द्विषतः । तपनम् । हृदः ॥ मणिम् । क्षत्रस्य । वर्धनम् । तनू-पानम् । कृणोमि । ते ॥ ४ ॥

भाषार्थ--(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (ते=त्वाम्) तुझ को (सपत्नक्षयणम्) बैरियों का नाश करने वाला, (द्विषतः) शत्रु के (हृदः) हृदय का (तपनम्) तपाने वाला, (क्षत्रस्य) राज्य का (मणिम्) श्रेष्ठ (वर्धनम्) बढ़ाने वाला और (तनूपानम्) शरीरों की रक्षा करने वाला (कृणोमि) मैं बनाता हूं ॥ ४ ॥

३--(त्वाम्) (आहुः) कथयन्ति विद्वांसः (देववर्म) विदुषां कवचं रक्षासाधनम् (त्वाम्) (दर्भ) हे शत्रुविदारक सेनापते (ब्रह्मणः) वेदस्य (पतिम्) पालयितारम् (त्वाम्) (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः पुरुषस्य (आहुः) (वर्म) (त्वम्) (राष्ट्राणि) राज्यानि (रक्षसि) पालयसि ॥

४--(सपत्नक्षयणम्) शत्रूणां नाशकम् (दर्भ) हे शत्रुविदारक सेनापते (द्विषतः) वैरिणः (तपनम्) तापकम् (हृदः) हृदयस्य (मणिम्) प्रशंसनीयम् (क्षत्रस्य) राज्यस्य (वर्धनम्) वर्धकम् (तनूपानम्) शरीराणां पातारं रक्षितारम् (कृणोमि) करोमि (ते) त्वामित्यर्थः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—शूर प्रतापी सेनापति को अधिकार दिया जावे कि वह शत्रु के जीतने और राज्य की उन्नति करने में सदा प्रयत्न करे ॥ ४ ॥

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥

यत् । समुद्रः । अभि-अक्रन्दत् । पर्जन्यः । वि-द्युता । सह ।
ततः । हिरण्ययः । बिन्दुः । ततः । दर्भः । अजायत ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(यत्) जिस [ईश्वर सामर्थ्य] से (समुद्रः) अन्तरिक्ष और (पर्जन्यः) बादल (विद्युता सह) बिजुली के साथ (अभ्यक्रन्दत्) सब ओर गरजा है । (ततः) उसी [सामर्थ्य] से (हिरण्ययः) झलकता हुआ (बिन्दुः) बूंद [शुद्ध मेह का जल] और (ततः) उसी [सामर्थ्य] से (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक सेनापति] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर के समार्थ्य से आकाश में बिजुली और बादल गरज कर वृष्टि करके उपकार करते हैं, वैसे ही उसी जगदीश्वर के नियम से शूर सेनापति उत्तम शिक्षा और उत्तम संस्कारों के द्वारा संसार में उपकार करके यशस्वी होता है ॥ ५ ॥

सूक्तम् ३१ ॥

१—१४ ॥ औदुम्बरो मणिः प्रजापतिर्वा देवता ॥ १–४, ७–१० अनुष्टुप्, ५, १२ त्रिष्टुप् ; ६, १४ विराडार्षी पङ्क्तिः, ११ निचृत् शक्करी ; १३ शक्करी ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥

५—(यत्) यस्मात्परमेश्वरसामर्थ्यात् (समुद्रः) अन्तरिक्षम् (अभ्यक्रन्दत्) अभितः स्तननं गर्जनमकार्षीत् (पर्जन्यः) मेघः (विद्युता) अशन्या (सह) (ततः) तस्मात् सामर्थ्यात् (हिरण्ययः) तेजोमयः (बिन्दुः) वृष्टिबिन्दुः (ततः) तस्मात् सामर्थ्यात् (दर्भः) शत्रुविदारकः सेनापतिः (अजायत) प्रादुरभवत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औदुम्बरेण । मणिना । पुष्टि-कामाय । वेधसा ॥ पशूनाम् । सर्वेषाम् । स्फातिम् । गो-स्थे । मे । सविता । करत् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(औदुम्बरेण) संघटन चाहने वाले (मणिना) श्रेष्ठ (वेधसा) जगत् स्रष्टा [परमेश्वर] के साथ (पुष्टिकामाय) वृद्धि की कामना वाले (मे) मेरे लिये (सविता) सर्वप्रेरक [गृहपति] (सर्वेषाम्) सब (पशूनाम्) पशुओं की (स्फातिम्) बढ़ती (गोष्ठे) गोशाला में (करत्) करे ॥ १ ॥

भावार्थ—गृहपति को योग्य है कि सर्वनियन्ता परमेश्वर का आश्रय लेकर गौ आदि प्राणियों की वृद्धि से कुटुम्ब का पालन करे ॥ १ ॥

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशुनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥

यः । नः । अग्निः । गार्हपत्यः । पशूनाम् । अधि-पाः । असत् ॥
औदुम्बरः । वृषा । मणिः । सः । मा । सृजतु । पुष्ट्या ॥२॥

भाषार्थ—(यः) जो (गार्हपत्यः) गृहपति की स्थापित (अग्निः) अग्नि [के समानतेजस्वी परमेश्वर] (नः) हमारे (पशूनाम्) प्राणियों का (अधिपाः) बड़ा स्वामी (असत्) है । (सः) वही (औदुम्बरः) संघटन चाहने

१—(औदुम्बरेण) अ० ८ । ६ । १७ । पृभिदिव्यधि० । उ० १ । २३ । उड संहतौ संहनने समूहे वा, सौत्रो धातुः—कु । संज्ञायां भृतृवृ० । पा० ३ । २ । ४६ । उडु+वृञ् वरणे—क्त्र मुम् च, डस्य दः वस्य बः । ततः स्वार्थे अण् । संहतेः संघट्टनस्य स्वीकर्ता (मणिना) श्रेष्ठेन (पुष्टिकामाय) वृद्धिंकामयमानाय (वेधसा) विधात्रो वेध च । उ० ४ । २२५ । वि+दधातेः—असि । वेधा मेधाविनाम - निघ० ३ । १५ । जगत्स्रष्ट्रा परमेश्वरेण सह (पशूनाम्) गवादीनाम् (सर्वेषाम्) (स्फातिम्) वृद्धिम् (गोष्ठे) गोशालायाम् (मे) मह्यम् (सविता) सर्वप्रेरको गृहपतिः (करत्) कुर्यात् ॥

२—(यः) परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (अग्निः) अग्निवत्तेजस्वी परमात्मा (गार्हपत्यः) गृहपतिना संयुक्तः स्थापितः (पशूनाम्) प्राणिनाम् (अधिपाः) अधि+पा रक्षणे-विच् । महाराजः (असत्) लुङर्थे लेट् । अस्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला, (मणिः) श्रेष्ठ, (वृषा) वीर्यवान् [परमेश्वर] (मा) मुझको (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (सृजतु) संयुक्त करे ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परमात्मा की उपासना करके मनुष्य आदि प्राणियों से वृद्धि करें ॥ २ ॥

कुरीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥

कुरीषिणीम् । फल-वतीम् । स्वधाम् । इराम् । च । नः । गृहे ॥
औदुम्बरस्य । तेजसा । धाता । पुष्टिम् । दधातु । मे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(नः) हमारे (गृहे) घर में (औदुम्बरस्य) संघटन चाहने वाले [परमेश्वर] के (तेजसा) तेज से (करीषिणीम्) बहुत गोबर वाली, (फलवतीम्) बहुत फल वाली, (स्वधाम्) बहुत अन्नवाली (च) और (इराम्) बहुत भूमि वाली (पुष्टिम्) वृद्धि को (धाता) पोषक [गृहपति] (मे) मुझे (दधातु) देवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—गृहपति परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से कुटुम्ब पालने को बहुत गौयें दूध घृत आदि के लिये, आराम वाटिका फल आदि के लिये, अन्नभोजनादि के लिये और भूमि राज्य खेती आदि के लिये रक्खे ॥ ३ ॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृहेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥

(औदुम्बरः) म० १ । संहतिस्वीकर्ता (वृषा) वीर्यवान् (मणिः) प्रशस्तः (सः) परमेश्वरः (मा) माम् (सृजतु) संयोजयतु (पुष्ट्या) वृद्धया ॥

३—(करीषिणीम्) अ० ३ । १४ । ३ । बहुना करीषेण गोमयेन युक्ताम् (फलवतीम्) बहुफलयुक्ताम् (स्वधाम्) स्वधा—अर्श आद्यच् । बहुअन्नवतीम् (इराम्) अर्श आद्यच् । बहुभूमियुक्ताम् (च) (नः) अस्माकम् (गृहे) निवासे (औदुम्बरस्य) म० १ । संहतिस्वीकारकस्य (तेजसा) प्रतापेन (धाता) पोषको गृहपतिः (पुष्टिम्) पोषणम् (दधातु) ददातु (मे) मह्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् । द्वि-पात् । च । चतुः-पात् । च । यानि । अन्नानि । ये । रसाः ॥ गृह्णे । अहम् । तु । एषाम् । भूमानम् । बिभ्रत् । औदुम्बरम् । मणिम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो कुछ (द्विपात्) दोपाया (च) और (चतुष्पात्) चौपाया है, (च) और (यानि) जो जो (अन्नानि) अन्न और (ये) जो जो (रसाः) रस हैं । (औदुम्बरम्) संघटन चाहने वाले (मणिम्) श्रेष्ठ [परमेश्वर] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (तु) ही (अहम्) मैं (एषाम्) इन की (भूमानम्) बहुतायत को (गृह्णे) ग्रहण करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करके प्रयत्न के साथ उत्तम मनुष्यों, उत्तम अन्नों, और उत्तम दूध घी शर्करा गुड़ादि रसों को बहुतायत से रक्खें ॥ ४ ॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ॥ पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥

पुष्टिम् । पशूनाम् । परि । जग्रभ । अहम् । चतुः-पदाम् । द्वि-पदाम् । यत् । च । धान्यम् ॥ पयः । पशूनाम् । रसम् । ओषधीनाम् । बृहस्पतिः । सविता । मे । नि । यच्छात् ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ५ । २८ । ३ ॥

४—(यत्) (द्विपात्) पादद्वयोपेतं मनुष्यादिकम् (च) (चतुष्पात्) पादचतुष्टयोपेतं गवादिकं पशुजातम् (च) (यानि) (अन्नानि) व्रीहियवादीनि (ये) (रसाः) दधिक्षीरमधुशर्करागुडादिरूपाः (गृह्णे) स्वीकरोमि (अहम्) (तु) हि (एषाम्) पूर्वोक्तानाम् (भूमानम्) बहुभावम् (बिभ्रत्) धारयन् सन् (औदुम्बरम्) संहतिस्वीकर्तारम् (मणिम्) प्रशस्तं परमात्मानम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अहम्) मैं ने (चतुष्पदाम्) चौपाये और (द्विपदाम्) दोपाये (पशूनाम्) जीवों की, (च) और (यत्) जो (धान्यम्) धान्य है, [उसकी भी], (पुष्टिम्) बढ़ती को (परि) सब ओर से (जग्रभ) ग्रहण किया है। (पशूनाम्) पशुओं का (पयः) दूध और (ओषधीनाम्) ओषधियों [सोमलता अन्न आदि] का (रसम्) रस (बृहस्पतिः बड़े ज्ञानों का रक्षक (सविता) सर्वप्रेरक [गृहपति वा परमेश्वर] (मे) मुझे (नि) नित्य (यच्छात्) देवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की भक्तिपूर्वक सब आवश्यक पदार्थों का संग्रह करके प्रजा की यथावत् रक्षा करे ॥ ५ ॥

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

अहम् । पशूनाम् । अधि-पाः । असानि । मयि । पुष्टम् । पुष्ट-पतिः । दधातु ॥ मह्यम् । औदुम्बरः । मणिः । द्रविणानि । नि । यच्छतु ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं (पशूनाम्) प्राणियों का (अधिपाः) बड़ा राजा (असानि) हो जाऊं, (मयि) मुझ में (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी (पुष्टम्) पोषण (दधातु) धारण करे। (मह्यम्) मुझ को (औदुम्बरः)

५—(पुष्टिम्) वृद्धिम् (पशूनाम्) प्राणिनाम् (परि) सर्वतः (जग्रभ) हस्य भः। जग्रह। गृहीतवानस्मि (चतुष्पदाम्) पादचतुष्टययुक्तानाम् (द्विपदाम्) पादद्वयोपेतानाम् (यत्) (च) (धान्यम्) अन्नम्, तस्य पुष्टिं च (पयः) क्षीरम् (पशूनाम्) गवादीनाम् (रसम्) (ओषधीनाम्) सोमलता-व्रीहियवादीनाम् (बृहस्पतिः) बृहतां ज्ञानानां पालकः (सविता) सर्वप्रेरकः गृहपतिः परमेश्वरो वा (मे) मह्यम् (नि) नित्यम् (यच्छात्) लेटि रूपम्। दद्यात् ॥

६—(अहम्) (पशूनाम्) जीवानाम् (अधिपाः) म० २। महाराजः (असानि) भवानि (मयि) (पुष्टम्) पोषणम् (पुष्टपतिः) पोषणस्वामी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमेश्वर] (द्रविणानि) अनेक धन (नि) नित्य (यच्छतु) देवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की शरण लेकर पुरुषार्थ के साथ अनेक धन प्राप्त करने चाहियें ॥ ६ ॥

उप॒ मौदुम्बरो म॒णिः प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च ।
इन्द्रे॑ण जिन्वि॒तो म॒णिरा या॑गन्त्सह वर्च॑सा ॥ ७ ॥

उप॑ । मा॒ । औदु॑म्बरः । म॒णिः । प्र॒-जया॑ । च॒ । धने॑न । च॒ ॥ इन्द्रे॑ण । जि॒न्वि॒तः । म॒णिः । आ । मा॒ । अ॒ग॒न् । स॒ह । वर्च॑सा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(औदुम्बरः) संघट चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमेश्वर] (प्रजया) प्रजा के साथ (च च) और (धनेन) धन के साथ (मा उप) मुझ को, (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य करके (जिन्वितः) प्रेरित किया गया (मणिः) प्रशंसनीय [परमात्मा] (वर्चसा सह) तेज के साथ (मा) मुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है ॥ ७ ॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी सर्वशक्तिमत्ता से प्रत्येक प्राणी में व्यापक है, यह विचार कर सब मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषों अनेक धनों की प्राप्ति से ऐश्वर्यवान् होवें ॥ ७ ॥

देवो म॒णिः स॑पत्न॒हा ध॑न॒सा धन॑सातये ।
प॒शोरन्न॑स्य भू॒मानं॒ गवां॑ स्फा॒तिं नि य॑च्छतु ॥ ८ ॥

(दधातु) धारयतु (मह्यम्) (औदुम्बरः) म० १ । संहतिस्वीकर्ता (मणिः) प्रशंसनीयः परमेश्वरः (द्रविणानि) धनानि (नि) नित्यम् (यच्छतु) ददातु ॥

७—(उप) समीपे (मा) माम् (औदुम्बरः) म० १ । संहतिस्वीकर्ता (मणिः) प्रशंसनीयः परमेश्वरः (प्रजया) (च) (धनेन) (च) (इन्द्रेण) परमैश्वर्येण (जिन्वितः) जिवि प्रीणने—क्त । प्रेरितः (मणिः) (आ अगन्) आगमत् (मा) माम् (सह) (वर्चसा) तेजसा ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवः । मणिः । सपत्न-हा । धन-साः । धन-सातये ॥ पशोः ।
अन्नस्य । भूमानम् । गवाम् । स्फातिम् । नि । यच्छतु ॥८॥

भाषार्थ—(देवः) प्रकाशमान (मणिः) प्रशंसनीय, (सपत्नहा) बैरियों का मारने वाला, (धनसाः) धनों का देने वाला [परमात्मा] (धन-सातये) धनों के दान के लिये—(पशोः) प्राणियों की और (अन्नस्य) अन्न की (भूमानम्) बहुतायत और (गवाम्) गौओं की (स्फातिम्) बढ़ती (नि) नित्य (यच्छतु) देवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के अनुग्रह से धनों को प्राप्त करके उत्तम रीति से उठाते हैं, वे सदा उन्नति करते हैं ॥ ८ ॥

यथाग्ने त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥

यथा । अग्ने । त्वम् । वनस्पते । पुष्ट्या । सह । जज्ञिषे ॥
एव । धनस्य । मे । स्फातिम् । आ । दधातु । सरस्वती ॥९॥

भाषार्थ—(वनस्पते) हे सेवकों के रक्षक ! [परमेश्वर] (यथा) जिस प्रकार से (त्वम्) तू (अग्ने) पहिले (पुष्ट्या सह) पोषण के साथ (जज्ञिषे) प्रकट हुआ है । (एव) वैसे ही (मे) मुझको (सरस्वती) सरस्वती

८—(देवः) प्रकाशमयः (मणिः) प्रशंसनीयः (सपत्नहा) शत्रुनाशकः (धनसाः) जनसनखनक्रमगमो विट् । पा० ३ । २ । ६७ । षण सम्भक्तौ—विट् । विड्वनोरनुनासिकस्यात् । पा० ६ । ४ । ४१ । इत्यात्वं । धनानां साता दाता (धनसातये) धन + षणं संभक्तौ—क्तिन् । जनसनखन० । पा० ६ । ४ । ४२ । इत्यात्वम् । धनानां दानाय (पशोः) बहुवचनस्वरे० । पा० पशूनाम् (भूमानम्) बहुत्वम् (गवाम्) धेनूनाम् (स्फातिम्) वृद्धिम् (नि) नित्यम् (यच्छतु) ददातु ॥

९—(यथा) येन प्रकारेण (अग्ने) आदौ (त्वम्) (वनस्पते) वनानां सेवकानां पालक परमेश्वर (पुष्ट्या) समृद्धया (सह) (जज्ञिषे) प्रादुर्भूतोऽसि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[विज्ञानवती विद्या] (धनस्य) धन की (स्फातिम्) बढ़ती (आ) सब ओर से (दधातु) देवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने पहिले से ही सब पोषण पदार्थ उत्पन्न कर दिये हैं, मनुष्य वेद आदि सत्य विद्यायें ग्रहण करके धन को प्राप्त करें ॥ ९ ॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युप वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥

आ । मे । धनम् । सरस्वती । पयः-स्फातिम् । च । धान्यम् ॥
सिनीवाली । उप । वहात् । अयम् । च । औदुम्बरः । मणिः १०

भाषार्थ—(सिनीवाली) अन्न देने वाली (सरस्वती) सरस्वती [विज्ञानवती विद्या] (च) और (अयम्) यह (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमात्मा] (मे) मेरे लिये (पयस्फातिम्) दूध की बढ़ती, (च) और (धनम्) धन और (धान्यम्) धान्य [अन्न] (आ) सब ओर से (उप) समीप (वहात्) लावे ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या प्राप्त करते और परमात्मा पर विश्वास करके प्रयत्न करते हैं, वे धन धान्य पाकर सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ १० ॥

(एव) एवम् (धनस्य) (मे) मह्यम् (स्फातिम्) वृद्धिम् (आ) समन्तात् (दधातु) ददातु (सरस्वती) विज्ञानवती विद्या ॥

१०—(आ) समन्तात् (मे) मह्यम् (धनम्) सुवर्णादिरूपम् (सरस्वती) विज्ञानवती विद्या (पयस्फातिम्) दुग्धस्य वृद्धिम् (च) (धान्यम्) अन्नम् (सिनीवाली तु (मु) अ० २ । २६ । २ । इण्सिञ्जिदीङु० । उ० ३ । २ । षिञ् बन्धने—परमेश्व नक्, ङीप्+बल संवरणे, बल जोवने दाने च—अण्, ङीप्, । वाली—(सिनमन्नं भवति सिनाति भूतानि बालं पर्व वृणोतेस्तस्मिन्नवती (मणिः) ई । ३१ । अन्नदात्री (उप) सांहितिको दीर्घः । समीपे (वहात्) प्रापयतु (अयम्) प्रसिद्धः (च) (औदुम्बरः) म० १ । संहतिस्वीकर्ता (मणिः) प्रशंसनीयः परमेश्वरः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान । त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥

त्वम् । मणीनाम् । अधि-पाः। वृषा । असि । त्वयि । पुष्टम् । पुष्ट-पतिः । जजान ॥ त्वयि । इमे इति । वाजाः । द्रविणानि । सर्वा । औदुम्बरः । सः । त्वम् । अस्मत् । सहस्व । आरात् । अरातिम् । अमतिम् । क्षुधम् । च ॥ ११ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (त्वम्) तू (मणीनाम्)मणियों [प्रशंसनीय पदार्थों] का (अधिपाः) बड़ा राजा और (वृषा) बलवान् (असि) है,(त्वयि) तुझ में ही (पुष्टम्) पोषण को (पुष्टपतिः) पोषण के स्वामी [धनी पुरुष]ने (जजान) प्रकट किया है। (त्वयि) तुझ में ही (इमे) यह (वाजाः) अनेक बल और (सर्वा) सब (द्रविणानि) धन हैं, (सः) सो (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (त्वम्) तू (अस्मत्) हम से (अरातिम्) अदानशीलता, (अमतिम्) कुमति (च) और (क्षुधम्) भूख को (आरात्) दूर (सहस्व) हटा ॥ ११॥

भावार्थ—संसार में जो धनी पुरुष हैं, वे सब परमात्मा का आश्रय लेकर, पुरुषार्थ से धनवान् हुये हैं, यह विचार कर प्रत्येक मनुष्य को धन प्राप्त करके सुपात्र में व्यय, धर्म में सुमति और दुर्भिक्ष आदि के निवारण में दूरदर्शिता रखनी चाहिये ॥ ११ ॥

११—(त्वम्) (मणीनाम्) प्रशंसनीयानां पदार्थानाम् (अधिपाः) महाराजः (वृषा) वीर्यवान् (असि) (त्वयि) (पुष्टम्) पोषणम् (पुष्टपतिः) पोषणस्वामी। धनी पुरुषः (जजान) प्रकटीकृतवान् (त्वयि) (इमे) दृश्यमानाः (वाजाः) बलानि (द्रविणानि) धनानि (सर्वा) सर्वाणि (औदुम्बरः) म० १। संहतिस्वीकर्ता (सः) तादृशः (त्वम्) (अस्मत्) अस्मत्तः (सहस्व) अभिभव। अपगमय (आरात्) दूरे (अरातिम्) अदानशीलताम् (अमतिम्) कुमतिम् (क्षुधम्) बुभुक्षाम् (च) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धार्याधि रयिरसि रयि मे धेहि ॥१२॥

ग्राम-नीः । असि । ग्राम-नीः । उत्थाय । अभि-षिक्तः । अभि । मा । सिञ्च । वर्चसा ॥ तेजः । असि । तेजः । मयि । धारय । अधि । रयिः । असि । रयिम् । मे । धेहि ॥ १२ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (ग्रामणीः) समूहों का नेता (असि) है, (उत्थाय) खड़ा होकर तू (ग्रामणीः) समूहों का नेता [है], (अभिषिक्तः) अभिषेक [राज्यतिलक] किया हुआ तू (मा) मुझे (वर्चसा) तेज के साथ (अभि षिञ्च) अभिषिक्त कर। (तेजः) तू तेजः स्वरूप (असि) है, (मयि) मुझ में (तेजः) तेज (धारय) धारण कर, (रयिः) तू धनरूप (असि) है (मे) मेरे लिये (रयिम्) धन (अधि) अधिकायी से (धेहि) स्थापित कर ॥१२॥

भावार्थ—परमात्मा अपने ऐश्वर्य से सब समूहों का राजा महाराजा है। इसी प्रकार सब मनुष्य धर्म के साथ प्रतापी और धनी होकर सुखी होवें ॥ १२ ॥

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥

पुष्टिः । असि । पुष्ट्या । मा । सम् । अङ्ग्धि । गृह-मेधी । गृह-पतिम् । मा । कृणु ॥ औदुम्बरः । सः । त्वम् । अस्मासु ।

१२—(ग्रामणीः) समूहानां नेता (असि) (ग्रामणीः) (उत्थाय) उद्गत्य (अभिषिक्तः) अभिषेकं प्राप्तः (मा) माम् (अभिषिञ्च) अभिषिक्तं कुरु (वर्चसा) तेजसा (तेजः) तेजोरूपः (असि) (तेजः) प्रकाशम् (मयि) (धारय) स्थापय (अधि) आधिक्ये (रयिः) धनरूपः (असि) (रयिम्) धनम् (मे) मह्यम् (धेहि) धारय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धेहि । रयिम् । च । नः । सर्व-वीरम् । नि । यच्छ । रायः । पोषाय । प्रति । मुञ्चे । अहम् । त्वाम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (पुष्टिः) वृद्धिरूप (असि) है, (वृद्धया) वृद्धि के साथ (मा) मुझे (सम् अङ्ग्धि) संयुक्त कर, तू (गृहमेधी) घर के काम समझने वाला [है], (मा) मुझे (गृहपतिम्) घर का स्वामी (कृणु) कर। (सः) सो (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (त्वम्) तू (अस्मासु) हम लोगों के बीच (नः) हम को (सर्ववीरम्) सब को वीर रखने वाला (रयिम्) धन (धेहि) दे, (च) और (नि यच्छ) दृढ़ कर, (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (रायः) धन की (पोषाय) वृद्धि के लिये (प्रति मुञ्चे) स्वीकार करता हूं ॥ १३ ॥

भावार्थ—परमात्मा को सर्वभाण्डार और सर्वशक्तिमान् समझ कर मनुष्य अपनी वृद्धि के लिये प्रवृत्ति करते रहें ॥ १३ ॥

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते । स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥

अयम् । औदुम्बरः । मणिः । वीरः । वीराय । बध्यते ॥ सः । नः । सनिम् । मधु-मतीम् । कृणोतु । रयिम् । च । नः । सर्व-वीरम् । नि । यच्छात् ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(अयम्) यह (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला, (मणिः)

१३—(पुष्टिः) वृद्धिरूपः (असि) (पुष्ट्या) पोषेण (मा) माम् (सम् अङ्ग्धि) अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—लोट् । सम्यग् अंक्तं कुरु । संयुक्तं कुरु (गृहमेधी) अ० ८ । १० । ३ । गृह+मेधृ वधमेधासङ्गमेषु—णिनि । गृहाणि गृहकार्याणि मेधति जानातीति सः (गृहपतिम्) गृहस्वामिनम् (मा) माम् (कृणु) कुरु (औदुम्बरः) म० १ । संहतिस्वीकर्ता (सः) (त्वम्) (अस्मासु) (धेहि) धारय (रयिम्) धनम् (च) (नः) अस्मभ्यम् (सर्ववीरम्) सर्वे वीरा यस्मात् तादृशम् (नि यच्छ) नियतं कुरु (रायः) धनस्य (पोषाय) वर्धनाय (प्रति मुञ्चे) स्वीकरोमि (अहम्) (त्वाम्) परमात्मानम् ॥

१४—(अयम्) प्रसिद्धः (औदुम्बरः) म० १ । संहतिस्वीकर्ता (मणिः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसनीय (वीरः) वीर [परमात्मा] (वीराय) वीर पुरुष के लिये (बध्यते) धारण किया जाता है। (सः) वह (नः) हमारे लिये (मधुमतीम्) ज्ञानयुक्त (सनिम्) लाभ (कृणोतु) करे, (च) और (नः) हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब को वीर बनाने वाला (रयिम्) धन (नि यच्छात्) नियत करे ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के स्थिर कोश और नित्य दान का विचार करके पुरुषार्थ करते हैं, वे स्थिर निधि स्थापित करके सब मनुष्यों को वीर बनाते हैं ॥ १४ ॥

सूक्तम् ३२ ॥

१—१० ॥ दर्भो देवता ॥ १—३, ६, ७ अनुष्टुप्; ४ आर्ष्यनुष्टुप्; ५ विराडार्ष्यनुष्टुप्; ८ आर्षी बृहती; ९ त्रिष्टुप्; १० विराडार्षी जगती ॥

शत्रूणां पराजयोपदेशः—शत्रुओं के हराने का उपदेश ॥

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दुर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥

शत-काण्डः । दुः-च्यवनः । सहस्र-पर्णः । उत्-तिरः ॥ दुर्भः । यः । उग्रः । ओषधिः । तम् । ते । बध्नामि । आयुषे ॥ १ ॥

भाषार्थ—(शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला, (दुश्च्यवनः) न हटने वाला, (सहस्रपर्णः) सैकड़ों पालनों वाला, (उत्तिरः) उत्कृष्ट, (यः) जो (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर वा औषध विशेष] (उग्रः) उग्र

प्रशंसनीयः (वीरः) पराक्रमी परमात्मा (वीराय) पराक्रमिणे पुरुषाय (बध्यते) धार्यते (सः) तादृशः (नः) अस्मभ्यम् (सनिम्) लब्धिम् (मधुमतीम्) ज्ञानयुक्ताम् (कृणोतु) करोतु (रयिम्) धनम् (नः) अस्मभ्यम् (सर्ववीरम्) सर्वेषां वीरकरम् (नि यच्छात्) नियतं कुर्यात् ॥

१—(शतकाण्डः) कडि भेदने रक्षणे च-घञ्। बहुरक्षणोपेतः (दुश्च्यवनः) च्युङ् गतौ—युच्। दुःखेन च्यावनीयः। अनिवारणीयः (सहस्रपर्णः) पॄ पालनपूरणयोः—नप्रत्ययः। अनन्तपालनसामर्थ्योपेतः (उत्तिरः) उत्+तॄ प्लवनतरणयोः—कप्रत्ययः। उत्कृष्टः (दर्भः) अ० १९। २८। १। शत्रुविदा-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ओषधिः) ओषधिरूप है। (तम्) उसको (ते) तेरे लिये (आयुषे) [दीर्घ] जीवन के लिये (बध्नामि) मैं धारण करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे परमात्मा अनेक प्रकार सहारा देने वाला दृढ़ स्वभाव है, और जैसे उत्तम औषध से सुख मिलता है, वैसे ही तुम लोग उस जगदीश्वर की शरण में रहकर सब के पालन करने का उपाय करो ॥१॥

नास्य॒ केशा॒न् प्र व॑पन्ति॒ नोर॑सि॒ ताड॒मा घ्न॑ते ।
यस्मा॑ अच्छिन्नप॒र्णेन॑ द॒र्भेण॒ शर्म॑ यच्छति ॥ २ ॥

न । अ॒स्य॒ । केशा॑न् । प्र । व॒प॒न्ति॒ । न । उर॑सि । ताड॑म् । आ । घ्न॒ते॒ ॥ यस्मै॑ । अ॒च्छि॒न्न॒-प॒र्णेन॑ । द॒र्भेण॑ । शर्म॑ । य॒च्छ॒ति॒ ॥२॥

भाषार्थ—(न) न तौ (अस्य) उस [पुरुष] के (केशान्) केशों को (प्र वपन्ति) वे [शत्रु लोग] बखेरते हैं, (न) न (उरसि) छाती पर (ताडम्) चोट (आ घ्नते) लगाते हैं। (यस्मै) जिस [पुरुष] को (अच्छिन्नपर्णेन) अखण्ड पालन वाले (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (शर्म) सुख (यच्छति) वह [कोई मित्र] देता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य माता पिता आचार्य आदि से सुशिक्षा पाकर परमात्मा में दृढ़ होकर उत्साह करता है, उसको संसार में कोई नहीं सत्ता सकता ॥ २ ॥

दि॒वि ते॒ तूल॑मोषधे पृथि॒व्याम॑सि॒ निष्ठि॑तः ।
त्वया॑ स॒हस्र॑काण्डे॒नायुः॒ प्र व॑र्धयामहे ॥ ३ ॥

रकः परमेश्वरः (यः) (उग्रः) प्रचण्डः (ओषधिः) ओषधिरूपः (तम्) (ते) तुभ्यम् (बध्नामि) धारयामि (आयुषे) दीर्घजीवनाय ॥

२—(न) नैव (अस्य) तस्य पुरुषस्य (केशान्) शिरोरुहान् (प्र) प्रकर्षेण (वपन्ति) टुवप बीजसन्ताने । विक्षिपन्ति । विकिरन्ति (न) निषेधे (उरसि) वक्षःस्थले (ताडम्) आघातम् (आ) समन्तात् (घ्नते) मारयन्ति (यस्मै) पुरुषाय (अच्छिन्नपर्णेन) अखण्डितपालनेन (दर्भेण) शत्रुविनाशकेन परमेश्वरेण (सह) (शर्म) सुखम् (यच्छति) ददाति कश्चित् सुहृत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवि । ते । तूलम् । ओषधे । पृथिव्याम् । अधि । नि-स्थितः॥
त्वया । सहस्र-काण्डेन । आयुः । प्र । वर्धयामहे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(ओषधे) हे ओषधि [रूप परमात्मा !] (दिवि) सूर्य में (ते) तेरी (तूलम्) पूर्णता है, और तू (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (निष्ठितः) दृढ़ ठहरा हुआ (असि) है । (सहस्रकाण्डेन) सहस्रों सहारा देने वाले (त्वया) तेरे साथ (आयुः) जीवन काल को (प्र वर्धयामहे) हम बढ़ा ले जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—परमात्मा सब से ऊंचे और सब से नीचे स्थान में एक रस व्यापक है, उसकी उपासना से मनुष्य यश प्राप्त करें ॥ ३ ॥

तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥

तिस्रः । दिवः । अति । अतृणत् । तिस्रः । इमाः । पृथिवीः ।
उत ॥ त्वया । अहम् । दुः-हार्दः । जिह्वाम् । नि । तृणद्मि ।
वचांसि ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (तिस्रः) तीनों [उत्कृष्ट, निकृष्ट, मध्यम] (दिवः) प्रकाशों को (उत) और (इमाः) इन (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) पृथिवियों को (अति अतृणत्) तू ने आर पार छेदा है । (त्वया) तेरे साथ (अहम्) मैं (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (जिह्वाम्) जीभ को

३—(दिवि) सूर्ये (ते) तव (तूलम्) तूल पूरणे–क्प्रत्ययः । पूर्णत्वम् (ओषधे) हे ओषधिरूप परमात्मन् (पृथिव्याम्) भूमौ (निष्ठितः) अवस्थितः (त्वया) (सहस्रकाण्डेन) म० १ । अनन्तरक्षणोपेतेन (आयुः) जीवनम् (प्र) प्रकर्षेण (वर्धयामहे) अभिवृद्धं कुर्मः ॥

४—(तिस्रः) त्रिविधाः, उत्तमनिकृष्टमध्यमरूपेण (दिवः) प्रकाशान् (अति) अतीत्य (अतृणत्) तृदिर् हिंसानादरयोः—लङ् , मध्यमपुरुषस्यैकवचनम् । अतृणः । छिन्नवानसि (तिस्रः) (इमाः) दृश्यमानाः (पृथिवीः) (उत) अपि (त्वया) (अहम्) (दुर्हार्दः) दुष्टहृदयस्य (जिह्वाम्) रसनाम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (वचांसि) वचनों को (नि) दृढ़ता से (तृणद्मि) छेदता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा को त्रिकालपति और त्रिलोकीनाथ जानकर पुरुषार्थ करते हैं, वे अन्यथाकारी शत्रुओं को वश में रखते हैं ॥४॥

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥ ५ ॥

त्वम् । असि । सहमानः । अहम् । अस्मि । सहस्वान् ॥
उभौ । सहस्वन्तौ । भूत्वा । स-पत्नान् । सहिषीमहि ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (सहमानः) वश में करने वाला (असि) है, और (अहम्) मैं (सहस्वान्) बलवान् (अस्मि) हूं। (उभौ) हम दोनों (सहस्वन्तौ) बलवान् (भूत्वा) होकर (सपत्नान्) विरोधियों को (सहिषीमहि) हम सब वश में करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—वीर पुरुष परमेश्वर का आश्रय लेकर और सब साथियों को मिलाकर शत्रुओं का नाश करे ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ३ । १८ । ५ और ऋग्वेद १० । १४५ । ५ ॥

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥

सहस्व । नः । अभि-मातिम् । सहस्व । पृतना-यतः ॥ सहस्व ।
सर्वान् । दुः-हार्दः । सु-हार्दः । मे । बहून् । कृधि ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (नः) हमारे (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) हरा और (पृतनायतः) सेनायें चढ़ा लाने वालों को (सहस्व)

(नि) दृढम्) (तृणद्मि) छिनद्मि (वचांसि) वचनानि ॥

५—(त्वम्) (असि) (सहमानः) अभिभवनशीलः (अहम्) (अस्मि) (सहस्वान्) बलवान् (उभौ) (सहस्वन्तौ) बलवन्तौ (भूत्वा) (सपत्नान्) विरोधिनः (सहिषीमहि) षह मर्षणे—आशीर्लिङि । अभिभवेम ॥

६—(सहस्व) अभिभव (नः) अस्माकम् (अभिमातिम्) अ० २ । ७ । ४ । अभिमानिनं शत्रुम् (सहस्व) (पृतनायतः) अ० १९ । २८ । ५ । पृतनाः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरा। (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (सहस्व) हरा, (मे) मेरे लिये (बहून्) बहुत (सुहार्दः) शुभ हृदय वाले लोग (कृधि) कर॥६॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की उपासना करके दुष्टों का अपमान और शिष्टों का सन्मान करें ॥ ६ ॥

दुर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥

दुर्भेण। देव-जातेन। दिवि। स्तम्भेन। शश्वत्। इत् ॥ तेन। अहम्। शश्वतः। जनान्। असनम्। सनवानि। च ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(देवजातेन) विद्वानों में प्रसिद्ध, (दिवि) आकाश में (स्तम्भेन) स्तम्भ रूप, (तेन) उस (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (शश्वत्) सदा (इत्) ही (अहम्) मैं ने (शश्वतः) नित्यवर्तमान (जनान्) पामर लोगों को (असनम्) जीता है, (च) और (सनवानि) जीतूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा ने सूर्य आदि लोकों को नियम के साथ आकर्षण में रक्खा है, उसकी उपासना करके मनुष्य दुष्टों को दण्ड दे शिष्टों का सत्कार करें ॥ ७ ॥

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥

सेना आत्मन इच्छतः शत्रून् (सहस्व) (सर्वान्) (दुर्हार्दः) अ० १६ । २८ । २। दुष्टहृदयान् (सुहार्दः) अ० ३ । २८ । ५ । शुभहृदयान् (मे (मह्यम्) (बहून्) (कृधि) कुरु ॥

७—(दर्भेण) शत्रुविदारकेण परमेश्वरेण (देवजातेन) विद्वत्सु प्रसिद्धेन (दिवि) आकाशे (स्तम्भेन) स्तम्भरूपेण (शश्वत्) सर्वदा (इत्) एव (तेन) परमेश्वरेण (अहम्) (शश्वतः) नित्यवर्तमानान् (जनान्) पामरलोकान् (असनम्) षण संभक्तौ—लङ् ॥ जितवानस्मि (सनवानि) षण—लोट् । जयानि (च) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियम् । मा । दर्भ । कृणु । ब्रह्म-राजन्याभ्याम् । शूद्राय । च । आर्याय । च ॥ यस्मै । च । कामयामहे । सर्वस्मै । च । वि-पश्यते ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक परमेश्वर] (मा) मुझको (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिये (च) और (आर्याय) वैश्य के लिये (च) और (शूद्राय) शूद्र के लिये (च) और (यस्मै) जिस के लिये (कामयामहे) हम चाह करते हैं [उसके लिये], (च) और (सर्वस्मै) प्रत्येक (विपश्यते) विविध प्रकार देखने वाले पुरुष के लिये (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वरोक्त वेद द्वारा ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे वे समस्त संसार का हित कर सकें ॥ ८ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो-अ० १९ । ६२ । १ । और यजुर्वेद १८ । ४८ ॥

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादुन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं नानु पाप्मा विवेद स नोऽयं दुर्भो वरुणो दिवा कः ॥९॥

यः । जायमानः । पृथिवीम् । अदृंहत् । यः । अस्तभ्नात् । अन्तरिक्षम् । दिवम् । च ॥ यम् । बिभ्रतम् । ननु । पाप्मा । विवेद । सः । नः । अयम् । दुर्भः । वरुणः । दिवा । कः ॥९॥

८—(प्रियम्) प्रीतिकरम् (मा) माम् (दर्भ) हे शत्रुविदारक परमेश्वर (कृणु) कुरु (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्रह्मणे ब्राह्मणाय राजन्याय क्षत्रियाय च (शूद्राय) मूर्खाय (च) (आर्याय) ऋ गतिप्रापणयोः-एयत् । आर्य इति ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यानां पर्यायवचनम् । अत्र ब्रह्मराजन्यशब्दयोः श्रवणाद् वैश्यवाचकः । वैश्याय (च) (यस्मै) पुरुषाय (च) (कामयामहे) इच्छांकुर्मः तस्मा इति शेषः (सर्वस्मै) (च) (विपश्यते) अन्विष्यते पुरुषाय । दर्शनशीलाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यः) जिस (जायमानः) प्रकट होते हुये [परमेश्वर] ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदंहत्) दृढ़ किया है, (यः) जिसने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (च) और (दिवम्) सूर्य को (अस्तभ्नात्) सहारा है। (यम्) जिस (बिभ्रतम्) पालन करते हुए [परमेश्वर] को (पाप्मा) पापी पुरुष ने (ननु) कभी नहीं (विवेद) जाना है, (सः अयम्) उस ही (वरुणः) श्रेष्ठ (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] ने (नः) हमारे लिये (दिवा) प्रकाश को (कः) बनाया है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा ने नीचे ऊंचे और मध्य लोकों को बनाकर आकर्षण में रक्खा है, और जो पापियों को भी अन्न आदि पहुंचाता है, उसी जगदीश्वर ने विद्वान् लोगों को ज्ञान का प्रकाश दिया है ॥ ९ ॥

सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव । स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतना: पृतन्यतः॥१०

सपत्न-हा । शत-काण्डः। सहस्वान् । ओषधीनाम् । प्रथमः। सम् । बभूव ॥ सः । नः । अयम् । दर्भः । परि । पातु । विश्वतः । तेन । साक्षीय । पृतनाः । पृतन्यतः ॥ १० ॥

भाषार्थ—(सपत्नहा) विरोधियों का नाश करने वाला (शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला (सहस्वान्) महाबली [परमेश्वर] (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि] का (प्रथमः) पहिला (सम् बभूव) समर्थ हुआ है।

९—(यः) दर्भः परमेश्वरः (जायमानः) प्रादुर्भवन् सन् (पृथिवीम्) (अदंहत्) दृहि वृद्धौ। दृढीकृतवान् (यः) (अस्तभ्नात्) स्तम्भितवान्। दृढं धारितवान् (अन्तरिक्षम्) (दिवम्) सूर्यम् (च) (यम्) (बिभ्रतम्) पालयन्तं परमेश्वरम् (ननु) नैव (पाप्मा) पापी पुरुषः (विवेद) ज्ञातवान् (सः) तादृशः (नः) अस्मभ्यम् (अयम्) (दर्भः) शत्रुविदारकः परमेश्वरः (वरुणः) श्रेष्ठः (दिवा) आकारो विभक्तेः। प्रकाशम् (कः) करोतेर्लुङ् । अकः । अकार्षीद्वा ॥

१०—(सपत्नहा) विरोधिनां हन्ता (शतकाण्डः) म० १ । बहुरक्षणोपेतः (सहस्वान्) बलवान् (ओषधीनाम्) अन्नादीनाम् (प्रथमः) प्रथमभावी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः अयम्) वही (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालता रहे, (तेन) उसी [परमेश्वर] के साथ (पृतनाः) सेनाओं को और (पृतन्यतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (साह्वीय) मैं हरा दूं ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा ने सब विघ्नों को हटाकर अनन्त उपकार किये हैं, हे मनुष्यो ! उसी की उपासना करके शत्रुओं का नाश करो ॥ १० ॥

सूक्तम् ३३ ॥

१—५ ॥ दर्भो देवता ॥ १ विराडार्षी जगती; २ त्रिष्टुप्; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ४ विराडार्षी पङ्क्तिः ; ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

उन्नतिकरणोपदेशः—उन्नति करने का उपदेश ॥

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वान्पामग्निर्वीरुधां राजसूयम् । स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥ १ ॥

सहस्र-अर्घः । शत-काण्डः । पयस्वान् । अपाम् । अग्निः । वीरुधाम् । राज-सूयम् ॥ सः । नः । अयम् । दर्भः । परि । पातु । विश्वतः । देवः । मणिः । आयुषा । सम् । सृजाति । नः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(सहस्रार्घः) सहस्रों पूजा वाला, (शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला, (पयस्वान्) अन्नवाला, (अपाम्) जलों की (अग्निः) अग्नि [के समान व्यापक] (वीरुधाम्) ओषधियों के (राजसूयम्) राजसूय [बड़े

(सं बभूव) समर्थो बभूव (सः) तथाभूतः (नः) अस्मान् (अयम्) प्रसिद्धः (परि) परितः (पातु) रक्षतु (विश्वतः) सर्वतः (तेन) परमेश्वरेण सह (साह्वीय) षह अभिभवे आशीर्लिङ् । अभिभूयासम् । अभिभवानि (पृतनाः) सेनाः (पृतन्यतः) पृतना-क्यच्—शतृ । पृतनां सेनामिच्छतः शत्रून् ॥

१—(सहस्रार्घः) अर्ह पूजायाम्—घञ् । बहुपूजनीयः (शतकाण्डः) श० १।६। ३।२। १। बहुरक्षणोपेतः (पयस्वान्) अन्नवान्—निघ० २। ७

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ के समान उपकारी] है । (सः अयम्) वही (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालता रहे, (देवः) प्रकाशमान (मणिः) प्रशंसनीय [वह परमेश्वर] (नः) हमें (आयुषा) [उत्तम] जीवन के साथ (सं सृजाति) संयुक्त करे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो जल के भीतर अग्नि के समान सर्वव्यापक परमेश्वर सृष्टि की अनेक प्रकार रक्षा करता है, मनुष्य उसकी भक्ति से प्रयत्न पूर्वक अपने जीवन को सुफल बनावें ॥ १ ॥

इस मन्त्र का तीसरा पाद आ चुका है—सू० ३२ म० १० ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिद्रूंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२॥

घृतात् । उत्-लुप्तः । मधु-मान् । पयस्वान् । भूमि-द्रूंहः । अच्युतः । च्यवयिष्णुः ॥ नुदन् । स-पत्नान् । अधरान् । च । कृण्वन् । दर्भ । आ । रोह । महताम् । इन्द्रियेण ॥ २ ॥

भाषार्थ—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तः) ऊपर खींचा गया, (मधुमान्) ज्ञानवान्, (पयस्वान्) अन्नवान्, (भूमिद्रूंहः) भूमि का दृढ़ करने वाला, (अच्युतः) अटल, (च्यवयिष्णुः) शत्रुओं को हटा देने वाला, (सपत्नान्) विरोधियों को (नुदन्) निकालता हुआ (च) और (अधरान्) नीचे (कृण्वन्) करता हुआ तू, (दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक परमेश्वर] (महताम्)

(अपाम्) जलानां मध्ये (अग्निः) अग्निसमानसर्वव्यापकः (वीरुधाम्) ओषधीनाम् (राजसूयम्) राजसूययज्ञसमानमहोपकारकः (देवः) प्रकाशमानः (मणिः) प्रशस्तः परमेश्वरः (आयुषा) उत्तमजीवनेन (सं सृजाति) संयोजयेत् (नः) अस्मान् । अन्यत् पूर्ववत्—अ० १९ । ३२ । १० ॥

२—(घृतात्) प्रकाशात् (उल्लुप्तः) उद्धृतः (मधुमान्) ज्ञानवान् (पयस्वान्) अन्नवान् (भूमिद्रूंहः) पृथिव्या दृढीकर्ता (अच्युतः) अचलः (च्यावयिष्णुः) णेश्छन्दसि । पा० ३ । २ । १३७ । च्युङ् गतौ—णिच्, इष्णुच् । च्यावयिता । पातयिता (नुदन्) प्रेरयन् (सपत्नान्) विरोधकान् (अधरान्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ों के (इन्द्रियेण) ऐश्वर्य के साथ (आ) सब ओर से (रोह) प्रकट हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस प्रकाशस्वरूप अविनाशी परमात्मा ने विघ्नों को हटाकर पृथिवी आदि लोक रचे और धारण किये है, उसी के आश्रय से सब लोग ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ५ । २८ । १४ और प्रथमपाद आगे है—अ० १९ । ४६ । ६ ॥

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

त्वम् । भूमिम् । अति । एषि । ओजसा । त्वम् । वेद्याम् । सीदसि । चारुः । अध्वरे ॥ त्वाम् । पवित्रम् । ऋषयः । अभरन्त । त्वम् । पुनीहि । दुः-इतानि । अस्मत् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (त्वम्) तू (ओजसा) पराक्रम से (भूमिम्) भूमि को (अति एषि) पार कर जाता है, (त्वम्) तू (चारुः) शोभायमान होकर (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञ में (वेद्याम्) वेदी पर (सीदसि) बैठता है । (त्वाम् पवित्रम्) तुझ पवित्र को (ऋषयः) ऋषियों [तत्त्वदर्शियों] ने (अभरन्त) धारण किया है, (त्वम्) तू (दुरितानि) संकटों को (अस्मत्) हम से (पुनीहि) शुद्ध कर ॥ ३ ॥

नीचान् (च) (कृण्वन्) कुर्वन् (दर्भ) हे शत्रुविदारक परमेश्वर (आ) समन्तात् (रोह) प्रादुर्भव (महताम्) पूजनीयानाम् (इन्द्रियेण) ऐश्वर्येण ॥

३—(त्वम्) (भूमिम्) (अति) अतीत्य (एषि) गच्छसि (ओजसा) पराक्रमेण (त्वम्) (वेद्याम्) यज्ञप्रदेशे (सीदसि) तिष्ठसि (चारुः) शोभायमानः (अध्वरे) हिंसारहितेः यज्ञे (त्वाम्) (पवित्रम्) शुद्धम् (ऋषयः) तत्त्वदर्शिनः (अभरन्त) धारितवन्तः (त्वम्) (पुनीहि) शोधय (दुरितानि) महादुःखानि (अस्मत्) अस्मत्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—वह परमात्मा पृथिवी आदि अनन्त लोकों का अद्वितीय सर्वोपरि शासक है, हे मनुष्यो ! उसी की आज्ञा मानकर दुष्कर्मों को त्याग अपने को शुद्ध बनाओ ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४॥

तीक्ष्णः । राजा । वि-सासहिः । रक्षः-हा । विश्व-चर्षणिः ॥
ओजः । देवानाम् । बलम् । उग्रम् । एतत् । तम् । ते ।
बध्नामि । जरसे । स्वस्तये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (तीक्ष्णः) तीक्ष्ण (राजा) राजा, (विषासहिः) सदा विजयी, (रक्षोहा) राक्षसों का नाश करने हारा, (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा और (देवानाम्) विद्वानों का (ओजः) पराक्रम और (एतत्) यह [दृश्यमान] (उग्रम्) उग्र (बलम्) बल है, (तम्) उस [परमात्मा] को (ते) तेरी (जरसे) स्तुति बढ़ाने [वा निर्बलता हटाने] के लिये और (स्वस्तये) मङ्गल के लिये (बध्नामि) मैं धारण करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वशक्तिमान् सर्वदर्शक जगदीश्वर को हृदय में धारण करके उपाय के साथ निर्बलता हटावें और सामर्थ्य बढ़ाकर स्तुति प्राप्त करते हुए आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दुर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाय वर्च सा धान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५॥

४—(तीक्ष्णः) तीव्रः (राजा) शासकः (विषासहिः) अ० १ । २९ । ६ । षह अभिभवे—यङ्—कि । अतिशयेन विजयी (रक्षोहा) राक्षसानां हन्ता (विश्वचर्षणिः) अ० ४ । ३२ । ४ । सर्वद्रष्टा (ओजः) पराक्रमः (देवानाम्) विदुषाम् (बलम्) सामर्थ्यम् (उग्रम्) प्रचण्डम् (एतत्) दृश्यमानम् (तम्) परमात्मानम् (ते) तव (बध्नामि) धारयामि (जरसे) जरां स्तुतिं प्राप्तुम् । जरां निर्बलतां परिहर्तुम् (स्वस्तये) मङ्गलाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्भेण । त्वम् । कृणवत् । वीर्याणि । दर्भम् । बिभ्रत् । आत्मना । मा । व्यथिष्ठाः ॥ अति-स्थाय । वर्चसा । अधि । अन्यान् । सूर्यः-इव । आ । भाहि । प्र-दिशः । चतस्रः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (वीर्याणि) वीरतायें (कृणवत्) करता रहे, और (दर्भम्) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तू (आत्मना) अपने आत्मा से (मा व्यथिष्ठाः) मत व्याकुल हो । (अध) और (वर्चसा) तेज के साथ (अन्यान्) दूसरों से (अतिष्ठाय) बढ़ जाकर, (सूर्यः इव) सूर्य के समान (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं में (आ) सर्वथा (भाहि) प्रकाशमान हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा को हृदय में धारण करके आत्मबल बढ़ाते हुए पराक्रमी होकर सब संसार में कीर्त्ति पावें ॥ ५ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३४ ॥

१—१० । जङ्गिडो देवता ॥ १, २, ८ निचृदनुष्टुप्; ३—७, ९, १० अनुष्टुप् ॥

सर्वरक्षणोपदेशः—सब की रक्षा का उपदेश ॥

५—(दर्भेण) शत्रुविदारकेण परमेश्वरेण (त्वम्) (कृणवत्) लेटि मध्यमपुरुषस्य प्रथमपुरुषः । त्वं कृणवः । कुर्याः (वीर्याणि) वीरकर्माणि (दर्भम्) शत्रुविदारकं परमात्मानम् (बिभ्रत्) धारयन् (आत्मना) स्वात्मबलेन (मा व्यथिष्ठाः) व्यथ ताडने । व्यथां मा कुरु (अतिष्ठाय) अतिक्रम्य । अभिभूय (वर्चसा) तेजसा (अन्यान्) शत्रून् (सूर्यः) (इव) यथा (आ) समन्तात् (भाहि) दीप्यस्व (प्रदिशः) अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । प्रकृष्टाः प्रागादिदिशाः (चतस्रः) चतुःसंख्याकाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥

जङ्गिडः। असि। जङ्गिडः। रक्षिता। असि। जङ्गिडः॥द्वि-पात्। चतुः-पात्। अस्माकम्। सर्वम्। रक्षतु। जङ्गिडः ॥१॥

भाषार्थ—[हे औषध !] तू (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला] (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (असि) है, तू (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला] (रक्षिता) रक्षक (असि) है। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अस्माकम्) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये और (चतुष्पात्) चौपाये की (रक्षतु) रक्षा करे ॥ १ ॥

भावार्थ—जङ्गिड उत्तम औषध विशेष शरीर में प्रविष्ट होकर रुधिर का संचार करके रोग को मिटाता है, मनुष्य उसके सेवन से स्वास्थ्य बढ़ावें ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० २। ४। १—६ ॥

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः श्रुतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥

याः। गृत्स्यः। त्रि-पञ्चाशीः। श्रुतम्। कृत्या-कृतः। च। ये॥ सर्वान्। विनक्तु। तेजसः। अरसान्। जङ्गिडः। करत् ॥२॥

भाषार्थ—(याः) जो (त्रिपञ्चाशीः) तीन वार पचास [डेढ़ सौ अर्थात् असंख्य] (गृत्स्यः) ललचाने वाली [पीड़ायें] (च) और (ये) जो

१—(जङ्गिडः) अ० २। ४। १। अजिरशिशिरशिथिल०। उ० १। ५३। गमेर्यङ्लुगन्तात्-किरच् स च डित्, रस्य डः। जङ्गमः। रुधिरसंचारक औषध-विशेषः (असि) (जङ्गिडः) (रक्षिता) रक्षकः (असि) (जङ्गिडः) (द्विपात्) पादद्वयोपेतं प्राणिजातम् (चतुष्पात्) पादचतुष्टयोपेतं गोमहिष्यादिकम् (अस्माकम्) (सर्वम्) (रक्षतु) पालयतु (जङ्गिडः) ॥

२—(याः) (गृत्स्यः) गृधिपण्योर्दकौ च। उ० ३। ६६। गृधु अभिकाङ्क्षायाम्—सप्रत्ययः, कित् यस्य दः, ङीप। गर्धनशीलाः पीडाः (त्रिपञ्चाशीः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शतम्) सौ [बहुत] (कृत्याकृतः) दुःख करने वाले [रोग] हैं । (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (सर्वान्) उन सब [रोगों] को (तेजसः) [उनके] प्रभाव से (विनक्तु) अलग करे और (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) कर देवे ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे जङ्गिड औषध अनेक रोगों को नाश करता है, वैसे ही विद्वान् जन आत्मिक और शारीरिक क्लेशों को हटावें ॥ २ ॥

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥

अरसम् । कृत्रिमम् । नादम् । अरसाः । सप्त । वि-स्रसः ॥ अप । इतः । जङ्गिड । अमतिम् । इषुम् । अस्ता-इव । शातय ॥३॥

भाषार्थ—(अरसम्) नीरस [निष्प्रभाव], (कृत्रिमम्) बनावटी (नादम्) ध्वनि को, और (अरसाः) नीरस [निष्प्रभाव] (सप्त) सात [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख में की] (विस्रसः) विचल करने वाली [निर्बलताओं] को और (अमतिम्) दुर्बुद्धि को (इतः) इस [रोगी] से, (जङ्गिड) हे जङ्गिड ! [संचार करने वाले औषध] (अस्ता इव) धनुर्धारी के समान (इषुम्) बाण को (अप शातय) दूर गिरा दे ॥ ३ ॥

पूरणार्थे डट् । टित्वाट् ङीप् । त्रिवारं पञ्चाशतसंख्याकाः । असंख्याः (कृत्याकृतः) कृती छेदने—क्यप्, टाप्+करोतेः-क्विप् । उपद्रवकर्तारो रोगाः (च) (ये) (सर्वान्) समस्तान् रोगान् (विनक्तु) विचिर् पृथग्भावे । पृथक् करोतु (तेजसः) प्रभावात् (अरसान्) नीरसान् । निष्प्रभावान् (जङ्गिडः) म० १ । जङ्गमः । संचारकः (करत्) कुर्यात् ॥

३—(अरसम्) निष्प्रभावम् (कृत्रिमम्) क्रियया निर्वृत्तम् (नादम्) ध्वनिम् (अरसाः) निष्प्रभावः (सप्त) सप्तसंख्याकाः । शीर्षण्यसप्तगोलकसम्बन्धिनीः (विस्रसः) स्रसेः क्विप् । विचालनशीला निर्बलताः (अप) दूरे (इतः) अस्मात् । रुग्णात् (जङ्गिड) म० १ । हे संचारकौषध (अमतिम्) दुर्बुद्धिम् (इषुम्) बाणम् (अस्ता) इषुक्षेप्ता (इव) यथा (शातय) शदॢ शातने—णिचि लोट् । नाशय । अपगमय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—रोग के कारण से जो शब्द में, इन्द्रियों में और बुद्धि में विकार हो जाता है, वह जङ्गिड ओषधि के सेवन से अच्छा होता है ॥ ३ ॥

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र णु आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

कृत्या-दूषणः । एव । अयम् । अथो इति । अराति-दूषणः ॥ अथो इति । सहस्वान् । जङ्गिडः । प्र । नुः । आयूंषि । तारिषत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(अयम्) यह [पदार्थ] (एव) निश्चय करके (कृत्यादूषणः) पीड़ाओं का नाश करने वाला (अथो) और भी (अरातिदूषणः) कंजूसी मिटाने वाला है। (अथो) और भी (सहस्वान्) वह महाबली (जङ्गिडः) जङ्गिड[संचार करने वाला औषध] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ावे ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य उत्तम औषध जङ्गिड के सेवन से रोगों का नाश करके आत्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ावें ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है-अ० २ । ४ । ६ ॥

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासहु संस्कन्धमोजु ओजसा ॥ ५ ॥

सः । जङ्गिडस्य । महिमा । परि । नुः । पातु । विश्वतः ॥ वि-स्कन्धम् । येन । सासहे । सम्-स्कन्धम् । ओजः । ओजसा५।

भाषार्थ—(जङ्गिडस्य) जङ्गिड [संचार करने वाले औषध] की

४—(कृत्यादूषणः) पीडानां खण्डयिता (एव) (अयम्) प्रसिद्धः (अथो) अपि च (अरातिदूषणः) अदानशीलताया नाशकः (अथो) (सहस्वान्) बलवान् (जङ्गिडः) म० १ । संचारक औषधविशेषः (नः) अस्माकम् (आयूंषि) जीवनानि (प्र तारिषत्) प्रवर्धयेत् ॥

५—(सः) पूर्वोक्तः (जङ्गिडस्य) संचारकमहौषधस्य (महिमा) मह-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः) वह (महिमा) महिमा (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालती रहे। (येन) जिस [महिमा] से (ओजः) पराक्रम रूप उस [जङ्गिड] ने (ओजसा) बलपूर्वक (विष्कन्धम्) विष्कन्ध [विशेष सुखाने वाले वात रोग] को और (संस्कन्धम्) संस्कन्ध [सब शरीर में व्यापने वाले महावात रोग] को (ससह) दबाया है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जङ्गिड औषध के उपयोग से सब प्रकार के वात रोग मिटते हैं ॥ ५ ॥

त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥

त्रिः । त्वा । देवाः । अजनयन् । नि-स्थितम् । भूम्याम् । अधि ॥ तम् । ऊं इति । त्वा । अङ्गिराः । इति । ब्राह्मणाः । पूर्व्याः । विदुः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[हे औषध !] (देवाः) विद्वानों ने (भूम्याम्) भूमि में (अधि) भले प्रकार (निष्ठितम्) जमे हुये (त्वा) तुझ को (त्रिः) तीनबार [जोतने, बोने और सींचने से] (अजनयन्) उत्पन्न किया है। (उ) और (पूर्व्याः) प्राचीन (ब्राह्मणाः) विद्वान् वैद्य लोग (तम् त्वा) उस तुझ को (विदुः) जानते हैं—(अङ्गिराः इति) कि यह अङ्गिरा [बड़ा व्यापन शील] है॥६॥

त्वम् (नः) अस्मान् (परिपातु) पालयतु (विश्वतः) सर्वतः (विष्कन्धम्) वि+स्कन्दिर् गतिशोषणयोः—घञ्, दस्य धः । विशेषेण शोषकं वातरोगम् (येन) महिम्ना (ससह) अभिबभूव (संस्कन्धम्) समस्तशरीरव्यापकं वातरोगम् (ओजः) पराक्रमरूपो जङ्गिडः (ओजसा) प्रभावेण ॥

६—(त्रिः) त्रिवारम् । कर्षणवपनसेचनेन (त्वा) त्वाम् (देवाः) विद्वांसः (अजनयन्) उत्पादयन् (निष्ठितम्) दृढं स्थितम् (भूम्याम्) पृथिव्याम् (अधि) अधिकारपूर्वकम् (तम्) तादृशम् (उ) च (त्वा) त्वाम् (अङ्गिराः) अ० २ । १२ । ४ । अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च । उ० ४ । २३६ । अगि गतौ—असि, इरुडागमः । व्यापनशीलः (इति) वाक्यपूरणः (ब्राह्मणाः) विद्वांसो वैद्याः (पूर्व्याः) पूर्वजाः (विदुः) जानन्ति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—बड़े बड़े वैद्य लोग जङ्गिड औषध के प्रभाव को सदा से जानते और उसकी प्राप्ति का उपाय करते रहे हैं ॥ ६ ॥

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥

न। त्वा। पूर्वाः। ओषधयः। न। त्वा। तरन्ति। याः। नवाः॥
वि-बाधः। उग्रः जङ्गिडः। परि-पानः। सु-मङ्गलः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(न) न तो (त्वा) तुझ से (पूर्वाः) पहिली और (न) न (त्वा) तुझ से (याः) जो (नवाः) नवीन (ओषधयः) ओषधें हैं, (तरन्ति) वे बढ़ कर हैं। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचारक औषध] (विबाधः) [रोगों का] विशेष रोकने वाला, (उग्रः) उग्र (परिपाणः) सर्वथा रक्षक और (सुमङ्गलः) बड़ा मङ्गलकारी है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जङ्गिड औषध सब औषधों में श्रेष्ठ और बड़ा स्वास्थ्यकारक है ॥ ७ ॥

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥

अथ। उप-दान। भग-वः। जङ्गिड। अमित-वीर्य ॥ पुरा। ते। उग्राः। ग्रसते। उप। इन्द्रः। वीर्यम्। ददौ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(अथ) और, (उपदान) हे ग्रहण करने योग्य ! (भगवः) हे ऐश्वर्यवान् ! (अमितवीर्य) हे अपरिमित सामर्थ्य वाले ! (जङ्गिड) हे

७—(न) निषेधे (त्वा) (पूर्वाः) आद्याः (न) (त्वा) (तरन्ति) अभिभवन्ति (याः) ओषधयः (नवाः) नूतनाः (विबाधः) विशेषेण बाधकः (उग्रः) प्रचण्डः (जङ्गिडः) म० १ । संचारक औषधविशेषः (परिपाणः) सर्वतो रक्षकः (सुमङ्गलः) बहुमङ्गलकरः ॥

८—(अथो) अपि च (उपदान) हे स्वीकरणीय (भगवः) हे ऐश्वर्यवन् (जङ्गिड) म० १ । हे संचारशील महौषध (अमितवीर्य) हे महाप्रभाव

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जङ्गिड ! [संचार करने वाले औषध] (उग्राः) तेजस्वी लोग (ते) तेरा (प्रसते) ग्रास करते हैं, [इस लिये] (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (पुरा) पहिले काल में [तुझे] (वीर्यम्) सामर्थ्य (उप ददौ) दिया है ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने यह विचार कर कि जङ्गिड औषध सर्वोपकारी होवे, उसको पहिले ही से बड़ा प्रभावशाली बनाया है ॥ ८ ॥

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्रो ओजमान्मा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥

उग्रः । इत् । ते । वनस्पते । इन्द्रः । ओजमानम् । आ । दधौ ॥ अमीवाः । सर्वाः । चातयन् । जहि । रक्षांसि । ओषधे ॥ ९ ॥

भावार्थ—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [सेवा करने वालों के रक्षक] (ते) तुझ को (उग्रः) उग्र (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (इत्) ही (ओजमानम्) बल (आ) सब ओर से (दधौ) दिया है। (ओषधे) हे ओषधि ! (सर्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (चातयन्) नाश करता हुआ तू (रक्षांसि) राक्षसों [रोग जन्तुओं] को (जहि) मार ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य जङ्गिड औषध के सेवन से सब रोगों को नाश करके रोग जन्तुओं का भी नाश करें ॥ ९ ॥

(पुरा) पूर्वकाले (ते) तव (उग्राः) तेजस्विनः पुरुषाः (प्रसते) अदादिः । ग्रासं कुर्वन्ति । सेवन्ते (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (वीर्यम्) प्रभावम् (उप ददौ) प्रदत्तवान् ॥

९—(उग्रः) प्रचण्डः (ते) तुभ्यम् (वनस्पते) हे वनानां सेवकानां रक्षक (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (ओजमानम्) उञ्ज आर्जवे—मनिन्, बलोपः, यद्वा ओज बले—मनिन् । सामर्थ्यम् (आ) समन्तात् (दधौ) ददौ (अमीवाः) पीडाः (सर्वाः) (चातयन्) नाशयन् (जहि) मारय (रक्षांसि) राक्षसान् । रोगजन्तून् (ओषधे) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

आ-शरीकम् । वि-शरीकम् । बलासम् । पृष्टि-आमयम् ॥
तक्मानम् । विश्व-शारदम् । अरसान् । जङ्गिडः । करत् । १०

भाषार्थ—(आशरीकम्) आशरीक [शरीर कुचल डालने वाले रोग] को (विशरीकम्) विशरीक [शरीर तोड़ डालने वाले रोग] को, (बलासम्) बलास [बल के गिराने वाले सन्निपात कफ आदि रोग] को, (पृष्ट्यामयम्) पसली [वा छाती] की पीड़ा को, (विश्वशारदम्) सब शरीर में चकत्ते करने वाले (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देने वाले ज्वर को [इन सब रोगों को] (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) करे ॥ १० ॥

भावार्थ—जङ्गिड औषध के सेवन से शरीर के अनेक रोग निष्प्रभाव हो जाते हैं ॥ १० ॥

सूक्तम् ३५ ॥

१—५ ॥ जङ्गिडो देवता ॥ १, ५ अनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ३ निचृत्पथ्या पङ्क्तिः; ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

सर्वरक्षोपदेशः—सब की रक्षा का उपदेश ॥

१०—(आशरीकम्) कषिदूषिभ्यामीकन् । उ० ४ । १६ । आङ्+शॄ हिंसायाम्—ईकन् । सम्यक् शरीरस्य मर्दनशीलम् (विशरीकम्) विशेषेण शरीरस्य खण्डयितारम् (बलासम्) अ० ४ । ६ । ८ । बल+असु क्षेपणे-अण् । बलस्य क्षेप्तारम् । सन्निपातश्लेष्मविकारम् (पृष्ट्यामयम्) अ० २ । ७ । ५ । पृषु सेचने क्तिच् । पृष्टेः पर्श्वस्थनो वक्षःस्थलस्य वा आमयं रोगम् (तक्मानम्) अ० १ । २५ । १ । तकि कृच्छ्रजीवने-मनिन् । कृच्छ्रजीवनकारिणं ज्वरम् (विस्वशारदम्) अ० ६ । ८ । ६ । शार दौर्बल्ये-अच्, यद्वा शॄ हिंसायाम्-घञ्+ददातेः-कप्रत्ययः । सर्वस्मिन् शरीरे कर्बुरवर्णं ददातीति तम् (अरसान्) निष्प्रभावान् (जङ्गिडः) म० १ । औषधविशेषः (करत्) कुर्यात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥

इन्द्रस्य । नाम । गृह्णन्तः । ऋषयः । जङ्गिडम् । ददुः ॥
देवाः । यम् । चक्रुः । भेषजम् । अग्रे । विस्कन्ध-दूषणम् ॥१

भाषार्थ—(इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] का (नाम) नाम (गृह्णन्तः) लेते हुये (ऋषयः) ऋषियों [तत्त्वदर्शियों] ने (जङ्गिडम्) जङ्गिड [संचार करने वाले औषध] को (ददुः) दिया है। (यम्) जिसको (देवाः) विद्वानों ने (अग्रे) पहिले से (विष्कन्धदूषणम्) विष्कन्ध [विशेष सुखाने वाले वात रोग] का मिटाने वाला (भेषजम्) औषध (चक्रुः) किया है ॥ १ ॥

भावार्थ—तत्त्वदर्शी वैद्यों ने परमेश्वर की सृष्टि में खोज लगाते लगाते जङ्गिड औषध को बड़ा अद्भुत माना है ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो गत सूक्त से तथा-अथर्व का० २ । ४ से ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

सः । नः । रक्षतु । जङ्गिडः । धन-पालः । धना-इव ॥
देवाः । यम् । चक्रुः । ब्राह्मणाः । परि-पानम् । अराति-हम् २

भाषार्थ—(सः) वह (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (नः) हमारी (रक्षतु) रक्षा करे, (एव) जैसे (धनपालः) धन-

---

१—(इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः परमेश्वरस्य (नाम) (गृह्णन्तः) उच्चारयन्तः (ऋषयः) तत्त्वदर्शिनः (जङ्गिडम्) सू० ३४। १ । संचारशीलं महौषधविशेषम् (ददुः) दत्तवन्तः (देवाः) विद्वांसः (यम्) जङ्गिडम् (चक्रुः) कृतवन्तः (भेषजम्) औषधम् (अग्रे) आदौ (विष्कन्धदूषणम्) सू० ३४। ५ । विशेषेण शोषकस्य वातरोगस्य खण्डयितारम् ॥

२—(सः) तादृशः (नः) अस्मान् (रक्षतु) पालयतु (जङ्गिडः) औषधविशेषः (धनपालः) धनरक्षकः । कोशाध्यक्षः (धना) धनानि (इव) यथा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षक (धना) धनों की । (यम्) जिस [औषध] को (देवाः) कामनायोग्य (ब्राह्मणाः) वेदज्ञानियों ने (अरातिहम्) शत्रुनाशक (परिपाणम्) महारक्षक (चक्रुः) किया है ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के परीक्षित औषध जङ्गिड का सेवन करके रोगों से अपनी रक्षा करें, जैसे कोशाध्यक्ष हानि से कोश की रक्षा करता है॥२॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् । तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥

दुः-हार्दः । सम्-घोरम् । चक्षुः । पापु-कृत्वानम् । आ । अगमम् ॥ तान् । त्वम् । सहस्रचक्षो इति सहस्र-चक्षो । प्रति-बोधेन । नाशय । परि-पाणः । असि । जङ्गिडः ॥३॥

भाषार्थ—(दुर्हार्दः) कठोर हृदय वालों को, (संघोरम्) बड़े भयानक (चक्षुः) नेत्र को, और (पापकृत्वानम्) पाप करने वाले पुरुष को (आ अगमम्) मैं ने पाया है । (सहस्रचक्षो) हे सहस्र प्रकार से देखे गये ! (त्वम्) तू (तान्) उन को (प्रतिबोधेन) सावधानी से (नाशय) नाश कर, तू (परिपाणः) महारक्षक (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (असि) है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जङ्गिड का सेवन करते हैं, वे महाबली होकर शत्रुओं का नाश करते हैं ॥ ३ ॥

(देवाः) कमनीयाः (यम्) जङ्गिडम् (चक्रुः) कृतवन्तः (ब्राह्मणाः) वेदज्ञानिनः (परिपाणम्) सर्वतो रक्षकम् (अरातिहम्) शत्रुहन्तारम् ॥

३—(दुर्हार्दः) दुष्टहृदयान् (संघोरम्) अतिभयानकम् (चक्षुः) दर्शनम् (पापकृत्वानम्) शीङ्कुशिरुहि० । उ० ४ । ११४ । पाप+करोतेः—क्वनिप् । पापकर्तारम् (आगमम्) अहं प्राप्तवानस्मि (तान्) (त्वम्) (सहस्रचक्षो) भृमृशीङ्० । उ० १ । ७ । चक्षिङ् दर्शने—उप्रत्ययः । सहस्रप्रकारेण दर्शनं यस्मिन् तत् सम्बुद्धौ (प्रतिबोधेन) सावधानत्वेन । चैतन्येन (नाशय) (परिपाणः) सर्वतो रक्षकः (असि) (जङ्गिडः) संचारशील औषधविशेषः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः। परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पातवस्मान् ॥ ४ ॥

परि। मा। दिवः। परि। मा। पृथिव्याः। परि। अन्त-रिक्षात्। परि। मा। वीरुत्-भ्यः॥ परि। मा। भूतात्। परि। मा। उत। भव्यात्। दिशः-दिशः। जङ्गिडः। पातु। अस्मान् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(मा) मुझे (दिवः) सूर्य से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (पृथिव्याः) पृथिवी से (परि) सर्वथा, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (वीरुद्भ्यः) ओषधियों से (परि) सर्वथा। (मा) मुझे (भूतात्) वर्तमान से (परि) सर्वथा, (उत) और (मा) मुझे (भव्यात्) भविष्यत् से (परि) सर्वथा और (दिशोदिशः) प्रत्येक दिशा से (अस्मान्) हम सब को (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (पातु) पाले ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सब स्थानों और सब कालों के अनुकूल जङ्गिड औषध के सेवन से अपनी और अपने हितकारियों की रक्षा करे ॥ ४ ॥

य ऋष्यावो देवकृता य उतो वनुतेऽन्यः।
सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

४–(परि) सर्वतः (मा) माम् (दिवः) सूर्यात् (परि) (मा) (पृथिव्याः) भूमिलोकात् (परि) (अन्तरिक्षात्) मध्यलोकात् (परि) (मा) (वीरुद्भ्यः) विरोहणशीलाभ्य ओषधिभ्यः (परि) (मा) (भूतात्) भवन्ति भूतानि यस्मिंस्तस्मात्। वर्तमानात् (परि) (मा) (उत) अपि च (भव्यात्) भविष्यतः (दिशोदिशः) सर्वदिक्सकाशात् (जङ्गिडः) (पातु) रक्षतु (अस्मान्) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये । ऋष्णवः । देव-कृताः । यः । उतो इति । वबृते । अन्यः॥
सर्वान् । तान् । विश्व-भेषजः । अरसान् । जङ्गिडः । करत् ५

भाषार्थ-(ये) जो (देवकृताः) उन्मत्तों के किये हुये (ऋष्णवः) हिंसक व्यवहार हैं, (उतो) और भी (यः) जो (अन्यः) दूसरा [खोटा व्यवहार] (ववृते) वर्तमान हुआ है । (तान् सर्वान्) उन सब को (विश्व-भेषजः) सर्वौषध (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो कोई रोग उन्मत्तों के कुकर्म अथवा अपने कुपथ्य से उत्पन्न होवे, मनुष्य जङ्गिड के सेवन से रोग निवृत्ति करके सुखी रहें ॥ ५ ॥

सूक्तम् ३६ ॥

१—६ । शतवारो देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३—६ निचृदनुष्टुप् ॥
रोगनाशोपदेशः—रोगों के नाश का उपदेश ॥

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥

शत-वारः । अनीनशत् । यक्ष्मान् । रक्षांसि । तेजसा ॥
आ-रोहन् । वर्चसा । सह । मणिः । दुर्नाम-चातनः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(दुर्णामचातनः) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि रोगों] को नाश करने वाले (मणिः) प्रशंसनीय (शतवारः) शतवार [सैकड़ों

५—(ये) (ऋष्णवः) ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः । पा० ३ । २ । १३६ । ऋ हिंसायाम्—ग्स्नु । हिंसकव्यवहाराः (देवकृताः) दिवु क्रीडाविजिगीषामदादिषु-पचाद्यच् । देवैः उन्मत्तैः कृताः सम्पादिताः (यः) (उतो) अपि च (ववृते) वृतु वर्तने—लिट् । वर्तमानो बभूव (अन्यः) इतरो दुष्टव्यवहारः (सर्वान्) (तान्) (विश्वभेषजः) सर्वौषधः (अरसान्) निष्प्रभावान् (जङ्गिडः) (करत्) कुर्यात् ॥

१—(शतवारः) शत+वृञ् वरणे—घञ् । बहुभिर्वरणीयः स्वीकरणीयः । विश्ववारः—अ० ५ । २७ । ३ । औषधविशेषः (अनीनशत्) नाशितवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से स्वीकार करने योग्य औषध विशेष] ने (वर्चसा सह) प्रकाश के साथ (आरोहन्) ऊंचे होते हुये (तेजसा) अपनी तीक्ष्णता से (यक्ष्मान्) राजरोगों [क्षयी आदि] और (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

भावार्थ—शतवार औषध के सेवन से क्षयी, बवासीर आदि रोग नष्ट होते हैं, और वे रोगजन्तु भी नष्ट होते हैं जो शरीर में दाद बवासीर आदि के कारण हैं ॥ १ ॥

शतवार और शतावरी एक ही औषध जान पड़ते हैं जिसके नाम शतमूली आदि हैं ॥

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं प्राप्मा अति तत्रति ॥ २ ॥

शृङ्गाभ्याम् । रक्षः । नुदते । मूलेन । यातु-धान्यः ॥ मध्येन । यक्ष्मम् । बाधते । न । एनम् । प्राप्मा । अति । तत्रति ॥२॥

भाषार्थ—वह [शतवार] (शृङ्गाभ्याम्) अपने दोनों सींगों [अगले भागों] से (रक्षः) राक्षस और (मूलेन) जड़ से (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नुदते) ढकेलता है। (मध्येन) मध्य भाग से (यक्ष्मम्) राजरोग को (बाधते) हटाता है, (एनम्) इसको (प्राप्मा) [कोई] अनहित (न) नहीं (अति तत्रति) दबा सकता है ॥ २ ॥

(यक्ष्मान्) अ० २ । १० । ५ राजरोगान् । क्षयरोगान् (तेजसा) प्रभावेण (आरोहन्) अधितिष्ठन् (वर्चसा) प्रकाशेन (सः) (मणिः) प्रशस्तः (दुर्णामचातनः) अ० ८ । ६ । ३ । दुर्णाम्नामदर्शआदिरोगाणां नाशकः ॥

२—(शृङ्गाभ्याम्) शृङ्गवदग्रभागाभ्याम् (रक्षः) राक्षसम् । रोगजन्तुम् (नुदते) प्रेरयति (मूलेन) अधःप्रदेशेन (यातुधान्यः) यातुधानीः । दुःखप्रदाः पीडाः (मध्येन) मध्यभागेन (यक्ष्मम्) राजरोगम् (बाधते) विलोडयति (न) निषेधे (एनम्) शतवारम् (प्राप्मा) दुष्टव्यवहारः (अति) अतीत्य (तत्रति) तॄ प्लवनतरणयोः—श्लुः शश्चेति विकरणद्वयम् । तरति । अभिभवति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—इस सर्वौषध का प्रत्येक अङ्ग प्रत्येक रोग को हरता है ॥२॥

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शुब्दिनः ।
सर्वाँ दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥

ये । यक्ष्मासः । अर्भकाः । महान्तः । ये । च । शुब्दिनः ॥
सर्वान् । दुर्नाम-हा । मणिः । शत-वारः । अनीनशत् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (यक्ष्मासः) राजरोग (अर्भकाः) छोटे और [जो] (महान्तः) बड़े हैं, (च) और (ये) जो (शब्दिनः) महाशब्दकारी हैं। (सर्वान्) उन सब को (दुर्णामहा) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर दाद आदि] के मिटाने हारे, (मणिः) प्रशंसनीय (शतवारः) शतवार [मन्त्र १] ने (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—छोटे बड़े राजरोग आदि और वे रोग जिनसे शरीर में खुजली वा चरचराहट शब्द होता है, शतवार औषध से सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षाँसि धूनुते ॥ ४ ॥

शतम् । वीरान् । अजनयत् । शतम् । यक्ष्मान् । अप । अव-
पत् ॥ दुः-नाम्नः । सर्वान् । हत्वा । अव । रक्षाँसि । धूनुते ४

भाषार्थ—उस [शतवार] ने (शतम्) सौ [अनेक] (वीरान्) वीर (अजनयत्) उत्पन्न किये हैं, (शतम्) सौ [अनेक] (यक्ष्मान्) राजरोग

३—(ये) (यक्ष्मासः) यक्ष्माः । राजरोगाः (अर्भकाः) क्षुद्राः (महान्तः) वृद्धिं गताः (ये) (च) (शब्दिनः) महाशब्दकारकाः (सर्वान्) (दुर्णामहा) दुर्णाम्नामर्शआदिरोगाणां हन्ता (मणिः) प्रशस्तः (शतवारः) म० १। औषधविशेषः (अनीनशत्) नाशितवान् ॥

४—(शतम्) अनेकान् (वीरान्) शूरान् (अजनयत्) उदपादयत् (शतम्) बहून् (यक्ष्मान्) राजरोगान् (अपावपत्) सर्वथा विक्षिप्तवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप अवपत्) इतर वितर किये हैं। वह (सर्वान्) सब (दुर्णाम्नः) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि] को (हत्वा) मारकर (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अव धूनुते) हिला डालता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—शतवार महौषध के सेवन से वीर्य पुष्ट होकर सब वीर सन्तान उत्पन्न होते हैं, और सब दुष्ट रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वास्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
हिरण्य-शृङ्गः । ऋषभः । शात-वारः । अयम् । मणिः ॥
दुः-नाम्नः । सर्वान् । तृड्ढ्वा । अव । रक्षांसि । अक्रमीत् ॥५॥

भाषार्थ—हिरण्यशृङ्गः) सोने के समान सींग [अगले भाग] वाला, (ऋषभः) ऋषभ [औषध विशेष के समान] (अयम्) इस (मणिः) प्रशंसनीय (शातवारः) शतवार ने (सर्वान्) सब (दुर्णाम्नः) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि] को (तृड्ढ्वा) मार कर (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अव अक्रमीत्) खूंद डाला है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे ऋषभ औषध बहुत बलकारी और अनेक रोगनाशक है, वैसे ही यह शतवार औषध है ॥ ५ ॥

शुतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शुतम् ।
शुतं शंश्वन्वतीनां शुतवारेण वारये ॥ ६ ॥
शुतम् । अहम् । दुः-नाम्नीनाम् । गन्धर्व-अप्सरसाम् । शुतम् ॥

(दुर्णाम्नः) अर्शआदिरोगान् (सर्वान्) (हत्वा) नाशयित्वा (रक्षांसि) रोगजन्तून् (अव धूनुते) सर्वथा कम्पयति ॥

५—(हिरण्यशृङ्गः) सुवर्णसमानशृङ्गमग्रभागो यस्य सः (ऋषभः) ऋषभौषधितुल्यः (पुष्टिकरः) (शातवारः) स्वार्थे—अण् । शतवारः—म० १ । (अयम्) (मणिः) प्रशस्तः (दुर्णाम्नः) अर्शआदिरोगान् (सर्वान्) (तृड्ढ्वा) तृह हिंसायाम्-क्त्वा । हिंसित्वा (रक्षांसि) राक्षसान् । रोगजन्तून् (अवाक्रमीत्) पादेन यथा विक्षिप्तवान् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतम् । शश्वत्-वतीनाम् । शत-वारेण । वारये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं (दुर्णाम्नीनां शतम्) सौ दुर्नाम्नी [बवासीर आदि पीड़ाओं] को और (गन्धर्वाप्सरसां शतम्) सौ गन्धर्वों [पृथिवी पर धरे हुये] और अप्सराओं [आकाश में चलने वाले रोगों] को और (शश्वन्वतीनां शतम्) सौ उछलती हुयी [पीड़ाओं] को (शतवारेण) शतवार [औषध] से (वारये) हटाता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो रोग शरीर की मलीनता से पृथिवी और आकाश में जल वायु की मलीनता से और जो रोग एक दूसरे के लगाव से उत्पन्न होते हैं, वैद्य लोग उनको शतवार औषध से नाश करें ॥ ६ ॥

सूक्तम् ३७ ॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; २ विराडार्षी पङ्क्तिः; ३ विराडार्षी बृहती; ४ स्वराडार्ष्युष्णिक् ॥

बलप्राप्त्युपदेशः—बल की प्राप्ति का उपदेश ॥

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भगो यशः सह ओजो वयो बलम् । त्वयि त्विषिर्यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्रदंदातु मे १

इदम् । वर्चः । अग्निना । दत्तम् । आ । अगन् । भगः ।

६—(शतम्) अनेकान् (अहम्) वैद्यः (दुर्णाम्नीनाम्) अनउपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् । पा० ४ । १ । २८ । इति ङीप् । अर्शआदिरोगपीडानाम् (गन्धर्वाप्सरसाम्) अ० ८ । ८ । १५ । कृगृशृदृभ्यो वः । उ० १ । १५५ । गो + धृञ् धारणे-वप्रत्ययः, गो शब्दस्य गमादेशः + सरतेरप् पूर्वादसिः । उ० ४ । २३७ । अप + सृ गतौ—असि । गवि पृथिव्यां भ्रियन्ते ते गन्धर्वाः । अप्सु आकाशे सरन्ति गच्छन्तीति अप्सरसः । तादृशानां रोगाणाम् (शतम्) बहून् (शतम्) (शश्वन्वतीनाम्) स्नामदिपद्यर्ति० । उ० । ४ । ११३ । शश प्लुतगतौ—वनिप् । शश्वन्-मतुप् । मादुपधायाश्च० । पा० ८ । २ । ९ । इति वत्वम् । अनोनुट् । पा० ८ । २ । १६ । इति नुट्, ङीप् । प्लुतगतियुक्तानां पीडानाम् (शतवारेण) म० १ । औषधविशेषेण (वारये) निवारयामि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशः । सहः । ओजः । वयः । बलम् ॥ त्रयः-त्रिंशत् । यानि । च । वीर्याणि । तानि । अग्निः । प्र । ददातु । मे ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अग्निना) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमेश्वर] करके (दत्तम्) दिया गया (इदम्) यह (वर्चः) प्रताप, (भर्गः) प्रकाश, (यशः) यश, (सहः) उत्साह, (ओजः) पराक्रम, (वयः) पौरुष और (बलम्) बल (आ अगन्) आया है। (च) और (यानि) जो (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (वीर्याणि) वीर कर्म हैं, (तानि) उनको (अग्निः) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमात्मा] (मे) मुझे (प्र ददातु) देता रहे ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर के दिये साधनों से अनेक प्रकार का बल प्राप्त करें और तेतीस जो आठ वसु आदि देवता हैं [देखो अथर्व० १९ । २७ । १०], उनसे भी सदा उपकार लेते रहें ॥ १ ॥

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥

वर्चः । आ । धेहि । मे । तन्वाम् । सहः । ओजः । वयः । बलम् ॥ इन्द्रियाय । त्वा । कर्मणे । वीर्याय । प्रति । गृह्णामि । शत-शारदाय ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (मे) मेरे (तन्वाम्) शरीर में (वर्चः) प्रताप, (सहः) उत्साह, (ओजः) पराक्रम, (वयः) पौरुष और (बलम्)

१—(इदम्) दृश्यमानम् (वर्चः) प्रतापः (अग्निना) प्रकाशस्वरूपेण परमात्मना (दत्तम्) समर्पितम् (आ अगन्) आगमत् (भर्गः) प्रकाशः (यशः) कीर्तिः (सहः) उत्साहः (ओजः) पराक्रमः (वयः) पौरुषम् (बलम्) सामर्थ्यम् (त्रयस्त्रिंशत्) त्रयस्त्रिंशद्वस्वादिदेवतासम्बन्धीनि (यानि) (च) (वीर्याणि) वीरकर्माणि (तानि) (अग्निः) प्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः (प्र ददातु) प्रयच्छतु (मे) मह्यम् ॥

२—(वर्चः) प्रतापम् (आ) समन्तात् (धेहि) देहि (मे) मम (तन्वाम्) शरीरे (सहः) उत्साहम् (ओजः) पराक्रमम् (वयः) पौरुषम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल (आ धेहि) धारण कर दे ! (इन्द्रियाय) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] के योग्य (कर्मणे) कर्म के लिये, (वीर्याय) वीरता के लिये और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (त्वा) तुझ को (प्रति गृह्णामि) मैं अङ्गीकार करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्या की प्राप्ति से परमेश्वरीय नियमों पर चलकर अपना यश बढ़ावें ॥ २ ॥

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय परूंहार्षि शतशारदाय ॥ ३ ॥

ऊर्जे । त्वा । बलाय । त्वा । ओजसे । सहसे । त्वा ॥ अभि-भूयाय । त्वा । राष्ट्र-भृत्याय । परि । ऊहामि । शत-शारदाय ३

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (त्वा) तुझे (ऊर्जे) अन्न के लिये, (बलाय) बल के लिये, (त्वा) तुझे (ओजसे) पराक्रम के लिये, (त्वा) तुझे (सहसे) उत्साह के लिये, (त्वा) तुझे (अभिभूयाय) विजय के लिये, और (राष्ट्रभृत्याय) राज्य के पोषण के लिये और (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले [जीवन] के लिये (परि) अच्छे प्रकार [ऊहामि] तर्क से निश्चय करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा में श्रद्धा करते हैं, वे सब प्रकार का बल प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥ ३ ॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो मासेभ्यः संवत्सरेभ्यः ।

(बलम्) सामर्थ्यम् (इन्द्रियाय) इन्द्रस्य परमैश्वर्यवतः पुरुषस्य योग्याय (त्वा) त्वाम् (कर्मणे) (वीर्याय) वीरत्वाय (प्रतिगृह्णामि) स्वीकरोमि (शतशारदाय) शतशरदृतुयुक्ताय जीवनाय ॥

३—(ऊर्जे) अन्नलाभाय (त्वा) त्वाम् (बलाय) सामर्थ्याय (त्वा) (ओजसे) पराक्रमाय (सहसे) उत्साहाय (त्वा) (अभिभूयाय) अभि+भू सत्तायां प्राप्तौ च—क्यप् । अभिभवनाय विजयाय (त्वा) (राष्ट्रभृत्याय) डु भृञ् धारणपोषणयोः—क्यप्, तुक् । राज्यपोषणाय (परि) सर्वतः (ऊहामि) तर्केण निश्चिनोमि (शतशारदाय) शतवर्षयुक्ताय जीवनाय ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥

ऋतु-भ्यः । त्वा । आर्तवेभ्यः । मात्-भ्यः । सम्-वत्सरेभ्यः ॥ धात्रे । वि-धात्रे । सम्-ऋधे । भूतस्य । पतये । यजे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (ऋतुभ्यः) ऋतुओं के लिये, (आर्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिये, (मादभ्यः) महीनों के लिये, (संवत्सरेभ्यः) वर्षों के लिये, (धात्रे) पोषक पुरुष के लिये, (विधात्रे) बुद्धिमान् जन के लिये, (समृधे) बढ़ती करने वाले के लिये और (भूतस्य) प्राणी मात्र के (पतये) रक्षक पुरुष के लिये (त्वा) तुझे (यजे) मैं पूजता हूं ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि अपने समस्त समय और समस्त पदार्थों को संसार के हित में लगाकर परमात्मा की उपासना करते रहें ॥ ४ ॥

सूक्तम् ३८ ॥

१—३ ॥ गुग्गुलुर्देवता ॥ १ अनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुग्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥

न । तम् । यक्ष्माः । अरुन्धते । न । एनम् । शपथः । अश्नुते ॥ यम् । भेषजस्य । गुग्गुलोः । सुरभिः । गन्धः । अश्नुते ॥ १ ॥

भाषार्थ—(न) न तो (तम्) उस [पुरुष] को (यक्ष्माः) राजरोग

४—(ऋतुभ्यः) ऋतूनां हिताय (त्वा) (आर्तवेभ्यः) ऋतुषु भवेभ्यः पदार्थेभ्यः (मादभ्यः) मासेभ्यः (संवत्सरेभ्यः) वर्षेभ्यः (धात्रे) पोषकाय (विधात्रे) मेधाविने—निघ० ३ । १५ (समृधे) समर्धयित्रे । वर्धयित्रे (भूतस्य) प्राणिमात्रस्य (पतये) पालकाय (यजे) पूजयामि ॥

१—(न) निषेधे (तम्) पुरुषम् (यक्ष्माः) राजरोगाः (अरुन्धते)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अरुन्धते = आरुन्धते) रोकते हैं, और (न) (एनम्) उसको (शपथः) शाप [क्रोध वचन] (अश्नुते) व्यापता है, । (यम्) जिस [पुरुष] को (गुल्गुलोः) गुल्गुलु [गुग्गुल] (भेषजस्य) औषध का (सुरभिः) सुगन्धित (गन्धः) गन्ध (अश्नुते) व्यापता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस घर में गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्यों का गन्ध किया जाता है, वहां रोग नहीं होता ॥ २ ॥

(गुल्गुलु) शब्द पहिले आ चुका है—अ० २ । ३६ । ७ ॥

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥

विष्वञ्चः । तस्मात् । यक्ष्माः । मृगाः । अश्वाः-इव । ईरते ॥ यत् । गुल्गुलु । सैन्धवम् । यत् । वा । अपि । अस्ति । समुद्रियम् ॥ २ ॥

उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥

उभयोः । अग्रभम् । नाम । अस्मै । अरिष्ट-तातये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(तस्मात्) उस [पुरुष] से (विष्वञ्चः) सब ओर फैले हुये (यक्ष्माः) राजरोग, (मृगाः) हरिण [वा] (अश्वा इव) घोड़ों के समान (ईरते) दौड़ जाते हैं । (यत्) जहां पर तू (सैन्धवम्) नदी से उत्पन्न,

छान्दसो ह्रस्वः । आरुन्धते । लमन्ताद् रोधं कुर्वन्ति (न) (एनम्) (शपथः) शापः । क्रोधवचनम् (अश्नुते) व्याप्नोति (यम्) पुरुषम् (भेषजस्य) औषधस्य (गुल्गुलोः) अ० २ । ३६ । ७ । गुड रक्षणे—क्विप्+गुड रक्षणे—कु, डस्य लत्वम् । गुड्यते रक्ष्यतेऽस्मादिति गुड्रोगः, तस्माद् गुडति रक्षतीति गुल्गुलुः। गुल्गुलुरेव गुग्गुलुः । सुगन्धौषधविशेषस्तस्यौषधस्य (सुरभिः) सुगन्धितः (गन्धः) घ्राणग्राह्यो गुणः (अश्नुते) व्याप्नोति ॥

२—(विष्वञ्चः) विष्वगञ्चनाः । नाना देशव्याप्ताः (तस्मात्) पुरुषात् (यक्ष्माः) राजरोगाः (मृगाः) जन्तुविशेषाः (अश्वाः) तुरङ्गाः (इव) यथा (ईरते) धावन्ति (यत्) यत्र (गुल्गुलु) म० १ । गुग्गुलु (सैन्धवम्) नदी-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वा) अथवा (यत्) जहां पर (समुद्रियम्) समुद्र से उत्पन्न हुआ (अपि) ही (गुल्गुलु) गुल्गुलु [गुग्गुल] (असि) होता है ॥ २ ॥ (उभयोः) दोनों के (नाम) नाम को (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अरिष्टतातये) कुशल करने को (अग्रभम्) मैं ने लिया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—गुग्गुल नदी वा समुद्र के पास के वृक्ष विशेष का निर्यास अर्थात् गोंद होता है, उसको अग्नि पर जलाने से सुगन्ध उठता है जिससे अनेक रोग नष्ट होते है ॥ २, ३ ॥

सूक्तम् ३८ ॥

१—१० ॥ कुष्ठो देवता ॥ १, ६, १० अनुष्टुप्; २, ३ पथ्या पङ्क्तिः; ४ षट्-पदा जगती; ५ शक्वरी; ६-८ अष्टिः ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोगनाश करने का उपदेश ॥

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशयु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥

आ । एतु । देवः । त्रायमाणः । कुष्ठः । हिम-वतः । परि ॥
तक्मानम् । सर्वम् । नाशय । सर्वाः । च । यातु-धान्यः ॥१॥

भाषार्थ—(देवः) दिव्य गुण वाला, (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (कुष्ठः) कुष्ठ [रोग बाहर करने वाला औषध विशेष] (हिमवतः परि) हिम वाले देश से (आ एतु) आवे । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के

प्रदेशजम् (यत्) यत्र (वा) अथवा (अपि) एव (असि) अस्ति (समुद्रियम्) समुद्रभवम् ॥

३—(उभयोः) द्वयोः (अग्रभम्) अग्रहीषम् (नाम) संज्ञाम् (अस्मै) पुरुषाय (अरिष्टतातये) अ० ३ । ५ । ५ । शिवशमरिष्टस्य करे । पा० ४ । ४ । १४३ । इति अरिष्ट-तातिल् करोत्यर्थे । क्षेमकरणाय ॥

१—(ऐतु) आगच्छतु (देवः) दिव्यगुणः (त्रायमाणः) पालयमानः (कुष्ठः) अ० ५ । ४ । १ । हनिकुषिनी० । उ० २ । २ । कुष निष्कर्षे—क्थन् । रोगाणां निष्कर्षको बहिष्कर्ता । औषधविशेषः (हिमवतः) हिमदेशात् (परि)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट देने वाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश कर दे ॥ १ ॥

भावार्थ—कुष्ठ वा कूट औषध ठंढे देशों में होता है, उसको प्राप्त करके ज्वर आदि रोगों का नाश करें ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो—अथर्व० ४ । ५ तथा ६ । ९५ ॥

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यरिषः । नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥

त्रीणि । ते । कुष्ठ । नामानि । नद्य-मारः । नद्य-रिषः ॥ नद्य । अयम् । पुरुषः । रिषत् ॥ यस्मै । परि-ब्रवीमि । त्वा । सायम्-प्रातः । अथो इति । दिवा ॥ २ ॥

भाषार्थ—(कुष्ठ) हे कुष्ठ ! [मन्त्र १] (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (नामानि) नाम हैं—(नद्यमारः) नद्यमार [नदी में उत्पन्न रोगों का मारने वाला], और (नद्यरिषः) नद्यरिष [नदी में उत्पन्न रोगों का हानि करने वाला] । (नद्य) हे नद्य ! [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह (पुरुषः) पुरुष [रोगों को] (रिषत्) मिटावे । (यस्मै) जिस को (त्वा) तुझे (सायं-प्रातः) सायंकाल और प्रातः काल (अथो) और भी (दिवा) दिन में (परि-ब्रवीमि) मैं बतलाऊं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस औषध के तीन नाम हैं—कुष्ठ, नद्यमार और नद्यरिष । मनुष्य उसके सेवन से सब रोगों का नाश करें ॥ २ ॥

सर्वतः (तक्मानम्) जीवनस्य क्लेशकारिणं ज्वरम् (सर्वम्) (नाशय) दूरी-कुरु (सर्वाः) (च) (यातुधान्यः) दुःखदायिनीः पीडाः ॥

२—(त्रीणि) (ते) तव (कुष्ठ) म० १ । हे औषधविशेष (नामानि) (नद्यमारः) नदी-यत् । नद्यां भवानां रोगाणां मारकः (नद्यरिषः) नद्यां भवानां रोगाणां हन्ता (नद्य) हे नद्यां भव (अयम्) सः (पुरुषः) (रिषत्) रोगान् नाशयेत् (यस्मै) रोगिणे (परिब्रवीमि) औषधप्रयोगेण कथयामि (त्वा) कुष्ठम् (सायंप्रातः) सायं प्रातश्च (अथो) अपि च (दिवा) दिवसकाले ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता । नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥३

जीवला । नाम । ते । माता । जीवन्तः । नाम । ते । पिता॥ नद्य । अयम् । पुरुषः । रिषत् ॥ यस्मै । परि-ब्रवीमि । त्वा । सायम्-प्रातः । अथो इति । दिवा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे कुष्ठ !] (जीवला) जीवला [जीवन देने वाली] (नाम) नाम (ते) तेरी (माता) माता [बनाने वाली-पृथिवी] है, (जीवन्तः) जीवन्त [जिलाने वाला] (नाम) नाम (ते) तेरा (पिता) पिता [पालने वाला सूर्य वा मेघ] है। (नद्य) हे नद्य ! [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह……[मन्त्र २] ॥ ३ ॥

भावार्थ—कुष्ठ औषध पृथिवी और सूर्य वा मेघ के सम्बन्ध से उत्पन्न होकर अनेक कठिन रोगों का नाश करता है ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो-अ० १ । २४ । ३ । तथा ८ । २ । ६ ॥

उत्तमो ऽस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव । नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥

उत्-तमः । असि । ओषधीनाम् । अनड्वान् । जगताम्-इव ॥ व्याघ्रः । श्वपदाम्-इव । नद्य । अयम् । पुरुषः । रिषत् ॥ यस्मै । परि-ब्रवीमि । त्वा । सायम्-प्रातः । अथो इति । दिवा ॥ ४ ॥

३—(जीवला) अ० ८ । २ । ६ । जीव + ला दाने—क, टाप् । जीवनप्रदा (नाम) (ते) तव (माता) निर्मात्री पृथिवी (जीवन्तः) तॄभूवहिवसि० । उ० ३ । १२८ । जीव प्राणधारणे—झच् । जीवयिता (नाम) (ते) तव (पिता) पालकः सूर्यो मेघो वा । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे कुष्ठ !] तू (ओषधीनाम्) ओषधियों में (उत्तमः) उत्तम (असि) है, (इव) जैसे (जगताम्) गतिशीलों [गौ आदि पशुओं] में (अनड्वान्) रथ ले चलने वाला बैल और (इव) जैसे (श्वपदाम्) कुत्ते के समान पैर वाले हिंसक जन्तुओं में (व्याघ्रः) बाघ [है]। (नद्य) हे नद्य [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह.....[म० २] ॥ ४ ॥

भावार्थ—स्पष्ट है ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का प्रथम भाग आ चुका है—अ० ८ । ५ । ११ ॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः । स कुष्ठो विश्वभेषजः । सुाकं सोमेन । तिष्ठति । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

त्रिः । शाम्बु-भ्यः । अङ्गिरेभ्यः । त्रिः । आदित्येभ्यः । परि । त्रिः । जातः । विश्व-देवेभ्यः ॥ सः । कुष्ठः । विश्व-भेषजः ॥ सुाकम् । सोमेन । तिष्ठति ॥ तक्मानम् । सर्वम् । नाशय । सर्वाः । च । यातु-धान्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(शाम्बुभ्यः) उपाय करने वाले (अङ्गिरेभ्यः) ज्ञानियों के लिये (त्रिः) तीन बार [बालकपन, यौवन और बुढ़ापे में], (आदित्येभ्यः) अखण्ड ब्रह्मचारियों के लिये (त्रिः) तीनबार [बालकपन आदि में] और (विश्वदेवेभ्यः) सब विद्वानों के लिये (त्रिः) तीन बार [बालकपन आदि में]

४—(उत्तमः) श्रेष्ठः (असि) भवसि (ओषधीनाम्) ओषधीनां मध्ये (अनड्वान्) रथवाहको वृषभः (जगताम्) गतिशीलानां गवादिपशूनां मध्ये (इव) (व्याघ्रः) हिंस्रजन्तुविशेषः (श्वपदाम्) शुन इव पदानि येषां तेषां हिंस्रपशूनां मध्ये (इव)। अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—(त्रिः) त्रिवारम्, बाल्ययौवनवार्धकेषु (शाम्बुभ्यः) कृवापा० । उ० १ । १ । शम्ब सम्बन्धने गतौ च—उण्। उपायशीलेभ्यः (अङ्गिरेभ्यः) अशेर्नित् । उ० १ । ५२ । अगि गतौ-किरच् नित्। विज्ञानिभ्यः (त्रिः) (आदित्येभ्यः) अखण्डब्रह्मचारिभ्यः (परि) सर्वतः (त्रिः) (जातः) प्रकटीभूतः (विश्वदेवेभ्यः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परि) सब प्रकार (जातः) प्रकट हुआ (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (सोमेन साकम्) सोमरस के साथ (तिष्ठति) ठहरता है [सोम के समान गुणकारी है] । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देने वाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश करदे ॥ ५ ॥

भावार्थ—यह कुष्ठ महौषध विद्वानों के लिये बालकपन, यौवन और बुढ़ापे तीनों पनों में सोमरस के समान स्वास्थ्य वर्द्धक है ॥ ५ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥

अश्वत्थः । देव-सदनः । तृतीयस्याम् । इतः । दिवि ॥
तत्र । अमृतस्य । चक्षणम् । ततः । कुष्ठः । अजायत ॥
सः । कुष्ठः । विश्व-भेषजः । साकम् । सोमेन । तिष्ठति ॥
तक्मानम् । सर्वम् । नाशय । सर्वाः । च । यातु-धान्यः ॥६॥

भाषार्थ—(देवसदनः) विद्वानों के बैठने योग्य (अश्वत्थः) वीरों के ठहरने का देश (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और मध्य अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) अवस्था में (इतः) प्राप्त होता है । (तत्र) उस में (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उस से (कुष्ठः) कुष्ठ

सर्वविद्वद्भ्यः (सः) (कुष्ठः) म० १ । औषधविशेषः (विश्वभेषजः) सर्वरोगौषधः (सोमेन साकम्) सोमसमानप्रभावेण सह (तिष्ठति) वर्तते । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

६—(अश्वत्थः—अजायत) इति व्याख्यातः—अ० ५ । ४ । ३ तथा ६ । ४५ । १, पुनरपि शब्दार्थः क्रियते (अश्वत्थः) अ० ३ । ६ । १ । अश्वानां कर्मसु व्यापनशीलानां वीराणां स्थितिदेशः (देवसदनः) महात्मनां स्थितियोग्यः (तृतीयस्याम्) निकृष्टमध्यमाभ्यां तृतीयस्यां श्रेष्ठायाम् (इतः) इण गतौ-क्त । प्राप्तः (दिवि) गतौ । अवस्थायाम् (तत्र) तस्मिन् स्थाने (अमृतस्य) अमर-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ... [म० ५] ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जहां पर विद्वान् वीरों का निवास होता है, वहां कुष्ठ महौषध के उपयोग से आनन्द बढ़ता है ॥ ६ ॥

इस मन्त्र के पहिले दो भाग कुछ भेद से आचुके हैं—अ० ५ । ४ । ३ । और ६ । ८५ । १ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः । कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः सहाकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥

हिरण्ययी । नौः । अचरत् । हिरण्यय-बन्धना । दिवि ॥
तत्र । अमृतस्य । चक्षणम् । ततः । कुष्ठः । अजायत ॥
सः । कुष्ठः । विश्व-भेषजः । सहाकम् । सोमेन । तिष्ठति ॥
तक्मानम् । सर्वम् । नाशय । सर्वाः । च । यातु-धान्यः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(हिरण्ययी) तेज वाली [अग्नि वा बिजुली वा सूर्य से चलने वाली], (हिरण्यबन्धना) तेजोमय बन्धनों वाली (नौः) नाव (दिवि) व्यवहार में (अचरत्) चलती थी। (तत्र) उस में (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ.....[म० ५] ॥

भावार्थ—जहां पर विद्वान् लोग विज्ञान प्राप्त करके नाव आदि यानों को अग्नि आदि से चलाते हैं, वहां कुष्ठ महौषधि बड़ा उपकारी होता है ॥ ७ ॥

णस्य। चिरजीवनस्य (चक्षणम्) दर्शनम् (ततः) तस्मात् स्थानात् (कुष्ठः) म० १। औषधविशेषः (अजायत) प्रादुरभवत्। अन्यत् पूर्ववत्—म० ५ ॥

७—(हिरण्ययी) हिरण्यमयी। तेजोमयी। अग्निना विद्युता सूर्येण वा प्रयुक्ता (नौः) तरणिः (अचरत्) अगमत् (हिरण्यबन्धना) तेजोमयबन्धनयुक्ता। अन्यत् पूर्ववत्—म० ६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्रके पहिले दो भाग कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० ५ । ४ । ४ । तथा ६ । ४५ । २ ॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

यत्र । न । अव-प्रभ्रंशनम् । यत्र । हिम-वतः । शिरः ॥
तत्र । अमृतस्य । चक्षणम् । ततः । कुष्ठः । अजायत ॥
सः । कुष्ठः । विश्व-भेषजः । साकम् । सोमेन । तिष्ठति ॥
तक्मानम् । सर्वम् । नाशय । सर्वाः । च । यातु-धान्यः ॥८॥

भाषार्थ—(यत्र) जहां (अवप्रभ्रंशनम्) नीचे गिर जाना (न) नहीं है, और (यत्र) जहां (हिमवतः) हिम वाले स्थान का (शिरः) शिर है । (तत्र) उस में (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है । (सः) वह (विश्व-भेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ.....[अ० ५] ॥ ८ ॥

भावार्थ—हिम पृथिवी से ऊंचे स्थान पर गिरता है । जहां पर जो मार्ग में बिना फिसले ऊंचा चढ़ जाता है, वहां वह कुष्ठ महौषध को पाकर प्रसन्न होता है८

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाकुो यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥

यम् । त्वा । वेद । पूर्वः । इक्ष्वाकः । यम् । वा । त्वा । कुष्ठ ।
काम्यः ॥ यम् । वा । वसः । यम् । आत्स्यः । तेन । असि ।
विश्व-भेषजः ॥ ९ ॥

८—(यत्र) यस्मिन् स्थाने (न) निषेधे (अवप्रभ्रंशनम्) भ्रंशु अधः-पतने । इतस्ततोऽधः पतनम् (यत्र) (हिमवतः) हिमयुक्तदेशस्य (शिरः) शिखरम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(कुष्ठ) हे कुष्ठ ! [मन्त्र १] (यम् त्वा) जिस तुझ को (पूर्वः) पहिला [मुख्य] (इक्ष्वाकः) ज्ञान को प्राप्त होने वाला, (वा) अथवा (यम् त्वा) जिस तुझ को (काम्यः) कामनायुक्त, (वा) अथवा (यम्) जिस को (वसः) निवास देने वाला,[वा] (यम्) जिस को (आत्स्यः) सब ओर को सदा चलने वाला [पुरुष] (वेद) जानता है, (तेन) उस [कारण] से तू (विश्वभेषजः) सर्वौषध (असि) है ॥ ९ ॥

भावार्थ—बड़े बड़े विद्वान्, पुरुषार्थी लोग परीक्षा करके कुष्ठ को सर्वौषध जानते हैं ॥ ९ ॥

शीर्ष्णि लोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्यधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥

शीर्ष्ण-लोकम् । तृतीयकम् । सदम्-दिः । यः । च । हायनः ॥
तक्मानम् । विश्वधा-वीर्य । अधराञ्चम् । परा । सुव ॥१०॥

भाषार्थ—(शीर्षलोकम्) शिर में स्थान वाले [शिर में पीड़ा करने वाले], (तृतीयकम्) तिजारी, और (यः) जो (सदन्दिः) सदा फूटन करने वाला (च) और (हायनः) प्रतिवर्ष होने वाला [ज्वर] है । (विश्वधावीर्य)

९—(यम्) (त्वा) त्वां कुष्ठम् (वेद) वेत्ति (इक्ष्वाकः) इषेः क्सुः । उ० ३ । १५७ । इष गतौ—क्सु + अक गतौ— अण् । इक्षुं ज्ञानम् अकति गच्छति प्राप्नोतीति सः । ज्ञानप्राप्तः पुरुषः (यम्) (वा) (त्वा) (कुष्ठ) म० १ । हे औषधविशेष (काम्यः) कामनायुक्तः (यम्) (वा) (वसः) वस निवासे—अच् । निवासयिता (यम्) (आत्स्यः) ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज० । उ० ४ । २ । आङ् + अत सातत्यगमने—स्यन्प्रत्ययः । समन्तात्सदागतिशीलः (तेन) कारणेन (असि) (विश्वभेषजः) सर्वौषधः ॥

१०—(शीर्षलोकम्) शिरसि स्थानयुक्तम् । मस्तकपीडकम् (तृतीयकम्) अ० १ । २५ । ४ । स्वार्थे कन् । तृतीयदिने आगच्छन्तम् (सदन्दिः) अ० ५ । २२ । १३ । सदम् + दाप् छेदने दो अवखण्डने वा—कि । सदा खण्डकम् । पीडकम् (यः) (च) (हायनः) अ० ६ । १४ । ३ । हायन-अर्श आद्यच् । प्रतिवर्षभवः (तक्मानम्) कृच्छ्रजीवनकरं ज्वरम् (विश्व-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सब प्रकार सामर्थ्य वाले [कुष्ठ !] (तक्मानम्) उस दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (अधराञ्चम्) नीचे स्थान में (परा सुव) दूर गिरा दे ॥ १० ॥

भावार्थ—कुष्ठ महौषध के सेवन से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं १०

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आचुका है—अ० ५ । २२ । ३ ॥

सूक्तम् ४० ॥

१-४ ॥ १ बृहस्पतिः; २ आपः; ३, ४ अश्विनौ देवते ॥ १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्; २ विराडार्षी बृहती; ३ अनुष्टुप्; ४ गायत्री ॥

बुद्धिवर्धनोपदेशः—बुद्धि बढ़ाने का उपदेश ॥

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

यत् । मे । छिद्रम् । मनसः । यत् । च । वाचः । सरस्वती । मन्यु-मन्तम् । जगाम ॥ विश्वैः । तत् । देवैः । सह । सम्-विदानः । सम् । दधातु । बृहस्पतिः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो (मे) मेरे (मनसः) मन का (च) और (यत्) जो (वाचः) वाणी का (छिद्रम्) दोष है, [जिससे] (सरस्वती) सरस्वती [उत्तम वेदविद्या] (मन्युमन्तम्) क्रोधयुक्त [व्यवहार] को (जगाम) प्राप्त हुयी है । (तत्) उस [दोष] को (विश्वैः) सब (देवैः सह) उत्तम गुणों के साथ (संविदानः) मिलता हुआ (बृहस्पतिः) बड़े आकाश आदि का पालक परमेश्वर (सं दधातु) सन्धि युक्त करे ॥ १ ॥

धात्रीर्य) हे सर्वथा सामर्थ्योपेत (अधराञ्चम्) अ० ५ । २२ । ३ । निम्नदेशम् (परा) दूरे (सुव) प्रेरय ॥

१-(यत्) (मे) मम (छिद्रम्) दोषम् (मनसः) हृदयस्य (यत्) (च) (वाचः) वाण्याः (सरस्वती) विज्ञानवती वेदविद्या (मन्युमन्तम्) क्रोधवन्तं व्यवहारम् (जगाम) प्राप (विश्वैः) सर्वैः (तत्) छिद्रम् (देवैः) उत्तमगुणैः (सह) (संविदानः) संगच्छमानः (सं दधातु) सन्धानं करोतु (बृहस्पतिः) बृहतामाकाशादीनां पालक ईश्वरः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जब मनुष्य मानसिक वा वाचिक दोष से विद्या देवी को क्रोधित कर देवे, वह परमात्मा की शरण लेकर अपनी न्यूनतायें पूरी करे ॥ १॥

इस मन्त्र का मिलान करो–यजु० ३६ । २ ॥

मा नु आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥

मा । नुः । आपः । मेधाम् । मा । ब्रह्म । प्र । मथिष्टन ॥ सु-स्यदाः । यूयम् । स्यन्दध्वम् । उप-हूतः । अहम् । सु-मेधाः । वर्चस्वी ॥ २ ॥

भाषार्थ—(आपः) जल [के समान शान्त स्वरूप प्रजाओ] तुम (मा) न (नः) हमारी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को और (मा) न (ब्रह्म) वेदज्ञान को (प्र मथिष्टन) नष्ट करो । (सुष्यदाः) सहज में बहने वाले (यूयम्) तुम (स्यन्दध्वम्) बहते जाओ । (उपहूतः) आवाहन किया हुआ (अहम्) मैं (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धि वाला और (वर्चस्वी) बड़ा प्रतापी [हो जाऊं] २

भावार्थ—जैसे प्रभूत जल बे रोक टोक सहज में बहता चला जाता है, वैसे ही मनुष्य सब विघ्नों को हटाकर अपने सन्तान आदि को बुद्धिमान् और प्रतापी बनावें ॥ २ ॥

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥

मा । नुः । मेधाम् । मा । नुः । दीक्षाम् । मा । नुः । हिंसि-

२—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (आपः) जलानीव शान्तस्वभावाः प्रजाः (मेधाम्) धारणावतीं बुद्धिम् (मा) निषेधे (ब्रह्म) वेदज्ञानम् (प्र मथिष्टन) मथे विलोडने—लाटि छान्दसं रूपम् । प्रमथत । प्रध्वंशं कुरुत (सुष्यदाः) सु+स्यन्दू प्रस्रवणे—क, टाप् । सहजस्रवणशीलाः (यूयम्) (स्यन्दध्वम्) प्रवहत (उपहूतः) आहूतः (अहम्) (सुमेधाः) अ० ५ । ११ । १ । सु+मेधा–असिच् । सुबुद्धियुक्तः (वर्चस्वी) प्रतापी, भूयासमिति शेषः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्टम् । यत् । तपः ॥ शिवाः । नः । शम् । सन्तु । आयुषे । शिवाः । भवन्तु । मातरः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे माता पिता ! म० ४] तुम दोनों (न) न तो (नः) हमारी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को, (मा) न (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] को और (मा) न (नः) हमारा (यत्) जो कुछ (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि] है, [उसको] (हिंसिष्टम्) नष्ट करो । (नः) हमारे (आयुषे) जीवन के लिये [वे प्रजायें] (शिवाः) कल्याणकारिणी और (शम्) शान्तिदायिनी (सन्तु) होवें, और (शिवाः) कल्याणकारिणी (मातरः) माताओं [के समान] (भवन्तु) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—माता पिता ऐसा प्रयत्न करें कि उनके सन्तान बुद्धिमान्, धर्मात्मा और सर्वहितैषी होवें, जिससे उन से सब लोग माता के समान प्रीति करें ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृतसंस्कारविधि वानप्रस्थप्रकरण में व्याख्यात है ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥

या । नः पीपरत् । अश्विना । ज्योतिष्मती । तमः । तिरः ॥
ताम् । अस्मे । रासताम् । इषम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(या) जो (ज्योतिष्मती) उत्तम ज्योति वाली [अन्न सामग्री] (तमः) अन्धकार का (तिरः) तिरस्कार करके (नः) हमें (पीप-

---

३—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (मेधाम्) धारणावतीं बुद्धिम् (मा) (नः) (दीक्षाम्) नियमव्रतयोः शिक्षाम् (मा) (नः) (हिंसिष्टम्) नाशयतं युवाम् (यत्) (तपः) ब्रह्मचर्यादि तपश्चरणम् (शिवाः) मङ्गलकारिण्यः प्रजाः (नः) अस्माकम् (शम्) शान्तिदायिन्यः (सन्तु) (आयुषे) जीवनाय (शिवाः) मङ्गलप्रदाः (भवन्तु) (मातरः) जननीवद्धितकारिण्यः ॥

४—(या) इट् । अन्नसामग्री (नः) अस्मान् (पीपरत्) पूरयेत् (अश्विना) व्यवहारेषु व्यापकौ मातापितरौ (ज्योतिष्मती) प्रकाशवती (तमः) अन्धकारम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्) पूर्ण करे, (अश्विना) व्यवहारों में व्यापक दोनों [माता पिता] (ताम्) उस (इषम्) अन्न सामग्री को (अस्मे) हमें (रासताम्) दिया करें ॥४॥

भावार्थ—माता पिता सन्तानों को ऐसा विद्वान् और बलवान् बनावें कि जिससे उत्तम अन्न के भोगने से नेत्रों में कभी अन्धकार न छाये, किन्तु सदा ज्योति बनी रहे ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१ । ४६ । ६ ॥

सूक्तम् ४१ ॥

मन्त्रः १ ॥ ऋषयो देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

कल्याणप्राप्त्युपदेशः—कल्याण की प्राप्ति का उपदेश ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥

भद्रम् । इच्छन्तः । ऋषयः । स्वः-विदः । तपः । दीक्षाम् । उप-निसेदुः । अग्रे ॥ ततः । राष्ट्रम् । बलम् । ओजः । च । जातम् । तत् । अस्मै । देवाः । उप-संनमन्तु ॥ १ ॥

भाषार्थ—(भद्रम्) कल्याण [श्रेष्ठ वस्तु] (इच्छन्तः) चाहते हुये, (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (तपः) तप [ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदाध्ययन जितेन्द्रियतादि] और (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] का (अग्रे) पहिले (उपनिषेदुः) अनुष्ठान किया है । (ततः) उस से (राष्ट्रम्) राज्य, (बलम्) बल [सामर्थ्य]

(तिरः) तिरस्कृत्य (ताम्) तादृशीम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (रासताम्) प्रयच्छतां तौ (इषम्) इषम्, अन्ननाम-निघ० २ । ७ । इष्यमाणामन्नसामग्रीम् ॥

१—(भद्रम्) कल्याणम् (इच्छन्तः) कामयमानाः (ऋषयः) वेदार्थज्ञानिनः (स्वर्विदः) सुखं लभमानाः (तपः) ब्रह्मचर्यादि तपश्चरणम् (दीक्षाम्) नियमव्रतयोः शिक्षाम् (उपनिषेदुः) षद्लृ गतौ-लिट् । अनुष्ठितवन्तः । सेवितवन्तः (अग्रे) आदौ (ततः) तस्मात् कारणात् (राष्ट्रम्) राज्यम् (बलम्) सामर्थ्यम् (ओजः) पराक्रमः (च) । (जातम्) निष्पन्नम् (तत्) भद्रम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) सिद्ध हुआ है, (तत्) उस [कल्याण] को (अस्मै) इस पुरुष के लिये (देवाः) विद्वान् लोग (उपसंनमन्तु) झुका देवें ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों ने पराक्रम से पहिले वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता आदि तप का अभ्यास करके महासुख पाया है, इस लिये ऋषि लोग प्रयत्न करें कि सब मनुष्य विद्वान् होकर महासुख को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ४२ ॥

१-४ ॥ ब्रह्म देवता ॥ १ अनुष्टुप्; २ विराट् पथ्या पङ्क्तिः; ३ निचृत् त्रिष्टुप्; ४ विराडार्षी जगती ॥

ब्रह्मस्तुत्युपदेशः—वेद की स्तुति का उपदेश ॥

ब्रह्म होता ब्रह्म युज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥

ब्रह्म । होता । ब्रह्म । युज्ञाः । ब्रह्मणा । स्वरवः । मिताः ॥
अध्वर्युः । ब्रह्मणाः । जातः । ब्रह्मणः । अन्तः-हितम् । हविः १

भाषार्थ—(ब्रह्म = ब्रह्मणा) वेद द्वारा (होता) होता [हवनकर्ता], (ब्रह्म) वेद द्वारा (यज्ञाः) अनेक यज्ञ होते हैं. (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (स्वरवः) यज्ञस्तम्भ (मिताः) खड़े किये जाते हैं । (ब्रह्मणः) वेद से (अध्वर्युः) यज्ञ कर्ता (जातः) प्रसिद्ध होता है, (ब्रह्मणः) वेद के (अन्तर्हितम्) भीतर

(अस्मै) पुरुषाय (देवाः) विद्वांसः (उपसंनमन्तु) आदरेण नमयन्तु । प्रापयन्तु ॥

१—(ब्रह्म) तृतीयार्थे प्रथमा । ब्रह्मणा । वेदद्वारा (होता) हवनकर्ता (ब्रह्म) वेदद्वारा (यज्ञाः) यज्ञव्यवहाराः (ब्रह्मणा) वेदद्वारा (स्वरवः) यूपाः । यज्ञस्तम्भाः (मिताः) डु मिञ् प्रक्षेपणे-क्त । प्रक्षिप्ताः । स्थापिताः (अध्वर्युः) ऋत्विक् (ब्रह्मणः) वेदात् (जातः) प्रसिद्धो भवति (ब्रह्मणः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खा हुआ (हविः) हवि [हवन विधान] है ॥ १ ॥

भावार्थ—वेद द्वारा ही याजक, यज्ञव्यवहार और यज्ञविधान निश्चित होते हैं ॥ १ ॥

यह सूक्त कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में उद्धृत है ॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता । ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥

ब्रह्म । स्रुचः । घृत-वतीः । ब्रह्मणा । वेदिः । उद्धिता ॥ ब्रह्म । यज्ञस्य । तत्त्वम् । च । ऋत्विजः । ये । हविः-कृतः ॥ शमिताय । स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्म=ब्रह्मणा) वेद द्वारा (घृतवतीः) घी वाली (स्रुचः) स्रुचायें [चमचे], (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वेदिः) वेदी (उद्धिता) स्थिर की गयी है। (ब्रह्म) वेद द्वारा (यज्ञस्य) यज्ञ का (तत्त्वम्) तत्त्व (च) और (ये) जो (हविष्कृतः) हवन करने वाले (ऋत्विजः) ऋत्विज हैं [वे भी स्थिर किये हैं]। (शमिताय) शान्तिकारक [वेद] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] है ॥ २ ॥

भावार्थ—वेद से ही यज्ञ के साधनों और यज्ञकर्ताओं का विधान किया जाता है ॥ २ ॥

वेदस्य (अन्तर्हितम्) मध्ये धृतम्। प्रणीतम् (हविः) हवनविधानम् ॥

२—(ब्रह्म) ब्रह्मणा। वेदद्वारा (स्रुचः) यज्ञपात्राणि। चमसाः(घृतवतीः) घृतवत्यः। घृतेन पूर्णाः (ब्रह्मणा) वेदद्वारा (वेदिः) यज्ञभूमिः (उद्धिता) सम्पादिता (ब्रह्म) ब्रह्मणा। वेदद्वारा (यज्ञस्य) यागस्य (तत्त्वम्) स्वरूपम्। याथातथ्यम् (च) (ऋत्विजः) होतारः (ये) (हविष्कृतः) यज्ञकर्तारः (शमिताय) हृश्याभ्यामितन्। उ० ३। ९३। शमु उपशमे-इतन्। शान्तिकारकाय वेदाय (स्वाहा) सुवाणी ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इमामिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः३

अंहः-मुचे । प्र । भरे । मनीषाम् । आ । सु-त्राव्ने । सु-मतिम् । आ-वृणानः ॥ इमम् । इन्द्र । प्रति । हव्यम् । गृभाय । सत्याः । सन्तु । यजमानस्य । कामाः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सुमतिम्) सुमति (आवृणानः) मांगता हुआ मैं (अंहोमुचे) कष्ट से छुड़ाने हारे, (सुत्राव्णे) बड़े रक्षक [परमात्मा] के लिये (मनीषाम्) अपनी मनन शक्ति को (आ) सब ओर से (प्र भरे) समर्पण करता हूं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (इमम्) इस (हव्यम्) ग्राह्य स्तुति को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर, (यजमानस्य) यजमान के (कामाः) मनोरथ (सत्याः) सत्य [पूर्ण] (सन्तु) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि परमात्मा को आत्मसमर्पण करके सुमति के साथ अपने उत्तम मनोरथ सिद्ध करे ॥ ३ ॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः४

अंहः-मुचम् । वृषभम् । यज्ञियानाम् । वि-राजन्तम् । प्रथमम् । अध्वराणाम् ॥ अपाम् । नपातम् । अश्विना । हुवे । धियः । इन्द्रियेण । ते । इन्द्रियम् । दत्तम् । ओजः ॥ ४ ॥

३—(अंहोमुचे) कष्टाद् मोचयित्रे (प्रभरे) समर्पयामि (मनीषाम्) ऋ० ५ । ६ । ८ । कृतृभ्यामीषन् । उ० ४ । २६ । मनु अवबोधने-ईषन्, टाप् । मननशक्तिम् । प्रज्ञाम् (आ) समन्तात् (सुत्राव्णे) सु+त्रैङ् पालने-वनिप् । महारक्षकाय परमेश्वराय (सुमतिम्) कल्याणबुद्धिम् (आवृणानः) याचमानः (इमम्) (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् (हव्यम्) ग्राह्यं स्तोमम् (प्रति गृभाय) प्रतिगृहाण । स्वीकुरु (सत्याः) यथार्थाः । पूर्णाः (सन्तु) (यजमानस्य) (कामाः) मनोरथाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अंहोमुचम्) कष्ट से छुड़ाने हारे, (यज्ञियानाम्) पूजा योग्यों में (वृषभम्) श्रेष्ठ, (अध्वराणाम्) हिंसा रहित यज्ञों के (विराजन्तम्) विशेष शोभायमान (प्रथमम्) मुख्य, (अपाम्) प्रजाओं के (नपातम्) न गिराने वाले [बड़े रक्षक, परमात्मा] को (हुवे) मैं बुलाता हूं। [हे उपासक !] (अश्विना) व्यवहारों में व्यापक माता पिता दोनों (इन्द्रियेण) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष के पराक्रम से (ते) तुझ को (धियः) बुद्धियां, (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (ओजः) पराक्रम (दत्तम्=दत्ताम्) देवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य माता पिता आचार्य आदि की शिक्षा से बुद्धिमान्, ऐश्वर्यवान् और पराक्रमी होकर परमात्मा की भक्ति करके उन्नति करें ॥ ४ ॥

सूक्तम् ४३ ॥

१—८ ॥ ब्रह्म देवता ॥ भुरिग् ब्राह्मी गायत्री ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः—ब्रह्म की प्राप्ति का उपदेश ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे। अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

यत्र। ब्रह्म-विदः। यान्ति। दीक्षया। तपसा। सह ॥ अग्निः। मा। तत्र। नयतु। अग्निः। मेधाः। दधातु। मे ॥ अग्नये। स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जहां [सुख में] (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी [ईश्वर वा वेद के जानने वाले लोग] (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा]

४—(अंहोमुचम्) पापाद् मोचयितारम् (वृषभम्) श्रेष्ठम् (यज्ञियानाम्) पूजनीयानाम् (विराजन्तम्) विशेषेण शोभायमानम् (प्रथमम्) मुख्यम् (अध्वराणाम्) हिंसारहितानां यज्ञानाम् (अपाम्) प्रजानाम् (नपातम्) न पातयितारम्। महारक्षकम् (अश्विना) हे कर्मसु व्यापकौ मातापितरौ (हुवे) आह्वयामि (धियः) बुद्धीः (इन्द्रियेण) इन्द्रयोग्यपराक्रमेण (ते) तुभ्यम् (इन्द्रियम्) परमैश्वर्यम् (दत्तम्) दत्ताम्। प्रयच्छताम् (ओजः) पराक्रमम् ॥

१—(यत्र) यस्मिन् सुखे (ब्रह्मविदः) ईश्वरस्य वेदस्य वा वेत्तारः (यान्ति) गच्छन्ति (दीक्षया) नियमव्रतयोः शिक्षया (तपसा) ब्रह्मचर्यादित-

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुंचते हैं। (अग्निः) अग्नि [अग्निसमान सर्वव्यापक परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां [सुख में] (नयतु) पहुंचावे, (अग्निः) अग्नि [व्यापक परमात्मा] (मेधाः) धारणावती बुद्धियां (मे) मुझ को (दधातु) देवे। (अग्नये) अग्नि [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य योगी महात्माओं के समान दीक्षा और ब्रह्मचर्य आदि व्रत से परमेश्वर और शारीरिक और आत्मिक बल में दृढ़ रहकर अनेक प्रकार बुद्धियों को बढ़ाते हुये सुख प्राप्त करें ॥ १ ॥

यह सूक्त कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में उद्धृत है ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥ २ ॥

यत्र। ब्रह्म-विदः। यान्ति। दीक्षया। तपसा। सह ॥ वायुः। मा। तत्र। नयतु। वायुः। प्राणान्। दधातु। मे ॥ वायवे। स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी..... [मन्त्र १]। (वायुः) वायु [पवन के समान शीघ्रगामी परमात्मा] (मा) मुझ को (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (वायुः) वायु [परमात्मा] (मे) मुझे (प्राणान्) प्राणों को (दधातु) देवे, (वायवे) वायु [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ २ ॥

पश्चरणेन (सह) (अग्निः) अग्निवत् सर्वव्यापकः परमात्मा (मा) माम् (तत्र) सुखे (नयतु) प्रापयतु (अग्निः) व्यापकः परमेश्वरः (मेधाः) धारणावतीर्बुद्धीः (दधातु) ददातु (मे) मह्यम् (अग्नये) परमात्मने (स्वाहा) सुवाणी ॥

२—(वायुः) वायुसमानशीघ्रगामी परमात्मा (वायुः) (प्राणान्) जीवनसाधनानि (दधातु) ददातु (मे) मह्यम् (वायवे) शीघ्रगामिने परमात्मने (स्वाहा) सुवाणी। अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ २ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥३॥

यत्र । ब्रह्म-विदः । यान्ति । दीक्षया । तपसा । सह ॥ सूर्यः । मा । तत्र । नयतु । चक्षुः । सूर्यः । दधातु । मे ॥ सूर्याय । स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी..... [मन्त्र १]। (सूर्यः) सूर्य [सूर्य के समान प्रकाशमान परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (सूर्यः) सूर्य [परमात्मा] (मा) मुझ को (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (दधातु) देवे (सूर्याय) सूर्य [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥ ३ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ४

यत्र । ब्रह्म-विदः । यान्ति । दीक्षया । तपसा । सह ॥ चन्द्रः । मा । तत्र । नयतु । मनः । चन्द्रः । दधातु । मे ॥ चन्द्राय । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी..... [मन्त्र १]। (चन्द्रः) चन्द्र [चन्द्र समान आनन्द देने वाला परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (चन्द्रः) चन्द्र [परमात्मा]

३—(सूर्यः) सूर्यवत्प्रकाशमानः परमात्मा (चक्षुः) दर्शनसामर्थ्यम् (सूर्यः) (सूर्याय) प्रकाशमानाय परमात्मने । अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—(चन्द्रः) चन्द्र इवाह्लादकः परमात्मा (मनः) मननसामर्थ्यम्

CC-0.In Public Domain. Panjni Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मे) मुझको (मनः) मननसामर्थ्य (दधातु) देवे । (चन्द्राय) चन्द्र [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ४ ॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । सोमो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु॒ पयः॒ सोमो॑ दधातु मे । सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

यत्र॑ । ब्र॒ह्म॒-विदः॑ । यान्ति । दी॒क्षया॑ । तप॑सा । स॒ह ॥ सोमः॑ । मा॒ । तत्र॑ । न॒य॒तु॒ । पयः॑ । सोमः॑ । द॒धा॒तु॒ । मे॒ ॥ सोमा॑य । स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी····· [मन्त्र १] । (सोमः) सोम [सर्वोत्पादक परमेश्वर] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (सोमः) सोम [परमात्मा] (मे) मुझ को (पयः) अन्न (दधातु) देवे । (सोमाय) सोम [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ५ ॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
इन्द्रो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु॒ बल॒मिन्द्रो॑ दधातु मे । इन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ ६॥

यत्र॑ । ब्र॒ह्म॒-विदः॑ । यान्ति । दी॒क्षया॑ । तप॑सा । स॒ह ॥ इन्द्रः॑ । मा॒ । तत्र॑ । न॒य॒तु॒ । बल॑म् । इन्द्रः॑ । द॒धा॒तु॒ । मे॒ ॥ इन्द्रा॑य । स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी·····

(चन्द्रः) (चन्द्राय) आह्लादकाय परमात्मने । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (पयः) अन्नम्—निघ० २ । ७ (सोमः) (सोमाय) परमात्मने । अन्यत् पूर्ववत् ॥

६—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (बलम्) सामर्थ्यम् (इन्द्रः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मन्त्र १] । (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (इन्द्रः) इन्द्र [परमात्मा] (मे) मुझको (बलम्) बल (दधातु) देवे । (इन्द्राय) इन्द्र [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ६ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयत्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ॥७॥

यत्र । ब्रह्म-विदः । यान्ति । दीक्षया । तपसा । सह ॥ आपः । मा । तत्र । नयतु । अमृतम् । मा । उप । तिष्ठतु ॥ अत्-भ्यः । स्वाहा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी..... [मन्त्र १] । (आपः) आप [जल के समान व्यापक परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु=नयन्तु) पहुंचावे, (अमृतम्) अमृत [अमरपन, दुःख रहित सुख] (मा) मुझ को (उप तिष्ठतु) प्राप्त होवे । (अद्भ्यः) आप [व्यापक परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान है ॥ ७ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥

यत्र । ब्रह्म-विदः । यान्ति । दीक्षया । तपसा । सह ॥ ब्रह्मा ।

(इन्द्राय) परमैश्वर्यवते परमेश्वराय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—(आपः) जलानीव व्यापकः परमात्मा (नयतु) नयन्तु (अमृतम्) अमरणम् । दुःखरहितं सुखम् (मा) माम् (उपतिष्ठतु) प्राप्नोतु (अद्भ्यः) सर्वव्यापकाय परमेश्वराय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा । तत्र । नयतु । ब्रह्मा । ब्रह्म । दधातु । मे ॥ ब्रह्मणे । स्वाहा ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी [ईश्वर वा वेद के जानने वाले लोग] (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुंचते हैं । (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब से बड़ा जगत्स्रष्टा परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (ब्रह्मा) ब्रह्मा [परमात्मा] (मे) मुझ को (ब्रह्म) वेदज्ञान (दधातु) देवे । (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मज्ञानियों के समान दीक्षा और तप के साथ परमात्मा की प्राप्ति का उपाय करते हैं, वे ही ब्रह्मानन्द भोगते हैं ॥ ८ ॥

सूक्तम् ४४ ॥

१—१० ॥ आञ्जनं देवता ॥ १—३, ६—१० अनुष्टुप्; ४ विराडार्ष्युष्णिक्; ५ निचृदार्षी गायत्री ॥

ब्रह्मोपासनोपदेशः—ब्रह्म की उपासना का उपदेश ॥

आयुषोऽसि प्रतरणं वि॑ भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥ १ ॥

आयुषः । असि । प्र-तरणम् । विप्रम् । भेषजम् । उच्यसे ॥ तत् । आ-अञ्जन । त्वम् । शम्-ताते । शम् । आपः । अभयम् । कृतम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे ब्रह्म !] तू (आयुषः) जीवन का (प्रतरणम्) बढ़ाने वाला (असि) है, तू (विप्रम्) परिपूर्ण (भेषजम्) औषध (उच्यसे) कहा

८—(ब्रह्मा) सर्ववृद्धः । जगत्स्रष्टा परमेश्वरः (ब्रह्मा) (ब्रह्म) वेदज्ञानम् (ब्रह्मणे) जगदुत्पादकाय परमेश्वराय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१—(आयुषः) जीवनस्य (असि) (प्रतरणम्) प्रवर्धकम् (विप्रम्) वि+प्रा पूरणे—क । परिपूर्णम् (भेषजम्) औषधम् (उच्यसे) कथ्यसे (तत्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। (तत्) सो, (शन्तातै) हे शान्तिकारक ! (आञ्जन) आञ्जन [संसार प्रकट करने वाले ब्रह्म], (त्वम्) तू (आपः) हे सुकर्म ! [तुम दोनों] (शम्) शान्ति और (अभयम्) अभय (कृतम्) करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो प्राणी परमात्मा के नियम पर चलकर सुकर्म करते हैं, वे सदा सुखी और निर्भय रहते हैं ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० ४ । ६ ॥

आञ्जन शब्द का अर्थ लेप औषध भी है ॥

यो ह॑रि॒मा जा॒यान्यो॑ऽङ्ग॒भेदो॒ वि॒स॒ल्पकः॑ ।
सर्वं॑ ते॒ यक्ष्म॑मङ्गे॒भ्यो ब॒हिर्नि॑र्ह॒न्त्वाञ्ज॑नम् ॥ २ ॥

यः । ह॒रि॒मा । जा॒यान्यः॑ । अ॒ङ्ग॒-भेदः॑ । वि॒-स॒ल्पकः॑ ॥ सर्व॑म् । ते॒ । यक्ष्म॑म् । अ॒ङ्गे॒भ्यः॑ । ब॒हिः॑ । निः॑ । ह॒न्तु॒ । आ॒-अञ्ज॑नम् २

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यः) जो (हरिमा) पीलिया रोग (जायान्यः) क्षय रोग, और (अङ्गभेदः) अङ्गों का तोड़ने वाला (विसल्पकः) विसल्पक [शरीर में फूटने वाली हड़फूटन] है। (सर्वम्) सब(यक्ष्मम्) राजरोग को

तस्मात् कारणात् (आञ्जन) अ० ४ । ६ । ३ । आङ्+अञ्ज् व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—ल्युट् । हे यथावत् संसारस्य व्यक्तिकारक ब्रह्म । हे प्रलेप (त्वम्) (शन्तातै) अ० ४ । १३ । ५ । शिवशमरिष्टस्य करे । पा० ४ । ४ । १४३ । तातिल्-प्रत्ययः करणेऽर्थे । हे शान्तिकारक (शम्) शान्तिम् (आपः) आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । उ० ४ । २०८ । आप्लृ व्याप्तौ—असुन् । हे सुकर्म (अभयम्) भयराहित्यम् (कृतम्) कुरुतं युवाम् ॥

२—(यः) (हरिमा) अ० १ । २२ । १ । हरित्—इमनिच् भावे । पाण्डुरोगः (जायान्यः) अ० ७ । ७६ । ३ । वदेरान्यः । उ० ३ । १०४ । जै क्षये—आन्य । क्षयरोगः (अङ्गभेदः) अङ्गानां भेदकः (विसल्पकः) अ० ६ । १२७ । १ । वि+सृप सर्पणे-अच्, कन्, रस्य लः । शरीरे विसर्पणशीलो विसर्परोगः (सर्वम्) (ते) तव (यक्ष्मम्) राजरोगम् (अङ्गेभ्यः) शरीरावयवसकाशात् (बहिः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते) तेरे (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] (बहिः) बाहिर (निः हन्तु) निकाल मारे ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम पर चलने वाला धर्मात्मा पुरुष शारीरिक और आत्मिक रोगों से ज्ञान द्वारा पृथक् रहे ॥ २ ॥

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥

आ-अञ्जनम् । पृथिव्याम् । जातम् । भद्रम् । पुरुष-जीवनम् ॥
कृणोतु । अप्र-मायुकम् । रथ-जूतिम् । अनागसम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (जातम्) प्रसिद्ध, (भद्रम्) कल्याण कारक, (पुरुषजीवनम्) पुरुषों का जीवन (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म, वा लेप विशेष] [मुझको] (अप्रमायुकम्) मृत्यु रहित, (रथजूतिम्) रथ [शरीर] का वेग रखने वाला, और (अनागसम्) निर्दोष (कृणोतु) करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा पृथिवी आदि में प्रसिद्ध है, उस की भक्ति से मनुष्य मोक्ष सुख पाकर अपने शरीर और आत्मा को वेगवान् करके शुद्ध निष्पाप रहें ॥ ३ ॥

प्राणं प्राणं त्रायुस्वासो असंवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

पृथक् (निः) नितराम् (हन्तु) नाशयतु (आञ्जनम्) म० १ । संसारस्य व्यक्तिकारकं ब्रह्म । प्रलेपः ॥

३—(आञ्जनम्) म० १ । संसारस्य व्यक्तिकारकं ब्रह्म । प्रलेपविशेषः (पृथिव्याम्) भूमौ (जातम्) प्रसिद्धम् (भद्रम्) कल्याणकरम् (पुरुषजीवनम्) पुरुषाणां जीवयितृ (कृणोतु) करोतु—मामिति शेषः (अप्रमायुकम्) पचिनशोर्णुकन्कनुमौ च । उ० २ । ३० । मीञ् हिंसायां मरणे च—णुकन् । मृत्युरहितम् (रथजूतिम्) रथस्य शरीरस्य जूतिर्वेगो यस्मात्तम् (अनागसम्) निर्दोषम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणं । प्राणम् । त्रायस्व । असो इति । असवे । मृड ॥
निः-ऋतेः । निः-ऋत्याः । नः । पाशेभ्यः । मुञ्च ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवन दाता परमेश्वर] [मेरे] (प्राणम्) प्राण [जीवन] को (त्रायस्व) बचा, (असो) हे बुद्धिरूप ! (असवे) [मेरी] बुद्धि के लिये (मृड) प्रसन्न हो । (निर्ऋते) हे नित्य व्यापक ! (निर्ऋत्याः) महाविपत्ति के (पाशेभ्यः) फन्दों से (नः) हमें (मुञ्च) छुड़ा ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञा में प्रवृत्त रहकर अपनी बुद्धि बढ़ाते हैं वे क्लेशों में नहीं पड़ते ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्य चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥

सिन्धोः । गर्भः । असि । वि-द्युताम् । पुष्पम् ॥
वातः । प्राणः । सूर्यः । चक्षुः । दिवः । पयः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (सिन्धोः) समुद्र का (गर्भः) गर्भ [उदर समान आधार] और (विद्युताम्) प्रकाश वालों का (पुष्पम्) विकाश [फैलाव रूप] (असि) है । (वातः) पवन (प्राणः) [तेरा] प्राण [श्वास], (सूर्यः) सूर्य (चक्षुः) [तेरा] नेत्र है, और (दिवः) आकाश (पयः) [तेरा] अन्न है ॥ ५ ॥

४-(प्राण) हे जीवनप्रद परमेश्वर (प्राणम्) मम जीवनम् (त्रायस्व) पालय (असो) असुरिति प्रज्ञानाम-निरु० १० । ३४ । हे प्रज्ञारूप (असवे) प्रज्ञायै (निर्ऋते) निः + ऋ गतौ—क्तिन् । हे नित्यव्यापक (निर्ऋत्याः) अ० २ । १० । १ । निः + ऋ हिंसायाम्—क्तिन् । महाविपत्तेः (नः) अस्मान् (पाशेभ्यः) बन्धनेभ्यः (मुञ्च) मोचय ॥

५—(सिन्धोः) समुद्रस्य (गर्भः) उदरसमान आधारः (असि) (विद्युताम्) विविधदीप्यमानानाम् (पुष्पम्) पुष्प विकसने—अच् । विकाशरूपः (वातः) वायुः (प्राणः) तव श्वासरूपः (सूर्यः) आदित्यः (चक्षुः) नेत्ररूपः (दिवः) दिवु—क । आकाशः (पयः) तवान्नम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य विराट् रूप परमात्मा को सर्वनियन्ता जानकर सदा पुरुषार्थ करें ॥ ५ ॥

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥

देव-आञ्जन । त्रैककुदम् । परि । मा । पाहि । विश्वतः ॥
न । त्वा । तरन्ति । ओषधयः । बाह्याः । पर्वतीयाः । उत ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(देवाञ्जन) हे देवाञ्जन ! [दिव्य स्वरूप, संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] (त्रैककुदम्) तीन [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] सुखों का पहुंचाने वाला तू (मा) मुझे (विश्वतः) सब ओर (परि पाहि) बचाता रहे । (बाह्याः) बाहिरी [पर्वतों से भिन्न स्थानों में उत्पन्न] (उत) और (पर्वतीयाः) पहाड़ी (ओषधयः) ओषधियां (त्वा) तुझ से (न) नहीं (तरन्ति) बढ़कर होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के नियमों पर चलते हैं, उन्हें भौतिक ओषधियों की आवश्यकता नहीं होती ॥ ६ ॥

वीरुदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा उतः ॥ ७ ॥

६—(देवाञ्जन) हे दिव्य, हे संसारस्य व्यक्तिकारक ब्रह्म (त्रैककुदम्) अ० ४ । ६ । ६-१० । त्रि+क+कुत्—अण् । कं सुखम्—निघ० ३ । ६ । कवते, गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । कुङ् गतिशोषणयोः—क्विप्, तुक् च, अन्तर्गतण्यर्थः तस्य दः आध्यात्मिकादीनि त्रीणि कानि सुखानि कावयति गमयतीति त्रिककुत, स्वार्थे अण्, त्रिककुदमेव त्रिककुत् । त्रयाणां सुखानां प्रापकम् (परि) (मा) माम् (पाहि) रक्ष (विश्वतः) सर्वतः (न) निषेधे (त्वा) त्वाम् (तरन्ति) लङ्घयन्ति (ओषधयः) औषधानि (बाह्याः) बहिस्-ष्यञ् । बहिर्भवाः । पर्वतव्यतिरेकस्थलेषूत्पन्नाः (पर्वतीयाः) पर्वत-छप्रत्ययः पर्वतेषु भवाः (उत) अपि च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि । इदम् । मध्यम् । अव । असृपत् ॥ रक्षोहा । अमीवचातनः ॥ अमीवाः । सर्वाः । चातयत् । नाशयत् । अभिभाः । इतः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(रक्षोहा) राक्षसों का मारने वाला, (अमीवचातनः) रोग-नाशक [परमात्मा] (इदम्) इस (मध्यम्) मध्यस्थान में (वि अव असृपत्) सरक आया है। (इतः) यहां से (सर्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (चातयत्) हटाता हुआ, और (अभिभाः) विपत्तियों को (नाशयत्) नाश करता हुआ [ब्रह्म, वर्तमान है] ॥ ७ ॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमात्मा को साक्षात् करके मनुष्य सब विघ्नों को हटावे ॥ ७ ॥

बह्वी३दं राजन् वरुणानृतमाहु पूरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥

बहु । इदम् । राजन् । वरुण । अनृतम् । आहु । पुरुषः ॥
तस्मात् । सहस्र-वीर्य । मुञ्च । नः । परि । अंहसः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(राजन्) हे राजन् (वरुण) वरुण ! [सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्] (पुरुषः) पुरुष (इदम्) अब (बहु) बहुत (अनृतम्) असत्य (आह) बोलता है। (सहस्रवीर्य) हे सहस्रप्रकार के पराक्रम वाले ! [ईश्वर] (तस्मात्) उस (अंहसः) पाप से (नः) हमें (परि) सर्वथा (मुञ्च) छुड़ा ॥ ८ ॥

७—(वि) विविधम् (इदम्) दृश्यमानम् (मध्यम्) मध्यस्थानम् (अव असृपत्) सर्पणेन व्याप्तवान् (रक्षोहा) राक्षसानां हन्ता (अमीवचातनः) रोगनाशकः परमात्मा (अमीवाः) रोगान् (सर्वाः) (चातयत्) नाशयत् (नाशयत्) दूरीकुर्वत् (अभिभाः) अ० ११ । २ । ११ । विपत्तीः (इतः) अस्मात् स्थानात् ॥

८—(बहु) (इदम्) इदानीम् (राजन्) हे सर्वशासक (वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमात्मन् (अनृतम्) असत्यम् (आह) ब्रूते (पुरुषः) मनुष्यः (तस्मात्) निर्दिष्टात् (सहस्रवीर्य) हे अपरिमितपराक्रमवन् (मुञ्च) मोचय (नः) अस्मान् (परि) सर्वथा (अंहसः) पापात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा को साक्षी करके असत्य कभी न बोले ॥८॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥

यत् । आपः। अघ्न्याः। इति । वरुण । इति । यत् । ऊचिम॥
तस्मात् । सहस्र-वीर्य । मुञ्च । नः। परि । अंहसः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(यत्) क्योंकि (आपः) प्राण और (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौयें हैं, (इति) इस लिये, (वरुण) हे वरुण ! [सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्] (इति) इस लिये, (यत्) जो कुछ [असत्य] (ऊचिम) हम ने बोला है । (सहस्रवीर्य) हे सहस्रप्रकार के पराक्रम वाले ! [ईश्वर] (तस्मात्) उस (अंहसः) पाप से (नः) हमें (परि) सर्वथा (मुञ्च) छुड़ा ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने प्राणों, गौओं और परमात्मा का शपथ करके कभी असत्य न बोलें और न कभी पाप करें ॥ ९ ॥

इस मन्त्र का पहिला भाग आ चुका है—अ० ७ । ८३ । २, और कुछ भेद से यजुर्वेद में है-२० । १८ ॥

मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

मित्रः । च । त्वा । वरुणः । च । अनु-प्रेयतुः । आ-अञ्जन॥
तौ। त्वा । अनु-गत्य । दूरम्। भोगाय । पुनः। आ ।ऊहतुः१०

भाषार्थ—(आञ्जन) हे आञ्जन ! [संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] [मेरे] (मित्रः) प्राणः (च च) और (वरुणः) अपान दोनों (त्वा अनुप्रेयतुः)

९—(यत्) यस्मात् (आपः) प्राणाः (अघ्न्याः) अहन्तव्या गावः (इति) अनेन प्रकारेण (वरुण) हे सर्वोत्कृष्ट (इति) एवम् (यत्) अनृतम् (ऊचिम) वयं कथितवन्तः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१०—(मित्रः) मम प्राणः (च) (त्वा) त्वां परमात्मानम् (वरुणः) अपानः (च) (अनुप्रेयतुः) इण् गतौ—लिट् । अनुसृत्यअग्रे जग्मतुः (आञ्जन)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Chennai and eGangotri

तेरे पीछे आगे चले गये हैं। (तौ) वे दोनों (दूरम्) दूर तक (अनुगत्य) पीछे चलकर (त्वा) तुझ को (भोगाय) सुख भोगने के लिये (पुनः) फिर (आ ऊहतुः) ले आये हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्राण और अपान अर्थात् पूरे सामर्थ्य से परमात्मा को दूर दूर तक खोजते हैं, वे ही उसको अपने समीप पाकर आनन्द भोगते हैं ॥ १० ॥

सूक्तम् ४५ ॥

१-१० ॥१-५ आञ्जनं देवता ; ६—१० मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ भुरिगनुष्टुप्; २ निचृदार्ष्यनुष्टुप् ; ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ; ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ; ६ भुरिगार्ष्यनुष्टुप् ; ७-९ स्वराडार्ष्यनुष्टुप् ; १० निचृदार्षी बृहती ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतौ गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥

ऋणात् । ऋणम्-इव । सम्-नयन् । कृत्याम् । कृत्या-कृतः । गृहम् ॥ चक्षुः-मन्त्रस्य । दुः-हार्दः । पृष्टीः । अपि । शृण । आ-अञ्जन ॥ १ ॥

भाषार्थ—(इव) जैसे (ऋणात्) ऋण में से (ऋणम्) ऋण को [अर्थात् जैसे ऋण का भाग ऋण दाता को मनुष्य शीघ्र भेजता है वैसे] (कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृतः) हिंसा करने वाले के (गृहम्) घर (संनयन्) भेज देता हुआ तू, (आञ्जन) हे आञ्जन ! [संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म]

म० १। संसारस्य व्यक्तीकारक ब्रह्म (तौ) प्राणापानौ (त्वा) त्वाम् (अनुगत्य) अनुसृत्य (भोगाय) सुखानुभवाय (पुनः) (आ ऊहतुः) वह प्रापणे—लिट् । आनीतवन्तौ ॥

१—(ऋणात्) ऋ गतौ—क्तप्रत्ययः, तस्य नत्वम् । पुनर्देयत्वेन गृहीताद्धनात् (ऋणम्) ऋणभागम् (इव) यथा (संनयन्) सम्यक् प्रापयन् (कृत्याम्) हिंसाम् (कृत्याकृतः) हिंसाकारकस्य (गृहम्) चक्षुर्मन्त्रस्य) अ० २ । ७ । ५ । चक्षुः+मन्त्रि गुप्तभाषणे-अच् घञ् वा । नेत्रसंकेतेन विचारशीलस्य पिशुनस्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चतुर्मन्त्रस्य) आंख से गुप्त बात करने वाले (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) अवश्य (शृण) तोड़ डाल ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य उधार देने वाले को उधार लिया हुआ शीघ्र भेजकर सुख पाता है, वैसे ही मनुष्य पीड़ा देने वाले को शीघ्र दण्ड देकर आनन्द पावें ॥ १ ॥

इस मन्त्रका उत्तरार्द्ध कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—अ० २ । ७ । ५ ॥

यदुस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रिय प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥

यत् । अस्मासु । दुः-स्वप्न्यम् । यत् । गोषु । यत् । च । नः । गृहे ॥ अनामगः । तम् । च । दुः-हार्दः । प्रियः । प्रति । मुञ्चताम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न (अस्मासु) हम में, (यत्) जो (गोषु) गोओं में (च) और (यत्) जो (नः) हमारे (गृहे) घर में है । (च) और (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले का (अनामगः) अनामय [स्वास्थ्य] है, (तम्) उस को [भी] (प्रियः) [हमारा] प्रिय (प्रति) प्रतिकूल (मुञ्चताम्) छोड़े ॥ २ ॥

भावार्थ—यदि दुष्ट लोग धर्मात्माओं के साथ पीड़ाजनक व्यवहार करें, तो उनको उसका यथोचित दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः । चतु-

(दुर्हार्दः) दुष्टहृदयस्य (पृष्टीः) पार्श्वास्थीनि (अपि) अवश्यम् (शृण) विनाशय (आञ्जन) ४४ । १ । हे संसारस्य व्यक्तीकारक ब्रह्म ॥

२—(यत्) (अस्मासु) धर्मात्मसु (दुःष्वप्न्यम्) निद्रावैकल्यम् (यत्) (गोषु) धेनुषु (यत्) (च) (नः) अस्माकम् (गृहे) निवासे (अनामगः) नञ्+आम+गमेः-डप्रत्ययः । आमो रोगः । अनामं नैरोग्यं गच्छति प्राप्नोति यस्मात् सः । अनामयः । स्वास्थ्यम् (तम्) अनामयम् (च) (दुर्हार्दः) दुष्टहृदयस्य (प्रियः) अस्माकं हितकरः (प्रति) प्रतिकूलम् (मुञ्चताम्) मोचयतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः कर्दिच्छिवास्ते॥३॥

अपाम्। ऊर्जः। ओजसः। वावृधानस्य। अग्नेः। जातस्य। अधि। जातवेदसः॥ चतुः-वीरम्। पर्वतीयम्। यत्। आ-अञ्जनम्। दिशः। प्र-दिशः। कर्त्। इत्। शिवाः। ते॥३

भाषार्थ—(अपाम्) प्रजाओं के (ऊर्जः) अन्न के और (ओजसः) पराक्रम के (वावृधानम्) बढ़ाने वाले और (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नेः) अग्नि [सूर्य आदि] से (अधि) अधिक (जातम्) प्रसिद्ध, (चतुर्वीरम्) चारो दिशाओं में वीर और (पर्वतीयम्) मेघों में वर्तमान (यत्) जो (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] है, वह (दिशः) दिशाओं और (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं [पूर्व आदि] को (ते) तेरे लिये, हे मनुष्य ! (इत्) अवश्य (शिवाः) कल्याणकारी (करत्) करे ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा में भक्ति करके पुरुषार्थ करते हैं, वे सब दिशाओं में सुख पाते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशोअभयास्ते भवन्तु। ध्रुवस्तिष्ठाश्वि सवितेव चार्यै दुमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥

चतुः वीरम्। बध्यते। आ-अञ्जनम्। ते। सर्वाः। दिशः। अभयाः। ते। भवन्तु॥ ध्रुवः। तिष्ठाश्वि। सविता-इव। च। आर्यै। दुमाः। विशः। अभि। हरन्तु। ते। बलिम्॥४॥

३—(अपाम्) प्रजानाम् (ऊर्जः) अन्नस्य (ओजसः) पराक्रमस्य च (वावृधानम्) अतिवर्धकम् (अग्नेः) सूर्यादिसकाशात् (जातम्) प्रसिद्धम् (अधि) अधिकम् (जातवेदसः) जातेषु पदार्थेषु विद्यमानात् (चतुर्वीरम्) चतसृषु दिक्षु शूरम् (पर्वतीयम्) पर्वतेषु मेघेषु वर्तमानम् (यत्) (आञ्जनम्) संसारस्य व्यक्तीकारकं ब्रह्म (दिशः) अवान्तरदिशाः (प्रदिशः) प्रकृष्टा दिशाः प्राग्याः (करत्) कुर्यात् (इत्) अवश्यम् (शिवाः) सुखप्रदाः (ते) तुभ्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर, (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] (बध्यते) धारण किया जाता है, (ते) तेरे लिये (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (अभयाः) निर्भय (भवन्तु) होवें । (च) और (आर्यः) श्रेष्ठ तू (सविता इव) सूर्य के समान (ध्रुवः) दृढ़ होकर (तिष्ठासि) ठहरा रह, (इमाः) यह (विशः) प्रजायें (ते) तेरे लिये (बलिम्) बलि [कर] (अभि) सब ओर से (हरन्तु) लावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमात्मा के दृढ़स्वभाव उपासक पुरुष दिग्विजयी होकर सब प्रजाओं को वश में करें ॥ ४ ॥

आक्ष्वैकं॑ म॒णिमेकं॑ कृणुष्व॒ स्ना॒ह्येके॒ना पि॒बैक॑मेषाम् । चतु॑र्वीरं नैर्ऋ॒तेभ्य॑श्च॒तुर्भ्यो॒ ग्राह्या॑ ब॒न्धेभ्यः॒ परि॑ पात्व॒स्मान् ॥ ५ ॥

आ । अ॒क्ष्व॒ । एक॑म् । म॒णिम् । एक॑म् । कृ॒णु॒ष्व॒ । स्ना॒हि । एके॑न । आ । पि॒ब॒ । एक॑म् । ए॒षा॒म् ॥ चतुः॑-वीरम् । नैः॒-ऋ॒तेभ्यः॑ । च॒तुः-भ्यः॑ । ग्राह्याः॑ । ब॒न्धेभ्यः॑ । परि॑ । पा॒तु॒ । अ॒स्मान् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (एकम्) एक [ब्रह्म] को (आ) सब ओर से (अक्ष्व) प्राप्त हो, (एकम्) एक को (मणिम्) श्रेष्ठ (कृणुष्व) बना, (एकेन) एक के साथ (स्नाहि) शुद्ध हो, (एषाम्) इन [पदार्थों] में से

४—(चतुर्वीरम्) चतसृषु दिक्षु शूरम् (बध्यते) ध्रियते (आञ्जनम्) संसारस्य व्यक्तीकारकं ब्रह्म (ते) तुभ्यम् (सर्वाः) समस्ताः (दिशः) (अभयाः) निर्भयाः (ते) तुभ्यम् (भवन्तु) (ध्रुवः) दृढः सन् (तिष्ठासि) स्थितो भूयाः (सविता) सूर्यः (इव) यथा (च) (आर्यः) श्रेष्ठस्त्वम् (इमाः) वर्तमानाः (विशः) प्रजाः (अभि) अभितः (हरन्तु) प्रापयन्तु (ते) तुभ्यम् (बलिम्) करम् । भागम् ॥

५—(आ) समन्तात् (अक्ष्व) अक्षू व्याप्तौ—आत्मनेपदं लोट् । प्राप्नुहि (एकम्) अद्वितीयं ब्रह्म (मणिम्) श्रेष्ठम् (एकम्) ब्रह्म (कृणुष्व) कुरु (स्नाहि) शुद्धो भव (एकेन) ब्रह्मणा (आ) आनीय (पिब) पानं कुरु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एकम्) एक को (आ) लेकर (पिब) पान कर । (चतुर्वीरम्) चारो दिशाओं में वीर [ब्रह्म] (ग्राह्याः) ग्राही [गठिया रोग] के (नैर्ऋतेभ्यः) महाविपत्ति वाले (चतुर्भ्यः) चारो [दिशाओं में फैले] (बन्धेभ्यः) बन्धनों से (अस्मान्) हमें (परि पातु) बचाये रक्खे ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य एक अद्वितीय परमात्मा में श्रद्धा करके शारीरिक और आत्मिक रोगों से मुक्त होवे ॥ ५ ॥

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

अग्निः । मा । अग्निना । अवतु । प्राणाय । अपानाय । आयुषे । वर्चसे । ओजसे । तेजसे । स्वस्तये । सु-भूतये । स्वाहा ६

भाषार्थ—(अग्निः) ज्ञानवान् [परमेश्वर] (मा) मुझे (अग्निना) ज्ञान के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये, (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा की उपासना पूर्वक शारीरिक कान्ति और आत्मिक उन्नति करके अपना बल, पराक्रम आदि बढ़ावें ॥ ६ ॥

(एकम्) एषाम्) पदार्थानां मध्ये (चतुर्वीरम्) चतसृषु दिक्षु वीररूपं ब्रह्म (नैर्ऋतेभ्यः) निर्ऋति-अण् । महाविपत्तिसम्बन्धिभ्यः (चतुर्भ्यः) चतसृषु दिक्षु व्याप्तेभ्यः (ग्राह्याः) अ० २ । ६ । १ । ग्रहणशीलपीडायाः (बन्धेभ्यः) पाशेभ्यः (परि) सर्वतः (पातु) रक्षतु (अस्मान्) ॥

६—(अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वरः (मा) माम् (अग्निना) ज्ञानेन (अवतु) रक्षतु (प्राणाय) प्राणस्थैर्याय (अपानाय) अपानस्वास्थ्याय (आयुषे) श्रेष्ठजीवनाय (वर्चसे) प्रतापाय (ओजसे) पराक्रमाय (तेजसे) शरीरकान्तिवर्धनाय (स्वस्तये) कल्याणाय । सुसत्ताप्राप्तये (सुभूतये) शोभनायै सम्पदे (स्वाहा) सुवाणी भवतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥

इन्द्रः । मा । इन्द्रियेण । अवतु । प्राणाय । अपानाय । आयुषे । वर्चसे । ओजसे । तेजसे । स्वस्तये । सु-भूतये । स्वाहा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (मा) मुझे (इन्द्रियेण) इन्द्र के चिह्न [परम ऐश्वर्य] के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये ·····[म० ६] ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र ६ के समान है ॥ ७ ॥

सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥

सोमः । मा । सौम्येन । अवतु । प्राणाय । अपानाय । आयुषे । वर्चसे । ओजसे । तेजसे । स्वस्तये । सु-भूतये । स्वाहा८

भाषार्थ—(सोमः) शान्तस्वभाव परमेश्वर (मा) मुझे (सौम्येन) शान्त गुण के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये·····[मन्त्र ६] ॥ ८ ॥

भावार्थ—मन्त्र ६ के समान है ॥ ८ ॥

भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥

७—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (इन्द्रियेण) इन्द्रियमिन्द्रलिङ्ग० । पा० ५ । २ । ९३ । इन्द्र—घच् । इन्द्रलिङ्गेन । इन्द्रत्वेन । परमैश्वर्येण । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८—(सोमः) शान्तस्वभावः परमेश्वरः (सौम्येन) शान्तगुणेन । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगः । मा । भगेन । अवतु । प्राणाय । अपानाय । आयुषे । वर्चसे । ओजसे । तेजसे । स्वस्तये । सु-भूतये । स्वाहा ॥८॥

भाषार्थ—(भगः) सेवनीय [परमेश्वर] (मा) मुझे (भगेन) सेवनीय ऐश्वर्य के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये.....[मन्त्र ६] ॥ ९ ॥

भावार्थ—मन्त्र ६ के समान है ॥ ९ ॥

मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥

मरुतः । मा । गणैः । अवन्तु । प्राणाय । अपानाय । आयुषे । वर्चसे । ओजसे । तेजसे । स्वस्तये । सु-भूतये । स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थ—(मरुतः) शूर पुरुष (मा) मुझे (गणैः) सेना दलों के साथ (अवन्तु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये, (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ १० ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परस्पर रक्षा करके संसार में उन्नति करें ॥१०॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ४६ ॥

१—७ ॥ अस्तृतो देवता ॥ १ विराडार्षी त्रिष्टुप्; २ भुरिक् शक्करी; ३, ७ निचृत्पथ्या पङ्क्तिः; ४ निचृदार्षी त्रिष्टुप्; ५ स्वराडार्षी जगती; ६ विराडार्षीजगती॥

९—(भगः) सेवनीयः परमेश्वरः (भगेन) सेवनीयेनैश्वर्येण । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१०—(मरुतः) म० १ । २० । १ । शत्रुनाशकाः शूराः (गणैः) सैन्यैः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजयप्राप्त्युपदेशः-विजय की प्राप्ति का उपदेश ॥

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥१॥

प्रजा-पतिः । त्वा । बध्नात् । प्रथमम् । अस्तृतम् । वीर्याय । कम् ॥ तत् । ते । बध्नामि । आयुषे । वर्चसे । ओजसे । च । बलाय । च । अस्तृतः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा=तुभ्यम्) तेरे लिये (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर] ने (प्रथमम्) पहिले से (अस्तृतम्) अटूट [नियम] को (वीर्याय) वीरता के लिये और (कम्) सुख के लिये (बध्नात्) बांधा है । (तत्) इस लिये [उस नियम को] (ते) तेरे (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (च च) और (बलाय) बल [सामर्थ्य] के लिये (बध्नामि) मैं [आचार्यादि] बांधता हूं, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने सृष्टि के आदि में मनुष्यादि के पुरुषार्थ करने और सुख भोगने के लिये वेद शास्त्र द्वारा नियम ठहराये हैं । मनुष्य उन नियमों में सुशिक्षित होकर अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादुमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पुणयो यातुधानाः । इन्द्र इव दस्युनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छचून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥

१—(प्रजापतिः) प्रजानां पालकः परमात्मा (त्वा) तुभ्यमित्यर्थः (बध्नात्) अबध्नात् । धारितवान् (प्रथमम्) सृष्ट्यादौ (अस्तृतम्) स्तृञ् हिंसायाम्—क्त । अबाधितं सुदृढं नियमम् (वीर्याय) वीरकर्मणे (कम्) सुखाय (तत्) तस्मात् कारणात् (ते) तुभ्यम् (बध्नामि) धारयामि (आयुषे) जीवनाय (वर्चसे) प्रतापाय (ओजसे) पराक्रमाय (च) (बलाय) सामर्थ्याय (च) (अस्तृतः) अबाधितो नियमः (अभि) सर्वतः (रक्षतु) पालयतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊ॒र्ध्वः । ति॒ष्ठ॒तु॒ । र॒क्षन् । अप्र॑-मादम् । अस्तृ॑तः । इ॒मम् । मा । त्वा॒ । दु॒भ॒न् । पण॑यः । यातु॑-धानाः ॥ इन्द्रः॑-इव । दस्यू॑न् । अव॑ । धू॒नु॒ष्व॒ । पृ॒त॒न्य॒तः । सर्वा॑न् । श॒त्रू॒न् । वि । स॒ह॒स्व॒ । अस्तृ॑तः । त्वा॒ । अ॒भि । र॒क्षतु ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (अस्तृतः) अटूट [नियम] (अप्रमादम्) बिना भूल (रक्षन्) रक्षा करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊंचा (तिष्ठतु) ठहरे, (इमम् त्वा) इस तुझ को (पणयः) कुव्यवहारी, (यातुधानाः) पीड़ा देने वाले लोग (मा दभन्) न दबावें । (इन्द्रः इव) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] के समान (दस्यून्) लुटेरों को (अव धूनुष्व) हिला दे, और (पृतन्यतः) सेना चढ़ाने वाले (सर्वान्) सब (शत्रून्) शत्रुओं को (वि सहस्व) हरा दे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य नियम के साथ प्रमाद छोड़कर निरन्तर उन्नति करते हैं, वे ही शत्रुओं पर विजय पाते हैं ॥ २ ॥

श्रुतं॑ च॒ न प्र॒हर॑न्तो नि॒घ्नन्तो॒ न त॑स्तिरे । तस्मि॒न्निन्द्रः॑ पर्यदत्त॒ चक्षुः॑ प्रा॒णम॒थो बल॒मस्तृ॑तस्त्वा॒भि र॑क्षतु ॥ ३ ॥

श्रुत॑म् । च॒ । न । प्र॒-हर॑न्तः । न । त॒स्ति॒रे॒ । तस्मि॑न् । इन्द्रः॑ । परि॑ । अ॒द॒त्त॒ । चक्षुः॑ । प्रा॒णम् । अ॒थो इति॑ । बल॑म् । अ॒स्तृ॑तः । त्वा॒ । अ॒भि । र॒क्षतु ॥ ३ ॥

२—(ऊर्ध्वः) उन्नतः (तिष्ठतु) वर्तताम् (रक्षन्) पालयन् (अप्रमादम्) अनवधानेन विना । सावधानम् (अस्तृतः) म० १ । अबाधितो नियमः (इमम्) उपस्थितम् (अस्तृतेमम्) अस्तृतः+इमम् । इति पदपाठे सति छान्दसः सन्धिः । अस्तृत इमम् (त्वा) त्वाम् (मा दभन्) मा हिंसन्तु (पणयः) कुव्यवहारिणः (यातुधानाः) पीडाप्रदाः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (इव) यथा (दस्यून्) उपक्षपयितॄन् तस्करान् (अव धूनुष्व) धूञ् कम्पने—लोट् । अवाङ्मुखान् कम्पय (पृतन्यतः) अ० १९ । ३२ । १० । सेनामिच्छतः । युयुत्सून् (सर्वान्) शत्रून् । रिपून् (वि) विविधम् (सहस्व) अभिभव । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (न) न तो (शतम्) सौ (प्रहरन्तः) चोट चलाने वाले (च) और (न) न (निघ्नन्तः) मार गिराने वाले शत्रु [उस नियम को] (तस्तिरे) तोड़ सके हैं। (तस्मिन्) उस [नियम] में (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] ने (चक्षुः) दर्शनसामर्थ्य, (प्राणम्) जीवन सामर्थ्य (अथो) और (बलम्) बल (परि अदत्त) दे रक्खा है, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—उन लोगों को बैरी लोग कभी नहीं सता सकते जो देख भाल कर नियम पर चलते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव । पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥४

इन्द्रस्य । त्वा । वर्मणा । परि । धापयामः । यः । देवानाम् । अधि-राजः । बभूव ॥ पुनः । त्वा । देवाः । प्र । नयन्तु । सर्वे । अस्तृतः । त्वा । अभि ॥ रक्षतु ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] के (वर्मणा) कवच से (परि धापयामः) हम ढकते हैं, (यः) जो [परमेश्वर] (देवानाम्) विद्वानों का (अधिराजः) अधिराजा (बभूव) हुआ है। (पुनः) फिर (त्वा) तुझको (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान्

३—(शतम्) बहवः (च) (न) निषेधे (प्रहरन्तः) प्रहारं कुर्वन्तः। शस्त्रादिभिर्बाधमानाः (निघ्नन्तः) नितरां हिंसन्तो मारयन्तः (न) निषेधे (तस्तिरे) स्तृञ् हिंसायाम्—लिट्। जिहिंसुः (तस्मिन्) अस्तृते। नियमे (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वरः (परि अदत्त) समर्पितवान् (चक्षुः) दर्शनसामर्थ्यम् (प्राणम्) जीवनसामर्थ्यम् (अथो) अपि च (बलम्)। अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—(इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः परमात्मनः (त्वा) (वर्मणा) कवचेन (परि) सर्वतः (धापयामः) आवृणमः (यः) (देवानाम्) विदुषाम् (अधि-राजः) इच् समासान्तः। अधिपतिः (बभूव) (पुनः) अनन्तरम् (त्वा)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग (प्र णयन्तु) आगे ले चलें, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—माता पिता आदि सन्तानों को ऐसी उत्तम शिक्षा देवें, जिस से वे सत्य नियम पर चलकर विद्वानों के अनुआ होवें ॥ ४॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते । व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥

अस्मिन् । मणौ । एक-शतम् । वीर्याणि । सहस्रम् । प्राणाः । अस्मिन् । अस्तृते ॥ व्याघ्रः । शत्रून् । अभि । तिष्ठ । सर्वान् । यः । त्वा । पृतन्यात् । अधरः । सः । अस्तु । अस्तृतः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(अस्मिन्) इस, (अस्मिन्) इस ही (मणौ) प्रशंसनीय (अस्तृते) अटूट [नियम] में (एकशतम्) एकसौ एक [असंख्य] (वीर्याणि) वीरतायें और (सहस्रम्) सहस्र [बहुत ही] (प्राणाः) जीवन सामर्थ्य हैं। (व्याघ्रः) बाघ तू (सर्वान्) सब (शत्रून्) शत्रुओं पर (अभि तिष्ठ) धावा कर, (यः) जो (त्वा) तुझ पर (पृतन्यात्) सेना चढ़ावे, (सः) वह (अधरः) नीचा (अस्तु) होवे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ ५ ॥

(देवाः) विद्वांसः (प्र) अग्रे (नयन्तु) गमयन्तु (सर्वे) समस्ताः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—(अस्मिन्) पूर्वनिर्दिष्टे (मणौ) प्रशंसनीये (एकशतम्) एकोत्तरं शतम् । असंख्यानि (वीर्याणि) वीरकर्माणि (सहस्रम्) बहवः (प्राणाः) जीवनसामर्थ्यानि (अस्मिन्) वीप्सायां द्विर्वचनम् । अस्मिन्नेव (अस्तृते) म० १ । अहिंसिते नियमे (व्याघ्रः) वि+आङ्+घ्रा गन्धोपादाने—क । सिंहो व्याघ्र इति पूजायाम्, व्याघ्रो व्याघ्राणाद् व्यादाय हन्तीति वा—निरु० ३ । १८। व्याघ्र इव शत्रुगन्धं विशेषेण आजिघ्रन् (शत्रून्) रिपून् (अभितिष्ठ) आक्रमेण प्राप्नुहि । अभिभव (सर्वान्) समस्तान् (यः) शत्रुः (त्वा) (पृतन्यात्) योद्धुमिच्छेत् (अधरः) निकृष्टः (सः) (अस्तु) अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर के अटूट नियम पर चल कर शत्रुओं को नीचा करें। और जैसे व्याघ्र सूंघने से आखेट को जान लेता है, वैसे ही मनुष्य बैरियों को पकड़ने में तीव्रबुद्धि होवें ॥ ५ ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥

घृतात् । उत्-लुप्तः । मधु-मान् । पयस्वान् । सहस्र-प्राणः । शत-योनिः । वयः-धाः ॥ शम्-भूः । च । मयः-भूः । च । ऊर्जस्वान् । च । पयस्वान् । च । अस्तृतः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तः) ऊपर खींचा गया, (मधुमान्) ज्ञानवान्, (पयस्वान्) अन्नवान्, (सहस्रप्राणः) सहस्रों जीवन सामर्थ्य वाला, (शतयोनिः) सैकड़ों कारणों में व्यापक, (वयोधाः) पराक्रम देने वाला, (शंभूः) शान्ति करने वाला (च) और (मयोभूः) सुख देने वाला, (च) और (ऊर्जस्वान्) बल वाला (च च) और (पयस्वान्) दूध वाला, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का वेदोक्त नियम संसार में प्रकाशमान है, मनुष्य उस पर ही चलकर अपना शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल बढ़ाकर सुखी होवें ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आचुका है—अ० १६ । ३३ । २ और मन्त्र का मिलान करो—अ० ५ । २८ । १४ ॥

६—(घृतात्) प्रकाशात् (उल्लुप्तः) उद्धृतः (मधुमान्) ज्ञानवान् (पयस्वान्) अन्नवान् (सहस्रप्राणः) बहुजीवनसामर्थ्योपेतः (शतयोनिः) बहुकारणेषु विद्यमानः (वयोधाः) पराक्रमप्रदः (शंभूः) शान्तिदाता (च) (मयोभूः) सुखस्य कर्ता (च) (ऊर्जस्वान्) बलवान् (च) (पयस्वान्) दुग्धवान् (च) । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा । सजातानामसद् वशी
तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

यथा । त्वम् । उत्-तरः । असः । असपत्नः । सपत्न-हा ॥ स-
जातानाम् । असत् । वशी । तथा । त्वा । सविता । करत् ।
अस्तृतः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ ७ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (यथा) जिस से (त्वम्) तू (उत्तरः) अति ऊंचा, (असपत्नः) बिना शत्रु और (सपत्नहा) शत्रुओं का मारने वाला (असः) होवे । और आप (सजातानाम्) सजातियों के (वशी) वश में करने वाला (असत्) होवें, (तथा) वैसा ही (त्वा) तुझ को (सविता) सब का प्रेरक [परमात्मा] (करत्) बनावे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—परमात्मा के वेदोक्त नियम पर चलने वाले मनुष्य सब विघ्नों को हटाकर आनन्द से रहें ॥ ७ ॥

सूक्तम् ४७ ॥

१—९ ॥ रात्रिर्देवता ॥ १ पथ्या बृहती; २ निचृदतिजगती; ३ निचृदनुष्टुप्; ४, ५, ८ अनुष्टुप्; ६ पुरस्ताद् बृहती; ७ विराडार्षी जगती; ९ विराडार्ष्यनुष्टुप् ॥

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥
आ । रात्रि । पार्थिवम् । रजः । पितुः । अप्रायि । धामभिः ॥

७—(यथा) येन प्रकारेण (त्वम्) (उत्तरः) उत्कृष्टतरः (असः) अस्तेर्लेटि रूपम् । भवेः (असपत्नः) अशत्रुः (सपत्नहा) विरोधिनां हन्ता (सजातानाम्) समानजन्मनां पुरुषाणाम् (असत्) भवेद् भवान् । भवच्छब्द-योगे प्रथमपुरुषः (वशी) वशयिता (तथा) तेन प्रकारेण (सविता) सर्व-प्रेरकः परमात्मा (करत्) कुर्यात् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवः । सदांसि । बृहती । वि । तिष्ठसे । आ । त्वेषम् । वर्तते । तमः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (पार्थिवम्) पृथिवी संबन्धी (रजः) लोक, (पितुः) पिता [मध्यलोक] के (धामभिः) स्थानों के साथ [अन्धकार से] (आ) सर्वथा (अप्रायि) भर गया है। (बृहती) बड़ी तू (दिवः) प्रकाश के (सदांसि) स्थानों को (वि तिष्ठसे) व्याप्त होती है, (त्वेषम्) चमकीला [ताराओं वाला] (तमः) अन्धकार (आ वर्तते) आकर घेरता है ॥१॥

भावार्थ—पृथिवी की गोलाई, और सूर्य के चारों ओर दैनिक घुमाव के कारण, पृथिवी का आधा भाग प्रत्येक समय सूर्य से आड़ में रहता है, अर्थात् प्रत्येक क्षण आधे भाग में अन्धकार और आधे में प्रकाश होता जाता है। अन्धकार समय को रात्रि कहते हैं। रात्रि में तारे और चन्द्र चमकते दीखते हैं; मनुष्य रात्रि समय को यथावत् काम में लावें ॥ १ ॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—३६ । ३२ और—निरुक्त ६ । २६ में भी व्याख्यात है॥

न यस्याः पारं ददृम्भे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति । अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥

न । यस्याः । पारम् । ददृम्भे । न । योयुवत् । विश्वम् । अस्याम् । नि । विशते । यत् । एजति ॥ अरिष्टासः । ते । उर्वि । तमस्वति । रात्रि । पारम् । अशीमहि । भद्रे । पारम् । अशीमहि ॥ २ ॥

१—(आ) समन्तात् (रात्रि) हे रात्रि (पार्थिवम्) पृथिवीसम्बन्धि (रजः) लोकः (पितुः) पालकस्य । मध्यलोकस्य (अप्रायि) प्रा पूरणे—कर्मणि लुङ् । अपूरि (धामभिः) स्थानैः सह (दिवः) प्रकाशस्य (सदांसि) स्थानानि (बृहती) महती त्वम् (वितिष्ठसे) व्याप्नोषि (आ) समन्तात् (त्वेषम्) ताराभिर्दीप्यमानम् (वर्तते) विद्यते (तमः) अन्धकारः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(न) न तो (अस्याः) जिस [रात्रि] का (पारम्) पार और (न) न (योयुवत्) [प्रकाश से] अलग होने वाला [स्थान] (दद्दशे) दिखाई पड़ता है, (यत्) जो कुछ (एजति) चेष्टा करता है, (सर्वम्) वह सब (अस्याम्) उस [रात्रि] में (नि विशते) ठहर जाता है । (उर्वि) हे फैली हुयी, (तमस्वति) अंधेरी (रात्रि) रात्रि ! (अरिष्टासः) बिना कष्ट पाये हुये हम (ते) तेरे (पारम्) पार को (अशीमहि) पावें, (भद्रे) हे कल्याणी ! [तेरे] (पारम्) पार को (अशीमहि) पावें ॥ २ ॥

भावार्थ—पृथिवी के अपनी धुरी पर घूमने और सूर्य की परिक्रमा करने में प्रकाश की निवृत्ति और अन्धकार की प्रवृत्ति ऐसी शीघ्र होती है कि मनुष्य को उस समय का अनुभव करना अति कठिन है । मनुष्य विश्राम करके यथा योग्य अपने कामों में प्रवृत्त होवें ॥ २ ॥

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्वेष्टारो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्युष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥

ये । ते । रात्रि । नृ-चक्षसः । द्वेष्टारः । नवतिः । नव ॥
अशीतिः । सन्ति । अष्टौ । उतो इति । ते । सप्त । सप्ततिः ॥३॥

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥

षष्टिः । च । षट् । च । रेवति । पञ्चाशत् । पञ्च । सुम्नयि ॥
चत्वारः । चत्वारिंशत् । च । त्रयः । त्रिंशत् । च । वाजिनि ॥४

२—(न) निषेधे (यस्याः) रात्रेः (पारम्) अन्तः (दद्दशे) द्रष्टुम् (न) निषेधे (योयुवत्) यौतेर्यङ्लुगन्तात्—शतृ । प्रकाशाद् विभज्यमानं स्थानम् (विश्वम्) सर्वम् (अस्याम्) रात्रौ (निविशते) तिष्ठति (यत्) यत् किञ्चित् (एजति) चेष्टते (अरिष्टासः) अरिष्टाः । अहिंसिताः (ते) तव (उर्वि) हे विस्तृते (तमस्वति) हे अन्धकारयुक्ते (पारम्) अन्तम् (अशीमहि) वयं प्राप्नुयाम (भद्रे) हे कल्याणि (पारम् अशीमहि) आदरार्थं पुनरुक्तिः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावुमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥

द्वौ । च । ते । विंशतिः । च । ते । रात्रि । एकादश । अवुमाः ॥ तेभिः । नः । अद्य । पायु-भिः । नु । पाहि । दुहितः । दिवः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (ये) जो (ते) तेरे (नृचक्षसः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले (द्रष्टारः) दर्शक लोग (नवतिः नव) नब्बे और नौ [निन्नानवे], (अशीतिः अष्टौ) अस्सी और आठ [अठासी] (उतो) और (ते) तेरे (सप्ततिः सप्त) सत्तर और सात [सतहत्तर] (सन्ति) हैं ॥ ३ ॥

(रेवति) हे धनवती ! (षष्टिः च षट्) साठ और छह [छियासठ] (च) और (सुम्नयि) हे सुखप्रदे ! (पञ्चाशत् पञ्च) पंचास और पांच [पचपन], (च) और (वाजिनि) हे बलवती ! [वा वेगवती] (चत्वारिंशत् चत्वारः) चालीस और चार [चवालीस], (च) और (त्रिंशत् त्रयः) तीस और तीन [तेतीस] ॥ ४ ॥

३—(ये) (ते) तव (रात्रि) हे रात्रि (नृचक्षसः) मनुष्येषु दृष्टियुक्ताः (द्रष्टारः) दर्शकाः । रक्षकाः (नवतिर्नव) नवोत्तरनवतिसंख्याकाः (अशीतिः अष्टौ) अष्टोत्तराशीतिसंख्याकाः (सन्ति) भवन्ति (उतो) अपि च (सप्ततिः सप्त) सप्तोत्तरसप्ततिसंख्याकाः ॥

४—(षष्टिः षट्) षडुत्तरषष्टिसंख्याकाः (च) (च) (रेवति) हे धनवति (पञ्चाशत् पञ्च) पञ्चोत्तरपञ्चाशत् संख्याकाः (सुम्नयि) छन्दसि परेच्छायां क्यच् । वा० पा० ३ । १ । ८ । सुम्न—क्यच्, अच्, गौरादित्वाद् ङीष् । सुम्नं सुखं परेषामिच्छतीति या सा सुम्नयी तत्सम्बुद्धौ । हे सुखप्रदे (चत्वारिंशत् चत्वारः) चतुरुत्तरचत्वारिंशत्संख्याकाः (च) (त्रयस्त्रिंशत्) त्रिरुत्तरत्रिंशतसंख्याकाः (च) (वाजिनि) हे बलवति हे वेगवति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रात्रि) हे रात्रि ! (च) और (ते) तेरे (विंशतिः द्वौ) बीस और दो [बाईस], (च) और (ते) तेरे (एकादश) ग्यारह और (अवमाः) [जो इस संख्या से] नीचे हैं, (दिवः दुहितः) हे आकाश की भरदेने वाली ! (तेभिः पायुभिः) उन रक्षकों द्वारा (नः) हमें (अद्य) आज (नु) शीघ्र (पाहि) बचा ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३—५ में ९९ में से ११, ११ घटते घटते ११ तक रहे हैं और [नीचे] शब्द से शेष संख्या एक तक मानी है। भाव यह है कि मनुष्य अपनी योग्यता के अनुसार बहुत वा थोड़े रक्षकों द्वारा रात्रि में रक्षा करते रहें ॥ ३—५ ॥

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥

रक्ष । माकिः । नुः । अघ-शंसः । ईशत । मा । नुः । दुः-शंसः । ईशत ॥ मा । नुः । अद्य । गवाम् । स्तेनः । मा । अवीनाम् । वृकः । ईशत ॥ ६ ॥

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥

मा । अश्वानाम् । भद्रे । तस्करः । मा । नृणाम् । यातु-धान्यः ॥ परमेभिः । पथि-भिः । स्तेनः । धावतु । तस्करः । परेण । दत्वती । रज्जुः । परेण । अघ-युः । अर्षतु ॥ ७ ॥

५—(द्वौ विंशतिः) द्व्यधिकविंशतिसंख्याकाः (च) (ते) तव (च) (ते) तव (रात्रि) (एकादश) एकोत्तरदशसंख्याकाः (अवमाः) उक्त-संख्यातो निकृष्टा न्यूनाः (तेभिः) तैः (नः) अस्मान् (अद्य) अस्मिन् दिने (पायुभिः) रक्षकैः (नु) क्षिप्रम् (पाहि) रक्ष (दुहितः) हे प्रपूरयित्रि (दिवः) आकाशस्य ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(रक्ष) तू रक्षा कर, (अघशंसः) बुराई चीतने वाला (माकिः) न कभी (नः) हमारा (ईशत) राजा होवे, और (मा) न (दुःशंसः) अनहित सोचने वाला (नः) हमारा (ईशत) राजा होवे। (मा) न (स्तेनः) चोर (अद्य) आज (नः) हमारी (गवाम्) गौओं का, और (मा) न (वृकः) भेड़िया (अवीनाम्) भेड़ों का (ईशत) राजा होवे ॥ ६ ॥

(भद्रे) हे कल्याणी ! (मा) न (तस्करः) लुटेरा (अश्वानाम्) घोड़ों का, और (मा) न (यातुधान्यः) पीड़ा देने वाली [सेनायें] (नृणाम्) मनुष्यों की [राजा होवें]।

(स्तेनः) चोर, (तस्करः) लुटेरा (परमेभिः पथिभिः) अति दूर मार्गों से (धावतु) दौड जावे। (परेण) दूर [मार्ग] से (दत्वती रज्जुः) दंतीली रसरी [सांप], और (परेण) दूर [मार्ग] से (अघायुः) द्रोही जन (अर्षतु) चला जावे ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य ऐसा प्रबन्ध करें कि चोर डकैत आदि दुष्ट लोग और भेड़िया सर्प आदि हिंसक जीव प्राणियों और सम्पत्ति को हानि न पहुंचावें ॥ ६, ७ ॥

मन्त्र ६ का प्रथम पाद ऋग्वेद में है-६ । ७१ । ३ तथा ६ । ७५ । १० और यजुर्वेद ३३ । ६९ ॥

६—(रक्ष) पालय (माकिः) न कदापि (नः) अस्माकम् (अघशंसः) पापवक्ता (ईशत) ईश्वरो भवेत् (मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (दुःशंसः) दुष्टहिंसकः (ईशत) (मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (अद्य) अस्मिन् दिने (गवाम्) धेनूनाम् (स्तेनः) चोरः (मा) निषेधे (अवीनाम्) अजानाम् (वृकः) अरण्यश्वा (ईशत) समर्थो भवेत् ॥

७—(मा) निषेधे—ईशत, इत्यनुवर्तते (अश्वानाम्) तुरङ्गाणाम् (भद्रे) हे कल्याणि (तस्करः) परधनहारकः (मा) निषेधे (नृणाम्) मनुष्याणाम् (यातुधान्यः) पीडाप्रदाः सेनाः (परमेभिः) अतिदूरैः (पथिभिः) मार्गैः (स्तेनः) (धावतु) शीघ्रं गच्छतु (तस्करः) (परेण) अतिदूरेण मार्गेण (दत्वती) दन्तवती (रज्जुः) रज्जुवत्सर्पादिः (परेण) अतिदूरेण मार्गेण (अघायुः) अघ—क्यच्—उप्रत्ययः। पापेच्छुकः (अर्षतु) ऋषी गतौ भौवादिकः। गच्छतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधा रात्रि तृष्टधूंमस्यशीर्षाणमहि कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥

अध । रात्रि । तृष्ट-धूंमम् । अशीर्षाणम् । अहिम् । कृणु ॥
हनू इति । वृकस्य । जम्भयाः । तेन । तम् । द्रु-पदे । जहि ८॥

भाषार्थ—(अध) और (रात्रि) हे रात्रि ! (तृष्टधूमम्) क्रूर धुयें वाले [विषैली श्वास वाले] (अहिम्) सांप को (अशीर्षाणम्) रुण्ड [बिना शिर का] (कृणु) कर दे, [शिर कुचल कर मार डाल] (वृकस्य) भेड़िये के (हनू) दोनों जावड़े (जम्भयाः) तोड़ डाल, (तेन) उससे (तम्) उसको (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (जहि) मार डाल ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य हिंसक जीव और मनुष्यों को ऐसे प्रबन्ध से रक्खें। कि वे किसी को हानि न करें ॥ ८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—५० । १ ॥

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

त्वयि । रात्रि । वसामसि । स्वपिष्यामसि । जागृहि ॥
गोभ्यः । नः । शर्म । यच्छ । अश्वेभ्यः । पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (त्वयि) तुझ में (वसामसि) हम निवास करते हैं, (स्वपिष्यामसि) हम सोवेंगे, (जागृहि) तू जागती रह । (नः)

८—(अध) अथ । अपि च (रात्रि) (तृष्टधूमम्) अतितृषा पिपासायाम्-क्त । क्रूरधूमम् । विषयुक्तश्वासोपेतम् (अशीर्षाणम्) शिरोरहितम् (अहिम्) सर्पम् (कृणु) कुरु (हनू) मुखस्य अन्तःस्थूलदन्तयुक्तौ पार्श्वौ (वृकस्य) अजादीनामपहर्तुः । अरण्यशुनः (जम्भयाः) जभि गात्रविनामे लेटि, आडागमः । जम्भयेः । विनाशय (तेन) (तम्) वृकम् (द्रुपदे) काष्ठबन्धे (जहि) मारय ॥

९—(त्वयि) (रात्रि) (वसामसि) वसामः । निवसामः (स्वपिष्यामसि) छान्दस इडागमः । स्वप्स्यामः । निद्रां करिष्यामः (जागृहि) जागरिता भव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी (गोभ्यः) गौओं को, (अश्वेभ्यः) घोड़ों को और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को (शर्म) सुख (यच्छ) दे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य परिश्रम करके रात्रि में प्रबन्ध के साथ सोवें, जिससे सब गौ, घोड़े, मनुष्य आदि सुख से रहें ॥ ६ ॥

सूक्तम् ४८ ॥

१-६ ॥ रात्रिर्देवता ॥ १ गायत्री; २ विराडार्ष्यनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप्; ४, ६ अनुष्टुप्; ५ पथ्या पङ्क्तिः ॥

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

अथो यानि च यस्मा हु यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥

अथो इति । यानि । च । यस्म । हु । यानि । च । अन्तः । परि-णहि ॥ तानि । ते । परि । दद्मसि ॥ १ ॥

भाषार्थ—(च) और (अथो) फिर (ह) निश्चय करके (यानि) जिन [वस्तुओं] का (यस्म) हम प्रयत्न करें, (च) और (यानि) जो [वस्तुयें] (अन्तः) भीतर (परीणहि) बांधने के आधार [मञ्जूषा आदि] में हैं। (तानि) उन सब को (ते) तुझे (परि दद्मसि) हम सौंपते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने सब पदार्थों को रात्रि में सावधानी से रखकर रक्षा करें ॥ १ ॥

बम्बई गवर्नमेन्ट छापे की पुस्तक के पदपाठ में (यस्म) पद के स्थान पर [यस्मै] छपा है, हमने (यस्म) मूल पद माना है ॥

(गोभ्यः) धेनुभ्यः (अश्वेभ्यः) तुरङ्गेभ्यः (शर्म) सुखम् (यच्छ) देहि ॥

१—(अथो) अपि च (यानि) वस्तूनि (च) (यस्म) यसु प्रयत्ने—लेट्, अडभावश्छान्दसः । स उत्तमस्य । पा० ३ । ४ । ९८ । उत्तमपुरुषस्य सकारस्य लोपः । प्रयत्नेन प्राप्नुयाम (ह) निश्चयेन (यानि) वस्तूनि (च) (अन्तः) मध्ये (परीणहि) परि + णह बन्धने—क्विप् । बन्धनाधारे मञ्जूषादौ (तानि) वस्तूनि (ते) तुभ्यम् (परि दद्मसि) समर्पयामः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्व-
हस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥

रात्रि । मातः । उषसे । नः । परि । देहि ॥ उषाः । नः । अह्ने । परि । ददातु । अहः । तुभ्यम् । विभावरि ॥ २ ॥

भाषार्थ—(रात्रि) रात्रि (मातः) माता ! तू (उषसे) उषा [प्रभात वेला] को (नः) हमें (परि देहि) सौंप । (उषाः) उषा (नः) हमें (अह्ने) दिन को, और (अहः) दिन (तुभ्यम्) तुझ को, (विभावरि) हे चमक वाली! (परि ददातु) सौंपे ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य तारों से शोभायमान रात्रि बीतने पर प्रातःकाल उठें और दिन के कर्तव्य करके रात्रि में रात्रि के कर्तव्य करें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है–५० । ७ ॥

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वताय्रसत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥

यत् । किम् । च । इदम् । पतयति । यत् । किम् । चु । इदम् । सरीसृपम् ॥ यत् । किम् । च । पर्वताय । अ्रसत्वम् । तस्मात् । त्वम् । रात्रि । पाहि । नः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(यत् किम् च) जो कुछ (इदम्) यह (पतयति) उड़ता है, (यत् किम् च) जो कुछ (इदम्) यह (सरीसृपम्) टेढ़ा टेढ़ा रेंगने वाला

२—(रात्रि) (मातः) हे मातृतुल्ये (उषसे) प्रभातवेलायै (नः) अस्मान् (परि देहि) समर्पय (उषाः) प्रभातवेला (नः) अस्मान् (अह्ने) दिनाय (परि ददातु) समर्पयतु (अहः) दिनम् (तुभ्यम्) (विभावरि) वि+भा दीप्तौ—क्वनिप् । वनो र च । पा० ४ । १ । ७ । ङीब्रेफौ । हे दीप्तिमति ॥

३—(यत्) (किञ्च) किञ्चित् (इदम्) दृश्यमानम् (पतयति) उड्डीयते (यत्) (किञ्च) (इदम्) (सरीसृपम्) सृपल्ल गतौ—यङ् , पचाद्यच्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सर्प आदि] है। (यत् किम् च) और जो कुछ (पर्वताय) पहाड़ पर (असत्वम्) दुष्ट जन्तु [सिंह आदि] है, (तस्मात्) उस से, (त्वम्) तू (रात्रि) हे रात्रि ! (नः) हमें (पाहि) बचा ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य घरों को ऐसा सुडौल बनावें कि रात्रि में सब प्रकार के हिंसक प्राणियों से रक्षा रहे ॥ ३ ॥

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥

सा । पश्चात् । पाहि । सा । पुरः । सा । उत्तरात् । अधरात् । उत ॥ गोपाय । नः । विभावरि । स्तोतारः । ते । इह । स्मसि ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे रात्रि !] (सा) सो तू (पश्चात्) पीछे से, (सा) सो तू (पुरः) सामने से, (सा) सो तू (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (पाहि) बचा। (विभावरि) हे चमक वाली ! (नः) हमारी (गोपाय) रक्षा कर, हम लोग (इह) यहां पर (ते) तेरी (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (स्मसि) हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को रात्रि में सावधानी के साथ सब ओर से रक्षा का प्रबन्ध रखना चाहिये ॥ ४ ॥

कुटिलगतिशीलं सर्पादिकम् (यत् किम् च) (पर्वताय) सप्तम्यर्थे चतुर्थी। पर्वते (असत्वम्) सत्वशब्दः प्राणिवाची। दुष्टं सत्वम् असत्वम्, व्याघ्रसिंहादिकम् (तस्मात्) पूर्वोक्तात् सर्वस्मात् (त्वम्) (रात्रि) (पाहि) रक्ष (नः) अस्मान् ॥

४—(सा) पूर्वोक्तलक्षणा त्वम् (पश्चात्) (पाहि) रक्ष (सा) सा त्वम् (पुरः) पुरस्तात् (सा) (उत्तरात्) उपरिदेशात् (अधरात्) अधोदेशात् (उत) अपि च (गोपाय) रक्ष (नः) अस्मान् (विभावरि) म० २। हे दीप्तिमति (स्तोतारः) स्तावकाः (ते) तव (इह) अत्र (स्मसि) स्मः। भवामः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति । पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते नः आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥

ये । रात्रिम् । अनु-तिष्ठन्ति । ये । च । भूतेषु । जाग्रति ॥ पशून् । ये । सर्वान् । रक्षन्ति । ते । नः । आत्म-सु । जाग्रति । ते । नः । पशुषु । जाग्रति ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(ये) जो [पुरुष] (रात्रिम्) रात्रि के (अनुतिष्ठन्ति) साथ चलते हैं [रात्रि में सावधान रहते हैं] (च) और (ये) जो (भूतेषु) सत्ता वालों पर (जाग्रति) जागते हैं । (ये) जो (सर्वान्) सब (पशून्) पशुओं की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (ते) वे (नः) हमारे (आत्मसु) आत्माओं [जीवों] पर (जाग्रति) जागते हैं, (ते) वे (नः) हमारे (पशुषु) पशुओं पर (जाग्रति) जागते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य रात्रि में सावधान रह कर संसार के सब पदार्थों, पशुओं और पुरुषों की रक्षा करें ॥ ५ ॥

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥

वेद । वै । रात्रि । ते । नाम । घृताची । नाम । वै । असि ॥ ताम् । त्वाम् । भरत्-वाजः । वेद । सा । नः । वित्ते । अधि । जाग्रति ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (ते) तेरा (नाम) नाम (वै) निश्चय

५—(ये) जनाः (रात्रिम्) (अनुतिष्ठन्ति) अनुसृत्य वर्तन्ते (ये) (च) (भूतेषु) भवनवत्सु । सत्तावत्सु (जाग्रति) सावधानाः सन्ति (पशून्) गवादीन् (ये) (सर्वान्) (रक्षन्ति) पालयन्ति (ते) जनाः (नः) अस्माकम् (आत्मसु) जीवेषु (जाग्रति) (ते) (नः) अस्माकम् (पशुषु) गवादिषु (जाग्रति) जागरिता भवन्ति ॥

६—(वेद) अहं जानामि (वै) निश्चयेन (रात्रि) (ते) तव (नाम)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके (वेद) मैं जानता हूं, तू (घृताची) घृताची [प्रकाश को प्राप्त होने वाली] (नाम) नाम वाली (वै) निश्चय करके (असि) है। (तां त्वा) उस तुझ को (भरद्वाजः) भरद्वाज [विज्ञान पोषक महात्मा] (वेद) जानता है, (सा) सो आप (नः) हमारी (वित्ते) सम्पत्ति पर (अधि) अधिकार पूर्वक (जाग्रति) जागती रहें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य तारे आदि से युक्त रात्रि में वेदादि शास्त्रों का मनन करके ज्ञान से प्रकाशित होकर सब की रक्षा करें ॥ ६ ॥

सूक्तम् ४८ ॥

१--१० ॥ रात्रिर्देवता ॥ १, ४, ८ त्रिष्टुप्; २, ३, विराडार्षी त्रिष्टुप्; ५ विराट् त्रिष्टुप्; ६ निचृत् पङ्क्तिः; ७ पथ्या पङ्क्तिः; ९ आर्ष्यनुष्टुप्; १० षट्पदा जगती ॥

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

इषिरा योषा युवतिर्दसूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य। अश्व-क्षुभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥

इषिरा । योषा । युवतिः । दसूनाः । रात्री । देवस्य । सवितुः । भगस्य ॥ अश्व-क्षुभा । सु-हवा । सम्-भृतश्रीः । आ । पप्रौ । द्यावापृथिवी इति । महि-त्वा ॥ १ ॥

भाषार्थ—(इषिरा) फुरतीली, (योषा) सेवनीया (युवतिः) युवा [बलवती], (देवस्य) प्रकाशमान, (भगस्य) ऐश्वर्यवान् (सवितुः) प्रेरक

नामधेयम् (घृताची) घृ क्षरणदीप्त्योः—क्त + अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन्, ङीप्। घृतं दीप्तिम् अञ्चति प्राप्नोतीति सा (नाम) नाम्ना (वै) (असि) (ताम्) तादृशीम् (त्वाम्) (भरद्वाजः) भृञ् भरणे—शतृ। भरत् पोषकं वाजो विज्ञानं यस्य सः (वेद) वेत्ति (सा) सा भवती (नः) अस्माकम् (वित्ते) धने। सम्पत्तौ (अधि) अधिकृत्य (जाग्रति) जागर्तेर्लेटि अडागमः, गुणाभावश्छान्दसः। जागर्तु। सावधानो भवतु ॥

१--(इषिरा) इषिमदिमुदि०। उ० १। ५१। इष गतौ—किरच्।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की (दमूनाः) वश में करने वाली, (अश्वक्षभा) शीघ्र फैलने वाली, (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य, (संभृतश्रीः) सम्पूर्ण सम्पत्ति वाली (रात्री) रात्री ने (महित्वा) महिमा से (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को (आ) सर्वथा (पप्रौ) भर दिया है ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस समय विश्रामदात्री रात्री का बड़ा अन्धकार संसार में फैले, मनुष्य सावधानी से अपनी सम्पत्ति की रक्षा करें ॥ १ ॥

मन्त्र के पदपाठ के (अश्व—क्षभा) को (अशु—अक्षभा) मानकर अर्थ किया गया है ॥

अति॒ विश्वा॑न्यरुहद् गम्भी॒रो वर्षि॑ष्ठमरुहन्त॒ श्रवि॑ष्ठाः ।
उ॒श॒ती रात्र्यनु॒ सा भ॒द्राभि ति॑ष्ठते मि॒त्र इ॑व स्व॒धाभिः॑ ॥२॥

अति॑ । विश्वा॑नि । अ॒रु॒ह॒त् । ग॒म्भी॒रः । वर्षि॑ष्ठम् । अ॒रु॒ह॒न्त॒ । श्रवि॑ष्ठाः ॥ उ॒श॒ती । रात्री॑ । अनु॑ । सा । भ॒द्रा । अ॒भि । ति॒ष्ठ॒ते॒ । मि॒त्रः-इ॑व । स्व॒धाभिः॑ ॥ २ ॥

भाषार्थ—(गम्भीरः) गम्भीर पुरुष (विश्वानि) सब [विघ्नों] को (अति) लांघ कर (अरुहत्) ऊंचा हुआ है, और (श्रविष्ठाः) अति बलवान् पुरुष (वर्षिष्ठम्) अति चौड़े स्थान पर (अरुहन्त) चढ़े हैं। (उशती) प्रीति

शीघ्रगतिः (योषा) युष सेवने—अच्, टापू। सेवनीया (युवतिः) तरुणी। बलवती (दमूनाः) अ० ७। १४। ४। दमेरुनसि। उ० ४। २३५। दमु। उपशमे-उनसि, वा दीर्घः। दमनशीला (रात्री) (देवस्य) प्रकाशमानस्य (सवितुः) प्रेरकस्य सूर्यस्य (भगस्य) ऐश्वर्यवतः (अश्वक्षभा) भृमृशीङ्०। उ० १। ७। अशू व्याप्तौ-उप्रत्ययः+कॄशॄशलिकलि०। उ०३। १२२। अक्षू व्याप्तौ—अभच्, टाप्। अशु आशु शीघ्रं अक्षभा व्यापनशीला (सुहवा) सुखेन ह्वातव्या (संभृतश्रीः) सम्पूर्णसम्पत्तिः (आ) समन्तात् (पप्रौ) प्रा पूरणे—लिट्। पूरितवती (द्यावापृथिवी) आकाशभूमी (महित्वा) महिम्ना ॥

२—(अति) उल्लङ्घ्य (विश्वानि) सर्वाण्यनिष्टानि (अरुहत्) आरूढवान् (गम्भीरः) शान्तः (वर्षिष्ठम्) उरुत्तमं स्थानम् (अरुहन्त)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हुयी (भद्रा) कल्याणी (सा) वह (रात्री) रात्री (अनु) निरन्तर (मित्रः इव) मित्र के समान, (स्वधाभिः) अपनी धारण शक्तियों के साथ (अभि तिष्ठते) सब ओर ठहरती है ॥ २ ॥

भावार्थ—शान्त स्वभाव बलवान् पुरुषों ने संसार में ऊंचे स्थान पाये हैं, इसी प्रकार जो मनुष्य रात्रि अर्थात् कठिनाई को मित्र समान जानकर सावधान रहते हैं, वे सब प्रकार के पोषणों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥

वर्ये । वन्दे । सु-भगे । सु-जाते । आ । अजगन् । रात्रि । सु-मनाः । इह । स्याम् ॥ अस्मान् । त्रायस्व । नर्याणि । जाता । अथो इति । यानि । गव्यानि । पुष्ट्या ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(वर्ये) हे चाहने योग्य ! (वन्दे) हे वन्दना योग्य ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (सुजाते) हे सुन्दर जन्म वाली ! (रात्रि) रात्रि (आ अजगन्) तू आयी है, मैं (इह) यहां (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (स्याम्) रहूं । (अस्मान्) हमारे लिये (नर्याणि) मनुष्यों की हितकारी (जाता) उत्पन्न वस्तुओं को (अथो) और भी [उनको], (यानि) जो

आरूढवन्तः (अविष्ठाः) अतिशयेन अवस्थिनः । बलिष्ठाः (उशती) कामयमाना (रात्री) रात्रीरूपं काठिन्यम् (अनु) निरन्तरम् (सा) प्रसिद्धा (भद्रा) कल्याणी (अभि) सर्वतः (मित्रः) सुहृत् (इव) यथा (स्वधाभिः) स्वधारणशक्तिभिः ॥

३—(वर्ये) हे वरणीये (वन्दे) वदि अभिवादनस्तुत्योः—घञ् । हे वन्दनीये (सुभगे) बह्वैश्वर्यवति (सुजाते) हे सुजन्मयुक्ते (आ अजगन्) गमेर्लङि मध्यमपुरुषे सिपि शपः श्लुः । मोनो धातोः । पा० ८ । २ । ६४ । इति नत्वम् । हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घा० । पा० ६ । १ । ६८ इति सिपो लोपः । आगच्छः । आगताऽसि (रात्रि) (सुमनाः) प्रसन्नचित्तः (इह) अत्र (स्याम्) अहं भवेयम् (अस्मान्) चतुर्थ्यर्थे द्वितीया । अस्मभ्यम् (त्रायस्व) पालय (नर्याणि)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गव्यानि) गौ [आदि] की हितकारी वस्तु हैं, (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (त्रायस्व) रक्षा कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रात्रि रूप कठिनाई में प्रसन्नचित रह कर अपना कर्तव्य करते रहें, वे उन्नति करके अपनी सम्पत्ति की रक्षा कर सकें ॥ ३ ॥

सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४॥

सिंहस्य । रात्री । उशती । पींषस्य । व्याघ्रस्य । द्वीपिनः । वर्चः । आ । ददे ॥ अश्वस्य । ब्रध्नम् । पुरुषस्य । मायुम् । पुरु । रूपाणि । कृणुषे । वि-भाती ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(उशती) प्रीति करती हुई (रात्री) रात्री ने (सिंहस्य) सिंह की, (पींषस्य) चूरण करने वाले [हाथी] की, (व्याघ्रस्य) बाघ की और (द्वीपिनः) चीते की (वर्चः) कान्ति को, (अश्वस्य) घोड़े के (ब्रध्नम्) मूल [वेग] को और (पुरुषस्य) पुरुष की (मायुम्) ललकार को (आ ददे) ग्रहण किया है, (विभाती) चमकती हुई तू (पुरु) बहुत से (रूपाणि) रूपों को (कृणुषे) बनाती है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रात्रिरूप कठिनाई में सिंह आदि के समान पराक्रमी होते हैं, वे ही कीर्तिमान् और तेजस्वी होते हैं ॥ ४ ॥

नरहितानि (जाता) उत्पन्नानि वस्तूनि (अथो) अपि च (यानि) वस्तूनि (गव्यानि) गवादिभ्यो हितानि (पुष्ट्या) वृद्ध्या ॥

४—(सिंहस्य) (रात्री) (उशती) कामयमाना (पींषस्य) पाघ्रा-ध्माधेट्दृशः शः । पा० ३ । १ । १३७ । इति बाहुलकात् शप्रत्ययः । तस्य सार्व-धातुकत्वाद् नुम्, छान्दसो दीर्घः । संचूर्णकस्य गजस्य (व्याघ्रस्य) हिंसक-जीवविशेषस्य (द्वीपिनः) व्याघ्रभेदस्य (वर्चः) कान्तिम् (आददे) आहृत-वती । प्राप्तवती (अश्वस्य) तुरङ्गस्य (ब्रध्नम्) मूलम् । वेगम् (पुरुषस्य) मनुष्यस्य (मायुम्) माङ् शब्दे—उण्, युक् च । शब्दम् (पुरु) पुरूणि (रूपाणि) (कृणुषे) करोषि (विभाती) वि+भा दीप्तौ—शतृ । विशेषेण भासमाना ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ५

शिवाम् । रात्रिम् । अनु-सूर्यम् । च । हिमस्य । माता । सु-हवा । नः । अस्तु ॥ अस्य । स्तोमस्य । सु-भगे । नि । बोध । येन । त्वा । वन्दे । विश्वासु । दिक्षु ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(च) और (हिमस्य) हिम [शीतलता] की (माता) माता [आप] (नः) हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य (अस्तु) होवें, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! तू (अस्य) इस (स्तोमस्य) स्तोत्र का (नि बोध) ज्ञान कर, (येन) जिस [स्तोत्र] से (त्वाम्) तुझ (शिवाम्) कल्याणी (रात्रिम्) रात्रि को (अनुसूर्य्यम्) सूर्य के साथ साथ (विश्वासु) सब (दिक्षु) दिशाओं में (वन्दे) मैं बन्दना करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कठिनाई को पार करके अन्त में शान्ति और ऐश्वर्य को प्राप्त हों, वे उस कठिनाई को उन्नति का कारण समझ कर उसका आदर करें ॥ ५ ॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
अस्माँ सर्ववीरा भवाँसु सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥

स्तोमस्य । नः । विभावरि । रात्रि । राजा-इव । जोषसे ॥ अस्माम । सर्व-वीराः । भवाम । सर्व-वेदसः । वि-उच्छन्तीः । अनु । उषसः ॥ ६ ॥

५—(शिवाम्) कल्याणीम् (रात्रिम्) (अनुसूर्यम्) सूर्यमनुसृत्य (च) समुच्चये (हिमस्य) शीतलत्वस्य (माता) निर्मात्री भवतीति शेषः (सुहवा) सुखेन ह्वातव्या (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) (अस्य) क्रियमाणस्य (स्तोमस्य) स्तोत्रस्य (सुभगे) हे बह्वैश्वर्यवति (नि) नितराम् (बोध) ज्ञानं कुरु (येन) स्तोमेन (त्वा) त्वाम् (वन्दे) आदरेण नमामि (विश्वासु) सर्वासु (दिक्षु) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(विभावरि) हे चमक वाली (रात्रि) रात्रि ! (नः) हमारे (स्तोमस्य) स्तोत्र का (राजा इव) राजा के समान (जोषसे) तू सेवन करती रहे। (व्युच्छन्तीः) विविध प्रकार चमकती हुई (उषसः अनु) उषाओं के साथ साथ हम (सर्ववीराः) सब वीरों वाले (असाम) होवें, और (सर्ववेदसः) सब सम्पत्ति वाले (भवाम) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य ताराओं वाली रात्रि के सुन्दर उपयोग से स्तुति योग्य कर्म करके सदा बड़े बड़े वीर पुरुषों वाले और बड़ी सम्पत्ति वाले होवें ॥ ६ ॥

शम्या हु नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना। रात्रीहि तान्-सुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥

शम्या। हु। नाम। दधिषे। मम। दिप्सन्ति। ये। धना॥ रात्रि। इहि। तान्। असु-तपा। यः। स्तेनः। न। विद्यते यत्। पुनः। न। विद्यते ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(शम्या) शान्ति वाली, (नाम) यह नाम (ह) निश्चय करके (दधिषे) तू धारण करती है, (ये) जो [चोर] (मम) मेरे (धना) धनों को (दिप्सन्ति) हानि पहुंचाना चाहते हैं। (रात्रि) हे रात्रि ! (असु-तपा) [उनके] प्राणों को तपाने वाली तू (तान्) उनको (इहि) पहुंच,

६—(स्तोमस्य) स्तोत्रस्य (नः) अस्माकम् (विभावरि) हे विशेष-दीप्तियुक्ते (रात्रि) (राजा) (इव) यथा (जोषसे) लेटि अडागमः। सेवस्व (असाम) (सर्ववीराः) सर्ववीरोपेताः (भवाम) (सर्ववेदसः) बहु-सम्पत्तियुक्ताः (व्युच्छन्तीः) विशेषेण भासमानाः (अनु) अनुलक्ष्य (उषसः) प्रभातवेलाः ॥

७—(शम्या) शमु उपशमे—यत्। शान्तियुक्ता (ह) निश्चयेन (नाम) नामधेयम् (दधिषे) दधातेर्लेडर्थे लिट्। धारयसि(दिप्सन्ति) दम्भु दम्भे—सन्। दम्भितुं हिंसितुमिच्छन्ति (ये) चोराः (धना) धनानि (रात्रि) (इहि) प्राप्नुहि (तान्) चोरान् (असुतपा) असु+तप सन्तापे—कप्रत्ययो मूल-विभुजादित्वात्, टाप्। असूनां प्राणानां सन्तापयित्री (यः) (स्तेनः) (न)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्) जिस से (यः स्तेनः) जो चोर है, (न विद्यते) वह न रहे, (पुनः) फिर (न विद्यते) वह न रहे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो चोर डाकू आदि रात्रि में हानि करें, उन को लोग दण्ड देकर शान्ति स्थापित करें और चोरों को न रहने दें ॥ ७ ॥

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षामंमुक्थाः ८

भद्रा । असि । रात्रि । चमसः । न । विष्टः । विष्वङ् । गो-रूपम् । युवतिः । बिभर्षि ॥ चक्षुष्मती । मे । उशती । वपूंषि । प्रति । त्वम् । दिव्या । न । क्षाम् । अमुक्थाः ॥ ८॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! तू (विष्टः) परोसे हुये (चमसः न) अन्नपात्र के समान (भद्रा) कल्याणी (असि) है, (युवतिः) युवती [बलवती] तू (विष्वङ्) सम्पूर्ण (गोरूपम्) गौ के स्वभाव को (बिभर्षि) धारण करती है। (चक्षुष्मती) नेत्र वाली, (उशती) प्रीति करती हुई (त्वम्) तू ने (मे) मेरे लिये (दिव्या) आकाश वाले (वपूंषि न) शरीरों के समान (क्षाम्) पृथिवी को (प्रति अमुक्थाः) ग्रहण किया है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे गौ दुग्ध आदि से उपकार करती है, वैसे ही रात्रि शीतलता आदि से अन्न आदि की वृद्धि करती है, और जैसे आकाश के तारों से रात्रि शोभायमान होती है, वैसे ही वृक्ष, पुष्प, आदि रात्रि की शीतलता वा ओस से हरे भरे होकर पृथिवी को सुन्दर बनाते हैं ॥ ८ ॥

निषेधे (विद्यते) स वर्तते (यत्) यस्मात् (पुनः) पश्चात् (न) निषेधे (विद्यते) ॥

८—(भद्रा) कल्याणी (असि) भवसि (रात्रि) (चमसः) अन्नपात्रम् (न) इव (विष्टः) परिविष्टः परिष्कृतः (विष्वङ्) विषु+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन्। सम्पूर्णम् (गोरूपम्) धेनुसमानोपकारित्वम् (युवतिः) यौवनवती। बलवती त्वम् (बिभर्षि) धारयसि (चक्षुष्मती) दर्शनशक्तियुक्ता (मे) मह्यम् (उशती) कामयमाना (वपूंषि) शरीराणि (त्वम्) (दिव्या) दिवि आकाशे भवानि शरीराणि (न) इव (क्षाम्) क्षि निवासगत्योः—डप्रत्ययः, टाप्। पृथिवीम्—निघ० १।१ (प्रति अमुक्थाः) स्वीकृतवती, गृहीतवती ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥

यः । अद्य । स्तेनः । आ-अयति । अघ-युः । मर्त्यः । रिपुः ॥
रात्री । तस्य । प्रति-इत्य । प्र । ग्रीवाः । प्र । शिरः । हनत् ॥ ९ ॥

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लु-रुपायति स संपिष्टो अपायति । अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

प्र । पादौ । न । यथा । अयति । प्र । हस्तौ । न । यथा । अशिषत् ॥ यः । मलिम्लुः । उप-अयति । सः । सम्-पिष्टः । अप । अयति ॥ अप । अयति । स्व-अपायति । शुष्के । स्थाणौ । अप । अयति ॥ १० ॥

भाषार्थ—(अद्य) आज (यः) जो (अघायुः) पाप चीतने वाला (रिपुः) बैरी, (स्तेनः) चोर (मर्त्यः) मनुष्य (आ—अयति) आवे । (रात्री) रात्रि (प्रतीत्य) प्रतीति करके (तस्य) उसके (ग्रीवाः) गले को (प्र) सर्वथा, और (शिरः) शिर को (प्र) सर्वथा (हनत्) तोड़ डाले ॥ ९ ॥

(पादौ) [उसके] दोनों पैरों को (प्र) सर्वथा [तोड़ डाले-मन्त्र

९—(यः) (अद्य) अस्मिन् दिने (स्तेनः) चोरः (आयति) आङ्+इण् गतौ—लेट् । आगच्छेत् (अघायुः) पापचिन्तकः (मर्त्यः) मनुष्यः (रिपुः) शत्रुः (रात्री) (तस्य) शत्रोः (प्रतीत्य) प्रतीतिं प्रत्यक्षज्ञानं प्राप्य (प्र) सर्वथा (ग्रीवाः) कन्धरावयवान् (प्र) सर्वथा (शिरः) मस्तकम् (हनत्) लेटि रूपम् । हन्यात् । नाशयेत् ॥

१०—(प्र) सर्वथा हनत्—म० ९ (पादौ) गमनसाधनभूतौ (न)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८], (यथा) जिस से वह (न) न (अयति) चल सके, (हस्तौ) [उस के] दोनों हाथों को (प्र) सर्वथा [तोड़ डाले], (यथा) जिस से वह (न) न (अशिषत्) खासके। (यः) जो (मलिम्लुः) मलिन आचरण वाला लुटेरा (उप—अयति) पास आवे, (सः) वह (संपिष्टः) पीस डाला गया (अप अयति) निकल जावे। (अप अयति) वह निकल जावे, (सु—अप—अयति) वह सर्वथा निकल जावे, (शुष्के) सूखे (स्थाणौ)स्थान में (अप अयति) निकल जावे ॥ १० ॥

भावार्थ—यदि रात्रि में चोर डाकू आदि आकर लूट खसोट मचावें, रक्षक गण उन को यथावत् दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करें ॥ ८, १० ॥

सूक्तम् ५० ॥

१—७ ॥ रात्रिर्देवता ॥ १, ३, ४, ६, ७ अनुष्टुप्; २, ५ भुरिगार्ष्युष्णिक् ॥ रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

अर्धं रात्रि तृष्टधूमममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥

अर्धं । रात्रि । तृष्ट-धूमम् । अशीर्षाणम् । अहिम् । कृणु ॥
अक्षौ । वृकस्य । निः । जह्याः । तेन । तम् । द्रु-पदे । जहि १

निषेधें (यथा) येन प्रकारेण (अयति) गच्छेत् (प्र) प्रहनत् (हस्तौ) करौ (न) निषेधे (यथा) (अशिषत्) अश भोजने—लेट्, अडागमः। सिब्बहुलं लेटि। पा० ३। १। ३४ इति सिप्, इडागमः। भोजनं कुर्यात् (यः) (मलिम्लुः) अ० ८। ६। २। मलि+म्लुचु गतौ—डुप्रत्ययः। मलिं मलं पापं म्लोचति प्राप्नोतीति सः। मलिनाचारः (उप—अयति) आगच्छेत् (सः) (सं पिष्टः) सम्यक् चूर्णितः (अप—अयति) दूरे गच्छेत् (अप अयति) स दूरं गच्छेत् (सु-अप—अयति) स सर्वथा दूरे गच्छतु (शुष्के) शुष शोषणे-क्त। शुषः कः। पा० ८। २। ५१। इति कत्वम्। प्राप्तशोषणे । नीरसे (स्थाणौ) स्थाने (अप अयति) दूरं गच्छतु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अध) और (रात्रि) हे रात्रि ! (तृष्टधूमम्) क्रूर धुयें वाले [विषैली श्वास वाले] (अहिम्) सांप को (अशीर्षाणम्) रुण्ड [बिना शिर का] (कृणु) करदे [शिर कुचल कर मार डाल]। (वृकस्य) भेड़िये के (अक्षी) दोनों आंखें (निः जह्याः) निकाल कर फेंक दे, (तेन) उस से (तम्) —उसको (द्रपदे) काठ के बन्धन में (जहि) मार डाल ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्प और भेड़िये आदि के समान रात्रि में दुःख देवें, उन्हें बन्दीगृह में बन्द करके कष्ट दिया जावे ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—४७ । ८ ॥

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥

ये । ते । रात्रि । अनड्वाहः । तीक्ष्ण-शृङ्गाः । सु-आशवः ॥
तेभिः । नः । अद्य । पारय । अति । दुः-गानि । विश्वहा ॥२॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (ते) तेरे (ये) जो (तीक्ष्णशृङ्गाः) पैने सींग वाले और (स्वाशवः) बड़े फुरतीले (अनड्वाहः) रथ ले चलने वाले बैल [अर्थात् बैलों के समान रक्षा भार उठाने वाले पुरुष] हैं । (तेभिः) उन के द्वारा (नः) हमें (अद्य) आज और (विश्वाहा) सब दिन (दुर्गाणि प्रति) विघ्नों को लांघ कर (पारय) पार लगा ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि रथ ले चलने वाले फुरतीले बलवान् बलों के समान रक्षा भार उठाने में फुरतीले और पराक्रमी होकर सब विघ्नों को हटावें ॥ २ ॥

१—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—४७ । ८ । अत्र विशेषो व्याख्यायते (अक्षी) अक्षिणी । चक्षुषी (निः) निःसार्य (जह्याः) ओ हाक् त्यागे—लिङ् । त्यजेः । प्रक्षिपेः ॥

२—(ये) रक्षकाः (ते) तव (रात्रि) (अनड्वाहः) अनसः शकटस्य वाहकाः पुरुषा इव रक्षाभारवाहकाः पुरुषाः (तीक्ष्णशृङ्गाः) निशितविषाणाः (स्वाशवः) अतिशीघ्रगामिनः (तेभिः) तैः (नः) अस्मान् (अद्य) अस्मिन् दिने (पारय) तारय (अति) अतीत्य । उल्लङ्घ्य (दुर्गाणि) विघ्नान् (विश्वहा) विश्वेषु सर्वेषु अहःसु दिनेषु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥

रात्रिम्-रात्रिम् । अरिष्यन्तः । तरेम । तन्वा । वयम् ॥ गम्भीरम् । अप्लवाः-इव । न । तरेयुः । अरातयः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(अरिष्यन्तः) बिना कष्ट उठाये हुये (वयम्) हम लोग (तन्वा) अपने शरीर के साथ (रात्रिंरात्रिम्) रात्रि के पीछे रात्रि को (तरेम) पार करें। (अरातयः) बैरी लोग [उसको] (न तरेयुः) न पार करें, (इव) जैसे (अप्लवाः) बिना नाव वाले मनुष्य (गम्भीरम्) गहरे [समुद्र] को ॥३ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थी मनुष्य सब विघ्नों को सह कर उन्नति करें, विरोधी आलसी पुरुष सुकर्मों को सिद्ध नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

यथा श्याम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एव रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥

यथा । श्याम्याकः । प्र-पतन् । अप-वान् । न । अनु-विद्यते ॥ एव । रात्रि । प्र । पातय । यः । अस्मान् । अभि-अघायति४

भाषार्थ—(यथा) जैसे (श्याम्याकः) सामा [छोटा अन्न विशेष] (प्रपतन्) गिरता हुआ और (अपवान्) दूर चला जाता हुआ (न) नहीं (अनुविद्यते) कुछ भी मिलता है। (एव) वैसे ही, (रात्रि) हे रात्रि ! [उस दुष्ट को] (प्र पातय) गिरा दे, (यः) जो (अस्मान्) हमारा (अभ्यघायति) बुरा चीतता है ॥ ४ ॥

३—(रात्रिंरात्रिम्) रात्रिं प्रति रात्रिम् (अरिष्यन्तः) दुःखं न प्राप्नुवन्तः (तरेम) पारं गच्छेम (तन्वा) स्वशरीरेण (वयम्) पुरुषार्थिनः (गम्भीरम्) अगाधं समुद्रम् (अप्लवाः) नौकादिरहिताः (इव) यथा (न) निषेधे (तरेयुः) अतिक्रामेयुः (अरातयः) शत्रवः ॥

४—(यथा) (श्याम्याकः) श्यामाकाख्यः क्षुद्रधान्यविशेषः (प्रपतन्) निपतन् (अपवान्) वा गतौ—शतृ । अपगच्छन् (न) निषेधे (अनुविद्यते) कदापि लभ्यते (एव) एवम् (रात्रि) (प्रपातय) निपातय शत्रुम् (यः) शत्रुः (अस्मान्) धार्मिकान् (अभ्यघायति) अभिलक्ष्य अद्यं पापमिच्छति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—धर्म्मात्मा लोग दुष्टों को ऐसा दूर करें कि फिर उसका पता न लगे जैसे सामा अन्न धूलि में वा पवन में जाकर नहीं मिलता ॥ ४ ॥

अप॑ स्ते॒नं वासो॑ गोअ॒जमु॒त तस्क॑रम् ।
अथो॒ यो अ॒र्वतः॑ शिरो॑ऽभि॒धाय॒ निनी॑षति ॥ ५ ॥

अप॑ । स्ते॒नम् । वासः॑ । गो-अ॒जम् । उ॒त । तस्क॑रम् ॥ अथो॒-इति॑ । यः । अ॒र्वतः॑ । शिरः॑ । अ॒भि-धा॑य । निनी॑षति ॥ ५ ॥

भाषार्थ—तू (स्तेनम्) चोर को (उत) और (गोअजम्) गौ को हांक ले जाने वाले (तस्करम्) लुटेरे को (अप वासः) बाहिर बसा दे । (अथो) और भी [उसको], (यः) जो (अर्वतः) घोड़े के (शिरः) शिर को (अभि-धाय) बांधकर (निनीषति) [उसे] ले जाना चाहता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष गौ आदि दूध के पशुओं को चुरा ले जावें, और इस लिये कि घोड़े फिर घर को न लौट आवें और न शब्द करें, उनका शिर अर्थात् आंखें और मुख बन्द करके भगाले जावें, उन्हें देश से निकाल देना चाहिये ॥ ५ ॥

यद॒द्या रा॒त्रि सु॒भगे॒ वि॒भज॑न्त्यय॒तो वसु॑ ।
यदे॒तद॒स्मान् भोज॑य॒ यथे॒दन्या॒नुपा॑य॒सि ॥ ६ ॥

यत् । अ॒द्य । रा॒त्रि॑ । सु-भगे॑ । वि-भज॑न्ति । अय॑तः । वसु॑ ॥ यत् । एत॑त् । अ॒स्मान् । भोज॑य । यथा॑ । इत् । अ॒न्यान् । उप-अ॑यसि ॥ ६ ॥

५—(अप) दूरे (स्तेनम्) चोरम् (वासः) वस निवासे-णिजन्ताल्लेटि । छान्दसरूपम् । त्वं वासयः । निवासं देहि (गोअजम्) गो+अज गतिक्षेपणयोः अच् । सर्वत्र विभाषा गोः । पा० ६ । १ । १२२ । इति प्रकृतिभावः । गोः चोरं प्रेरकम् (उत) अपिच (तस्करम्) (अथो) अपि च (यः) तस्करः (अर्वतः) अश्वस्य (शिरः) (अभिधाय) बध्वा (निनीषति) अपजिहीर्षति ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली (रात्रि) रात्रि ! (अद्य) आज (यत्) जिस (अयः) सुवर्ण और (यत्) जिस (वसु) धन को (विभजन्ति) वे [चोर] बांटते हैं। (एतत्) उस को (अस्मान्) हमें (भोजय) भोगने दे, (यथा) जिस से (इत्) निश्चय करके (अन्यान्) दूसरे [पदार्थों] को [हमें] (उप-अयसि) तू पहुंचाती रहे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करके डाकू, चोर आदि दुष्टों से धन और सम्पत्ति की रक्षा करके वृद्धि करते रहें ॥ ६ ॥

उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

उषसे । नः। परि । देहि । सर्वान् । रात्रि । अनागसः॥ उषाः। नः । अह्ने । आ । भजात् । अहः । तुभ्यम् । विभावरि ॥७॥

भाषार्थ—(रात्रि) हे रात्रि! (उषसे) उषा [प्रभात वेला] को (नः) हम (सर्वान्) सब (अनागसः) निर्दोषों को (परि देहि) सौंप । (उषाः) उषा (नः) हमें (अह्ने) दिन को, और (अहः) दिन (तुभ्यम्) तुझ को (आ भजात्) देवे, (विभावरि) हे बड़ी चमक वाली ! ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य दिन और राति सदा धर्म के साथ अपनी वृद्धि करें ७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—४८ । २ ॥

६—(यत्) (अद्य) अस्मिन् दिने (रात्रि) (सुभगे) हे बह्वैश्वर्यवति (विभजन्ति) विभागेन प्राप्नुवन्ति (अयः) हिरण्यम्-निघ० १ । २ (वसु) धनम् (यत्) (एतत्) (अस्मान्) (भोजय) भोक्तॄन् कुरु (यथा) येन प्रकारेण (इत्) निश्चयेन (अन्यान्) पदार्थान् (उप-अयसि) इण् गतौ—लेटि, अडागमः, अन्तर्गतण्यर्थः । उपगमयेः ॥

७—(उषसे) प्रभातवेलायै (नः) अस्मान् (परिदेहि) समर्पय (सर्वान्) (रात्रि) (अनागसः) निर्दोषान् (उषाः) प्रभातवेला (नः) अस्मान् (अह्ने) दिनाय (आभजात्) भज सेवायाम्—लेटि, आडागमः । आभजेत् समन्तात् सेवेत । समर्पयेत् । अन्यत् पूर्ववत्-४८ । २ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ५१ ॥

१, २ ॥ आत्मा देवता ॥ १ ब्राह्मयुष्णिक्; २ विराडार्ष्युष्णिक् ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

अयुंतोऽहमयुंतो म आत्मायुंतं मे चक्षुरयुंतं मे श्रोत्रमयुंतो मे प्राणोऽयुंतो मेऽपानोऽयुंतो मे व्यानोऽयुंतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥

अयुंतः । अहम् । अयुंतः । मे । आत्मा । अयुंतम् । मे । चक्षुः । अयुतम् । मे । श्रोत्रम् । अयुंतः । मे । प्राणः । अयुंतः । मे । अपानः । अयुंतः । मे । वि-आनः । अयुंतः । अहम् । सर्वः ॥१॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं (अयुतः) अनिन्दित [प्रशंसायुक्त] [होऊं] (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा [जीवात्मा] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरी (चक्षुः) आंख (अयुतम्) अनिन्दित, (मे) मेरा (श्रोत्रम्) कान (अयुतम्) अनिन्दित, (मे) मेरा (प्राणः) प्राण [भीतर जाने वाला श्वास] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरा (अपानः) अपान [बाहिर जाने वाला श्वास] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में घूमने वाला वायु] (अयुतः) अनिन्दित [होवे], (सर्वः) सब का सब (अहम्) मैं (अयुतः) अनिन्दित [होऊं] ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने आपे, अपने आत्मा, अपने इन्द्रियों, अपने अङ्गों और अपने सर्वस्व से सदा प्रशंसनीय कर्म करते हैं। वे ही आत्मोन्नति कर सकते हैं ॥ १ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

१—(अयुतः) यु निन्दायाम्, चुरादिः—क्त । अनिन्दितः । प्रशंसितः (अहम्) (मे) मम (आत्मा) जीवात्मा (चक्षुः) दर्शनेन्द्रियम् (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रियम् (प्राणः) शरीराभ्यन्तरगामी वायुः (अपानः) शरीराद् बहिर्गामी वायुः (व्यानः) सर्वशरीरव्यापको वायुः (सर्वः) समस्तः । अन्यद् गतं स्पष्टं च ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवस्य । त्वा । सवितुः । प्र-सवे । अश्विनोः । बाहु-भ्याम् । पूष्णः । हस्ताभ्याम् । प्र-सूतः । आ । रभे ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे शूर !] (देवस्य) प्रकाशमान, (सवितुः) सर्वोत्पादक [परमेश्वर] के (प्रसवे) बड़े ऐश्वर्य के बीच, (अश्विनोः) सब विद्याओं में व्याप्त दोनों [माता पिता] के (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से और (पूष्णः) पोषक [आचार्य] के (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (त्वा) तुझ को (आ रभे) ग्रहण करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर भक्त विद्वान् पराक्रमी पुरुष माता पिता और आचार्य से उत्तम शिक्षा पाकर उन्नति करे, सब मनुष्य उस का सदा सत्कार करते रहें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है-२० । ३ और महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका राजप्रजा धर्म विषय में भी व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ५२ [काम सूक्तम्] ॥

१—५ ॥ कामो देवता ॥ १, २ आर्षी त्रिष्टुप्; ३, उष्णिक्; ४ निचृदनुष्टुप् ५ उपरिष्टाद् बृहती ॥

कामप्रशंसोपदेशः—काम की प्रशंसा का उपदेश ॥

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स कामे कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि१॥

कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । मनसः । रेतः । प्रथमम् । यत् । आसीत् ॥ सः । कामे । कामेन । बृहता । सयोनिः । रायः । पोषम् । यजमानाय । धेहि ॥ १ ॥

२—(देवस्य) प्रकाशमानस्य (त्वा) त्वां पुरुषार्थिनम् (सवितुः) सर्वोत्पादकस्य परमेश्वरस्य (प्रसवे) प्रकृष्टैश्वर्ये (अश्विनोः) सकलविद्याव्याप्तयोर्मातापित्रोः (बाहुभ्याम्) भुजयोः सकाशात् (पूष्णः) पोषकस्य आचार्यस्य (हस्ताभ्याम्) करयोः सकाशात् (प्रसूतः) प्रेरितः (आरभे) रभ राभस्ये । अहं गृह्णामि । स्वीकरोमि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(तत्) फिर [प्रलय के पीछे] (अग्रे) पहिले ही पहिले (कामः) काम [इच्छा] (सम्) ठीक ठीक (अवर्तत) वर्तमान हुआ, (यत्) जो (मनसः) मन का (प्रथमम्) पहिला (रेतः) बीज (आसीत्) था। (सः) सो तू, (काम) हे काम! (बृहता) बड़े (कामेन) काम [कामना करने वाले परमेश्वर] के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होकर (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कार करने वाले] को (धेहि) दान कर ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रलय के पीछे प्राणियों के पूर्वजन्मों के कर्म फलों के अनुसार परमात्मा ने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा की है, सो हे मनुष्यो तुम उत्तम कर्म करके अभीष्ट सुख प्राप्त करो ॥ १ ॥

१—इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है—१०। १२९। ४। और चौथा पाद आ चुका है—अ० १८। १। ४३ ॥

२—इस सूक्त का मिलान करो—अ० ९। २ और देखो यजुर्वेद ७। ४८ ॥

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
त्वम् । काम । सहसा । असि । प्रति-स्थितः । वि-भुः । विभा-वा । सखे । आ । सखीयते ॥ त्वम् । उग्रः । पृतनासु । ससहिः । सहः । ओजः । यजमानाय । धेहि ॥ २ ॥

१—(कामः) कमु कान्तौ—घञ्। अभिलाषः। इच्छा (तत्) ततः। प्रलयानन्तरम् (अग्रे) सृष्ट्यादौ (सम्) सम्यक् (अवर्तत) वर्तमानोऽभवत् (मनसः) चित्तस्य (रेतः) बीजम् (प्रथमम्) आद्यम्। पूर्वकल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यापुण्यात्मकं कर्म (यत्) कर्म (आसीत्) अभवत् (सः) स त्वम् (काम) हे काम (कामेन) कामयतेः—पचाद्यच्। कामयित्रा परमेश्वरेण सह (बृहता) महता (सयोनिः) समानगृहः। एकस्थानीयः (रायः) धनस्य (पोषम्) वृद्धिम् (यजमानाय) विदुषां सत्कर्त्रे (धेहि) देहि ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(काम) हे काम ! [आशा] (त्वम्) तू (सहसा) बल के साथ (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा युक्त (असि) है, (आ) और, (सखे) हे मित्र ! (सखीयते) मित्र चाहने वाले के लिये तू (विभुः) समर्थ और (विभावा) तेजस्वी है । (त्वम्) तू (पृतनासु) सङ्ग्रामों में (उग्रः) उग्र और (सासहिः) विजयी है, (सहः) बल और (ओजः) पराक्रम (यजमानाय) यजमान को (धेहि) दान कर ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी आशाओं में दृढ़ होते हैं, वे ही संसार में प्रतापी और विजयी होकर कीर्ति पाते हैं ॥ २ ॥

दूराच्चक्मानायं प्रतिपानायाक्षये ।
अस्मा अश्वृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥

दूरात् । चक्मानाय । प्रति-पानाय । अक्षये ॥ आ । अस्मै । अश्वृण्वन् । आशाः । कामेन । अजनयन् । स्वः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(अक्षये) निर्हानि [पूर्णता] के बीच (प्रतिपानाय) सब प्रकार रक्षा के लिये (दूरात्) दूर से [जन्म से पूर्व कर्म के संस्कार के कारण से] (चकमानाय) कामना कर चुकने वाले (अस्मै) इस [पुरुष] को (आशाः) दिशाओं ने (कामेन) काम [आशा] के साथ (स्वः) सुख को (आ अश्वृण्वन्) अङ्गीकार किया है और (अजनयन्) उत्पन्न किया है ॥ ३ ॥

२—(त्वम्) (काम) हे इच्छे । हे आशे (सहसा) बलेन (असि) (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठायुक्तः (विभुः) समर्थः (विभावा) भातेः—क्वनिप् । विशेषेण दीप्यमानः । तेजस्वी (सखे) हे मित्र (आ) समुच्चये (सखीयते) सखि—क्यच्, शतृ । मित्रमिच्छते पुरुषाय (त्वम्) (उग्रः) प्रचण्डः (पृतनासु) संग्रामेषु (सासहिः) सहेर्यङन्तात्—किप्रत्ययः । विजयी (सहः) बलम् (ओजः) पराक्रमम् (यजमानाय) (धेहि) देहि ॥

३—(दूरात्) पूर्वजन्मफलसंस्कारात् (चकमानाय) कमेर्लिटः कानच् । कामना कृतवते पुरुषाय (प्रतिपानाय) सर्वतोरक्षणाय (अक्षये) क्षयराहित्ये । अहानौ । सम्पूर्णत्वे (आ अश्वृण्वन्) अङ्गीकृतवत्यः (अस्मै) पुरुषाय (आशाः) प्राच्यादयो दिशाः (कामेन) इच्छया (अजनयन्) उदपादयन् (स्वः) सुखम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण जन्म से ही अक्षय सुख के लिये दृढ़ आशा और प्रयत्न करता हुआ प्रत्येक स्थान में आनन्द पाता है ॥ ३ ॥

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥

कामेन । मा । कामः । आ । अगन् । हृदयात् । हृदयम् । परि ॥ यत् । अमीषाम् । अदः । मनः । तत् । आ । एतु । उप । माम् । इह ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(कामेन) काम [कर्म फल इच्छा] के साथ (कामः) काम [आशा] (हृदयात्) [एक] हृदय से (हृदयं परि) [दूसरे] हृदय में होकर (मा) मुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है । (अमीषाम्) इन [विद्वानों] का (यत्) जो (अदः) वह (मनः) मनन है, (तत्) वह (माम्) मुझ को (इह) यहां (उप) आदर से (आ एतु) प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों से विद्यायें प्राप्त करके दृढ़ आशायें करता हुआ उन्नति करता रहे ॥ ४ ॥

यत्काम कामयमाना हृदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

यत् । काम । कामयमानाः । हृदम् । कृण्मसि । ते । हविः ॥ तत् । नः । सर्वम् । सम् । ऋध्यताम् । अथ । एतस्य । हविषः । वीहि । स्वाहा ॥ ५ ॥

४—(कामेन) कर्मफलेच्छया सह (मा) माम् (कामः) अभिलाषः (आ अगन्) गमेर्लुङि च्लेर्लुकि मकारस्य नकारः । आगतवान् (हृदयात्) एकस्य अन्तःकरणात् (हृदयम्) द्वितीयस्य अन्तःकरणम् (परि) प्रति (यत्) (अमीषाम्) विदुषाम् (अदः) तत् (मनः) मननम् (तत्) (आ एतु) प्राप्नोतु (उप) आदरेण (माम्) (इह) अत्र ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(काम) हे काम ! [आशा] (यत्) जिस [फल] को (कामयमानाः) चाहते हुये हम (ते) तेरी (इदम्) यह (हविः) भक्ति (कृणमसि) करते हैं। (तत्) वह (सर्वम्) सब (नः) हमारे लिये (सम्) सर्वथा (ऋध्यताम्) सिद्ध होवे, (अथ) इस लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ [वर्तमान] (एतस्य) इस (हविषः) भक्ति की (वीहि) प्राप्ति कर॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को दृढ़ भक्ति के साथ शुभ कामनाओं की सिद्धि के लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥

सूक्तम् ५३ [काल सूक्तम्] ॥

१—१० ॥ कालो देवता ॥ १,३ निचृत् त्रिष्टुप् ; २ निचृदार्षी त्रिष्टुप्;४ भुरिक् पङ्क्तिः; ५ विराडार्षी बृहती; ६, ८ निचृदनुष्टुप् ; ७, ८, १० अनुष्टुप् ॥

कालमहिमोपदेशः—काल की महिमा का उपदेश ॥

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥१

कालः। अश्वः। वहति। सप्त-रश्मिः। सहस्र-अक्षः। अजरः। भूरि-रेताः॥ तम्। आ। रोहन्ति। कवयः। विपः-चितः। तस्य। चक्रा। भुवनानि। विश्वा॥ १॥

भाषार्थ—(सप्तरश्मिः) सात प्रकार की किरणों वाले सूर्य [के समान प्रकाशमान], (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्र वाला, (अजरः) बूढ़ा न होने वाला, (भूरिरेताः) बड़े बल वाला (कालः) काल [समयरूपी] (अश्वः)

५—(यत्) कर्मफलम् (काम) हे अभिलाष (कामयमानाः) इच्छन्तः (इदम्) क्रियमाणम् (कृणमसि) कुर्मः (ते) तव (हविः) आत्मदानम्। भक्तिम् (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (सर्वम्) (सम्) सम्यक् (ऋध्यताम्) सिध्यतु (अथ) तस्मात् (एतस्य) (हविषः) आत्मदानस्य (वीहि) प्राप्तिं कुरु (स्वाहा) सुवाण्या ॥

१—(कालः) कल संख्याने प्रेरणे च—एयन्तात् पचाद्यच् । कालयति संख्याति सर्वान् पदार्थानिति । समयः । परमेश्वरः (अश्वः) अशू व्याप्तौ—कन् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़ा (वहति) चलता रहता है। (तम्) उस पर (कवयः) ज्ञानवान् (विपश्चितः) बुद्धिमान् लोग (आ रोहन्ति) चढ़ते हैं, (तस्य) उस [काल] के (चक्रा) चक्र [चक अर्थात् घूमने के स्थान] (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वाले हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—महा बलवान् काल सर्वत्रव्यापी और अति शीघ्रगामी, शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण किरणों वाले सूर्य के समान प्रकाशमान है, उस काल को बुद्धिमान् लोग सब अवस्थाओं में घोड़े के समान सहायक जान कर अपना कर्तव्य सिद्ध करते हैं ॥ १ ॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः२

सप्त । चक्रान् । वहति । कालः । एषः । सप्त । अस्य । नाभीः । अमृतम् । नु । अक्षः ॥ सः । इमा । विश्वा । भुवनानि । अञ्जत् । कालः । सः । ईयते । प्रथमः । नु । देवः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(एषः कालः) यह काल [समय] (सप्त) [तीनकाल और चार दिशाओं रूपी] सात (चक्रान्) पहियों को (वहति) चलाता है, (अस्य) इस की (सप्त) [वेही] सात (नाभीः) नाभि [पहिये के मध्य] हैं, और (अक्षः) [इसका] धुरा (नु) निश्चय करके (अमृतम्) अमरपन

अश्नोतेर्व्यापनः सर्वभूतानां परमेश्वरः । व्यापनो मार्गस्य वा तुरङ्गः (वहति) गच्छति (सप्तरश्मिः) अश्नोतेरश्च । उ० ४ । ४६ । अशू व्याप्तौ–मिप्रत्ययः, धातोरशादेशः । शुक्लनीलपीतादिकिरणयुक्तसूर्यवत् प्रकाशमानः (सहस्राक्षः) बहुलोचनः । अमितदर्शनसामर्थ्यः (अजरः) जरारहितः । नित्ययुवा (भूरिरेताः) प्रभूतवीर्यः (तम्) (आ रोहन्ति) अधितिष्ठन्ति (कवयः) ज्ञानिनः (विपश्चितः) मेधाविनः (तस्य) कालस्य (चक्रा) चक्राणि । भ्रमणस्थानानि (भुवनानि) सत्तायुक्तानि भूतजातानि (विश्वानि) सर्वाणि ॥

२—(सप्त) त्रयः कालाश्चतस्रो दिशश्चेति सप्तसंख्याकान् (चक्रान्) रथाङ्गविशेषान् (वहति) चालयति (कालः) समयः (एषः) सर्वत्रव्यापकः (सप्त) पूर्वोक्ताः (नाभीः) नाभयः । अक्षबन्धकानि मध्यच्छिद्राणि (अमृतम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। (सः) वह (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्तावालों को (अजनत्) प्रकट करता हुआ [है], (सः कालः) वह काल (नु) निश्चयकरके (प्रथमः) पहिला (देवः) देवता [दिव्य पदार्थ] (ईयते) जाना जाता है ॥२॥

भावार्थ—काल व्यापक और नित्य है, काल से ही संसार के सब कार्य सिद्ध होते हैं, मनुष्य काल के यथावत् उपयोग से उन्नति को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्२

पूर्णः । कुम्भः । अधि । काले । आ-हितः । तम् । वै । पश्यामः । बहु-धा । नु । सन्तः ॥ सः । इमा । विश्वा । भुवनानि । प्रत्यङ् । कालम् । तम् । आहुः । परमे । वि-ओमन् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(काले अधि) काल [समय] के ऊपर (पूर्णः) भरा हुआ (कुम्भः) घड़ा [सम्पत्तियों का कोश] (आहितः) रक्खा है, (तम्) उस [घड़े] को (वै) निश्चय करके (सन्तः) वर्त्तमान हम (नु) ही (बहुधा) अनेक प्रकार (पश्यामः) देखते हैं। (सः) वह [काल] (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वालों के (प्रत्यङ्) सामने चलता हुआ है, (तम्) उस

अमरत्वम्। अजस्रम् (नु) निश्चयेन (अक्तः) रथावयवः (सः) कालः (इमा) व्याकृतानि (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) भवनवन्ति चराचरात्मकानि जगन्ति (अजनत्) अनक्तेः—शतृ, छान्दसो नुमभावः। अजनन् । व्यक्तीकुर्वन् (कालः) (सः) (ईयते) इण् गतौ—कर्मणि यक्। ज्ञायते तत्त्वज्ञैः (प्रथमः) आदिमः (नु) निश्चयेन (देवः) दिव्यपदार्थः ॥

३—(पूर्णः) पूरितः (कुम्भः) घटः। सम्पत्तीनां कोशः (अधि) उपरि (काले) म० १। समये (आहितः) स्थापितः (तम्) पूर्णं कुम्भम् (वै) निश्चयेन (पश्यामः) अनुभवामः (बहुधा) नानाप्रकारेण (नु) निश्चयेन (सन्तः) वर्त्तमाना वयम् (सः) कालः (इमा) दृश्यमानानि (भुवनानि) भवनवन्ति जगन्ति (प्रत्यङ्) प्रति प्रत्यक्षम् अञ्चन् गच्छन् वर्तते (कालम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कालम्) काल को (परमे) अति ऊंचे (व्योमन्) विविध रक्षा स्थान [ब्रह्म] में [वर्तमान] (आहुः) वे [बुद्धिमान् लोग] बताते हैं ॥३॥

भावार्थ—समय के सुप्रयोग से धर्मात्मा लोग अनेक सम्पत्तियों के साथ सद्गति प्राप्त करते हैं, वह महाप्रबल सब स्थानों में परमात्मा के सामर्थ्य के बीच वर्तमान है, उस की महिमा को बुद्धिमान् जानते हैं ॥३॥

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्येत् । पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥

सः । एव । सम् । भुवनानि । आ । अभरत् । सः । एव । सम् । भुवनानि । परि । ऐत् ॥ पिता । सन् । अभवत् । पुत्रः । एषाम् । तस्मात् । वै । न । अन्यत् । परम् । अस्ति । तेजः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सः एव) उस ने ही (भुवनानि) सत्ताओं को (सम्) अच्छे प्रकार (आ) सब ओर से (अभरत्) पुष्ट किया है, (सः एव) उसने ही (भुवनानि) सत्ताओं को (सम्) अच्छे प्रकार (परि ऐत्) घेर लिया है । वह (एषाम्) इन [सत्ताओं] का (पिता) पिता [पिता समान पहिले] (सन्) होकर (पुत्रः) पुत्र [पुत्र समान पीछे] (अभवत्) हुआ है, (तस्मात्) उस से (परम्) बड़ा (अन्यत्) दूसरा (तेजः) तज [सृष्टि के बीच] (वै) निश्चय करके (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ४ ॥

(तम्) तादृशम् (आहुः) कथयन्ति (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) व्योमनि । विविधं रक्षके परमात्मनि वर्तमानम् ॥

४—(सः) कालः (एव) निश्चयेन (सम्) सम्यक् (भुवनानि) सत्तावन्ति जगन्ति (आ) समन्तात् (अभरत्) भृञ् भरणे भौवादिकः—लङ् । पोषितवान् (सः) (एव) (सम्) (भुवनानि) (परि ऐत्) इण् गतौ—लङ् । आच्छादितवान् (पिता) पितृवत् पूर्वभावी (सन्) वर्तमानः (अभवत्) (पुत्रः) पुत्र इव पितुः । पश्चाद् भावी (एषाम्) भुवनानाम् (तस्मात्) कालात् (वै) (न) निषेधे (अन्यत्) इतरत् (परम्) उत्कृष्टम् (अस्ति) भवति (तेजः) ज्योतिः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—काल सब सत्ताओं में व्यापक है, काल ही सृष्टि का पिता और पुत्र है, अर्थात् पहिली, वर्तमान और आगामी सृष्टि काल से ही है, अर्थात् नित्य होने से वही पहिले और वही पीछे है, इसी से वह संसार में बड़ा प्रतापी है ॥ ४ ॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥

कालः । अमूम् । दिवम् । अजनयत् । कालः । इमाः । पृथिवीः । उत ॥ काले । ह । भूतम् । भव्यम् । च । इषितम् । ह । वि । तिष्ठते ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(कालः) काल [समय] ने (अमूम्) उस (दिवम्) आकाश को (उत) और (कालः) काल ने (इमाः) इन (पृथिवीः) पृथिवियों को (अजनयत्) उत्पन्न किया है । (काले) काल में (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (इषितम्) प्रेरा हुआ (ह) ही (वि) विशेष करके (तिष्ठते) ठहरता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—काल को पाकर ही यह दीखता हुआ आकाश और पृथिवी आदि लोक उत्पन्न हुये हैं और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्यत् भी काल के भीतर हैं ॥ ५ ॥

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥

कालः । भूतिम् । असृजत । काले । तपति । सूर्यः ॥ काले । ह । विश्वा । भूतानि । काले । चक्षुः । वि । पश्यति ॥ ६ ॥

५—(कालः) म० १ । समयः (अमूम्) दृश्यमानाम् (दिवम्) आकाशम् (अजनयत्) उदपादयत् (कालः) (इमाः) दृश्यमानाः (पृथिवीः) पृथिव्यादिलोकान् (उत) अपि च (काले) (ह) एव (भूतम्) अतीतम् (भव्यम्) भविष्यत् (च) (इषितम्) प्रेरितम् (ह) (वि) विशेषेण (तिष्ठते) वर्तते ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(कालः) काल [समय] ने (भूतिम्) ऐश्वर्य को (असृजत) उत्पन्न किया है, (काले) काल में (सूर्यः) सूर्य (तपति) तपता है। (काले) काल में (ह) ही (विश्वा) सब (भूतानि) सत्तायें हैं, (काले) काल में (चक्षुः) आंख (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—काल ही पाकर सब ऐश्वर्य, प्रकाश और पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥

काले । मनः । काले । प्राणः । काले । नाम । सम्-आहितम् ।
कालेन । सर्वाः । नन्दन्ति । आ-गतेन । प्र-जाः । इमाः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(काले) काल में (मनः) मन, (काले) काल में (प्राणः) प्राण, (काले) काल में (नाम) नाम (समाहितम्) संग्रह किया गया है। (आगतेन) आये हुये (कालेन) काल के साथ (इमाः) यह (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें (नन्दन्ति) आनन्द पाती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—काल के उत्तम उपयोग से मन और प्राण अर्थात् सब इन्द्रियों का स्वास्थ्य और यश बढ़ता है, तब ही सब प्राणी सुख पाते हैं ॥ ७ ॥

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥

६—(कालः) (भूतिम्) ऐश्वर्यम् । सत्ताम् (असृजत) अजनयत (काले) (तपति) प्रकाशते (सूर्यः) प्रेरक आदित्यः (काले) (ह) (विश्वा) (भूतानि) सत्तायुक्तानि जगन्ति (काले) (चक्षुः) नेत्रम् (वि) विविधम् (पश्यति) अवलोकयति ॥

७—(काले) (मनः) अन्तःकरणम् (काले) (प्राणः) श्वासः (काले) (नाम) नामधेयम् । यशः (समाहितम्) संगृहीतं वर्तते (कालेन) (सर्वाः) समस्ताः (नन्दति) संतुष्यन्ति (आगतेन) प्राप्तेन (प्रजाः) विविधसृष्टिपदार्थाः (इमाः) दृश्यमानाः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काले । तपः । काले । ज्येष्ठम् । काले । ब्रह्म । सम्-आहितम् ॥ कालः । ह । सर्वस्य । ईश्वरः । यः । पिता । आसीत् । प्रजा-पतेः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(काले) काल [समय] में (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि], (काले) काल में (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ कर्म, (काले) काल में (ब्रह्म) वेदज्ञान (समाहितम्) संग्रह किया गया है। (कालः) काल (ह) ही (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) स्वामी है, (यः) जो [काल] (प्रजापतेः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] का (पिता) पिता [के समान पालक] (आसीत्) हुआ है ॥ ८ ॥

भावार्थ—काल के ही उत्तम उपयोग से मनुष्य ब्रह्मचर्य के साथ श्रेष्ठ कर्म और वेदाध्ययन आदि करते और प्रजापालक होते हैं ॥ ८ ॥

तेनेषितं तेन जातं तद् उ तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥

तेन । इषितम् । तेन । जातम् । तत् । ऊं इति । तस्मिन् । प्रति-स्थितम् ॥ कालः । ह । ब्रह्म । भूत्वा । बिभर्ति । परमे-स्थिनम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(तेन) उस [काल] करके (इषितम्) प्रेरा गया (तेन) उस करके (जातम्) उत्पन्न किया गया (तत्) यह [जगत्] (तस्मिन्) उस [काल] में (उ) ही (प्रतिष्ठितम्) दृढ़ ठहरा है। (कालः) काल (ह)

८—(काले) (तपः) ब्रह्मचर्यादितपश्चरणम् (काले) (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठं कर्म (काले) (ब्रह्म) वेदज्ञानम् (समाहितम्) स्थापितम् (कालः) (ह) एव (सर्वस्य) जगतः (ईश्वरः) स्वामी (यः) कालः (पिता) पितृवत् पालकः (आसीत्) अभवत् (प्रजापतेः) प्रजापालकपुरुषस्य ॥

९—(तेन) कालेन (इषितम्) प्रेरितम् (तेन) (जातम्) उत्पादितम् (तत्) दृश्यमानं जगत् (उ) अवधारणे (तस्मिन्) काले (प्रतिष्ठितम्) दृढं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही (ब्रह्म) बढ़ता हुआ अन्न (भूत्वा) होकर (परमेष्ठिनम्) सब से ऊंचे ठहरे हुये [मनुष्य] को (बिभर्ति) पालता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—यह जगत् काल के उत्तम उपयोग से उत्पन्न होकर ठहरा हुआ है और उसके ही उत्तम उपयोग से अन्न आदि पाकर मनुष्य उच्च पद पाते हैं ॥ ९ ॥

काल: प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयंभू: कश्यप: कालात् तप: कालादजायत ॥ १० ॥

कालः । प्र-जाः । असृजत । कालः । अग्रे । प्रजा-पतिम् ॥
स्वयम्-भूः । कश्यपः । कालात् । तपः । कालात् । अजायत ।१०

भाषार्थ—(अग्रे) पहिले (कालः) काल ने (प्रजाः) प्रजाओं को, और (कालः) काल ने (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] को (असृजत) उत्पन्न किया है। (कालात्) काल से (स्वयम्भूः) स्वयम्भू अपने आप उत्पन्न होने वाला] (कश्यपः) कश्यप [द्रष्टा परमेश्वर] और (कालात्) काल से (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि नियम] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥१०॥

भावार्थ—प्रलय के पीछे सृष्टि की आदि में काल के प्रभाव से सब प्रजायें और प्रजापालक राजा आदि उत्पन्न होते हैं, और तभी अजन्मा परमात्मा अपने गुणों और अद्भुत रचनाओं और नियमों के कारण प्रसिद्ध होता है ॥ १० ॥

सूक्तम् ५४ [कालसूक्तम्] ॥

१—५ ॥ कालो देवता ॥ १ निचृदनुष्टुप्; २ गायत्री ; ३, ४ अनुष्टुप्; ५ अतिशक्करी ॥

स्थितम् (कालः) (ह) एव (ब्रह्म) प्रवृद्धमन्नम् (बिभर्ति) पालयति (परमेष्ठिनम्) सर्वोत्कृष्टे पदे स्थितं पुरुषम् ॥

१०—(कालः) (प्रजाः) जायमानान् जीवान् (असृजत) उदपादयत् (कालः) (अग्रे) सृष्ट्यादौ (प्रजापतिम्) प्रजापालकं मनुष्यम् (स्वयम्भूः) स्वयमुत्पन्नः परमेश्वरः (कश्यपः) पश्यकः । द्रष्टा (कालात्) (तपः) ब्रह्मचर्यादिव्रतम् (कालात्) (अजायत) प्रकटोऽभवत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालमहिपोदेशः—काल की महिमा का उपदेश ॥

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १ ॥

कालात् । आपः । सम् । अभवन् । कालात् । ब्रह्म । तपः । दिशः ॥ कालेन । उत् । एति । सूर्यः । काले । नि । विशते । पुनः १

भाषार्थ—(कालात्) काल [गिनती करने वाले समय] से (आपः) प्रजायें, (कालात्) काल से (ब्रह्म) वेदज्ञान, (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि नियम] और (दिशः) दिशायें (सम् अभवन्) उत्पन्न हुयी हैं। (कालेन) काल के साथ (सूर्यः) सूर्य (उत् एति) निकलता है, (काले) काल में (पुनः) फिर (नि विशते) डूब जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—समय के प्रभाव से प्रलय के पीछे परमात्मा सब पदार्थों और नियमों को उत्पन्न करता और प्रलय समय में लय कर देता है, जैसे सूर्य पृथिवी के सन्मुख होने से दिखाई देता और पृथिवी की आड़ में होने से अदृश्य हो जाता है ॥ १ ॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥ २ ॥

कालेन । वातः । पवते । कालेन । पृथिवी । मही ॥
द्यौः । मही । काले । आ-हिता ॥ २ ॥

भाषार्थ—(कालेन) काल [समय] के साथ (वातः) पवन (पवते) शुद्ध करता है, (कालेन) काल के साथ (पृथिवी) पृथिवी (मही) बड़ी है।

१—(कालात्) सू० ५३ म० १ । संख्याकारकात् समयात् (आपः) आप्ताः प्रजाः (सम् अभवन्) अजायन्त (कालात्) (ब्रह्म) वेदज्ञानम् (तपः) ब्रह्मचर्यादिव्रतम् (दिशः) प्राच्याद्याः (कालेन) (उदेति) उदयं गच्छति (सूर्यः) गमनशील आदित्यः (काले) (नि) नीचैः (विशते) प्रविश्यते । विलीयते (पुनः) सायङ्काले ॥

२—(कालेन) (वातः) वायुः (पवते) पुनाति । शोधयति (कालेन)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(काले) काल में (मही) बड़ा (द्यौः) आकाश (आहिता) रक्खा है ॥ २ ॥

भावार्थ—समय के कारण वायु, पृथिवी, आकाश आदि के परमाणु संयोग पाकर साकार होकर संसार का उपकार करते हैं ॥ २ ॥

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालाद्ऋचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ३ ॥

कालः । ह । भूतम् । भव्यम् । च । पुत्रः । अजनयत् । पुरा॥
कालात् । ऋचः । सम् । अभवन् । यजुः । कालात् । अजायत३

भाषार्थ—(कालः) कालरूपी (पुत्रः) पुत्र ने (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (पुरा) पहिले (अजनयत्) उत्पन्न किया है। (कालात्) काल से (ऋचः) ऋचायें [गुण प्रकाशक विद्यायें] (सम् अभवन्) उत्पन्न हुयी हैं, (कालात्) काल से (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

भावार्थ—नित्य वर्तमान काल पिता के समान पहिले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहता है—[देखो गत सूक्त मन्त्र ४]। काल के ही प्रभाव से सब आगे पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव होता है ॥ ३ ॥

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥

कालः । यज्ञम् । सम् । ऐरयत् । देवेभ्यः । भागम् । अक्षितम् ॥ काले । गन्धर्व-अप्सरसः । काले । लोकाः । प्रति-स्थिताः ॥ ४ ॥

(पृथिवी) (मही) महती वर्तते (द्यौः) आकाशः (मही) महती (काले) (आहिता) स्थापिता ॥

३—(कालः) (ह) एव (भूतम्) अतीतम् (भव्यम्) भविष्यत् (च) पुत्रः) पुत्र इव पश्चाद् वर्तमानः (अजनयत्) उत्पादितवान् (पुरा) पूर्वम् (कालात्) (ऋचः) ऋग्वेदमन्त्राः। गुणप्रकाशिका विद्याः (सम् अभवन्) अजायन्त (यजुः) यजुर्वेदः सत्कर्मणां ज्ञानम् (कालात्) (अजायत) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(कालः) काल ने (यज्ञम्) यज्ञ [सत्कर्म] को (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (अक्षितम्) अक्षय (भागम्) भाग (सम्) पूरा पूरा (ऐरयत्) भेजा है। (काले) काल में (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी पर धरे हुये पदार्थ] और अप्सरायें [आकाश में चलने वाले पदार्थ], और (काले) काल में (लोकाः) सब लोक (प्रतिष्ठिताः) रक्खे हुये हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—समय के उपयोग से विद्वान् लोग सत्कर्म करके सद्गति पाते हैं और काल में ही संसार के सब पदार्थ ठहरे हैं ॥ ४ ॥

कालेयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः । इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः । सर्वाल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥ ५ ॥

काले । अयम् । अङ्गिराः । देवः । अथर्वा । च । अधि । तिष्ठतः ॥ इमम् । च । लोकम् । परमम् । च । लोकम् । पुण्यान् । च । लोकान् । वि-धृतीः । च । पुण्याः ॥ सर्वान् । लोकान् । अभि-जित्य । ब्रह्मणा । कालः । सः । ईयते । परमः । नु । देवः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(काले) काल [समय] में (अयम्) यह (अङ्गिराः) अङ्गिरा [ज्ञानवान्] (देवः) व्यवहार कुशल मनुष्य (च) और (अथर्वा) अथर्वा [निश्चल स्वभाव ऋषि] (अधि) अधिकार पूर्वक (तिष्ठतः) दोनों स्थित हैं।

४—(कालः) (यज्ञम्) सद्व्यवहारम् (सम्) सम्यक् (ऐरयत्) प्रेरितवान् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (भागम्) अंशम् (अक्षितम्) अक्षीणम् (काले) (गन्धर्वाप्सरसः) अ० २।३६।६। गवि पृथिव्यां धृताः पदार्थाः, अप्सु आकाशे सरणशीलाश्च पदार्थाः (काले) (लोकाः) सूर्यादयः (प्रतिष्ठिताः) दृढं स्थिताः ॥

५—(काले) (अयम्) (अङ्गिराः) अ० २।१२।४। अगि गतौ—असि, इरुडागमः। ज्ञानवान् पुरुषः (देवः) व्यवहारकुशलः (अथर्वा) अ० ४।१।७। अ+थर्व चरणे गतौ—वनिप्, वकारलोपः। निश्चलस्वभाव ऋषिः (च)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमम्) इस (लोकम्) लोक को (च च) और (परमम्) सब से ऊंचे (लोकम्) लोक को (च) और (पुण्यान्) पुण्य (लोकान्) लोकों को (च) और (पुण्याः) पुण्य (विधृतीः) विविध धारण शक्तियों को, [अर्थात्] (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकों को (अभिजित्य) सर्वथा जीतकर, (ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] के साथ, (सः) वह (परमः) सब से बड़ा (देवः) दिव्य (कालः) काल (नु) शीघ्र (ईयते) चलता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—काल के सादर निरन्तर सेवन से मनुष्य ज्ञानी ऋषि होकर और सब व्यवहारों और समाजों में प्रतिष्ठा पाकर परम गति प्राप्त कर आनन्द भोगते हैं ॥ ५ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ५५ ॥

१—६ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ त्रिष्टुप्; २ निचृदार्षी पङ्क्तिः; ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्; ५ विराडार्षी पङ्क्तिः; ६ आर्षी बृहती ॥

गृहस्थधर्मोपदेशः—गृहस्थ धर्म का उपदेश ॥

रात्रिरात्रिमप्रयातं॑ भरन्तोऽश्वायेव॒ तिष्ठते॑ घा॒समस्मै॑ । रा॒यस्पोषे॑ण॒ समि॒षा मद॑न्तो मा॒ ते॑ अग्ने॒ प्रति॑वेशा रिषाम ॥ १ ॥

रात्रि॑म्-रात्रि॑म् । अप्र॑-यातम् । भर॑न्तः । अश्व॑ाय-इव । तिष्ठ॑ते । घा॒सम् । अस्मै॑ ॥ रा॒यः । पोषे॑ण । सम् । इ॒षा । मद॑न्तः । मा । ते॒ । अग्ने॒ । प्रति॑-वेशाः । रि॒षा॒म॒ ॥ १ ॥

भाषार्थ—(रात्रिंरात्रिम्) रात्रि रात्रि को (अस्मै) इस [गृहस्थ] के लिये (अप्रयातम्) पीड़ा न देने वाले (घासम्) भोजन योग्य पदार्थ को,

---

(अधि) अधिकृत्य (तिष्ठतः) वर्तेते (इमम्) (च) (लोकम्) दृश्यमानं स्थानम् (परमम्) उत्कृष्टम् (च) (पुण्यान्) शुद्धान् । शुभान् (च) (लोकान्) (विधृतीः) विविधधारिकाः शक्तीः (सर्वान्) (लोकान्) (अभिजित्य) अभिभूय (ब्रह्मणा) परमात्मना सह (कालः) (सः) प्रसिद्धः (ईयते) ईङ् गतौ-लट् । गच्छति (परमः) उत्कृष्टः (नु) शीघ्रम् (देवः) दिव्यः ॥

१—(रात्रिंरात्रिम्) प्रतिरात्रिम् (अप्रयातम्) यत ताडने णिजन्तात्—क्विप् । अताडकम् । सुखप्रदम् (भरन्तः) धरन्तः । पोषयन्तः (अश्वाय)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तिष्ठते) थान पर ठहरे हुये (अश्वाय) घोड़े के लिये (इव) जैसे [घास आदि को], (भरन्तः) धरते हुये, (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुये, (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहने वाले हम, (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (मा रिषाम) न दुखी होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग, जैसे रात्रि में थके घोड़े को घास अन्न आदि देकर प्रसन्न करते हैं, वैसे ही मुख्य परिश्रमी पुरुष को आदर करके सुखी रक्खें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—११ । ७५ और ऊपर आ चुका है—अ० ३ । १५ । ८ ॥

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२

या । ते । वसोः । वातः । इषुः । सा । ते । एषा । तया । नः । मृड ॥ रायः । पोषेण । सम् । इषा । मदन्तः । मा । ते । अग्ने । प्रति-वेशाः । रिषाम ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वन् !] (ते वातः) तुझ चलते फिरते की [हमारे लिये] (वसोः) उत्तम पदार्थ की (या) जो (इषुः) इच्छा है, (सा) सो (एषा) वह (ते) तेरी [ही] है, (तया) उस [इच्छा] से (नः) हमें (मृड) सुखी कर । (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुये, (ते) तेरे (प्रतिवेशाः)

घोटकाय (इव) यथा (तिष्ठते) स्वस्थाने वर्तमानाय (घासम्) भक्षणीयं पदार्थम् (रायः) धनस्य (पोषेण) वर्धनेन (सम्) सम्यक् (इषा) अन्नेन (मदन्तः) हृष्यन्तः (ते) तव (अग्ने) हे तेजस्विन् विद्वन् (प्रतिवेशाः) प्रत्यक्षं वर्तमानाः (मा रिषाम) कर्मणि कर्तृप्रयोगः । हिंसिता मा भूम ॥

२—(या) इच्छा (ते) तव (वसोः) श्रेष्ठपदार्थस्य (वातः) वा गति-गन्धनयोः—शतृ । गच्छतः पुरुषस्य (इषुः) इच्छा (सा) तादृशी (ते) तव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्मुख रहने वाले हम, (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (मा रिषाम) न दुखी होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दूसरों की उन्नति का प्रयत्न करता है, वह अपनी ही उन्नति करता है, इस से प्रत्येक मनुष्य पुरुषार्थ करके सब को सुख पहुंचावे ॥ २ ॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनस्स्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥

सायम्-सायम् । गृह-पतिः । नः । अग्निः । प्रातः-प्रातः । सौमनस्स्य । दाता ॥ वसोः-वसोः । वसु-दानः । एधि । वयम् । त्वा । इन्धानाः । तन्वम् । पुषेम ॥ ३ ॥

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनस्स्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥ ४ ॥

प्रातः-प्रातः । गृह-पतिः । नः । अग्निः । सायम्-सायम् । सौमनस्स्य । दाता ॥ वसोः-वसोः । वसु-दानः । एधि । इन्धानाः । त्वा । शतम्-हिमाः । ऋधेम ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(सायंसायम्) सायं सायङ्काल में (नः) हमारे (गृहपतिः) घरों का रक्षक, और (प्रातःप्रातः) प्रातः प्रातःकाल में (सौमनस्स्य) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष वा भौतिक अग्नि] तू (वसोर्वसोः) उत्तम उत्तम प्रकार के (वसुदानः)

(एषा) इच्छा वर्तते (तया) इच्छया (नः) अस्मान् (मृड) सुखय । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

३—(सायंसायम्) प्रतिसायङ्कालम् (गृहपतिः) गृहाणां रक्षकः (नः) अस्माकम् (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वरः पुरुषो वा भौतिकाग्निर्वा त्वम् (प्रातः-प्रातः) सर्वदा प्रातःकाले (सौमनस्स्य) आनन्दस्य (दाता) वसोर्वसोः उत्तमोत्तमप्रकारस्य (वसुदानः) धनस्य दाता (एधि) भव (वयम्) (त्वा) त्वाम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन का देने वाला (एधि) हो, (त्वा) तुझ को (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुये (वयम्) हम लोग (तन्वम्) शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें ॥ ३ ॥

(प्रातःप्रातः) प्रातः प्रातःकाल में (नः) हमारे (गृहपतिः) घरों का रक्षक, और (सायंसायम्) सायं सायंकाल में (सौमनसस्य) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष वा भौतिक अग्नि] तू (वसोर्वसोः) उत्तम उत्तम प्रकार के (वसुदानः) धन का देने वाला (एधि) हो, (त्वा) तुझको (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुये (शतं—हिमाः) सौ शीतल ऋतुओं वाले हम लोग (ऋधेम) बढ़ते रहें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना, विद्वानों के सत्संग और अग्निहोत्र के अनुष्ठान से स्वास्थ्य बढ़ाकर धन वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३,४ ॥

मन्त्र ३, ४ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पञ्च महायज्ञ विषय में व्याख्यात हैं। मन्त्र ३ का चौथा पाद आचुका है—अ० ५ । ३ । १ ॥

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये । सुभ्यः सुभां मे पाहि ये च सुभ्याः सभासदः ॥ ५ ॥

अपश्चा । दग्ध-अन्नस्य । भूयासम् ॥ अन्न-अदाय । अन्न-पतये । रुद्राय । नमः । अग्नये ॥ सुभ्यः । सुभाम् । मे । पाहि ये । च । सुभ्याः । सुभा-सदः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मैं (दग्धान्नस्य) जले हुये अन्न के (अपश्चा) न पीछे [जाने वाला] (भूयासम्) होऊं । (अन्नादाय) अन्न खिलाने वाले, (अन्नपतये) अन्न के स्वामी (रुद्राय) ज्ञानदाता, (अग्नये) ज्ञानी [पुरुष] के लिये (नमः) नम-

---

(इन्धानाः) प्रकाशयन्तः (तन्वम्) शरीरम् (पुषेम) पोषयेम । पुष्टं कुर्याम ॥

४—अस्यार्थः पूर्ववद् विज्ञेयः । विशेषस्तु व्याख्यायते (शतंहिमाः) शतं हिमानि शतं हेमन्तर्तवो येषां ते तथाभूताः (ऋधेम) ऋधु वृद्धौ । वर्धेमहि ॥

५—(अपश्चा) पश्च पश्चा च च्छन्दसि । पा० ५ । ३ । ३३ । इति पश्चा-शब्दः, नञ्समासः । अपश्चात् । न पश्चाद्गामी इत्यर्थः (दग्धान्नस्य) दग्धस्य भस्मीभूतस्य निःसारस्य भोजनस्य (भूयासम्) (अन्नादाय) अन्नस्य भोजयित्रे (अन्नपतये) अन्नस्य स्वामिने (रुद्राय) ज्ञानप्रदाय (नमः) सत्कारः (अग्नये)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कार है। (सभ्यः) सभा के योग्य तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा [सभा की व्यवस्था] की (पाहि) रक्षा कर, (च) और [वे भी रक्षा करें] (ये) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे जले हुये अन्न को निःसार समझ कर छोड़ देते हैं, वैसे ही मनुष्य व्यर्थ निष्फल कामों में प्रयत्न न करें। अन्न आदि आवश्यक पदार्थों का संग्रह रक्खें, और राजप्रबन्धू से सभा व्यवस्था अर्थात् पंचायत बनाकर योग्य सभासदों को धर्म पथ में लगाये रहें ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम भाग कुछ भेद से व्याख्यात है—महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण, सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ६ राजधर्म, और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका राजप्रजाधर्म ॥

त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६॥

त्वम् । इन्द्र । पुरु-हूत । विश्वम् । आयुः । वि । अश्नवत् ॥
अहः-अहः । बलिम् । इत् । ते । हरन्तः । अश्वाय-इव । तिष्ठते । घासम् । अग्ने ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये (इन्द्र) परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (त्वम्) तू (विश्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन को (वि) विविध प्रकार (अश्नवत्) प्राप्त हो। (अग्ने) हे ज्ञानी राजन् ! (ते) तेरे लिये (इत्) ही (अहरहः) दिन दिन (बलिम्) बलि [कर] (हरन्तः) लाते हुये [हम हैं],

---

विदुषे पुरुषाय (सभ्यः) सभायोग्यस्त्वम् (सभाम्) सभाव्यवस्थाम् (मे) मम (पाहि) रक्ष (ये) (च) तेऽपि सभां पान्तु (सभ्याः) सभार्हाः (सभासदः) सभायां सदनशीलाः। सामाजिकाः ॥

६—(त्वम्) (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् राजन् (पुरुहूत) हे बहुभिराहूत (विश्वम्) पूर्णम् (आयुः) जीवनम् (वि) विविधम् (अश्नवत्) अश्नोतेर्लेटि अडागमः। तिङां तिङो भवन्ति। वा० पा० ७ । १ । ३९। मध्यमपुरुषस्य प्रथमः। अश्नवः। अश्नुहि। प्राप्नुहि (अहरहः) प्रतिदिनम् (बलिम्) करम् (इत्) एव (ते) तुभ्यम् (हरन्तः) प्रापयन्तो वयम् (अश्वाय) (इव) यथा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं], (इव) जैसे (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुये (अश्वाय) घोड़े को (घासम्) घास [लाते हैं] ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य धन आदि से प्रधान पुरुष का सत्कार करते रहें, जिस से वह पूर्ण आयु प्राप्त करके सब की रक्षा में तत्पर रहे ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका बलिवैश्वदेव विषय में व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ५६ [स्वप्नसूक्तम्] ॥

१—६ ॥ स्वप्नो देवता ॥ १, २, ६ त्रिष्टुप्; ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्; ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

निद्रात्यागोपदेशः—निद्रा त्याग का उपदेश ॥

यमस्य लोकादधि बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ१

यमस्य । लोकात् । अधि । आ । बभूविथ । प्र-मदा । मर्त्यान् । प्र । युनक्षि । धीरः ॥ एकाकिना सं-रथम् । यासि । विद्वान् । स्वप्नम् । मिमानः । असुरस्य । योनौ ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे स्वप्न !] (यमस्य) यम [मृत्यु] के (लोकात्) लोक से (अधि) अधिकार पूर्वक (आ बभूविथ) तू आया है, (धीरः) धीर [धैर्यवान्] तू (प्रमदा) आनन्द के साथ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (प्र युनक्षि) काम में लाता है। (असुरस्य) प्राण वाले [जीव] के (योनौ) घर में (स्वप्नम्) निद्रा (मिमानः) करता हुआ (विद्वान्) जानकार तू (एकाकिना) एकाकी

(तिष्ठते) स्वस्थाने वर्तमानाय (घासम्) भक्षणीयं पदार्थम् (अग्ने) हे विद्वन् राजन् ॥

१—(यमस्य) मृत्योः (लोकात्) स्थानात् (अधि) अधिकृत्य (आ बभूविथ) प्राप्तोऽसि (प्रमदा) प्रकृष्टसुखेन (मर्त्यान्) मनुष्यान् (प्र युनक्षि) प्रयुक्तान् करोषि (धीरः) धैर्यवांस्त्वम् (एकाकिना) एकादाकिनिच्चासहाये । पा० ५ । ३ । ५२ । एक—आकिनिच् । असहायेन मृत्युना (सरथम्) समाने रथे भूत्वा (यासि) गच्छसि (विद्वान्) जानन् (स्वप्नम्) निद्राम् (मिमानः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मृत्यु] के साथ (सरथम्) एक रथ में होकर (यासि) चलता है ॥ १ ॥

भावार्थ—स्वप्न वा आलस्य के कारण अवसर चूककर मनुष्य कष्टों में पड़कर मृत्यु पाते हैं ॥ १ ॥

इस सूक्त का अर्थ अधिक विचारो और मिलान करो—अ० का० ६ । सू० ४६ तथा का० १६ । सू० ५ ॥

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि । ततः स्वप्नेदमधि बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमप-गूहमानः ॥ २ ॥

बन्धः । त्वा । अग्रे । विश्व-चयाः । अपश्यत् । पुरा । रात्र्याः । जनितोः । एके । अह्नि ॥ ततः । स्वप्न । इदम् । अधि । आ । बभूविथ । भिषक्-भ्यः । रूपम् । अप-गूहमानः ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे स्वप्न !] (विश्वचयाः) संसार के संचय करने वाले (बन्धः) प्रबन्ध कर्ता [परमेश्वर] ने (त्वा) तुझे (अग्रे) पहिले ही [पूर्व जन्म में] (रात्र्याः) रात्रि [प्रलय] के (जनितोः) जन्म से (पुरा) पहिले (एके अह्नि) एक दिन [एक समय] में (अपश्यत्) देखा है । (ततः) इसी से (स्वप्न) हे स्वप्न ! (भिषग्भ्यः) वैद्यों से (रूपम्) [अपना] रूप (अपगूहमानः) छिपाता हुआ तू (इदम्) इस [जगत्] में (अधि) अधिकार पूर्वक (आ बभूविथ) व्यापा है ॥ २ ॥

निर्मिमाणः कुर्वन् (असुरस्य) प्राणवतो जीवस्य (योनौ) गृहे ॥

२—(बन्धः) प्रबन्धकः परमेश्वरः (त्वा) (अग्रे) पूर्वकाले (विश्व-चयाः) चिञ् चयने—असुन् । संसारस्य चेता । स्रष्टा (अपश्यत्) दृष्टवान् (पुरा) पूर्वम् (रात्र्याः) प्रलयरूपरात्रिकालस्य (जनितोः) जनी प्रादुर्भावे-तोसुन् । जन्मतः सकाशात् (एके) एकस्मिन् (अह्नि) दिने । समये (ततः) तस्मात् कारणात् (स्वप्न) (इदम्) दृश्यमानं जगत् (अधि) अधिकृत्य (आ बभूविथ) भू प्राप्तौ-लिट् । व्याप्तवानसि (भिषग्भ्यः) चिकित्सकेभ्यः सकाशात् (रूपम्) स्वभावम् (अपगूहमानः) आच्छादयन् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—यह स्वप्न वा आलस्य आदि दोष पहिले जन्म के कर्म फलों के संस्कार से हैं और ईश्वर नियम से आत्मा में ऐसा गुप्त है कि विद्वान् लोग उसकी ठीक ठीक व्यवस्था नहीं जानते। मनुष्य ऐसा विचार कर उत्तम कामों को सदा शीघ्र करें ॥ २ ॥

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् । तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासुः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥

बृहत्-गावा । असुरेभ्यः । अधि । देवान् । उप । अवर्तत । महिमानम् । इच्छन् ॥ तस्मै । स्वप्नाय । दधुः । आधिपत्यम् । त्रयः-त्रिंशासः । स्वः । आनशानाः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[जो स्वप्न] (बृहद्गावा) बड़ी गति वाला, (महिमानम्) [अपनी] महिमा (इच्छन्) चाहता हुआ, (असुरेभ्यः अधि) असुरों [अविद्वानों] के पास से (देवान्) विद्वानों के (उप अवर्तत) पास वर्तमान हुआ है। (तस्मै स्वप्नाय) उस स्वप्न को (स्वः) सुख (आनशानाः) पा चुकने वाले (त्रयस्त्रिंशासः) तेतीस संख्या वाले [देवताओं] ने (आधिपत्यम्) अधिपतिपन (दधुः) दिया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—तेतीस देवता, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य वा महीने, एक इन्द्र वा बिजुली, और एक प्रजापति वा यज्ञ हैं [देखो-अथर्व० ६। १३९ । १]। भावार्थ विचारना चाहिये ॥ ३ ॥

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् । त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणे नानुशिष्टाः ॥४॥

३—(बृहद्गावा) आतोमनिन्क्वनिब्वनिपश्च । पा० ३ । २ । ७४ । गाङ् गतौ-क्वनिप् । महागतिशीलः (असुरेभ्यः) सुरविरोधिभ्यः । अविद्वद्भ्यः (अधि) (देवान्) विदुषः पुरुषान् (उपावर्तत) समीपं प्राप्तवान् (महिमानम्) स्वप्रभावम् । (इच्छन्) कामयमानः (तस्मै) तादृशाय (स्वप्नाय) (दधुः) दत्तवन्तः (आधिपत्यम्) साम्राज्यम् (त्रयस्त्रिंशासः) सर्वेषां त्रयस्त्रिंशत्संख्यापूरणत्वात्-डट्प्रत्ययः । त्रयस्त्रिंशत् संख्याकाः । अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, द्वादशादित्याः, इन्द्रः प्रजापतिश्चेति-अथर्व० । ६ । १३९ । १ (स्वः) सुखम् (आनशानाः) अश्नोतेर्लिटः कानच् । प्राप्तवन्तः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । एताम् । विदुः । पितरः । न । उत । देवाः । येषाम् । जल्पिः । चरति । अन्तरा । इदम् ॥ त्रिते । स्वप्नम् । अदधुः । आप्त्ये । नरः । आदित्यासः । वरुणेन । अनु-शिष्टाः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(एताम्) इस [आगे वर्णित वाणी] को (न) न तो (पितरः) पालन करने वाले, (उत) और (न) न (देवाः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं, (येषाम्) जिन [लोगों] की (जल्पिः) वाणी (इदम् अन्तरा) इस [जगत्] के बीच (चरति) विचरती है—"(वरुणेन) श्रेष्ठ [परमात्मा] करके (अनुशिष्टाः) शिक्षा किये गये, (आदित्यासः) अखण्डव्रत वाले (नरः) नेता लोगों ने (आप्त्ये) आप्तों [सत्य वक्ताओं] के हितकारी (त्रिते) तीनों [लोकों] के विस्तार करने वाले [परमेश्वर] में (स्वप्नम्) स्वप्न को (दधुः) धारण किया है" ॥ ४ ॥

भावार्थ—विचारना चाहिये ॥ ४ ॥

यस्य क्रूरमभंजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः। स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तृप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५ ॥

यस्य । क्रूरम् । अभंजन्त । दुः-कृतः । अस्वप्नेन । सु-कृतः । पुण्यम् । आयुः ॥ स्वः । मदसि । परमेण । बन्धुना । तृप्यमानस्य । मनसः । अधि । जज्ञिषे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(दुष्कृतः) दुष्कर्मियों ने (यस्य) जिस [स्वप्न] के

४—(न) निषेधे (एताम्) वक्ष्यमाणां वाणीम् (विदुः) जानन्ति (पितरः) पालकाः (न) निषेधे (उत) अपि च (देवाः) विद्वांसः (येषाम्) (जल्पिः) जल्प व्यक्तायां वाचि—इन्प्रत्ययः । वाणी (चरति) विचरति । वर्तते (इदम् अन्तरा) अस्य जगतो मध्ये (त्रिते) अ० ५ । १ । १ । त्रि + तनु विस्तारे—डप्रत्ययः । लोकत्रयविस्तारके परमात्मनि (स्वप्नम्) (दधुः) धारितवन्तः (आप्त्ये) आप्तानां सत्यवक्तृणां हिते (नरः) नेतारः (आदित्यासः) अखण्डव्रतिनः (वरुणेन) श्रेष्ठेन परमेश्वरेण (अनुशिष्टाः) निरन्तरमुपदिष्टाः ॥

५—(यस्य) (क्रूरम्) निर्दयं कर्म (अभजन्त) असेवन्त (दुष्कृतः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्रूरम्) क्रूर [निर्दय] कर्म को (अभजन्त) भोगा है, और (अस्वप्नेन) स्वप्न त्याग से (सुकृतः) सुकर्मियों ने (पुण्यम्) पवित्र (आयुः) जीवन [भोगा] है। [हे स्वप्न !] (स्वः) सुख में [वर्तमान] (परमेण) परम (बन्धुना) बन्धु [पुरुष] के साथ (मदसि) तू जड़ होजाता है, और (तप्यमानस्य) सन्ताप को प्राप्त हुये [थके पुरुष] के (मनसः अधि) मन में से (जज्ञिषे) तू प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

भावार्थ—दुष्ट लोग स्वप्न वा आलस्य के कारण महाकष्ट उठाते हैं, और पुण्यात्मा उसके त्याग से आनन्द उठाते हैं। सर्वहितैषी पुरुषार्थी लोगों में उस का प्रभाव नहीं होता, वह पुरुषार्थ हीन थके लोगों में प्रभाव जमाता है॥५॥

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा दुहा ते । यशस्विनौ नो यशसेह पाह्यारात् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६ ॥

विद्म । ते । सर्वाः । परि-जाः । पुरस्तात् । विद्म । स्वप्न । यः । अधि-पाः । दुह । ते ॥ यशस्विनः । नः । यशसा । दुह । पाहि । आरात् । द्विषेभिः । अप । याहि । दूरम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! (पुरस्तात्) सामने [रहने वाले] (ते) तेरे (सर्वाः) सब (परिजाः) परिवारों [काम क्रोध लोभ आदि] को (विद्म) हम जानते हैं, और [उस परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते हैं (यः)

दुष्कर्माणः पापिनः (अस्वप्नेन) स्वप्नत्यागेन (सुकृतः) पुण्यकर्माणः (पुण्यम्) पवित्रम् (आयुः) जीवनम्—अभजन्त, इत्यनुवर्तते (स्वः) सुखे वर्तमानेन (मदसि) मद जाड्ये । जडो मूढो भवसि (परमेण) सर्वोत्कृष्टेन (बन्धुना) बान्धवेन (तप्यमानस्य) सन्तप्यमानस्य । श्रान्तस्य पुरुषस्य (मनसः) अन्तःकरणस्य (अधि) अधिकम् (जज्ञिषे) प्रादुर्बभूविथ ॥

६—(विद्म) जानीमः (ते) तव (सर्वाः) (परिजाः) जनसनखनक्रम० । पा० ३ । २ । ६७ । परि + जनी प्रादुर्भावे—विट् । विड्वनोरनुनासिकस्यात् । पा० ६ । ४ । ४१ । अनुनासिस्य आकारः । परिजनान् । कामक्रोधलोभादीन्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो (इह) यहां पर (ते) तेरा (अधिपाः) बड़ा राजा है। (यशस्विनः नः) हम यशस्वियों को (यशसा) धन [वा कीर्ति] के साथ (इह) यहां पर (पाहि) पाल (द्विषेभिः) बैर भावों के साथ (आरात्) दूर (दूरम्) दूर (अप याहि) तू चला जा ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि स्वप्न वा आलस्य के कारण अर्थात् काम क्रोध लोभ आदि को त्याग कर परमेश्वर के आश्रय से यशस्वी होकर अपनी सम्पत्ति और कीर्ति को बनाये रक्खें, और कभी परस्पर द्वेष न करें ॥६

सूक्तम् ५७ ॥

१—५ ॥ आत्मा देवता ॥ १ अनुष्टुप्; २ आर्षी पङ्क्तिः; ३ आर्षी त्रिष्टुप्; ४ निचृदष्टिः; ५ भुरिगार्षी जगती ॥

दुष्टस्वप्ननिवारणोपदेशः-बुरे स्वप्न दूर करने का उपदेश ॥

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं यथ॒र्णं सं॒नय॑न्ति ।
ए॒वा दु॒ष्वप्न्यं॒ सर्व॒मप्रि॑ये॒ सं न॑यामसि ॥ १ ॥

यथा॑ । क॒लाम् । यथा॑ । श॒फम् । यथा॑ । ऋ॒णम् । स॒म्-नय॑न्ति ॥ ए॒व । दुः॒-स्वप्न्य॑म् । सर्व॑म् । अप्रि॑ये । सम् । न॒या॒म॒सि॒ १

भाषार्थ—(यथा) जैसे (कलाम्) सोलहवें अंश को और (यथा) जैसे (शफम्) आठवें अंश को और (यथा) जैसे (ऋणम्) [पूरे] ऋण को (संनयन्ति) लोग चुकाते हैं। (एव) वैसे ही (सर्वम्) सब (दुःष्वप्न्यम्) नींद में उठे बुरे विचार को (अप्रिये) अप्रिय पुरुष पर (सम् नयामसि) हम

(पुरस्तात्) अग्रे वर्तमानाः (विद्म) (स्वप्न) (यः) (अधिपाः) स्वामी। परमेश्वर इत्यर्थः (इह) अत्र (ते) तव (यशस्विनः) कीर्तियुक्तान् (नः) अस्मान् (यशसा) धनेन । कीर्त्या (इह) (पाहि) रक्ष (आरात्) दूरे (द्विषेभिः) द्वेषैः (अप याहि) अपगच्छ (दूरम्) ॥

१—(यथा) येन प्रकारेण (कलाम्) षोडशांशम् (यथा) (शफम्) गवादिपादचतुष्टयस्य द्विखुरत्वाद् एकस्य खुरस्याष्टमांशग्रहणम् । अष्टमांशम् (यथा) (ऋणम्) पुनर्देयत्वेन गृहीतं धनम् (संनयन्ति) सम्यग् गमयन्ति । प्रत्यर्पयन्ति (एव) एवम् (दुःष्वप्न्यम्) कुनिद्राभवं विचारम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य ऋण को थोड़ा थोड़ा करके वा सब एक साथ चुकाते हैं, वैसे ही मनुष्य कुस्वप्न आदि रोगों से निवृत्ति पावें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है—अ० ६ । ४६ । ३ और ऋग्वेद में भीहै—८ । ४७ । १७ ॥

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कुला अगुः ।
समस्मासु यद्दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥

सम् । राजानः । अगुः । सम् । ऋणानि । अगुः । सम् । कुष्ठाः । अगुः । सम् । कुलाः । अगुः ॥ सम् । अस्मासु । यत् । दुः-स्वप्न्यम् । निः । द्विषते । दुः-स्वप्न्यम् । सुवाम ॥ २

भाषार्थ—(राजानः) राजा लोग (सम् अगुः) एकत्र हुये हैं, (ऋणानि) अनेक ऋण (सम् अगुः) एकत्र हुये हैं, (कुष्ठाः) कुष्ठ [कूट आदि औषध विशेष] (सम् अगुः) इकट्ठे हुये हैं, (कलाः) कलायें [समय के अंश] (सम् अगुः) एकत्र हुये हैं । (अस्मासु) हम में (यत्) जो (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न (सम्=सम् अगात्) एकत्र हुआ है, (दुःस्वप्न्यम्) उस दुष्ट स्वप्न को (द्विषते) बैर करने वाले के लिये (निः सुवाम) हम बाहर निकालें ॥ २ ॥

भावार्थ—(कुष्ठ) अर्थात् कूट औषध के लिये देखो—अ० १९ । ३९ । जैसे राजा लोग एकत्र होकर संसार के कष्ट दूर करते हैं, वैसे ही वैद्य लोग दुष्ट स्वप्न आदि रोगों का नाश करें ॥ २ ॥

देवानां पत्नीनां गर्भं यमस्य करं यो भद्रः स्वप्न ।

(सर्वम्) (अप्रिये) अहिते । शत्रौ (संनयामसि) संनयामः । स्थापयामः ॥

२—(राजानः) (सम् अगुः) इण् गतौ—लुङ् । संहता अभवन् (ऋणानि) । (सम् अगुः) बहूनि अभवन् (कुष्ठाः) अ० १९ । ३९ । १ । रोगाणां निष्कर्षकाः। औषधविशेषाः (सम् अगुः) (कलाः) कालांशाः (सम् अगुः) (सम्) सम् अगात् (अस्मासु) (यत्) (दुःस्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्नभावः (द्विषते) द्वेष्ट्रे (दुःस्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्नभावम् (निः सुवाम) बहिर्गमयाम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स मम् यः पापस्तद्द्विषते प्र हिणमः ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥
देवानाम् । पत्नीनाम् । गर्भ । यमस्य । कर । यः । भद्रः ।
स्वप्न ॥ सः । मम । यः । पापः । तत् । द्विषते । प्र । हिणमः ॥
मा । तृष्टानाम् । असि । कृष्ण-शकुनेः । मुखम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(देवानाम्) हे विद्वानों की (पत्नीनाम्) पालन शक्तियों के (गर्भ) गर्भ ! [उदर रूप पोषक] और (यमस्य) हे यम [मृत्यु] के (कर) हाथ ! (स्वप्न) हे स्वप्न ! (यः) जो तू (भद्रः) कल्याणकारी है, (सः) वह (मम) मेरा [होवे], (तत्) इस लिये (यः) जो तू (पापः) पापी [अनहित है, [उसे] (द्विषते) वैरी के लिये (प्र हिणमः) हम भेजते हैं । (तृष्टानाम्) क्रूरों के मध्य (कृष्णशकुनेः) काले पक्षी [कौवे आदि] का (मुखम्) मुख (मा असि) तू मत हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—स्वप्न दो प्रकार के हैं, एक शुभ विद्वानों के हितकारी और दूसरे अशुभ जो दुःखदायी हैं । विद्वान् लोग अपने शुभ विचारों के अनुरूप शुभ स्वप्न देखें और कुविचारों के कारण से कुस्वप्न देखकर शत्रु न बनें ॥ ३ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नास्यव इव क्रायमस्यव इव नीनाहम् । अनास्माकं दैवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥

३—(देवानाम्) विदुषाम् (पत्नीनाम्) पालनशक्तीनाम् (गर्भ) हे उदरवत् पोषक (यमस्य) मृत्योः (कर) हे हस्त इव हितकर (यः) यस्त्वम् (भद्रः) कल्याणकारी भवसि (स्वप्न) (सः) स त्वम् (मम) भवेः—इति शेषः (यः) त्वम् (पापः) अनिष्टकारी भवसि (तत्) तस्मात् (द्विषते) शत्रवे (प्र हिणमः) हि गतौ, अन्तर्गतण्यर्थः । प्रेरयामः (तृष्टानाम्) तृषा पिपासायाम्-क्त । तृषितानां लोभिनां क्रूराणां मध्ये (मा असि) मा भव (कृष्णशकुनेः) कृष्णपक्षिणः । काकादेः (मुखम्) मुखमिव क्रूरम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । त्वम् । स्वप्न । अश्वः-इव । कायम् । अश्वः-इव । नीनाहम् ॥ अनास्माकम् । देव-पीयुम् । पियारुम् । वप । यत् । अस्मासु । दुः-स्वप्न्यम् । यत् । गोषु । यत् । च । नः । गृहे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! (तं त्वा) उस तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) पूरा पूरा (विद्म) हम जानते हैं, (सः त्वम्) सो तू, (स्वप्न) हे स्वप्न ! (अश्वः इव) जैसे घोड़ा (कायम्) अपनी पेटी को, और (अश्वः इव) जैसे घोड़ा (नीनाहम्) अपनी वागडोर [को तोड़ डालता है, वैसे], (अनास्माकम्) हमारे न होने वाले (देवपीयुम्) विद्वानों के सताने वाले (पियारुम्) दुःखदायी को (वप) तोड़ डाल और (दुःस्वप्न्यम्) उस दुष्ट स्वप्न को [तोड़ दे], (यत्) जो (अस्मासु) हम में है, (यत्) जो (नः) हमारी (गोषु) गौओं में है, (च) और (यत्) जो (गृहे) घर में है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे बलवान् घोड़ा अपनी पेटी और वाग डोर को तोड़ताड़ डालता है, वैसे ही मनुष्य शुभ विचारों द्वारा दुष्ट विचारों को नाश करें और सब को स्वस्थ रक्खें ॥ ४ ॥

४—(तम्) तादृशम् (त्वा) त्वाम् (स्वप्न) (तथा) तेन प्रकारेण (सम्) सम्पूर्णम् (विद्म) जानीमः (सः) (त्वम्) (स्वप्न) (अश्वः) (इव) यथा (कायम्) स्वशरीरसम्बधिनीं पार्श्वरज्जुम् । पेटीम् (अश्वः) (इव) (नीनाहम्) नि+णह बन्धने—घञ् । रश्मिम् । मुखरज्जुम् (अनास्माकम्) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च । पा० ४ । ३ । १ । अस्मद्—अण् । योऽस्माकं न भवति तम् (देवपीयुम्) अ० ४ । ३५ । ७ । विदुषां हिंसकम् (पियारुम्) अ० ११ । २ । २१ । पीयतिर्हिंसाकर्मा—निरु० ४ । २५ । अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन् उ० ३ । १३४ । अत्र बाहुलकात् पीयतेः—आरुप्रत्ययो ह्रस्वश्च । हिंसकम् । दुःखप्रदम् (वप) टुवप बीजसन्ताने छेदने च । छिन्धि (यत्) (अस्मासु) (दुष्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्नभावः (यत्) (गोषु) धेनुषु (यत्) (च) (नः) अस्माकम् (गृहे) निवासे ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि ।
दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥

अनास्माकः । तत् । देव-पीयुः । पियारुः । निष्कम्-इव । प्रति । मुञ्चताम् ॥ नव । अरत्नीन् । अप-मयाः । अस्माकम् । ततः । परि ॥ दुः-स्वप्न्यम् । सर्वम् । द्विषते । निः । दयामसि ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(अनास्माकः) हमारा न होने वाला, (देवपीयुः) विद्वानों का सताने वाला, (पियारुः) दुःखदायी [शत्रु] (तत्) उस [दुष्ट स्वप्न] को (निष्कम् इव) सुवर्ण के समान (प्रति मुञ्चताम्) धारण करे । अस्माकम्) हमारे (ततः) उस [स्थान] से [दुष्ट स्वप्न को] (नव) नौ (अरत्नीन्) हाथों भर (परि) अलग करके (अपमयाः) तू दूर ले जा । (सर्वम्) सब (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (द्विषते) बैरी के लिये (निः दयामसि) हम बाहर हांकते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—धर्मात्मा लोग दुष्टों के समान कुविचारों को अपने में न आने देवें, किन्तु उत्तम विचारों को आत्मा में सदा धारण करते रहें ॥ ५ ॥

सूक्तम् ५८ ॥

१–६ ॥ आत्मा देवता ॥ १, ४ त्रिष्टुप् ; २ आर्षी पङ्क्तिः; ३ अतिशक्करी;

५—(अनास्माकः) म० ४ । योऽस्माकं न भवति सः (तत्) दुःष्वप्न्यम् (देवपीयुः) म० ४ । विदुषां हिंसकः (पियारुः) म० ४ । दुःखप्रदः (निष्कम्) सुवर्णम् (इव) यथा (प्रति मुञ्चताम्) धारयतु (नव) (अरत्नीन्) अ+ऋ गतौ—कक्षि, रत्निर्बद्धमुष्टिकरः स नास्ति यत्र । विस्तृतकनिष्ठाङ्गुलिमुष्टिकहस्तप्रमाणानि (अपमयाः) मय गतौ भ्वादिः, लेट्, णिजर्थः । अपगमयेः (अस्माकम्) (ततः) तस्मात् स्थानात् (परि) पृथग्भावे (दुःष्वप्न्यम्) दुष्टस्वप्नभावम् (सर्वम्) (द्विषते) शत्रवे (निः दयामसि) दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । अपगमयामः बहिष्कुर्मः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५ आर्षी त्रिष्टुप् ; ६ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती । श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१॥

घृतस्य । जूतिः । समना । स-देवा । सम्-वत्सरम् । हविषा । वर्धयन्ती ॥ श्रोत्रम् । चक्षुः । प्राणः । अच्छिन्नः । नः । अस्तु । अच्छिन्नाः । वयम् । आयुषः । वर्चसः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(घृतस्य) प्रकाश की (समना) मनोहर, (सदेवा) इन्द्रियों के साथ रहने वाली (जूतिः) वेग गति (हविषा) दान से (संवत्सरम्) वर्ष [जीवन काल] को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुयी [रहे] । (नः) हमारा (श्रोत्रम्) कान, (चक्षुः) आंख और (प्राणः) प्राण (अच्छिन्नः) निर्हानि (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (आयुषः) जीवन से और (वर्चसः) तेज से (अच्छिन्नाः) निर्हानि [होवें] ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिये कि विद्या आदि से शीघ्र प्रतापी होकर अपने आत्मा और शरीर की उन्नति करे ॥ १ ॥

उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे । वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधर्त्ता ॥ २ ॥

उप । अस्मान् । प्राणः । ह्वयताम् । उप । वयम् । प्राणम् । हवामहे ॥ वर्चः । जग्राह । पृथिवी । अन्तरिक्षम् । वर्चः । सोमः । बृहस्पतिः । वि-धर्त्ता ॥ २ ॥

१ (घृतस्य) प्रकाशस्य (जूतिः) वेगगतिः (समना) मन ज्ञाने—अच्, टाप् । मनोहरा (सदेवा) इन्द्रियैः सह वर्तमाना (संवत्सरम्) वर्षम् । जीवनकालम् (हविषा) दानेन (वर्धयन्ती) समर्धयन्ती (श्रोत्रम्) श्रवणम् (चक्षुः) नेत्रम् (प्राणः) शरीरधारकः पञ्चवृत्तिको वायुः (अच्छिन्नः) अभिन्नः । निर्हानिः (नः) अस्माकम् (अस्तु) (अच्छिन्नाः) निर्हानयः (वयम्) (आयुषः) जीवनात् (वर्चसः) प्रतापात् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(प्राणः) प्राण (अस्मान्) हम को (उप ह्वयताम्) समीप बुलावे, (वयम्) हम (प्राणम्) प्राण को (उप ह्वयामहे) समीप बुलाते हैं। (पृथिवी) पृथिवी और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष ने (वर्चः) तेज (जग्राह) ग्रहण किया है, (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के स्वामी], (विधर्त्ता) पोषण करने वाले (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (वर्चः) तेज [ग्रहण किया] है ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने आत्मा और शरीर की सदा रक्षा करके उनके द्वारा उपकारी होवे, जैसे पृथिवी और आकाश बलवान् होकर पदार्थों और लोकों को धारण करते हैं और जैसे विद्वान् तेजस्वी पुरुष विविध कार्य सिद्ध करता है ॥ २ ॥

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवी-मनु सं चरेम। यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥

वर्चसः। द्यावापृथिवी इति। संग्रहणी इति सम्-ग्रहणी। बभूवथुः। वर्चः। गृहीत्वा। पृथिवीम्। अनु। सम्। चरेम। यशसम्। गावः। गो-पतिम्। उप। तिष्ठन्ति। आ-यतीः। यशः। गृहीत्वा। पृथिवीम्। अनु। सम्। चरेम ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (वर्चसः) तेज के (संग्रहणी) संग्रह करने वाले (बभूवथुः) हुये हो, (वर्चः) तेज को

२—(उप) समीपे (अस्मान्) (प्राणः) म० १। शरीरधारके वायुः (ह्वयताम्) (उप) (वयम्) (प्राणम्) शरीरधारकं वायुम् (ह्वयामहे) आह्वयामः (वर्चः) तेजः (जग्राह) स्वीचकार (पृथिवी) (अन्तरिक्षम्) (वर्चः) (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुषः (बृहस्पतिः) बृहतीनां विद्यानां पालकः (विधर्त्ता) आकारस्य हस्वे कृते तकारस्य द्वित्वम्। विधाता। विविधपोषकः ॥

३—(वर्चसः) तेजसः (द्यावापृथिवी) सूर्यपृथिव्यौ (संग्रहणी) संग्रहकर्त्र्यौ। दात्र्यौ (बभूवथुः) (वर्चः) तेजः (गृहीत्वा) स्वीकृत्य (पृथिवीम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गृहीत्वा) ग्रहण करके (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (सम् चरेम) हम विचरें। (आयतीः) आती हुयीं (गावः) गौयें (यशसम्) अन्न वाले (गोपतिम्) गोपति [गौओं के स्वामी] को (उप तिष्ठन्ति) सेवती हैं, (यशः) अन्न (गृहीत्वा) ग्रहण करके (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (सम् चरेम) हम विचरें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य सूर्य और पृथिवी के समान बली होकर संसार में उपकार करें, और जैसे गौ आदि पशु अन्न आदि देने वाले अपने स्वामी की, सेवा करते हैं, वैसे ही मनुष्य अन्न आदि से अपने पोषकों की सेवा करें ॥ ३ ॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दुंहता तम् ॥४

व्रजम्। कृणुध्वम्। सः। हि। वः। नृ-पानः। वर्म। सीव्यध्वम्। बहुला। पृथूनि ॥ पुरः। कृणुध्वम्। आयसीः। अधृष्टाः। मा। वः। सुस्रोत्। चमसः। दुंहतु। तम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(व्रजम्) गोष्ठ [गोस्थान] को (कृणुध्वम्) तुम बनाओ, (हि) क्योंकि (सः) वह [स्थान] (वः) तुम्हारे लिये (नृपाणः) नेताओं की रक्षा करने वाला है, (बहुला) बहुत से (पृथूनि) चौड़े चौड़े (वर्म) कवचों को (सीव्यध्वम्) सीओ। (पुरः) दुर्गों को (आयसीः) लोहे का (अधृष्टाः) अटूट (कृणुध्वम्) बनाओ, (वः) तुम्हारा (चमसः) चमचा

(संचरेम) विचरेम (यशसम्) यशः=अन्नम्—निघ० २ । ७ । अर्शआद्यच्। अन्नवन्तम् (गावः) धेनवः (गोपतिम्) गवां स्वामिनम् (उपतिष्ठन्ति) सेवन्ते (आयतीः) आगच्छन्त्यः। अन्यद् गतम् ॥

४—(व्रजम्) गोस्थानम् (कृणुध्वम्) कुरुत (सः) व्रजः (हि) यस्मात् कारणात् (वः) युष्मभ्यम् (नृपाणः) नॄणां नेतॄणां रक्षकः (वर्म) वर्माणि। कवचानि (सीव्यध्वम्) सिवु तन्तुसन्ताने। संबध्नीत (बहुला) बहुलानि। बहूनि (पृथूनि) विस्तृतानि (पुरः) नगरान्। दुर्गाणि (कृणुध्वम्) (आयसीः) अयस्मयाः। अस्त्रशस्त्रयुक्ताः (अधृष्टाः) अधृष्यमाणाः।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भोजन पात्र] (मा सुस्रोत्) न टपक जावे, (तम्) उसको (दंहत) दृढ़ करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे गोशाला में गौ आदि पशु सुरक्षित रहते हैं, और जैसे राजा सैनिकों की रक्षा के लिये दृढ़ दुर्ग बना कर अस्त्र शस्त्र आदि से भर पूर करता है, वैसे ही मनुष्य अपने रक्षा साधनों का संग्रह करता रहे ॥ ४ ॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

यज्ञस्य । चक्षुः । प्र-भृतिः । मुखम् । च । वाचा । श्रोत्रेण । मनसा । जुहोमि ॥ इमम् । यज्ञम् । वि-ततम् । विश्व-कर्मणा । आ । देवाः । यन्तु । सु-मनस्यमानाः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[जो पुरुष] (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म का (चक्षुः) नेत्र [नेत्र समान] प्रदर्शक, (प्रभृतिः) पुष्टि (च) और (मुखम्) मुख [समान मुख्य] है, [उसको] (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) कान से और (मनसा) मन से (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं । (सुमनस्यमानाः) शुभ-चिन्तकों के समान आचरण वाले, (देवाः) व्यवहार कुशल महात्मा (विश्व-कर्मणा) संसार के रचने वाले परमेश्वर करके (विततम्) फैलाये हुये (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय धर्म को (आ यन्तु) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सत्य सङ्कल्पी, सत्यसन्ध, ऋषि महात्माओं के वैदिक उपदेश को वाणी से पठन पाठन, श्रोत्र से श्रवण श्रावण, और मन से निदिध्यासन अर्थात् बारम्बार विचार, करके ग्रहण करें । सब अनुग्रह शील महात्मा परमेश्वर के दिये हुये विज्ञान और धर्म का प्रचार करते रहें ॥ ५ ॥

यह मन्त्र ऊपर आचुका है—अ० २ । ३५ । ५ ॥

अविनाशनीयाः (वः) युष्माकम् (मा सुस्रोत्) स्रवतेर्लङि शपः श्लुः । मा स्रवतु । मा विनश्यतु (चमसः) भोजनपात्रम् (दंहत) दृढ़ीकुरुत (तम्) चमसम् ॥
अयं मन्त्रो व्याख्यातः-अ० २ । ३५ । ५ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्। इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ६

ये। देवानाम्। ऋत्विजः। ये। च। यज्ञियाः। येभ्यः। हव्यम्। क्रियते। भाग-धेयम्॥ इमम्। यज्ञम्। सह। पत्नीभिः। आ-इत्य। यावन्तः। देवाः। तविषाः। माद-यन्ताम्॥ ६॥

भाषार्थ—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों में (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ करने वाले, (च) और (ये) जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य हैं, और (येभ्य) जिनके लिये (हव्यम्) देने योग्य (भागधेयम्) भाग (क्रियते) किया जाता है। (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ में (पत्नीभिः सह) [अपनी] पत्नियों सहित (एत्य) आकर, (यावन्तः) जितने (तविषाः) बड़े (देवाः) विद्वान् हैं, [हमें] (मादयन्ताम्) वे प्रसन्न करें॥ ६॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् ऋषि महात्माओं और विदुषी स्त्रियों का यथावत् सत्कार करके उन्नति करें॥ ६॥

सूक्तम् ५८॥

१—३॥ अग्निर्देवता॥१ भुरिगार्ची गायत्री; २,३ त्रिष्टुप्॥

सुमार्गगमनोपदेशः—उत्तम मार्ग पर चलने का उपदेश॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥१॥

त्वम्। अग्ने। व्रत-पाः। असि। देवः। आ। मर्त्येषु। आ॥ त्वम्। यज्ञेषु। ईड्यः॥ १॥

६—(ये) (देवानाम्) विदुषां मध्ये (ऋत्विजः) सर्वकालेषु यष्टारः (ये) (च) (यज्ञियाः) पूजार्हाः (येभ्यः) (हव्यम्) दातव्यम् (क्रियते) अनुष्ठीयते (भागधेयम्) भागम् (इमम्) प्रत्यक्षम् (यज्ञम्) पूजनीयं व्यवहारम् (सह) (पत्नीभिः) विदुषीभिः स्त्रीभिः (एत्य) आगत्य (यावन्तः) यत्परिमाणाः (देवाः) विद्वांसः (तविषाः) तवेर्णिद्वा। उ० १। ४८। तव वृद्धौ, सौ० धा०—टिषच्। तविषो महन्नाम—निघ० ३। ३। महान्तः (मादयन्ताम्) तर्पयन्तु अस्मान्॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! [वा विद्वान् पुरुष] (त्वम्) तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (व्रतपाः) नियम का पालन करने वाला (आ) और (देवः) व्यवहार कुशल, (त्वम्) तू (यज्ञेषु) यज्ञों [संयोग वियोग व्यवहारों] में (आ) सब प्रकार (ईड्यः) स्तुति के योग्य (असि) है ॥१॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा नियमों के पालन से संयोग वियोग करके अनेक रचनायें करता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम नियमों पर चलकर योग्य कर्मों के संयोग और कुयोग्यों के वियोग से उत्तम व्यवहार सिद्ध करें ॥ १ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । ११ । १ और यजु० ४ । १६ ॥

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्ट्द् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ २ ॥

यत् । वः । वयम् । प्र-मिनाम । व्रतानि । विदुषाम् । देवाः । अविदुः-तरासः ॥ अग्निः । तत् । विश्व-अत् । आ । पृणातु । विद्वान् । सोमस्य । यः । ब्राह्मणान् । आ-विवेश ॥ २ ॥

भाषार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (यत्) यदि (अविदुष्टरासः) निपट अजान (वयम्) हम (वः विदुषाम्) तुम विद्वानों के (व्रतानि) नियमों को (प्रमिनाम) तोड़ डालें । (विश्वात्) सब का प्रबन्ध करने वाला (अग्निः) [वह] अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर] (तत्) उस को (आ पृणातु) पूरा कर

१—(त्वम्) (अग्ने) हे विद्वन् परमात्मन् मनुष्य वा (व्रतपाः) नियमपालकः (असि) (देवः) व्यवहारकुशलः (आ) चार्थे (मर्त्येषु) मनुष्येषु (आ) समन्तात् (त्वम्) (यज्ञेषु) संयोगवियोगव्यवहारेषु (ईड्यः) स्तुत्यः ॥

२—(यत्) यदि (वः) युष्माकम् (वयम्) (प्रमिनाम) मीञ् हिंसायाम्—लोट् । मीनातेर्निगमे । पा० । ७ । ३ । ८१ । इति ह्रस्वः । प्रकर्षेण हिनसाम विनाशयाम (व्रतानि) कर्माणि (विदुषाम्) जानताम् (देवाः) हे विद्वांसः (अविदुष्टरासः) अत्यर्थम् अविद्वांसः (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वरः (तत्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवे, (यः) जिस (सोमस्य) ऐश्वर्य के (विद्वान्) जानकार [परमेश्वर] ने (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] में (आविवेश) प्रवेश किया है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अज्ञानी होकर दोष करें, वे विद्वानों के सत्संग से परमात्मा की उपासना पूर्वक अपने दोषों को हटावें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । २ । ४ और चौथा पाद कुछ भेद से आ चुका है-अ० १८ । ३ । ५५ ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्स ऋतून् कल्पयाति ॥ ३ ॥

आ । देवानाम् । अपि । पन्थाम् । अगन्म । यत् । शक्नवाम । तत् । अनु-प्रवोढुम् ॥ अग्निः । विद्वान् । सः । यजात् । सः । इत् । होता । सः । अध्वरान् । सः । ऋतून् । कल्पयाति ३

भाषार्थ—(देवानाम्) विद्वानों के (अपि) ही (पन्थाम्) मार्ग को (आ) सब ओर से (अगन्म) हम प्राप्त हुये हैं (तत्) उस [श्रेष्ठ कर्म] को (अनुप्रवोढुम्) लगातार ले चलने के लिये (यत्) जो कुछ (शक्नवाम) समर्थ होवें । (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् (अग्निः) अग्नि [ज्ञानी परमात्मा] (यजात्) [बल] देवे, (सः इत्) वह ही (होता) दाता है, (सः) वह (अध्वरान्) हिंसा रहित व्यवहारों को, (सः) वही (ऋतून्) ऋतुओं [अनुकूल समयों] को (कल्पयाति) समर्थ करे ॥ ३ ॥

(विश्वात्) अत सातत्यगमने बन्धने च—क्विप् । सर्वप्रबन्धकः (आ) समन्तात् (पृणातु) पूरयतु (विद्वान्) ज्ञानवान् (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (यः) परमेश्वरः (ब्राह्मणान्) ब्रह्मज्ञानिनः पुरुषान् (आविवेश) प्रविष्टवान् ॥

३—(आ) समन्तात् (देवानाम्) विदुषाम् (अपि) एव (पन्थाम्) पन्थानम् (अगन्म) वयं प्राप्तवन्तः (यत्) कर्म कर्तुम् (शक्नवाम) शक्नुयाम । समर्थो भवेम (तत्) श्रेष्ठं कर्म (अनुप्रवोढुम्) निरन्तरं प्रापयितुम् (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वरः (विद्वान्) (सः) प्रसिद्धः (यजात्) लेटि रूपम् । यजेत् दद्यात् बलम् (सः) परमेश्वरः (इत्) एव (होता) दाता (अध्वरान्) हिंसारहितान् यज्ञान् (सः) (ऋतून्) अनुकूलकालान् (कल्पयाति) समर्थयेत् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के परीक्षित वैदिक मार्ग पर चलें। और सब को चलावें ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । २ । ३ ॥

सूक्तम् ६० ॥

१—२ ॥ परमात्मा देवता ॥ १ विराडार्षी बृहती; २ विराडार्ष्युष्णिक् ॥

शरीरस्वास्थ्योपदेशः—शरीर के स्वास्थ्य का उपदेश ॥

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥

वाक् । मे । आसन् । नसोः । प्राणः । चक्षुः । अक्ष्णोः ।
श्रोत्रम् । कर्णयोः ॥ अपलिताः । केशाः । अशोणाः । दन्ताः ।
बहु । बाह्वोः बलम् ॥ १ ॥

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मान्यभृष्टः ॥ २ ॥

ऊर्वोः । ओजः । जङ्घयोः । जवः । पादयोः ॥
प्रति-स्थाः । अरिष्टानि । मे । सर्वा । आत्मा । अनि-भृष्टः ॥२॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (मे) मेरे (आसन्) मुख में (वाक्) वाणी, (नसोः) दोनों नथनों में (प्राणः) प्राण, (अक्ष्णोः) दोनों आंखों में (चक्षुः) दृष्टि, (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) सुनने की शक्ति, (केशाः) केश (अपलिताः) अनभूरे, (दन्ताः) दांत (अशोणाः) अचलायमान [वा अरक्त वर्ण], और (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बहु) बहुत (बलम्) बल [होवे] ॥ १ ॥

१—(वाक्) वाणी (मे) मम (आसन्) आस्नि । आस्ये । मुखे (नसोः) नासिकाच्छिद्रयोः (प्राणः) शरीरधारको वायुः (चक्षुः) दृष्टिः (अक्ष्णोः) नेत्रयोः (श्रोत्रम्) श्रुतिः (कर्णयोः) श्रवणयोः (अपलिताः) अश्वेताः (केशाः) (अशोणाः) शोण गतौ—अच् । अचलायमानाः । अरक्तवर्णाः (दन्ताः) (बहु) प्रभूतम् (बाह्वोः) भुजयोः (बलम्) सामर्थ्यम् ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऊर्वोः) दोनों जङ्घाओं में (ओजः) सामर्थ्य (जङ्घयोः) दोनों घुटनों [पिण्डलियों वा नीचे की जांघों] में (जवः) वेग, (पादयोः) दोनों पैरों में (प्रतिष्ठा) जमाव [दृढ़ता], (मे) मेरे (सर्वा) सब [अङ्ग] अरिष्टानि) निर्दोष और (आत्मा) आत्मा (अनिभृष्टः) बिना नीचे गिरा हुआ [होवे] ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित आहार विहार, व्यायाम, योगाभ्यास आदि से अपने शरीर और आत्मा दृढ़ रखने चाहियें ॥ १, २ ॥

मन्त्र २ में (प्रतिष्ठा अरिष्टानि) पदों में सन्धि न होने से जाना जाता है कि (पादयोः) पर अवसान होने के स्थान में (प्रतिष्ठा) पर अवसान होना चाहिये ॥

सूक्तम् ६१ ॥

मन्त्र १॥ आत्मा देवता ॥ विराडार्षी बृहती ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

तनूः । तन्वा । मे । सहे । दतः । सर्वम् । आयुः । अशीय ॥
स्योनम् । मे । सीद । पुरुः । पृणस्व । पवमानः । स्वः-गे ॥ १

भाषार्थ—(मे) अपने (तन्वा) शरीर के साथ (तनूः) [दूसरों के] शरीरों को (सहे) मैं सहारता हूं, (दतः=दत्तः) रक्षा किया हुआ मैं (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन (अशीय) प्राप्त करूं (मे) मेरे लिये (स्योनम्) सुख से

२—(ऊर्वोः) जानूपरिभागयोः (ओजः) सामर्थ्यम् (जङ्घयोः) गुल्फजान्वोरन्तरालयोः (जवः) वेगः (पादयोः) चरणयोः (प्रतिष्ठा) स्थिरता । दृढता (अरिष्टानि) निर्दोषाणि (मे) मम (सर्वा) सर्वाणि अङ्गानि (आत्मा) जीवात्मा (अनिभृष्टः) भृश अधःपतने—क्त । अनधोगतः ॥

१—(तनूः) अन्येषां शरीराणि (तन्वा) शरीरेण (मे) मम । आत्मीयेन (सहे) उत्साहयामि (दतः) तकारलोपः । दत्तः । रक्षितः (सर्वम्) पूर्णम् (आयुः) जीवनम् (अशीय) प्राप्नुयाम् (स्योनम्) सुखम् (मे) मदर्थम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सीद) तू बैठ, (पुरुः) पूर्ण होकर (स्वर्गे) स्वर्ग [सुख पहुंचाने वाले स्थान] में (पवमानः) चलता हुआ तू [हमें] (पृणस्व) पूर्ण कर ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि आप सब की रक्षा करके अपनी रक्षा करें और विद्या और पराक्रम में पूर्ण होकर सब को विद्वान् और पराक्रमी बनाकर आप सुखी होवें और सबको सुखी करें ॥ १ ॥

सूक्तम् ६२ ॥

मन्त्रः १ ॥ ब्रह्म देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

विदुषां कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

प्रियम् । मा । कृणु । देवेषु । प्रियम् । राज-सु । मा । कृणु ॥
प्रियम् । सर्वस्य । पश्यतः । उत । शूद्रे । उत । आर्ये ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (मा) मुझे (देवेषु) ब्राह्मणों [ज्ञानियों] में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर, (मा) मुझे (राजसु) राजाओं में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर । (उत) और (आर्ये) वैश्य में (उत) और (शूद्रे) शूद्र में और (सर्वस्य) सब (पश्यतः) देखने वाले [जीव] का (प्रियम्) प्रिय [कर] ॥ १ ॥

(सीद) उपविश (पुरुः) भृमृदृशियजि० । उ० १ । २३ । पॄ पालनपूरणयोः—कु । पूर्णस्त्वम् (पृणस्व) पूरय अस्मान् (पवमानः) पवतेर्गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । गच्छन् (स्वर्गे) सुखप्रापके स्थाने ॥

१—(प्रियम्) हितकरम् (मा) माम् (कृणु) कुरु (देवेषु) ब्राह्मणेषु । वेदज्ञेषु (प्रियम्) (राजसु) क्षत्रियेषु (मा) (कृणु) (प्रियम्) (सर्वस्य) समस्तस्य (पश्यतः) दृष्टिवतो जीवस्य (उत) अपि च (शूद्रे) शुचेर्दश्च । उ० २ । १९ । शुच शोके—रक्प्रत्ययः, दश्चान्तादेशो धातोर्दीर्घश्च । शोचनीये मूर्खे (उत) (आर्ये) अ० १९ । ३२ । ८ । आर्यशब्द उत्तमवर्णब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्यवाचकत्वादत्र वैश्यवाची । वैश्ये ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मण आदि से निष्पक्ष होकर प्रीति करता है, वैसे ही विद्वानों को सब संसार से प्रीति करनी चाहिये ॥ १ ॥

इस मन्त्र का मिलान अथ० १९ । ३२ । ८ और निम्न लिखित मन्त्र से करो—यजु० १८ । ४८ ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

[हे जगदीश्वर !] (नः) हमारी (रुचम्) प्रीति को (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों [वेद वेत्ताओं] में (धेहि) धारण कर, (नः) हमारी (रुचम्) प्रीति को (राजसु) राजाओं में (कृधि) कर । (रुचम्) [हमारी] प्रीति को (विश्येषु) मनुष्यों के हितकारी वैश्यों में और (शूद्रेषु) शोक युक्त शूद्रों में [कर], (मयि) मुझ में (रुचा) [मेरी] प्रीति के साथ (रुचम्) [उनकी] प्रीति को (धेहि) धर ॥

सूक्तम् ६३ ॥

मन्त्रः १ ॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता ॥ विराडार्षी बृहती छन्दः ॥
विदुषां कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥ १ ॥

उत् । तिष्ठ । ब्रह्मणः । पते । देवान् । यज्ञेन । बोधय ॥
आयुः । प्राणम् । प्र-जाम् । पशून् । कीर्तिम् । यजमानम् । च । वर्धय ॥ १ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक ! [विद्वान् पुरुष] तू (उत् तिष्ठ) उठ, और (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] से (बोधय) जगा । (यजमानम्) यजमान [श्रेष्ठकर्म करने वाले] को (च)

१—(उत्तिष्ठ) ऊर्ध्वं गच्छ (ब्रह्मणः) वेदस्य (पते) रक्षक विद्वन् (देवान्) विदुषः पुरुषान् (यज्ञेन) पूजनीयव्यवहारेण (बोधय) सावधानान् कुरु (आयुः) जीवनम् (प्राणम्) आत्मबलम् (प्रजाम्) पुत्रपौत्रभृत्यादिरूपाम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (आयुः) [उसके] जीवन, (प्राणम्) प्राण [आत्मबल], (प्रजाम्) प्रजा, [सन्तान आदि], (पशून्) पशुओं [गौयें घोड़े आदि] और (कीर्तिम्) कीर्ति को (वर्धय) बढ़ा ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग विद्वानों से मिलकर सब मनुष्यों की सब प्रकार उन्नति का उपाय करते रहें ॥ १ ॥

सूक्तम् ६४ ॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३ निचृदनुष्टुप्;४ भुरिगुष्णिक् ॥

भौतिकाग्न्युपयोगोपदेशः—भौतिक अग्नि के उपयोग का उपदेश ॥

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥

अग्ने । सम्-इधम् । आ । अहार्षम् । बृहते । जात-वेदसे ॥
सः । मे । श्रद्धाम् । च । मेधाम् । च । जात-वेदाः । प्र यच्छतु ॥ १ ॥

भाषार्थ—(बृहते) बढ़ते हुये, (जातवेदसे) पदार्थों में विद्यमान (अग्ने=अग्नये) अग्नि के लिये (समिधम्) समिधा [जलाने के वस्तु काष्ठ आदि] को (आ अहार्षम्) मैं लाया हूं । (सः) वह (जातवेदाः) पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] (मे) मुझे (श्रद्धाम्) श्रद्धा [आदर, विश्वास] (च च) और (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (प्र यच्छतु) देवे ॥ १ ॥

(पशून्) गवाश्वादीन् (कीर्तिम्) यशः (यजमानम्) यज्ञस्यानुष्ठातारम् (च) (वर्धय) समर्धय ॥

१—(अग्ने) सुपां सुपो भवन्ति । वा० पा० ७ । १ । ३९ । चतुर्थ्यर्थे सम्बोधनम् । भौतिकाग्नये (समिधम्) समिन्धनसाधनं काष्ठघृतादिकम् (अहार्षम्) आहृतवानस्मि (बृहते) वर्धमानाय (जातवेदसे) पदार्थेषु विद्यमानाय (सः) अग्निः (मे) मह्यम् (श्रद्धाम्) आदरम् । विश्वासम् (च) (मेधाम्) धारणावतीं बुद्धिम् (जातवेदाः) पदार्थेषु विद्यमानः (प्रयच्छतु) ददातु ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि काष्ठ घृत और अन्य द्रव्यों से भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करके हवन और शिल्प कार्यों में उपयोगी करें तथा उसके गुणों में श्रद्धा और बुद्धि बढ़ावें और इसी प्रकार परमात्मा की भक्ति को अपने हृदय में स्थापित करें ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान करो -यजु० ३ । १-४ ॥

इध्मेन॑ त्वा जातवेदः स॒मिधा॑ वर्धयामसि ।
तथा॒ त्वम॒स्मान् व॑र्धय प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च ॥ २ ॥

इ॒ध्मेन॑ । त्वा॒ । जा॒त॒-वे॒दः॒ । स॒म्-इधा॑ । व॒र्ध॒या॒म॒सि॒ ॥ तथा॑ । त्वम् । अ॒स्मान् । व॒र्ध॒य॒ । प्र॒-जया॑ । च॒ । धने॑न । च॒ ॥ २ ॥

भाषार्थ—(जातवेदः) हे पदार्थों में विद्यमान ! [अग्नि] (इध्मेन) इन्धन [जलाने के पदार्थ] से और (समिधा) समिधा [काष्ठ आदि] से (त्वा) तुझे [जैसे] (वर्धयामसि) हम बढ़ाते हैं। (तथा) वैसे ही (त्वम्) तू (अस्मान्) हमें (प्रजया) प्रजा [सन्तान आदि] से (च च) और (धनेन) धन से (वर्धय) बढ़ा ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे जैसे मनुष्य हवन और शिल्प कार्यों में भौतिक अग्नि का उपयोग करते हैं, वैसे वैसे ही उन के सन्तान आदि और धन की वृद्धि होती है ॥ २ ॥

यद॑ग्ने॒ यानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि ।
सर्वं॒ तद॑स्तु मे शि॒वं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

यत् । अ॒ग्ने॒ । यानि॑ । कानि॑ । चि॒त् । आ । ते॒ । दारू॑णि ।
द॒ध्मसि ॥ सर्व॑म् । तत् । अ॒स्तु॒ । मे॒ । शि॒वम् । तत् । जु॒ष॒-
स्व॒ । य॒वि॒ष्ठ्य॒ ॥ ३ ॥

२—(इध्मेन) इन्धनसाधनेन (त्वा) त्वाम् (जातवेदः) हे पदार्थेषु विद्यमान (समिधा) काष्ठादिना (वर्धयामसि) वर्धयामः । प्रवृद्धं कुर्मः (तथा) तेन प्रकारेण (त्वम्) (अस्मान्) अग्निप्रदीपकान् (वर्धय) समर्धय (प्रजया) सन्तानादिना (च) (धनेन) सुवर्णादिना (च) ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (यानि कानि चित्) जिन किन ही (दारूणि) काष्ठों को (ते) तेरे लिये (यत्) जो कुछ (आ दध्मसि) हम लाकर धरते हैं। (तत् सर्वम्) वह सब (मे) मेरे लिये (शिवम्) कल्याणकारी (अस्तु) होवे, (यविष्ठ्य) हे अत्यन्त संयोजक वियोजकों में साधु ! [योग्य] (तत्) उस [काष्ठ आदि] को (जुषस्व) तू सेवन कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य काष्ठ आदि पदार्थों को अग्नि में हवन और शिल्प, सिद्धि के लिये सावधानी और विचार से छोड़ें, जिस से प्रज्वलित अग्नि द्वारा यथावत् कार्यसिद्धि होवे ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—११ । ७३ और ऋग्वेद ८ । १०२ [सायणभाष्य ६१] ॥ २० ॥

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

एताः । ते । अग्ने । सम्-इधः । त्वम् । इद्धः । सम्-इत् । भव ॥ आयुः । अस्मासु । धेहि । अमृत-त्वम् । आ-चार्याय ४

भाषार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (एताः) यह (ते) तेरे लिये (समिधः) समिधायें [काष्ठ आदि सामग्री] हैं, (त्वम्) तू (इद्धः) प्रज्वलित होकर (समित्) मिलने वाला (भव) हो। (आयुः) जीवन और (अमृतत्वम्) अमरपन को (अस्मासु) हम में (आचार्याय) आचार्य [की सेवा] के लिये

३—(यत्) यत्किञ्चित् (यानि कानि चित्) यानि सर्वाण्यपि (आ) आनीय (ते) तुभ्यम् (दारूणि) काष्ठानि (दध्मसि) धरामः। आरोपयामः (सर्वम्) (तत्) (अस्तु) (मे) मह्यम् (शिवम्) कल्याणकरम् (तत्) समग्रम् (जुषस्व) सेवस्व (यविष्ठ्य) युवन्—इष्ठन्। स्थूलदूरयुव० । पा० ६ । ४ । १५६ । वलोपे गुणे च । तत्र साधुः । पा० ४ । ४ । ६८ । इति यविष्ठ—यत् । हे युवतमेषु अतिशयेन संयोजकवियोजकेषु साधो योग्य ॥

४—(एताः) दृश्यमानाः (ते) तुभ्यम् (अग्ने) (समिधः) काष्ठादिपदार्थाः (त्वम्) (इद्धः) प्रज्वलितः सन् (समित्) इण् गतौ—क्विप् तुक् च । संगन्ता (भव) (आयुः) जीवनम् (अस्मासु) (धेहि) धारय (अमृतत्वम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धेहि) धारण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ--जो मनुष्य अग्नि में काष्ठ आदि का उत्तम उपयोग करते हैं, वे पूर्ण आयु भोग कर और आचार्य आदि की सेवा करके सुखी होते हैं ॥४॥

सूक्तम् ६५ ॥

मन्त्रः १॥ सूर्यो देवता ॥ निचृज्जगती छन्दः ॥

पराक्रमकरणोपदेशः—पराक्रम करने का उपदेश ॥

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् । अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥

हरिः । सु-पर्णः । दिवम् । आ । अरुहः । अर्चिषा । ये । त्वा । दिप्सन्ति । दिवम् । उत्-पतन्तम् ॥ अव । तान् । जहि । हरसा । जातवेदः । अबिभ्यत् । उग्रः । अर्चिषा । दिवम् । आ । रोह । सूर्य ॥ १ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (हरिः) दुःख का हरने वाला, (सुपर्णः) बड़ा पालने वाला तू (अर्चिषा) पूजनीय कर्म से (दिवम्) चाहने योग्य सुख स्थान में (आ अरुहः) ऊंचा चढ़ा है, (ये) जो [विघ्न] (दिवम्) सुख-स्थान को (उत्पतन्तम्) चढ़ते हुये (त्वाम्) तुझे (दिप्सन्ति) दबाना चाहते हैं; (जातवेदः) हे बड़े धन वाले ! (तान्) उन को (हरसा) [अपने] बल से (अव जहि) मार डाल, (अबिभ्यत्) भय न करता हुआ, (उग्रः) तेजस्वी तू

अमरणम् (आचार्याय) आचार्यं सेवितुम् ॥

१—(हरिः) दुःखस्य हर्ता (सुपर्णः) महापालकः (दिवम्) दिवु-कान्तौ—कप्रत्ययः । कमनीयं सुखस्थानम् (आ अरुहः) रोहतेर्लुङ् । आरूढवानसि (अर्चिषा) पूजनीयेन कर्मणा (ये) विघ्नाः (त्वा) (दिप्सन्ति) दम्भितुमिच्छन्ति । जिघांसन्ति (दिवम्) (उत्पतन्तम्) उद्गच्छन्तम् (अव जहि) विनाशय (तान्) विघ्नान् (हरसा) बलेन (जातवेदः) हे प्रसिद्धधन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सूर्य) हे सूर्य ! [प्रेरक मनुष्य] (अर्चिषा) पूजनीय कर्म से (दिवम्) सुख-स्थान को (आ रोह) चढ़ जा ॥ १ ॥

भावार्थ—पराक्रमी पुरुष सब विघ्नों को हटा कर धनवान् होकर सुखी होवें ॥ १ ॥

सूक्तम् ६६ ॥

मन्त्रः १ ॥ जातवेदा देवता ॥ निचृदतिजगती छन्दः ॥
पराक्रमकरणोपदेशः—पराक्रम करने का उपदेश ॥

अयोजालाः असुराः मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति । तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सुपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

अयः-जालाः । असुराः । मायिनः । अयस्मयैः । पाशैः । अङ्किनः । ये । चरन्ति ॥ तान् । ते । रन्धयामि । हरसा । जातवेदः । सहस्र-ऋष्टिः । सु-पत्नान् । प्र-मृणन् । पाहि । वज्रः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अयोजालाः) लोहे के जाल वाले, (असुराः) असुर [विद्वानों के विरोधी], (मायिनः) छली, (अयस्मयैः) लोहे के बने हुये (पाशैः) फन्दों से (अङ्किनः) आंकड़ा लगाने वाले (ये) जो [शत्रु] (चरन्ति) घूमते फिरते हैं । (जातवेदः) हे बड़े धन वाले ! [शूर] (तान्) उन को (ते) तेरे (हरसा) बल से (रन्धयामि) मैं वश में करता हूं, (सहस्रऋष्टिः) सहस्रों

(अबिभ्यत्) भीतिम् अकुर्वन् (उग्रः) प्रचण्डः (अर्चिषा) पूजनीयेन कर्मणा (दिवम्) (आरोह) अधितिष्ठ (सूर्य) हे प्रेरक प्रतापिन् ॥

१-(अयोजालाः) लोहमयवागुरावन्तः (असुराः) सुराणां विदुषां विरोधिनः (मायिनः) छलिनः (अयस्मयैः) लोहनिर्मितैः (पाशैः) बन्धनैः (अङ्किनः) अङ्कुशवन्तः (ये) दुष्टाः (चरन्ति) विचरन्ति (तान्) दुष्टान् (ते) तव (रन्धयामि) रध्यतिर्वशगमने—निरु० १० । ४० । वशयामि । स्वाधीनान् करोमि (हरसा) बलेन (जातवेदः) हे बहुधन (सहस्रऋष्टिः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो धारा तरवार वाला, (वज्रः) वज्रवान्, (सपत्नान्) विरोधियों को (प्रमृणन्) मार डालता हुआ तू [हमें] (पाहि) पाल ॥ १ ॥

भावार्थ—बड़े लोग शूर पराक्रमी पुरुषों का सदा सहाय और सत्कार करते रहें, जिस से वे छली कपटी दुष्टों को मारकर प्रजा का पालन करें ॥ १ ॥

सूक्तम् ६७ ॥

१—८ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ प्राजापत्या गायत्री छन्दः ॥

जीवनस्य स्वास्थ्योपदेशः—जीवन के स्वास्थ्य का उपदेश ॥

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥ पश्येम । शरदः । शतम् ॥ १ ॥

जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥ जीवेम । शरदः । शतम् ॥ २ ॥

बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥ बुध्येम । शरदः । शतम् ॥ ३ ॥

रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥ रोहेम । शरदः । शतम् ॥ ४ ॥

पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥ पूषेम । शरदः । शतम् ॥ ५ ॥

भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥ भवेम । शरदः । शतम् ॥ ६ ॥

भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥ भूयेम । शरदः । शतम् ॥ ७ ॥

भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥ भूयसीः । शरदः । शतात् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (पश्येम) हम देखते रहें ॥ १ ॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (जीवेम) हम जीते रहें ॥ २ ॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (बुध्येम) हम समझते रहें ॥ ३ ॥

ऋष्टिः उभयतो धारायुक्तःखड्गः । सहस्रैर्ऋष्टिभिर्युक्तः (सपत्नान्) शत्रून् (प्रमृणन्) प्रकर्षेण मारयन् (पाहि) पालय (वज्रः) वज्र-अर्शआद्यच् । वज्रवान् ॥

१—(पश्येम) अवलोकयेम (शरदः) शरदृतून् । संवत्सरान् । कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे । पा० २ । ३ । ५ । इति सर्वत्र द्वितीया (शतम्) शतसंख्याकान् ॥

२—(जीवेम) प्राणान् धारयेम ॥

३—(बुध्येम) बुध्येमहि । जानीयाम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (रोहेम) हम चढ़ते रहें ॥ ४ ॥
(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (पूषेम) हम पुष्ट होते रहें ॥ ५ ॥
(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (भवेम) हम बने रहें ॥ ६ ॥
(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (भूषेम) हम शुद्ध रहें ॥ ७ ॥
(शतात्) सौ से (भूयसीः) अधिक (शरदः) वर्षों तक [हम देखते रहें, जीते रहें, इत्यादि] ॥ ८ ॥

भावार्थ—हम सब लोग प्रयत्न करें कि परमेश्वर की प्रार्थना सदा करते हुये युक्त आहार विहार से ऐसे स्वस्थ और नीरोग रहें कि सब इन्द्रियां नेत्र, मुख, नासिका, मन आदि सौ वर्ष से भी अधिक पूरे दृढ़ और सचेत रहें, जिससे हम अपना कर्तव्य जीवन भर सावधानी के साथ किया करें ॥ १—८ ॥

मन्त्र १ तथा २ ऋग्वेद में हैं—७ । ६६ । १६ और सब सूक्त कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३६ । २४ ॥

सूक्तम् ६८ ॥

मन्त्रः १ ॥ आत्मा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥
मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

अव्यंसश्च व्यचंसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

अव्यंसः । च । व्यचंसः । च । बिलम् । वि । स्यामि । मायया ॥
ताभ्याम् । उत्-हृत्य । वेदम् । अथ । कर्माणि । कृण्महे ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अव्यसः) अव्यापक [जीवात्मा] के (च च) और

४—(रोहेम) आरूढा भवेम ॥
५—(पूषेम) पूष पुष्टौ । पुष्टिं लभेमहि ॥
६—(भवेम) स्याम । वर्तेमहि ॥
७—(भूषेम) भू शुद्धौ—आशीर्लिंङि छान्दसं रूपम् । शुध्येम ॥
८—(भूयसीः) अधिकतराः (शरदः) वर्षाणि (शतात्) शतसंख्याकात् ॥
१—(अव्यसः) व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा-असुन्, वर्णलोपश्छान्दसः । अव्यचसः ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व्यचसः) व्यापक [परमात्मा] के (बिलम्) बिल [भेद] को (मायया) बुद्धि से (वि ध्यामि) मैं खोलता हूं । (अथ) फिर (ताभ्याम्) उन दोनों के जानने के लिये (वेदम्) वेद [ऋग्वेद आदि ज्ञान] को (उद्धृत्य) ऊंचा लाकर (कर्माणि) कर्मों को (कृणमहे) हम करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य जीवात्मा के कर्तव्य और परमात्मा के अनुग्रह समझने के लिये वेदों को प्रधान जानकर अपना अपना कर्तव्य करते रहें ॥ १ ॥

सूक्तम् ६८ ॥

१-४ ॥ विद्वांसो देवताः ॥ १ आसुर्य्यनुष्टुप्; २ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३ आसुरी गायत्री; ४ आसुर्युष्णिक् ॥

जीवनवर्धनायोपदेशः—जीवन बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

जीवाः । स्थ । जीव्यासम् । सर्वम् । आयुः । जीव्यासम् ॥१॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (जीवाः) जीने वाले (स्थ) हो, (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों के समान जीवन भर स्वतन्त्र पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ १ ॥

उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥

उप-जीवाः । स्थ । उप । जीव्यासम् । सर्वम् । आयुः । जीव्यासम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (उपजीवाः) आश्रय से जीने वाले (स्थ) हो, (उप जीव्यासम्) मैं सहारे से जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण

अध्यापकस्य जीवात्मनः (च) (व्यचसः) व्यापकस्य परमात्मनः (च) (बिलम्) छिद्रम् । भेदम् (वि ध्यामि) स्थगितरूपसृष्टो विमोचने-निरु० १ । १७ । विमोचयामि । विमोचयामि (मायया) प्रज्ञया (ताभ्याम्) तौ ज्ञातुम् (उद्धृत्य) उद्गमय्य (वेदम्) ऋग्वेदादिवेदचतुष्टयं ज्ञानमूलम् (अथ) अनन्तरात्री (कर्माणि) कर्तव्यानि (कृणमहे) कुर्महे ॥

१—(जीवाः) जीवनवन्तः (स्थ) भवथ (जीव्यासम्) जीवनवान् भूयासम् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (आयुः) जीवनम् (जीव्यासम्) ॥

२—(उपजीवाः) आश्रयेण जीवन्तः (उपजीव्यासम्) आश्रयेण जीवनवान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि दशा में श्रेष्ठों का आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करना चाहिये ॥ २ ॥

सं जीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥

सम्-जीवाः । स्थ । सम् । जीव्यासम् । सर्वम् । आयुः । जीव्यासम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (संजीवाः) मिलकर जीने वाले (स्थ) हो, (संजीव्यासम्) मैं मिलकर जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परस्पर सहाय से अपना जीवन भोगना चाहिये ॥ ३ ॥

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

जीवलाः । स्थ । जीव्यासम् । सर्वम् । आयुः । जीव्यासम् ४ ॥

भाषार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (जीवलाः) जीवन दाता (स्थ) हो, (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य परस्पर उपकार से सब का जीवन बढ़ाते रहें ॥ ४ ॥

सूक्तम् ७० ॥

मन्त्रः १ ॥ इन्द्रो देवता ॥ आर्षी गायत्री छन्दः ॥
आयुर्वर्धनायोपदेशः—जीवन बढ़ाने का उपदेश ॥

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासंसुहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

इन्द्र । जीव । सूर्य । जीव । देवाः । जीवाः । जीव्यासंम् । सुहम् ॥ सर्वम् । आयुः । जीव्यासम् ॥ १ ॥

धान् भूयासम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

३—(संजीवाः) संयोगेन जीवन्तः (सं जीव्यासम्) संयोगेन प्राणान् धारयेयम् ॥

४—(जीवलाः) जीव + ला दानादानयोः—कप्रत्ययः । जीवनदातारः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (जीव) तू जीता रह, (सूर्य) हे सूर्य ! [सूर्य समान तेजस्वी] (जीव) तू जीता रह, (देवाः) हे विद्वानो ! तुम (जीवाः) जीने वाले [हो], (अहम्) मैं (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य परम ऐश्वर्यवान् और प्रधान होकर विद्वानों के साथ पूर्ण आयु जीवें ॥ १ ॥

सूक्तम् ७१ ॥

मन्त्रः १॥ वेदमाता देवता ॥ अतिजगती छन्दः ॥

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः—सब सुख पाने का उपदेश ॥

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

स्तुता । मया । वरदा । वेद-माता । प्र । चोदयन्ताम् । पावमानी । द्विजानाम् ॥ आयुः । प्राणम् । प्र-जाम् । पशुम् । कीर्तिम् । द्रविणम् । ब्रह्म-वर्चसम् ॥ मह्यम् । दत्त्वा । व्रजत । ब्रह्म-लोकम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(वरदा) वर [इष्ट फल] देने वाली (वेदमाता) ज्ञान की माता [वेदवाणी] (मया) मुझ करके (स्तुता) स्तुति की गयी है, [आप विद्वान् लोग] (पावमानी) शुद्ध करने वाले [परमात्मा] की बताने वाली [वेदवाणी] को (द्विजानाम्) द्विजों [ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों] में (प्र चोदयन्ताम्) आगे बढ़ावें । [हे विद्वानो !] (आयुः) जीवन, (प्राणम्)

१—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् मनुष्य (जीव) प्राणान् धारय (सूर्य) हे सूर्यवत्तेजस्विन् (जीव) (देवाः) हे विद्वांसः (जीवाः) जीवनवन्तःस्थ । अन्यत् पूर्ववत् स्पष्टं च ॥

१—(स्तुता) प्रशंसिता (मया) उपासकेन (वरदा) इष्टफलदात्री (वेदमाता) वेदस्य ज्ञानस्य निर्मात्री वेदवाणी (प्र चोदयन्ताम्) प्रेरयन्तां विद्वांसः (पावमानी) पवमान-अण, ङीप् । द्वितीयार्थे प्रथमा । पवमानस्य शोधकस्य परमेश्वरस्य प्रतिपादिकां वेदवाणीम् (द्विजानाम्) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां मध्ये (आयुः) जीवनम् (प्राणम्) आत्मबलम् (प्रजाम्) सन्तानादिकम्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण [आत्मबल], (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि], (पशुम्) पशु [गौ आदि], (कीर्तिम्) कीर्ति, (द्रविणम्) धन और (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्यम्) मुझ को (दत्त्वा) देकर [हमें] (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक [वेदज्ञानियों के समाज] में (व्रजत) पहुंचाओ ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् आचार्यों के द्वारा आदर के साथ वेदवाणी का निरन्तर अभ्यास करके सर्वोन्नति से कीर्तिमान् होते हुये ब्रह्मज्ञानियों में प्रतिष्ठा पावें ॥ १ ॥

सूक्तम् ७२ ॥

मन्त्रः १ ॥ परमात्मा देवता ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ॥

वैदिककर्मानुष्ठानोपदेशः—वैदिक कर्म करने का उपदेश ॥

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥

यस्मात् । कोशात् । उत्-अभराम । वेदम् । तस्मिन् । अन्तः। अव । दध्मः । एनम् ॥ कृतम् । इष्टम् । ब्रह्मणः । वीर्येण । तेन । मा । देवाः । तपसा । अवत । इह ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यस्मात्) जिस (कोशात्) कोश [निधि स्थान परमात्मा] से (वेदम्) वेद [ऋग्वेद आदि] को (उदभराम) हमने ऊंचा धरा है, (तस्मिन् अन्तः) उस परमात्मा के भीतर (एनम्) इस [जीवात्मा] को (अव) निश्चय करके (दध्मः) हम धरते हैं। (ब्रह्मणः) [जिस) ब्रह्म [परमात्मा] के (वीर्येण) सामर्थ्य से (इष्टम्) इष्ट कर्म (कृतम्) किया जाता है, (तेन) उस [परमात्मा] के साथ, (देवाः) हे विद्वानो ! (तपसा) तप

(पशुम्) गवादिकम् (कीर्तिम्) यशः (द्रविणम्) धनम् (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मवर्चस्—अच् । वेदाभ्यासेन तेजः (मह्यम्) उपासकाय (दत्त्वा) (व्रजत) अन्तर्गतण्यर्थः । व्राजयत । प्रापयत—अस्मान् (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मणां वेदज्ञानां समाजम् ॥

१—(यस्मात्) (कोशात्) निधिस्थानात् परमेश्वरात् (उदभराम) उद्धृतवन्तः । ऊर्ध्वं स्थापितवन्तः (वेदम्) ऋग्वेदादिवेदचतुष्टयम् (तस्मिन्) कोशे परमात्मनि (अन्तः) मध्ये (अव) अवधारणे (दध्मः) धरामः (एनम्) जीवात्मानम् (कृतम्) अनुष्ठितम् (इष्टम्) इष्टं कर्म (ब्रह्मणः) यस्य परमेश्वरस्य (वीर्येण) सामर्थ्येन (तेन) परमेश्वरेण सह (मा) माम् (देवाः)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा (मा) मुझ को (इह) यहां पर (अवत) बचाओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा के अनन्त भण्डार से वेद रत्न को हमने पाया है, उसी परमात्मा का आश्रय लेकर विद्वानों के सत्संग और सहाय से तप्त करते हुये अपनी रक्षा करके हम आनन्द भोगें ॥ १ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज प्रथितमहागुणमहिम श्रीसयाजीराव गायकवाड़ाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रीपण्डित

क्षेमकरणदासत्रिवेदिना ।

कृते अथर्ववेदभाष्ये एकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे श्रावणमासे पौर्णमास्यां रक्षाबन्धनतिथौ १९७६ [षट्सप्तत्युत्तरैकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि

श्रीराजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य

सुसाम्राज्ये सुसम्प्राप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—पौषकृष्णा ६ संवत् १९७६वि०, ता० १२ दिसम्बर १९१९ ई०।

हे विद्वांसः (तपसा) तपश्चरणेन (अवत) रक्षत (इह) अत्र ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियां

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-७३ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेम-करणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उन से स्वीकार की जावें॥

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५९७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर नमस्ते!,

आपको ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आपने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य को करने का प्रयत्न किया है। भाष्य कांडों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्य समाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों को बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी जी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस प्रदान करें। स्वयम् ग्राहक बनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाज के पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही ज़रूरी है। भाष्यके प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये जल्दी से भाष्य को मंगाइये।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,
B. Sc. LL. B. उपमन्त्री।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठी संख्या २७० तिथि १०—१२—१९१४। कार्यालय श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध बुलन्दशहर।

आप का पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आप की विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्रधारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आपको उत्तरोत्तर उस महत्त्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

मदनमोहन सेठ

(एम० ए० एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

श्रीमान् पण्डित तुलसीराम स्वामी—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारों वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

श्रीयुत महाशय नारायणप्रसाद जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त। आर्यमित्र आगरा २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक् साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैंने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों, में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खें।

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एक बड़ी कमी के पूर्ण करने का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो···छपाई और कागज़ भी अच्छा है

श्रीयुत महाशय—**मुन्शीरामजी** जिज्ञासु-मुख्याधिष्ठाता कुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ६४ तिथि २७-१०-१६६६।

अथर्ववेदभाष्य आपका दिया व किया हुआ अवकाशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आपका परिश्रम सराहनीय है।

तथा—पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१६६६।

अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

श्रीयुत पं० **शिवशंकर शर्म्मा** काव्यतीर्थ-छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वादि ग्रन्थकर्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि सम्पादक आर्यमित्र-८ फ़रवरी १६१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।·····आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर अब वहां से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आप ने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आपका अथर्ववेदीयभाष्य पढ़ने योग्य है।

श्रीयुत पंडित—**भीमसेन शर्म्मा इटावा** उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १६१३।

अथर्ववेदभाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में·····अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है···भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१६१५॥

श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते।

महेवा के पते से आपका भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आपने हम सभों पर अत्यंत कृपा की है आपको अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पाँचवां कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पुस्तक हवनमन्त्रा की जिसका मूल्य ।)॥ है कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पंडित—महावीर प्रसाद द्विवेदी—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत हेमकरणदास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है कि आपने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है···बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आपने अपने भाष्य को अलंकृत किया है···आपकी राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आपका भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पंडित—गणेश प्रसाद शर्मा सम्पादक भारत सुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू कालिका प्रसाद जी—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८६ ता० २७-३-१३।

आप का भेजा अथर्ववेदभाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय रावत हरप्रसाद सिंह जी वर्मा, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, ज़िला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आपने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आपको वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७-९-१३।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप का अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६-लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है—कि वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है—जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।..... इस समय जो पांच काड़ों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोचकर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है.....त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर—इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The VIDYADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No* 624 *dated 6th February* 1913.

...It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable " For Encouragement Fund.

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age. I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope ..the venture will not fail for want of pecuniary support

---

THE MAGISTRATE OF ALLAHAABD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

THE ARYA PATRIKA LAHORE APRIL 18 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda*, which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature .....The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious ; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works.....The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition ; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation,but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves .....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.